ओ३म्

वेदादि विविध सत्यशास्त्रहरूको प्रमाण सहित—

सत्यार्थप्रकाश

(नेपाली)

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सम्पादक :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

विक्रमादित्य प्रतिष्ठान

स्मृति :

स्व० प० मेघराज शर्मा (विराटनगर)
स्व० श्री प्रह्लादराय अग्रवाल (रानी विराटनगर)
स्व० श्री नारायणमुनि वानप्रस्थी (जोगबनी, बिहार)
स्व० श्री पुण्यप्रसाद उप्रेती (भू०पू० आचार्या अध्यापक, विराटनगर जतुवा)
स्व० भू०पू० अञ्चलाधीश टेकबहादूर
रायमाझी (काठमाडौं)

प्रकाशक : **विक्रमादित्य प्रतिष्ठान**
अध्यक्ष—डॉ० वीरदेव विष्ट (एम०ए०पीएच०डी०)
६४, हारमोनी ग्रोव रोड, लीलबर्न अटलाण्टा,
जी०ए०-३००४७ (यू०एस०ए०)
संरक्षक : श्री सीताराम अग्रवाल (रानी विराटनगर)
श्री प० रतिराम शर्मा (सिलीगुड़ी)
श्री आचार्य पीताम्बर शर्मा (विराटनगर)
श्री माधवप्रसाद उपाध्याय (काठमाडौं)
आवृत्ति : द्वितीय संस्करण
प्रति : पाँच हजार (५०००)
मूल्य : २००/-
प्रकाशन तिथि : आर्यसमाज दिन, चैत्र शुक्ल २०६५
सृष्टिसम्वत्—१९६०८५३१०९
शब्द संयोजक : भगवती लेजर प्रिंट्स
४६/५, कम्युनिटी सेंटर, ईस्ट ऑफ कैलाश,
नई दिल्ली-११००६५, दूरभाष: ०११-६६६०८९१६

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
१. नेपाल आर्यसमाज, आर्यनगर जतुवा-१८, विराटनगर (नेपाल)
२. गुरुकुल मा०वि० विराटनगर, आर्यनगर जतुवा-१८,
जिल्ला-मोरंग, अञ्चल-कोशी (नेपाल) फोन-०२१-५२७७९८
३. नेपाल आर्यसमाज, केन्द्रीय कार्यालय, पुरानो वानेश्वर (हाईट),
टंकप्रसाद मार्ग-१५/१६, काठमाडौं (नेपाल)
४. सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-२

ओ३म्

आशीर्वचन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की कालजयी कृति सत्यार्थप्रकाश का नेपाली भाषा में अनूदित यह संस्करण, नेपाली मूल के लिलबर्न (अटलाण्टा) संयुक्त राज्य अमेरिका निवासी बिष्ट परिवार के रु० ५,००,०००.०० (पाँच लाख रुपये मात्र) के पुण्यदान से प्रकाशित हुआ है।

दानशील बिष्ट परिवार महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर, रोहतक (हरियाणा) तथा गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के यशस्वी स्नातक आचार्य डॉ० वीरदेव बिष्ट ब्रह्मलीन श्री १००८ स्वामी वेदानन्द वेदवागीश के प्रधान शिष्य हैं। पूर्वीय संस्कृति के प्राध्यापक डॉ० बिष्ट एवं उनकी धर्मपरायणा पुण्यशीला धर्मपत्नी मेनुका बिष्ट द्वारा उनके स्व० पुत्र विक्रमादित्य बिष्ट की पुण्य स्मृति में स्थापित, विक्रमादित्य प्रतिष्ठान, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा प्रस्तुत यह सुमन उन दोनों की आयुष्मति पुत्रियों मदालसा तथा शैलजा की ओर से एक अनुपम भेंट है।

हम बिष्ट परिवार के उत्तरोत्तर उन्नति की हार्दिक मंगलकामना करते हैं।

सन् २००८ **—आचार्य ब्र० नन्दकिशोर**

दो शब्द

महर्षि मनु, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र, योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती—संसार के इन चार महापुरुषों का सर्वोत्तम सामाजिक दृष्टि से सर्वोच्च स्थान रहा है। आप इनको युग नाम से पुकार सकते हैं। ये चारों महापुरुष युग क्रान्तिकारी, ईश्वरभक्त, वेदों की परम्परा के अनुयायी थे।

मानवों के आदिपुरुष महर्षि मनु ने कहा है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (२.६) अर्थात् सम्पूर्ण वेद धर्म के मूलस्रोत हैं। **प्रमाणं परमं श्रुतिः** (२.१३) अर्थात् धर्म निश्चय में सर्वोच्चतम प्रमाण वेद हैं। महर्षि मनु ने मनुस्मृति में वेदों का गुणगान किया है। वे शिक्षाविद् और कानूनविद् थे। स्वयं वेदों का अनुसरण किया व दूसरों को अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। विश्व में जितने कानून-नियम चल रहे हैं, वह सब महर्षि मनु की ही देन है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने भी महर्षि मनु द्वारा प्रतिपादित नियमों का अनुसरण करते हुए प्रजा का संरक्षण किया और वेदों के अनुसार जीवन को व्यतीत किया। इसलिये वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये।

महर्षि मनु और मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की भाँति योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्रजी ने भी वेदों के अनुसार अपने जीवन को सार्थक किया। श्री कृष्ण ने गीता में कहा है—**वेदानां सामवेदोऽस्मि,** अर्थात् वेदों में मैं सामवेद हूँ। वे कर्मयोगी थे, अर्जुन को योगी और आर्य बनने की शिक्षा देते थे। इसलिये वे योगेश्वर कहलाये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों की ओर लौटो—ऐसा नारा दिया। वे अनेकानेक शास्त्रों के अध्ययन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।'' संसार में वैचारिक क्रान्ति लाने के लिये अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की। यह महर्षि दयानन्द जी की संसार को अनुपम देन है।

महाभारत युद्ध के पश्चात् वेद लुप्तप्राय हो गये थे। नास्तिकों की भरमार हो गई, अन्धानुकरण करनेवाले पाखण्डी इस देश में बढ़ गये, लोग ईश्वर, वेद, यज्ञ और सन्ध्या को भूल गये, वैदिक परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई। उस विकट परिस्थिति में युगपुरुष वेदोद्धारक महर्षि

दयानन्द सरस्वती जी ने पुनः वैदिक परम्परा को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिखकर जन–साधारण का ध्यान वेदों की ओर आकृष्ट किया। आज लाखों लोग सत्यार्थप्रकाश के सान्निध्य में अपने को कृत्यकृत्य कर रहे हैं।

आज हिमालय जैसे पर्वतीय क्षेत्र में आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के विचारों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी को ध्यान में रखकर नेपाली सत्यार्थप्रकाश मुद्रण की आवश्यकता जान पड़ी। सभी समस्याओं का समाधान सत्यार्थप्रकाश में है। सत्यार्थप्रकाश नेपाली में ''विक्रम प्रतिष्ठान'' अध्यक्ष डॉ० वीरदेव बिष्ट अमेरिका द्वारा प्रकाशित की जा रही है। विदित हो कि डॉ० साहब त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमाण्डो में प्रोफेसर व आचार्यपद को अलंकृत कर चुके हैं। काठमाण्डो से दक्षिण अफ्रिका के निमन्त्रण पर वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु आहूत किये गये। वहाँ वैदिक धर्म का बहुत प्रचार किया। तत्पश्चात् अटलण्टा अमेरिका में विगत कई वर्षों से वैदिक धर्म के प्रचार में लगे हुए हैं। उन्होंने अमेरिका में रहते हुए विक्रमादित्य प्रतिष्ठान की ओर से आर्यसमाज के कई विद्वानों और समर्पित कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया है। इस श्रेष्ठ कार्य में उनकी धर्मपत्नी मेनुका बिष्ट सपरिवार भरपूर सहयोग देती हैं। मैं विगत चार–पाँच वर्षों से नेपाली सत्यार्थप्रकाश के कम्प्यूटरीकरण में जुटा रहा। मेरे सामने प्रूफ शुद्धि–अशुद्धि की समस्या थी।

मैंने दो बार गुरुकुल विराटनगर नेपाली सत्यार्थप्रकाश पढ़ने के लिये भेजा, श्री कमल उप्रेती जी, पं० मेघप्रसाद दहाल और श्री आचार्य पीताम्बर शर्मा जी ने प्रूफ संशोधन किया। पुनः दूसरी बार भेजा, उन्होंने प्रूफ ठीक ढंग से नहीं देखा, तत्पश्चात् गुरुकुल विराटनगर के स्नातक ब्र० धनकुमार आचार्य ने दो–दो बार प्रूफ पढ़ा, अच्छा प्रयास किया है, एतदर्थ हार्दिक आशीर्वाद। प्रूफ पढ़ने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, विगत तीन मास से कठिनाइयों का काफी सामना करना पड़ा, श्री विजयकुमार झा, श्री ललित कुमार झा जी ने भगवती लेज़र प्रिंट्स के माध्यम से मुद्रण व्यवस्था शीघ्र करवाकर सहयोग किया। इन सभी महानुभावों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

आपका

आर्यसमाज का प्रहरी

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

प्राक्कथन

सामाजिक वैचारिक क्रान्तिका उद्घोषक महर्षि दयानन्द सरस्वतीद्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थहरूमा 'सत्यार्थप्रकाश' सर्वोत्कृष्ट र विशिष्ट महत्व को पूर्ण ग्रन्थ हो। यो ग्रन्थ लेख्नुको मुख्य उदेश्य सत्य र तथ्य कुरा प्रकाश पार्नु हो भन्ने कुरा स्वयं महर्षिले आफ्नो भूमिकामा लेख्नुभएकोछ। अविद्याकै कारण संसारमा विभिन्न मतमतान्तरहरू फैलिएका छन् र यिनका अनुयायीहरूले एक अर्काप्रति रिसराग द्वेष राख्ने र लड्ने–भिड्ने गरेको देखिन्छ। संसारमा सबैजना विद्वान् र गुणी भए सबैले सबैसँग प्रेमपूर्वक आचरण गरेर एक अर्काका विचारहरू सुने–सुनाएर एउटै सत्यमत सबैले मानेमा सबैको कल्याण बढ्दछ भन्ने यथार्थलाई उहाँले हृदयङ्गम गर्नुभयो। यसै यथार्थ अनुरूप उहाँले कुनै नयाँ मत, पन्थ वा सम्प्रदाय वनाउने विचारको सट्टा वेदप्रतिपादित सत्य–सिद्धान्तलाई प्रस्तुत गरेर सत्य ग्रहण र असत्य त्याग गर्ने प्रेरणा दिनु नै उचित ठान्नुभयो। यसका लागि उहाँले यस ग्रन्थमा अज्ञानी, स्वार्थी, दुराग्रहीहरूद्वारा गरिएको वेदादि शास्त्रहरूका मिथ्या अर्थको खण्डन गरेर युक्ति र प्रमाणहरूद्वारा सत्य अर्थमाथि प्रकाश पार्नुको साथै मानवमात्रलाई वेदादिशास्त्रनुकूल असल कुरा ग्रहण गर्ने र खराब कुरा छोड्ने उपदेश गर्नुभएको छ। ऋषिले पक्षपातरहित भएर नम्रतापूर्वक सबै मतका सही कुराहरू ग्रहण र मिथ्या कुराहरू परित्याग गर्नु पर्ने आवश्यकता औंल्याउनु भएको छ र यस कुरामा स्वदेशी वा विदशी बारे भेदभाव उहाँलाई स्वीकार्य छैन। यसै कारण ग्रन्थ आरम्भका एघार समुल्लासमा आफ्नो समाजमा रहेका असल–खराब कुराहरू विवेचन गरेर मात्र विदेशी सम्प्रदायहरूलाई समीक्षा गर्नु भएको छ। तर आफ्नो राष्ट्रीयता जगेर्ना गर्नु र स्वदेशप्रेम भावना राख्नु प्रत्येक देशवासीको पुनीत कर्तव्य हो भन्ने पनि महर्षिको मनसाय देखिन्छ।

महर्षि दयानन्दले ईश्वर, धर्म, जाति, मत, पन्थ, छुवाछूत, अन्धविश्वास आदिका नाममा धर्मान्धहरूले अज्ञानीहरूलाई फसाउने र सामान्य जनताको विवेकलाई कुण्ठित पार्ने गरेका घटनाहरू देख्नु भएको थियो। ढोंग, पाखण्ड, चमत्कार, जादू–टोना आदि अनाचार

बढिरहेको र पूजा–पाठ योग–ध्यान, मुक्ति परमात्माको दर्शन आदिका नाममा ठगीको विकास भैरहेको देखेर यी सबै कुरीतिहरू प्रति जनचेतना जागाउन ऋषिले यस ग्रन्थ ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध, पौराणिक, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सबै मत–मतान्तरहरू प्रमाण सहित विवेचना गर्नुभएको छ। यस ग्रन्थमा उहाँले धर्म, ईश्वर, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतकश्राद्ध, शिक्षापद्धति, वर्णाश्रमव्यवस्था, राजा–प्रजा र शासनपद्धति, जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि सबै विषयमा तार्किक विश्लेषण गर्नु भएको छ। उहाँले सबै विषयमा पूर्वाग्रहरहित भएर ठीकलाई ठीक र बेठीकलाई बेठीक भन्नु वा मान्नुपर्दछ भन्ने कुरा विशेष आग्रह गर्नु भएको छ।

ठूला–ठूला विद्वान्हरूद्वारा गहन अध्यन, अनुशीलन र अनुसन्धानका आधारमा धेरै विचारहरू विभिन्न भाषामा विभिन्न माध्यबाट प्रकाशित भई सकेका परिप्रेक्ष्यमा यस ग्रन्थवारे जति लेखे पनि थोरै हुन्छ, तापनि अत्यन्त संक्षेपमा भन्नुपर्दा—

''ईश्वरको स्वरूपलाई बुझ्न, अन्धविश्वास र पाख्णडको प्रतिकार गर्नु, सन्तानलाई सुशिक्षित पार्नु, गुण–कर्म–स्वाभाव अनुसार वर्णव्यवस्थलाई बुझ्न, आश्रम–व्यवस्थाको महत्त्व र गरिमालाई बुझ्न, राजनीतिका आवश्यक तत्वहरू बुझ्न, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना र उपासनागर्ने ठीक ठीक तरीका जान्न, ईश्वर, जीव र प्रकृतिका फरकलाई बुझ्न, संसारको उत्पत्ति, स्थिति र प्रलयवारे बुझ्न, बन्धन र मोक्षवारे बुझ्न, धर्मका सत्य स्वरूपलाई चिन्न, जताजतै देखापरेका मतमतान्तर वारे सत्य असत्य निर्णयका लागी, आफ्नो संस्कृतिलाई चिन्न, नवयुवकहरूका नैतिक चेतनाका लागि, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक र राजनैतिक चेतनाका लागि तथा विश्वभरि मानव धर्मका स्थापनाका लागि सत्यर्थप्रकाश अध्ययन उपयुक्त र आवश्यक छ'' भन्नु उचित हुनेछ।

२०४५ सालमा काठमाडौंमा नेपाल आर्य समाज केन्द्रिय कार्यालय संचालन भएदेखि नै यस महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश नेपाली भाषामा अनुवाद र प्रकाशनगर्ने प्रयास हुँदै आएको हो। यस केन्द्रिय कार्यालयका कर्णधार भू० पू० अञ्चलाधीश एवं श्री टेक बहादुर रायमाझीको प्रयास र आर्थिक सहयोगमा यस ग्रन्थको नेपाली भाषामा अनुवाद गराइएको र छपाउने प्रयास समेत भएको थियो। तर केही गैर—जिम्मेदार व्यक्तिका कारण ग्रन्थ छापिन सकेन र ग्रन्थ अनुवादको मूलप्रति पनि प्राप्त हुन सकेन। उपलब्ध प्रति नेपाली भाषा–साहित्यका प्रसिद्ध विद्वान् श्री

दैवज्ञ राज न्यौपानेलाई देखाउँदा उहाँले परिश्रमपूर्वक अवलोकन गरेर 'धेरै ठाउँमा छुटेको, अनेक हिन्दी शब्दहरू अनुवाद नभएको र सर्वसाधारणले बुझ्न कठिन वाक्य गठन भएका कारण पुन: परिमार्जन आवश्यक छ' भन्ने टिप्पणी गर्नुभएका कारण र सरसर्ती हेर्दा अनेक ठाउँमा अनुवाद ऋषि दयानन्दको मूलभावको विपरीत पनि देखिएकाले श्री रायमाझीज्यू र ने. आ. स. का वर्त्तमान केन्द्रिय अध्यक्ष श्री गोकुल प्र० पोखरेलज्यूको मनसाय अनुकूल सरस्वती ब. क्याम्समा नेपाली विभागका उपप्राध्यापक श्री कृष्ण प्रसाद पौडेलज्यूको सहयोग लिई उक्त अनुवाद परिमार्जन गर्ने नर्णय भयो। तर भाषा सच्याउने प्रयास गर्दा वाक्य झन् कृत्रिम हुने, भाषा प्रवाहपूर्ण बनाउन कठिन हुने र परिश्रम भने धेरै लाग्ने देखिएकोले त्यस अनुवादलाई पन्छाएर सम्पूर्ण ग्रन्थको छुट्टै पुनः अनुवाद गर्नु पर्ने अनुभव भयो। अतः श्री कृष्ण प्रसाद पौडेलज्यूको निर्देशनमा ग्रन्थ अनुवाद र छपाउने कार्य संगसँगै गरियो। प्रुफ हेर्ने र प्रेसकपी तयार पार्ने गरी दोहोरो कार्य, ग्रन्थकारका मूलभावमा फरक पर्ला भन्ने डर, ग्रन्थकारका हिन्दी वाक्यमा पनि कतै कतै जटिलता र यी सबै परिस्थितिका बीचमा अनुवादको जटिल स्थितिका कारण अझै पनि कतै कतै भाषा सरलता, सरसता वा प्रवाहमा व्यवधान देखिनु स्वाभाविकै हो। यद्यपि भावमा फरक नपर्ने गरी भाषालाई सकभर सजिलो बनाउने प्रयास भएकै छ।

ग्रन्थ अनुवाद सकभर प्रचलित नेपाली शब्दहरूकै प्रयोगगर्ने प्रयास गरिएको छ, तर पनि कतै कतै विदेशी भाषाका शब्दहरूलाई जस्ता त्यस्तै राख्नुपरेको छ। त्यस्ता पहिलो पटक आएका शब्दको अर्थ कोष्ठकमा वा=चिन्ह दिएर लेखेको छ भने त्यही शब्द दोहोरिएमा अर्थ लेख्ने पर्ने बाध्यताको उपेक्षा गरिएको छ। आफैंलाई मूल शब्दको भाव छर्लङ्ग नभएको जस्तो लागेका ठाउँमा त्यस शब्द पछाडि कोष्ठमा प्रश्न सूचक चिन्ह (?) राखिएको छ। यस्तो अवस्था खासगरी चौधौं समुल्लासमा आइपरेको छ। कुरान आदि त्यति अध्यनका अभावा र अन्य सम्बन्धित वद्वान्हरूसँग सम्पर्क राख्ने समय नभएका अवस्थामा यसो हुनु स्वभाविकै थियो। त्यस्तो कुनै ठाउँमा मूल भावमा फरक पर्न गएको देखिएमा विद्वान् पाठकहरूबाट औंल्याइने अपेक्षा छ। ते–हौं समुल्लासका सबै समीक्ष्यांशहरू नेपाल बायबल सोसायटीद्वारा सन् १९९२ मा प्रकाशित बायबल जस्ताको त्यस्तै राखिएको छ। सत्यार्थ

प्रकाशको हिन्दी र उक्त नेपालीको पाठमा केही फरक देखिएको भए तापनि मूलभावमा खास फरक परेको छैन।

सकभर शुद्ध र सरल रूपमा ग्रन्थकारको यथार्थ अभिप्राय बुझाउने प्रयास गरिएतापनि मानवीय स्वभावानुकूल वा अज्ञानतावश भूल वा कमी रहन गएको पाठकवर्गबाट अवश्य सूचित हुनेछ भन्ने विनम्र अनुरोध छ।

आर्थिक सहयोग गर्ने महानुभावहरूमा ने०आ०स०का० का संस्थापक श्री टेक बहादुर रायमाझी, उपाध्यक्ष श्री तिलक बहादुर कार्की, मनार्थ अध्यक्ष श्री उग्रसेन अग्रवाल, महासचिव श्री कालिका प्रसाद रिमाल, उद्योगपति श्री गोपाल राय संघई, श्री कल्याण के०सी० सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नयाँ दिल्ली र ब्रह्मचारी नन्दकिशोरजी द्वारा प्रेरित विभिन्न भारतीय महानुभावहरू पनि हुनुहुन्छ। नेपाल आर्य समाज उक्त माहानुभाव प्रति आदरभाव र आभार व्यक्त गर्नुको साथै उहाँहरूको यश, सुस्वास्थ्य, दीर्घायु, धनधान्यको वृद्धि र समाज सेवा कार्यमा निरन्तर संलग्नताको हार्दिक कामना गर्दछ। दाताहरूको फोटोसहित संक्षिप्त परिचय (उपलब्ध भएसम्म) यस ग्रन्थका अन्तमा दिइएको छ।

नेपाल आर्य समाजका केन्द्रिय अध्यक्ष श्री गोकुल प्रसाद पोखरेलज्यूबाट ग्रन्थ प्रकाशन कार्यमा समय समय दिशा नर्देशनद्वारा महत्वरूर्ण सहयोग प्राप्त भएको छ। मेरा घनिष्ठ मित्र श्री तारानाथ मैनाली र श्री के०एल० श्रेष्ठको सहयोग पनि अविस्मरणीय छ। प्रेमसँग सम्पर्क र दौडधूपका कार्यमा आर्य समाजका सेवक तेज प्रसाद वाग्ले ले गरेको परिश्रम सराहनीय छ। ग्रन्थ छपाइमा आर्य छापाखाना प्रा० लि० का श्री केशव लाल श्रेष्ठ र कर्मचारीवर्गको सहयोग र मिठो व्यवहारका लागि आर्य छापाखाना प्रा० लि० परिवार धन्यवादको पात्र छ।

माधव प्रसाद उपाध्याय
सदस्य—सचिव
नेपाल आर्य समाज, केन्द्रिय कार्यालय
बत्तिसपुतली, काठमाडौं

नववर्ष, २०५१।१।१
अप्रैल १४, १९९४ ई०

सत्यार्थप्रकाशको विषयसूची

इति

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

भूमिका

मैले यो 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ लेख्दा र त्यस अघि पठन पाठन र बोल्ने भाषा संस्कृत नै हुँदा र जन्मभूमिको भाषा गुजराती हुनाले मलाई हिन्दी भाषाको विशेष ज्ञान थिएन, त्यसैले भाषामा अशुद्धि हुन गएको थियो। अब भाषा बोल्ने र लेख्ने अभ्यास भई सकेकोले यस ग्रन्थलाई भाषा व्याकरण अनुसार सच्याएर दोस्रो पटक छपाइएको छ। त्यसैले कतै कतै शब्द वाक्य रचानामा फरक पर्नु स्वाभाविकै हो। किनभने यस्तो फरक नगरी भाषा शैली ठीक हुन कठिन थियो। तर अर्थको भेद गरिएको छैन, बरू बढी लेखिएको छ। पहिलो छपाईंमा रहन गएका त्रुटिहरूलाई सच्चाई शुद्ध पारिएको छ।

यो ग्रन्थ चौध समुल्लास अर्थात् १४ विभागमा रचिएको छ। यसमा १० समुल्लास पूर्वार्द्ध र ४ उत्तरार्द्धमा रहेका छन्। अन्तका दूई समुल्लास र त्यसपछि स्वसिद्धान्त कुनै कारणले पहिले छापिएका थिएनन् अब ती पनि छपाइएका छन्।

१. प्रथम समुल्लासमा ईश्वरका ओङ्कार आदि नामहरूको व्याख्या।
२. दोस्रो समुल्लासमा सन्तानहरूको शिक्षा।
३. तेस्रो समुल्लासमा ब्रह्मचर्य, पठन पाठन व्यवस्था, सत्य र असत्य ग्रन्थहरूका नाम र पढने पढाउने पढाउने रीति।
४. चौथो समुल्लासमा विवाह र गृहस्थ आश्रमको व्यवहार।
५. पाँचौ समुल्लासमा वानप्रस्थ र संन्यास आश्रमको विधि।
६. छैठों समुल्लासमा राजधर्म।
७. सातौं समुल्लासमा वेद र ईश्वरका विषय।
८. आठौं समुल्लासमा जगत् उत्पत्ति, स्थिति र प्रलय।
९. नवौं समुल्लासमा विद्या, अविद्या, बन्ध र मोक्षको व्याख्या।
१०. दशौं समुल्लासमा आचार, अनाचार र भक्ष्य—अभ्यक्ष विषय।
११. एघारौं समुल्लासमा आर्यावर्त्तीय मतमतान्तरको खण्डन मण्डन विषय।
१२. बाह्रौं समुल्लासमा चारवाक, बौद्ध र जैनमतको विषय।
१३. तेह्रौं समुल्लासमा ईसाई मत विषय।
१४. चौधौं समुल्लासमा मुसलमानहरूका मतको विषय।

र चौध समुल्लासको अन्तमा आर्यहरूका सनातन वेदोक्त मत व्याख्या लेखिएको छ जसलाई म पनि यथावत् मान्दछु।

मेरो यो ग्रन्थ लेख्नुको मुख्य उद्देश्य सत्य र तथ्य कुरामा प्रकाश पार्नु हो, अर्थात् सत्यलाई सत्य र मिथ्यालाई मिथ्या नै प्रतिपादन गर्नु सत्य अर्थको प्रकाश सम्झेको छु। त्यो सत्य भनिदैन जो सत्यको ठाउँमा असत्य र असत्यको ठाउँमा सत्यको प्रकाश गरीयोस्। तर जुन पदार्थ जस्तो छ, त्यसलाई त्यस्तै भन्नु, लेख्नु र मान्नु सत्य भनिन्छ। पक्षपाती व्यक्ति आफ्नो असत्यलाई पनि सत्य र अरू विरोधीमतवालाका सत्यलाई पनि असत्य सिद्ध गर्न तर्फ लाग्दछन। त्यसैले त्यस्ता व्यक्ति सत्यमतलाई प्राप्त गर्न सक्तैना। त्यसकारण विद्वान् आप्त पुरुषहरूले उपदेश वा लेखद्वारा सबै मानिसका अगाडि सत्य र असत्य यथार्थ स्वरूप प्रष्ट्याई दिनु नै उनीहरूको मुख्य काम हो। जसबाट मानिसहरू आफ्नो हित वा अहित आफैं बुझेर सत्य अर्थ ग्रहण र मिथ्या अर्थ परित्याग गरी सदा आनन्दमा रहन सकून्।

मनुष्यको आत्मा सत्य र असत्यलाई जान्ने भए तापनि आफ्नो प्रयोजन सिद्धि, हठ, दुराग्रह र अविद्या आदि दोषहरूका कारण सत्यलाई छोडी असत्यतर्फ लुक्तछ। तर यस ग्रन्थमा यस्तो कुरा राखिएको छैन। कसैको मन दुखाउने अथवा कसैको हानिगर्ने तात्पर्य पनि छैन। मनुष्य जातिको उन्नति र उपकार होस् मानिसहरू सत्य र असत्यलाई बुझेर सत्यको ग्रहण र असत्य त्याग गरून् भन्नु नै यस ग्रन्थको तात्पर्य हो। किन भने सत्य उपदेश विना मनुष्य जातिको उन्नतिहुने अरू कुनै उपाय छैन।

यस ग्रन्थमा विभन्न कारणले रहन गएका त्रुटिहरूलाई कसैले औंल्याई दिएमा अवश्य नै सच्याइने छ, तर विरोधका नियतले गरिएको पक्षपात, अन्याय शङ्का या खण्डन–मण्डन तर्फ ध्यान दिइने छैन। मनुष्य मात्रको भलाईका लागि प्राप्त उचित सुझाव भने अवश्य स्वीकार गरिने छ।

यद्यपि हिजोआज प्रत्येक मतमा धेरै विद्धानहरू लागेका छन्। उनीहरूले निष्पक्ष भएर सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जुन कुरा सबैको अनुकूल सबैमा सत्य छन् तिनलाई ग्रहण र जुन कुरा एक अर्का विरुद्ध छन् तिनलाई त्यागेर परस्पर प्रेम पूर्वक व्यवहार गर्ने गराउने गरेमा जगत्को पूर्ण कल्याण हुनेछ। किनकि विद्धानहरूका विरोधले अविद्धान्हरूमा विरोध बढ्व गई अनेकौं दुःखहरू वृद्धि र सुख हानि

हुन्छ। स्वार्थीहरूलाई प्रिय हुने यसै हानिले सबै मानिसहरूलाई दु:ख सागरमा डुबाएको छ।

यी मध्ये जो कोही सार्वजनिक हितलाई लक्ष्य बनाई लागेका हुन्छन्, स्वार्थीहरू त्यसका विरोधमा अनेक विघ्न बाधा उत्पन्न गर्दछन्। तर ‘सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान:’ मुण्डकोपनिषद ३।१।६ अर्थात् सदा सत्यको जीत र असत्यको हार हुन्छ साथै सत्यद्वारा नै विद्वान्हरूको मार्ग विस्तृत हुन्छ। यसै दृढ निश्चय अवलम्वन गरेर आप्त पुरुष कहिल्यै परोपकार देखि उदसीन भई सत्य अर्थ प्रकाश गर्न पछि हट्‌तैनन्।

यो सत्य हो कि **‘यदत्तग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्’** गीता १८।३७ यो गीताको वचन हो। यसको अभीप्राय हो विद्या र धर्मप्राप्तिका कार्य आरम्भमा विष तुल्य र पछि अमृत समान हुन्छन्। यस्ता कुराहरू मनमा राखेर मैले यो ग्रन्थ रचेको छु। श्रोता वा पाठकगण पनि पहिले प्रेमपूर्वक हेरेर यस ग्रन्थको सत्य सत्य तात्पर्य बुझेर उचित व्यावहार गरून्।

यस ग्रन्थमा सबै मतका सही कुरा विरोध रहित हुनाले स्वीकर र मतमतान्तरका मिथ्या कुराहरू खण्डन गरिने र सबै मतमतान्तरहरूका गुप्त वा प्रकट गलत कुराहरूलाई प्रकाशित गरेर विद्वान् अविद्धान् सबै साधारण मानिसहरू सामु राख्ने उद्देश्य रहेको छ, जसबाट सबै जना सबैसँग विचार विर्मश गरी परस्पर प्रेम पूर्वक सत्य मतमा लागून्।

यद्यपि म आर्यावर्त्त देशमा जन्मेकोर बसेको छु तापनि जसरी यस देशका मतमतान्तरहरूका झुठा कुराहरू पक्षपात नगरी यस्ताको तस्तै प्रकाश गर्दछु, त्यसै गरी अरू देश वा मतावलम्बीहरूसँग पनि व्यवहार गर्दछु, जस्तो स्वदेशीहरूसँग मनुष्योन्नतिका विषय मा व्यवहार गर्छु त्यस्तै विदेशीहरूसँग पनि गर्दछु। तथा त्यस्तै सबै सज्जनहरूले पनि व्यावहार गर्नु उचित हुन्छ। किनकि म पनि कुनै एकको पक्षपाती भएको भए जसरी आजभोली आफ्नो मतको प्रशंसा र समर्थन तथा अरूका मतको निन्दा, हानि र प्रतिबन्ध गर्न तत्पर हुन्छन् त्यसै गरी म पनि हुने थिएँ। तर यस्ता कुरा मानवता बाहिरका हुन्। जसरी पशु बलवान भएर निर्बललाई दु:ख दिने र मार्ने पनि गर्छन् कुनैले मनुष्य शरीर पाएर त्यस्तै कर्म गर्छन् भने ती मनुष्य स्वभावयुक्त न भई पशुतुल्यै हुन्। जो बलवान् भएर निर्बलहरूलाई रक्षा गर्दछ उही मनुष्य भनिन्छ अनि जो स्वार्थी भई अरूलाई हानि मात्र गरिरहन्छ त्यो त पशुहरूको

पनि दाजु हो।

आर्यावर्त्तमा बस्नेहरूका बारेमा खासगरी एघारौं समुल्लास सम्म लेखिएको छ। यी समुल्लासहरूमा जो सत्यमत प्रकाशित गरिएको छ त्यो वेदोक्त हुनाले मलाई सर्वथा मान्य छ अनि जो नयाँ पुराण, तन्त्र आदि ग्रन्थमा भनिएका कुराहरू खण्डन गरिएको छ ती सबै त्याग्नै पर्ने छन्।

बाह्रौं समुल्लासमा लेखिएको चारवाक मत यद्यपि अहिले अस्ताएको सरह छ र यो चारवाक अनीश्वरवाद आदिमा बौद्ध र जैनसँग निकै सम्बन्ध राख्दछ। यो चारवाक सबैभन्दा ठूलो नास्तिक हो। यसको चेष्टालाई रोक्नु आवश्यक छ, किनभने मिथ्या कुराहरूलाई न रोकिएमा संसारमा धेरै अनर्थहरू बढ्‌दछन्। चारवाक मत र बौद्ध तथा जैनको मत पनि बाह्रौं समुल्लासमा संक्षेपमा लेखिएको छ। बैद्ध तथा जैनीहरूको पनि चारवाकको मतसँग मेल छ र केही मतभिन्नता पनि छ। यसैले जैनीहरूको भिन्नै शाखा मानिन्छ। त्यो भेद बाह्रौं समुल्लासमा देखाइएको छ। बौद्ध र जैनमत विषय पनि लेखिएको छ।

यिनमा बौद्धहरूका दीपवंश आदि प्राचीन ग्रन्थहरूमा बौद्धमत संग्रह, सर्वदर्शनसंग्रहमा देखाइएको छ, त्यहींबाट यहाँ लेखिएको हो। अनि जैनीहरूका निम्नलिखित सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तक छन्। उनमा—

चार मूलसूत्र, जस्तै—१. आवश्यकसूत्र, २. विशेष आवश्यकसूत्र, ३. दशवैकालिकसूत्र, र ४. पाक्षिकसूत्र।

एघार अंग, जस्तै—१. आचरांगसूत्र, २. सुगडांगसूत्र, ३. थाणांगसुत्र, ४. समवायांगसुत्र, ५. भगवतीसूत्र, ६. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७. उपासकदशासूत्र, ८. अन्तगडदशासुत्र, ९. अनुत्तरोववाईसुत्र, १०. विपाकसूत्र, र ११. प्रश्नव्याकरणसूत्र।

बाह्र उपांग, जस्तै—१. उपवाईसूत्र, २. रावप्सेनीसूत्र, ३. जीवाभिगमसूत्र, ४. पन्नगणासूत्र, ५. जम्बुद्धीपपन्नतीसूत्र, ६. चन्दापन्नतीसूत्र, ७. सूरपन्नतीसूत्र, ८. निरियावलीसूत्र, ९. कप्पियासूत्र, १०. कपवड़ीसयासूत्र, ११. पूप्पियासूत्र, र १२. पुप्पचूलियासूत्र।

पाँच कल्पसूत्र, जस्तै—१. उत्तराध्ययनसूत्र, २. महानिशीथलघु–वाचनासूत्र, ३. मध्यमवाचनासूत्र, ४. पिंडिनिरुक्तिसूत्र, र ६. पर्य्यूषणा–सूत्र।

दश पयन्नासुत्र, जस्तै—१.चतुस्सरणसूत्र, २. पञ्चखाणसूत्र, ३.

तदुलवैयालिकसूत्र, ४. भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५. महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६. चन्दानिजयसूत्र, ७. गणीविजयसूत्र, ८.मरणसमाधिसूत्र, ९. देवेन्द्रस्त–वनसूत्र, र १०. संसारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, योगोद्वारसूत्र पनि प्रामाणिक मानिन्छन्।

पाँच पञ्चाङ्ग, जस्तै—१.पहिला सबै ग्रन्थहरूको टीका, २. निरुक्ति, ३. चरणी, ४. भाष्य, यी चार अवयव र सबै मूल मिलेर पञ्चाङ्ग भनिन्छ।

यिनमा ढूंढियाहरू अवयवलाई मान्दैनन् र यी बाहेक अरू पनि अनेक ग्रन्थलाई जैनीहरू मान्दछन्। यिनीहरूको मतको विशेष विचार बाह्रौं समुल्लासमा हेर्नु होला।

जैनीहरूका ग्रन्थहरूमा लाखौं पुनरुक्त दोष छन् र आफ्नो ग्रन्थ अन्य मत मान्नेका हातमा परेको अथवा छपाइएको भए सो ग्रन्थलाई नै अप्रमाण मान्ने पनि केही जैनीहरूको स्वभाव छ। यो उनीहरूको मिथ्या कुरो हो। किनभने कोही मान्ने र कोही न मान्ने हुँदैमा कुनै ग्रन्थ जैनमत बाहिर हुन सक्दैन। कुनै ग्रन्थलाई कोही पनि नमान्ने र कहिल्यै कुनै जैनीले नमाने भए त्यो अग्राह्य हुन सक्तछ। तर त्यस्तो कुनै ग्रन्थ छैन जसलाई कुनै पनि जैनी न मान्दो हो। जुन व्यक्ति जुन ग्रन्थलाई मान्दछ, त्यस ग्रन्थ विषयक खण्डन मण्डन पनि त्यसैको लागि मानिन्छ। तर धेरै यस्ता पनि छन् जो त्यस ग्रन्थलाई जान्ने मान्ने भएर पनि सभा वा संवादमा आफू बदलिन्छन्। यसैकारण जैनीहरू आफ्ना ग्रन्थलाई लुकाई राख्दछन्। भिन्नमतका मानिसलाई न दिन्छन्, न सुनाउँछन् र पढाउँछन्। किनभने जैनीहरूका ग्रन्थमा भरिएका असम्भव कुराहरूबारे ठीक उत्तर तिनीहरू कसैले पनि दिन सक्दैनन्। यसको सही उत्तर झुठो कुरालाई छोडिदिनु हो। तेह्रौं समुल्लासमा ईसाईहरूका मतको बारेमा लेखिएको छ। यिनीहरू बायबिललाई आफ्नो धर्मपुस्तक मान्दछन्। यिनीहरूको खास जानकारी उहीं तेह्रौं समुल्लासमा हेर्नुहोला। र चौधौं समुल्लासमा मुसलमानहरूका मत विषय लेखिएको छ। यिनीहरू कुरानलाई आफ्नो मतको मूलपुस्तक मान्दछन्। यिनीहरूको पनि व्यवहारको विशेष जानकारी चौधौं समुल्लासमा हेर्नुहोला। त्यसपछि वैदिक मत विषयमा लेखिएको छ। जो ग्रन्थकर्ताको तात्पर्य। यी चारै कुरामाथि ध्यान दिएर ग्रन्थ पढ्ने व्यक्तिले मात्र ग्रन्थको वास्तविक मर्मलाई बुझ्दछ।

आकांक्षा—कुनै विषयमा वक्ता र वाक्यमा प्रयोग भएका

पदहरूको परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध।

योग्यता—कार्य सम्पादन गर्न सक्ने क्षमता भएका पदहरू। जस्तै पानीले सिञ्चु।

आसत्ति—परस्पर सम्बन्ध पदहरूलाई उपयुक्त ठाउँमा प्रयोग गर्नु।

तात्पर्य—वक्ता वा लेखकले जसको लागी बोलेको वा लेखेको छ, त्यसैसँग त्यस बोलाई वा लेखाईलाई सम्बन्ध गर्नु।

धेरैजसो हठी दुराग्रही व्यक्ति वक्ता वा लेखकको अभिप्राय विरुद्ध कल्पना गर्ने गर्दछन् खासगरी मतावलमबी व्यक्तिहरू। किनभने आफ्नो मतप्रतिको ढिपीले तिनीहरूको बुद्धि अन्धकारमा परेर नष्ट भएको हुन्छ। यसैले जसरी म पुराण, जैनीहरूका ग्रन्थ, बायबिल र कुरानलाई पहिले नै नराम्रो दृष्टिले नहेरी तिनमा रहेका गुणहरू ग्रहण र दोषहरू त्याग तथा अन्य मनुष्यजातिको उन्नतिका लागि प्रयत्न गर्दछु, त्यस्तै सबैले गर्नु उचित छ।

यी मतहरूका अलि–अलि मात्र दोष देखाइका छन् जसलाई देखेर मनुष्यहरू सत्य र असत्यमत निर्णय गर्नु सकून् र सत्य ग्रहण तथा असत्य त्याग गर्न, गराउन समर्थ होऊन्। किनभने एउटै मनुष्यजातिमा झुक्याएर, भड्काएर, एक अर्काको शत्रु बनाएर, लडाई भीडाई मार्नु विद्वान्हरूको स्वभाव विरुद्ध हो। यद्यपि यस ग्रन्थलाई देखेर अविद्वान्हरू उल्टो विचार गर्ने छन्, तर बुद्धिमान् व्यक्ति यसको अभिप्राय उचितरूपमा बुझ्ने छन्। यसैले म आफ्नो प्रयत्न सफल सम्झन्छु र आफ्नो अभिप्राय सबै सज्जनहरूसामु राख्दछु। यसलाई पढेर र पढ्न लगाएर मेरो श्रमलाई सफल पार्नुहोला। यसै प्रकार पक्षपात नगरी सत्य अर्थ प्रकाश गर्नु मेरो वा सबै महानुभावहरूको मुख्य कर्त्तव्य कर्म हो।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा आफ्नो कृपाले यस आशयलाई विस्तृत र चिरस्थायी गरून्।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु।

॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणाजीका उदयपुर, **(स्वामी) दयानन्द सरस्वती**
भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत् १९३९ दयानन्दसरस्वती

ओ३म्

अथसत्यार्थप्रकाशः

श्रीयुक्तदयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः

दयाया आनन्दो विलसति परस्स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यशरणा।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रिपरमा,
सको दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः॥ १॥
सत्यार्थप्रकाशाय ग्रन्थस्तेनैव निर्मितः।
वेदादिसत्यशास्त्राणां प्रमाणैर्गुणसंयुतः॥ २॥
विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
प्रियोऽत्र विद्यां सुकरोति तात्त्विकीम्।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः॥ ३॥
न ततः फलमस्ति हितं विदुषो,
ह्यधिकं परमं सुलभन्नु पदम्।
लभते सुयतो भवतीह सुखी,
कपटी सुसुखी भविता न सदा॥ ४॥
धर्मात्मा विजयी स शास्त्रशरणो विज्ञानविद्यो वरो-
ऽधर्मेणैव हतो विकारसहितोऽधर्मस्सुदुःखप्रदः।
येनाऽसो विधिवाक्यमानमननात् पाखण्डखण्डः कृत-
स्सत्यं यो विदधाति शास्त्रविहितन्धन्योऽस्तु तादृग्घि सः॥ ५॥[1]

---

१. ये श्लोक सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की मूलप्रति में विषयसूची के पश्चात् लिखे हुये हैं। महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार श्लोक लिखने की शैली मिलती है। ये श्लोक प्रथम और द्वितीय संस्करण में प्रकाशित होने से रह गये थे, इसीलिये यहां प्रकाशित किये जा रहे हैं।
—**सम्पादक**

ओ३म्

अथ सत्यार्थप्रकाशः

पहिलो समुल्लासः

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।

ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥ १॥ —तै० आ० ७।१

अर्थ—(ओ३म्) यो ओंकार शब्द परमेश्वरको सर्वोत्तम नाम हो। यसमा अ, उ र म् तीन अक्षर मिलेर एक 'ओ३म्' शब्द बनेको छ। यस एक नामबाट परमेश्वरका धेरै नाम आउँछन्। जस्तै अकारबाट विराट्, अग्नि र विश्व आदि, उकारबाट हिरण्यगर्भ, वायु र तैजस् आदि, मकारबाट ईश्वर, आदित्व र प्राज्ञ आदि नाम वाचक र ग्राहक हुन्छ। प्रकरण अनुसार यी सबै नाम परमेश्वरका नै हुन, भन्ने व्याख्या वेदादि सत्यशास्त्रहरूमा गरिएको छ।

प्रश्न—परमेश्वर भन्दा भिन्नै अर्थ वाचक विराट् आदि नाम किन होइनन्? ब्रह्माण्ड, पृथ्वी आदि भूत, इन्द्र आदि देवता अनि वैद्यकशास्त्रमा सुँठो आदि औषधिहरूका पनि यी नाम हुन् वा होइनन्?

उत्तर—हुन्, तर परमात्माका पनि हुन्।

प्रश्न—यी नामहरूले देवहरू मात्र ग्रहण गर्छौ वा गर्दैनौ?

उत्तर— तपाईले ग्रहण गर्ने के प्रमाण छ?

प्रश्न—सबै देवहरू प्रसिद्ध र उत्तम पनि छन्। यसैले म उनलाई ग्रहण गर्दछु।

उत्तर—के परमेश्वर अप्रसिद्ध र ऊ भन्दा उत्तम पनि छ? फेरि यी नाम परमेश्वरका पनि किन मान्दैनौ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध होइन र समान पनि कोही छैन भने ऊ भन्दा उत्तम को कसरी हु सक्ला? यसैले तपाईको यो भनाई सत्य छैन किनभने तपाईको यस भनाइमा धेरै दोषहरू पनि आउँछन्। जस्तै "**उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थतं याचत इति बाधितन्यायः।**" कसैले कसैको लागि खानेकुरा अगाडि

राखेर खानुहोस् भन्दा त्यो नखाएर न भएको खानेकुरा खोज्न यताउति हिंड्ने व्यक्तिलाई बुद्धिमान् मान्न सकिन्न। किनभने त्यो व्यक्ति प्राप्त पदार्थलाई छोडी अप्राप्तका खोजीमा श्रम गर्दछ। यसले जसरी त्यो व्यक्ति बुद्धिमान होइन, त्यस्तै तपाईको भनाइ भयो। किनभने तपाई यी विराट् आदि नामहरू प्रसिद्ध प्रमाण सिद्ध परमेश्वर र ब्रह्माण्ड आदि उपस्थित अर्थलाई छोडेर असम्भव र अनुपस्थित देव आदिलाई लिन श्रम गरिरहनु भएको छ, यसमा कुनै पनि प्रमाण वा युक्ति छैन। जसको जहाँ प्रकरण छ, त्यहाँ त्यहि ग्रहण गर्नु पर्छ भन्नु होला। जस्तै कसैले कसैलाई भन्यो—'**हे भृत्य, त्वं सैन्धवमानय**' अर्थात् तँ सैन्धव लिएर आईन। तब उसले समय अर्थात् प्रकरण हेर्नु पर्छ। किनभने सैन्धव नाम दुई पदार्थको छ, एक घोडाको र अर्को नूनको। आफ्नो मालिकको जाने समय भए घोडा र खाने समय भए नून ल्याउनु उचित हुन्छ। हिंड्ने वेलामा नून र खाने वेलामा घोडालाई ल्याएमा त्यसको मालिक रिसाएर भन्नेछ—तँ मूर्ख रहेछस्। हिंड्नेवेलामा नून र खाने समयमा घोडा ल्याउनुको के तात्पर्य थियो? तँ प्रकरण जान्ने रहेनछस्। नत्र जुन बेला जे ल्याउनु पर्ने हो त्यही ल्याउँथिस्। तैंले प्रकरणको विचार गर्नु आवश्यक थियो। त्यो तैंले गरिनस्। यसैले तँ मूर्ख होस्, मेरो अगाडिबाट गइहाल्। यसबाट के सिद्ध भयो भने जहाँ जुन पदार्थ ग्रहण गर्नु उचित हुन्छ त्याहाँ त्यसैको अर्थ लिनु पर्छ। यस्तै हामी र तपाँई सबैले मान्नु र गर्नुपर्छ।

अथ मन्त्रार्थः

ओं खम्ब्रह्म॥ १॥ —यजुर्वेद ४०।१७

हेर्नुहोस्, वेदमा यस्ता प्रकरणमा 'ओम्' आदि परमेश्वरका नाम छन्।

ओमित्येतदक्षरमुद्‍गीथमुपासीत॥ २॥

—छान्दोग्य उपनिषत् १।१

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्॥ ३॥

—माण्डूक्य

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ ४॥

—कठोपनिषत्, वल्ली २। नं० १५

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥ ५॥

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥ ६ ॥

—मनुस्मृति १२।१२२–१३२

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः॥ ७॥

—कैवल्य उपनिषत् (तै० उ० ३।१८)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ८ ॥

—ऋग्वेदे मण्डले १। सूक्त १६४। मन्त्र ४६॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः॥ ९ ॥

—यजुर्वेद अध्याय १३। मन्त्र १८॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य्यमरोचयत्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥ १० ॥

—सामवेद प्रपाठक ७। त्रिक ८। मन्त्र २॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ११ ॥

—अथर्ववेदे काण्ड ११। प्रपा० २४। अ० २। मं० १॥

अर्थ—यस्ता प्रमाणहरूमा ओङ्कारादि नामहरूबाट परमात्मा ग्रहण हुन्छ भन्नु नै यी प्रमाणहरूलाई यहाँ लेख्नुको उद्देश्य हो। तथा परमेश्वरको कुनै पनि नाम निरर्थक छैन, जस्तो लोकमा दरिद्री आदि धनपति आदि नाम हुन्छन्। यसबाट के सिद्ध हुन्छ भने कतै गौणिक, कतै कार्मिक र कतै स्वाभाविक अर्थका वाचक हुन्छन्।

'ओम्' आदि नाम सार्थक हुन्। जस्तै—**(ओं खं.) 'अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वोभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म,** रक्ष गर्ने हुनाले **'ओ३म्,'** आकाशजस्तै व्यापक हुनाले **'खम्'** र सबैभन्दा ठूलो हुनाले **'ब्रह्म,'** ईश्वरका नाम हुन्॥ १ ॥

(ओमित्ये०) 'ओम्' जसको नाम हो र जो कहिल्यै नष्ट हुदैंन, उसैको उपासना गर्नु उचित छ, अरूको होइन॥ २ ॥

(ओमित्ये०) वेदादि सबै शास्त्रमा परमेश्वरको मुख्य र आफ्नो नाम **'ओ३म्'** भनिएको छ, अरू सबै गौणिक नाम हुन्॥ ३ ॥

(सर्वे वेदा०) सबै वेद र धर्मानुष्ठानरूपी तप जसलाई भन्ने र

मान्ने गर्छन्, जसलाई प्राप्तगर्ने इच्छाले ब्रह्मचर्याश्रम पालन गरिन्छ, उसको नाम **'ओ३म्'** हो॥ ४॥

(प्रशासिता) सबैलाई शिक्षा दिने, सूक्ष्मभन्दा सूक्ष्म, स्वप्रकाश–स्वरूप र समाधिस्थ बुद्धिले मात्र जान्न सकिने तत्वलाई परमपुरुष जान्नु पर्छ॥ ५ ॥

र स्वप्रकाश हुनाले **'अग्नि,'** विज्ञान स्वरूप हुनाले **'मनु,'** सबैको पालन गर्नाले **'प्रजापति,'** परम ऐश्वर्यवान् हुनाले **'इन्द्र,'** सबैका जीवनको मूल हुनाले **'प्राण'** तथा सदा व्यापक हुनाले **'ब्रह्म,'** परमेश्वरका नाम हुन्॥ ६ ॥

(स ब्रह्मा स विष्णु०) सारा जगत् बनाउनाले **'ब्रह्मा,'** सर्वत्र व्यापक हुनाले **'विष्णु।'** दुष्टलाई दण्ड दिई रुवाउनाले **'रुद्र',** मङ्गलमय र सबैको कल्याण गर्ने हुनाले **'शिव,' 'यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्'** सर्वत्र व्याप्त अविमाशी हुनाले **'अक्षर,' 'यः स्वयं राजते स स्वराट्'** स्वयं प्रकाशरूप हुनाले **'स्वराट'** र **'योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्ता स कालाग्नरीश्वरः'** प्रलयमा सबैको काल र कालको पनि काल हुनाले **'कालाग्नि,'** परमेश्वरका नाम हुन्॥ ७ ॥

(इन्द्रं मित्रं०) जो एक अद्धितीय सत्य ब्रह्म वस्तु हो उसैका इन्द्र आदि सब नाम हुन्। **'द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः, शोभानानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि वा यस्य सः सुपर्णः यः गुर्वात्मा स गरुत्मान्, यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा'** प्रकृति आदि दिव्य पदार्थहरूमा व्याप्त हुनाले **'दिव्य,'** उत्तम पालन र पुर्ण कर्म हुनाले **'सुपर्ण,'** आत्मा र स्वरूप महान् हुनाले **'गरुत्मान्'** र वायु जस्तै अनन्त बनवान् हुनाले **'मातरिश्वा,'** परमेश्वरका नाम हुन्। बाँकी नामहरूको अर्थ पछि लेखिने छ॥ ८ ॥

(भूरसि भूमिरसि०) 'भवन्ति भूतानि यस्या सा भूमिः' सबै भूत अर्थात् प्राणिहरू हुने हुनाले ईश्वरको नाम **'भूमि'** हो। शेष नामहरूको अर्थ पछि लेखनेछ॥ ९ ॥

(इन्द्रो मह्ना०) यम मन्त्र **'इन्द्र'** परमेश्वरकै नाम हुनाले प्रमाणको लागि यहाँ लेखेको हो॥ १० ॥

(प्राणाय) जस्तै प्राणको अधीन सारा शरीर र इन्द्रियहरू हुन्छन् त्यस्तै परमेश्वरको अधीन सम्पूर्ण जगत् रहन्छ॥ ११ ॥

उक्त प्रमाणहरूवारे ठीक ठीक अर्थ जान्नाले यी नामहरूबाट

परमेश्वरकै ग्रहण हुन्छ भन्ने बुझिन्छ। **'ओ३म्'** र **'अग्नि'** आदि नामका मुख्य अर्थले परमेश्वरनै बुझिन्छ। जसरी व्याकरण निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्र आदि ऋषिमुनिहरूका व्याख्याबाट परमेश्वरकै अर्थ लिइएको बुझिन्छ, त्यस्तै सबैले बुझ्नु उचित छ। तर **'ओ३म्'** परमात्माको मात्र नाम हो र **'अग्नि'** आदि नामहरूबाट परमेश्वरको अर्थ लिन प्रकरण र विशेषण नियमकारक हुन। जहाँ जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन र सृष्टिकर्ता आदि विशेषण लेखिएका छन्, त्यहाँ त्यहाँ यी नामहरूबाट परमेश्वरकै अर्थ लाग्छ भन्ने कुरा यसबाट सिद्ध हुन्छ। अनि—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत। तस्माद् देवा अजायन्त॥ पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥

—यजु० अ० ३१। मं० ५, १२, ९, ५

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। —यो तैत्तिरीयोपनिषद्को वचन हो।

यस्ता प्रमाणहरूमा विराट्, पुरुष, देव,आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थका हुन्। किनभने उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड, दृश्य आदि विशेषण समेत लेखिएको भएमा परमेश्वरको अर्थ लाग्दैन। ईश्वर उत्पत्ति आदि कार्यबाट अलग्ग छ र उक्त मन्त्रहरूमा उत्पत्ति आदि कार्य भएको देखिन्छ।

त्यसैले यहाँ विराट् आदि नामबाट परमात्माको अर्थ नलिई संसारी पदार्थहरूबारे अर्थ लिइन्छ। सर्वज्ञ आदि विशेशण भएमा परमात्माको र इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख तथा अल्पज्ञ आदि विशेषण भएमा जीवको अर्थ लाग्छ भन्ने कुरा सर्वत्र बुझ्नुपर्छ। परमेश्वर जन्म मरण कहिल्यै नहुने हुनाले विराट् आदि नाम र जन्म आदि विशेषणहरूबाट जगत्का जड र जीव आदि पदार्थहरूबारे अर्थ लिनु उचित हुन्छ, परमेश्वरको होइन। अब तल लेखिएका प्रमाणबाट कसरी विराट् आदि नामले परमेश्वर ग्रहण हुन्छ भन्ने कुरा जान्नु पर्छ।

अथ ओंकारार्थः

'वि' उपसर्ग पूर्वक **'राजृ दीप्तौ'** धातुमा **'क्व'** प्रत्यय गर्नाले **'विराट्'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्'** अनेक प्रकारको जगत्लाई प्रकाशित गर्नाले

'विराट्' नाम परमेश्वर को हो।

'अञ्चु गतिपूजनयोः' गत्यर्थक अग, अगि र इण् धातुबाट 'अग्नि' शब्द सिद्ध हुन्छ। **'गतेस्त्रयोओऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। पूजनं नाम सत्कारः।' 'योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्क्त्यति सोऽयमग्निः'** जो ज्ञानस्वरुप, सर्वज्ञ, जान्न, प्राप्त गर्न र पूजा गर्न योग्य छ, यसैले त्यस परमेश्वरको नाम **'अग्नि'** हो।

'विश प्रवेशने' यस धातुबाट **'विश्व'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'विशान्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकशादीनि भूतानि यस्मन्। यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः'** जसमा आकाशादि सब भूत रहेका छन् वा जो व्याप्त भई यिनीहरूमा प्रविशष्ट भैरहेको छ, यसैले त्यस परमेश्वरको नाम **'विश्व'** हो। इत्यादि नामहरूको ग्रहण ओंकारको **'अ'** बाट मात्र हुन्छ। **'ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरणयमित्यैतरेय-शतपथब्राह्मणे' 'यो हिरण्यानं सूर्यादिनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधि-करणं सं हिरण्यगर्भः'** जसमा सूर्य आदि तेजस्वी लोकहरू उत्पन्न भई जुन ईश्वरमा आधारित हुन्छन् अथवा जो सूर्य आदि तेजः स्वरूप पदार्थहरूको गर्भ अर्थात् उत्पत्ति र निवासस्थान हो यसैले त्यस परमेश्वरको नाम **'हिरण्यगर्भ'** हो। यसमा यजुर्वेदको मन्त्र प्रमाण छ—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजुर्वेद १३।४

इत्यादि ठाउँहरूमा **'हिरण्यगर्भ'** ले परमेश्वरकै अर्थ लाग्छ।

'वा गति गन्धनयोः' यस धातुबाट **'वायु'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'गन्धनं हिंसनम्। यो वाति चराचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः'** जो चर र अचर जगत्को धारण, जीवन र प्रलयको कारण हो तथा सबै बलवान्हरूभन्दा बलियो छ यसैले त्यस ईश्वरको नाम **'वायु'** हो। **'तिज निशाने'** यस धातुबाट **'तेज'** स यसैलाई तद्धित गर्नाले **'तैजस'** शब्द सिद्ध हुन्छ। जो आफैं प्रकाशित र सूर्य आदि लोकहरूको प्रकाशक छ यसैले त्यस ईश्वरको नाम **'तौजस'** हो। इत्यादि नामहरूको अर्थ **'उ'** कारबाट मात्र लिइन्छ।

'ईश ऐश्वर्ये' यस धातुबाट **'ईश्वर'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः'** सत्य विचारशील ज्ञान र अनन्त ऐश्वर्य हुनाले त्यस परमात्माको नाम **'ईश्वर'** हो।

'दो अवखण्डने' यस धातुबाट **'अदिति'** र यसैमा तद्धित प्रत्यय जोड्दा **'अदित्य'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, 'अदितिरेव आदित्यः'** जसको कहिल्यै विनाश हुदैंन त्यसै ईश्वर **'आदित्य'** नाम हो।

'ज्ञा अवबोधने' 'प्रो' उपसर्गपूर्वक यस धातुबाट **'प्रज्ञ'** र यसैमा तद्धित प्रत्यय लगाउँदा **'प्राज्ञ'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यावहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः'** जो भ्रान्तिरहित ज्ञानयुक्त सम्पूर्ण जडचेतनजगत्को र व्यवहार जस्ताको त्यस्तै जान्दछ, यसैले ईश्वरको नाम **'प्राज्ञा'** हो। इत्यादि नामहरूको अर्थ **'म'** कारबाट लिइन्छ। जसरी एक एक मात्राबाट तीन तीन अर्थको यहाँ व्याख्या गरिएको छ त्यसैगरी ओंकारबट अरू नामहरू अर्थ पनि जानिन्छ।

'शन्नो मित्रः शं वरुषः०' यस मन्त्रमा रहेका **'मित्र'** आदि नाम पनि परमेश्वरका हुन्। किनभने स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि श्रेष्ठ हुनेकै गरिन्छ गुण, कर्म, स्वाभाव र सत्य सत्य व्यावहारहरूमा सबैभन्दा सर्वोत्तम हुनेलाई श्रेष्ठ भनिन्छ। त्यसमा पनि सर्वश्रेष्ठलाई परमेश्वर भनिन्छ। जसको तुल्य न कोही थियो, न छ, न हुनेछ। तुल्य नभएपछि त्यो भन्दा उत्तम हुने कुरै छैन। सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य र सर्वज्ञत्व आदि परमेश्वरका अनन्त गुणहरू अरूकुनै जड़ पदार्थ वा जीवमा छैनन्। सत्य पदार्थका गुण, कर्म, स्वभाव पनि सत्य नै हुन्छन्। यसैकारण मानिसले परमेश्वरकै स्तुति, प्रार्थना र उपासना गर्नु तथा परमेश्वर बाहेक कसैको कहिल्यै नगर्नु उचित हुन्छ। किनभने ब्रह्मा, विष्णु,, महादेव नामक पूर्वज विद्वान् महानुभावहरू, दैत्य दानव आदि निकृष्ट मनुष्य र अरू साधारण मानिसहरूले समेत परमेश्वरमा नै विश्वास गरेर उसैको स्तुति, प्रार्थना र उपासना गर्ने गरेका थिए र त्यस बाहेक अरू कसैको गरेका थिएनन्। त्यस्तै हामी सबैले पनि गर्नु पर्छ। यसैको विशेष विचार मुक्ति र उपासना विषय गरिने छ।

प्रश्न—मित्र आदि नामले सखा र इन्द्र आदि देवताहरूको प्रसिद्ध व्यवहार देखिनाले उनैको अर्थ लिनु राम्रो हुन्छ?

उत्तर—यहाँ उनीहरूको अर्थ लिनु उचित हुन्न। किनभने कुनै व्यक्ति यौटाको मित्र, अर्काको शत्रु र कसैप्रति उदासीन पनि हुन सक्दछ। त्यसैले मित्र आदि शब्दको मुख्य अर्थबाट सखा आदिको अर्थ लिन सकिन्न। तर परमेश्वर सबै जगत्का नश्चित मित्र, न कसैको

शत्रु न कसैदेखि उदासीन छ। यस बाहेक कुनै पनि जीव कहिल्यै यस्तो हुन सक्तैन। यसैले यहाँ परमात्माको मात्र ग्रहण हुन्छ। गौण अर्थमा भने मित्र आदि शब्दले सुह्रद् आदि मानिसहरू भन्ने ग्रहण हुन्छ।

'ञिमदा स्नेहने' यस धातुमा औणादिक **'क्त्र'** प्रत्यय लगाउँदा **'मित्र'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'मेद्यति स्निह्यति स्नह्यते वा स मित्रः'** सबैसँग स्नेह गर्ने र सबैबाट स्नेह गरिने हुनाले परमेश्वरको नाम **'मित्र'** हो।

'वृञ् वरणे वर ईप्सायाम्' ही धातुहरूमा उणादि **'उनन्'** प्रत्यय लगाउँदा **'वरुष'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यःसर्वान् शिष्टान् मुमुक्षन्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षभिर्धर्मात्मभिर्वियते वर्थ्यते वा वरुणः'** आत्मयोगी विद्वान् मुक्तिको इच्छा गर्ने, उक्त र धर्मातमाहरूलाई स्वीकार गर्ने अथवा **शिष्कट मुमुक्षुः'** मुक्त र धर्मात्माहरूद्वारा ग्रहण गरिने ईश्वरको नाम **'वरुण'** हो। अथवा **'वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः'** सबै भन्दा उत्तम हुनाले परमेश्वरको नाम **'वरुण'** हो।

'ऋ गतिप्रापणयोः' यस धातुबाट **'यत्'** प्रत्यय जोड्दा **'अर्य्य'** शब्द सिद्ध हुन्छ। अनि **'अर्य्य'** पूर्वक **'माङमाने'** यस धातुबाट **'कनिन्'** प्रत्यक थप्दा **'अर्य्यमा'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'योऽर्य्यान्**

स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्याय् करोतिसोऽर्यमा' सत्य र न्याय गर्ने मानिसहरूको लागि मान्य र पाप–पुण्य गर्नेलाई त्यसको फलको ठीक—ठीक व्यवस्था गर्नाले त्यस ईश्वरको नाम **'अर्यमा'** हो।

'इदि परमैश्वर्यै' यस धातुमा **'रन्'** प्रत्यय लगाउँदा **'इन्द्र'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः'** अखिल ऐश्वर्ययुक्त हुनाले परमात्माको नाम **'इन्द्र'** हो।

'बृहत्' शब्द पूर्वक **'पा रक्षणे'** यस धातुमा **'डति'** प्रत्यय, बृहत्को तकारको लोप र **'सुट्'** आगम हुँदा **'बृहस्पति'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः'** जो ठूलाहरूभन्दा पनि ठूलो र ठूला आकाश आदि ब्रह्मण्डहरूको स्वामी छ, त्यसैले त्यस परमेश्वरको नाम **'बृहस्पति'** हो।

'विष्लृ वयाप्तौं' यस धातुबाट **'नु'** प्रत्यय भएर **'विष्णु'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'वेवेष्ट व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः'** चर तथा अचररूप जगत्मा व्यापक हुनाले परमत्माको नाम **'विष्णु'** हो।

'**उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः**' अनन्त पराक्रमयुक्त हुनाले परमात्माको नाम '**उरुक्रम**' हो।

जो परमात्मा **(उरुक्रमः)** महापराक्रमयुक्त, **(मित्रः)** सबैको मित्र, विरोधरहित छ त्यो **(शम्)** सुखकारक, **(वरुणः)** सर्वोत्तम, **(शम्)** सुखस्वरूप, **(अर्यमा) (शम्)** सुखप्रचारक, **(इन्द्रः) (शम्)** सकल ऐश्वर्यदायक, **(बृहस्पति)** सबैको अधिष्ठाता, **(शम्)** विद्याप्रद र **(विष्णुः)** सर्वध्यापक परमेश्वर हो। यस्तो परमात्मा **(नः)** हामी सबैको कल्याण गर्ने **(भवतु)** होओस्।

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) '**बृह बृंहि वृद्धौ**' यी धातुबाट '**ब्रह्म**' शब्द सिद्ध भएको छ। जो परमात्मा सबैभन्दा माथि विराजमान, सबैभन्दा ठूलो, अनन्त बलशाली छ, त्यस ब्रह्मलाई हामी नमस्कार गर्दछौं। हे परमेश्वर! **(त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि)** तिमीनै अन्तर्यामी रूपले प्रत्यक्ष ब्रह्मा हौ। **(त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि)** म तिमीलाई नै प्रत्यक्ष ब्रह्म भन्दछु, किनभने तिमी सर्वत्र व्याप्त भई सबैलाई सदा प्राप्त हुन्छौं।

(ऋतं वदिष्यामि) वेदमा जो तिम्रो यथार्थ आज्ञा छ, त्यसैको म सबैका लागि उपदेश र आचरण पनि गर्नेछु। **(सत्यं वदिष्यामि)** सत्य बोल्ने, सत्य मान्ने र सत्य व्यवहार नै गर्नेछु। **(तन्मामवतु)** तिमी मेरो रक्षा गर। **(तद्वक्तारमवतु)** तिमी सत्यवक्त मेरो रक्षा गर, जसबाट तिम्रो यात्रामा मेरो बृद्धि स्थिर होस् विरुद्ध नै अधर्म हो। '**अवतुर मामपतु वक्तारम्**' यो दोहोरो पाठ अधिक अर्थको निमित्त हो। जस्तै— '**कश्चित् कञ्चित् प्रति बदतित्वं ग्रामं गच्छ**' यसमा दुई पटक क्रियाको उच्चारण गर्नाले तिमी छिटै गाउँ जाऊ भन्ने अर्थ हुन्छ, त्यस्तै यहाँ मेरो रक्षा अवश्य गर अर्थात् धर्ममा सदा तत्पर र अधर्मदेखि घृणा सदा गरूँ यस्तो कृपा ममाथि गर, म तिम्रो ठूला उपकार मान्नेछु। **(ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः)**

यसमा तीन पटक शान्ति पाठको प्रयोजन—त्रिविधताप अर्थात् संसारमा तीन प्रकारका दुःख छन्। पहिलो—'**आध्यात्मिक**' आत्मा र शरीरमा अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता, ज्वर, पीडा आदि दोस्रो—आधिभौतिक—शत्रु, व्याध्र सर्प आदिबाट प्राप्त हुने, तेस्रो—'आधिदैविक—अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन र इन्द्रियहरू अशान्ति आदिबाट हुने यी तीन प्रकारका क्लेशबाट तिमी हामीलाई बचाएर कल्याणकारक कर्ममा सदा लगाई राख। किनभने तिमी नै

कल्याणस्वरूप, सब संसारका कल्याणकर्ता र धार्मिक मुमुक्षुहरूलाई कल्याणका दाता हौ। यसैले तिमी स्वयं आफ्नो करुणाबाट सबै जीवहरूका हृदयमा प्रकाशित भई देऊ, जसबाट सबै जीव धर्म आचरण र अधर्म त्याग गरेर परम आनन्द प्राप्त गरून् र दुःखबाट पृथक् रहून्।

'**सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**' यस यजुर्वेदको वचन (७।४२) अनुसार '**जगत्**' प्राणी चेतन र जंगम अर्थात् हिंड्डुल गर्ने, '**तस्थुषः**' अप्राणि अर्थात् स्थावर जड अर्थात् पृथ्वी आदि सबैको आत्मा हुनाले अनि प्रकाशस्वरूप, सबैमा प्रकाश गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम '**सूर्य्य**' हो।

'**अत सातत्यगमने**' यस धातुबाट '**आत्मा**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**योऽतति व्याप्नोति स आत्मा**' जो सब जीव आदि जगत्मा निरन्तर व्याप्त भई रहेको छ। '**परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा**' सबै जीव आदि भन्दा उत्कृष्ट, जीव, प्रकृति र आकाशभन्दा पनि अतिसूक्ष्म तता सबै जीवहरूको अन्तर्यामी आत्मा हुनाले ईश्वरको नाम '**परमात्मा**' हो।

सामर्थ्य हुनेलाई '**ईश्वर**' भनिन्छ। '**य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः**' जो ईश्वर अर्थात् समर्थहरूमा समर्थ, जसको तुल्य कोही पनि छैन त्यसको नाम '**परमेश्वर**' हो।

'**षुञ् अभिषवे, षूङ्प्राणिगर्भविमोचने**' यी धातुबाट '**सविता**' शब्द सिद्ध हुन्छ।

अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जागत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः' सम्पूर्ण जगत्को उत्पत्ति गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाममा '**सविता**' हो।

'**दवु क्रिडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतषु**' यस धातुबाट '**देव**' शब्द सिद्ध हुन्छ। **(क्रिडा)** शुद्ध जगत्लाई खेलाउने, **(विजिगीषा)** धार्मिकहरूलाई जिताउने चाहने, **(व्यवहार)** सबै चेष्टाका साधन—उपसाधनहरू दिने, **(द्युति)** स्वयं प्रकाशस्वरूप, सबैको प्रकाशक, **(स्तुति)** प्रशसां गर्न योग्य, **(मोद)** स्वयं आनन्दस्वरूप, अरूलाई आनन्द दिने, **(मन)** मदोन्मतत्तहरूलाई दण्डित गर्न, **(स्वप्न)** सबैलाई सुताउन रात्रि र प्रलय गर्ने, **(कान्ति)** कामना गर्न योग्य र **(गति)** ज्ञानस्वरूप हुनाले परमेश्वरको नाम '**देव**' हो। अथवा '**यो दीव्यति क्रिडति स देवः**' जो आफ्नै स्वरूपमा आफैं आनन्दले क्रिडा गर्छ अथवा कसैको सहायता बिना खेले जस्तै सहज

स्वभावले सारा संसारलाई बनाउँछ अथवा सबै क्रिडाको आधार छ, **'विजिगीयते स देवः'** जो सबैलाई जित्ने र स्वयं अजेय अर्थात् जसलाई कसैले जित्न सक्तैन, **'व्यवहारयति स देवः'** जो न्याय र अन्यायरूप व्यवहारलाई जान्ने र जनाउने, **'यश्चराचरं जगत् द्योतयति'** जो सबैको प्रकाशक, **'यः स्तूते स देबः'** जो सबैको प्रशंसायोग्य र **अबि-ध यो मोदयति स देवः'** जो आफू आनन्दस्वरूप र अरूलाई आनन्द दिने तथा जसलाई दुःखको लेश पनि छैन, **'यो माद्यति स देवः'** जो सधैं हर्षित, शोकरहित, अरूलाई हर्षित गर्ने र दुःखदेखि पृथक् राख्ने छ **'यः स्वापयति स देवः'** जो प्रलयकालमा सबैलाई अव्यक्तमा सुताउँछ, **'यः कामयते काम्यते वा स देवः'** जसका काम सत्य छन् र जसको प्राप्तिको कामना सबै शिष्टजन गर्दछन्, अनि **'यः गच्छति गम्यते ना स देवः'** जो सबैम व्याप्त र जान्न योग्य छ, यसै कारण परमेश्वरको नाम **'देव'** हो।

'कुबि आच्छादने' यस धातुबाट **'कुबेर'** शब्द सिद्ध हुन्छ **'यः सर्व कुम्बति स्वव्याप्तयाच्छदयति स कुबेरो जगदीश्वरः'** व्यापक भई सबैलाई ढाक्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'कुबेर'** हो।

'पृथु विस्तारे' यस धातुबाट **'पृथिवी'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः पर्थचि सर्व जगद्विस्तृणाति तस्मात् स पृथिवी'** सब विस्तृत जगत्को विस्तार गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'पृथिवी'** हो।

'जल धातने' यस धातुबाट **'जल'** शब्द सिद्ध हुन्छ॥ **'जलति घातयति दुष्टान्, संघातयति अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जल'** दुष्टाहरूलाई ताडन गर्ने अनि अव्यक्त र परमाणुहरूलाई अन्योन्य संयोग वा वियोग गर्ने हुनाले परमात्माको नाम **'जल'** हो।

'काश्रृ दीप्तौ' यस धातुबाट **'आकाश'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः सर्वतः सर्व जगत् प्रकाशयति स आकाशः'** सबैतिरबाट जगत् प्रकाशक हुनाले परमात्माको नाम **'आकाश'** हो।

'अद् भक्षणे' यस धातुबाट **'अन्न'** शब्द सिद्ध हुन्छ।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः॥

—तैत्ति० उपनि०

अत्ता चराऽचरग्रहणात्। यो व्यासमुनिकृत शरीरकसूत्र हो। सबैलाई आफूभित्र राख्ने र सबैले ग्रहण गर्न योग्य चराचर जगलाई ग्रहण गर्ने हुनाले ईश्वरको नाम **'अन्न,' 'अन्नाद,'** र **'अत्ता'** हुन्। यसमा तीन

पटक पाठ आदरको लागि हो। जस्तै डुम्रीको फूलमा कीरा जन्मने, मर्ने र त्यसैमा नासिने गर्छन् त्यस्तै परमेश्वरमा यो सारा जगत्को अवस्था छ।

'वस निवासे' यस धातुबाट **'वसु'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः'** जसमा सब आकाशदि भूत बस्तछ यसैले त्यस परमेश्वरको नाम **'वसु'** हो।

'रुदिर् अश्रु विमोचने' यस धातुबाट **'णिच्'** प्रत्यय हुँदा **'रुद्र'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः'** दुष्ट कर्म गर्नेहरूलाई रुवाउनाले परमेश्वरको नाम **'रुद्र'** हो।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत, कर्मण करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिस्मपद्यते।

यो यजुर्वेद ब्रह्मणको वचन हो। जीव जसको ध्यान मनले गर्छ, त्यही वाणीले बोल्दछ, जे बोल्दछ त्यही कर्म गर्छ र कर्मले जे गर्दछ, त्यसैले प्राप्त गर्छ। यसबाट जुन जीव जस्तो कर्म गर्छ त्यस्तै फल पाउँछ भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। जब दुष्टकर्म गर्ने जीव ईश्वरको न्यायरूप व्यवस्थाले दुःखरूप फल पाउँछन् , रुन्छन् र यसै प्रकार ईश्वर उनीहरूलाई रुवाउँछ। यसैले परमेश्वरको नाम 'रुद्र' हो।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृत॥

—मनु० अ० १ श्लोक १०

जल र जीवहरूको नाम नारा हो। ती जसका अयन अर्थात् निवासस्थान हुन्, यसैले सबै जीवहरूमा व्यपक परमात्माको नाम **'नारायण'** हो।

'चदि आह्लदे' यस धातुबाट **'चन्द्र'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः'** आफू आनन्द स्वरूप स सबैलाई आनन्दित पार्ने हुनाले ईश्वरको नाम **'चन्द्र'** हो।

'मगि गत्यर्थक' धातुबाट **'मङ्गेरलच्'** यस सूत्रबाट **'मङ्गल'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो मङ्गतेइ मङ्गयति वा स मङ्गलः'** स्वयं मङ्गलस्वरूप भई सारा जीवहरूको मङ्गलको कारण हुनाले परमेश्वरको नाम **'मङ्गल'** हो।

'बुध अवगमने' यस धातुबाट **'बुध'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो बोध्यते बुध्यते वा स बुधः'** स्वयं बोधस्वरूप भई सारा जीवहरूको बोधको कारण हुनाले परमेश्वरको नाम **'बुध'** हो।

'**बृहस्पति**' शब्दको अर्थ भनिसकियो।

'**ईशुचिर् पूतिभावे**' यस धातुबाट '**शुक्र**' शब्द सिद्ध भएको छ। '**यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः**' जो अत्यन्त पवित्र छ र जसको सङ्गबाट जीव पनि पवित्र हुन्छ यसैले ईश्वरको नाम '**शुक्र**' हो।

'**चर गतिभक्षणयोः**' यस धातुबाट '**शनैस्**' अव्यय उपपद लगाउँदा '**शनैश्चर**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यः शनैश्चरति स शनैश्चरः**' सबैमा सहजै प्राप्त र धैर्यवान् हुनाले परमेश्वरको नाम '**शनैश्चर**' हो।

'**रह त्यागे**' यस धातुबाट '**राहु**' शब्द सिद्ध हुन्छ। **यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति स राहुरीश्वरः**' जो एकान्त स्वरुप छ अर्थात् जसको स्वरूपमा अर्को पदार्थ संयुक्त छैन, जो दुष्टलाई छोडने र अरूलाई दष्टदेखि छुटाउने छ, त्यसैले परमेश्वरक नाम '**राहु**' हो।

'**कित निवासे रोगापनयने च**' यस धातुबाट '**केतु**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**य केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः**' सब जगत्‌को निवासस्थान , रोगरहित र मुमुक्षुहरूलाई मुक्ति समयमा सबै रोगबाट छुटाउने हुनाले परमात्माको नाम '**केतु**' हो।

'**यज देवपुजासङ्गतिकरणदानेषु**' यस धातुबाट '**यज्ञ**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यज्ञो वै विष्णुः**' यो ब्रह्मण ग्रन्थको वचन हो। '**यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः**' जो जगत्का सम्पूर्ण पदार्थलाई संयुक्त गर्छ, सब विद्वान्हरूको पूज्य छ, जो ब्रह्मा देखि सबै मुनिहरूको पूज्य थियो र रहने छ, अनि सर्वत्र व्याप्त छ, त्यस्तो परमात्माको नाम '**यज्ञ**' हो।

'**हु दानाऽदनयोः, आदाने चेत्येक**' यस धातुबाट '**होता**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यो जुहोति स होता**' जीवहरूलाई दिन योग्य पदार्थ दिने र ग्रहण गर्न योग्य ग्रहम गर्ने हुनाले ईश्वरको नाम '**होता**' हो।

'**बन्ध बन्धने**' यसबाट '**बन्धु**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यः स्वस्मिन् चराऽचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मां सुखाय सहाये वर्त्तते स बन्धुः**' जसले सब लोकलोकान्तरलाई आफूम नियमबद्ध गरेको छ र सहोदर समान सहायता छ—यसैले आ–आफनो परिधि वा नियमको कसैले उल्लंङ्घन गर्न सक्तैन। जसरी दाजु–भाई एक अर्काको सहायक हुन्छन्, त्यस्तै परमेश्वर पनि पृथ्वी आदि लोकलाई धारण, रक्षण र सुख दिने हुनाले उसको नाम '**बन्धु**' हो।

'**पा रक्षणे**' यस धातुबाट '**पिता**' शब्द सिद्ध भएको छ। '**यः**

पाति सर्वान् स पिता' सबैको रक्षक–जस्तो पिता आफ्ना सन्तानप्रति सदा कृपालु भई सधैं उनीहरूको उन्नति चाहन्छ, त्यस्तै परमेश्वर सबै जीवहरूको उन्नति चाहने हुनाले उसको नाम '**पिता**' हो।

'**यः पितॄणां पितामहः**' पिताहरूको पनि पिता हुनाले परमेश्वरको नाम '**पितामह**' हो।

'**यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता**' जस्तो पूर्णकृपायुक्त आमा आफ्ना सन्तानको सुख र उन्नति चाहिन्छन् त्यस्तै परमेश्वर पनि सबै जीवको उन्नति हुनाले उसको नाम '**माता**' हो।

'**चर गतिभक्षणयोः**' आङ्पूर्वक यस धातुबाट '**आचर्य्य**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधति स आचार्य ईश्वरः**' सत्य आचार ग्रहण गराउने र सर्वविद्याप्राप्तिको हेतु भई सबै विद्या प्राप्त गराउने हुनाले परमेश्वरको नाम आचार्य हो।

'**गृ शब्दे**' यस धातुबाट '**गुरु**' शब्द बनेको छ। '**ये धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः**' '**स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**' (योग०)। सत्यधर्मप्रतिपादक, सकलविद्ययुक्त, वेदको उपदेश गर्ने, सृष्टिको आदिमा अग्नि, वायु,आदित्य, अङ्गिरा स ब्रह्मा आदि गरुहरूको पनि गुरु तथा कहिल्यै नाश नहुने हुनाले त्यस परमेश्वको नाम '**गरु**' हो।

'**अज गतिक्षेपणयोः, जनि प्रादुर्भावे**' यी धातुहरुबाट '**अज**' शब्द बन्द छ। '**योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रतक्षपति, जानाति, कदाचिन्न जायते सोऽजः**' प्रकृतिका सबै अवयव–आकाशदि भूत परमाणुहरूलाई यथायोग्य मिलाउने, शरीरसँग जीवको सम्बन्ध गराएर जन्म दिने र स्वयं कहिल्यै जन्म नलिने हुनाले ईश्वरको नाम '**अज**' हो।

'**बृह बृहि वृद्धौ**' यी धातुहरूबाट '**ब्रह्मा**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**योऽखिलं जगन्निर्माणेन बर्हति वर्द्ध यति स ब्रह्मा**' सम्पूर्ण जगत्‌को रचना गरेर बढाउने हुनाले परमेश्वरको नाम '**ब्रह्मा**' हो।

'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' यो तैत्तिरीय उपनिषद्‌को वचन हो।

'**सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं जगतज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म।**' भएमा पदार्थलाई '**सत्**' भनिन्छ् तिनमा पनि उत्तम हुनाले परमेश्वरको नाम '**सत्य**' हो। जान्ने हुनाले परमेश्वरको नाम '**ज्ञान**' हो। अन्त, अवधि र मर्यादा अर्थात् यति लामो, चौडा, सानो,

ठूलो आदि परिमाण नभएको हुँदा परमेश्वरको नाम '**अनन्त**' हो। सबैभन्दा बृहत हुनाले पनि ईश्वरको नाम '**ब्रह्म**' हो।

'**डुदञ् दाने**' यस धातुबाट '**आङ**' पूर्वक '**आदि**' शब्द र त्यसा '**नञ**' पुर्वक '**अनादि**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यस्मात् पूर्व नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते। न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः।**' पहिले नभएको र पछि हुनेलाई '**आदि**' भनिन्छ। आदि कारण केही पनि नभएको हुँदा परमेश्वरको नाम '**अनादि**' हो।

'**टुनदि समृद्धौ**' '**आङ**' पूर्वक यस धातुबाट '**आनन्द**' शब्द बन्दछ।'**आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः**' जो आनन्दस्वरूप छ र जसमा सबै मुक्त जीवहरू आनन्दित हुन्छन् अनि जो धर्मात्मा जीवलाई आनन्दयुक्त गर्छ, त्यसैले ईश्वरको नाम '**आनन्द**' हो।

'**अस भुवि**' यस धातुबाट '**सत्**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यदस्ति त्रिषु कालेष न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म**' सदा रहने अर्थात् भूत, भविष्य र वर्तमान सबै कालमा विद्यमान हुनाले परमेश्वरलाई '**सत्**' भनिन्छ।

'**चिती संज्ञाने**' यस धातुबाट '**चित्**' शब्द सिद्ध हुन्छ।'**यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म**' आफू चेतनस्वरूप भई सबै जीवहरूलाई चेतनशील बनाउने र सत्य–असत्य जनाउने हुनाले परमात्माको नाम '**चित्**' हो। यी तीनै शब्द विशेषण हुनाले परमेश्वरलाई '**सच्चिदानन्दस्वरूप**' भनिन्छ।

'**यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः**' निश्चल अविनाशी हुनाले ईश्वरलाई '**नित्य**' भनिन्छ।

'**शन्ध शुद्धौ**' यसबाट '**शुद्ध**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः**' स्वयं पवित्र, सबै अशुद्धि रहित भई सबैलाई शुद्ध गर्ने हुनाले ईश्वरको नाम '**शुद्ध**' हो।

'**बुध अवगमने**' यस धातुबाट '**वत**' प्रत्यय हुँदा '**बुद्ध**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः**' सधैं सबैलाई जान्ने हुनाले ईश्वरको नाम '**बुद्ध**' हो।

'**मुच्लृ मोचने**' यस धातुबाट '**मुक्त**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यो मुञ्जयति मोचयति वा मुमुक्षुन् स मुक्तो जगदीश्वरः**' सर्वदा अशुद्धिहरूभन्दा पृथक्रही मुमुक्षुहरूलाई क्लेशबाट छुटाउने हुनाले परमात्माको नाम '**मुक्त**' हो।

'**अत एव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः**' यसैकारण

परमेश्वरको स्वभाव '**नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त**' हो।

'**निर्**' र '**आङ**' पूर्वक '**डुकृञ् करणे**' यस धातुबाट '**निराकार**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**निर्गत आकारात्स निराकारः**' जसको कुनै आकार छैन र जो कहल्यै शरीर धारण गर्दैन, त्यसैकारण परमेश्वरको नाम '**निराकार**' हो।

'**अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु**' यस धातुबाट '**अञ्जन**' शब्द र त्यसमा '**निर्**' उपसर्ग लगाउँदा '**निरञ्जन**' शब्द सिद्ध हुन्छ। '**अञ्जनं व्यक्तिर्म्लक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः**' व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना र चक्षु आदि इन्द्रियहरूको विषयमार्गभन्दा पृथक् हुनाले ईश्वरको नाम '**निरञ्जन**' हो।

'**गण संख्याने**' यस धातुबाट '**गण**' शब्द सिद्ध हुन्छ। यसमा '**ईश**' वा '**पति**' शब्द राख्दा '**गणेश**' र '**गणपति**' बन्दछन्। '**ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा**' प्रकृति आदि जड़ र जीव आदि प्रख्यात पदार्थहरूको स्वामी वा पालक हुनाले ईश्वरको नाम '**गणेश**' वा '**गणपति**' हो।

'**यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः**' संसारको अधिष्ठाता हुनाले परमेश्वरको नाम 'विश्वेश्वर' हो।

'**यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्व रूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः**' सबै व्यवहारहरूमा व्याप्त र सबै व्यावहारहरूको आधार भएर पनि कुनै व्यवहारमा आफ्नो रूप नबदल्ने हुनाले परमेश्वरको नाम '**कूटस्थ**' हो।

'**देव**' शब्दका जति अर्थ लेखिए, त्यति नै '**देवी**' शब्दका पनि हुन्छन्। परमेश्वरका नाम तिनै लिङ्गमा छन्,जस्तै—**ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति**'। ईश्वरको विशषण हुँदा '**देव**' र चितिको विशेषण हुँदा '**देव**' हुन्छ। यसैले ईश्वरको नाम '**देवी**' हो।

'**शक्लृ शकृतौ**' यस धातुबाट 'शक्ति शब्द बन्दछ। '**यः सर्वं जगत् कर्तु शक्नोति स शक्तिः**' सब जगत्लाई बनाउन समर्थ हुनाले परमेश्वरको नाम '**शक्ति**' हो।

'**श्रिञ् सेवायाम्**' यस धातुबाट 'श्री शब्द सिद्ध हुन्छ। '**यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगदा विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः**' सब जगत् सबै विद्वान् र योगिजनद्वारा सेवन गरिने हुनाले परमात्माको नाम '**श्री**' हो।

'लक्ष दर्शनाङ्कनयोः' यस धातुबाट **'लक्ष्मी'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराऽचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः'** सबै चराऽचर जगत्लाई देख्ने र चिह्नित गर्ने अर्थात् दृश्य बनाउने, जस्तै— शरीरका नेत्र, नासिका आदि, वृक्षका पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि, पृथ्वी वा जलका कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तका, पाषाण, चन्द्र, सूर्य आदि, बनाउने तथा सबैलाई देख्ने, सबै शोभाहरूको पनि शोभा अनि वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगीहरूको लक्ष्य अर्थात् देख्न योग्य हुनाले परमेश्वरको नाम **'लक्ष्मी'** हो।

'सृ गतौ' यस धातुबाट **'सरस्'** र त्यसबाट **'मतुप्'** र **'ङीप्'** प्रत्यय हुँदा **'सरस्वती'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती'** विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोगको यथावत् ज्ञान हुनाले परमेश्वरक नाम **'सरस्वती'** हो।

'सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः' आफ्नो कार्य गर्न अन्य कसैका सहायताको इच्छा नगर्ने, आफ्नै सामर्थ्यले आफ्ना सबै काम पूर्ण गर्ने हुनाले परमात्माको नाम **'सर्वशक्तिमान्'** हो।

'णीञ् प्रापणे' यस धातुबाट **'न्याय'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः'** यो वचन न्यायसूत्रहरूमा वात्स्यानकृत भाष्यको हो। **'पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः'** प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूको परीक्षाबाट सत्य सत्य सिद्ध भएको तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरणलाई न्याय भनिन्छ। **'न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः'** जसको न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म गर्ने नै स्वाभाव छ, यसैले उस ईश्वरको नाम **'न्यायकारी'** हो।

'दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु' यस धातुबाट **'दया'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'दयते ददाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः'** अभय दिने, सत्य असत्य सबै विद्या जान्ने,सबै सज्जनहरूको रक्षा गर्ने र दुष्टहरूलाई यथायोग्य दण्ड दिने हुनाले परमात्माको नाम **'दयालु'** हो।

'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वै तम्। अर्थात् सजातीय विजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म' दुई हुनु वा दुई युक्त हुनु द्विता, द्वीत वा द्वैत भनिन्छ। परमेश्वर द्वैत रहित छ। सजातीय जस्तै मानिसको मानिस,

विजातीय, जस्तै मानिसको भिन्न जातिका वृक्ष, पाषाण आदि, स्वगत जस्तै शरीरमा आँखा, नाक, कान आदि अवयवहरूको भेद हुन्छ त्यस्तै सजातीय ईश्वर विजातीय ईश्वर वा आफ्नै आत्मामा तत्वान्तर वस्तुहरूरहित एक परमात्माको नाम **'अद्वैत'** हो।

'गुण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गुणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः निर्गुण ईश्वरः' सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि जति पनि जडका गुण र अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष, अविद्या आदि क्लेश जीवका गुण हुन् यी सबैभन्दा ईश्वर पृथक् छ। यसमा **'अशब्दमस्पर्शमरूमव्ययम्'** इत्यादि उपनिषद्हरूको प्रमाण छ। शब्द, स्पर्श, रूप आदि गुणरहित हुनाले परमात्माको नाम **'निर्गुण'** हो।

'यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः' सबैको ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्तबल आदि गुणयुक्त हुनाले परमेश्वरको नाम **'सगुण'** हो। जस्तै— पृथ्वी गन्ध आदि गुणका कारण **'सगुण'** र इच्छा आदि गुणरहित हुनाले **'निर्गुण'** हो, त्यस्तै जगत् र जीवका गुणरहित हुनाले परमेश्वर **'निर्गुण'** र सर्वज्ञ आदि गुण सहित हुनाले **'सगुण'** हो। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ **'सगुण'** पनि हुन्छ अनि **'निर्गुण'** पनि। जस्तै—जड़ पदार्थहरूमा चेतनको गुण नहुनाले **'निर्गुण'** र आफ्ना गुण हुनाले **'सगुण'** अनि जीनमा जड़को गुण नहुनाले **'निर्गुण'** र इच्छा आदि आफ्ना गुण हुनाले **'सगुण'** पनि हुन्छ। यस्तै परमेश्वरमा पनि बुझ्नु पर्छ।

'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी' सबै प्राणी र अप्राणीरूप जगत्भित्र व्यापक भई सबैको नियमन गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'अन्तर्यामी'** हो।

'यो धर्म्मे राजते स धर्मराजः' धर्ममा नै प्रकाशमान्, अधर्मरहित र धर्मकै प्रकाश गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'धर्म्मराज'** हो।

'यमु उपरमे' यस धातुबाट **'यम'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः'** सबै प्राणिहरूका कर्मको फल दिने व्यवस्था गर्ने र अन्यायरहित हुनाले परमात्माको नाम **'यम'** हो।

'भज सेवायाम्' यस धातुबाट **'भग'** र यसहबाट **'मतुप्'** प्रत्यय गर्दा **'भगवान्'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्'** जो समग्र ऐश्वर्य युक्त छ वा भजन गर्न, सेवा गर्न योग्य छ, त्यस ईश्वरको नाम **'भगवान्'** हो।

'मन ज्ञाने' यस धातुबाट **'मन'** शब्द बन्दछ। **'यो मन्यते स मनुः'** विज्ञानशील र मान्न योग्य हुनाले ईश्वरको नाम **'मनु'** हो।

'पृ पालनपूरणयोः' यस धातुबाट **'पुरुष'** शब्द सिद्ध भएको छ। **'यः स्वव्याप्तया चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः'** सब जगत्मा पूर्ण भई रहेको हुँदा परमेश्वरको नाम **'पुरुष'** हो।

'डुभृञ् धारणपोषणयोः', 'विश्व' पूर्वक यस धातुबाट 'विश्वम्भर' शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः'** जगत्को धारण र पोषण गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'विश्वम्भर'** हो।

'कल संख्याने' यस धातुबाट **'काल'** शब्द बनेको छ। **'कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थन् स कालः'** जगत्का सबै पदार्थ र जीवहरूको गणना गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'काल'** हो।

'शिष्लृ विशेशणे' यस धातुबाट 'शेष शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः शिष्यते स शेषः'** उत्पत्ति र प्रलयबाट शेष रहने अर्थात् बची रहने हुनाले परमात्माको नाम **'शेष'** हो।

'आप्लृ व्याप्तौ' यस धातुबाट **'आप्त'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः'** सत्योपदेशक, सकलविद्यायुक्त, सबै धर्मातमाहरूलाई प्राप्त हुने र धर्मात्माहरूद्वारा प्राप्त हुने योग्य तथा छलकपट रहित हुनाले परमात्माको नाम **'आप्त'** हो।

'डुकृञ् करणे', 'शम्' उपपदपूर्वक यस धातुबाट **'शङ्कर'** शब्द सिद्ध भएको छ। **'यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः'** कल्याण अर्थात् सुख प्रदान गर्ने हुनाले ईश्वरको नाम **'शङ्कर'** हो।

'महत्' शब्द पूर्वक **'देव'** शब्दबाट महादेव' शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यो महतं देवः स महादेवः'** महान् देवहरूको पनि देव अर्थात् विद्वान्हरूको पनि विद्वान्, सूर्य आदि पदार्थहरूको प्रकाशक हुनाले परमात्माको नाम **'महादेव'** हो।

'प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च' यस धातुबाट **'प्रिय'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः'** सबै धर्मात्मा, मुमुक्षु र शिष्टहरूलाई प्रशन्न गर्ने अनि सबैले कामना गर्ने योग्य हुनाले ईश्वरको नाम **'प्रिय'** हो।

'भू सत्तायाम्', 'स्वयं' पूर्वक यस धातुबाट **'स्वयम्भू'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः'** कहिल्य कसैबाट उत्पन्न नहुने र आफैंमा आफैं विद्यमान हुनाले परमात्माको नाम **'स्वायम्भू'** हो।

'कु शब्दे' यस धातुबाट **'कवि'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'यः कौति

शब्दयति सर्वा विद्याः स कविरीश्वरः'** वेदद्वारा सबै विद्याको उपदेशकर्तत्ता र वेत्ता हुनाले परमेश्वरको नाम **'कवि'** हो।

'शिवु कल्याणे' यस धातुबाट **'शिव'** शब्द सिद्ध हुन्छ। **'बहुलमेतन्निदर्शनम्'** यसबाट शिवु धातु मानिन्छ। कल्याणस्वरूप र कल्याण गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम **'शिव'** हो।

यी सय नाम परमेश्वरका लेखिएका हुन्, तर यी बाहेक परमात्माका असंख्य नाम छन्। परमेश्वरका गुण, कर्म, स्वभाव अनन्त हुनाले उसका नाम पनि अनन्त छन्। प्रत्येक गुण, कर्म र स्वाभावको एक—एक नाम हुन्छ। यसैले यी मैले लेखेका नाम समुद्र अगाडि थोपा बराबर हुन्। किनभने वेदादि शास्त्रहरूमा परमात्माका असंख्य गुण, कर्म, स्वाभावको व्याख्या छ। उनलाई पढ्न—पढाउनाले ज्ञान हुन सक्छ र अन्य पदार्थहरूको पूरा—पूरा ज्ञान पनि वेदादि शास्त्र पढ्नेलाई नै हुन सक्छ।

प्रश्न—जसरी अरू ग्रन्थकारहरू ग्रन्थको आरम्भ, मध्य र अन्तमा मङ्गलाचरण गर्छन् त्यस्तै तपाईंले किन गर्नु वा लेख्नु भएन ?

उत्तर—मैले यसो गर्नु ठीक थिएन, किनभने आदि, मध्य र अन्तमा मङ्गलाचरण गर्नेका ग्रन्थको आदि, मध्य र अन्त बाहेक सबै लेख अमङ्गल होला। यसैले **'मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुति-तश्चेति'** यो सांख्यशास्त्रको वचन हो। यसको अभिप्राय 'न्याय, पक्षपातरहित,सत्य, वेदोक्त ईश्वरको आज्ञाको यथावत् सर्वत्र सदा आचरण गर्नु नै मङ्गलाचरण' हो। ग्रन्थको मङ्गलाचरण हुन सक्तैन। महाशय महर्षिहरूको लेख हेर्नुहोस्—

'यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि'

यो तैत्तिरीय उपनिषद्को वचन हो।

हे प्रिय, तिमीले अनवद्य, अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म गर्नुपर्छ, अधर्मयुक्त होइन। यसैले आधुनिक ग्रन्थहरूमा देखापरेका **'श्री गणेशाय नमः', 'सीतारामाभ्यं नमः,' 'राधाकृष्णाभ्यं नमः', 'श्री गरूचरणार-विन्दाभ्यां नमः', हनुमते नमः', 'दुर्गायै नमः', 'बटुकाय नमः', 'भैरवाय नमः', 'शिवाय नमः', 'सरस्वत्यै नमः', 'नारायणाय नमः'**, इत्यादि लेखहरूलाई बुद्धिमानहरू वेद र शास्त्रहरूको विरूद्ध हुनाले मिथ्य ने सम्झन्छन्। किनभने वेद र ऋषिहरूका ग्रन्थहरूमा कतै पनि यस्तो मङ्गलाचरण पाइँदैन। आर्ष ग्रन्थहरूमा 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द भने देखिन्छन्। जस्तै—

'अथ शब्दानुशासनम्,' 'अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते'। **यो व्याकरण महाभाष्य। 'अथातो धर्मजिज्ञासा,' 'अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्'। यो पूर्वमीमंसा। 'अथातो धर्म व्याख्यास्यामः', १।१।१ 'अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः'।**

—यो वैशेषिक दर्शन।

'अथ योगानुशासनम्,' १।१ 'अथेत्ययमधिकारार्थः' यो योगशास्त्र।

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः' 'सांसारिक-विषयभोगानन्तरं त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्यर्थः प्रयत्नः कर्तव्यः'।

—यो सांख्यशास्त्र।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'। चतुष्टयसाधनसंपत्त्यनन्तरं ब्रह्मजिज्ञास्यम्॥ —यो वेदान्त सूत्र यो

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत'।

—यो छान्दोग्य उपनिषद्को १।१।१ वचन हो।

ओमित्येतदक्षरमिद सर्व तस्योपव्याख्यनम्'।

—यो माण्डूक्य उपनिषद्को आरम्भको वचन हो।

यस्तै अरू ऋषिमुनिका ग्रन्थहरूमा पनि ओम्' र **'अथ'** शब्द लेखिएका छन्, त्यस्तै **'अग्नि, इट्, अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति'** यी शब्दहरू चारै वेदका आदिमा लेखिएका छन्। 'श्री गणेशाय नमः' आदि शब्द कतै छैनन्। वैदिक पुरुषद्वारा वेदको आरम्भमा सिकिने र पढिने गरिएको **'हरिः ओम्'** पौराणिक र तान्त्रिकहरूले मिथ्या कल्पनाबाट सिकेका हुन्। वेदादि शास्त्रहरूमा **'हरि'** शब्द आदिमा कतै छैन। यसकारण **'ओ३म्'** वा अथ' शब्द नै ग्रन्थको आदिमा लेख्नु पर्दछ। यो अलिकतिमात्र ईश्वरको विषयमा लेखियो। यसपछि शिक्षाको विषयमा लेखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषविभूषित ईश्वरनामविषये प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १॥

अथ द्वितीय-समुल्लासः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद'।

—यो शतपथब्रह्मणको वचन हो।

वास्तवमा आमा, बुवा र आचार्य यी तीन उत्तम शिक्षक भए भने मानिस ज्ञानवान् हुन्छ। माता, पिता धार्मिक र विद्वान् भएको कुल धन्य र सन्तान पनि भाग्यवान् हुन्छन्। सन्तानलाई आमाबाट प्राप्त भएजति उपदेश र उपकार अरू कसैबाट प्राप्त हुन सक्तैन। सन्तानप्रति आमाले जति प्रेम र हित अरू कोही गर्दैन। यसैले 'मातृमान्' अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'। गर्भाधान देखि विद्या पूर्ण नभएसम्म सदाचरणको उपदेश गर्ने आमा धन्य हुन्। आमा—बाबुले गर्भाधान अघि, पछि र मध्यमा पनि मादक द्रव्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थहरू त्याग गरेर शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम र सुशीलता प्राप्त गराउने घ्यू, दूध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थहरू सेवन गर्नु उचित हुन्छ। यसबाट राजस् र वीर्य्य पनि दोषरहित भई अति उत्तम गुणयुक्त हुन्छ। ऋतुगमन विधि अनुसार रजोदर्शन भएको पाँचौ दिनदेखि सोह्रौं दिन सम्म ऋतुदान गर्ने समय हो। यिनमा रजदर्शनका दिनदेखि आरम्भका चार दिन छोड्नु पर्छ। शेष बाह्र दिनमा एकादशी र त्रयोदशीलाई छोडी बाँकी दश रात्रिमा गर्भाधान गर्नु उत्तम हुन्छ। रजोदर्शनका दिनदेखि सोह्रौं रात्रिपछि भने समागम गर्नु हुन्न। फेरि त्यस्तै ऋतुदान समय नआएसम्म र गर्भ रहेको भए एक वर्षसम्म समागम गर्नु हुदैन। दुबैको शरीरमा आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता भएको र कुनै किसिमको दुःख शोक नभएको बेलामा समागम गर्नुपर्छ। चरक, सुश्रुतमा, बताए अनुशार खान-पान आदि तथा मनुस्मृतिमा लेखिए अनुसार स्त्री र पुरुष प्रसन्नताको व्यवहार गर्नुपर्छ। गर्भाधान पछि स्त्रीले धेरै सावधानीपूर्वक खान-पान र व्यवहार गर्नुपर्छ। त्यसपछि एक वर्षसम्म स्त्रीले पुरुष सँग गर्नुहुन्न र सन्तान जन्म नभएसम्म बुद्धि, बल रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक पदार्थहरू मात्र सेवन गर्नुपर्छ।

'अथ शब्दानुशासनम्,' 'अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते'। यो व्याकरण महाभाष्य। **'अथातो धर्मजिज्ञासा,' 'अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्'।** यो पूर्वमीमंसा। **'अथातो धर्म व्याख्यास्यामः', १।१।१ 'अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः'।**

—यो वैशेषिक दर्शन।

'अथ योगानुशासनम्,' १।१ 'अथेत्ययमधिकारार्थः' यो योगशास्त्र।

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः' 'सांसारिक-विषयभोगानन्तरं त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्यर्थः प्रयत्नः कर्तव्यः'।

—यो सांख्यशास्त्र।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'। चतुष्टयसाधनसंपत्त्यनन्तरं ब्रह्मजिज्ञास्यम्॥ —यो वेदान्त सूत्र यो

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत'।

—यो छान्दोग्य उपनिषद्को १।१।१ वचन हो।

ओमित्येतदक्षरमिद सर्व तस्योपव्याख्यनम्'।

—यो माण्डूक्य उपनिषद्को आरम्भको वचन हो।

यस्तै अरू ऋषिमुनिका ग्रन्थहरूमा पनि ओम्' र '**अथ**' शब्द लेखिएका छन्, त्यस्तै '**अग्नि, इट्, अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति**' यी शब्दहरू चारै वेदका आदिमा लेखिएका छन्। 'श्री गणेशाय नमः' आदि शब्द कतै छैनन्। वैदिक पुरुषद्वारा वेदको आरम्भ सीखिने र पढिने गरिएको '**हरिः ओम्**' पौराणिक र तान्त्रिकहरूले मिथ्या कल्पनाबाट सिकेका हुन्। वेदादि शास्त्रहरूमा '**हरि**' शब्द आदिमा कतै छैन। यसकारण '**ओ३म्**' वा अथ' शब्द नै ग्रन्थको आदिमा लेख्नु पर्दछ। यो अलिकतिमात्र ईश्वरको विषयमा लेखियो। यसपछि शिक्षाको विषयमा लेखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषविभूषित ईश्वरनामविषये प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १॥

अथ द्वितीय-समुल्लासः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद'।

—यो शतपथब्रह्मणको वचन हो।

वास्तवमा आमा, बुवा र आचार्य यी तीन उत्तम शिक्षक भए भने मानिस ज्ञानवान् हुन्छ। माता, पिता धार्मिक र विद्वान् भएको कुल धन्य र सन्तान पनि भाग्यवान् हुन्छन्। सन्तानलाई आमाबाट प्राप्त भएजति उपदेश र उपकार अरू कसैबाट प्राप्त हुन सक्तैन। सन्तानप्रति आमाले जति प्रेम र हित अरू कोही गर्दैन। यसैले 'मातृमान्' अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'। गर्भाधान देखि विद्या पूर्ण नभएसम्म सदाचरणको उपदेश गर्ने आमा धन्य हुन्। आमा—बाबुले गर्भाधान अघि, पछि र मध्यमा पनि मादक द्रव्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थहरू त्याग गरेर शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम र सुशीलता प्राप्त गराउने घ्यू, दूध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थहरू सेवन गर्नु उचित हुन्छ। यसबाट राजस् र वीर्य्य पनि दोषरहित भई अति उत्तम गुणयुक्त हुन्छ। ऋतुगमन विधि अनुसार रजोदर्शन भएको पाँचौ दिनदेखि सोह्रौं दिन सम्म ऋतुदान गर्ने समय हो। यिनमा रजदर्शनका दिनदेखि आरम्भका चार दिन छोड्नु पर्छ। शेष बाह्र दिनमा एकादशी र त्रयोदशीलाई छोडी बाँकी दश रात्रिमा गर्भाधान गर्नु उत्तम हुन्छ। रजोदर्शनका दिनदेखि सोह्रौं रात्रिपछि भने समागम गर्नु हुन्न। फेरि त्यस्तै ऋतुदान समय नआएसम्म र गर्भ रहेको भए एक वर्षसम्म समागम गर्नु हुदैन। दुबैको शरीरमा आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता भएको र कुनै किसिमको दुःख शोक नभएको बेलामा समागम गर्नुपर्छ। चरक, सुश्रुतमा, बताए अनुशार खान–पान आदि तथा मनुस्मृतिमा लेखिए अनुसार स्त्री र पुरुष प्रसन्नताको व्यवहार गर्नुपर्छ। गर्भाधान पछि स्त्रीले धेरै सावधानीपूर्वक खान–पान र व्यवहार गर्नुपर्छ। त्यसपछि एक वर्षसम्म स्त्रीले पुरुष सँग गर्नुहुन्न र सन्तान जन्म नभएसम्म बुद्धि, बल रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक पदार्थहरू मात्र सेवन गर्नुपर्छ।

बच्चा जन्मेपछि राम्रो सुगन्धियुक्त पानीले बालकलाई स्नान गराउनु, नाल काटनु र सुगन्धित घ्यू आदि होम गर्नुको साथै बालक र स्त्रीका शरीर क्रमशः आरोग्य र पुष्ट हुँदै जानेगरी स्त्रीका समेत स्नान, भोजन आदिको यथायोग्य प्रबन्ध गर्नुपर्छ। बालकको आमा वा धाईले उसका दूधमा उत्तम गुण प्राप्त हुने खालका पदार्थ सेवन गर्नुपर्छ। बालकलाई छ दिनसम्म सुत्केरीको दूध ख्वाउनु पर्छ। त्यसपछि धाईले ख्वाउनु, तर धाईलाई बालकको बाबु–आमाले उत्तम पदार्थहरू ख्वाउनु पर्छ। कुनै दरिद्र हुनाले धाई राख्न नसक्ने भए बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य गर्ने औषधिहरू शुद्ध जलमा भिजाएर पकाउनु र दूध बराबर यो पानी मिसाएर बालकलाई पियाउनु पर्छ। जन्मे पछि बच्चा र आमालाई शुद्ध वायु भएको छुट्टै ठाँउमा राख्नु र त्यहाँ सुगन्ध र सुन्दर पदार्थहरू पनि राख्नु, साथै शुद्ध वायु भएको ठाँउमा भ्रमण गराउनु पर्छ। धाई, गाई वा बाख्राको दूध, नपाइएमा परिस्थिति अनुसार उचित व्यवस्था गर्नु राम्रो हुन्छ। नारीका शरीरको अंशबाट बालकको शरीर बनेको हुन्छ, यसैकारण सुत्केरीको शरीर निर्बल हुन्छ, अतः सुत्केरीले दूध ख्वाउन उचित हुँदैन। दूध रोक्न स्तनका छिद्रमा त्यस किसिमका औषधिको लेप गर्नु उचित हुन्छ। यसो गर्दा स्त्री अर्को महिनामा पुनः युवति हुन सक्तछिन्। तबसम्म पुरुषले पनि ब्रह्मचर्यपूर्वक वीर्य्य निग्रह गर्नुपर्छ। यसप्रकार गर्ने स्त्री–पुरुषका उत्तम सन्तान, दीर्घायु र बलपराक्रम बृद्धि भई रहन्छ र सबै सन्तान उत्तम बलपराक्रमयुक्त, दीर्घायु र धार्मिक हुन्छन्। स्त्रीले योनिसङ्कोच, शोधन र पुरुषले वीर्य स्तम्भन गर्नुपर्छ। अनि उत्पन्न हुने सबै सन्तान उत्तम हुनेछन्।

बालकहरूलाई आमाले सन्तान सभ्य र कुनै अङ्गबाट कुचेष्टा नगर्ने गरी उत्तम शिक्षा दिनुपर्छ। बच्चाले बोल्न थालेपछि जिब्रो कोमल र स्पष्ट उच्चारण गर्न सक्ने जसरी हुन्छ, त्यस्तो उपाय गर्नुपर्छ। जुन वर्णको जुन स्थान, प्रयत्न अर्थात् जस्तै 'प' को ओठ स्थान र स्पृष्ट प्रयत्न दुबै ओठलाई मिलाएर बोल्न, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरहरूलाई ठीक–ठीक बोल्न सक्ने गराउनु पर्छ। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा,पद, वाक्य, सहिंता र अवसान भिन्न–भिन्नै सुनिने वा बुझिने होऊन्। बालक अलि–अलि बोल्न, र बुझ्न सक्ने भएपछि सुन्दर वाणी, साना, ठूला, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदिसँग बोल्ने, उनीहरूसँग व्यवहार, बस–उठ गर्न आदि पनि शिक्षा दिनुपर्छ, जसबाट अयोग्य व्यवहार नभई सर्वत्र प्रतिष्ठा बढ्दै जाओस्। जुन

उपायले सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय र सत्संगमा रूचि राख्ने हुन्छन् त्यस्तो प्रयत्न गर्दै गर्नुपर्छ। बालकले व्यर्थ क्रीडा, रोदन, हास्य,लडाँई, शोक, हर्ष, कुनै पदार्थमा लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष आदि गर्न नपाऊन्। उपस्थेन्द्रियको स्पर्श र मर्दनले वीर्यको क्षीणता, नपुंसकता र हातमा दुर्गन्ध पनि हुन्छ, यसकारण उसको स्पर्श न गरून्, साथै सदा सत्य भाषण, शौर्य, प्रसन्नमुख आदि गुणहरू जसरी प्राप्त हुन्छन्, त्यस्तो शिक्षा दिनु पर्छ।

केटा–केटी पाँच–पाँच वर्षका भएपछि देवनागरी अक्षरहरू र अरू देशका भाषाका अक्षरहरू पनि अभ्यास गराउनु पर्छ। त्यसपछि राम्रो शिक्षा—विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा,प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनि, भृत्य आदिसँग के कस्तो व्यवहार गर्नुपर्छ भन्ने कुराका मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य पनि अर्थ सहित कण्ठस्थ गराउनु पर्छ। सन्तान कुनै धूर्त ठगहरूको फन्दमा नपरून् र भूत–प्रेत आदि मिथ्या कुराहरूमा विश्वास नगरून् भन्ने किसिमका उपदेशका साथै विद्या धर्म विरूद्ध भ्रान्ति जालमा खसाल्ने व्यवहारहरूका पनि जानकारी केटा–केटीलाई दिनुपर्छ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥

—मनुस्मृति ६।६५

अर्थ—गुरुवर्गको प्राणान्तपछि मृतक शरीर अर्थात् प्रेतको दाह गर्ने शिष्य वा सन्तान र प्रेतहार अर्थात् मुर्दा बोक्नेहरू समेत दशौं दिनमा शुद्ध हुन्छन्।

शरीर दाह भई सकेपछि त्यसको नाम भूत हुन्छ अर्थात् त्यो अमुकनामको पुरुष थियो भन्ने बुझिन्छ। उत्पन्न भएमा सबै वर्तमानमा मरे वा नष्ट भएमा ती सबै भूतस्थ हुँदा तिनको नाम भुत हो यी ब्रह्मा देखि आजसम्मका विद्वान्हरूको सिद्वान्त हो। तर शङ्का, कुसङ्ग र कुसंस्कार भएकाहरूलाई भने भय, शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक हुन्छन्।

जब कुनै प्राणी मर्दछ तब उसको जीव पाप, पुण्यके वशमा परेर परमेश्वरको व्यवस्था अनुसार सुख दुःख भोग्नका निम्ति अर्को जन्म धारण गर्दछ।

यस अविनाशी परमेश्वरका व्यवस्थालाई के कसैले नष्ट गर्न सक्दछ? अज्ञानीहरू वैद्यकशास्त्र अथवा पदार्थविद्या पढ्न, सुन्न र

विचार गर्न तर्फ नलागेर सन्निपातज्वर आदि शारीरिक र उन्माद आदि मानिसक रोगहरूलाई भूत, प्रेत भन्दछन्। यी रोगहरूलाई औषधी सेवन र पथ्य आदि उचित व्यवहार गर्नको सट्टा धूर्त, पाखण्डी , महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छ, आदि माथि विश्वास गरेर अनेक प्रकारका ढोंग, छल, कपट, उच्छिष्ट भोजन, डोरो, धागो आदि मिथ्या मन्त्र, यन्त्र बाँध्ने, बाँध्न लगाउने गर्दै आफ्नो धनको नाश, सन्तान आदिको दुर्दशा र रोगहरूलाई बढाएर दुःख दिन्छन्। गाँठका पक्का बुद्धिका अन्धा व्यक्तिहरूले ती दुर्बुद्धि, पापी, स्वार्थीहरूसँग 'महाराज' यो केटा, केटी, स्त्री वा पुरुषलाई नजाने के भयो? भनी सोद्धा उनीहरू—'यसको शरीरमा ठूलो भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देव वा देवी आएको छ, उपाय नगरी यिनीहरू छुट्ने छैनन्। प्राण पनि लिन सक्छन्। यति भेटी वा दक्षिणा दिन्छ भने मन्त्र, जप, पुरश्चरणद्वारा हामी यसलाई वचाइदिन्छौं' भन्दछन्। अनि ती अन्धा र उनका सम्बन्धीहरू भन्दछन्—'महाराज' हाम्रो सर्वस्वै किन नजाओस् तर यसलाई बिसेक पारिदिनोस्'। तब त्यस्ता धूर्तले चिताए जस्तै भई हाल्दछ। ती धूर्त भन्दछन्—'ल यति सामान' यति दक्षिणा देउतालाई भेटी अनि ग्रहदान गराउनोस्। ती दुष्टहरू ढोल मृदङ्ग, थाल आदि लिएर रोगीको अगाडि गाउन, बजाउन, नाच्न र उफ्र न थाल्दछ्। तिनैमा एउटा पाखण्डी उन्मत्त भएर नाच्दै र उफ्र दै म यसको प्राणै लिन्छु आदि भन्न थाल्दछन्। अनि ती अन्धा त्यस भङ्गी, चमार आदि नीचका पाउमा परेर भन्दछ्— 'तपाई चाहेजति लिनुहोस् तर यसलाई बचाईदिनुहोस् प्रभु' तब त्यो धूर्त फेरि भन्दछ, म हनुमान हूँ, असल मिठाई ल्याउनुहोस्, तेल, सिन्दूर, र सवा मन को रोटी ल्यानुहोस् अनि रातो लङ्गोटी ल्यानुहोस् 'म देवी वा भैरव हुँ, पाँच बोतल मदिरा ले, बीस कुखुरा, पाँच बोका, मिठाई र वस्त्र ल्यानुहोस्'। जब ती रोगीका सम्बन्धी 'हजुर' जे जे भन्नुहुन्छ त्यही त्यही टक्रयाउँछु, भन्दछ। तब त्यो धूर्त पागल नाच्न र उफ्र न थाल्दछ। तर कुनै बुद्धिमानले त्यस्ताको भेटी पाँच जुत्ता, डण्डा र थप्पड अनि लात घुँसा मारे देखि त्यो भैरव देवी वा हनुमान् तुरुन्त प्रसन्न भएर भागिहाल्दछ। किनभने यो सबै तिनीहरूको ढोंग धन सम्पत्ति हरणका लागि गरिएको षड्यन्त्र मात्र हो।

त्यस्तै कुनै ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिष जान्ने भनाउँदाहरूका अगाडि गएर 'यसलाई के भएको छ? भनी सोद्धा 'यसमाथि सूर्य आदि क्रूर

ग्रह चढेका छन्। तिमी यसको शान्ति, पूजा, पाठ, दान गराउँछौ भने यसलाई निको हुन्छ, नत्रभने धेरै पीडित भएर मर्न पनि सक्छ' भन्दछ।

उत्तर—भन्नुहोस् ज्योतिषीजी, जस्तो यो पृथ्वी जड़ छ त्यस्तै सूर्य्यादि लोक पनि हुन्। यिनीहरू ताप र प्रकाशादि बाहेक केही पनि दिन सक्तैनन्। यिनीहरू के चेतन हुन् र रिसाउँदा दुःख र खुसाउँदा सुख दिने?

प्रश्न—यस संसारमा जो राजा–प्रजा सुखी–दुःखी भई रहेछन्, यो सबै के ग्रहहरूकै फल होइन र?

उत्तर—होइन, यो सब पाप पुण्यको फल हो।

प्रश्न—त के ज्योतिषीशास्त्र झूठो हो?

उत्तर—होइन, त्यसमा भएका अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या सब सत्य र फललीला सबै झूठो हो।

प्रश्न—के यो जन्मपत्र पनि निष्फल हो त?

उत्तर—हो, त्यो जन्मपत्र होइन, त्यसलाई शोकपत्र भन्नु उचित होला। किनभने सन्तान जन्मदा सबैलाई आनन्द लाग्दछ। तर त्यो आनन्द जन्मपत्र बनाएर त्यसको फल नसुनेसम्म मात्र हुन्छ। पुरेतले जन्मपत्र बनाउने कुरा गर्दा बालकका आमा–बुबा पुरेहितसँग महाराज धेरै राम्रो जन्मपत्र बनाईदिनु होला भन्दछन्। धनवान भए धेरै रातो पहेंला रेखाहरूले चित्र विचित्र र निर्धन भए साधारण जन्मपत्र बनाएर सुनाउन ल्याईन्छ। तब बालकका बाबु–आमा यसको जन्मपत्र राम्रो त छ? भनी ज्योतिषीजीसँग सोद्धछन्। ज्योतिषी भन्दछ—'जे–जस्तो छ सुनाई दिन्छु। यसका जन्मग्रह र मित्रग्रह पनि धेरै राम्रा छन्। यसको फल धनाढ्य र प्रतिष्ठावान् हुनु हो। जुन सभामा बस्ने छ त्यहाँ सबैमाथि यसको प्रभाव पर्ने योग छ। शरीरमा आरोग्य र राज्य, मान प्राप्त गर्ने देखिन्छ'। यस्ता कुरा सुनेर पिता आदि भन्दछन्, अहा! ज्योतिषीजी, तपाई धेरै राम्रो हुनुहुँदो रहेछ। ज्योतिषी यस्ता कुराले मात्र आफ्नो कार्य सिद्ध नहुने बुझेर फेरि भन्छ—'यी ग्रह त धेरै राम्रा छन् तर यी ग्रह भने क्रूर छन्, अर्थात् अमुक–अमुक ग्रहका योगले आठ वर्षमा यसको मृत्युयोग छ'। यस्तो सुनेर बाबु–आमा आदि पुत्र जन्मको आनन्द छोडेर शोक सागरमा डुबेर भन्दछन्—'महाराज, अब हामी के गरौं'? ज्योतिषी भन्दछ, 'उपाय गर'। गृहस्थी सोद्धछ, 'के उपाय गरौं'? ज्योतिषी बताउँछ, 'यस्तो यस्तो दान गर। ग्रहका मन्त्रको जप गराऊ साथै नित्य ब्रह्मणहरूलाई भोजन गरायौ भने नवग्रहको विघ्न

हट्न सक्छ भन्ने अनुमान छ'। मरिहाल्यो भने भनौंला, 'के गर्ने परमेश्वरमाथि कसैको दया चल्दैन। हामीले सक्तो प्रयत्न गर्यौं तिमीले गरायौ तर त्यसका कर्मै त्यस्तै थिए'। अनि फेरि बाँच्यो भने, 'हेर, हाम्रा मन्त्र, देवता र ब्राह्मणहरूको कस्तो शक्ति रहेछ ? तिम्रो बालकलाई बचाइदियौं' भनौंला भन्ने उद्देश्यले उनीहरू अनुमान शब्दको प्रयोग गर्दछन्। यहाँ के कुरा हुनुपर्दछ भने यिनीहरूको जपपाठबाट केही नभएमा खर्च भएको भन्दा दोब्बर रुपैयाँ ती धूर्तहरूबाट लिनु पर्छ र बाँच्यो भने पनि लिनु पर्दछ। किनभने जसरी ज्योतिषीहरूले यसका कर्म र परमेश्वरको नियम तोड्ने सामर्थ्य छैन भनेका थिए, त्यस्तै गृहस्थले पनि, यो आफ्ना कर्म परमेश्वरको नियमले बाँचेको हो तिम्रा कामकुराले हैन, भन्नुपर्दछ। तेस्रो गुरू आदि पनि पुण्य दान आदि गराएर आफैं लिन्छन् भने तिनलाई पनि त्यही उत्तर दिनुपर्छ, जुन ज्योतिषीहरूलाई दिइएको छ।

अब रह्यो शीतला र मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि। यी पनि यस्तै ढोंग मच्चाउँछन्। कुनै भन्छन् 'हामीले मन्त्र पढेर डोरा या यन्त्र बनाएर दियौं भने हाम्रा देवता र पीर त्यस मन्त्र यन्त्रका प्रभावबाट उसलाई केही बिघ्न हुन दिंदैनन्। तिनलाई त्यही उत्तर दिनुपर्छ, 'के तिमी मृत्यु, परमेश्वरका नियम र कर्मबलबाट पनि बचाउन सक्नेछौं ? तिमीले यस्तो गर्दगर्दै पनि कति बालकहरू मर्दछन् र तिम्रा घरमा पनि मर्दछन् र के तिमी आफैं पनि मृत्युबाट बच्न सक्नेछौ ?' तब तिनीहरू केही पनि बोल्न सक्तैनन् र ती धूर्तहरू ''अब यहाँ हाम्रो केही सीप लाग्दैन'' भन्ने कुरा बुझ्दछन्। यी सबै मिथ्या व्यवहारहरूलाई छोडेर धार्मिक, सबै ठाउँका उपकारकर्ता, निष्कपट भई सबैलाई विद्या पढाउने, उत्तम विद्वान्हरूको प्रत्युपकार गर्ने कामलाई कहिल्यै छोड्नु हुँदैन। जसरी उनीहरू जगत्को उपकार गर्दछन्। यस्तै जत्ति पनि लीला, रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि गर्नु भनिन्छ तिनलाई पनि महापामर सम्झनु पर्छ।

आफ्ना सन्तान कसैका भ्रमजालमा परेर दु:ख नपाऊन् भन्ने उद्देश्यले यस्ता मिथ्या कुराहरू उपदेश वा जानकारी बाल्यावस्थमा नै सन्तानहरूका हृदयमा भरिदिनु पर्दछ। वीर्यको रक्षामा आनन्द र लागुपदार्थको सेवनबाट दु:ख प्राप्त हुने कुरा पनि बताईदिनु पर्दछ। जस्तै हेर, जसका शरीरमा वीर्य सुरक्षीत रहन्छ, त्यसलाई आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि बढेर धेरै सुख प्राप्त हुन्छ। वीर्यको रक्षाका लागि ब्रह्मचारीहरूले

विषयभोगका कथा, विषयीमानिसको सम्पर्क, विषयीको ध्यान, स्त्रीको दर्शन,एकान्तसेवन, संभाषण र स्पर्श आदि कर्म देखि पृथक् रेर उत्तम शिक्षा र पूर्ण विद्या प्राप्त गर्नुपर्दछ शरीरमा वीर्य नभएको व्यक्ति नपुंसक, महाकुलक्षणी र प्रमेह रोगी हुन्छ। त्यो व्यक्ति दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल,पराक्रम आदि गुणरहित भएर नष्ट हुन पुग्दछ। तिमीहरूले सुशिक्षा, विद्याग्रहण र वीर्यरक्षा गर्ने यो समय गुमायौ भने यस जन्ममा यस्तो अमूल्य समय फेरि पनि प्राप्त हुनेछैन। जबसम्म गृहकर्म गर्ने हामीहरू बाँचेका छौं तब सम्म मात्र तिमीहरूले विद्याग्रहण र शरीरको बल बढाउनु पर्दछ'। यस्तै किसिमको अरू शिक्षा पनि आमा–बाबुले दिने गर्नु पर्दछ।

यसैले 'मातृमान् पितृमान्' शब्दको ग्रहण उक्त वचनमा गरिएको हो। अर्थात् जन्मदेखि पाँचौंवर्षसम्म आमाले र छैठौं देखि आठौं वर्षसम्म पिताले बालकलाई शिक्षा प्रदान गर्नु पर्दछ।

अनि नवौं वर्षको आरम्भमा द्विजले आफ्ना सन्तानको उपनयन गराएर शिक्षा र विद्यादान गर्ने पूर्ण विद्वान् र पूर्ण विदुषी भएका केटा र केटीको छुट्टा छुट्टै आर्यकुलमा आफ्ना बालबालिकालाई पठाइदिनुपर्छ। शूद्र आदि वर्णले भने उपनयन नगरिकनै विद्याभ्यास निम्ति आफ्ना सन्तानलाई गरूकुलमा पठाईदिनुर्छ।

पढाउने कुरामा लाड्प्यार गर्नेको भन्दा कठोर व्यवहार गर्नेको सन्तान विद्वान्, सभ्य र सुशिक्षित हुन्छन्। यस कुरामा व्याकरण महाभाष्यको प्रमाण छ—

सामृतैः पाणिभिर्ध्नन्ति गुरबो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

अर्थ—सन्तान र शिष्यलाई ताडना गर्ने आमा, बाबु वा आचार्यले आफ्ना सन्तान वा शिष्यलाई अमृत पिलाइरहेका हुन्छन् भने लाड प्यार गर्नेहरूले विष पिलाएर नष्ट भ्रष्ट गर्दछन्। किनभने लाड गर्नाले सन्तान वा शिष्य दुर्गुणी र ताडनाले गुणयुक्त हुन्छन्। यस्तै सन्तान वा शिष्यहरूले पनि ताडनाले प्रशन्न र लाडले अप्रशन्न हुने गर्नु पर्दछ। तर आमा बुबा र अध्यापकहरूले कहिल्यै ईर्ष्या, द्वेष आदिले ताडन गर्नु हुँदैन र बाहिरबाट भय देखाएतापनि भित्री मनमा कृपादृष्टि राख्नु पर्दछ।

अन्य शिक्षाको साथै चोरी, चकारी, आलस्य, प्रमाद, मादकद्रव्यसेवन, मिथ्याभाषण, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषहरूलाई छोड्ने र सत्य आचरणलाई ग्रहण गर्ने शिक्षा दिनु पर्दछ। किनभने

कसैले कसैको अगाडि एक पल्ट चोरी, चकारी , मिथ्याभाषण आदि कर्म गर्यो भने त्यसको प्रतिष्ठा अर्को व्यक्ति सामु मृत्युपर्यन्त हुँदैन। जस्तो हानि मिथ्याप्रतिज्ञा गर्नेको हुन्छ, यस्तो अरू कसैको हुँदैन। यसैले जो सँग जस्तो प्रतिज्ञा गरिन्छ, त्यस्तै पूरा पनि गर्नु पर्दछ। अर्थात् जस्तै कुनैले कसैसँग म तिमीलाई वा तिमी मलाई अमुक समयमा भेट्नेछु वा भेट्नु अथवा अमुक वस्तु अमुक समयमा म तिमीलाई दिनेछु भन्यो र त्यस्तै पूरा गरेन भने त्यसको विश्वास कसैले पनि गर्ने छैन। यस कारण सबैले सधैं सत्य भाषण र सत्य प्रतिज्ञायुक्त हुनु पर्दछ। कसैले पनि अभिमान गर्नु उचित हुँदैन। किनभने 'अभिमानः श्रियं हन्ति' यो विदुरनीतिको वचन हो। अभिमान अर्थात् अहङ्कार सबै शोभा र लक्ष्मी नाश गर्ने हुनाले अभिमान गर्नु हुँदैन। छल, कपट, वा कृतघ्नताले आफ्नै हृदय दुःखित हुन्छ भने अरूको बारेमा के भन्नु। भित्र र बाहिर अर्कालाई मोह वा भ्रममा पारेर, अर्कालाई हुने हानिप्रति ध्यान नदिई आफ्नै स्वार्थ सिद्ध गर्नु छल वा कपट भनिन्छ। कसैले गरेको उपकारलाई नमान्नु कृतघ्नता भनिन्छ। क्रोध आदि दोष र कटुवचनलाई छोडेर मधुर वचन बोल्ने र धेरै बोल्ने नगर्ने बानी बसाल्नु पर्दछ। आवश्यकता भन्दा धेरै वा थोरै बोल्नु हुँदैन। ठूला–बडाको सम्मान गर्नु पर्छ। ठूलाको अगाडिबाट उठेर उनीहरूलाई उच्च आसनमा बसाल्नु पर्छ। सर्वप्रथम 'नमस्ते' गर्नुपर्छ। उनीहरूका अगाडि उच्च आसनमा बस्नु हुँदैन। सभामा आफ्नो योग्यता अनुसारको आसनमा बस्नु पर्छ, जहाँबाट अरू कसैले नउठाओस। कसैसँग विरोध गर्नु हुँदैन। सम्पन्न र प्रसन्न भएर ग्रहण र दोष त्याग गर्नु पर्छ। सज्जनगुणको सँगत र दुष्टहरूको त्याग गर्नु पर्छ। आफ्ना आमा, बुबा र गुरूको तन, मन र धन आदि उत्तम पदार्थहरूद्वारा प्रीतिपूर्वक सेवा गर्नुपर्छ।

''यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि''

यो तैत्तिरीय उपनिषद्को वचन हो। यसको अभिप्राय आमा, बुबा र गुरूले आफ्ना सन्तान र शिष्यहरूलाई सत्य–सत्य उपदेश गर्नुको साथै ''हामीमा भएका धर्मयुक्त कर्मलाई ग्रहणर दुष्टकर्मलाई परित्याग गर्ने गर'' भन्ने समेत उपदेश दिनुपर्छ। सत्य पाइएका कुराहरूको प्रकाश र प्रचार गर्नुपर्छ। कुनै पाखण्डी, दुराचारी मानिसमाथि विश्वास गर्नु हुँदैन। आमा, बाबु र आचार्यले अह्राएका समस्त उत्तम कर्महरूको यथेष्ट पालन गर्नुपर्छ। जस्तै—आमा बाबुले कण्ठस्थ गराएका धर्म, विद्या, राम्रा आचरण सम्बन्धी श्लोकहरू, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी,

वेदमन्त्र वा अन्य सूत्रहरू पुनः विद्यार्थीहरूलाई अर्थज्ञान गराउनु पर्छ। प्रथम समुल्लासमा व्याख्या गरिए अनुरूप परमेश्वरलाई मान्नु र त्यसको उपासना गर्नुपर्छ। आरोग्य, विद्या र बल प्राप्तहुने किसिमका खान, पान, पहिरन र व्यवहार गर्नु गराउनु पर्छ। अर्थात् जति भोक छ त्यो भन्दा केही कम खाने गर्नुपर्छ। मदिरा, मासु आदिको सेवन गर्नुहुँदैन। थाहा नपाइएको गहिरो पानीमा पस्नु हुँदैन, किनभने जलजन्तु वा कुनै अन्य पदार्थबाट दुःख र पौडन नजान्ने भए डुब्ने समेत सम्भावना हुन्छ। 'नाविज्ञाते जलाशये' यो मनुको वचन हो। थाहा नभएको जलाशयमा पसेर स्नान आदि गर्नु हुँदैन।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं बस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां बदेद्वाचंमनः पूतं समाचरेत्॥

—मनुस्मृति ६.४६

अर्थ—मैले दृष्टि राखेर अग्लो होचो ठाउँ हेरेर हिंड्नु, कपडाले छानेर पानी पिउनु, सत्यले पवित्र गरेको वचन बोल्नु र मनले विचार गरेर आचरण गर्नुपर्छ।

माता शत्रुः पिता बैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

यो कुनै कविको वचन हो। आफ्ना सन्तानलाई विद्या प्राप्त नगराउने बाबु–आमा उनका शत्रु नै हुन्। विद्याप्राप्त नगरेको त्यस्तो सन्तान विद्वानहरूको सभामा हाँसको बथानमा बकुल्लो झैं तिरस्कृत र कुशोभित हुन्छ। आफ्ना सन्तानलाई तन, मन, धनले विद्या, धर्म, सभ्यता र उत्तम शिक्षायुक्त बनाउनु नै आमा–बाबुको कर्तव्यकर्म, परमधर्म र कीर्ति राखने काम हो।

यो बालशिक्षाविषयमा केही लेखियो, यत्तिले बुद्धिमान्हरू धेरै बुझ्नेछन्।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये
द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ २ ॥

अथ तृतीय–समुल्लासः

अथाऽध्ययनाऽध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः

अब तेस्रो समुल्लासमा पढ्ने पढाउने प्रकारबारे लेखिन्छ। सन्तानलाई उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म र स्वाभावरूपी आभूषणहरू धारण गराउनु आमा, बाबु, गुरू र सम्बन्धीहरूले गर्ने मुख्य कार्य हो। सुन, चाँदी, माणिक, मोती, मुंगा आदि जडिएका आभूषणहरू धारण गराएर मानिस कहिल्यै सुभूषित हुनसक्तैन। आभूषणहरू धारण गर्दा त देहाभिमान, विषयासक्ति, चोर आदिको भय र मृत्यु पनि हुने सम्भावना रहन्छ। आभूषणहरूकै कारण दुष्टहरूका हातबाट बालकहरू मृत्यु समेत भएका कुरा संसारमा देखिन आएको छ।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेनसुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः॥

विद्याविलासमै लागिरहने मन भएका, सुन्दर शील—स्वभावयुक्त, सत्यभाषण आदि नियम पालन गर्ने, अभिमान र अपवित्रता नभएका, अरूको मलिनता नाश गर्ने,सत्य उपदेश र विद्यादान आदिले संसारहरूका दुःख, बाधा हटाउने सुभूषित अनि वेदविहित कर्मद्वार परोपकारमा तत्पर रहने नर नारी धन्य हुन्। यसकारण आठ वर्षका हुँदा केटालाई केटाको र केटीलाई केटीको पाठशालामा पठाइदिनु पर्दछ। दुष्टाचारी अध्यापक वा अध्यापिकाबाट शिक्षा दिलाउनु उचित हुँदैन। पूर्णविद्यायुक्त, धार्मिक व्यक्ति नै पढाउन र शिक्षा दिन योग्य हुन्छन्।

द्विजले आफ्नो घरमा बालकलाई यज्ञोपवीत र कन्यालाई पनि यथायोग्य संस्कार गरेर उपर्युक्त गुरूकुल अर्थात् आ–आफ्नो पाठशालामा पठाइदिनु पर्दछ। केटा र केटीका पाठशाला एकान्त ठाउँमा र कम्तिमा एक अर्काको दुई कोस फरकमा हुनु पर्दछ। अध्यापक, अध्यापिका, नोकर,चाकर आदि कन्या पाठशालामा स्त्री र पुरुष पाठशालामा पुरुष नै हुनुपर्दछ। कन्या पाठशालामा पाँच वर्षका केटा र पुरुष पाठशालामा पाँच वर्षकी केटी पनि जान नपाऊन्। अर्थात् तिनीहरू ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहुन्जेल एक अर्काले स्त्री वा पुरुषलाई दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीडा, विषय ध्यान र संगत

यी आठ प्रकारका मैथुनबाट टाढै रहनुपर्दछ। अध्यापकहरूपनि तिनीहरूलाई यी कुराबाट बचाउने गरून्, जसबाट उनीहरू उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर र आत्माले बलयुक्त भई नित्य आनन्द बढाउन गाउँ–शहरबाट पाठशाला चारकोस टाढा हुनुपर्दछ। राजकुमार, राजकुमारी अथवा दरिद्र सन्तानसँग अथवा सन्तान आमा,बाबुसँग भेट्न नपाऊन्। एक अर्कासँग पत्रव्यवहारसम्म पनि गर्न नपाऊन्। जसले गर्दा उनीहरू संसारी चिन्तारहित भएर विद्या बढाउन मात्र आफ्नो ध्यान केन्द्रित गर्न सकून्। कतै भ्रमणमा जाँदा कुनै किसिमको कुचेष्टा, आलस्य, प्रमाद आदि नगरून् भन्ने हेतुले एक अध्यापक उनीहरूसँग रहनु पर्दछ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० ७।१५२

पाँच अथवा आठवर्ष पुगेपछि आफ्ना बाल बालिकालाई घरमा राख्न नपाउने, पाठशाला पठाउनै पर्ने र नपठाउने व्यक्ति दण्डित हुने किसिमको राजनियम र जातिनियम हुनुपर्दछ भन्ने यसको अभिप्राय हो। बालकको पहिलो यज्ञोपवीत घरमा र अर्को पाठशालामा आचार्य कुलमा हुनुपर्दछ। आमा, बाबु वा अध्यापकले आफ्ना बाल–बालिकालाई गायत्री मन्त्र अर्थ सहित उपदेश गरिदिनुपर्छ। त्यो मन्त्र हो—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —यजुर्वेद ३६।३

यस मन्त्रका आरम्भमा रहेको '**ओ३म्**' को अर्थ पहिलो समुल्लासमा गरिसकिएको छ, त्यहींबाट जान्नू। अब तीन महाव्याहृतिको अर्थ संक्षेपमा लेखिन्छः—'**भूरिति वै प्राणः**' '**यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः**' सब जगत्को जीवनको आधार, प्राणभन्दापनि प्रिय, स्वम्भू र प्राणको वाचक हुनाले 'भूः' परमेश्वरको नाम हो। 'भुवरित्य–पानः' 'यः सर्व दुःखमपानयति सोऽपानः' जो सबै दुःख रहित छ, जसको सँगले जीव सबै दुःखबाट छुट्तछन् यसैले त्यस परमेश्वरको नाम 'भुवः' हो।'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोते स व्यानः' नानाविधि जगत्मा व्यापक भई सबैलाई धारण गर्ने हुनाले परमेश्वरको नाम 'स्वः' हो। यी तीनै वचन तैत्तिरीय आरण्यकका हुन्।

(सवितुः) '**यः सुनोत्युत्पादयति सर्वंजगत् स सविता तस्य**' जो सबै जगत्का उत्पादक र सबै ऐश्वर्यका दाता हुन्, **(देवस्य)** '**यो**

दीव्यति दीव्यते वा स देवः' जो सर्वसुख दिने र जसलाई प्राप्तगर्ने कामना सबै गर्दछन्, त्यस परमात्माको जो **(वरेण्यं) 'वर्त्तुमर्ह'** स्वीकार गर्न योग्य, अतिश्रेष्ठ, **(भर्गः) 'शुद्धस्वरूपम्'** शुद्धस्वरूप र पवित्रगर्ने चेतन ब्रह्मस्वरूप छ, **(तत्)** त्यसै परमात्माको स्वरूपलाई हामीहरू **(धीमहि) 'धरेमहि'** धारण गरौं। कुन प्रयोजनका निम्ति ? **(यः) 'जगदीश्वरः'** जो सविता देव परमात्मा **(नः) 'अस्माकम्'** हाम्रा **(धियः) 'बुद्धीः'** बुद्धिहरूलाई **(प्रयोदयात्) 'प्रेरयेत्'** प्रेरणा गरोस् अर्थात् दुष्कर्मबाट छुटाएर सत्कर्ममा प्रवृत्त गराओस्।

हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार जगत्पते सकलजगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करूणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदोम्भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति, तद्वयं धीमहि, दधीमहि, धरेमहि, ध्यायेम वा। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह— हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवन्नस्माक धियः प्रचोदयात् ए एवास्माकं पुज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे।

हे मानव! सबै समर्थहरूमा समर्थ, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य-शुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्तस्वभाव, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय गर्ने, जन्म-मरण आदि क्लेशरहित, आकाररहित, सर्वज्ञ, सबैलाई धारण गर्ने, पिता, उत्पादक, अन्न आदिले विश्वको पोषण गर्ने, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगतको निर्माता, शुद्धस्वरूप र प्राप्तिको कामना गर्ने योग्य परमात्माको शुद्ध चेतन स्वरूपलाई नै हामी धारण गरौं। किनभने त्यो अन्तर्यामीस्वरूप परमेश्वर हाम्रो आत्मा र बुद्धिलाई, दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्गबाट हटाएर सत्यमार्गमा चलाओस्। यस्तो परमेश्वरलाई छोडेर अरू कुनै वस्तुको ध्यान हामी नगरौं। किनभने ऊ जत्तिको अरू कोही छैन। उही हाम्रो पिता, राजा, न्यायधीश अनि सबै सुख दिनेवाला हो।

यसरी गायत्री मन्त्रको उपदेश गरेर स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि सन्ध्योपासनाका क्रिया सिकाउनु पर्छ। शरीरका बाहिरी अङ्गहरू शुद्ध र निरोगी होऊन् भनेर सर्वप्रथम स्नान गर्ने उपदेश गर्नुपर्छ, यसकुराको प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—मनुस्मृति ५।१०९

यो मनुस्मृतिको श्लोक हो। पानीले शरीरका बाहिरी अवयव,

सत्य आचरणले मन, विद्या र तप अर्थात् सबै कष्ट सहेर पनि धर्मकै अनुष्ठान गर्नाले जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथ्वी देखि परमेश्वरसम्मका पदार्थ विवेकले बुद्धि, निश्चित नै शुद्ध हुन्छ। त्यसो हुनाले खाना खानु अघि अवश्य नुहाउनु पर्दछ। अब प्राणायामको प्रमाण—

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।

—यो योगशास्त्रको सूत्र हो।

जब मानिस प्राणायाम गर्दछ, तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तरकालमा अशुद्धिको नाश र ज्ञानको प्रकाश हुँदैजान्छ। मुक्ति नभएसम्म उसको आत्माको ज्ञान निरन्तर बढ्दै जान्छ।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

—मनुस्मृति ३।७२

यो मनुस्मृतिको श्लोक हो। अग्निमा पोल्दा सुन आदि धातुहरूका मल नष्ट भएर शुद्ध भए जस्तै प्राणायाम गर्नाले मन आदि इन्द्रियहरूका दोष क्षीण भएर निर्मल हुन्छन्।

प्राणायामको विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। —योगसूत्र १।३४

जसरी वान्ता हुँदा पेटभित्रको अन्न-पानी अत्यन्त वेगले बाहिर निस्कन्छ, त्यसैगरी प्राणलाई बलपूर्वक बाहिर निकालेर यथाशक्य बाहिरै रोक्नुपर्छ। श्वास लिनैपर्ने जस्तो लागेमा मूलेन्द्रियलाई मास्तिर तानेर फेरि बाहिर फाल्नुपर्छ। मूलेन्द्रियलाई तानिराखेसम्म श्वास बाहिर रहन्छ। यसरी श्वास धेरै बेरसम्म बाहिर रहन सक्तछ। कठिनाइ अनुभव हुन थाल्दा बिस्तारै वायु भित्र तानेर सामर्थ्य र इच्छा अनुसार त्यही क्रम दोहोर्याउनु पर्छ। मनमाचाहिं **'ओ३म्'** को जप गर्दै जानुपर्छ। यसो गर्नाले आत्मा र मन पवित्र र स्थिर हुन्छन्। पहिलो 'बाह्यविषय' अर्थात् बाहिरै बढी रोक्नु, दोस्रो **'आभ्यन्तर'** अर्थात् भित्र प्राणलाई जति रोक्न सकिन्छ त्यति रोक्नु, तेस्रो **'स्तम्भवृत्ति'** अर्थात् एकैपल्ट प्राणलाई जहाँको तहाँ यथाशक्ति रोक्नु, र चौथो 'बाह्यान्तराक्षेपी' अर्थात् श्वास भित्रबाट बाहिर निस्कन लाग्दा निस्कन नदिन प्राण बाहिरबाट भित्र लिनु र बाहिरबाट भित्र आउन लाग्दा भित्रबाट श्वासलाई बाहिर तर्फ धक्का दिएर रोक्दै जानु, यसरी एक अर्काको विपरीत क्रिया गर्ने गर्नाले दुवैको गति रोकिएर प्राण आफ्नो वशमा हुनाले मन र इन्द्रियहरू पनि स्वाधीन हुन्छन्। बल पुरुषार्थ बढेर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्मरूप अनि धेरै कठिन र सूक्ष्म विषयलाई पनि शीघ्र ग्रहण गर्न सक्ने हुन्छ। यसबाट

मनुष्यको शरीरमा वीर्य वृद्धि भएर ऊ बलवान्, पराक्रमी, जितेन्द्रिय र सबै शास्त्रलाई थोरै समयमा बुझ्न सक्ने हुन्छ। महिलाले पनि यस्तै प्रकारले योगाभ्यास गर्नु पर्दछ।

खान, पान, पहिरन, बसउठ् गर्ने, बोलचाल गर्ने र साना–ठूलासँग यथायोग्य व्यवहारगर्न पनि उपदेश दिनुपर्छ।

सन्ध्योपासन, यसलाई ब्रह्मयज्ञ पनि भन्दछन्। कण्ठदेखि हृदयसम्म पुग्नेगरी, न धेरै न थोरै पानी हत्केलामा लिएर हत्केलाको मूलमा ओठ लगाएर आचमन गर्नुपर्छ। यसले कण्ठको कफ र पित्तको केही नाश हुन्छ। त्यसपछि मार्जन अर्थात् माझी र साहिंली औंलाको टुप्पोले नेत्र आदि अङ्गहरूमा जल छर्कनुपर्छ। यसो गर्दा आलस्य हट्दछ। आलस्य नभए अथवा पानी उपलब्ध नभए नगरे पनि हुन्छ। यसपछि मन्त्र समेतको प्राणायाम, मनले परिक्रमा, उपस्थान अनि परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासनाको तरीका सिकाउनु पर्छ। त्यसपछि 'अघमर्षण' अर्थात् पाप गर्ने इच्छा पनि कहिल्यै गर्नुहुन्न। यो सन्धोपासन एकान्त ठाउँमा एकाग्रचित भएर गर्नुपर्छ।

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमाश्रितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

—मनुस्मृति २.१०४

यो मनुस्मृतिको भनाइ हो। वनमा अर्थात् एकान्त स्थानमा गएर सावधानीपूर्वक, पानी नजीकमा बसेर नित्यकर्म गर्दै सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र उच्चारण, अर्थज्ञान र त्यस अनुसार आफ्नो चालचलनलाई बनाउनु पर्छ, तर यो जप मनमनै गर्नु राम्रो हुन्छ।

दोस्रो देवयज्ञ—यो अग्निहोत्र र विद्वानहरूको सँगति तथा सेवा गर्नु हो। सन्ध्या र अग्निहोत्र बिहान–वेलुकी दुई समयमात्र गर्नुपर्छ। दिन र रातको सन्धिवेला दुईमात्र छन्। कम्तीमा एक घण्टा ध्यान अवश्य गर्नुपर्छ। जसरी समाधिस्थ भएर योगीहरू परमात्माको ध्यान गर्दछन्, त्यसैगरी सन्ध्योपासना पनि गर्ने बानी बसाल्नु पर्छ। यस्तै अग्निहोत्र गर्ने समय पनि सूर्योदय पछि र सूर्यास्त भन्दा अगावै हो। यस निम्ति एउटा कुनै धातु अथवा माटोमाथि १२ वा १६ अँगुल चारपाटे, त्यत्ति नै गहिरो र पिंधमा ३ वा ४ अँगुल नाप भएको वेदी
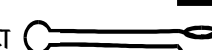
यसरी बनाउनु पर्छ अर्थात् माथिजत्ति फराकिलो छ त्यसको चौथाइ तल पिंधमा रहोस्। त्यसमा श्रीखण्ड, पलास वा आँप आदि उत्तम काठका टुक्रा वेदीको परिमाण अनुसार साना–ठूला गरेर राख्नु

पर्छ। त्यसको माझमा अग्नि राखिर फेरि त्यसमा समिधा अर्थात् पूर्वोक्त दाउरा राख्नु पर्छ। एउटा प्रोक्षणीपात्र, एउटा प्रणीतापात्र, एउटा आज्यस्थली अर्थात् घ्यूराख्ने भाँडो र एउटा चम्चा सुन, चाँदी वा काठको तयार गरेर प्रणीता र प्रोक्षणीमा जल र घृतपात्र घ्यू राखेएर तताउनुपर्छ। प्रणीता पानी राख्न र प्रोक्षणी हात धुंदा पानी लिन सजिलाको लागि हो। पछि त्यस घ्यूलाई राम्ररी हेरेर यी मन्त्रहरूले होम गर्नुपर्छ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भूवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

इत्यादि अग्निहोत्रका प्रत्येक मन्त्रलाई पढेर एक एक आहुति दिनुपर्छ। धेरै आहुति दिनुपर्छ भने—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

यस मन्त्र र पूर्वोक्त गायत्री मन्त्रले आहुति दिनुपर्छ। 'ओ' 'भूः' र 'प्राण' आदि यी सबै नाम परमेश्वरका हुन्। यिनको अर्थ भनिसकिएको छ। 'स्वाहा' शब्दको अर्थ जस्तो ज्ञान आत्मामा छ त्यस्तै जिब्रोले बोल्नु, विपरीत नबोल्नु हो। जसरी परमेश्वरले सबै प्राणिहरूका सुखका निम्ति यी सबै जगत्का पदार्थहरू रचेको छ त्यस्तै मानिसले पनि परोपकार गर्नु गर्दछ।

प्रश्न—होमबाट के उपकार हुन्छ ?

उत्तर—दुर्गन्धयुक्त वायु र जलबाट रोग, रोगबाट प्राणिहरूलाई दुःख, त्यस्तै सुगन्धित वायु तथा जलबाट आरोग्य र रोगनष्ट हुनाले सुख प्राप्त हुन्छ भन्ने कुरा सबैलाई थाहा छ।

प्रश्न—श्रीखण्ड आदि घसेर कसैलाई लगाउन दिए अथवा घ्यू खान दिएमा ठूलो उपकार हुन सक्थ्यो। आगोमा हालेर व्यर्थ नष्ट गर्नु बुद्धिमान व्यक्तिहरूको काम होइन।

उत्तर—तिमीले पदार्थ विद्या जानेका भए यस्ता कुरा गर्ने थिएनौ। किनभने कुनै द्रव्यको अभाव हुँदैन। हेर, जहाँ होम हुन्छ त्यहाँ भन्दा टाढा बसेका व्यक्तिहरूले पनि बास्ना लिन पाउँछन्, त्यस्तै दुर्गन्ध पनि लिइन्छ। अग्निमा हालेको पदार्थ सूक्ष्म भई फैलिएर वायुसँग टाढा–टाढा पुगेर दुर्गन्ध हटाउँछ भन्ने कुरा यत्तिकैबाट बुझ्नु पर्छ।

प्रश्न—यस्तो हो भने केसर, कस्तुरी, सुगन्धित पुष्प र अत्तर आदि घरमा राख्नाले वायु सुगन्धित भई सुखकारक हुँदैन र?

उत्तर—त्यस सुगन्धमा घर भित्रका वायुलाई बाहिर निकालेर शुद्ध वायु प्रवेश गराउने सामर्थ्य हुँदैन। किनभने त्यसमा भेदक शक्ति हुँदैन। त्यस वायु र दुर्गन्धयुक्त पदार्थलाई छिन्न भिन्न र हलुको गरेर बाहिर निकालेर पवित्र वायु भित्र प्रवेश गराउने सामर्थ्य अग्निमा मात्र छ।

प्रश्न—मन्त्र पढेर होम गर्नुको चाहिं के प्रयोजन हो त?

उत्तर—मन्त्रका व्याख्याबाट होमबाट हुने फाइदाको ज्ञान हुन्छ। मन्त्रहरूलाई बारबार उच्चारण गर्दा ती याद रहन्छन्। वेद पुस्तकहरूको पठन–पाठन र रक्षा पनि हुन्छ।

प्रश्न—के होम नगर्दा पाप लाग्छ?

उत्तर—हो, लाग्दछ। किनभने जुन मानिसका शरीरबाट जति दुर्गन्ध उत्पन्न भई वायु र जललाई विगारेर रोग उत्पत्तिको कारण भएर प्राणिहरूलाई दुःख दिन्छ,त्यत्ति नै पाप त्यस मानिसलाई लाग्दछ। यसकारण पाप निबारणका निम्ति त्यत्ति वा त्यो भन्दा बढी सुगन्ध वायु र जलमा फैलाउनु पर्दछ। ख्वाउने पिलाउने गर्दा त्यसै एक व्यक्ति विशेषलाई मात्र एक प्रकारको सुख हुन्छ। त्यति द्रव्य होमबाट लाखौं मानिसहरूलाई उपकार हुन्छ। तर मानिसहरूले घ्यू आदि उत्तम पदार्थ नखाएमा शरीर र आत्माको बलकै उन्नति हुन सक्तैन। यसकारण राम्रा पदार्थहरू ख्वाउनु पियाउनु पनि पर्दछ परन्तु त्यसभन्दा बढी होम गर्नुपर्दछ। यसैकारण होम गर्नु अत्यावश्यक छ।

प्रश्न—प्रत्येक मानिसले कति आहुति होम गर्नुपर्छ र प्रत्येक आहुतिको मात्रा के कति हो?

उत्तर—प्रत्येक मानिसेले कम्तिमा छ छ माशा घ्यू आदिको एक आहुति गरी कम्तिमा सोह्र आहुति होम गर्नुपर्दछ र यसभन्दा बढी गरेमा अझ राम्रो हुन्छ। यसैले आर्यवरशिरोमणि महाशयहरू, ऋषि–महर्षि, राजा–महाराजाहरू धेरै–धेरै होम गर्दथे र गराउँदथे। जबसम्म होम गर्न प्रचार रह्यो तबसम्म आर्य्यावर्त्तदेश रोगरहित र सुखले भरिपूर्ण थियो। अब पनि प्रचार भएमा त्यस्तै हुनसक्ने छ।

यी दुई यज्ञ अर्थात् 'ब्रह्म यज्ञ'—पढ्नु–पढाउनु, सन्ध्योपासन, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना उपासना, अर्को 'देव यज्ञ'—अग्निहोत्र देखि अश्वमेधसम्म यज्ञ र विद्वान्हरूलाई सेवा, संगति गर्नु हो। तर ब्रह्मचर्यमा ब्रह्मयज्ञ र अग्निहोत्र मात्र गर्नुपर्ने हुन्छ।

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति।
राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्येवेति।
शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥

यो सुश्रुत सूत्रस्थान दोस्रो अध्यायको वचन हो। ब्राह्मणले ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्य यी तिनै वर्णलाई , क्षत्रियले क्षत्रिय र वैश्यलाई तथा वैश्यले वैश्यलाई मात्र यज्ञोपवीत गराएर पढाउन सक्तछ। शूद्र पनि कुलीन र शुभलक्षणयुक्त छ भने त्यसलाई मन्त्रसहिता बाहेक सबै शास्त्र पढाउनुपर्छ। शूद्र पढोस् तर उसको उपनयन नगर्नु भन्ने केही आचार्य्यहरूको विचार छ। पाँचौ वा आठौं वर्ष देखि केटालाई केटाहरूको पाठशालामा र केटीलाई कन्या पाठशालामा पढ्न पठाइदिनुपर्छ। साथै ती निम्नलिखिन नियमपूर्वक अध्ययन आरम्भ गरून्—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

—मनु० ३।१

अर्थ—आठौं वर्ष पछि छत्तीसौं वर्षसम्म अर्थात् प्रत्येक वेद साङ्गोपाङ्ग अध्ययन बाह्रवर्ष लगाए जम्मा छत्तीस वर्ष र आरम्भका आठ जोड्दा चवालीस, छ छ वर्ष लगाए अठार र आठ छब्बीस अथवा नौ वर्ष र पूर्ण विद्या ग्रहण नभएसम्म ब्रह्मचर्य पालन गर्नुपर्छ।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं तदस्य वसोवोऽन्वायत्तः प्राण वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति॥ १॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रु यात्प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवनं माध्यन्दिनं सवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानं वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ २॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनं चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वांव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयन्ति॥ ३॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनं सवनं तृतीय सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां रुद्राणां मध्ये यज्ञो वा विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ ४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्धर्षाणि तत्तृ तीयसवनमष्टाचत्वा–रिंशदक्षरा जगती जागतं तृतीय सवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदं सर्वमाददते॥ ५॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रु यात् प्राण आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायु रनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥

यी छान्दोग्य उपनिषद्का भनाइ हुन्। ब्रह्मचर्या तीन प्रकार का हुन्छन्—कनिष्ठ, मध्यम र उत्तम। कनिष्ठ—पुरुष पुरि अर्थात् अन्न र समय शरीरमा बस्ने जीवात्मा यज्ञ अर्थात् धेरै शुभगुयुक्त र सत्कर्तव्यवाला हो। यसले २४ वर्ष सम्म जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहेर वेदादि विद्या र सुशिक्षा ग्रहण गरेर विवाह पछि पनि लम्पटता नगरेमा शरीरमा प्राण बलवान् भई सबै शुभगुण निवास गर्दछन्॥ १ ॥ पहिलो उमेरमा शरीरलाई विद्याभ्यासमा सन्तप्त गर्नु र आचार्यले पनि त्यस्तै उपदेश गर्नुपर्छ। ब्रह्मचारीले पनि पहिलो अवस्थामा ठीक–ठीक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहेमा मेरो शरीर र आत्मा आरोग्य, बलवान् भई मेरो प्राण शुभगुण सम्पन्न हुनेछ भन्ने कुराको हेक्का राख्नु पर्दछ। हे मानव, तिमीहरू यस्तो प्रकारले सुखको विस्तार गर, जसबाट आफू ब्रह्मचर्यको लोप नगर्ने बन्न सकौं। मैने २४ वर्ष पछि गृहस्थाश्रममा प्रवेश गरेमा म रोगरहित हुनेछु र मेरो आयु पनि ७० वा ८० वर्ष रहने छ भन्ने कुरा बुझ्नु पर्छ॥ २ ॥

मध्यम ब्रह्मचर्य—मानिसले ४४ वर्षसम्म ब्रह्मचारी रहेर वेदाभ्यास गर्नु हो। यसो गर्नेको प्राण इन्द्रियहरू, अन्तः करण र आत्मा बलवान् भै दुष्टहरूलाई रुवाउने र श्रेष्ठहरूलाई पालन गर्ने हुन्छ॥ ३ ॥ तपाईंले भने अनुसार मैले यसै प्रथम अवस्थामा केही तपश्चर्या गरेको खण्डमा मेरो यो रुद्ररूप प्राणयुक्त लोप हुन नदिई, यज्ञ स्वरूप, रोगरहित भई आचार्य–कुलबाट ब्रह्मचारीले गर्ने राम्रा कार्यहरू गर्ने भएर आएसरी तिमीहरू पनिगर्ने गर॥ ४॥

उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष सम्मको हुन्छ। ४८ अक्षरको जगती छन्द जस्तै ४८ वर्षसम्म यथावत् ब्रह्मचर्य धारण गर्नेको प्राण अनुकूल भई उसले सकल विद्याहरूलाई ग्रहण गर्दछ॥५॥ जुन आचार्य र माता पिता आफ्ना सन्तानलाई प्रथम अवस्थामा विद्या र गुण ग्रहणका लागि तपस्वी बनाउँछन् र तपस्विताकै उपदेश गर्दछन्, ती सन्तान स्वतः नै अखण्डित ब्रह्मचर्यसेवनबाट तेस्रो उत्तम ब्रह्मचर्य सेवन गरेर पूर्ण अर्थात् चार सय वर्षसम्म आयु बढाउँछन्। त्यस्तै तिमीहरू पनि बढाओ। किनभने यस ब्रह्मचर्यलाई प्राप्त गरेर लोप हुन नदिने मानिस सबै किसिमका रोगरहित भई धर्म, अर्थ, काम र मोक्ष प्राप्त गर्दछन्॥ ६ ॥

चतस्त्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्

परिहामिश्चेति। आषोडशाद्बृद्धिः। आपञ्चविंशतेयौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित्परिहाणिश्तेति।

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

यो सुश्रुत सूत्रस्थानको वचन हो। यस शरीरका चार अवस्था हुन्छन्। पहिलो वृद्धि सोह्रौं वर्षदेखि पच्चिसौं वर्षसम्म सबै धातुहरू वृद्धि हुँदै जान्छ। दोस्रो यौवन–पच्चिसौं वर्षको अन्त र छव्विसौं वर्षका आदिमा युवावस्था आरम्भ हुन्छ। तेस्रो सम्पूर्णता—पच्चिसौं वर्षदेखि चालिसौं वर्षसम्म सबै धातुहरू पुष्टि हुन्छ। चौथो किञ्चित्परिहाणि—शरीरका सबै धातु साङ्गोपाङ्ग पुष्ट भई पूर्ण भई सकेपछि बढ्ने धातु शरीरमा नरही स्वप्न, पसीना आदि द्वारा बाहिर निस्कन्छ। यही ४० औंवर्ष विवाहको उत्तम समय हो अर्थात् सर्वोत्तम त अड्चालिसौं वर्षमा विवाह गर्नु राम्रो हुन्छ।

प्रश्न—के यो ब्रह्मचर्य नियम स्त्री वा पुरुष दुवैलाई समान नै छ ?

उत्तर—होइन, २५ वर्षसम्म पुरुषले ब्रह्मचर्य पालन गरेमा १६ वर्षसम्म कन्याले, पुरुष ३० वर्षसम्म ब्रह्मचारी रहेमा स्त्री १७ वर्ष, पुरुष ३६ वर्ष सम्म रहे देखि स्त्री १८ वर्ष, पुरुष ४० वर्ष ब्रह्मचारी रहेदेखि स्त्री २० वर्ष, पुरुष ४४ वर्षसम्म ब्रह्मचर्य पालन गर्ने भए स्त्री २२ वर्ष र पुरुष ४८ औं वर्षसम्म ब्रह्मचर्य पालन गर्ने भए स्त्री २४ वर्ष सम्म ब्रह्मचर्य पालन गर्ने हुनुपर्दछ। ४८ वर्ष पछि पुरुष र २४ औं वर्षपछि स्त्रीले ब्रह्मचर्यमा बस्नु हुँदैन। तर यो नियम विवाह गर्ने पुरुष र स्त्रीका लागी हो। कोही विवाह गर्नै नचाहेर मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रहन सक्ने भए रहेपनि हुन्छ, तर यो काम पूर्ण विद्यावान् जितेन्द्रिय र निर्दोष योगी स्त्री वा पुरुषको हो। काम वेगलाई थामेर इन्द्रियहरूलाई आफ्नो अधीनमा राख्नु धेरै गाह्रो काम हुन्छ।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

यो तैत्तिरीयोपनिषद्को वचन हो। यी नियम पढ्ने–पढाउनेहरूका लागि हुनः—(**ऋतं०**) यथार्थ आचरणले पढ्ने–पढाउनु, (**सत्यं०**)

सत्याचारले सत्य विद्याहरूलाई पढ्नु–पढाउनु, **(तप०)** तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान गर्दै पढ्नु र पढाउनु, **(दम०)** बाह्य इन्द्रियहरूलाई खराब आचरणबाट रोकेर पढ्नु–पढाउनु, **(शम:०)** मनको वृत्तिलाई सबै किसिमका दोषबाट हटाएर पढ्नु–पढाउनु, **(अग्नय:०)** आहवनीय आदि अग्नि र विद्युत् आदिलाई बुझेर पढ्नु–पढाउनु, **(अग्निहोत्रं०)** अग्निहोत्र गर्दै पढ्नु–पढाउनु, **(अतिथय:०)** अतिथिहरूलाई सेवा गर्दै पढ्नु–पढाउनु, **(मानुषं०)** मानिस सम्बन्धी व्यवहारलाई यथायोग्य बुझेर पढ्नु–पढाउनु, **(प्रजा०)** सन्तान र राज्य पालन गर्दै पढ्नु–पढाउनु, **(प्रजन०)** वीर्य रक्षा र वृद्धि गर्दै पढ्नु–पढाउनु र **(प्रजाति:०)** आफ्ना सन्तान र शिष्यलाई पालन गर्दै पढ्नु–पढाउनु पर्छ।

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुध:।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ —मनु ४।२०४

यम पाँच प्रकारका हुन्छन्—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा: ॥ —योगसूत्र २।३०

अर्थात् **(अहिंसा)** वैरत्याग, **(सत्य)** सत्य मान्नु, सत्य बोल्नु र सत्य नै गर्नु, **(अस्तेय)** मन, वचन र कर्मले चोरी त्याग, **(ब्रह्मचर्य)** उपस्थेन्द्रिय संयम र **(अपरिग्रह)** अत्यन्त लोलुपता र स्वाभिमानरहित हुनु, यी पाँच यम सेवनसदा गर्नुपर्छ। केवल नियम मात्र सेवन गर्नु हुँदैन्। अर्थात्—

शौचसन्तोषतप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा: ॥

—योगसूत्र २।३२

(शौच) स्नान आदिबाट पवित्रता, **(सन्तोष)** राम्रो प्रसन्न भएर पनि उद्यम नगर्नु सन्तोष भनिदैन, सकेसम्म पुरुषार्थ गर्दैजानु, लाभ हानिमा हर्ष वा शोक नगर्नु, **(तप:)** कष्ट सहेर पनि धर्मयुक्त कर्म गर्दै जानु, **(स्वाध्याय)** पढ्नु–पढाउनु, **(ईश्वरप्रणिधम)** ईश्वरको विशेष भक्ति गरेर आत्मालाई समर्पित गर्नु, यी पाँच नियम भनिन्छन्। यमलाई छोडेर नियमको मात्र पालन गर्नु हुन्न। यी दुवै पालन गर्ने गर्नुपर्छ। यमलाई त्यागेर नियम मात्र सेवन गर्ने व्यक्ति उन्नति गर्न सक्तैन। त्यो त अधोगति अर्थात् संसार चक्रमै दु:ख पाइरहन्छ।

कामात्मता न प्रशस्त न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगम: कर्मयोगश्च वैदिक: ॥

—मनु० २।२

धेरै कामातुरता र निष्कामता दुवै नै कसैका लागि पनि राम्रो

हुँदैन। किनभने कामना नै नगरेमा वेद ज्ञान र वेदमा भनिएका जस्ता उत्तम कर्म कुनैबाट पनि हुनसक्ने छैनन्। यसैले—

स्वाध्येन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै:।
महायज्ञैश्य ब्रह्मीयं क्रियते तनु: ॥

—मनु० २।२८

(स्वाध्याय) सबै विद्या पढ्ने–पढाउने, **(व्रत)** ब्रह्मचर्य र सत्य भाषण आदि नियम पालन गरेर, **(होम)** अग्निहोत्र आदि होम, सत्यको ग्रहण, असत्य त्याग र सत्य विद्या दान गरेर **(त्रैविद्येन)** वेदमा भनिएका कर्म, उपासना, ज्ञान—विद्यालाई ग्रहण गरेर **(इज्यया)** औंसी पूर्णिमामा गरिने यज्ञ आदि गरेर **(सुतै:)** राम्रा सन्तान जन्माएर, **(महायज्ञै:)** ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव र अतिथिहरूलाई सेवारूपी पञ्च महायज्ञ गरेर र **(यज्ञ:)** अग्निष्टोम आदि तथा शिल्प विद्या–विज्ञान आदि यज्ञहरू सेवन गरेर यस शरीरलाई ब्रह्मी अर्थात् वेद र परमेश्वर भक्तिको आधारूप ब्राह्मण शरीर बनाउनु पर्छ। यति साधनहरू बिना ब्राह्मण शरीर बन्न सक्तैन।

इन्द्रियणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

—मनु० २।८८

जसरी योग्य सारथि घोडालाई आफ्नो नियममा राख्तछ त्यसै गरी मन र आत्मालाई कुकर्मतर्फ लगाउने विषयमा लागिरहने इन्द्रियहरूलाई आफ्नो अधीनमा राख्न सधैं प्रयत्न गरि रहनुपर्छ। किनभने—

इन्द्रियाणं प्रसङगेन देषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव तत: सिद्धिं नियच्छति।

—मनु० २।९३

इन्द्रियहरूका अधीन भएर जीवात्मा ठूला ठूला दोष संगाल्छ, इन्द्रियहरूलाई आफ्नो वशमा राख्यो भने सिद्धि प्राप्त गर्दछ।

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

—मनु० २.९७

इन्द्रियहरूलाई आफ्नो वशमा नराख्ने, दुष्टाचारी व्यक्तिलाई वेद, त्याग, यज्ञ नियम,तप र राम्रा काम सिद्धि कहिले पनि हुँदैनन्।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि॥१॥

नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत् स्मृतम्।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम्॥ २॥

—मनु० २।१०५, १०६

वेद पढ्ने–पढाउने, सन्ध्योपासना आदि पञ्च महायज्ञ गर्ने र होमका मन्त्रहरूका बारेमा कुनैपनि कारणले छेकवार हुँदैन अर्थात् यी कार्य सधैं गर्नुपर्छ, यिनीहरू अनध्याय उचित हुन्न॥ १॥ किनभने नित्यकर्ममा छेकवार हुँदैन। जसरी श्वास प्रश्वास सधैं लिइन्छ, बन्द गरिंदैन त्यस्तै नित्यकर्म दिनहुँ गर्नुपर्छ, कुनैदिन छोड्नु हुन्न। किनभने अग्निहोम आदि उत्तमकर्म अनध्यायमा गरिएर पनि पुण्य फलदिने हुन्छन्। झूठ बोल्दा सदा पाप र सत्य बोल्दा सदा पुण्य हुने भएजस्तै खराब कार्यमा सदा अनध्याय र असल कार्य गर्न सदा स्वाध्याय हुन्छ।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसे विनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥

—मनु० २।१२१

सदा नम्र, सुशील, विद्वान् र वृद्धलाई सेवा गर्नेको आयु, विद्या कीर्ति र बल यी चार सदै बढ्दै जान्छन् र यसो नगर्नेको आयु आदि चाडैं बढ्दैनन्।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुराश्लक्ष्ण प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ १॥
यस्य वाङमनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
सवै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥ २॥

—मनु० २।१५९, १६०

विद्वान् र विद्यार्थीहरूले वैरबुद्धि त्यागेर मानिसहरूलाई कल्याण मार्गको उपदेश गर्नुपर्छ। उपदेश दिनेले सधैं मधुर, सुशीलतायुक्त वाणी बोल्नु पर्दछ। धर्मको उन्नति चाहनेले सदा सत्य मार्गमा हिंड्नु र सत्यकै उपदेश गर्नुपर्छ॥ १॥ वाणी र मन शुद्ध र सुरक्षित भएको मानिसले नै वेदान्त अर्थात् सबै वेदको सिद्धान्तरूपी फल प्राप्त गर्दछ॥ २॥

सम्मानाद् ब्रह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङक्षेदवमानस्य सर्वदा॥

—मनु०२।१६२

प्रतिष्ठालाई विषयजस्तो ठानेर त्यसदेखि डराउने र अपमानलाई अमृतसमान चाहने ब्रह्मण नै समग्र वेद र परमेश्वरलाई जान्ने हुन्छ।

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः।
गुरौ वसन् संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥

—मनु० २.१६४

यस्तै तरीकाले उपनयन भईसकेका द्विज ब्रह्मचारी कुमार र ब्रह्मचारिणी कन्याले बिस्तार बिस्तार वेदार्थको ज्ञानरूप उत्तम तपलाई बढाउँदै जानुपर्छ।

योऽनधीत्य द्विज वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वायः॥

—मनु० २।१६८

जो द्विज वेद नपढेर अन्यत्र श्रम गर्दछ, त्यो शीघ्र नै पुत्र–पौत्र सहित शूद्र हुन पुग्दछ।

वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥ १॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्॥ २॥
द्युतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥ ३॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्त्रि व्रतमात्मनः॥ ४॥

—मनु० २।१७७–१८०

ब्रह्मचारी र ब्रह्मचारिणीले मद्य, मासु, गन्ध, माला, रस, स्त्री र पुरुषको संगत, सबै अमिलो–पिरो, प्राणीहरू हिंसा॥ १॥ शरीरका अङ्गहरू मालिस, उचित कारण नभई उपस्थेन्द्रिय स्पर्श, आँखामा गाजल, जुत्ता र छाता धारण गर्न, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान, बाजा बजाउन॥ २॥ जुआ, कसैको कथा, निन्दा, झूठ बोल्न, स्त्री वा पुरुषको दर्शन, आश्रय, अर्काको हानि–नोक्सानी आदि कुकर्मलाई सधैं छोड्नुपर्छ॥ ३॥ सदै सर्वत्र एक्लै सुत्नुपर्छ र कहिल्यै वीर्यस्खलित हुन दिनुहुन्न। कामना गरेर विर्यस्खलित गरेमा आफ्नो ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट गरेको ठान्नुपर्छ।

वेदमनूच्यार्योऽन्तेवासिनमनूशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्मा प्रमदः। आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदिव्यम्। देवपितृकार्य्याभ्यां

न प्रमदितव्यम्॥ १ ॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि न इतराणि॥ २ ॥

ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तोषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धयादेयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रियादेयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्॥ ३ ॥

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षाः धर्मकामाः स्युर्यथाते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र वर्त्तेथाः॥ ४ ॥

एष आदेश, एष उपदेश, एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्॥ ५ ॥

—तैत्तिरीय० उ० शिक्षा० ११

गुरूले आफ्ना शिष्य र शिष्याहरूलाई यस्तो उपदेश दिनुपर्छ—तिमी सदा सत्य बोल्ने गर। धर्मानुसार आचरण गर। आलस्य प्रमाद नगरी पढ र पढाऊ। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन गर्दै समस्त विद्या प्राप्त गर, आचार्यका लागि प्रिय धन दिएर विवाह गर र सन्तान जन्माऊ। प्रमादले सत्यलाई कहिल्यै नछोड। प्रमादले धर्मलाई नत्याग। प्रमादले आरोग्य र चतुराईलाई नछोड। प्रमादले उत्तम ऐश्वर्यका वृद्धिलाई नछोड। प्रमादले पढ्न र पढाउन कहिल्यै नछोड॥ १ ॥ देवविद्वान् र आमा बाबु आदिका सेवामा आलस्य-प्रमाद नगर। विद्वानलाई सत्कार गरेजस्तै आमा बुबा, आचार्य र अतिथिलाई सधै सेवागर्ने गर। सत्य बोल्नु जस्ता निन्दरहित धर्मयुक्त कार्य गर्ने गर। झूठो बोल्नु जस्ता कार्य कहिल्यै नगर। हामीमा भएका सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म गर। हामीमा पाप आचरण भएमा तिनलाई कहिल्यै ग्रहण नगर। हाम्रो बीचमा भएका उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मणका नजीक बस्ने र उनैको विश्वास गर्नेगर। श्रद्धा, अश्रद्धा, शोभा, लज्जा, भय र प्रतिज्ञा आदिले जसरी हुन्छ देऊ। कुनैबेला तिमीमा कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञानका कुरामा कुनै किसिम शङ्का लागेमा॥ २-३ ॥ समदर्शी, पक्षपातरहित, योगी-अयोगी, आर्द्रचित्त, धर्म कामना गर्ने धर्मात्माहरू जस्तो व्यवहार धर्ममार्गमा गर्दछन्, त्यस्तै तिमी पनि गर्ने गर। यो नै आदेश हो, यो नै उपदेश हो, यो नै वेदको उपनिषद् हो र यो नै शिक्षा हो। यस्तै किसिमले आचरण गर्नु र आफ्नो चालचलन सुधार्नु पर्छ॥ ४-५ ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस। यचेष्टितम्॥

—मनु० २।४

निष्काम व्यक्तिबाट आँखा झिम्क्याउने र उघार्ने कार्य पनि सम्भव हुन्न भन्ने कुरा मानिसहरूले बुझ्नु पर्दछ। यसकारण कुनैपनि व्यक्ति केही पनि गर्दछ भने त्यो चेष्टा कामना विना भएको हैन भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥ १ ॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेद फलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥ २ ॥

—मनु० १।१०८-१०९

वेद र वेदानुकूल स्मृतिहरूमा प्रतिपादित धर्म आचरण गर्नु नै भन्नु, सुन्नु-सुनाउनु र पढ्नु पढाउनुको फल हो। त्यसैले धर्माचरण गर्न सधैं लागिरहनु पर्दछ॥ १ ॥

किनभने धर्माचरणरहित व्यक्ति वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल प्राप्तगर्न सक्तैन र विद्या पढेर धर्माचरण गर्ने व्यक्ति नै सम्पूर्ण सुखप्राप्त गर्दछ॥ २ ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

—मनु० २।२१

वेद र वेदानुकूल आप्त अर्थात् मान्य पुरुषहरूद्वारा निर्मित शास्त्रहरूलाई अपमान गर्ने वेदनिन्दक नास्तिकलाई जाति, पंक्ति र देशबाट पनि बाहिर निकालिदिनु पर्दछ। किनभने—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

—मनु० २।१२

श्रुति-वेद, स्मृति-वेदानुकूल आप्तजनबाट रचित मनुस्मृति आदिशास्त्र, सत्यपुरुषका आचार-सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म र आफ्नो आत्मामा प्रिय-जसलाई आत्मा चाहन्छ, जस्तै सत्य बोल्नु, यी चार धर्मका लक्षण हुन्, अर्थात् यिनै चारबाट धर्म र अधर्मको निश्चय हुन्छ। पक्षपातरहित न्याय, सत्य ग्रहण र असत्य पूर्ण परित्यागरूपी आचारण नै 'धर्म' र यसको उल्टो पक्षपात

सहित अन्याय आचरण, सत्य त्याग र असत्य ग्रहण गर्ने कार्यलाइ नै 'अधर्म' भनिन्छ।

अर्थकामष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥

अर्थ—सुन, चाँदी आदि रत्न र काम– स्त्री सेवन आदि विषय भोगमा नलाग्ने व्यक्तिलाई नै धर्मको ज्ञान प्राप्त हुन्छ। धर्मज्ञानको इच्छा भएमा वेदबाट धर्म निश्चय गर्नुपर्छ किन भने वेदविना धर्म र अधर्म ठीक–ठीक निर्णय हुन सक्तैन।

यसरी आचार्यले आफ्ना शिष्यलाई उपदेश दिनु पर्दछ। साथै राजा समेत क्षत्रिय, वैश्य र उत्तमशूद्रलाई पनि विद्या अभ्यास अवश्य गराउनु पर्छ। किनभने ब्रह्मणले मात्र विद्याभ्यास गरेमा र क्षत्रिय आदिले नगरेमा विद्या, धर्म, राज्य र धन आदि वृद्धि कहिल्यै हुन सक्तैन। किनभने ब्राह्मण त मात्र पढ्न–पढाउन र क्षत्रिय आदिबाट जीविका पाएर आफ्नो जीवन धान्न सक्तछन्। जीविकाको अधीन हुनाले, क्षत्रिय आदिलाई आज्ञादिने र ठीक–बेठीक निर्णय गरेर दण्ड दिने नहुनाले ब्राह्मण आदि सबैवर्ण पाखण्डमा नै पर्दछन्। अनि क्षत्रिय आदि विद्वान् भएमा ब्राह्मण पनि बढी विद्याभ्यास गर्ने र धर्ममार्गमा हिंड्ने हुन्छन् र ती क्षत्रिय आदिका अगाडि पाखण्ड र झूठो व्यवहार पनि गर्न सक्तैनन्। क्षत्रिय आदि अविद्वान भएमा ती ब्राह्मणहरू आफ्नो मनपरी गर्ने गराउने गर्दछन्। यसकारण ब्राह्मण पनि आफ्नो कल्याण चाहन्छन् भने उनीहरूले क्षत्रिय आदिलाई वेद आदि सत्यशास्त्र अभ्यास मेहनतका साथ गराउनु पर्दछ। किनभने क्षत्रिय आदि नै विद्या, धर्म, राज्य र लक्ष्मी वृद्धिगर्ने हुन्छन्। उनीहरू कहिल्यै भिक्षावृत्ति गर्दैनन्, यसकारण ती विद्या व्यवहारमा पक्षपाती पनि हुन सक्तैनन्। सबै वर्णमा विद्या सुशिक्षा भएमा कसैले पनि पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार चलाउन सक्तैन। यसबाट क्षत्रिय आदिलाई नियममा चलाउने ब्राह्मण र सन्यासी अनि ब्राह्मण र सन्यासीलाई सुनियममा चलाउने क्षत्रिय आदि हुने गर्दछन् भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यसकारण सबै वर्णका स्त्री पुरुषहरूमा विद्या र धर्मको प्रचार अवश्य हुनु पर्दछ।

कुनकुन कुरा पढ्नु–पढाउनु पर्दछ भन्ने कुराको राम्ररी परीक्षा गरेर निर्णय गर्नुपर्छ। परीक्षा पाँच प्रकारले हुन्छ—

पहिलो—ईश्वरको गुण, कर्म, स्वभाव र वेद अनुकूल भएजति सत्य र यस विरूद्ध असत्य हो।

दोस्रो—सृष्टिक्रम अनुकूल भएजति सत्य र सृष्टिक्रम विरूद्ध सबै असत्य हुन्छ। जस्तै कोही आमा बाबुको सम्पर्क बिनानै बालक जन्मियो भन्छ भने यो कथन सृष्टिक्रम विरूद्ध हुनाले सर्वथा झूठो हो।

तेस्रो—आप्त अर्थात् धार्मिक, विद्वान्, सत्यवादी, कपटरहित व्यक्तिका उपदेश अनुकूल कुरा ग्राह्य र त्यस विरूद्ध कुरा त्याज्य हुन्छन्।

चौथो—आफ्नो आत्माको पवित्रता, विद्या अनुकूल जस्तै आफूलाई सुख प्रिय र दुःख अप्रिय हुन्छ त्यस्तै मैलेपनि कसैलाई दुःख वा सुख दिएमा त्योपनि अप्रसन्न वा प्रसन्न हुनेछ भन्ने कुरा सदै बुझ्नु पर्दछ।

पाँचौ—आठै प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव र अभाव। यिनमा प्रत्यक्ष आदि लक्षणादिमा तल लेखिएका सूत्र न्यायशास्त्रको पहिलो र दोस्रो अध्ययन हुन्।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्य–मव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ —न्यायसूत्र। अध्याय १ आन्हिक १। सूत्र ४॥

कान, छाला, आँखा, जिब्रो र नाकको शब्द, स्पर्श, रूप, रस र गन्धसित अव्यवहित वा आवरणरहित अर्थात् रोकटोक विनाको सम्बन्ध, इन्द्रियहरू मनसित र मन आत्मासितको सम्बन्धबाट उत्पन्नहुने अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी र व्यवसायात्मक ज्ञानलाई प्रत्यक्ष भनिन्छ। 'अव्यपदेश' अर्थात् संज्ञा संज्ञीको सम्बन्धबाट उत्पन्न ज्ञान नहोओस्। जस्तै कसैले कसैसँग 'तिमी जल ल्याऊ' भन्यो र उसले पानी ल्याएर उसको अगाडि राखेर 'यो पानी हो' भन्यो। यहाँ 'जल' यी दुई अक्षर को नाम मगाउने वा ल्याउने देख्न सक्तैन। तर जुन पदार्थको नाम 'जल' हो, त्यो प्रत्यक्ष हुन्छ। शब्दबाट उत्पन्न हुने ज्ञान शब्द प्रमाणको विषय हो। 'अव्यभिचारी' अर्थात् विनाश नहुने ज्ञान। जस्तै कसैले रातमा कुनै ठुटो वा थामलाई देखेर यो मानिस हो भन्ने निश्चय गर्यो, तर दिनमा त्यसलाई हेर्दा यो त व्यक्तिविशेष हैन, यो त ठुटो वा थाम नै रहेछ भन्ने निर्णय हुन्छ। यस्तो मिथ्या ज्ञानलाई व्यभिचारी भनिन्छ। व्यवसायात्मक अर्थात् निश्चयात्मक। जस्तै कसैले टाढैबाट खोला किनारमा टल्केको बालुवालाई देखेर भन्यो त्यहाँ लुगा सुकिरहेका छन् वा त्यो पानी हो अथवा त्यो अरू नै केही हो। यस्तो त्यो देवदत्त उभिएको हो कि यज्ञदत्त हो। यस्तो प्रकरणमा जबसम्म कुनै एकको निर्णय हुँदैन तबसम्म त्यो प्रत्यक्ष ज्ञान हुन सक्तैन। अव्यपदेश,

अव्यभिचारी र निश्चयात्मक ज्ञानलाई नै प्रत्यक्ष भनिन्छ। दोस्रो अनुमान—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च।

—न्याय० अ० १। आ० १। सू० ५

प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् कुनै स्थान वा समयमा प्रत्यक्ष भएको कुनै द्रव्यको एक भाग वा सम्पूर्ण द्रव्यका सहचारीको एक भागलाई देख्दा हुने अदृष्ट अवयवीका ज्ञानलाई अनुमान भनिन्छ। जस्तै पुत्रलाई देखेर पिताको ज्ञान, पर्वत आदिमा धुआँलाई देखेर अग्निको ज्ञान र जगत्मा सुख दुःख देखेर पूर्वजन्म ज्ञानको हुन्छ। यो अनुमान तीन किसिमको हुन्छ। पहिलो पूर्ववत् जस्तै बादललाई देखेर वर्षा, विवाहलाई देखेर सन्तानोत्पत्ति, पढिरहेका विद्यार्थिलाई देखेर विद्या प्राप्त हुने आदि निश्चय हुन्छ। कारणलाई देखेर हुने कार्यको ज्ञानलाई 'पूर्ववत्' भनिन्छ। दोस्रो 'शेषवत्' अर्थात् कार्यलाई देखेर कारणको ज्ञान हुनु। जस्तै— खोला–बाढी देखेर मुहानमा पानी परेको, पुत्रलाई देखेर पिताको, सृष्टिलाई देखेर अनादिकारणको र सृष्टिकर्ता ईश्वरको, साथै पाप–पुण्यका आचरण देखेर सुख दुःख ज्ञान हुन्छ, यसैलाई 'शेषवत्' भनिन्छ। तेस्रो 'सामान्यतोदृष्ट' अर्थात् कसैको कुनै कार्यकारण नभएर एक अर्कासँग कुनै किसिमको साधर्म्य हुनु। जस्तै कसैले एक ठाउँबाट अर्को ठाउँमा जान हिंड्नुपर्छ भने अरूलाई पनि एक ठाउँबाट अर्को ठाउँमा पुग्न हिंड्नै पर्छ भन्ने अनुमान हुन्छ। अनुमान शब्दको अर्थ हो अनु अर्थात् पछि' प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम् अर्थात् प्रत्यक्ष पछि उत्पन्न हुने ज्ञानलाई अनुमान भनिन्छ। जस्तै धुवाँलाई नदेखि अदृष्ट अग्निको ज्ञान कहिल्यै हुन सक्तैन। तेस्रो 'उपमान'—

प्रसिद्ध साधर्म्यात्साध्य साधन मुपमानम्॥

—न्याय० अ० १।१।६

प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्यबाट साध्य अर्थात् सिद्ध गर्न योग्य सिद्धिका साधनलाई उपमान भनिन्छ। 'उपमीयते येन तदुपमानम्' जस्तै कसैले कुनै सेवकसँग देवदत्त जस्तो विष्णु मित्रलाई बोलाऊ भन्यो। सेवकले मैले उसलाई कहिले पनि देखेकै छैन भन्यो। अनि स्वामीले जस्तो यो देवदत्त छ त्यस्तै त्यो विष्णुमित्र छ अथवा जस्तो गाई त्यस्तै नीलगाई हुन्छ भन्यो। सेवक त्यहाँ गएपछि देवदत्त जस्तै देखेर यही विष्णुमित्र हो भन्ने निश्चय गर्छ र उसलाई ल्याउँछ अथवा कुनै वनमा जुन पशुलाई गाई जस्तै देख्तछ त्यसलाई यही नीलगाई हो भनी ठम्याउँछ।

चौथो शब्दप्रमाण—

आप्तोपदेशः शब्दः॥ —न्याय० १।१।७

आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय व्यक्ति जस्तो आफ्नो आत्मामा जान्दछ र जसबाट सुख पाएको छ त्यस्तै भन्ने इच्छाबाट प्रेरित भई समस्त मानवमात्रका कल्याणका निम्ति उपदेश गर्ने अर्थात् पृथ्वीदेखि परमेश्वर सम्म सबै पदार्थको ज्ञान प्राप्त गरि उपदेश दिने व्यक्ति र पूर्ण आप्त परमेश्वरका उपदेश वेदलाई नै शब्द प्रमाण मान्नु पर्दछ। पाँचौ ऐतिह्य—

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थपत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्॥

—न्याय० २।२।१

'**इतिह**' अर्थात् यस्तो थियो, उसले यस्तो गर्यो भन्ने कुरा अर्थात् कसैका जीवन चरित्रको नाम ऐतिह्य हो। छैठों अर्थापत्ति—

'**अर्थादापद्यते स अर्थापत्तिः**' केनचिदुच्यते '**सत्सु घनेषु वृष्टिः, सति कारणे कार्य भवतीत किमत्र प्रसज्यते, असत्यु घनेषु वृष्टिरसति** कारणे च कार्य न भवति' बादल हुनाले वर्षा हुनाले कार्य हुन्छ भन्नाले नभई वर्षा र कारण नभई कार्य कहिल्यै हुन सक्दैन भन्ने कुरा स्वतः सिद्ध हुन्छ। सातौं सम्भव—

'**सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः**' कसैले आमा बुवा बिना सन्तानोत्पत्ति, मुर्दालाई ब्यूँझाइएको, पहाड उठाएको, समुद्रमा ढुङ्गो तहराएको, चन्द्रमा टुक्रा गरेको, परमेश्वरको अवतार भएको, मानिसको सिंग देखेको र बाँझीका छोरा छोरीको विवाह गरेको इत्यादि कुरा गर्छ भने यी सबै कुरा सृष्टिक्रमको विरूद्ध हुनाले असम्भव हुन्। सृष्टिक्रम अनुकूल कुरा नै सम्भव हुन्छ।

आठौं अभाव—

'**न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः**' जस्तै कसैले कसैसँग हात्ती ल्याऊ भन्दा त्यहाँ हात्ती नहुनाले उसले हात्ती भएको ठाउँबाट हात्ती ल्यायो। यी आठ प्रमाण हुन्छन्। यिनमा ऐतिह्य शब्दमा र अर्थापत्ति, सम्भव तथा अभाव अनुमानमा गणना गरेमा चार प्रमाण रहन्छन्। यी पाँच प्रकारका परीक्षाबाट मात्र मानिस सत्य र असत्य निश्चय गर्न सक्तछ, अन्यथा सक्तैन।

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसम्॥ —वै० १।१।४

धर्मको मानिस यथायोग्य अनुष्ठान गर्नाले पवित्र भएर 'साधर्म्य' अर्थात् तुल्यधर्म जस्तै पृथ्वी जड्, पानी पनि जड्, 'वैधर्म्य' अर्थात् पृथ्वी कठोर, पानी कोमल, यस्तै द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष र समवायी छ पदार्थको तत्त्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञानबाट 'नि:श्रेयश्रम्' मुक्त हुन्छ।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥
—वै० १।१।५

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा र मन यी नौ द्रव्य हुन्।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥
—वै० १।१।१५

'**क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् क्रियागुणवत्**' जसमा क्रिया, गुण र गुणमात्र छ भनेपनि त्यसलाई द्रव्य भनिन्छ। यिनमा पृथ्वी, जल तेज, वायु, मन र आत्मा यी छ द्रव्य क्रिया र गुण भएका तथा आकाश, काल र दिशा यी तीन क्रियारहित गुणमात्र भएका हुन्। **(समवायि) 'समवेतुं शील यस्य तत् समवायि प्राग्वृतत्तित्वं कारणं, समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्' 'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्'** मिल्ने स्वाभावयुक्त कार्य भन्दा कारण पहिले छ भने त्यसलाई द्रव्य भनिन्छ। जसबाट लक्ष्य ज्ञान हुन्छ त्यसलाई लक्षण भनिन्छ जस्तै आँखाबाट रूपको ज्ञान हुन्छ।

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथ्वी ॥ —वै० २।१।१

पृथ्वीमा रूप, रस, गन्ध र स्पर्श छन्। यसमा रूप, रस र स्पर्शचाहिं क्रमश: अग्नि, जल र वायुका संयोगले हुन्छन्।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥ —वै० २।२।२

पृथ्वीमा गन्ध गुण स्वाभाविक हुन्छ। त्यस्तै जलमा रस, अग्नि रूप, वायुमा स्पर्श र आकाशमा शब्द स्वाभाविक हो।

रूपरसस्पशंवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥ —वै० २।१।२

रूप, रस र स्पर्श भएको द्रवीभूत र कोमल द्रव्यलाई जल भनिन्छ। तर रस जलको स्वाभाविक गुण हो। रूप र स्पर्शचाहिं अग्नि र वायुका संयोगले हुन्छ।

अप्सु शीतता ॥ —वै० २।२।५

जलमा शीतलत्व गुण पनि स्वाभाविक हुन्छ।

तेजो रुप स्पर्शवत् ॥ —वै० २।१।३

तेजमा रूप र स्पर्श हुन्छन्। तर रूप तेजको स्वाभाविक गुण र स्पर्श वायुका संयोगले हुन्छ।

स्पर्शवान् वायुः ॥ —वै० २।१।४

वायु स्पर्श गुणयुक्त हुन्छ। तर यसमा पनि तेजका योगले उष्णता र जलका योगले शीतता रहन्छ।

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ —वै० २।१।५

रूप, रस, गन्ध र स्पर्श आकाशमा हुँदैनन्। शब्दमात्र आकाशको गुण हो।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ —वै० २।१।२०

पस्नु र निस्कनु आकाशको चिह्न हो।

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥
—वै० २।१।२५

अरू पृथ्वी आदि कार्यबाट प्रकट नहुने हुनाले स्पर्श आदि गुण भएका भूमि आदिको गुण 'शब्द' होइन, 'शब्द' त आकाशकै गुण हो।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥
—वै० २।२।६

जसमा अपर, पर, युगपत्=एकैपटक, चिरम्=विलम्ब, क्षिप्रम्=शीघ्र इत्यादि प्रयोग हुन्छन्, त्यसलाई 'काल' भनिन्छ।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ॥
—वै० २।२।९

नित्य पदार्थमा नहुने र अनित्यमा हुने हुनाले कारणमा नै काल रहन्छ।

इत इदमिति यतस्तदिदश्यं लिङ्गम् ॥ —वै० २।२।१०

जसमा यहाँबाट यो पूर्व, दक्षिण। पश्चिम, उत्तर, तल, माथि आदि व्यवहार हुन्छ, त्यसैलाई 'दिशा' भनिन्छ।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥
—वै० २।२।१४

जतातर्फ सर्वप्रथम सूर्यका संयोग भएको हो, भएको छ र हुनेछ, त्यसलाई '**पूर्व दिशा**' भनिन्छ र जहाँ अस्त हुन्छ, त्यसलाई 'पश्चिम' भनिन्छ। पूर्व फर्केको व्यक्तिको दाहिनेतर्फ 'दक्षिण' र देब्रेतर्फ 'उत्तर' दिशा भनिन्छ। (**एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि**—वै० २।२।१६) पूर्व र दक्षिणको बीचको दिशालाई आग्नेयी दक्षिण र पश्चिमचको

दिशालाई नैर्ऋति पश्चिम र उत्तरको बिचलाई '**वायव्य**' तथा उत्तर र पूर्वको बीचलाई 'ऐशानी' दिशा भनिन्छ।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥

—न्याय० १।१।१०

जसमा (**इच्छा**) राग, (**द्वेष**) वैर, (**प्रयत्न**) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (**ज्ञान**) जान्नु गुण हुन्छन्, त्यसैलाई जीवात्मा भनिन्छ। वैशेषिकमा यत्ति विशेष भनिएको छ—

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतोन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ —वै० ३।२।४

(**प्राण**) भित्रबाट वायुलाई निकाल्नु, (**अपान**) बाहिरबाट वायुलाई भित्र लिनु, (**निमेष**) आँखा चिम्लनु, (**उन्मेष**) आँखा उघार्नु, (**जीवन**) प्राण धारण गर्नु, (**मनः**) मनन्, विचार अर्थात् ज्ञान, (**गति**) यथेष्ट गमन गर्नु, (**इन्द्रिय**) इन्द्रियहरूलाई विषयमा लगाउनु, तिनीहरूबाट विषयहरू ग्रहण गर्नु, (**अन्तर्विकार**) भोक, तिर्खा, ज्वर, पीडा आदि विकार हुनु, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, यी सबै आत्माका लिङ्ग अर्थात् कर्म र गुण हुन्।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥ —न्याय० १।१।१६

जसबाट एकैपटक दुई पदार्थ ग्रहणज्ञान हुँदैन, त्यसलाई मन' भनिन्छ।

यो द्रव्यको स्वरूप र लक्षण भनियो। अब गुणहरूको भनिन्छ।

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥

—वै० १।१।६

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म र शब्द यी चौबीस नै गुण हुन्।

प्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ —वै० १।२।१६

द्रव्यका आश्रयमा रहने, गुणलाई धारण नगर्ने, संयोग र वियोगमा कारण नहुने, अनपेक्ष अर्थात् एकअर्काको अपेक्षा नगर्ने पदार्थलाई 'गुण' भनिन्छ।

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्रह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ —महाभाष्य १।१।१

कानद्वारा प्राप्त हुने, बुद्धिद्वारा ग्रहणगर्ने योग्य, प्रयोगद्वारा प्रकाशित र आकाश ठाउँ भएको गुणलाई '**शब्द**' भनिन्छ। नेत्रद्वारा ग्रहणहुने '**रूप**', जोब्रोबाट तीतो–मीठो आदि अनेक प्रकारको स्वाद लिइने '**रस**', नाकबाट ग्रहण गरिने '**गन्ध**', छालाले पत्तो पाइने '**स्पर्श**', एक दुई आदि गणना गरिने 'संख्या', नपाइ, जोखाइ, भराइ आदि गरिने परिमाण', एकअर्काबाट छुट्टिनु 'पृथक्त्व', एक अर्कासँग मिल्नु '**संयोग**', एकअर्कासँग मिलेकोमा टुक्रा–टुक्रा हुनु '**विभाग**', यो भन्दा पर भन्नु '**पर**', त्यो भन्दा वर भन्नु '**अपर**', राम्रो नराम्रोको ज्ञान हुने '**बुद्धि**', आनन्दको नाम '**सुख**', क्लेशको नाम '**दुःख**', इच्छा'=राग द्वेष= '**विरोध**', अनेकप्रकारको बलपुरुषार्थ '**प्रयत्न**', भारी या गाह्रौं '**गुरुत्व**', पग्लनु '**द्रवत्व**', प्रीति र चिल्लो हुनु '**स्नेह**', अर्काको योगले वासना हुनु '**संस्कार**', न्याय आचरण र कठिनाइ आदि हुनु '**धर्म**' र अन्याय आचरण र कठिनताको विरूद्ध कोमलता आदि '**अधर्म**', यी नै चौबीस गुण हुन्।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥

—वै० १।१।७

'**उत्क्षेपण**' मास्तिर उठाउनु, '**अवक्षेपण**' तल्तिर झार्नु, '**आकुञ्चनं**–**खुम्च्याउनु**, '**प्रसारण**' फैलाउनु र '**गमन**' आउनु, जानु, डुल्नु आदिलाई '**कर्म**' भनिन्छ। अब कर्मका लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥ —वै० १।१।१७

'एकं द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं, न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तदगुणं संयोगेषु विभागेषु चापेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्' अथवा यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्म लक्षणम्' एउटै द्रव्यका आश्रित, गुणहरूबाट रहित, संयोग र विभागमा अपेक्षा नराख्ने कारण भएका पदार्थलाई 'कर्म' भनिन्छ।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥ —वै० १।२।२३

जुन द्रव्यहरुको कार्य द्रव्य छ, त्यो कार्यात्वले सबै कार्यहरुमा सामान्य हुन्छ द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥

—वै० १।२।५

जुन कार्य द्रव्य, गुण र कर्मका कारण द्रव्य हो त्यही सामान्य द्रव्य हो।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ —वै० १।२।५

द्रव्यमा द्रव्यत्व, गुणमा गुणत्वर कर्ममा कर्मत्व यी सबै 'सामान्य' र 'विशेष' भनिन्छन्। जस्तै द्रव्यमा द्रव्यत्व सामान्य र गुणत्व, कर्मत्व भन्दा द्रव्यत्व विशेष हो। यस्तै गुणत्व, कर्मत्व आदि सबैमा बुझ्नु पर्छ।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥ —वै० १।२।३

सामान्य र विशेष बुद्धि को अपेक्षाले सिद्ध हुन्छन्। जस्तै मानिसमा मनुष्यत्व सामान्य र पशुत्वादि भन्दा विशेष, तथा स्त्रीत्व र पुरुषत्व, यिनमा ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शुद्र पनि विशेष हुन्। ब्राह्मण व्यक्तिमा ब्राह्मणत्व समान्य र क्षत्रियादि भन्दा विशेष हुन्छ। यसैगरी सर्वत्र बुझ्नु पर्छ।

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥

—वै०अ० ७ आ०।२ सूत्र २५

अवयवमा अवयवी, क्रियामा क्रियावान्, गुणीमा गुण, व्यक्तिमा जाति, कार्यमा कारण आदि अवयव–अवयवी, क्रिया–क्रियावान्, गुण–गुणी, जाति–व्यक्ति, कार्य कारण जस्तो नित्य सम्बन्ध नै 'समवाय' भनिन्छ। अनि द्रव्यहरूमा परस्पर हुने सम्बन्ध भने 'संयोग' अर्थात् अनित्य सम्बन्ध हुन्छ।

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥

—वै०आ० १। आ० ९ सूत्र ९

द्रव्य र गुणको समान जातीय कार्यका आरम्भलाई '**साधर्म्य**' भनिन्छ। जस्तै पृथ्वीमा जडत्व धर्म र घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म हुन्छ। त्यस्तै पानीमा पनि जडत्व र हिउँ आदि स्वसदृश कार्यको आरम्भ पृथ्वीसँग जलको जलसँग पृथ्वीको तुल्य धर्म हुन्छ। अर्थात् '**द्रव्यगुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्**' द्रव्य गुणको विरूद्ध धर्म र कार्यको आरम्भलाई '**वैधर्म्य**' भनिन्छ। जस्तै पृथ्वीमा कठिनत्व, शुष्कत्व र गन्धवत्व धर्म जलको विरुद्ध र जलको द्रवत्व कोमलता र रसगुणयुक्ता पृथ्वीका विरुद्ध छन्।

कारणभावत् कार्यभावः ॥ —वै०अ० ४। आ० १। सूत्र ३

कारण हुनाले नै कार्य हुन्छ।

न तु कार्यभावत्कारणाभावः ॥ —वै०अ० १। आ० २। सूत्र २

तर कार्यको अभावले कारणको अभाव हुँदैन।

कारणाऽभावत्कार्याऽभावः ॥ —वै० अ० १। आ० २। सूत्र १

कारण नभई कार्य कहिल्यै हुँदैन।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो हष्टः ॥

—वै०अ० २। आ० १। सूत्र २४

जस्तो कारणमा गुण हुन्छन्, त्यस्तै कार्यमा पनि हुन्छन्।

परिमाण दुई किसिमका हुन्छन्—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च ॥

—वै० अ ७। आ० १। सूत्र ११

अणु=सानो, महत्=ठूलो। जस्तै त्रसरेणु सिन्काभन्दा सानो र द्वयणुकभन्दा ठूलो हुन्छ त्यस्तै पहाड पृथ्वीभन्दा सानो र वृक्षभन्दा ठूलो हुन्छ।

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥

—वै० अ० १। आ २। सूत्र ७

जुन द्रव्य, गुण र कर्ममा सत् शब्द अन्वित अर्थात् मिलिरहेको हुन्छ, त्यसलाई सत्ता भनिन्छ। अर्थात् '**सद् द्रव्यम् सद् गुणः सत्कर्म**' **सत् द्रव्य,** सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्तमान कालवाची शब्दको अन्वय सबैसँग रहन्छ।

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव ॥

—वै०अ० १। आ० २। सूत्र ४

सबैसित अनुवर्त्तमान=पछि लागिरहेको हुनाले सत्तारूप भाव '**महासामान्य**' भनिन्छ। यो क्रम भावरूप द्रव्यहरूको हो।

'**अभाव**' पाँच प्रकारका छन्। **पहिलो**—

क्रियागुण व्यपदेशाभावत् प्रागसत् ॥—वै० अ० ९। आ० १। सूत्र १

क्रिया र गुणको विशेष कारणभन्दा प्राक् अर्थात् पूर्व '**असत्**' जो थिएन, जस्तै वस्त्र आदिको उत्पत्तिभन्दा पूर्व घट थिएन। यसलाई '**प्रागभाव**' भनिन्छ। **दोस्रो**—

संदसत् ॥ —वै०अ० ९ आ० १। सूत्र २

जो उत्पन्न भएर न रहोस्। नष्ट भई जाओस्। जस्तै घर उत्पन्न भएर नष्ट हुनु। यसलाई '**प्रध्वंसाभाव**' भनिन्छ। **तेस्रो**—

सच्चासत् ॥ —वै० अ० ९। आ० १। सूत्र ४

जो छ पनि, छैन पनि। जस्तै '**अगौरश्वोऽनश्वो गौः**' गाई घोडा होइन र घोडा गाई होइन। अर्थात् गाईमा घोडाको र घोडामा गाईको अभाव हुन्छ। यसलाई '**अन्योऽन्याभाव**' भनिन्छ। **चौथो**—

यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥ —वै०अ० ९। आ० १। सूत्र ५

जुन पूर्वोक्त तिनै किसिमका अभावभन्दा भिन्नै छ। यसलाई '**अत्यन्ताऽभाव**' भनिन्छ। जस्तै '**नरश्रृङ्ग**' अर्थात् मानिसको सींग, '**खपुष्प**' आकाशको पुष्प र '**बन्ध्यापुत्र**' बाँझीको छोरो, इत्यादि। **पाँचौं**—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः॥

—वै०अ० ९। आ० १। सूत्र १०

घरमा घट छैन अर्थात् अन्यत्र छ। घरसँग घटको सम्बन्ध छैन। यसलाई '**संसर्गाऽभाव**' भनिन्छ। यी पाँच अभाव भनिन्छन्।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या।

—वै०अ० ९। आ० २। सूत्र १०

इन्द्रियहरू र संस्कारका दोषबाट '**अविद्या**' उत्पन्न हुन्छ।

तद् दुष्टज्ञानम्॥ —वै०अ० ९। आ० २। सूत्र ११

दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञानलाई '**अविद्या**' भनिन्छ।

अदुष्ट विद्या॥ —वै० अ० ९। आ० २। सूत्र १२

अदुष्ट अर्थात् यथार्थज्ञानलाई '**विद्या**' भनिन्छ।

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्श द्रव्याऽनित्यत्वादनित्याश्च॥

—वै० अ० ७। आ० १। सूत्र २

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्॥ —वै० अ० ७। आ० १। सूत्र ३

कार्यरूप पृथ्वी आदि पदार्थ र तिनमा रूप, रस, गन्ध, स्पर्शगुण यी सबै कार्य द्रव्य अनित्य हुनाले 'अनित्व' हुन। अनि यिनको कारणरूप पृथ्वी आदि नित्य द्रव्दमा भएका गन्ध आदि गुण भने '**नित्य**' हुन्छन्।

सदकारणवन्नित्यम्॥ —वै० अ० ४। आ० १। सूत्र १

जुन विद्यामान छ र जसको कुनैपनि कारण छैन त्यो '**नित्य**' हो। '**सत्कारणवदनित्यम्**' कारण भएका कार्यरूप गुणभने अनित्व मानिन्छन्।

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोध समवायि चेति लैङ्गिकम॥

—वै० अ० ९। आ०२। सूत्र १

समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि र विरोधी, यी चार प्रकारका लैङ्गिक अर्थात् लिङ्ग लिङ्गीको सम्बन्धबाट यसको यो कार्य वा कारण हो इत्यादि ज्ञान हुन्छ। '**समवायि**' जस्तै—आकाश परिमाण भएको छ। '**संयोगि**' जस्तै—शरीरमा छाला रहन्छ, इत्यादि नित्य संयोग छ। '**एकार्थसमवायि**'—एउटा अर्थमा दुइवटा रहनु, जस्तै-कार्य '**रूप**'

स्पर्शकार्य लिङ्ग अर्थात् चिन्ह हो। '**विरोधि**' जस्तै—भैसकेको वर्षा हुने वर्षाको विरोधी लिङ्ग हो। व्याप्तिः—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः। निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः। आधेय शक्तियोग इति पञ्चशिखः।

—संख्या सूत्र अ० ५। सू०२९, ३१, ३२

साध्य—साधन अर्थात् सिद्ध गर्न योग्य र जसबाट सिद्ध गरिन्छ ती दुवै अथवा एउटै साधनमात्रको सहचरलाई 'व्याप्ति' भनिन्छ। जस्तै—धुआँ र अग्निको साहचार्या हुन्छ॥ २९॥ व्याप्त हुने धुआँ अग्निको आफ्नै शक्तिबाट उत्पन्न हुन्छ। टाढा अर्को ठाउँमा धुवाँ पुगेपछि आगो बिना पनि धुवाँ आफैं रहन सक्तछ, त्यसैको नाम 'व्याप्ति' हो। अर्थात् अग्नि को छेदन भेदन सामर्थ्यले जल आदि पदार्थ धुवाँको रूपमा प्रकट हुन्छ॥ ३१॥ '**महत्**' तत्व आदिमा प्रकृति आदिका व्यापकता जस्तै बुद्धि आदिमा व्याप्तधर्मको सम्बन्ध नै '**व्याप्ति**' हो। जस्तै—शक्ति आधेयरूप र शक्तिमान् आधाररूप दुवैको सम्बन्ध हुन्छ॥ ३२॥

इत्यादि शास्त्रका प्रमाणबाट परीक्षा गरी पढ्ने र पढाउने गर्नुपर्छ। नत्रभने विद्यार्थीहरूलाई सत्य ज्ञान कहिल्यै हुन सक्तैन। जुन-जुन ग्रन्थ पढाउनु छ ती सबै पूर्वोक्त प्रकारले परीक्षा गरी सत्य सिद्ध भएका ग्रन्थ पढाउने गर्नुपर्छ। उपर्युक्त परीक्षाबाट विरूद्ध ग्रन्थलाई भने कहल्यै पढ्नु वा पढाउनु हुँदैन। किनभने '**लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः**' लक्षण—जस्तै '**गन्धवती पृथ्वी**' पृथ्वी गन्धयुक्त छ, यस्तो लक्षण र प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूबाट सब सत्य, असत्य र पदार्थ निर्णय हुन्छ, यी कुरा बिना केही पनि हुँदैन।

अथ पठन-पाठन विधिः

अब पढ्ने-पढाउने प्रकार लेखिन्छ। सर्वप्रथम पाणिनिमुनिकृत '**शिक्षा**' अभ्यास गराउनु पर्छ। यो सूत्ररूपमा छ। यसको प्रकार अर्थात् यस अक्षरको यो स्थान, यो प्रयत्न र यो करण हो भन्ने कुरा सिकाउनु पर्छ। जस्तै—'**प**' यस अक्षरको ओठ स्थान, स्पष्ट प्रयत्न र वायु तथा जिब्रोले क्रिया गर्नु करण भनिन्छ। यस्तै प्रकारले सबै अक्षर यथायोग्य उच्चारण आमा, बाबु वा आचार्यले सिकाउनु पर्छ। त्यसपछि व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायीका सूत्रको पाठ, जस्तै—'**वृद्धिरादैच**', अष्टाध्यायी १।१.१ त्यसपछि पदच्छेद, जस्तै—'**वृद्धिः आत् ऐच् वा आदैच्**', त्यसपछि समास, जस्तै—**आच्च ऐच्च आदैच्,**' अनि अर्थ '**आदैचां**

वृद्धिसंज्ञा क्रियते' अर्थात् **आ, ऐ, औ,** को वृद्धिसंज्ञा हुन्छ।'**तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः**' जुन भन्दा पर तकार र जुन तकार भन्दा पनि पर छ त्यो '**तपर**' भनिन्छ। यसबाट '**आ**' कार भन्दा पर '**त्**' र '**त्**' भन्दा पर **ऐच्** दुबै अर्थात् **आ** र **ऐच्** तपर हुन्। ह्रस्व र प्लुतको वृद्धिसंज्ञा भएन भन्नु नै तपरक्रो प्रयोजन हो। उदाहरण '**भागः**' मा **भज्** धातु भन्दा पर '**घ्**' '**ञ्**' को इत्संज्ञा भएर लोप भएको छ। त्यसपछि '**भज् अ**' मा जकार भन्दा पूर्व भकारपछिको अकार वृद्धिसंज्ञक आकार वृद्धिसंज्ञक आकार भएको छ। अनि '**भाज् अ**' भयो। पुनः '**ज्**' लाई '**ग्**' भई आकारसँग मिल्दा '**भागः**' यस्तो प्रयोग भयो। **अधि**पूर्वक '**इङ्**' धातुको ह्रस्व '**इ**' को ठाउँमा, पर '**घञ्**' प्रत्यय हुनाले '**ऐ**' वृद्धि र **ऐ**लाई **आय्** भई मिलेर '**अध्यायः**' हुन्छ। '**नीञ्**' धातुको दीर्घ '**ई**' को ठाउँमा, पर '**ण्वुल** प्रत्यय हुनाले '**ऐ**' वृद्धि र त्यसलाई '**आय्**' भई मिलेर '**नायकः**' हुन्छ। '**स्तु**' धातुबाट '**ण्वल** प्रत्यय भई ह्रस्व '**उ** कारको ठाउँमा '**औ**' वृद्धि र '**आव्**' आदेश भई आकारमा मिलेर '**स्वताकः**' बन्दछ। '**कृञ्**' धातुमा '**ण्वुल्**' प्रत्यय '**ल्**' को इत्यसंज्ञा भई लोप, '**वु**' को ठाउँमा '**अक्**' आदेश र ऋकारको ठाउँमा '**आर्**' वृद्धि भई '**कारकः**' सिद्ध हुन्छ।

अगाडि–पछाडिको प्रयोगमा लागने सूत्रको सबै बताउँदै जानु पर्छ। सिलेट वा काठको पट्टामा देखाइ देखाइ कच्चा रूप लेखेर, जस्तै '**भज्+घञ्+सु**' यसरी लेखेर पहिले अकारको लोप, त्यसपछि **घ्**कारको, फेरि '**ञ्**' को लोप भ् '**भज्+अ+सु**' यस्तो भयो। आब '**भ्**' कारपछि '**ज्**' कार अघिको '**अ**' लाई '**आ**' बढ्छ, '**ज**' को ठाउँमा **ग** हुनाले '**भाग्+अ+सु**' पुनः **ग्** र **अ** मिल्दा '**भाग+सु**' हुन्छ। अब '**उ**'कारको इत्संज्ञा, '**स्**' को ठाउँमा '**रूँ**' भएर पुनः '**उ**'को इत्संज्ञा लोप भएर '**भागर्**' हुन्छ। अन्तमा रेफको ठाउँमा (:) विसर्जनीय भएर '**भागः**' यो रूप सिद्ध हुन्छ। जुन जुन सूत्रबाट जे जे कार्य हुन्छ त्यसलाई पढेर, पढाएर र लेखाएर काम गराउँदै जानु पर्छ। यसरी पढ्ने पढाउने गर्नाले चाँडै नै राम्रो ज्ञान हुँदै जान्छ।

यस्तै किसिले एकपल्ट अष्टाध्यायी पढाएर अर्थसहित धातुपाठ, दशैं लकारका रूप, प्रक्रिया सहित सूत्रहरू उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जस्तै '**कर्मण्य्**'(अष्टाध्यायी ३.२.१) कर्म उपपद लागेको भए धातुदेखि '**अण्**' प्रत्यय हुन्छ। जस्तै **कुम्भकारः**, त्यसपछि अपवादसूत्र जस्तै '**आतेऽनुपसर्गे कः**' उपसर्ग भिन्न कर्म उपपद भए आकरान्त धातुबाट

'**क**' प्रत्यय हुन्छ। अर्थात् धेरै व्यापक जस्तै कर्म उपपद भएमा सबै धातुबाट '**अण्**' प्रत्यय प्राप्त हुन्छ। त्यो भन्दा विशेष अर्थात् अल्पविषय त्यसै पूर्व सूत्रका विषयमा आकारान्त धातुलाई '**क**' प्रत्ययले लिन्छ। जसरी उत्सर्गका विषयमा अपवाद सूत्र प्रवृत्ति हुन्छ त्यसरी अपवाद सूत्र विषयमा उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्ति हुँदैन। जस्तै—चक्रवर्ती राजाको राज्यमा माण्डलिक र भूमिपालको प्रवृत्ति हुन्छ तर माण्डलिक राजा आदिका राज्यमा चक्रवर्तीको प्रवृत्ति हुँदैन।

यस्तै प्रकार पाणिनि महर्षिले एकहजार श्लोकमा अखिल शब्द अर्थ र सम्बन्ध विद्या प्रतिपादित गरिदिनुभएको छ। धातुपाठ पछि उणादिगण पढाउँदा सम्पूर्ण सुबन्तको विषय राम्ररी पढाएर पुनः दोस्रो पटक **शङ्का, समाधान, वार्तिक, कारिका,** परिभाषा आदि जानकारी दिदैं अष्टाध्यायीको '**द्वितिय अनुवृत्ति**' पढाउनु पर्छ। त्यसपछि '**महभाष्य**' पढाउनु पर्छ। अर्थात् बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि चाहने व्यक्तिले नित्य पढ्ने पढाउने गरेमा डेढवर्षमा अष्टाध्यायी र डेढवर्षमा महाभाष्य पढेर तीन वर्षमा पूर्ण वैयाकारण भएर वैदिक र लौकिक शब्दहरू व्याकरणद्वारा ज्ञान प्राप्त गरेर पुनः अरू शास्त्रहरूलाई शीघ्र सहजै पढ्न पढाउन सक्ने हुन्छन्। तर जति ज्ञान यिनलाई पढ्नाले तीन वर्षमा हुन्छ त्यति ज्ञान '**कुग्रन्थ**' अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा आदिलाई पढेर **पचासवर्षमा** पनि हुन सक्तैन। किनभने महाशय महर्षिहरूले महान् विषयलाई जसरी सहजै आफ्ना ग्रन्थमा प्रकाशित गरेका छन् त्यस्तो यी क्षुद्राशय मानिसहरूका कल्पित ग्रन्थहरूमा कसरी हुन सक्छ र? महर्षिहरूका आशय सकभर सरल, सुगम र कम समयमा बुझ्न सकिने हुन्छ भने क्षुद्राशय व्यक्तिहरूका मनसाय भने सकभर कठिन रचना गर्ने हुन्छ। त्यसलाई बडो परिश्रमसाथ पढेर पनि थोरै मात्र लाभ हुन्छ, जस्तै पहाड खनेर कौडी भेट्टाउनु। तर आर्ष ग्रन्थ पढ्नु भनेको समुद्रमा एक डुबुल्की लगाएर बहुमूल्य मोती झिक्नु जस्तो हुन्छ।

व्याकरण पढिसकेपछि यास्कमुनिकृत **निघण्टु** र **निरुक्त** छ वा आठ महीनामा अर्थ सहित पढ्नु पढाउनु पर्छ। अरू नास्तिकहरूले बनाएका अमरकोश आदिमा अनेक वर्ष खेरहाल्नु पर्दैन। त्यसपछि पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थबाट वैदिक लौकिक छन्दहरू राम्रो ज्ञान, नयाँ रचना र श्लोक बनाउने तरीका पनि राम्ररी सिक्नु पर्छ। यो ग्रन्थ, श्लोक रचना र प्रस्तार चार महीनामा सिक्नु र पढ्न पढाउन सकिन्छ।

साथै वृत्तरत्नाकार आदि अल्पबुद्धि भएकाहरूबाट कल्पित ग्रन्थहरूमा अनेक वर्ष खेर फाल्नु उचित हुँदैन।

त्यसपछि मनुस्मृति, वाल्मीकिरामायण र महाभारतको उद्योग पर्व अन्तर्गतको विदुरनीति आदि राम्रा राम्रा, दुष्ट व्यसन हटाउने, उत्तमता र सभ्यता प्राप्त गराउने खालका प्रकरण, काव्य पढ्ने तरीकाले अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण र भावर्थ आदि अध्यापकले पढाउँदै र विद्यार्थीले बुझ्दै जानु पर्दछ। यी सबैलाई एकवर्षभित्र पढिसक्नु पर्छ।

त्यसपछि पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य र वेदान्त यी छ शास्त्रलाई सकभर ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्वान्हरूका सरल व्याख्या समेत पढ्नु–पढाउनु पर्छ। तर वेदान्तसूत्र पढ्नु अघि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य र बृहदारण्यक यी दश उपनिषद्लाई पढेर छ शास्त्रका भाष्यवृत्ति समेत सूत्रहरूलाई दुईवर्ष भित्र पढाइ र पढिसक्नु पर्छ।

अनि छ वर्ष भित्र ऐतरेय, शतपथ, साम र गोपथ यी चारै ब्राह्मण सहित चारै वेदका स्वर,शब्द, अर्थ, सम्बन्ध र क्रियासमेत पढ्नुपर्दछ। यसमा प्रमाण—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

यो मन्त्र निरुक्तमा (१।१८) छ। वेदको स्वर र पाठमात्र पढेर अर्थ नजान्ने व्यक्ति हाँगा–विंगा, फल, फूल, पात आदि बोक्ने रूख जस्तै अथवा मालसामानको भारी बोक्ने पशुजस्तै भार उठाउने मात्र हुन्छ। अनि वेदलाई पढ्ने र त्यसको अर्थ ठीक–ठीक जान्ने व्यक्ति भने सबै आनन्द प्राप्त गरेर देहान्त पछि ज्ञानद्वारा पापहरूलाई छोडैर पवित्र धर्माचरणका प्रभावले सबै प्रकारका आनन्द प्राप्त गर्छ।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

—ऋ० अ० १०। सूत्र ७१। मं० ४॥

अविद्वान् व्यक्ति सुनेर पनि नसुन्ने, देखेर पनि नदेख्ने र बोलेर पनि नबोल्ने हुन्छन् अर्थात् अविद्वान् यस विद्या–वाणीको रहस्यलाई बुझ्न सक्तैनन्। तर शब्द, अर्थ र सम्बन्धलाई जान्ने विद्वान्का निमित्त विद्या आफ्नो स्वरूपलाई कुनै सुन्दर वस्त्र र आभूषण धारण गरेकी, पतिको कामना गर्ने स्त्रीले आफ्नो पति समक्ष आफ्नो शरीर र स्वरूप प्रकाशित

गरे जस्तै प्रकाश गर्दछ, अविद्वान्का निमित्त गर्दैन।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९

जुन अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वरमा सबै विद्वान् र पृथ्वी, सूर्य आदि सबै लोक टिकेका छन्, जुनमा सबै वेदहरूको मुख्य तात्पर्य छ त्यस ब्रह्मलाई न जान्ने व्यक्ति ऋग्वेद आदिबाट के सुख पाउन सक्छ र? अर्थात् सक्तैन। वेद पढेर धर्मात्मा योगी भई ब्रह्मलाई जान्ने व्यक्ति परमेश्वरमै स्थित भएर मुक्तिरूपी परम आनन्द प्राप्त गर्दछन्। यसकारण जे जति पढ्नु–पढाउनु छ त्यो अर्थज्ञान सहित हुनु पर्दछ।

यसरी सबै वेद पढिसकेपछि आयुर्वेद अर्थात् चरक, सुश्रुत आदि ऋषिमनिकृत वैद्यक शास्त्रको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल र वस्तु गुणज्ञानपूर्वक चारवर्षमा पढ्नु–पढाउनु पर्छ।

त्यसपछि धनुर्वेद अर्थात् राजसम्बन्धी काम सिक्नु पर्छ। यसका दुई भेद छन्। पहिलो राजपुरुष सम्बन्धी र दोस्रो प्रजाजन सम्बन्धी। राजकार्यमा सबै सेनाध्यक्षका कार्य, शस्त्रास्त्रविद्या, नाना किसिमका व्यूह अभ्यास अर्थात् जसलाई हिजोआज 'कवायद' भनिन्छ, जो शत्रुहरूसँग लडाईमा क्रिया गरिन्छ, त्यो सबै राम्ररी सिक्नु पर्छ अनि प्रजापालन र वृद्धिगर्ने प्रकार पनि सिकेर न्यायपूर्वक प्रजालाई प्रसन्न राखने दुष्टलाई उचित दण्ड दिने र श्रेष्ठ को पालन पोषणको प्रकार पनि सबै सिक्नु पर्छ।

यस राजविद्यालाई दुई–दुई वर्षमा सिकेर गानविद्या भनिने गान्धर्ववेदमा स्वर,राग रागिनी,समय, ताल, ग्राम,तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदिलाई राम्ररी सिक्नु पर्छ र मुख्यरूपमा सामवेदको गान वाद्यवादनपूर्वक सिक्नु तथा नारद संहिता आदि आर्ष ग्रन्थ पढनु पर्छ। तर भंडुवा, वेश्या र विषयासक्तिकारक वैरागीहरूका गर्दभशब्दजस्ता व्यर्थ आलाप कहिल्यै गर्नु हुन्न।

शिल्पविद्या भनिने अर्थवेदको पदार्थगुणविज्ञान, क्रियाकौशल, नानाथरी पदार्थ निर्माण, पृथ्वीदेखि आकाशसम्मका विद्यालाई यथावत् सिकेर, ऐश्वर्य बढाउने अर्थविद्या सिक्नु र दुई वर्षमा बीजगणित, अङ्कगणित, भूगोल,खगोल र भूगर्भविद्या रहेको ज्योतिषशास्त्र, सूर्य सिद्धान्त आदि राम्ररी सिक्नु पर्छ। त्यसपछि सबै किसिमका हस्तक्रिया,

यन्त्रकला आदिलाई सिक्नुपर्छ। परन्तु ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि फल देखाउने ग्रन्थहरूलाई भने झूठा सम्झनुपर्छ र कहिल्यै पढ्नु पढाउनु हुँदैन। पढ्ने र पढाउनेले समेत बीस वा एक्काईस वर्ष भित्र मानिस सबै विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त भई कृतकृत्य भएर सदा आनन्दमा रहून् भन्ने प्रयत्न गर्नुपर्छ। यस्ता प्रकारले जति विद्याप्राप्त बीस वा एक्काईस वर्षमा हुन सक्छ,त्यति अन्य प्रकारले भने सय वर्षमा पनि हुन सक्तैन।

ऋषिहरू ठूला विद्वान्, सबै शास्त्र जान्ने र धर्मात्मा थिए भन्ने कारणले पनि उनीहरूका ग्रन्थ पढ्नु पर्छ। अनि अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढेका हुन्छन्, तिनीहरूको आत्मा पक्षपात सहित हुनाले तिनीहरूले बनाएका ग्रन्थ पनि त्यस्तै छन्।

पूर्वीमीमांसामा व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिकमा गोतममुनिकृत भाष्य, न्यायसूत्रमा वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य पतञ्जलिमुनिकृत योगसूत्रमा व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्रमा भृगुमुनरिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्रमा वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ्नु पढाउनु पर्छ। यी सूत्रहरूलाई कल्प अङ्गमा पनि गन्नु पर्छ। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व यी चार वेद ईश्वरकृत हुन् भने ऐतरेय, शतपथ, साम र गोपथ यी चारै ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द र ज्योतिष यी ६ वेदका अङ्ग, मीमांसा आदि ६ शास्त्र वेदका उपाङ्ग अनि आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद र अर्थवेद यी चार वेदका उपवेद इत्यादि सबै ऋषिमुनिले बनाएका ग्रन्थहुन्। यीनमा पनि वेद विरूद्ध प्रतीत भएजति कुरा त्याग्नु पर्छ किनभने वेद ईश्वरकृत हुनाले भ्रान्तिरहित, स्वतः प्रमाण अर्थात् वेदको प्रमाण वेदबाटै हुन्छ ब्राह्मण आदि सबै ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् यीनको प्रमाण वेदका अधीन हुन्छ। वेदको विशेष व्याख्या 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' मा हेर्नुहोला र यस ग्रन्थमा पनि पछि लेखिने छ।

अब छोड्नुपर्ने ग्रन्थहरू संक्षेपमा गणना गरिन्छ। तल लेखिएका ग्रन्थहरू जाल प्रपञ्च भएका ग्रन्थ हुन् भन्ने बुझ्नु पर्छ। व्याकरणमा कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमा आदि,कोशमा अमरकोश आदि, छन्दोग्रन्थमा वृत्तरत्नाकार आदि, शिक्षामा 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि प्राणिनींयं मतं यथा' आदि , ज्योतिषमा शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि, काव्यामा नायिकाभेद, कुवलयानन्द,

रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीय आदि,मीमांसामा धर्मसिन्धु, व्रातार्क आदि वैशिषिकमा तर्कसंग्रह आदि, न्याय जागदीश आदि, योगमा हठप्रदीपिका आदि, सांख्यमा सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि, वेदान्तमा योगवाशिष्ठ, पञ्चदशी आदि, वैद्यकमा शार्ङ्गधर आदि, स्मृतिहरूमा मनुस्मृतिका प्रक्षिप्त श्लोक र अरू सबै स्मृति, सबै तन्त्र ग्रन्थ, सबै पुराण, सबै उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गल आदि र सर्वभाषाग्रन्थ, यी सबै कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हुन्।

प्रश्न—के यी ग्रन्थमा केही पनि सत्य छैन त ?

उत्तर—केही सत्य त छ तर यसैसाथ धेरैजसो असत्यपनि छ। यसकारण '**विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः**' जसरी अति उत्तम अन्न पनि विष मिसिएको भए त्याग्नुपर्ने हुन्छ, त्यस्तै यी ग्रन्थ पनि हुन्।

प्रश्न—के तपाई पुराण इतिहासलाई मान्नु हुन्न ?

उत्तर—हो, मान्दछु, तर सत्यलाई मान्दछु, मिथ्यालाई मान्दिन,।

प्रश्न—कुन सत्य र कुनचाहीं मिथ्या त ?

उत्तर—**ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसी–रिति ॥** यो गृह्यसूत्रदिको तै० आ० २।९। वचन हो। माथि उल्लेखित ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मणकै इतिहास, पुराण कल्प गाथा र नाराशंसी यो पाँच नाम हुन्। श्रीमद्भागवत आदिको नाम पुराण होइन।

प्रश्न—त्याज्य ग्रन्थहरूमा भएका सत्य कुरा ग्रहण किन गर्नु हुन्न ?

उत्तर—तिनमा भएका सत्य कुराजति सबै वेद आदि सत्यशास्त्रका हुन् र मिथ्या उनीहरूको आफ्नो कल्पना हो। वेद आदि सत्य शास्त्रलाई स्वीकार गरेपछि त्यसैमा सबै सत्य ग्रहण हुन्छ। कसैले यी मिथ्याग्रन्थबाट सत्य ग्रहणगर्न चाहेमा मिथ्या पनि आइलाग्ने छ। यसैले '**असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यामिति**' असत्यसमेत भएको सत्यलाई पनि विष मिसिएको अन्न सरह त्याग्नु पर्छ।

प्रश्न—तपाईको मत के हो ?

उत्तर—वेद अर्थात् जुन जुन कुरा गर्ने र जुन कुरा छोड्ने शिक्षा वेदमा छ, त्यसलाई यथावत् गर्नु र छोड्नु पर्छ भन्ने मान्दछु। वेद मलाई मान्य छ त्यसैले मेरो मत वेद हो। यस्तै मानेर सबै मानिसले खासगरी आर्यहरूले एकमत भई बस्नु पर्दछ।

प्रश्न—जस्तो सत्यासत्य र अन्य ग्रन्थहरू परस्पर विरोध छ त्यस्तै अन्य शास्त्रमा पनि छ। जस्तै सृष्टि विषयमा छ शास्त्र परस्पर

विरोध छ—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति र वेदान्त ब्रह्मबाट सृष्टि उत्पत्ति मान्दछ। के यो विरोध होइन ?

उत्तर—वास्तवमा सांख्य र वेदान्त बाहेक अरू चार शास्त्रमा सृष्टि उत्पत्ति खासगरी लेखिएकै छैन, तापनि यिनमा विरोध छैन। तपाईलाई विरोध अविरोधको ज्ञान रहेनछ। म सोद्धछु, विरोध कुन ठाउँमा हुन्छ ? एउटै विषयमा अथवा भिन्न भिन्न विषयमा ?

प्रश्न—एउटै विषयमा अनेकौंको परस्पर विरूद्ध भनाइ छ भने त्यसलाई विरोध भनिन्छ। यहाँ पनि सृष्टि एउटै विषय छ।

उत्तर—विद्या एउटा छ वा दुईवटा ? एउटै छ भने व्याकरण, वेद्यक, ज्योतिष आदि भिन्न भिन्न विषय किन छन् ? जसरी एउटै विद्यामा विद्याका अनेक अवयवहरूको एकअर्का भन्दा भिन्नै प्रतिपादन हुन्छ, त्यस्तै सृष्टि विद्याका भिन्न भिन्न छ अवयवको छ शास्त्रमा प्रतिपादन हुनाले यिनमा केही पनि विरोध छैन। जसरी घडा बनाउन कर्म, समय, माटो, विचार, संयोग, वियोग आदि पुरुषार्थ, प्रकृतिका गुण र कुमाले कारण हुन्छ त्यस्तै सृष्टि कर्मकारण व्याख्या मीमांसामा, समयको व्याख्या वैशेषिकमा, उपादानकारणको व्याख्या न्यायमा, पुरुषार्थको व्याख्या योगमा, तत्त्वहरूको क्रमबद्ध गणनाको व्याख्या सांख्यमा र निमित्तकारण परमेश्वरको व्याख्या वेदान्त शास्त्रमा छ। यसकारण केही पनि विरोध छैन। जसरी वैद्यकशास्त्रमा निदान, चिकित्सा, औषधि–दान र पथ्यका प्रकरण भिन्न भिन्न भनिएका छन्, तर सबैको सिद्धान्त रोगनिवृत्ति हो। त्यस्तै सृष्टिका छ कारण छन्। यिनमा एक एक कारणको व्याख्या एक एक शास्त्रकारले गरेका छन्। यसकारण केही पनि विरोध छैन। यसको विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरणमा गरिने छ।

विद्या पढ्न–पढाउन बाधक कुरालाई छोड्नु पर्छ। जस्तै–कुसङ्गत अर्थात् दुष्टविषयी व्यक्तिको संगत, दुष्टव्यसन जस्तै–मद्य आदि सेवन र वेश्यागमन आदि, बाल्यावस्थामा विवाह अर्थात् पच्चीस वर्ष अघि पुरुष र सोह्रौंवर्ष अघि स्त्रीको विवाह हुनु, पूर्ण ब्रह्मचर्य नहुनु, वेदादि शास्त्रका प्रचार राजा, आमा–बाबु र विद्वान्हरूको प्रेम नहुने, अतिभोजन, अतिजागरण, पढ्ने–पढाउने, परीक्षा लिने वा दिने काममा आलस्य वा कपट गर्नु, विद्यालाभलाई सर्वोपरि नसम्झनु, ब्रह्मचर्यबाट बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य र धन वृद्धि हुन्छ भन्ने कुरा नमान्नु, ईश्वरको

ध्यान गर्न छोडेर अरू ढुङ्गा आदि जड्मूर्ति दर्शन पूजनमा व्यर्थ समय खेरफाल्नु, आमा, बाबु, अतिथि, आचार्य्य र विद्वानलाई सत्यमूर्ति मानेर सेवा, सत्संग नगर्नु, वर्णाश्रम धर्मलाई त्यागेर ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कण्ठी, माला आदि धारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि ब्रत गर्नु, काशी आदि तीर्थ र राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेश आदिको नामस्मरणबाट पाप नासिने विश्वास, पाखण्डीहरूका कुरामा परेर विद्या पढ्न अश्रद्धा हुनु, विद्या, धर्म, योग, परमेश्वरको उपासना नगरी मिथ्या पुराण नाम गरिएका भागवत आदिका कथा आदिबाट मुक्ति हुन्छ भन्ने मान्नु, लोभले धनसम्पत्ति तर्फ लागेर विद्या पढ्न मन नलाउनु, यताउति व्यर्थ डुल्नु, इत्यादि मिथ्या व्यवहारहरूमा फँसेर ब्रह्मचर्य र विद्याबाटहुने लाभबाट वञ्चित भई रोगी र मूर्ख बनिरहन्छन्।

हिजो–आजका सम्प्रदायी र स्वार्थी ब्राह्मण आदि क्षत्रिय आदि पढेर विद्वान् भए भने उनीहरूका पाखण्डजालबाट छुटेर उनीहरूका छलकपटलाई बुझेर उनीहरूको अपमान गर्नेछन् भन्ने विचारले ब्राह्मणेतर व्यक्तिलाई विद्या, सत्संगबाट हटाएर, आफ्नो जालमा फँसाएर उनीहरूको तन, मन, धन नष्ट गरिदिन्छन्। राजा र प्रजाले यस्ता विध्न हटाएर केटा र केटीहरूलाई विद्वान् बनाउन तन, मन, धनले प्रयत्न गर्ने गर्नुपर्छ।

प्रश्न—के स्त्री र शूद्रले पनि वेद पढून् ? यिनीहरूले पढेमा हामीले के गर्ने ? फेरि यिनीहरूले पढ्ने प्रमाण पनि छैन। जस्तै—यो निषेध छ—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयतामिति श्रुतेः ॥ स्त्री र शूद्रले नपढून्, यो श्रुति हो !

उत्तर—सबै स्त्री र पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्रलाई पढ्ने अधिकार छ। तपाई कुवामै पर्नुहोस् र यो **श्रुतिपनि तपाईको कपोलकल्पनाबाट बनाइएको हो, कुनै प्रामाणिक ग्रन्थको होइन**। साथै सब मानिसले वेदादि शास्त्र पढ्ने, सुन्ने अधिकार यजुर्वेद छब्बीसौं अध्यायमा दोस्रो मन्त्र छ—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

—यजुर्वेद २६।२

परमेश्वरले भनेको छ **(यथा)** जसरी म **(जनेभ्यः)** सबै मानिसका लागि, **(इनाम्)** यस **(कल्याणीम्)** कल्याम अर्थात् संसारसुख र मुक्तिसुख दिने **(वाचम्)** ऋग्वेदादि चारै वेदका वाणीको

(आवदानि) उपदेश गर्दछु, त्यस्तै तिमीपनि गर्नेगर।

स्मृति आदि ग्रन्थमा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यले मात्र वेद पढ्ने अधिकार लेखिएको छ, स्त्री र शूद्रादि वर्णको छैन भन्दै कसैले यहाँ **'जन'** शब्दले द्विज भन्ने बुझ्नु पर्छ भन्लान्।

उत्तर—(ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादिमा परमेश्वरले स्वयं भनेको छ कि मैले ब्राह्मण, क्षत्रिय **(अर्य्याय)** वैश्य, **(शूद्राय)** शूद्र र **(स्वाय)** आफ्ना भृत्य अथवा स्त्री आदि र **(अरणाय)** अतिशूद्र आदिका लागि पनि वेद प्रकाश गरेको छ। अर्थात् सबै मानिसले वेद पढेर-पढाएर, सुनेर-सुनाएर, विज्ञानलाई बढाएर राम्रोकुरा ग्रहण र गलत नराम्राकुरा त्यागेर दुःखहरूबाट छुटेर आनन्द प्राप्त गरून्। भन्नुहोस् अब तपाईंको कुरा मानौं अथवा परमेश्वरको? परमेश्वरको कुरा अवश्य मान्न योग्य छ। यतिहुँदा पनि यसलाई नमान्ने व्यक्ति नास्तिक भनिने छ। किनभने **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** (मनु० ५।११) वेदको निन्दा गर्ने र नमान्ने व्यक्ति नास्तिक भनिन्छ। के ईश्वर शूद्रहरूको भलो गर्न चाहदैन? के ईश्वर पक्षपाती छ र वेद पढ्नु, सुन्न शूद्रलाई निषेध र द्विजलाई विधि गरोस्। परमेश्वरको अभिप्राय शूद्र आदिलाई पढाउने, सुनाउने नभएको भए तिनका शरीरमा वाक् र श्रोत्र इन्द्रिय किन बनायो? जसरी परमात्माले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य र अन्न आदि पदार्थ सबैका लागि बनाएको छ, त्यस्तै वेद पनि सबैका लागि प्रकाशित गरेको हो। जहाँ कतै निषेध गरिएको छ भने त्यसको अभिप्राय पढ्दा-पढाउँदा केही पनि नजान्ने व्यक्ति निर्बुद्धि र मूर्ख हुनाले शूद्र भनिन्छ भन्नेमात्र हो। त्यसले पढ्नु-पढाउनु व्यर्थ हुन्छ। अनि स्त्रीहरूलाई पढ्न निषेधगर्न चाहिं निषेध गर्नेको मूर्खता, स्वार्थता र निर्बुद्धिताको प्रभाव हो। कन्याले पढ्नुपर्छ भन्ने प्रमाण वेदमा छ—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्ववेद काण्ड ११। सूक्त ५। मन्त्र १८

जसरी केटाले ब्रह्मचर्य सेवनद्वारा पूर्ण विद्या र सुशिक्षा प्राप्त गरेर युवती, विदुषि, आफ्नो अनुकूल, प्रिय, योग्य स्त्रीसँग विवाह गर्छन् त्यस्तै **(कन्या)** कुमारी **(ब्रह्मचर्येण)** ब्रह्मचर्य सेवनद्वारा वेदादि शास्त्र पढेर पूर्ण विद्या र उत्तम शिक्षा प्राप्त युवती भएर पूर्ण युवावस्थामा आफ्नै सदृश प्रिय विद्वान् **(युवानम्)** र पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुषलाई **(विदन्ते)** प्राप्त गरोस्। यसकारण स्त्रीले पनि ब्रह्मचर्य र विद्या ग्रहण अवश्य गर्नुपर्छ।

प्रश्न—के स्त्रीहरूले पनि वेद पढून्?

उत्तर—अवश्य पढून्। हेर, श्रौतसूत्र आदिमाः—**'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत'** अर्थात् यज्ञमा स्त्रीले यो मन्त्र पढ्नुपर्छ। स्त्री वेदादि शास्त्र पढेकी नभए स्वरसहित मन्त्रहरू उच्चारण र संस्कृतभाषण कसरी गर्न सक्छे? भारतवर्षका स्त्रीहरूमा भूषणरूपा, गार्गी आदि वेदादि शास्त्र पढेर पूर्ण विदुषी भएका थिए भन्ने कुरा शतपथ ब्राह्मणमा स्पष्ट लेखिएको छ। अनि फेरि पुरुष विद्वान् र स्त्री अविदुषी तथा स्त्री विदुषी र पुरुष अविद्वान् भए घरमा दिनहुँ देवासुर संग्राम मच्चिन्छ, अनि सुख कहाँ होला? स्त्री नपढे कन्या पाठशालामा अध्यापिका कसरी हुन सक्लान् तथा राजकार्य, न्यायधीशत्व आदि गृहस्थाश्रमका पतिलाई स्त्रीले र स्त्रिलाई पतिले प्रसन्न राख्ने कार्य तथा स्त्रीकै अधीनमा रहने सबै काम पनि विद्या बिना हुनै कार्य राम्रोसँग कहिल्यै हुन सक्तैन।

हेर, आर्यावर्त्तका राजपुरुषकी स्त्रीहरू धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या पनि राम्ररी जान्ने हुन्थे। जान्ने नभएकी भए केकयी आदि दशरथ आदिसँग युद्धमा कसरी गएर युद्ध गर्न सक्थे? यसकारण ब्राह्मणीले सबै विद्या, क्षत्रियाले सबै विद्याकासाथ विशेषरूपमा युद्धविद्या र राजविद्या, वैश्याले व्यवहारविद्या र शूद्राले पाक आदि सेवा विद्या अवश्य पढ्नुपर्छ। जसरी पुरुषले व्याकरण, धर्म र आफ्नो व्यवहारको विद्या कमसेकम अवश्य पढ्नुपर्छ त्यस्तै स्त्रीले पनि व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित र शिल्पविद्या त अवश्य सिक्नुपर्छ। किनभने यत्ति नसिकी सत्य-असत्य निर्णय, पति आदिसँग अनुकूल भैरहनु, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, तिनलाई पालन, पोषण, बर्द्धन र सुशिक्षा, घरका सबैकार्य यथायोग्य गर्नु गराउनु घरमा रोग कहिल्यै नलाग्ने र सबै सदा आनन्दित रहनेगरी वैद्यक विद्याद्वारा औषध जस्तै सबै खानपानका वस्तु बनाउने र बनाउन लगाउने गर्नु आदि कार्य ठीक-ठीक गर्न गराउन सक्तिन। शिल्प विद्या नजानी घर बनाउन वा बनाउन लगाउन, वस्त्र आभूषण आदि बनाउन, बनाउन लगाउन, गणित विद्या बिना सबैको हिसाब बुझ्न, बुझाउन र वेदादि शास्त्र विद्या विना ईश्वर र धर्मलाई जान्न नसक्नेहुँदा अधर्मबाट कहिल्यै बच्न सक्तैनन्।

यसकारण ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा र विद्याद्वारा आफ्ना सन्तानको शरीर र आत्माको पूर्ण बल बढाउने व्यक्ति धन्यवाद योग्य र कृतकृत्य हुन्छन्। जसबाट ती सन्तान आमा, बाबु, पति, सासु, ससुरा, राजा, छिमेकी, इष्टामित्र र सन्तान आदिसँग यथायोग्य धर्मपूर्वक व्यवहार

गर्ने होऊन्। यही कोश अक्षय हो। यसलाई जति खर्च गरेपनि बढ्दैजान्छ। अरू सबै कोश खर्च गर्दा घट्दै जान्छन् र अंशियार पनि आफ्नो भाग लिन्छन्। विद्याकोशलाई चोर्न वा भागबण्डा लगाउन कसैले सक्तैन। राजा र प्रजा सबैले विशेषगरी यसकोशलाई रक्षा र वृद्धि गर्नुपर्छ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० ७।१५२

उक्त समयदेखि उक्त समयसम्म सबै केटा र केटीलाई ब्रह्मचर्यमा राखेर विद्वान् गराउनु राजाको कर्तव्य हो। यस आज्ञालाई नमान्नेका आमा बाबुलाई दण्ड दिनुपर्छ अर्थात् राजाका आज्ञाले आठवर्षपछि केटा केटी कसैका घरमा रहन नपाऊन्, उनीहरू आचार्य्यकुलमै रहून्। समावर्तनको समय नआएसम्म विवाह हुन नपाओस्।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहोवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

—मनु० ४।२३

जल, अन्न, गाई, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण र घृत (घ्यू) आदि संसारमा भएका समस्तदान भन्दा वेदविद्या दान अतिश्रेष्ठ हुन्छ। यसकारण विद्यावृद्धिका लागि तन, मन,धनले सकभर बढी प्रयत्न गर्नुपर्छ। जुन देशमा यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या र वेदोक्त धर्म प्रचार हुन्छ, त्यही देश सौभाग्यशाली हुन्छ।

यो ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा संक्षेपमा लेखियो। यसपछि चौथो समुल्लासमा समावर्तन, विवाह र गृहाश्रम शिक्षा लेखिनेछ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषविभूषिते शिक्षाविषये तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ–समुल्लासः

अथ समावर्त्तन–विवाह–गृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥ १ ॥

—मनुस्मृति ३।२

ब्रह्मचर्यकालमा यथावत् आचार्य अनुकूल व्यवहार गरेर धर्मपूर्वक चारै, तीन, दुई अथवा एक वेद साङ्गोपाङ्ग पढेर ब्रह्मचर्य खण्डित नभएका पुरुष वा स्त्रीले गृहाश्रममा प्रवेश गर्नुपर्छ।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमं गवा॥ २ ॥

—मनुस्मृति ३।३

स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य र शिष्य धर्मयुक्त पिता, जनक वा अध्यापकबाट ब्रह्मदाय अर्थात् वेदाध्ययनरूप अंश प्राप्त गर्ने र माला धारण गर्ने ब्रह्मचारीले सर्वप्रथम आसनमा विराजमान आफ्ना आचार्यलाई गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ। यस्तै लक्षणयुक्त विद्यार्थीलाई पनि कन्याका पिताले गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ।

गुरूणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ ३ ॥

—मनुस्मृति ३।४

गुरुको आज्ञाले स्नान गरेर, नियमपूर्वक गुरुकुलबाट आएर ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले आफ्नो वर्ण अनुकूल सुन्दर लक्षण भएकी कन्यासँग विवाह गर्नुपर्छ।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ४ ॥

—मनुस्मृति ३।५

आमा कुलको छ पिंढीभित्र नभएकी र बुबाको गोत्र नभएकी कन्यासँग विवाह गर्नु उचित हुन्छ।

यसको प्रयोजन यो हो कि—

गर्ने होऊन्। यही कोश अक्षय हो। यसलाई जति खर्च गरेपनि बढ्दैजान्छ। अरू सबै कोश खर्च गर्दा घट्दै जान्छन् र अंशियार पनि आफ्नो भाग लिन्छन्। विद्याकोशलाई चोर्न वा भागबण्डा लगाउन कसैले सक्तैन। राजा र प्रजा सबैले विशेषगरी यसकोशलाई रक्षा र वृद्धि गर्नुपर्छ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० ७।१५२

उक्त समयदेखि उक्त समयसम्म सबै केटा र केटीलाई ब्रह्मचर्यमा राखेर विद्वान् गराउनु राजाको कर्तव्य हो। यस आज्ञालाई नमान्नेका आमा बाबुलाई दण्ड दिनुपर्छ अर्थात् राजाका आज्ञाले आठवर्षपछि केटा केटी कसैका घरमा रहन नपाऊन्, उनीहरू आचार्य्यकुलमै रहून्। समावर्तनको समय नआएसम्म विवाह हुन नपाओस्।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहोवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

—मनु० ४।२३

जल, अन्न, गाई, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण र घृत (घ्यू) आदि संसारमा भएका समस्तदान भन्दा वेदविद्या दान अतिश्रेष्ठ हुन्छ। यसकारण विद्यावृद्धिका लागि तन, मन,धनले सकभर बढी प्रयत्न गर्नुपर्छ। जुन देशमा यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या र वेदोक्त धर्म प्रचार हुन्छ, त्यही देश सौभाग्यशाली हुन्छ।

यो ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा संक्षेपमा लेखियो। यसपछि चौथो समुल्लासमा समावर्तन, विवाह र गृहाश्रम शिक्षा लेखिनेछ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषविभूषिते शिक्षाविषये
तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्ण॥ ३॥

अथ चतुर्थ–समुल्लासः

अथ समावर्त्तन–विवाह–गृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥ १॥

—मनुस्मृति ३।२

ब्रह्मचर्यकालमा यथावत् आचार्य अनुकूल व्यवहार गरेर धर्मपूर्वक चारै, तीन, दुई अथवा एक वेद साङ्गोपाङ्ग पढेर ब्रह्मचर्य खण्डित नभएका पुरुष वा स्त्रीले गृहाश्रममा प्रवेश गर्नुपर्छ।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमं गवा॥ २॥

—मनुस्मृति ३।३

स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य र शिष्य धर्मयुक्त पिता, जनक वा अध्यापकबाट ब्रह्मदाय अर्थात् वेदाध्ययनरूप अंश प्राप्त गर्ने र माला धारण गर्ने ब्रह्मचारीले सर्वप्रथम आसनमा विराजमान आफ्ना आचार्यलाई गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ। यस्तै लक्षणयुक्त विद्यार्थीलाई पनि कन्याका पिताले गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ।

गुरूणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ३।४

गुरुको आज्ञाले स्नान गरेर, नियमपूर्वक गुरुकुलबाट आएर ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले आफ्नो वर्ण अनुकूल सुन्दर लक्षण भएकी कन्यासँग विवाह गर्नुपर्छ।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्त द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ४॥

—मनुस्मृति ३।५

आमा कुलको छ पिंढीभित्र नभएकी र बुबाको गोत्र नभएकी कन्यासँग विवाह गर्नु उचित हुन्छ।

यसको प्रयोजन यो हो कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥

—शतपथ तु०श०ब्रा० ६।१।२ गो०ब्रा०पू० १।१॥

जस्तो परोक्ष पदार्थमा प्रीति हुन्छ, त्यस्तो प्रत्यक्षमा हुन्न भन्ने कुरा निश्चित छ। जस्तै कसैले मिश्रीको गुण सुनेको छ तर चाखेको छैन भने उसको मन त्यसैमा लागिरहन्छ। जसरी कुनै परोक्ष वस्तुको प्रशंसा सुनेर प्राप्त गर्ने उत्कट इच्छा हुन्छ, त्यस्तै टाढाकी अर्थात् आफ्नो गोत्र र आमाको कुलमा निकट सम्बन्ध नभएकी कन्यासँग वरको विवाह हुनुपर्छ।

नजिक र टाढा विवाह गर्न यी गुण र अवगुण हुन्छन्—

पहिलो—बाल्यावस्थामा नजिक रहने केटा–केटी परस्पर क्रीडा, लडाइ र प्रेम गर्ने, एकअर्काका गुण, दोष, स्वभाव वा बाल्यावस्थाका विपरीत आचरण जान्ने र नांगै पनि एकअर्कालाई देख्ने हुन्छन्, तिनको परस्पर विवाहहुँदा प्रेम कहिल्यै हुन सक्तैन।

दोस्रो—जसरी पानीमा पानी मिसिदा कुनै विलक्षण गुण हुँदैन,त्यस्तै एउटै गोत्र, पितृकुल वा मातृकुलमा विवाह हुँदा धातुको अदला–बदली नहुने हुँदा उन्नति हुँदैन।

तेस्रो—जसरी दूधमा मिश्री वा सुंठो आदि औषधी मिलेको हुँदा दूध उत्तम गुणयुक्त हुन्छ त्यस्तै छुट्टै गोत्रका मातृकुल वा पितृकुलमा नपर्ने स्त्री–पुरुष विवाह हुनु उत्तम हुन्छ।

चौथो—जसरी एउटा ठाउँको रोगी अर्को ठाउँमा हावापानी र खानपान बदल्दा रोग रहित हुन्छ, त्यस्तै टाढा बस्नेहरूसँग विवाह हुनु उत्तम हुन्छ।

पाँचौं—नजिक सम्बन्ध हुँदा एकअर्काको नजिक हुनाले सुख, दुःखको प्रतीति र विरोध पनि हुन सक्छ, टाढा गर्दा त्यस्तो हुँदैन। टाढा विवाह गर्दा प्रेमको डोरी टाढासम्म झन् लम्बिदै जान्छ भने नजिक विवाह गर्दा यस्तो हुँदैन।

छैठौं—टाढा–टाढाका समाचार र पदार्थहरू प्राप्त पनि टाढा सम्बन्ध हुँदा सहजै हुन सक्छ भने निकट विवाह हुँदा यो सम्भव हुँदैन। यसैकारण—

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति। —निरुक्त ३।४

कन्याको विवाह टाढा गर्दा हितकारी हुन्छ, नजिक गर्दा हुँदैन भन्ने कारणले नै कन्याको नाम '**दुहिता**' हो।

सातौं—नजिक विवाह गर्दा कन्याका पितृकुलमा दारिद्र्य पनि हुन सक्छ। किनभने जब जब ऊ पितृकुलमा आउँछे,तब तब केही न

केही दिनै पर्ने हुन्छ।

आठौं—केही आफन्त नजिक हुँदा एकअर्कालाई आ–आफ्नो पितृकुलका सहायताको घमण्ड हुन सक्छ र दुबैमा अलिकति पनि वैमनस्य हुँदा स्त्री तुरुन्तै पिताको कुलमा जानेगर्नेगर्छे। किनभने स्त्रीहरूको स्वभाव प्रायः तीक्ष्ण र मृदु हुन्छ। इत्यादि कारण ले गर्दा पिताको एउटै गोत्र आमाको ६ पुस्ता भित्र र नजिक ठाउँमा विवाह गर्नु राम्रो हुँदैन।

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥ १॥

—मनुस्मृति ३।६

जतिसुकै धनधान्य, गाई, बाख्रा, हात्ती, घोडा, राज्य, श्री आदिले समृद्ध भए तापनि विवाह सम्बन्धमा तल लेखिएका दश कुललाई त्याग्नु पर्छ॥ १॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥ २॥

—मनुस्मृति ३।७

सत्कर्म नभएको, सत्पुरुषरहित, वेदाध्ययनबाट विमुख, शरीरमा लामा–लामा रौं भएको, अल्काइ, क्षय, दमा, खोकी, आउँको रोग, मृगि, श्वेतकुष्ठ र गलितकुष्ठ भएको कुलकी कन्या वा वरसँग विवाह हुनुहुन्न। किनभने यी सबै दुर्गुण र रोग विवाह गर्नेको कुलमा पनि सर्न सक्छन्। यसकारण उत्तम कुलका केटा र केटीको परस्पर विवाह हुनुपर्दछ॥ २॥

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान् न पिङ्गलाम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ३।८

पहेंलो वर्णकी, अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुषभन्दा अग्ली, मोटी, बल्लीई, रोगी, रौं नभएकी, धेरै रौं भएकी, धेरै बोल्ने र कैला आँखा भएकी कन्यासँग विवाह गर्नु उचित हुन्न।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ ४॥

—मनुस्मृति ३।९

ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रेवती, चित्तारी आदि नक्षत्रको नाम भएकी, तुलसी, बेली गुलाफी, चमेली आदि वृक्षका नाम भएकी, गङ्गा,

यमुना आदि नदीका नाम भएकी, चाण्डाली, आदि अन्त्य नाम भएकी, विन्ध्या, हिमालय, पार्वती आदि पर्वतको नाम भएकी, कोकिला, मैना आदि पंछीको नाम भएकी, नागी, भुजुङ्गा आदि सर्पको नाम भएकी, माधोदासी, मीरादासी आदि नोकरचाकरको जस्तो नाम भएकी र भीमकुमारी, चण्डिका,काली आदि डरलाग्दा नाम भएकी कन्यासँग विवाह गर्नु हुँदैन। किनभने यी नाम निन्दित र अरू पदार्थका पनि छन्॥ ४॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम्॥ ५॥

—मनुस्मृति ३।१०

राम्रा र सलक्क परेका अङ्ग–प्रत्यङ्ग भएकी, यशोदा, सुखदा आदि जस्तै सुन्दर नाम भएकी, हाँस र हात्तीको जस्तो हिंडाइ भएकी, राम्रा, मसिना रौं, कपाल र दाँत भएकी र सर्वाङ्ग कोमल भएकी स्त्रीसँग विवाह गर्नुपर्छ॥ ५॥

प्रश्न—विवाह गर्ने समय र प्रकार कुनचाहिं ठीक होला?

उत्तर—सोह्रौं वर्षदेखि चौबिसौं वर्षसम्म कन्याको र पच्चिसौं वर्षदेखि अठचालिसौं वर्षसम्म पुरुषको विवाह समय उत्तम हो। यसमा सोह्रौं र पच्चिसौंमा हुने विवाह निकृष्ट, अठार–बीस वर्षकी स्त्री र तीस–पैंतीस वा चालीस वर्षको पुरुषको मध्यम र चौबीस वर्षकी स्त्री र अठचालीस वर्षका पुरुषको विवाह उत्तम हुन्छ। जुन देशमा यस्तै प्रकार श्रेष्ठ विवाह विधि र ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास बढी हुन्छ त्यो देश सुखी हुन्छ र जुन देशमा ब्रह्मचर्य, विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्थामा र अयोग्य विवाह हुन्छ त्यो देश दुःखमा डुब्दछ। किनभने ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहणपूर्वक विवाह सुधारबाटै सबै सुधार हुन्छ र यस विपरीत भए सबैकुरा बिग्रिन्छन्।

प्रश्न— **अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।**
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ १॥
माता चैव पिता तस्य जेष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २॥

यी श्लोक पराशरी (७।६, ८) र शीघ्रबोध (१।५४, ६५) मा लेखिएका छन्। यिनको अर्थ हो कन्याको नाम आठौं वर्ष गौरी, नवौं वर्ष रोहणी, दशौं वर्ष कन्या र त्यपछि रजस्वला हुन्छ॥ १॥ दशौंवर्षसम्म कन्याको विवाह नगरी रजस्वला कन्यालाई देख्ने उसका आमा, बाबु

र दाजु यी तिनै नरकमा जान्छन्॥ २॥

उत्तर— **ब्रह्मोवाच:**
एकक्षणा भवेद्गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ १॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी।
स्वका सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २॥

यो हालै निर्माण गरिएको ब्रह्मपुराणको वचन हो।

अर्थ—जति समयमा परमाणु एक पल्टा खान्छ, त्यति समयलाई क्षण भनिन्छ। कन्या जन्मेको पहिलो क्षणमा गौरी, दोस्रो क्षणमा रोहिणी, तेस्रोमा कन्या र चौथोमा रजस्वला हुन्छे॥ १॥ त्यस रजस्वलालाई देख्ता उसका आमा, बाबु दाजु–भाइ, दिदी–बहिनी, मामा आदि सबै नरक जान्छन्॥ २॥

प्रश्न—यी श्लोकहरू प्रमाण होइनन्।

उत्तर—प्रमाण किन होइनन्? यी ब्रह्माजीका श्लोक प्रमाण होइनन् भने आपाईंका पनि प्रमाण हुँदैनन्।

प्रश्न—वा! पराशर र काशीनाथलाई पनि प्रमाण मान्नुहुन्न?

उत्तर—अहा! के तपाई ब्रह्माजीको प्रमाण मान्नु हुन्न? के पराशर र काशीनाथ भन्दा ब्रह्मा ठूला होइनन्? तपाई ब्रह्माजीका श्लोकलाई प्रमाण मान्नु हुन्न भने हामी पनि पराशर र काशीनाथका श्लोकलाई मान्दैनौं।

प्रश्न—तपाईका श्लोक असम्भव हुनाले प्रमाण होइनन्। किनभने हजारौं क्षण जन्म समयमै बित्छन् अनि विवाह कसरी हुन सक्छ? फेरि त्यसबखत विवाह गरेर फल पनि केही देखिदैन।

उत्तर—हाम्रा श्लोक असम्भव छन् भने तपाईका पनि असम्भव छन्। किनभने आठ नौ अथवा दश वर्षमा पनि विवाह गर्नु निष्फल हुन्छ। सोह्रौं वर्ष पछि चौबीसौं वर्षसम्म विवाह हुँदा पुरुषको वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्रीको गर्भाशय पूर्ण र शरीर पनि बलशाली हुनाले सन्तान उत्तम हुन्छन्। उचित समय भन्दा कम उमेरका स्त्री–पुरुषलाई गर्भाधान गर्न सुश्रुतमा मुनिवर धन्वन्तिर निषेध गर्नुहुन्छ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थःस विपद्यते॥ १॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधनं न कारयेत्॥ २॥

—सुश्रुत शारीरस्थान अ० १०। श्लोक ४७, ४८

अर्थ—सोह्रवर्ष भन्दा कम आयुकी स्त्रीमा पच्चीस वर्ष भन्दा कम आयुका पुरुषले गर्भाधान गरेमा गर्भाशयमा रहेको गर्भ विपत्तिमा पर्छ अर्थात् पूरा समयसम्म गर्भाशयमा रहेर उत्पन्न हुँदैन॥ १ ॥ अथवा उत्पन्न भैहाले पनि धेरै बाँच्दैन, बाँचिहाल्यो भनेपनि दुर्बलेन्द्रिय हुन्छ। यसकारण अति बाल्यावस्था भएकी स्त्रीमा गर्भ स्थापित गर्नुहुन्न॥ २ ॥

यस्ता शास्त्रोक्त नियम र सृष्टिक्रम हेर्दा र विचार गर्दा सोह्रवर्ष भन्दा कम स्त्री र पच्चीसवर्ष भन्दा कम आयुका पुरुष कहिल्यै गर्भाधान गर्न योग्य हुँदैनन् भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यी नियम विपरीत गर्नेहरू दुःखभागी हुन्छन्।

जसरी आठौं वर्षकी कन्यामा सन्तानोत्पत्ति हुनु असम्भव छ त्यस्तै गौरी, रोहिणी नाम दिनु पनि उपयुक्त होइन। कन्या गोरी नभएर काली छे भने त्यसको नाम गौरी राख्नु व्यर्थ हुन्छ अनि गौरी महादेवकी स्त्री, रोहिणी वासुदेवकी स्त्री थिए, तिनलाई तपाई पौराणिकहरू मातृसमान मान्नुहुन्छ। जब कन्यामात्र गौरीको अथवा रोहिणीको भावना गर्नुहुन्छ भने तिनीहरूसँग विवाह गर्न कसरी संभव र धर्मयुक्त हुन सक्छ? यसकारण तपाईका र हाम्रा दुई दुई श्लोक मिथ्या नै हुन्। किनभने जसरी हामीले '**ब्रह्मोवाच**' गरेर श्लोक बनायौं त्यस्तै ती पनि पराशर आदिका नामबाट बनाइएका हुन्। यसकारण यी सबै प्रमाणलाई त्यागेर वेद प्रमाणबाट सबै काम गर्ने गर्नुपर्छ। मनुस्मृतिमा—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यु तुमती सती।
ऊर्ध्व तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

—मनुस्मृति ९।९०

कन्या रजस्वला भएपछि तीन वर्षसम्म पतिको खोज गरेर आफ्नो योग्य पति प्राप्त गरोस्। प्रतिमास रजोदर्शन हुने हुनाले तीन वर्षमा छत्तीस पटक रजस्वला भए पछि विवाह गर्नु उचित हुन्छ, यस अघि हुँदैन।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

—मनुस्मृति ९।८९

बरू कन्या वा पुरुष नमरुन्जेल कुमारै किन नरहून्, तर असदृश अर्थात् एक अर्का विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव भएकासँग कहिल्यै विवाह हुनु हुँदैन। यसबाट पूर्वोक्त समय अघि र असदृशको विवाह हुनु ठीक हुँदैन।

प्रश्न—विवाह आमा–बाबुका अधीन हुनु पर्छ अथवा वर बधूका अधीन हुनु पर्छ?

उत्तर—विवाह बर–बधूके अधीन हुनु उत्तम हो। आमा बाबुले विवाह गरिदिने विचार गरे पनि केटा केटीका प्रसन्नता न भई हुनहुन्न। किनभने एकअर्काका प्रसन्नताले विवाह हुँदा विरोध कम हुन्छ र सन्तान उत्तम हुन्छन्। अप्रसन्नतामा विवाह भए नित्य क्लेश रहन्छ। विवाहमा मुख्य प्रयोजन वर– कन्याको हुन्छ, आमा बाबुको होइन। त्यसैले परस्पर प्रसन्नता भए उनैलाई सुख र परस्पर विरोध भए उनैलाई दुःख हुन्छ। अनि—

सन्तुष्टो भार्यमा भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

—मनुस्मृति ३।६०

जुन कुलमा स्त्रीबाट र पुरुषबाट स्त्री सदा प्रसन्न रहन्छन्, त्यस कुलमा आनन्द, लक्ष्मी र कीर्ति निवास गर्दछन् र जहाँ विरोध, कलह हुन्छ त्यहाँ दुःख दरिद्रता र कलह रहन्छन्।

यसैले जुन स्वयंवरको परम्परा आर्यवर्त्तमा चलिआएको छ, त्यही विवाह उत्तम हो। स्त्री–पुरुषले विवाह गर्न चाहेमा उनीहरूका विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल र शरीरका परिमाण यथायोग्य हुनु पर्छ। यी कुराको मेल नभएसम्म विवाहमा कुनै पनि सुख हुँदैन। साथै बाल्यावस्थामा विवाह गरेर पनि सुख हुँदैन।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ १ ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २ ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० १६

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥ ३ ॥

—ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १

जुन पुरुष (**परिवीतः**) सबै प्रकारले, यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्यसेवनद्वारा उत्तम शिक्षा र विद्यायुक्त, (**सुवासाः**) सुन्दर वस्त्रधारण गरेको, ब्रह्मचर्ययुक्त (**युवा**) पूर्ण युवा भई विद्याग्रहण गरेर गृहाश्रममा (**आगत्**) आँउछ, (**स उ.**) उही दोस्रो विद्याजन्ममा (**जायमानः**) प्रसिद्ध भएर

(श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी **(भवति)** हुन्छ। **(स्वाध्यः)** राम्रो ध्यानयुक्त **(मनसा)** विज्ञानबाट **(देवयन्तः)** विद्यावृद्धिको कामना–युक्त, **(धीरासः)** धैर्ययुक्त **(कवयः)** विद्वान्हरू **(तं)** उसै पुरुषलाई **(उन्नयन्ति)** उन्नतिशील गरेर प्रतिष्ठित बनाउँछन्। अनि ब्रह्मचर्यधारण, विद्या, उत्तमशिक्षा ग्रहण नगरी अथवा बाल्यावस्थामा विवाह गर्ने स्त्री–पुरुष नष्ट भ्रष्ट भई विद्वान्हरूमा प्रतिष्ठा प्राप्त गर्न सक्तैनन्॥ १ ॥

(अप्रदुग्धाः) कसैले न दुहेका, **(धेनवः)** गाईजस्तै **(अशिश्वीः)** बाल्यावस्थारहित **(सुबर्दुघाः)** सबै प्रकारका उत्तमकर्मलाई पूर्ण गर्ने, **(शशयाः)** कुमारअवस्थालाई उल्लंघन गर्ने, **(नव्यानव्याः)** नयाँ नयाँ शिक्षा र अवस्थाले पूर्ण **(भवन्तीः)** भएकी **(युवतयः)** पूर्ण युवावस्थामा रहेका स्त्रीहरू **(देवानाम्)** ब्रह्मचर्य र सुनियमले परिपूर्ण विद्वाहरूको **(एकम्)** अद्वितीय, **(महत्)** ठूलो **(असुरत्वम्)** प्रज्ञा शास्त्रशिक्षायुक्त, प्रज्ञामा रमण गरेर फलितार्थ प्राप्त गर्दै तरुण पतिलाई प्राप्त गरेर **(आ धुनयनताम्)** गर्भ धारण गरून्। बाल्यवस्थामा कहिल्यै झुक्किएर मनबाट पनि पुरुषतर्फ ध्यान नगरून्। किनभने यही कर्म यसलोक र परलोकमा सुखहुने साधन हो। बाल्यावस्थामा विवाह गर्दा जति पुरुषलाई हानि हुन्छ त्यो भन्दा बढी हानि स्त्रीलाई हुन्छ॥ २ ॥

जसरी **(नु)** छिट्टै **(शश्रमाणाः)** धेरै परिश्रम गर्ने **(वृषणः)** विर्य सिंचन गर्न समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष **(पत्नीः)** युवावस्थमा रहेकी प्रिया स्त्रीलाई **(जगम्युः)** पाएर पूर्ण शयवर्ष वा त्यो भन्दा पनि बढी आयु तथा आनन्द भोग गर्छन् र पुत्र–पौत्र आदिले भरिभराउ भई रहन्छन्, त्यस्तो व्यवहार स्त्रीपुरुषले सधैं गर्ने गर्नु पर्छ। जसरी **(पूर्वीः)** पहिले भएका **(शरदः)** शरद् ऋतुहरू र **(जरयन्तीः)** वृद्धावस्था प्राप्त गराउने **(उषसः)** प्रातः कालका वेलालाई **(दोषाः)** रात्री र **(वस्तो)** दिन **(तनूनाम्)** शरीरका **(श्रियम्)** शोभालाई **(जरिमा)** अत्यन्त वृद्धआवस्था बल र शोभालाई **(मिनाति)** हटाइदिन्छ, त्यस्तै **(अहम्)** म स्त्री वा पुरुष **(उ)** राम्ररी **(अपि)** निश्चयपूर्वक ब्रह्मचर्य द्वारा विद्या, शिक्षा, शरीर र आत्मा बल र युवावस्थालाई प्राप्त गरेर मात्र विवाह गरूँने। यसको विरुद्ध गर्नु वेदविरुद्ध हुनाले सुखदायक विवाह कहिल्यै हुँदैन॥ ३ ॥

जब सम्म यस्तै किसिमले ऋषि–मुनि, राजा –महाराजा र आर्य्यजन

ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढिसकेपछि मात्र स्वयंवर विवाह गर्ने गर्दथे, तब सम्म यस देशको सधैं उन्नति हुँदै आएको थियो। जबदेखि ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ्न छोडेर पराधीन अर्थात् आमाबाबुका अधीन विवाह हुन थाल्यो, तबदेखि क्रमशः आर्य्यावर्त्त देशको हानि हुँदै आउन थाल्यो। यसकारण यस दुष्ट कामलाई छोडेर सज्जनहरूले पूर्वोक्त प्रकारले स्वयंवर विवाह गर्ने गर्नु पर्छ। त्यो विवाह वर्ण अनुकूलता अनुसार गर्नु पर्छ र वर्णव्यवस्था पनि गुण, कर्म, स्वाभाव अनुसार हुनु पर्दछ।

प्रश्न—के आमा बावु ब्राह्मणी र ब्राह्मण हुनेका सन्तान ब्राह्मण नै हुन्छन्? अनि अन्यवर्णका आमाबावुका सन्तान पनि के कुनै वेला ब्राह्मण हुन सक्छन्?

उत्तर—हँ अवश्य हुन्छन्, धेरै भई सकेका छन् र भविष्यमा भई, पनि हुन सक्तछन्। जस्तै छन्दोग्य उपनिषद्मा जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत विश्वामित्र क्षत्रियवर्ण र मातङ्ग ऋषि चाण्डाकुलबाट ब्राह्मण भएका थिए। अहिले पनि उत्तम विद्या स्वभाव भएको व्यक्ति ब्राह्मणयोग्य र मूर्ख चाहिं शूद्रयोग्य हुन्छ र पछि पनि यस्तै भइरहने छ।

प्रश्न—रज वीर्यको संयोगले बनेको शरीर बदलिएर अर्को वर्णको योग्य कसरी हुन सक्छ?

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

—मनुस्मृति २।२८

यसको अर्थ पहिलेनै गरिसकिएको छ। अब यहाँ पनि संक्षेपमा लेखिन्छ—**(स्वाध्यायेन)** पढ्ने–पढाउने, **(जपैः)** विचार गर्ने गराउने, **(होमैः)** नानाथरि होमको अनुष्ठान, **(त्रैविद्येन)** सम्पूर्ण वेदका शब्द अर्थ सम्बन्ध स्वरोच्चारण सहित पढ्ने–पढाउने, **(इज्यया)** पौर्णमासी, इष्टि आदि गर्ने, पूर्वोक्त विधिपूर्वक **(सुतैः)** धर्माचरणले सन्तानोत्पत्ति, **(महायज्ञैश्च)** पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्यदेवयज्ञ र अथितियज्ञ, **(यज्ञैश्च)** अग्निष्टोमा आदि यज्ञ, विद्वान्हरू संग संगति र सत्कार, सत्यभाषण, परोपकार आदि सत्कर्म र सम्पूर्ण शिल्पविद्या आदि पढेर दुष्ट आचरण त्यागेर श्रेष्ठ आचरण र व्यवहार गर्ने गर्दा **(इयम)** यस **(तनुः)** शरीरलाई **(ब्राह्मी)** ब्राह्मण शरीर **(क्रियते)** बनाइन्छ। के यस श्लोकलाई तपाई मान्नुहुन्न?

उत्तर—मान्दछु।

प्रश्न—अनि किन रजवीर्यका संयोगबाट वर्ण व्यवस्था मान्नुहुन्छ

त ? म एउटालेमात्र मानेको होइन्, धेरैजना परम्पराले यस्तै मान्दछन्। के तपाई परम्परा पनि खण्डन गर्नु हुन्छ ?

उत्तर—होइन, तर तपाईको उल्टो समझलाई नमानेर खण्डन पनि गर्छु।

प्रश्न—हाम्रो समझ उल्टो र तपाईको सुल्टो हो भन्ने कुराको के प्रमाण छ ?

उत्तर—प्रमाण यही हो कि तपाई पाँच सात पुस्ताका व्यवहारलाई सनातन मान्नु हुन्छ र हामी वेद तथा सृष्टि आरम्भ देखि आजसम्मको परम्परालाई मान्दछौं। हेर्नुहोस्, श्रेष्ठ पिताको दुष्ट पुत्र, श्रेष्ट पुत्रको दुष्ट पिता तथा कतै दुवै श्रेष्ठ वा दुवै दुष्ट पनि देखिन्छन्। यसै कारण तपाई भ्रममा पर्नु भएको छ। हेर्नुहोस्, मनु महाराजले के भन्नु भएको छ—

येनास्य पितरो याताः येन याता पितामहाः।
तेन ययात् सतां मार्ग तेन गच्छन्न रिष्यते॥

—मनुस्मृति ४।१७८

जुन मार्गमा जसका बाबु बाजे हिंडेका थिए, त्यसै मार्गमा उनका सन्तानले पनि हिंड्नु पर्छ। तर **'सताम्'**=बाबु–बाजे सत्पुरुष भएमात्र उनका मार्गमा हिंड्नु पर्छ। बाबु–बाजे दुष्ट भए उनका मार्गमा कहिल्यै हिंड्नु हुँदैन। किनभने उत्तम धर्मात्मा पुरुषहरूका मार्गमा हिंड्नाले दुःख कहिल्यै हुँदैन। यस कुरालाई तपाई मान्नुहुन्छ अथवा मान्नुहुन्न ? मान्दछु। अनि हेर्नुहोस्, परमेश्वरद्धारा प्रकाशित वेदोक्त कुरा नै सनातन हुन् र यस विरुद्धका कुरा कहिल्यै सनातन हुन सक्तैनन्। यसै सबैले मान्नु पर्छ वा पर्दैन ? अवश्य मान्नुपर्छ। यो कुरा नमान्नेसँग सोध्नु पर्छ भने कसैका पिता दरिद्र र उसका पुत्र धनाढ्य भएमा के आफ्नो पिताको दरिद्र अवस्थाको घमण्डले उसले आफ्नो धन फालिदियोस् ? कसैको बाबु अन्धो छ भनेके उसको छोराले पनि आफ्ना आँखा फुटाओस् ? कसैको पिता कुकर्मी छ भने के उसको छोराले पनि कुकर्म गर्ने नै हुनुपर्छ ? होइन–होइन, जुन व्यक्तिका जे जति उत्तम कर्म हुन्छन् सबैले तिनको सेवन र दुष्टकर्म त्याग गर्नु नै उचित हुन्छ।

रजवीर्य्यका संयोगबाट वर्णाश्रम व्यवस्था मान्ने र गुण कर्मबाट नमान्नेसँग सोध्नुपर्छ—कोही आफ्नो वर्ण छोडेर नीच, अन्त्यज अथवा ईसाई, मुसलमान हुन पुगेका भए, त्यसलाई पनि ब्राह्मण किन मान्दैनौं ? यहाँ यही भनिने छ कि उसले ब्राह्मणको कर्म छोडिदिएको हुनाले त्यो ब्राह्मण होइन। यसबाट उत्तम कर्म गर्ने ब्राह्मण आदिलाई नै ब्राह्मण

आदि वर्णमा र उत्तम वर्णका गुण कर्म स्वभाव भएको नीच पनि उत्तम वर्णमा साथै उत्तम वर्णको भएर नीच काम गर्ने पनि नीच वर्णमै गनिनु पर्छ भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

प्रश्न— ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत॥

यो यजुर्वेदको ३१ सौं अध्यायको ११ औं मन्त्र हो। यसको अर्थ यो हो–ब्राह्मण ईश्वरका मुखबाट, क्षत्रिय बाहुबाट, वैश्य ऊरू अर्थात् तिघ्राबाट र शूद्र पाउबाट उत्पन्न भएका हुन्। यसकारण जसरी मुखबाहु हुन सक्तैन र बाहु आदि मुख बन्न सक्तैनन्, त्यसैगरी ब्राह्मण क्षत्रिय आदि र क्षत्रिय आदि ब्राह्मण हुन सक्तैनन्।

उत्तर—यस मन्त्रको तपाईले गर्नुभएको अर्थ ठीक छैन। किनभने यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्माको अनुवृत्ति छ। परमात्मा निराकार हुनाले उसका मुख आदि अङ्ग हुनै सक्तैनन्। मुख आदि अङ्ग भएको भए ऊ पुरुष अर्थात् व्यापक होइन। अनि व्यापक नभए ऊ सर्वशक्तिमान्, जगत्का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्ता, जीवहरूका पाप–पुण्यको व्यवस्था गर्ने, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणयुक्त हुनै सक्तैन। यसकारण यस मन्त्रको सही अर्थ यो हो—

यो **(अस्य)** पूर्ण व्यापक परमात्माको सृष्टिमा **(मुखम्)** मुखजस्तै सबैमा मुख्य र उत्तम हुन्छ त्यो **(ब्राह्मणः)** 'ब्राह्मण', **(बाहू)** **'बाहुर्वै बलम्, बाहुर्वै वीर्यम्'** (शतपथ ब्राह्मण) तु० ६।२।३।३३.१३।१।१५।५, ५।३।१७॥ बल, वीर्यलाई बाहु भनिन्छ, त्यो बल वीर्य जसमा बढी हुन्छ त्यो (राजन्यः) 'क्षत्रिय', (ऊरू) कमरभन्दा तल्लो र घुडाभन्दा माथिल्लो भागको नाम 'ऊरू' अर्थात् तिघ्रो हो, सबै पदार्थ र ठाउँमा जसका बलले आउने, जाने, प्रवेश गर्ने आदि गर्न सकिन्छ त्यो **(वैश्यः)** 'वैश्य' र **(पद्भ्याम्)** पाउ अर्थात् सबैभन्दा तल्लो अङ्ग जस्तै मूर्खता आदि गुण भएको भए 'शूद्र' हुन्छ। अन्यत्र **'शतपथ ब्राह्मण'** आदिमा पनि यस मन्त्रको यस्तै अर्थ गरिएको छ। जस्तै—

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।' इत्यादि।

तु० श० ब्रा० ६।१।१।१०, तै० सं० ७।१।१।४॥

यी मुख्य हुनाले मुखबाट उत्पन्न भएका भन्ने कथन युक्तियुक्त हुन्छ। अर्थात् जसरी मुख सबै अङ्गमा श्रेष्ठ हुन्छ, त्यस्तै पूर्ण विद्या र उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त हुनाले मनुष्य जातिमा उत्तम **'ब्राह्मण'** भनिन्छ। परमेश्वर निराकार हुनाले उसका मुख आदि अङ्ग छैनन्

गर्ने होऊन्। यही कोश अक्षय हो। यसलाई जति खर्च गरेपनि बढ्दैजान्छ। अरू सबै कोश खर्च गर्दा घट्दै जान्छन् र अंशियार पनि आफ्नो भाग लिन्छन्। विद्याकोशलाई चोर्न वा भागबण्डा लगाउन कसैले सक्तैन। राजा र प्रजा सबैले विशेषगरी यसकोशलाई रक्षा र वृद्धि गर्नुपर्छ।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० ७।१५२

उक्त समयदेखि उक्त समयसम्म सबै केटा र केटीलाई ब्रह्मचर्यमा राखेर विद्वान् गराउनु राजाको कर्तव्य हो। यस आज्ञालाई नमान्नेका आमा बाबुलाई दण्ड दिनुपर्छ अर्थात् राजाका आज्ञाले आठवर्षपछि केटा केटी कसैका घरमा रहन नपाऊन्, उनीहरू आचार्य्यकुलमै रहून्। समावर्तनको समय नआएसम्म विवाह हुन नपाओस्।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहोवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

—मनु० ४।२३

जल, अन्न, गाई, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण र घृत (घ्यू) आदि संसारमा भएका समस्तदान भन्दा वेदविद्या दान अतिश्रेष्ठ हुन्छ। यसकारण विद्यावृद्धिका लागि तन, मन,धनले सकभर बढी प्रयत्न गर्नुपर्छ। जुन देशमा यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या र वेदोक्त धर्म प्रचार हुन्छ, त्यही देश सौभाग्यशाली हुन्छ।

यो ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा संक्षेपमा लेखियो। यसपछि चौथो समुल्लासमा समावर्तन, विवाह र गृहाश्रम शिक्षा लेखिन्छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषविभूषिते शिक्षाविषये
तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ३॥

अथ चतुर्थ–समुल्लासः

अथ समावर्त्तन–विवाह–गृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥ १॥

—मनुस्मृति ३।२

ब्रह्मचर्यकालमा यथावत् आचार्य अनुकूल व्यवहार गरेर धर्मपूर्वक चारै, तीन, दुई अथवा एक वेद साङ्गोपाङ्ग पढेर ब्रह्मचर्य खण्डित नभएका पुरुष वा स्त्रीले गृहाश्रममा प्रवेश गर्नुपर्छ।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमं गवा॥ २॥

—मनुस्मृति ३।३

स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य र शिष्य धर्मयुक्त पिता, जनक वा अध्यापकबाट ब्रह्मदाय अर्थात् वेदाध्ययनरूप अंश प्राप्त गर्ने र माला धारण गर्ने ब्रह्मचारीले सर्वप्रथम आसनमा विराजमान आफ्ना आचार्यलाई गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ। यस्तै लक्षणयुक्त विद्यार्थीलाई पनि कन्याका पिताले गाईदानद्वारा सत्कार गर्नुपर्छ।

गुरूणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ३।४

गुरुको आज्ञाले स्नान गरेर, नियमपूर्वक गुरुकुलबाट आएर ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले आफ्नो वर्ण अनुकूल सुन्दर लक्षण भएकी कन्यासँग विवाह गर्नुपर्छ।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ४॥

—मनुस्मृति ३।५

आमा कुलको छ पिंढीभित्र नभएकी र बुबाको गोत्र नभएकी कन्यासँग विवाह गर्नु उचित हुन्छ।

यसको प्रयोजन यो हो कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥

—शतपथ तु०श०ब्रा० ६।१।२ गो०ब्रा०पू० १।१॥

जस्तो परोक्ष पदार्थमा प्रीति हुन्छ, त्यस्तो प्रत्यक्षमा हुन्न भन्ने कुरा निश्चित छ। जस्तै कसैले मिश्रीको गुण सुनेको छ तर चाखेको छैन भने उसको मन त्यसैमा लागिरहन्छ। जसरी कुनै परोक्ष वस्तुको प्रशंसा सुनेर प्राप्त गर्ने उत्कट इच्छा हुन्छ, त्यस्तै टाढाकी अर्थात् आफ्नो गोत्र र आमाको कुलमा निकट सम्बन्ध नभएकी कन्यासँग वरको विवाह हुनुपर्छ।

नजिक र टाढा विवाह गर्न यी गुण र अवगुण हुन्छन्—

पहिलो—बाल्यावस्थामा नजिक रहने केटा–केटी परस्पर क्रीडा, लडाइ र प्रेम गर्ने, एकअर्काका गुण, दोष, स्वभाव वा बाल्यावस्थाका विपरीत आचरण जान्ने र नांगै पनि एकअर्कालाई देख्ने हुन्छन्, तिनको परस्पर विवाहहुँदा प्रेम कहिल्यै हुन सक्तैन।

दोस्रो—जसरी पानीमा पानी मिसिदा कुनै विलक्षण गुण हुँदैन,त्यस्तै एउटै गोत्र, पितृकुल वा मातृकुलमा विवाह हुँदा धातुको अदला–बदली नहुने हुँदा उन्नति हुँदैन।

तेस्रो—जसरी दूधमा मिश्री वा सुंठो आदि औषधी मिलेको हुँदा दूध उत्तम गुणयुक्त हुन्छ त्यस्तै छुट्टै गोत्रका मातृकुल वा पितृकुलमा नपर्ने स्त्री–पुरुष विवाह हुनु उत्तम हुन्छ।

चौथो—जसरी एउटा ठाउँको रोगी अर्को ठाउँमा हावापानी र खानपान बदल्दा रोग रहित हुन्छ, त्यस्तै टाढा बस्नेहरूसँग विवाह हुनु उत्तम हुन्छ।

पाँचौं—नजिक सम्बन्ध हुँदा एकअर्काको नजिक हुनाले सुख, दुःखको प्रतीति र विरोध पनि हुन सक्छ, टाढा गर्दा त्यस्तो हुँदैन। टाढा विवाह गर्दा प्रेमको डोरी टाढासम्म झन् लम्बिदै जान्छ भने नजिक विवाह गर्दा यस्तो हुँदैन।

छैठौं—टाढा–टाढाका समाचार र पदार्थहरू प्राप्त पनि टाढा सम्बन्ध हुँदा सहजै हुन सक्छ भने निकट विवाह हुँदा यो सम्भव हुँदैन। यसैकारण—

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति। —निरुक्त ३।४

कन्याको विवाह टाढा गर्दा हितकारी हुन्छ, नजिक गर्दा हुँदैन भन्ने कारणले नै कन्याको नाम '**दुहिता**' हो।

सातौं—नजिक विवाह गर्दा कन्याका पितृकुलमा दारिद्र्य पनि हुन सक्छ। किनभने जब जब ऊ पितृकुलमा आउँछे,तब तब केही न केही दिनै पर्ने हुन्छ।

आठौं—केही आफन्त नजिक हुँदा एकअर्कालाई आ–आफ्नो पितृकुलका सहायताको घमण्ड हुन सक्छ र दुबैमा अलिकति पनि वैमनस्य हुँदा स्त्री तुरुन्तै पिताको कुलमा जानेगर्नेगर्छे। किनभने स्त्रीहरूको स्वभाव प्रायः तीक्ष्ण र मृदु हुन्छ। इत्यादि कारण ले गर्दा पिताको एउटै गोत्र आमाको ६ पुस्ता भित्र र नजिक ठाउँमा विवाह गर्नु राम्रो हुँदैन।

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥ १॥

—मनुस्मृति ३।६

जतिसुकै धनधान्य, गाई, बाख्रा, हात्ती, घोडा, राज्य, श्री आदिले समृद्ध भए तापनि विवाह सम्बन्धमा तल लेखिएका दश कुललाई त्याग्नु पर्छ॥ १॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥ २॥

—मनुस्मृति ३।७

सत्कर्म नभएको, सत्पुरुषरहित, वेदाध्ययनबाट विमुख, शरीरमा लामा–लामा रौं भएको, अल्काइ, क्षय, दमा, खोकी, आउँको रोग, मृगि, श्वेतकुष्ठ र गलितकुष्ठ भएको कुलकी कन्या वा वरसँग विवाह हुनुहुन्न। किनभने यी सबै दुर्गुण र रोग विवाह गर्नेको कुलमा पनि सर्न सक्छन्। यसकारण उत्तम कुलका केटा र केटीको परस्पर विवाह हुनुपर्दछ॥ २॥

नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान् न पिङ्गलाम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ३।८

पहेंलो वर्णकी, अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुषभन्दा अग्ली, मोटी, बल्लीई, रोगी, रौं नभएकी, धेरै रौं भएकी, धेरै बोल्ने र कैला आँखा भएकी कन्यासँग विवाह गर्नु उचित हुन्न।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ ४॥

—मनुस्मृति ३।९

ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रेवती, चित्तारी आदि नक्षत्रको नाम भएकी, तुलसी, बेली गुलाफी, चमेली आदि वृक्षका नाम भएकी, गङ्गा,

यमुना आदि नदीका नाम भएकी, चाण्डाली, आदि अन्त्य नाम भएकी, विन्ध्या, हिमालय, पार्वती आदि पर्वतको नाम भएकी, कोकिला, मैना आदि पंछीको नाम भएकी, नागी, भुजुङ्गा आदि सर्पको नाम भएकी, माधोदासी, मीरादासी आदि नोकरचाकरको जस्तो नाम भएकी र भीमकुमारी, चण्डिका,काली आदि डरलाग्दा नाम भएकी कन्यासँग विवाह गर्नु हुँदैन। किनभने यी नाम निन्दित र अरू पदार्थका पनि छन्॥४॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम्॥५॥

—मनुस्मृति ३।१०

राम्रा र सलक्क परेका अङ्ग–प्रत्यङ्ग भएकी, यशोदा, सुखदा आदि जस्तै सुन्दर नाम भएकी, हाँस र हात्तीको जस्तो हिंडाइ भएकी, राम्रा, मसिना रौं, कपाल र दाँत भएकी र सर्वाङ्ग कोमल भएकी स्त्रीसँग विवाह गर्नुपर्छ॥५॥

प्रश्न—विवाह गर्ने समय र प्रकार कुनचाहिं ठीक होला?

उत्तर—सोह्रौं वर्षदेखि चौबिसौं वर्षसम्म कन्याको र पच्चिसौं वर्षदेखि अठचालिसौं वर्षसम्म पुरुषको विवाह समय उत्तम हो। यसमा सोह्रौं र पच्चिसौंमा हुने विवाह निकृष्ट, अठार–बीस वर्षकी स्त्री र तीस–पैंतीस वा चालीस वर्षको पुरुषको मध्यम र चौबीस वर्षकी स्त्री र अठचालीस वर्षका पुरुषको विवाह उत्तम हुन्छ। जुन देशमा यस्तै प्रकार श्रेष्ठ विवाह विधि र ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास बढी हुन्छ त्यो देश सुखी हुन्छ र जुन देशमा ब्रह्मचर्य, विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्थामा र अयोग्य विवाह हुन्छ त्यो देश दुःखमा डुब्दछ। किनभने ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहणपूर्वक विवाह सुधारबाटै सबै सुधार हुन्छ र यस विपरीत भए सबैकुरा बिग्रिन्छन्।

प्रश्न— **अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।**
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥
माता चैव पिता तस्य जेष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥

यी श्लोक पराशरी (७।६, ८) र शीघ्रबोध (१।५४, ६५) मा लेखिएका छन्। यिनको अर्थ हो कन्याको नाम आठौं वर्ष गौरी, नवौं वर्ष रोहणी, दशौं वर्ष कन्या र त्यपछि रजस्वला हुन्छ॥१॥ दशौंवर्षसम्म कन्याको विवाह नगरी रजस्वला कन्यालाई देख्ने उसका आमा, बाबु

र दाजु यी तिनै नरकमा जान्छन्॥२॥

उत्तर— **ब्रह्मोवाच:**
एकक्षणा भवेद्गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥१॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी।
स्वका सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥२॥

यो हालै निर्माण गरिएको ब्रह्मपुराणको वचन हो।

अर्थ—जति समयमा परमाणु एक पल्टा खान्छ, त्यति समयलाई क्षण भनिन्छ। कन्या जन्मेको पहिलो क्षणमा गौरी, दोस्रो क्षणमा रोहिणी, तेस्रोमा कन्या र चौथोमा रजस्वला हुन्छे॥१॥ त्यस रजस्वलालाई देख्ता उसका आमा, बाबु दाजु–भाइ, दिदी–बहिनी, मामा आदि सबै नरक जान्छन्॥२॥

प्रश्न—यी श्लोकहरू प्रमाण होइनन्।

उत्तर—प्रमाण किन होइनन्? यी ब्रह्माजीका श्लोक प्रमाण होइनन् भने तपाईंका पनि प्रमाण हुँदैनन्।

प्रश्न—वा! पराशर र काशीनाथलाई पनि प्रमाण मान्नुहुन्न?

उत्तर—अहा! के तपाई ब्रह्माजीको प्रमाण मान्नु हुन्न? के पराशर र काशीनाथ भन्दा ब्रह्मा ठूला होइनन्? तपाई ब्रह्माजीका श्लोकलाई प्रमाण मान्नु हुन्न भने हामी पनि पराशर र काशीनाथका श्लोकलाई मान्दैनौं।

प्रश्न—तपाईका श्लोक असम्भव हुनाले प्रमाण होइनन्। किनभने हजारौं क्षण जन्म समयमै बित्छन् अनि विवाह कसरी हुन सक्छ? फेरि त्यसबखत विवाह गरेर फल पनि केही देखिदैन।

उत्तर—हाम्रा श्लोक असम्भव छन् भने तपाईका पनि असम्भव छन्। किनभने आठ नौ अथवा दश वर्षमा पनि विवाह गर्नु निष्फल हुन्छ। सोह्रौं वर्ष पछि चौबीसौं वर्षसम्म विवाह हुँदा पुरुषको वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्रीको गर्भाशय पूर्ण र शरीर पनि बलशाली हुनाले सन्तान उत्तम हुन्छन्। उचित समय भन्दा कम उमेरका स्त्री–पुरुषलाई गर्भाधान गर्न सुश्रुतमा मुनिवर धन्वन्तिर निषेध गर्नुहुन्छ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थःस विपद्यते॥१॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधनं न कारयेत्॥२॥

—सुश्रुत शारीरस्थान अ० १०। श्लोक ४७, ४८

अर्थ—सोह्रवर्ष भन्दा कम आयुकी स्त्रीमा पच्चीस वर्ष भन्दा कम आयुका पुरुषले गर्भाधान गरेमा गर्भाशयमा रहेको गर्भ विपत्तिमा पर्छ अर्थात् पूरा समयसम्म गर्भाशयमा रहेर उत्पन्न हुँदैन ॥ १ ॥ अथवा उत्पन्न भैहाले पनि धेरै बाँच्दैन, बाँचिहाल्यो भनेपनि दुर्बलेन्द्रिय हुन्छ। यसकारण अति बाल्यावस्था भएकी स्त्रीमा गर्भ स्थापित गर्नुहुन्न ॥ २ ॥

यस्ता शास्त्रोक्त नियम र सृष्टिक्रम हेर्दा र विचार गर्दा सोह्रवर्ष भन्दा कम स्त्री र पच्चीसवर्ष भन्दा कम आयुका पुरुष कहिल्यै गर्भाधान गर्न योग्य हुँदैनन् भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यी नियम विपरीत गर्नेहरू दुःखभागी हुन्छन्।

जसरी आठौं वर्षकी कन्यामा सन्तानोत्पत्ति हुनु असम्भव छ त्यस्तै गौरी, रोहिणी नाम दिनु पनि उपयुक्त होइन। कन्या गोरी नभएर काली छे भने त्यसको नाम गौरी राख्नु व्यर्थ हुन्छ अनि गौरी महादेवकी स्त्री, रोहिणी वासुदेवकी स्त्री थिए, तिनलाई तपाई पौराणिकहरू मातृसमान मान्नुहुन्छ। जब कन्यामात्र गौरीको अथवा रोहिणीको भावना गर्नुहुन्छ भने तिनीहरूसँग विवाह गर्न कसरी संभव र धर्मयुक्त हुन सक्छ? यसकारण तपाईका र हाम्रा दुई दुई श्लोक मिथ्या नै हुन्। किनभने जसरी हामीले **'ब्रह्मोवाच'** गरेर श्लोक बनायौं त्यस्तै ती पनि पराशर आदिका नामबाट बनाइएका हुन्। यसकारण यी सबै प्रमाणलाई त्यागेर वेद प्रमाणबाट सबै काम गर्ने गर्नुपर्छ। मनुस्मृतिमा—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यु तुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

—मनुस्मृति ९।९०

कन्या रजस्वला भएपछि तीन वर्षसम्म पतिको खोज गरेर आफ्नो योग्य पति प्राप्त गरोस्। प्रतिमास रजोदर्शन हुने हुनाले तीन वर्षमा छत्तीस पटक रजस्वला भए पछि विवाह गर्नु उचित हुन्छ, यस अघि हुँदैन।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

—मनुस्मृति ९।८९

बरू कन्या वा पुरुष नमरुन्जेल कुमारै किन नरहून्, तर असदृश अर्थात् एक अर्का विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव भएकासँग कहिल्यै विवाह हुनु हुँदैन। यसबाट पूर्वोक्त समय अघि र असदृशको विवाह हुनु ठीक हुँदैन।

प्रश्न—विवाह आमा–बाबुका अधीन हुनु पर्छ अथवा वर बधूका अधीन हुनु पर्छ?

उत्तर—विवाह बर–बधूके अधीन हुनु उत्तम हो। आमा बाबुले विवाह गरिदिने विचार गरे पनि केटा केटीका प्रसन्नता न भई हुनहुन्न। किनभने एकअर्काका प्रसन्नताले विवाह हुँदा विरोध कम हुन्छ र सन्तान उत्तम हुन्छन्। अप्रसन्नतामा विवाह भए नित्य क्लेश रहन्छ। विवाहमा मुख्य प्रयोजन वर– कन्याको हुन्छ, आमा बाबुको होइन। त्यसैले परस्पर प्रसन्नता भए उनैलाई सुख र परस्पर विरोध भए उनैलाई दुःख हुन्छ। अनि—

सन्तुष्टो भार्यमा भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

—मनुस्मृति ३।६०

जुन कुलमा स्त्रीबाट र पुरुषबाट स्त्री सदा प्रसन्न रहन्छन्, त्यस कुलमा आनन्द, लक्ष्मी र कीर्ति निवास गर्दछन् र जहाँ विरोध, कलह हुन्छ त्यहाँ दुःख दरिद्रता र कलह रहन्छन्।

यसैले जुन स्वयंवरको परम्परा आर्यवर्त्तमा चलिआएको छ, त्यही विवाह उत्तम हो। स्त्री–पुरुषले विवाह गर्न चाहेमा उनीहरूका विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल र शरीरका परिमाण यथायोग्य हुनु पर्छ। यी कुराको मेल नभएसम्म विवाहमा कुनै पनि सुख हुँदैन। साथै बाल्यावस्थामा विवाह गरेर पनि सुख हुँदैन।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ १ ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २ ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० १६

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥ ३ ॥

—ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १

जुन पुरुष (**परिवीतः**) सबै प्रकारले, यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्यसेवनद्वारा उत्तम शिक्षा र विद्यायुक्त, (**सुवासाः**) सुन्दर वस्त्रधारण गरेको, ब्रह्मचर्ययुक्त (**युवा**) पूर्ण युवा भई विद्याग्रहण गरेर गृहाश्रममा (**आगत्**) आँउछ, (**स उ.**) उही दोस्रो विद्याजन्ममा (**जायमानः**) प्रसिद्ध भएर

(श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी **(भवति)** हुन्छ। **(स्वाध्यः)** राम्रो ध्यानयुक्त **(मनसा)** विज्ञानबाट **(देवयन्तः)** विद्यावृद्धिको कामना–युक्त, **(धीरासः)** धैर्ययुक्त **(कवयः)** विद्वान्हरू **(तं)** उसै पुरुषलाई **(उन्नयन्ति)** उन्नतिशील गरेर प्रतिष्ठित बनाउँछन्। अनि ब्रह्मचर्यधारण, विद्या, उत्तमशिक्षा ग्रहण नगरी अथवा बाल्यावस्थामा विवाह गर्ने स्त्री–पुरुष नष्ट भ्रष्ट भई विद्वान्हरूमा प्रतिष्ठा प्राप्त गर्न सक्तैनन्॥ १ ॥

(अप्रदुग्धाः) कसैले न दुहेका, **(धेनवः)** गाईजस्तै **(अशिश्वीः)** बाल्यावस्थारहित **(सुबर्दुघाः)** सबै प्रकारका उत्तमकर्मलाई पूर्ण गर्ने, **(शशयाः)** कुमारअवस्थालाई उल्लंघन गर्ने, **(नव्यानव्याः)** नयाँ नयाँ शिक्षा र अवस्थाले पूर्ण **(भवन्तीः)** भएकी **(युवतयः)** पूर्ण युवावस्थामा रहेका स्त्रीहरू **(देवानाम्)** ब्रह्मचर्य र सुनियमले परिपूर्ण विद्वाहरूको **(एकम्)** अद्वितीय, **(महत्)** ठूलो **(असुरत्वम्)** प्रज्ञा शास्त्रशिक्षायुक्त, प्रज्ञामा रमण गरेर फलितार्थ प्राप्त गर्दै तरुण पतिलाई प्राप्त गरेर **(आ धुनयनताम्)** गर्भ धारण गरून्। बाल्यवस्थामा कहिल्यै झुक्किएर मनबाट पनि पुरुषतर्फ ध्यान नगरून्। किनभने यही कर्म यसलोक र परलोकमा सुखहुने साधन हो। बाल्यावस्थामा विवाह गर्दा जति पुरुषलाई हानि हुन्छ त्यो भन्दा बढी हानि स्त्रीलाई हुन्छ॥ २ ॥

जसरी **(नु)** छिट्टै **(शश्रमाणाः)** धेरै परिश्रम गर्ने **(वृषणः)** विर्य सिंचन गर्न समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष **(पत्नीः)** युवावस्थामा रहेकी प्रिया स्त्रीलाई **(जगम्युः)** पाएर पूर्ण शयवर्ष वा सो भन्दा पनि बढी आयु तथा आनन्द भोग गर्छन् र पुत्र–पौत्र आदिले भरिभराउ भई रहन्छन्, त्यस्तो व्यवहार स्त्रीपुरुषले सधैं गर्ने गर्नु पर्छ। जसरी **(पूर्वीः)** पहिले भएका **(शरदः)** शरद् ऋतुहरू र **(जरयन्तीः)** वृद्धावस्था प्राप्त गराउने **(उषसः)** प्रातः कालका वेलालाई **(दोषाः)** रात्री र **(वस्तो)** दिन **(तनूनाम्)** शरीरका **(श्रियम्)** शोभालाई **(जरिमा)** अत्यन्त वृद्धआवस्था बल र शोभालाई **(मिनाति)** हटाइदिन्छ, त्यस्तै **(अहम्)** म स्त्री वा पुरुष **(उ)** राम्ररी **(अपि)** निश्चयपूर्वक ब्रह्मचर्य द्वारा विद्या, शिक्षा, शरीर र आत्मा बल र युवावस्थालाई प्राप्त गरेर मात्र विवाह गरूँने। यसको विरुद्ध गर्नु वेदविरुद्ध हुनाले सुखदायक विवाह कहिल्यै हुँदैन॥ ३ ॥

जब सम्म यस्तै किसिमले ऋषि–मुनि, राजा –महाराजा र आर्य्यजन

ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढिसकेपछि मात्र स्वयंवर विवाह गर्ने गर्दथे, तब सम्म यस देशको सधैं उन्नति हुँदै आएको थियो। जबदेखि ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ्न छोडेर पराधीन अर्थात् आमाबाबुका अधीन विवाह हुन थाल्यो, तबदेखि क्रमशः आर्य्यावर्त्त देशको हानि हुँदै आउन थाल्यो। यसकारण यस दुष्ट कामलाई छोडेर सज्जनहरूले पूर्वोक्त प्रकारले स्वयंवर विवाह गर्ने गर्नु पर्छ। त्यो विवाह वर्ण अनुकूलता अनुसार गर्नु पर्छ र वर्णव्यवस्था पनि गुण, कर्म, स्वाभाव अनुसार हुनु पर्दछ।

प्रश्न—के आमा बावु ब्राह्मणी र ब्राह्मण हुनेका सन्तान ब्राह्मण नै हुन्छन्? अनि अन्यवर्णका आमाबावुका सन्तान पनि के कुनै वेला ब्राह्मण हुन सक्छन्?

उत्तर—हँ अवश्य हुन्छन्, धेरै भई सकेका छन् र भविष्यमा भई, पनि हुन सक्तछन्। जस्तै छन्दोग्य उपनिषद्मा जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत विश्वामित्र क्षत्रियवर्ण र मातङ्ग ऋषि चाण्डाकुलबाट ब्राह्मण भएका छन्। अहिले पनि उत्तम विद्या स्वभाव भएको व्यक्ति ब्राह्मणयोग्य र मूर्ख चाहिं शूद्रयोग्य हुन्छ र पछि पनि यस्तै भइरहने छ।

प्रश्न—रज वीर्यको संयोगले बनेको शरीर बदलिएर अर्को वर्णको योग्य कसरी हुन सक्छ?

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

—मनुस्मृति २।२८

यसको अर्थ पहिलेनै गरिसकिएको छ। अब यहाँ पनि संक्षेपमा लेखिन्छ—**(स्वाध्यायेन)** पढ्ने–पढाउने, **(जपैः)** विचार गर्ने गराउने, **(होमैः)** नानाथरि होमको अनुष्ठान, **(त्रैविद्येन)** सम्पूर्ण वेदका शब्द अर्थ सम्बन्ध स्वरोच्चारण सहित पढ्ने–पढाउने, **(इज्यया)** पौर्णमासी, इष्टि आदि गर्ने, पूर्वोक्त विधिपूर्वक **(सुतैः)** धर्माचरणले सन्तानोत्पत्ति, **(महायज्ञैश्च)** पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्यदेवयज्ञ र अथितियज्ञ, **(यज्ञैश्च)** अग्निष्टोमा आदि यज्ञ, विद्वान्हरू संग संगति र सत्कार, सत्यभाषण, परोपकार आदि सत्कर्म र सम्पूर्ण शिल्पविद्या आदि पढेर दुष्ट आचरण त्यागेर श्रेष्ठ आचरण र व्यवहार गर्ने गर्दा **(इयम)** यस **(तनुः)** शरीरलाई **(ब्राह्मी)** ब्राह्मण शरीर **(क्रियते)** बनाइन्छ। के यस श्लोकलाई तपाई मान्नुहुन्न?

उत्तर—मान्दछु।

प्रश्न—अनि किन रजवीर्यका संयोगबाट वर्ण व्यवस्था मान्नुहुन्छ

त ? म एउटालेमात्र मानेको होइन्, धेरैजना परम्पराले यस्तै मान्दछन्। के तपाई परम्परा पनि खण्डन गर्नु हुन्छ ?

उत्तर—होइन, तर तपाईको उल्टो समझलाई नमानेर खण्डन पनि गर्छु।

प्रश्न—हाम्रो समझ उल्टो र तपाईको सुल्टो हो भन्ने कुराको के प्रमाण छ ?

उत्तर—प्रमाण यही हो कि तपाई पाँच सात पुस्ताका व्यवहारलाई सनातन मान्नु हुन्छ र हामी वेद तथा सृष्टि आरम्भ देखि आजसम्मको परम्परालाई मान्दछौं। हेर्नुहोस्, श्रेष्ठ पिताको दुष्ट पुत्र, श्रेष्ट पुत्रको दुष्ट पिता तथा कतै दुवै श्रेष्ठ वा दुवै दुष्ट पनि देखिन्छन्। यसै कारण तपाई भ्रममा पर्नु भएको छ। हेर्नुहोस्, मनु महाराजले के भन्नु भएको छ—

येनास्य पितरो याताः येन याता पितामहाः।
तेन ययात् सतां मार्ग तेन गच्छन्न रिष्यते॥

—मनुस्मृति ४।१७८

जुन मार्गमा जसका बाबु बाजे हिंडेका थिए, त्यसै मार्गमा उनका सन्तानले पनि हिंड्नु पर्छ। तर '**सताम्**'=बाबु–बाजे सत्पुरुष भएमात्र उनका मार्गमा हिंड्नु पर्छ। बाबु–बाजे दुष्ट भए उनका मार्गमा कहिल्यै हिंड्नु हुँदैन। किनभने उत्तम धर्मात्मा पुरुषहरूका मार्गमा हिंड्नाले दुःख कहिल्यै हुँदैन। यस कुरालाई तपाई मान्नुहुन्छ अथवा मान्नुहुन्न ? मान्दछु। अनि हेर्नुहोस्, परमेश्वरद्धारा प्रकाशित वेदोक्त कुरा नै सनातन हुन् र यस विरुद्धका कुरा कहिल्यै सनातन हुन सक्तैनन्। यसै सबैले मान्नु पर्छ वा पर्दैन ? अवश्य मान्नुपर्छ। यो कुरा नमान्नेसँग के सोध्नु पर्छ भने कसैका पिता दरिद्र र उसका पुत्र धनाढ्य भएमा के आफ्नो पिताको दरिद्र अवस्थाको घमण्डले उसले आफ्नो धन फालिदियोस् ? कसैको बाबु अन्धो छ भनेके उसको छोराले पनि आफ्ना आँखा फुटाओस् ? कसैको पिता कुकर्मी छ भने के उसको छोराले पनि कुकर्म गर्ने नै हुनुपर्छ ? होइन–होइन, जुन व्यक्तिका जे जति उत्तम कर्म हुन्छन् सबैले तिनको सेवन र दुष्टकर्म त्याग गर्नु नै उचित हुन्छ।

रजवीर्य्यका संयोगबाट वर्णाश्रम व्यवस्था मान्ने र गुण कर्मबाट नमान्नेसँग सोध्नुपर्छ—कोही आफ्नो वर्ण छोडेर नीच, अन्त्यज अथवा ईसाई, मुसलमान हुन पुगेका भए, त्यसलाई पनि ब्राह्मण किन मान्दैनौं ? यहाँ यही भनिने छ कि उसले ब्राह्मणको कर्म छोडिदिएको हुनाले त्यो ब्राह्मण होइन। यसबाट उत्तम कर्म गर्ने ब्राह्मण आदिलाई नै ब्राह्मण

आदि वर्णमा र उत्तम वर्णका गुण कर्म स्वभाव भएको नीच पनि उत्तम वर्णमा साथै उत्तम वर्णको भएर नीच काम गर्ने पनि नीच वर्णमै गनिनु पर्छ भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

प्रश्न— ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत॥

यो यजुर्वेदको ३१ सौं अध्यायको ११ औं मन्त्र हो। यसको अर्थ यो हो–ब्राह्मण ईश्वरका मुखबाट, क्षत्रिय बाहुबाट, वैश्य ऊरू अर्थात् तिघ्राबाट र शूद्र पाउबाट उत्पन्न भएका हुन्। यसकारण जसरी मुखबाहु हुन सक्तैन र बाहु आदि मुख बन्न सक्तैनन्, त्यसैगरी ब्राह्मण क्षत्रिय आदि र क्षत्रिय आदि ब्राह्मण हुन सक्तैनन्।

उत्तर—यस मन्त्रको तपाईले गर्नुभएको अर्थ ठीक छैन। किनभने यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्माको अनुवृत्ति छ। परमात्मा निराकार हुनाले उसका मुख आदि अङ्ग हुनै सक्तैनन्। मुख आदि अङ्ग भएको भए ऊ पुरुष अर्थात् व्यापक होइन। अनि व्यापक नभए ऊ सर्वशक्तिमान्, जगत्का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्ता, जीवहरूका पाप–पुण्यको व्यवस्था गर्ने, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणयुक्त हुनै सक्तैन। यसकारण यस मन्त्रको सही अर्थ यो हो—

यो (**अस्य**) पूर्ण व्यापक परमात्माको सृष्टिमा (**मुखम्**) मुखजस्तै सबैमा मुख्य र उत्तम हुन्छ त्यो (**ब्राह्मणः**) 'ब्राह्मण', (**बाहू**) '**बाहुर्वै बलम्, बाहुर्वै वीर्यम्**' (शतपथ ब्राह्मण) तु० ६।२।३।३३.१३।१।१५।५, ५।३।१७॥ बल, वीर्यलाई बाहु भनिन्छ, त्यो बल वीर्य जसमा बढी हुन्छ त्यो (राजन्यः) 'क्षत्रिय', (ऊरू) कमरभन्दा तल्लो र घुडाभन्दा माथिल्लो भागको नाम 'ऊरू' अर्थात् तिघ्रो हो, सबै पदार्थ र ठाउँमा जसका बलले आउने, जाने, प्रवेश गर्ने आदि गर्न सकिन्छ त्यो (**वैश्यः**) 'वैश्य' र (**पद्भ्याम्**) पाउ अर्थात् सबैभन्दा तल्लो अङ्ग जस्तै मूर्खता आदि गुण भएको भए 'शूद्र' हुन्छ। अन्यत्र '**शतपथ ब्राह्मण**' आदिमा पनि यस मन्त्रको यस्तै अर्थ गरिएको छ। जस्तै—

'**यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।**' इत्यादि।

तु० श० ब्रा० ६।१।१।१०, तै० सं० ७।१।१।४॥

यी मुख्य हुनाले मुखबाट उत्पन्न भएका भन्ने कथन युक्तियुक्त हुन्छ। अर्थात् जसरी मुख सबै अङ्गमा श्रेष्ठ हुन्छ, त्यस्तै पूर्ण विद्या र उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त हुनाले मनुष्य जातिमा उत्तम '**ब्राह्मण**' भनिन्छ। परमेश्वर निराकार हुनाले उसका मुख आदि अङ्ग छैनन्

त्यसैले उसको मुख आदिबाट उत्पन्न हुनु त्यस्तै असम्भव हो जसरी बाँझी स्त्रीका छोराको विवाह हुनु असम्भव हुन्छ। मुख आदि अङ्गबाट ब्राह्मण आदि उत्पन्न भएका भए उपादान कारण जस्तै ब्राह्मण आदिको आकृति अवश्य हुन्थ्यो। जसरी मुखको आकृति गोलो हुन्छ त्यस्तै ब्राह्मणहरूको शरीर पनि गोलो मुखको आकृति जस्तै हुनुपर्थ्यो। क्षत्रियहरूको शरीर भुजाजस्तै, वैश्यको तिघ्राजस्तै र शूद्रको शरीर पाउजस्तै आकारको हुनुपर्थ्यो। तर यस्तो हुँदैन। अनि जो जो मुख आदिबाट उत्पन्न भएका थिए उनैको ब्राह्मण नाम हुनुपर्छ, तपाईको होइन भन्ने प्रश्न पनि कसैले गर्न सक्छ ? किनभने जसरी सबै जना गर्भाशयबाट उत्पन्न हुन्छन्। त्यस्तै तपाई पनि हुनुहुन्छ। तपाई मुख आदिबाट नजन्मेर पनि ब्राह्मण आदि नामको अभिमान गर्नुहुन्छ। यसकारण तपाईले भनेको अर्थ व्यर्थ छ र हामीले गरेको अर्थ भने सच्चा हो। यस्तै अन्त पनि भनिएको छ—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेदन्तु विद्यात् वैश्यात्तथैव च॥

—मनस्मृति १०।६५

शूद्र कुलमा उत्पन्न भएर पनि ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यको जस्तो गुण, कर्म, स्वभाव भएको व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्य हुन्छ, त्यस्तै ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यकुलमा उत्पन्न भएको व्यक्तिको गुण,कर्म, स्वभाव शूद्र समान भए त्यो शूद्र हुन्छ, त्यसैगरी क्षत्रिय वा वैश्यको कुलमा उत्पन्न भएर ब्राह्मण वा शूद्रजस्तो गुण, कर्म, स्वभाव भए ब्राह्मण वा शूद्र नै हुन पुग्दछ। अर्थात् चारै वर्णमा जुन स्त्री वा पुरुष जुन वर्ण, सदृश हुन्छ त्यसलाई त्यसैवर्णमा गन्नु पर्छ।

धर्मचर्य्यमा जघन्यो वर्णः पूर्व पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ १ ॥
अधर्मचर्य्या पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिरिवृत्तौ॥ २ ॥

—आपस्तम्ब धर्मसूत्र० २।५।११।१०, ११

यी आपस्तम्बका सूत्र हुन्। धर्माचरण गर्नाले निकृष्टवर्ण आफ्नो भन्दा उत्तम उत्तम वर्ण हुन्छ, त्यो त्यसै वर्णमा गनिनु पर्छ जुन ऊ योग्य हुन्छ॥ १ ॥

त्यस्तै अधर्माचरण गर्नाले पूर्व–पूर्व अर्थात् उत्तम–उत्तम वर्णको मानिस तल्लो तल्लो वर्णमा प्राप्त हुन्छ र त्यो त्यसै तल्लो वर्णमा गनिनुपर्छ जुन वर्णको योग्य ऊ हुन्छ॥ २ ॥

जसरी पुरुष जुन वर्ण योग्य हुन्छ त्यसैमा गनिनु पर्छ, त्यस्तै

स्त्रीहरूको पनि व्यवस्था हुन्छ भन्ने जान्नुपर्छ। यस्तो हुनाले सबैवर्ण आ–आफ्नो गुण,कर्म, स्वभावयुक्त भएर शुद्धतापूर्वक बस्दछन् भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। अर्थात् ब्राह्मण कुलमा कोही क्षत्रिय, वैश्य र शूद्रजस्तो रहने छैन तथा क्षत्रिय वैश्य र शूद्रवर्ण पनि शूद्र रहन्छन्। अर्थात् वर्णसंकरता हुने छैन यसबाट कुनै वर्णको अयोग्यता वा निन्दा पनि हुनेछैन।

प्रश्न—कसैको एकमात्र छोरा वा छोरी भए त्योपनि अर्को वर्णमा प्रविष्ट हुँदा उसका आमा–बाबुको सेवा कसले गर्नेछ ? अनि वंशच्छेदन पनि हुनेछ। यसको के व्यवस्था हुनुपर्छ ?

उत्तर—कसैको सेवा मासिने पनि छैन र वंशच्छेदन पनि हुनेछैन। किनभने तिनलाई आफ्ना छोरा छोरीलाई सट्टामा आफ्नै वर्णका योग्य अर्का छोरा छोरी विद्यासभा र राजसभाका व्यवस्थाले प्राप्त हुनेछन्। यसकारण केहीपनि अव्यवस्था हुनेछैन।

यो गुणकर्मबाट वर्ण व्यवस्था कन्याको सोह्रौं वर्ष र पुरुषको पच्चिसौं वर्षका परीक्षामा निर्धारित गरिनु पर्छ। अनि यस क्रमले अर्थात् ब्राह्मण वर्णका ब्राह्मणी, क्षत्रियका क्षत्राणी, वैश्यको वैश्य सँग र शूद्रका शूद्रसँग विवाह हुनु पर्दछ। अनिमात्र आ–आफ्नो वर्णका कर्म र परस्पर प्रीति पनि यथायोग्य रहने छ।

यी चार वर्णका कर्त्तव्य–कर्म र गुण यी हुन्—

अध्यापनमध्ययंन यजनं या जनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ १ ॥

—मनुस्मृति १।८८

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ २ ॥

—भगवद्गीता १५।४२

पढ्नु–पढाउनु, यज्ञ गर्नु–गराउनु, दान दिनु –लिनु ब्राह्मणका यी छ कर्म हुन्। तर **प्रतिग्रहः प्रत्यवरः** (मनुस्मृति १०।१०९) अर्थात् प्रतिग्रह लिनु नीच कर्म हो॥ १ ॥

(शम) मनमा गलत कामगर्न तर्फ इच्छा पनि नगर्नु र उसलाई अधर्म तर्फ कहिल्यै लाग्न नदिनु, (दम) श्रोत र चक्षु आदि इन्द्रियलाई अन्याय आचरण बाट रोकेर धर्माचरणमा चलाउनु, (तप) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय भई धर्मानुष्ठान गर्नु, (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—मनुस्मृति ५।१०९

पानीले बाहिरी अङ्ग, सत्यआचरणले मन, विद्या र धर्मानुष्ठानले जीवात्मा र ज्ञानले बुद्धि पवित्र हुन्छन्। भित्रका रागद्वेष आदि दोष र बाहिरी मयललाई हटाई शुद्ध रहनु अर्थात् सत्य र असत्य विवेकपूर्वक सत्य ग्रहण र असत्यका त्याग निश्चित पवित्रता हुन्छ। **(क्षान्ति)** अर्थात् निन्दा–स्तुति, सुख दुःख, शीत–उष्ण, भोक–तिर्खा, हानि–लाभ, मान–अपमान आदिमा हर्ष वा शोकलाई छोडेर धर्ममा दृढ रहनु, **(आर्जव)** कोमलता, निरभिमानता, सरलता, सरलस्वभाव राख्नु, कुटिलता आदि दोष त्याग्नु, **(ज्ञान)** सबै वेदादि शास्त्र साङ्गोपाङ्ग पढेर पढाउने सामर्थ्य, विवेक सत्य निर्णय=जुन वस्तु जस्तो छ त्यसलाई त्यस्तै अर्थात् जडलाई जड र चेतनलाई चेतन जान्नु र मान्नु, **(विज्ञान)** पृथ्वी देखि परमेश्वर पर्यन्त पदार्थहरूका विशेषतालाई जाने–बुझेर तिनबाट यथायोग्य उपयोग लिनु, **(आस्तिक्य)** वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्वजन्म, परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग आमा, बाबु, आचार्य र अतिथिसेवालाई न छोड्नु र निन्दा कहिल्यै न गर्नु, यी पन्द्रह कर्म र गुण ब्राह्मण वर्णमा रहेका मानिसमा अवश्य हुनु पर्दछ॥ २॥

क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ १॥

—मनुस्मृति १।८६

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ २॥

—भगवद्गीता १८।४३

(प्रजानां रक्षणं) न्यायपूर्वक प्रजा रक्षा अर्थात् पक्षपात नगरि श्रेष्ठहरूलाई सत्कार र दुष्टहरूलाई तिरस्कार गर्नु, हर प्रकारले सबैलाई पालन गर्नु **(दान)** विद्या–धर्मका प्रवृत्तिमा र सुपात्रका सेवामा धन आदि पदार्थ खर्च गर्नु, **(इज्या)** अग्निहोत्र आदि यज्ञ गर्नु र गर्न लगाउनु, **(अध्ययन)** वेदादिशास्त्र पढ्नु र पढ्न लगाउनु र **(विषयेष्व–प्रसक्तिः)** विषयमा नफसेर शरीर र आत्मा सदा बलवान् बनाई रहनु॥ १॥ **(शौर्य्य)** सैकडौं हजारौसित युद्ध गर्न पनि एक्लैलाई भय न हुनु, **(तेज)** सदा तेजस्वी अर्थात् दीनता रहित प्रगल्भ दृढ रहनु,

(धृति) धैर्यवान् हुनु, **(दाक्ष्य)** राजा र प्रजा सम्बन्धी व्यवहार र सबै शास्त्र जानि अति चतुर हुनु, **(युद्धे)** युद्धमा पनि दृढ निःशङ्क रहनु र युद्धबाट कहिल्यै नहट्नु न भाग्नु अर्थात् निश्चित जीत हुने र आफु बच्ने तरीकाले लड्नु साथै भाग्नाले अथवा शत्रुलाई धोखा दिनाले जीत हुन्छ भने त्यस्तै गर्नु, **(दान)** दानशील बन्नु, **(ईश्वर भाव)** पक्षपात रहित भई सबैसँग यथायोग्य व्यवहार गरनु, विचार दिनु, प्रतिज्ञा पूरा गर्नु, कहिल्यै प्रतिज्ञाभङ्ग हुन नदिनु, क्षत्रिय वर्णका यी एघार कर्म र गुण हुन्॥ २॥

वैश्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

—मनुस्मृति १।९०

(पशुरक्षा) गाई आदि पशु पालन पोषण गर्नु **(दान)** विद्या–धर्म वृद्धि गर्न गराउन धन आदि खर्च गर्नु, **(इज्या)** अग्निहोत्र आदि यज्ञ गर्नु, **(अध्ययन)** वेदादि शास्त्र पढ्नु, **(वणिक्पथ)** सबै किसिका व्यापार गर्नु, **(कुसीद)** सयकडा चार, ६, आठ, बाह्र, सोह्र, वा बीस भन्दा बढी ब्याज नलिनु र साँवाँको दोब्बर अर्थात् एक रूपैयाँको दुई रूपैयाँ भन्दा बढी सयवर्षमा पनि नलिनु, नदिनु, **(कृषि)** खेती गर्नु, यी वैश्यका गुण कर्म हुन्॥

शूद्र—

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

—मनुस्मृति १।९१

निन्दा, इर्ष्या, अभिमान आदि दोष त्यागेर ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यलाई यथावत् सेवा गर्नु र त्यसैबाट आफ्नो जीवन निर्वाह गर्नु नै शूद्रको एकमात्र कर्मगुण हो।

यी संक्षेपमा वर्णका गुण कर्म लेखिए। जुन व्यक्तिमा जुन वर्णका गुणकर्म छन्, उसलाई त्यसै वर्णको अधिकार दिनु पर्छ। यस्तो व्यवस्था रहँदा सबै मानिस उन्नतिशील हुन्छन्। किनभने उत्तमवर्ण हाम्रा सन्तान मूर्खता आदि दोषयुक्त भए भने शूद्र भई जाने छन् भन्ने डर हुनेछ र सन्तानमा पनि हाम्रो चालचलन उक्तवत् राम्रो भएन र हामी विद्यायुक्त भएनौं भने शूद्र हुनु पर्नेछ भन्ने डर रहने छ साथै नीचवर्णलाई पनि उत्तम वर्णस्थ हुन उत्साह बढ्ने छ।

विद्या र धर्मप्रचारगर्ने अधिकार ब्राह्मणलाई दिनु पर्छ। किनभने ती पूर्ण विद्यावान् र धर्मिक हुनाले त्यस कामलाई यथायोग्य गर्न सक्दछन्। क्षत्रियलाई राज्यको अधिकार दिएमा कहिल्यै राज्य हानि या विघ्न हुँदैन। पशुपालन आदिको अधिकार वैश्यलाई नै दिनु उचित हुन्छ, किनभने ती यी काम राम्ररी गर्न सक्तछन्। शूद्रलाई सेवाको अधिकार यस कारण छ कि ऊ विद्यारहित मूर्ख हुनाले विशेष ज्ञान सम्बन्धी केही पनि काम गर्न सक्तैन तर शरीरका सबै काम गर्न सक्तछ। यसरी सबै वर्णलाई आ–आफ्नो अधिकारमा लगाउनु राजा आदि सभ्यजन ले गर्ने काम हो।

विवाहका लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

—मनुस्मृति ३।२१

विवाह आठ किसिमका हुन्छन्—**पहिलो** ब्राह्म, **दोस्रो** दैव, **तेस्रो** आर्ष, **चौथो** प्राजापत्य, **पाँचौ** आसुर, **छैठौं** गान्धर्व, **सातौं** राक्षस र **आठौं** पैशाच।

यी विवाहहरूका व्यवस्था–वरकन्या दुवै यथावत् ब्रह्मचर्यले पूर्ण, विद्वान्, धार्मिक र सुशील भएर उनीहरूको परस्पर प्रसन्नताले विवाह हुनु '**ब्राह्म**' भनिन्छ। विस्तृत यज्ञ गर्दा ऋत्विक्‌कर्म गर्नेलाई ज्वाईं बनाएर अलङ्कार युक्त कन्या दिनु '**दैव**' हो। वरबाट केही लिएर कन्याको विवाह हुनु '**आर्ष**' भनिन्छ। धर्मवृद्धिका लागि दुवैको विवाह भएमा '**प्राजापत्य**' हुन्छ। वर र कन्यालाई केही दिएर विवाह हुनु '**आसुर**' अनियम, असमय कुनै कारणले वर कन्याका इच्छापूर्वक संयोग हुनु '**गान्धर्व**', लडाई गरेर बलात्कर अर्थात् छीन् झपट वा कपट पूर्वक कन्यालाई ग्रहण गर्नु '**राक्षस**' र निदाएकी अथवा मद्य आदि पिएर पागल भएकी कन्यासँग बलात्कार संयोग '**पैशाच**' भनिन्छ।

यी सबै विवाहहरूमा ब्राह्म विवाह **सर्वोत्कृष्ट,** दैव र प्रजापत्य **मध्यम,** आर्ष, आसुर र गान्धर्व **निकृष्ट,** राक्षस अधम र पैशाच **महाभ्रष्ट** हो। यसकारण कन्या र वर विवाह हुनु अघि एकान्तमा मेल हुनु हुँदैन भन्ने कुरा निश्चय राख्नु पर्छ। किनभने युवावस्थामा स्त्री पुरुष एकान्तवास दूषणकारक हुन्छ। तर कन्या वा वरको विवाह गर्ने समय भए पछि ब्रह्मचर्याश्रम र विद्यापूर्ण हुनमा एक वर्ष वा ६ महिना बाँकी रहेपछि ती कन्या र कुमारका प्रतिबिम्ब, जसलाई 'फोटोग्राफ' भनिन्छ अथवा

प्रतिकृति उतारेर कन्याका अध्यापिकासँग कुमारका र कुमारका अध्यापकसँग कन्याका प्रतिकृति पठाइदिनुपर्छ। जसको रूप मिल्दछ तिनको इतिहास अर्थात् जन्म देखि लिएर त्यस दिन सम्मको जीवनचरित्र मगाएर अध्यापकहरूले हेर्नुपर्छ। दुबैका गुण कर्म स्वभाव एक समान देखिएमा जसको जो सँग विवाह गर्न उचित देखिन्छ, उनै पुरुष र कन्याका प्रतिबिम्ब र इतिहास कन्या र वरलाई दिएर उनीहरूको अभिमत लिनु पर्छ। दुबैको परस्पर विवाह गर्ने निश्चय भएमा ती दुबैको समावर्तन संस्कार एकै समयमा हुनुपर्दछ। ती दुबैले अध्यापकहरूकै समक्ष विवाह गर्न चाहेमा त्यहीं अन्यथा कन्याका आमा–बाबु आदि भद्रपुरुषहरूका अगाडि ती दुबैको परस्पर कुराकानी, शास्त्रार्थ गराउनु पर्छ। केही गुप्त कुरा सोध्नु पर्ने भए त्यो पनि सभामै लेखेर एक अर्कालाई दिएर प्रश्नोत्तर गर्नु पर्छ। विवाह गर्न दुवैको राम्रो चासो भैसकेपछि तिनका खानपानको राम्रो व्यवस्था हुनु पर्छ। जसबाट पहिले ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या र कष्ट बाट दुर्बल भएको शरीर चन्द्रमाको कला जस्तै बढेर केही दिनमै पुष्ट हेओस्। पछि कन्या रजस्वला भएर शुद्धभएका दिन देखि र मण्डप रचेर अनेक सुगन्धित द्रव्य र घ्यू आदि होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष र स्त्रीहरूलाई यथायोग्य सत्कार गर्नुपर्छ। पछि ऋतुदान गर्न उचित ठानिएका दिनमा '**संस्कार विधि**' पुस्तकमा लेखिएका विधि अनुसार सबै कर्म गरेर मध्यराती अथवा दश बजे अति प्रसन्नतापूर्वक सबका अगाडि पाणिग्रहण पूर्वक विवाह विधि पूर्ण गरेर एकान्त सेवन गर्नु पर्छ।

विधि अनुसार नै पुरुषले वीर्यस्थापन र स्त्रीले वीर्य्याकर्षण गर्नु पर्छ। सकभर ब्रह्मचर्यका वीर्य्यलाई खेरजान दिनु हुँदैन, किनभने त्यस वीर्य्य वा रजबाट उत्पन्न हुने शरीर अपूर्व र उत्तम सन्तान हुन्छ। वीर्य्य गर्भाशयमा पर्ने बेला हुँदा स्त्री–पुरुष दुवै स्थिर र नाकका अगाडि नाक, आँखाका अगाडि आँखा अर्थात् सोझो शरीर र प्रसन्नचित्त हुनु पर्दछ। पुरुषले आफ्नो शरीरलाई खुकुलो पार्नु र स्त्रीले वीर्य्य प्राप्तिका समयमा अपानवायुलाई मास्तिर तान्नु पर्छ। योनीलाई मास्तिर संकोच गरेर वीर्य्यलाई मास्तिर तानेर गर्भाशयमा स्थिर गर्नुपर्छ। पछि दुबैले शुद्ध जलमा स्नान गर्नु पर्दछ। यो कुरा रहस्य हुनाले यत्तिबाटै सबै कुरा बुझ्नु पर्छ, धेरै लेख्न उचित छैन।

गर्भ रहेको ज्ञान विदुषी स्त्रीलाई त्यसै समय हुन्छ तर यसको निश्चय एक महीना पछि रजस्वला नहुँदा सबैलाई हुन्छ। सुठो, केसर,

अश्वगन्ध, सुकुमेल र काल्पी मिश्री हालेर, तताएर अघि देखिने राखिएको चिसो दूध दुवैले रूचि अनुसार पिएर भिन्नाभन्नै आ–आफ्नो शय्यामा सुत्नु पर्छ। जहिले पनि गर्भाधान क्रिया गर्दा यस्तै विधि गर्न उचित हुन्छ।

एक महीना भरिमा रजस्वला नभएर गर्भ रहेको निश्चय भएदेखि एक वर्षसम्म स्त्रीपुरुष समागम कहिल्यै गर्नु हुँदैन। त्यसरी समागम नगर्दा सन्तान उत्तम र फेरि अर्को सन्तान पनि त्यस्तै नै हुन्छ। अन्यथा वीर्य्य व्यर्थ जान्छ, दुवैको आयु घट्छ र अनेक किसिमका रोग उत्पन्न हुन्छन्। तर दुवैमा राम्रो बोलचाल र प्रेमयुक्त व्यवहार भने अवश्य भइनै रहनु पर्दछ। पुरुषको वीर्य्य स्वप्नमा पनि नष्ट नहुने गरी र गर्भमा बालक अति उत्तम, रूप, लावण्ययुक्त, पुष्टि–बल पराक्रमयुक्त भएर दशौं महीनामा जन्मने गरी पुरुषले वीर्य्य स्थित र स्त्रीले गर्भ रक्षा, खानपान आदि गर्नु पर्दछ। खास गरेर गर्भ रक्षा चौथो महीना देखि अझ धेरै विशेषरूपमा आठौं महीना पछि पनि गर्नु पर्दछ। गर्भवती स्त्रीले कहिल्यै रेचक, रूक्ष, मादक द्रव्य, बुद्धि र बलनाशक पदार्थ आदि सेवन गर्नुहुन्न। उसले घ्यू, दूध, राम्रो चामल, गहुँ मुंगी, मास आदि अन्नपान र देश–कालको पनि सेवन युक्तिपूर्वक गर्नुपर्दछ। गर्भावस्थमा चौथो महीनामा पुंसवन र आठौं महीनामा सीमन्तोन्नयन गरी दुई संस्कार विधिअनुसार गर्नुपर्दछ।

सन्तान जन्मेपछि स्त्री वा पुरुष बच्चाका शरीरलाई रक्षा गर्न सावधानीपूर्वक गर्नुपर्छ। शुण्ठीपाक र सौभाग्यशुण्ठापाक आदि सुत्केरी मसला अगावै बनाउन लगाएर राख्नु पर्दछ। त्यस समय मनतातो सुगन्धित पानीले स्त्रीले स्नान गर्नु र बालकलाई पनि स्नान गराउनु पर्छ। त्यसपछि नाडीछेदन–बालकका नाइटोको फेदमा एक कोमल धागोले बाँधेर चार अङ्गुल छोडेर माथिबाट काट्नु पर्दछ। शरीरबाट रगत एक थोपा पनि न जाने गरी त्यो धागो बाँध्नु पर्दछ। त्ययसपछि त्यस स्थानलाई शुद्ध गरेर त्यस कोठाभित्र सुगन्धी आदि भएको घ्यू आदि होम गर्नु पर्छ। सन्तानका पिताले बच्चाको कानमा '**वेदोऽसीति**' अर्थात् **तेरो नाम वेद हो**' भन्ने सुनाएर घ्यू र मह लिएर सुनका सिन्काले बच्चाका जिब्रामा '**ओ३म्**' अक्षर लेखि मह र घ्यूलाई त्यसै सिन्काले चटाउनु पर्दछ। त्यसपछि बच्चा त्यसकी आमालाई दिनु पर्छ। बच्चाले दूध खान चाहेमा त्यसकी आमाले ख्वाउनु पर्दछ। आमाको दूध नाआएमा कुनै स्त्रीको परीक्षा गरेर त्यसको दूध ख्वाउनु पर्दछ। अनि अर्को शुद्ध

वायु भएका कोठामा सुगन्धित घ्यू होम बिहान र बेलुकी गर्नैपर्छ र त्यसैमा सुत्केरी स्त्री र बालकलाई राख्नु पर्छ।

बच्चालाई ६ दिन सम्म आमाको दूध ख्वाउनु पर्दछ र स्त्रीले पनि आफ्नो शरीर पुष्टिकालागि विभिन्न परिकारका उत्तम खाना खानु र योनिसंकोच आदि गर्नु पर्दछ। छैठों दिन सुत्केरी बाहिर निस्कनु र सन्तानलाई दूध पिलाउन कुनै धाई राख्नु पर्छ। धाईलाई राम्रो खानपान गराउनु पर्छ। त्यसैले बच्चालाई दूध ख्वाउने र पालनपोषण पनि गरोस्। तर त्यसकी आमाले बच्चामाथि पूर्ण ध्यान राख्नु पर्दछ। कुनै किसिमका अनुचित व्यवहार बच्चाका पालनपोषणमा हुनुहुँदैन। स्त्रीले आफ्नो दूध बन्द गर्न स्तनका अग्रभागमा दूध स्रवित नहुने किसिमका लेप गर्नु पर्दछ। त्यसैगरी खानपान र व्यवहार पनि यथायोग्य राख्नु पर्दछ पछि। '**नामकरण**' आदि '**संस्कारविधि**' का तरीकाले यथासमय गर्दै जानु पर्दछ। अनि स्त्री फेरि रजस्वला भएर शुद्ध भएपछि त्यसैगरी ऋतदान गर्नु पर्दछ।

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।

—मनुस्मृति ३।५

ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

—मनुस्मृति ३।५०

आफ्नै स्त्रीबाट प्रसन्न रहने र ऋतुगामी व्यक्ति गृहस्थमा पनि ब्रह्मचारी जस्तै हुन्छ।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥१॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते॥२॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥३॥

—मनुस्मृति ३।६०–६२

जुन कुलमा पत्नी देखि पति र पति देखि पत्नी राम्ररी प्रसन्न रहन्छन्, त्यसै कुलमा सबै सौभाग्य र ऐश्वर्य निवास गर्दछन्। जहाँ कलह हुन्छ त्यहाँ दुर्भाग्य र दरिद्रता स्थिर हुन्छन् स्त्री पति संग प्रीति न गर्ने र पतिलाई प्रसन्न नगर्ने भए, पति अप्रसन्न हुनाले काम उत्पन्न हुँदैन।

स्त्री प्रसन्न रहे सबै कुल प्रसन्न र स्त्री अप्रसन्न रहे सबै अप्रसन्न

अर्थात् दुःखदायक हुन्छन् ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ २ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ३ ॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ४ ॥

—मनुस्मृति ३।५५–५७, ५९

धेरै कल्याणगर्न इच्छा हुने पिता, दाजुभाई, देवर र पतिले स्त्रीलाई सत्कारपूर्वक आभूषण आदि हरेक किसिमले प्रसन्न राख्नु पर्छ ॥ १ ॥

स्त्रीलाई सत्कार हुने घरमा विद्यायुक्त पुरुष भएर देव संज्ञा प्राप्त गरेर आनन्द पूर्वक क्रीडा गर्छन् अनि जुन घरमा स्त्रीलाई सत्कार हुँदैन,त्यहाँ सबै क्रिया निष्फल हुन्छन् ॥ २ ॥

जुन घरमा वा कुलमा स्त्रीहरू शोकातुर भएर दुःख पाउँछन्, त्यो फुल शीघ्र नष्ट–भ्रष्ट हुन्छ र जुन घर वा कुलमा स्त्री आनन्दपूर्वक उत्साह र प्रसन्नताले भरिपूर्ण हुन्छन् त्यो कुल सधैं बढ्दै जान्छ ॥ ३ ॥

यस कारण ऐश्वर्य कामना गर्नेहरूले सत्कार र उत्सवका समयमा अभूषण, वस्त्र र भोजन आदि द्वारा सधैं स्त्रीलाई सत्कार गर्नु पर्दछ ॥ ४ ॥

'पूजा' शब्दको अर्थ सत्कार हो भन्ने कुरा ख्याल राख्नु पर्दछ। दिउसो वा राती पहिलोपल्ट भेट्दा वा छुट्टिदा सधैं एक अर्कालाई प्रेमपूर्वक 'नमस्ते' गर्नुपर्छ।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ १ ॥

—मनुस्मृति ५।१५०

स्त्रीले अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक घरका सबै कामकाज चतुराइयुक्त भएर, सबै पदार्थहरूको उत्तम सरसफाइ र घर शुद्ध राख्नु पर्दछ र खर्च गर्न धेरै उदार हुनु हुँदैन अर्थात् यथायोग्य आवश्यक मात्र खर्च गर्नु पर्छ र सबै सामान सफा, सुग्घर, सुन्दर र पवित्र राख्नु पर्छ र खाना औषधी जस्तो लाभदायक भई शरीर र आत्मामा रोग लाग्न नदिने किसिमका बनाउनु पर्छ। भएको खर्चको हिसाब जस्ताको तस्तै राखेर पति आदिलाई सुनाइदिने गर्नु पर्दछ। घरका नोकर–चाकरसँग यथायोग्य काम लिनु

पर्छ र घरको काम बिग्रन दिनु हुन्न।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

—मनुस्मृति २।२४०

उत्तम स्त्री, नानाकिसिमका रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रैष्ठ बोलाइ र नानाकिसिमका शिल्पविद्या अर्थात् सीप र कला सबै देश र सबै मानिसबाट ग्रहण गर्नु पर्छ।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रू यान्न ब्रू यात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रू यादेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥
भद्रं भद्रमिति ब्रू याद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ॥ २ ॥

—मनुस्मृति ४।१३, १३९

सधैं प्रिय सत्य, अर्काको हितकारक बोल्नु पर्छ, अप्रिय सत्य अर्थात् कानालाई कानु भन्नु हुँदैन। अर्कालाई प्रसन्न गर्न झूठ बोल्नु हुँदैन ॥ १ ॥

सधैं भद्र अर्थात् सबैलाई हित हुने कुरा बोल्नु पर्छ। शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध कसैसँग विरोध वा विवाद गर्नु हुन्न ॥ २ ॥

अर्काको कल्याणकारी कुरा भन्दा कसैले नराम्रो ठान्ने वा रिसाउने भए पनि नभनी छोड्नु हुँदैन ॥

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

—उद्योगपर्व विदुरनीति (महाभारत उ०प०) ३७।१५

हे धृतराष्ट्र! यस संसारमा अर्कालाई निरन्तर प्रसन्न गर्न प्रिय बोल्ने प्रशंसक धेरै छन्। तर सुन्न अप्रिय लाग्ने भए पनि कल्याकारी वचन बोल्ने र सुन्ने व्यक्ति दुर्लभ हुन्छ।

सत्पुरुषहरूले कसैका अगाडि त्यसका दोष भन्ने र आफ्ना दोष सुन्ने अनि परोक्षमा सदा अर्काको गुणमात्र भन्ने गर्नु पर्दछ। दुष्टहरू भने कसैका अगाडि गुणगान गर्ने र परोक्षमा दोष देखाउने वा निन्दा गर्ने गर्दछन्। मानिसले अर्काबाट आफ्ना दोष सुन्ने र अर्कोको दोष त्यसको अगाड़ी भन्ने नगरे सम्म मानिस दोषबाट छुटेर गुणी हुन सक्तैन।

कहिल्यै कसैको निन्दा गर्नु हुन्न। जस्तै—**'गुणेषु दोषारोपणमसूया,** अर्थात् **दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया, 'गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः**, गुणहरूमा दोष र दोषहरूमा

गुण देखाउनु '**निन्दा**' र गुणमा गुण तथा दोषमा दोष देखाउनु '**स्तुति**' भनिन्छ। अर्थात् मिथ्याभाषण व झूठ बोल्नु '**निन्दा**' र सत्य बोल्नु '**स्तुति**' हो।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यशास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥ १॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥ २॥

—मनुस्मृति ४।१९,२०

ब्रह्मचर्याश्रममा पढेका, बुद्धि, धन र हित शीघ्र वृद्धि गर्ने शास्त्र र वेदलाई स्त्री–पुरुष दुबैले नित्य सुन्नु–सुनाउनु, विचार गर्नु र पढ्ने–पढाउने गर्नु पर्छ॥ १॥

किनभने मानिस जति जति शास्त्रलाई राम्ररी बुझ्दै जान्छ उसलाई विशेषज्ञान बढ्दै जान्छ र उसमा रुचि पनि बढ्दै जान्छ॥ २॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥ १॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्प्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्,॥ २॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥ ३॥

—मनुस्मृति ४।२१, ३, ७०, ३।८१

दुईबटा यज्ञ बारे ब्रह्मचर्य्य प्रसङ्गमा लेखिसकिएको छ। यी अर्थात् पहिलो वेदादिशास्त्र पढ्नु–पढाउनु, सन्ध्योपासना, योगाभ्यास, दोस्रो–देवयज्ञ, विद्वान्हरूसंग सङ्गति सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणहरू धारण गर्नु, दातृत्व, विद्या उन्नति गर्नु हो। यी दुवै यज्ञ सायं प्रातः गर्नु पर्ने हुन्छन्—

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्यं दाता॥ १॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनस्यं दाता॥ २॥

—अ० कां० १९। अनु० ७। मं० ३, ४॥

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत।
उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ॥ ३॥

—ब्राह्मण (षड्विंशब्राह्मण ४।५, तै० आरण्यक २।२)

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपस्ते यश्च पश्चिमाम्।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ ४॥

—मनुस्मृति २।१०३

प्रत्येक सायंसमयमा गरिएका होमको हुत द्रव्य प्रातःकालसम्म वायु शुद्धि द्वारा सुखकारी हुन्छ॥ १॥

अग्निमा प्रत्येक प्रातःकाल होमिएको द्रव्य सायंकालसम्म वायु शुद्धि द्वारा बल, बुद्धि र आरोग्यकारक हुन्छ॥ २॥

यसैकारण दिन र रात्रिका सन्धिमा अर्थात् सूर्योदय र सूर्यास्त हुने समयमा परमेश्वर ध्यान र अग्निहोत्र अवश्य गर्नु पर्दछ॥ ३॥

अनि यी दुवै कर्म बिहान बेलुकी न गर्ने व्यक्तिलाई सज्जनहरूले द्विजका कर्मबाट बहिष्कृत गरिदिनु अर्थात् त्यसलाई शूद्रवत् सम्झनु पर्छ॥ ४॥

प्रश्न—त्रिकाल सन्ध्या किन गर्नुहुन्न?

उत्तर—तीन समयमा सन्धि हुँदैन। उज्यालो र अंध्यारोको सन्धि पनि सायं प्रातः दुई समयमा मात्र हुन्छ। कुनैले यसलाई नमानेर मध्यान्हमा अर्थात् दिउँसो सन्ध्या मानेमा त्यसले मध्यरात्रिमा पनि सन्ध्योपासन किन नगर्ने? अनि मध्यरात्रिमा पनि सन्ध्योपासना गर्न चाहेमा पहर–पहर, घडी–घडी, पल–पल र क्षण–क्षणको पनि सन्धि हुन्छ, तिनमा पनि सन्ध्या गर्ने गर्नु हुन्छ। कसैले यस्तो पनि गर्न चाहेमा यो असम्भव छ, हुनै सक्तैन। अनि मध्याह्न सन्ध्या गर्न कुनै शास्त्र प्रमाण पनि छैन। यसकारण दुई समयमा मात्र सन्ध्या र अग्निहोत्र गर्नु उचित हुन्छ, तेस्रो, समयमा गर्नु उचित हुन्न। साथै तीन मानिएका काल भूत, भविष्यत् र वर्तमान भेदले हो, सन्ध्योपासनको भेदले होइन।

तेस्रो—पितृयज्ञ अर्थात् **देव**=विद्वान्हरूलाई, **ऋषि**=पढ्ने–पढाउने–हरूलाई, **पितर**=आमा, बाबु आदि वृद्ध, ज्ञानी र परम योगीहरूलाई सेवा गर्नु हो। पितृयज्ञका **दुई भेदछन्**—पहिलो **श्राद्ध** र दोस्रो **तर्पण**। श्राद्ध अर्थात् श्रत् भनेको सत्य हो। '**श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धाया यत् क्रियते तच्छाद्धम्**' जुन क्रियाबाट सत्यलाई ग्रहण गरियोस् त्यो श्रद्धाले गरिएको कर्म '**श्राद्ध**' हो। '**तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पण्**' जुन जुन कर्मबाट तृप्त अर्थात् **जीवित आमा, बाबु आदि पितर प्रसन्न हुन्छन् र प्रसन्न गरिन्छन् त्यसको नाम 'तर्पण' हो। तर यो जीवितका लागि हो मृतककालागि होइन।**

अथ देवतर्पणम्

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृ प्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्नयस्तृ प्यन्ताम्।
ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मदिदेवगणास्तृप्यन्ताम्॥

—इति देवतर्पणम्।

'विद्यां सो हि देवाः' यो शतपथ ब्राह्मणको (३।७।३।१०) वचन हो। विद्वान्लाई नै **'देव'** भनिन्छ। साङ्गोपाङ्ग चारै वेद जान्नेको नाम **'ब्रह्मा'** र त्यो भन्दा कम पढेकाको पनि नाम देव अर्थात् विद्वान हो। उनीजस्तै विदुषी स्त्री उनकी ब्रह्माणी देवी, उनीजस्तै उनका सन्तान र शिष्य तथा उनीजस्तै उनका गण अर्थात् सेवक भए ती सबैको सेवा गर्नु श्राद्ध र तर्पण भनिन्छ।

अथ ऋषितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृ षिपत्नयस्तृ प्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृ प्यान्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृ प्यन्ताम्॥

—इति ऋषितर्पणम्।

ब्रह्माका नाति मरीचि जसतै विद्वान् भएर पढाउने र उनीजस्तै विद्यायुक्त उनका स्त्रीहरू कन्याहरूलाई विद्यादन दिने, उनीजस्तै उनका पुत्र र शिष्य तथा उनीजस्तै तिनका सेवक छन् भने यी सबैको सेवा र सत्कार गर्नु 'ऋषितर्पण' हो।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यनताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यान्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितर-स्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। (प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि)। मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। (प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्प्पयामि)। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पवामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि॥ इतिपितृतर्पणम्॥

हेर्नुहोस्—यजु०अ० ६॥ मनु० अ० ३॥ वृ० पाराशर स्मृति अ ७, श्लोक १६७-१६८

'ये सोमे जगदीश्वरे पर्दाविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः' परमात्मा र पदार्थ विद्यामा निपुण व्यक्ति **'सोमसद'**, **'यैरग्नेर्विद्युतो विद्यागृहीता ते अग्निष्वात्ताः'** अग्नि अर्थात् विद्युत आदि पदार्थलाई जान्ने मानिस **'अग्निष्वात्त'**, **ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः'** उत्तम विद्यावृद्धि हुने व्यावहारमा अवस्थित **'बर्हिषद्,' 'ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः'** ऐश्वर्य का रक्षक, महौषधि रसको सेवन गर्नाले निरोगी र अरूको ऐश्वर्यका रक्षक र औषधि दिएर रोग नाश गर्ने व्यक्ति **'सोमपा'**,**'यं हविर्होतुमत्तु मर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुज'** मादिक र हिंसाकारक द्रव्यलाई छोडेर शुद्ध वस्तु भोजन गर्ने **'हविर्भुज'**, **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः'** जान्नयोग्य वस्तुका रक्षक, घ्यू, दूध आदि खाने पिउने **'आज्यपा'**, **'शोभनः कालो विद्यते येषां ते सुकालिनः** राम्रो धर्म गर्ने सुखमय समय भएका **'सुकालिन्'**, **'ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशः'** दुष्टहरूलाई दण्ड र श्रेष्ठलाई पालन गर्ने न्यायकारी **'यम'**, **'यः पाति स पिता'** अन्न र सत्कार द्वारा सन्तानलाई रक्षक वा जनक **'पिता'**, **'पितुः पिता पितामहः, पितामहस्य पिता प्रपितामहः'** पिताको पिता **'पितामह'** र पितामहको पिता **'प्रपितामह'**, **'या मानयति सा माता'** अन्न र सत्कारद्वारा सन्तानलाई मान्य गर्ने **'माता'**, **'या पितर्माता सा पितामही, पितामहस्य माता प्रपितामही'** पिताकी माता पितामही र पितामहीकी माता **'प्रपितामही'**, आफ्नी **'स्त्री'**, **'भगिनी'**, **'सम्बन्धी'**, 'एक गोत्रका तथा अन्य कोही भद्रपुरुष वा वृद्ध छन् भने ती सबैलाई अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उत्तम अन्न, सुन्दर वाहन आदि दिएर राम्ररी तृप्त गर्नु अर्थात् जुन जुन कर्म गर्दा उनको आत्मा तृप्त र शरीर स्वस्थ रहन्छ, त्यस्तो कर्मद्वारा प्रीतिपूर्वक उनको सेवा गर्नु **'श्राद्ध र तर्पण'** भनिन्छ।

चौथो—वैश्वदेव, अर्थात् भोजन तयार भएपछि बनेको भोजनबाट अमिलो, नुनिलो र क्षारीय टर्रो पदार्थ बाहेक घ्यू, मिठाई आदि भएको अन्न लिएर चूलाको आगो छुट्टै राखेर निम्नलिखित मन्त्रले आहुति दिदै भाग लगाउने गर्नु पर्छ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

—मनुस्मिृति ३८४

पाकशालामा तैयार भएका भोजनलाई दिव्यगुणयुक्त पार्न त्यसै पाकाग्निमा निम्नलिखित मन्त्रले नित्य नियमपूर्वक होम गर्ने गर्नु पर्छ। होम गर्ने मन्त्र—

ओम् अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्नीषोमाग्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै

स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा स्विष्टकृते स्वाहा॥

यी प्रत्येक मन्त्रले एक एक आहुति बलेको अग्निमा प्रदान गर्नु पर्दछ। त्यस पछि थालमा अथवा भुईमा पात राखेर त्यस पातमा पूर्वदिशा आदि क्रम अनुसार यी मन्त्रले भाग राख्नु पर्दछ।

ओम् सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।

यी भाग कोही अतिथि भए उनलाई ख्वाउनु अथवा अग्निमा हालिदिनु पर्छ। त्यस पछि नुनिलो खाना दाल, भात, साग, रोटी आदि लिएर छ भाग भूईंमा राख्नु पर्छ। यसमा प्रमाण—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

—मनुस्मृति ३।९२

यसरी **'श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपग्भ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः, वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः,** भाग राखेर कुनै दुःखी भोको प्राणी अथवा कुकुर, काग आदिलाई दिनु पर्दछ। यहाँ 'नमः' शब्दको अर्थ 'अन्न' अर्थात् कुकुर, पापी, चाण्डाल, पापरोगी, काग र कमिला आदिलाई अन्न दिनु हो। यो मनुस्मृति आदिको विधि हो।

हवन गर्नको प्रयोजन भान्साघर वायु शुद्धि र अज्ञात अदृष्ट जीवहरू हत्या भए प्रत्युपकार गर्नु हो।

अब पाँचौ–अतिथिसेवा, 'अतिथि' कुनै तिथि निश्चित नभएका अर्थात् अकस्मात् धर्मिक, सत्योपदेशक, सबैका उपकारार्थ सर्वत्र घुम्ने, पूर्णविद्वान्, परमयोगी, सन्यासी कुनै गृहस्थका घर आएमा त्यसलाई **'अतिथि'** भनिन्छ। त्यसलाई सर्वप्रथम पाद्य, अर्ध्य र आचमनीय गरी तीन किसिमको जल दिएर, त्यसपछि सत्कारपूर्वक आसनमा बसाएर खानपान आदि उत्तमोत्तम पदार्थहरूद्वारा सेवा सुश्रूषा गरेर तिनलाई प्रसन्न गर्नुपर्छ। अनि सत्सङ्ग गरेर तीबाट ज्ञान विज्ञान आदि धर्म, अर्थ, काम र मोक्ष प्राप्त हुने किसिमका उपदेश सुन्नुपर्छ र आफ्नो चालचलन पनि उनका सदुपदेश अनुसार नै बनाइराख्नु पर्दछ। समय अनुसार गृहस्थ

र राजा आदि पनि अतिथि जस्तै सत्कार गर्न योग्य हुन्छन्। तर—

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङमात्रेणापि नार्चयेत्॥

—मनुस्मृति ४।३०

(पाखण्डी) वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण गर्ने, **(विकर्मस्थ)** वेदविरुद्ध कर्म गर्ने, मिथ्याभाषण आदि युक्त, **(वैडालवृत्तिक)** बिरालोले लुकेर स्थिर भई चियाएर झम्टेर मूसो आदि प्राणिलाई मारेर आफ्नो पेटभर्ने जस्तै बानी भएका विडालवृत्तिका, **(शठ)** हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आफू नजान्ने अरुले भनेको नमान्ने, **(हैतुक)** कुतर्की, व्यर्थ बकवादी, जस्तै हिजोआज वेदान्ती, 'हामी ब्रह्म हौं र जगत् मिथ्या हो, वेदादि शास्त्र र ईश्वर पनि कल्पित हो' इत्यादि बकवाद गर्दछन्, **(बकवृत्ति)** जसरी बकुल्लो एउटा खुट्टो उचालेर ध्यानमा बसे झैं भएर तुरुन्तै माछा मारेर आफ्नो स्वार्थ पूर्ण गर्दछ त्यस्तै हिजोआजका वैरागी, खाखी आदि सम्प्रदायका हठी, दुराग्रही, वेद विरोधी हुन्छन्, यस्ताको सत्कार वाणीमात्रले पनि गर्नुहुन्न। किनभने यस्ताको सत्कार गर्नाले यिनीहरूको उन्नति हुन्छ र यी संसारलाई अधर्मयुक्त गर्दछन्। आफैं त अवनतिका काम गर्छन् नै, साथमा सेवकलाई पनि अविद्यारुपी महासागरमा डुबाइदिन्छन्।

यी **'पाँच महायज्ञ'** को फल हो—**'ब्रह्मयज्ञ'** गर्नाले विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणहरू वृद्धि। **'अग्निहोत्र'** ले वायु, वृष्टि, पानी शुद्धि भएर वृष्टिद्वारा संसारलाई सुखप्राप्त हुनु अर्थात् शुद्ध वायु श्वास लिनु, खान–पानद्वारा आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढेर धर्म, अर्थ, काम र मोक्ष अनुष्ठान पूर्ण हुनु आदि, यसैले यसलाई देवयज्ञ भनिन्छ। **'पितृयज्ञ'** बाट आमा–बाबु र ज्ञानी महात्माहरूलाई सेवा गर्दा ज्ञान बढ्नेछ। त्यसबाट सत्य र असत्य निर्णय गरेर सत्य ग्रहण र असत्य त्याग गरेर सुखी भइने छ। अर्कोकुरा कृतज्ञता–आमा, बाबु र आचार्यले सन्तान र शिष्यलाई जस्तो सेवा गरेको हो, त्यसको बदला दिनु उचितै हुन्छ। **'बलिवैश्वदेव'** को फल अघि भनिआए सरह नै हो। **'अतिथियज्ञ'** जगत्मा उत्तम अतिथि नभएसम्म उन्नति पनि हुँदैन। तिनले सबै ठाउँमा घुम्नाले र सत्योपदेश गर्नाले पाखण्ड वृद्धि हुँदैन तथा सर्वत्र गृहस्थहरूलाई सहजै सत्य विज्ञान प्राप्ति भैरहन्छ। अनि मानवमात्रमा एउटै धर्म स्थिर रहन्छ। अतिथिबिना सन्देह निवृत्ति हुँदैन। सन्देह निवृत्ति विना दृढ निश्चय पनि हुँदैन। निश्चय नभई सुख कहाँ हुनसक्तछ?

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

—मनुस्मृति ४।९२

रात्रिको चौथो पहर अथवा चार घडी रातमा उठ्नु आवश्यक कार्य गरेर धर्म र अर्थ, शरीरका रोगहरू निदान र परमात्माको ध्यान गर्नुपर्छ। कहिल्यै अधर्म आचरण गर्नुहुन्न।

किनकी—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिब।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तु र्मूलानि कृन्तति॥

—मनुस्मृति ४।१७

गरिएको अधर्म कहिल्यै निष्फल हुँदैन। तर जुन समयमा अधर्म गरिन्छ त्यसै समय फल पनि प्राप्ति हुँदैन। यसै कारण अज्ञानीहरू अधर्मदेखि डराउँदैनन्। फेरि पनि त्यो अधर्माचरण बिस्तार–बिस्तार सुखका जरालाई काट्दै जान्छ भन्नेकुरा निश्चित बुझ्नु पर्दछ। यस्तै प्रकारले—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु बिनश्यति॥

—मनुस्मृति ४।१७४

कुनै पोखरीका वरिपरिको डील भत्काएर पानी चारैतिर फैलिए जस्तै अधर्मात्मा व्यक्ति धर्मका मर्यादालाई छोडेर मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात रक्षागर्ने वेदहरूका खण्डन र विश्वासघात आदि कर्मद्वारा अर्काको धन–सम्पत्ति आदि पदार्थ लिएर उन्नतितर्फ लाग्दछ। त्यसपछि धन आदि ऐश्वर्यले खान–पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त गर्दछ। अन्यायद्वारा शत्रुलाई पनि जित्छ। अनि अन्तमा जरा काटिएको रूख जस्तै त्यो अधर्मी व्यक्ति शीघ्र नष्ट भै जान्छ।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचेचैवारमेत् सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥

—मनुस्मृति ४।१७५

विद्वान्ले वेदोक्त सत्यधर्म अर्थात् पक्षपात रहित भई सत्य ग्रहण र असत्य परित्याग, न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि आर्यवृत्त अर्थात् धर्ममा चल्दै शिष्यलाई शिक्षा दिने गर्नुपर्छ।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्य्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः॥ १॥

मातापितृभ्यां यामीभियार्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेते॥ २॥

—मनुस्मृति ४। १७९, १८०

(ऋत्विक्) यज्ञगर्ने व्यक्ति, **(पुरोहित)** सदा उत्तम चालचलन गर्न शिक्षा दिने व्यक्ति, **(आचार्य)** विद्या पढाउने गुरु, **(मातुल)** मामा, **(अतिथि)** आउने–जाने निश्चित तिथि नभएको व्यक्ति, **(संश्रित)** आफ्ना आश्रित, **(बाल)** बालक, **(वृद्ध)** बूढा, **(आतुर)** पीडित, **(वैद्य)** आयुर्वेदका ज्ञाता, चिकित्सक, **(ज्ञाति)** आफ्नो गोत्र वा वर्णका व्यक्ति, **(सम्बन्धी)** ससुरा आदि, **(बान्धव)** मित्र॥ १॥ **(माता)** आमा, **(पिता)** बाबु, **(यामी)** दिदी, बहिनी, **(भ्राता)** दाजु, भाइ, **(भार्या)** पत्नी, **(दुहिता)** छोरी र **(दासवर्ग)** सेवकहरूसँग कहिल्यै विवाद अर्थात् लडाइँ झगडा गर्नुहुन्न॥ २॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥

—मनुस्मृति, ४। १९०

(अतपाः) ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण आदि तपरहित, **(अनधीयानः)** नपढेको र **(प्रतिग्रहरुचिः)** धर्मार्थ हरूबाट बढी दान लिने, यी तिनै ढुङ्गाका नौकामा समुद्र तर्ने जस्तै आफ्ना दुष्टकर्मसँग दुःखसागरमा डुब्दछन्। ती आफू त डुब्छन् नै, दाताहरूलाई पनि साथै डुबाउँछन्॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥ —मनुस्मृति ४। १९३

धर्मद्वारा प्राप्त भएको धन कसैले उक्त तिनैलाई दिन्छ भने त्यो दान दाताको नाश यसै जन्ममा र लिनेलाई परजन्ममा वास गर्दछ। यस्तो हुँदा के हुन्छ भने—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ॥

—मनुस्मृति, ४। १९४

जसरी ढुङ्गाको डुङ्गामा बसेर पानीमा तर्न खोज्ने व्यक्ति डुब्दछन्, त्यस्तै अज्ञानी दाता र ग्रहीता दुवै अधोगति अर्थात् दुःख प्राप्त गर्दछन्।

पाखण्डीहरूका लक्षण

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्त्रः सर्वाभिसन्धकः॥ १॥

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठोमिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥ २॥

—मनुस्मृति ४। १९५, १९६

(धर्मध्वजी) धर्म केही पनि नगर्ने तर धर्मका नामबाट अरूलाई ठग्ने, **(सदालुब्धः)** सधैं लोभी, **(छाद्मिकः)** कपटी, **(लोकदम्भकः)** संसारका अगाडि आफै ठूलो हुँ भन्ने गफमात्र गर्ने, **(हिंस्रः)** प्राणीहरूलाई मार्ने, अरूसँग वैरबुद्धि राख्ने, **(सर्वाभिसन्धक)** सबै सज्जन र दुर्जनहेरूसँग पनि मेलजुल राख्ने व्यक्तिलाई **(वैडालव्रतिकः)** विरालो जस्तै धूर्त र नीच सम्झनु पर्छ॥ १॥

(अधोदृष्टिः) कीर्तिका लागि निहुँरिरहने, **(नैष्कृतिकः)** ईष्यालु, कसैले अलिकति पनि अपराध गरेको भए त्यसका बदलामा प्राणै लिनसम्म पनि तम्सिने, **(स्वार्थसाधनतत्परः)** कपट, अधर्म र विश्वासघात गरेर पनि आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्न चतुर, **(शठः)** आफ्नो कुरा झूठो भएपनि कहिल्यै हठ नछोड्ने, **(मिथ्याविनीतः)** झूठमूठ शील, सन्तोष र सज्जनता देखाउने व्यक्तिलाई **(बकव्रतः)** बकुल्लाजस्तै नीच सम्झनुपर्छ। यस्ता लक्षण भएका पाखण्डी हुन्छन्, तिनलाई विश्वास अथवा सेवा कहिल्यै गर्नुहुन्न॥ २॥

धर्म शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ १॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥ २॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको नु भडक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ४। २३८–२४०

एकः पापानि कुरुते फलं भूङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥ ४॥

—महाभारत उ०प० ३३। ४७

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥ ५॥

—मनुस्मृति, ४। २४१

धमिराले ढिस्को बनाए झैं स्त्री र पुरुषले कुनै प्राणीलाई कष्ट नपुर्याई परलोक अर्थात् परजन्म सुख पाउन बिस्तार–बिस्तार धर्म सञ्चय गर्नुपर्छ॥ १॥

किनभने परलोकमा न त आमा, न बाबु, न छोरा, न स्त्री र न नातेदार नै सहायक हुन सक्तछन् तर एक धर्ममात्र सहायक हुन्छ॥ २॥

जीव एक्लै जन्म र मरण हुन्छ, ऊ एकमात्र धर्मको फल सुख र अर्धमको फल दुःख भोग्दछ॥ ३॥

कुटुम्बमा एक व्यक्ति पाप गरेर धन सम्पत्ति आदि पदार्थ ल्याउँछ र सबै कुटुम्बी भोग गर्दछन् भने भोग गर्नेहरू पापको दोषभागी नभई अधर्मगर्ने व्यक्ति नै दोषभागी हुन्छ भन्ने कुरा बुझ्नु पर्दछ॥ ४॥

जब कसैको कोही मर्दछ, त्यसलाई माटोको डल्लो जस्तै भुईमा छोडेर बन्धु–बान्धव विमुख भैजान्छन्। त्यससँग जाने कोही पनि हुँदैन, तर एकमात्र धर्म त्यससंग साथी हुन्छ॥ ५॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥ १॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्त खशरीरिणम्॥ २॥

—मनुस्मृति ४। २४२, २४३

यसैकारण परलोक अर्थात् परजन्ममा सुख र यो जन्मको सहायताका लागि नित्यप्रति बिस्तार–बिस्तार धर्म सञ्चय गर्दै जानुपर्दछ, किनभने धर्मका सहायताले जीव पारगर्न नसक्ने ठूला–ठूला दुःखसागरलाई पनि पारगर्न सक्तछ॥ १॥

धर्मलाई नै मुख्य सम्झने र धर्मानुष्ठानबाट सारा पाप–ताप नष्ट भई सकेको व्यक्तिलाई धर्म नै प्रकाशस्वरूप आकाश नै शरीर समान भएको परलोक अर्थात् परमात्मासम्म पुर्याउँछ॥ २॥

यसकारण—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यं जयेत् स्वर्गं तथाव्रतः॥ १॥
वाच्यर्था: नियताः सर्वे वाङमूला वाग्विनिः सृताः।
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥ २॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥ ३॥

—मनुस्मृति ४। २४६, २५६, १५६

सदा दृढकारी, कोमलस्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंस्रक क्रूर दुष्टाचारी

व्यक्ति भन्दा टाढा रहने, धर्मात्मा, मनमाथि विजय प्राप्त गर्ने र विद्या आदि दान गर्ने व्यक्ति यी कर्म र स्वभावबाट सुख प्राप्त गर्दछन्॥ १ ॥

जुन वाणीमा अर्थ अर्थात् व्यावहार निश्चित हुन्छन् त्यो वाणी नै सबै धर्माचरण आदि मूल हो र वाणीद्वारा नै सबै व्यवहार सिद्ध हुन्छन् भन्ने कुरा ध्यान राख्नु पर्दछ। त्यस वाणीलाई चोर्ने अर्थात् झूठ आदि बोल्ने व्यक्ति चोरी आदि सबै पाप गर्ने हुन्छ॥ २ ॥

यसकारण झूठोबोल्नु आदि अधर्मलाई त्यागेर धर्माचरण अर्थात् ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रियताद्वारा पूर्ण आयु र धर्माचरणद्वारा उत्तम प्रजा तथा अक्षय धन प्राप्त हुन्छ अनि धर्माचरण व्यवहार गर्नाले दुष्ट लक्षणहरू नाश हुन्छन्, अतः यस्तै आचरण सधैं गर्ने गर्नुपर्छ॥ ३ ॥

किनभने—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥

—मनुस्मृति ४।१५७

संसारमा दुराचारी व्यक्ति सज्जनहरूबीच निन्दित, दुःखभागी र निरन्तर व्याधियुक्त भएर अल्पायु भोगगर्ने पनि हुन्छ। यसैले यस्तो प्रयत्न गर्नुपर्छ—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः॥ १ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुः खयोः॥ २ ॥

—मनुस्मृति ४।१५९, १६०

पराधीन कर्मलाई प्रयत्नपूर्वक त्यागेर स्वाधीन कर्मलाई प्रयत्नपूर्वक गर्ने गर्नुपर्छ॥ १ ॥

किनभने पराधीनताजती सबै दुःख र स्वाधीनताजति सबै सुख, यही सुख र दुःखका लक्षण जान्नु पर्दछ॥ २ ॥

तर एकअर्का अधीन हुने काम भने अधीनताले नै गर्नु पर्दछ, जस्तै स्त्री र पुरुषको परस्पर अधीन व्यवहार अर्थात् स्त्रीले पुरुषँग र पुरुषले स्त्रीसँग परम्पर प्रियआचरण गर्नु, अनुकूल रहनु र व्यभिचार अथवा विरोध कहिल्यै नगर्नु उचित हुन्छ। पुरुष आज्ञानुसार घरका सबैकाम स्त्री अधीन र बाहिरका काम पुरुष अधीन रहनु तथा दुर्व्यसनमा फँस्न नदीन एक अर्कालाई रोक्नुपर्ने कुरा निश्चितरुपमा बुझ्नु पर्दछ।

विवाह भएपछि स्त्रीसँग पुरुष र पुरुषसँग स्त्री बिकिसकेका हुन्छन्। अर्थात् स्त्री र पुरुष दुबैका हाव, भाव र वीर्यादि समेत नखशिखाग्रपर्यन्त सबैकुरा एकअर्काका भई जान्छन्। स्त्री वा पुरुषले परस्पर प्रसन्नता बिना कुनैपनि व्यवहार गर्नुहुन्न। यस्ता अत्यन्त अप्रियकारक काम व्यभिचार, वेश्यागमन, परपुरुषगमन आदि व्यवहार हुन्, यिनलाई छोडेर आफ्ना पतिसँग स्त्री र स्त्रीसँग पतिले सदा प्रसन्न रहनु पर्दछ।

ब्राह्मणवर्णको भए केटालाई पुरुष र केटीलाई सुशिक्षिता स्त्रीले पढाउनुपर्छ। नानाकिसिमका उपदेश र वक्तृत्वद्वारा तिनलाई विद्वान् बनाउनु पर्छ। स्त्रीले पूजनीय देव पति र पुरुषका पूजनीय अर्थात् सत्कार गर्ने योग्य देवी स्त्री हुन। गुरुकुलमा रहेसम्म अध्यापकलाई आमा बाबु सरह र अध्यापकले पनि शिष्यलाई आफ्ना सन्तान सरह ठान्नुपर्दछ। पढाउने अध्यापक र अध्यपिका कस्ता हुनु पर्दछ?—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥ १ ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रदद्धान एतत्पण्डितलक्षणम्॥ २ ॥
क्षिप्रं विजानाति चिरं श्रृणोति,
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो हयुपथुङ्क्ते परार्थे
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥ ३ ॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥ ४॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य बक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥ ५ ॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥ ६ ॥

—यी सबै महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागरका (अ० ३३। २०, २१, २७, २८, ३३, ३४) श्लोक हुन्।

अर्थ—जसलाई आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा अल्छी कहिल्यै हुँदैन, सुख–दुःख, हानि–लाभ, मान–अपमान, निन्दा–स्तुति आदिमा हर्ष वा शोक कहिल्यै गर्दैन, नित्य निश्चितरूपमा धर्ममा नै रहन्छ र जसका मनलाई उत्तम–उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी

वस्तु आकर्षण गर्न सक्दैनन्, त्यही पण्डित भनिन्छ॥ १ ॥

सदा धर्मयुक्त कर्मलाई सेवन र अधर्मयुक्त कर्मलाई त्याग गर्नु, ईश्वर, वेद, सत्याआचरणलाई निन्दा नगर्नु र ईश्वर आदिमा अत्यन्त श्रद्धालु हुनु नै पण्डितको कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म हो॥ २ ॥

कठिन विषयलाई पनि शीघ्र जान्न सक्नु, धेरै समयसम्म शास्त्र पढ्नु, सुन्नु र विचार गर्नु, केही जानिएको कुरालाई परोपकारमा प्रयुक्त गर्नु, आफ्नो स्वार्थका लागि कुनै काम नगर्नु, नसोधी अथवा उचित समय नबुझी अर्काका कुरामा सम्मति नदिनु, यही पण्डितको पहिलो चिह्न हुनु पर्दछ॥ ३ ॥

प्राप्तगर्न अयोग्य कामना कहिल्यै नगर्ने, नष्ट भएको पदार्थप्रति शोक नगर्ने, आपत्कालमा मोह नगर्ने अर्थात् व्याकुल नहुने व्यक्ति नै बुद्धिमान् पण्डित हो॥ ४॥

सबै विद्या र प्रश्नोत्तर गर्न अतिनिपुण वाणी भएको, शास्त्रका विचित्र प्रकरणहरूको वक्ता, यथायोग्य तर्क गर्ने, स्मृतिमान र ग्रन्थहरूका अर्थ शीघ्र वक्तालाई नै पण्डित भनिन्छ॥ ५ ॥

सुनिएका सत्य अर्थ अनुकूल प्रज्ञा र बुद्धि अनुसार श्रवण गर्ने प्रवृत्ति भएको र आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषहरूका मर्यादालाई कहिल्यै भङ्ग नगर्ने व्यक्तिलाई नै पण्डित भनिन्छ॥ ६ ॥

यस्ता यस्ता स्त्री–पुरुष पढाउने ठाउँमा विद्या, धर्म र उत्तम आचरणक वृद्धि भएर प्रतिदिन आनन्द बढ्दै जान्छ।

पढाउन अयोग्य र मूर्खका लक्षण—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ १ ॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ २ ॥

यी श्लोक पनि महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागरका (अ० ३३। श्लोक ३५,४१) हुन्।

अर्थ—कुनै शास्त्र नपढेको, नसुनेको भएर पनि अत्यन्त घमण्डी, दरिद्र भएर पनि ठूला–ठूला मनोरथ गर्ने र कर्म नगरी पदार्थ पाउन इच्छा गर्नेलाई बुद्धिमान् व्यक्ति मूर्ख भन्दछ्॥ १ ॥

नबोलाई सभा वा कसैको घरमा पुग्ने, उच्च आसनमा बस्न चाहने, सभामा नसोधी धेरै बोल्ने, विश्वासगर्न अयोग्य वस्तु वा मानिसमा विश्वासगर्ने व्यक्ति मूर्ख र सबै मानिसहरूमा नीच मानिन्छ॥ २ ॥

यस्ता व्यक्ति अध्यापक, उपदेशक, गुरु र माननीय भएका ठाउँमा अविद्या, अधर्म, असभ्य, कलह, विरोध र फूट बढेर दुःखै दुःख बढ्दै जान्छन्।

अब विद्यार्थीहरूका लक्षण—

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥ १ ॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥ २ ॥

—यी पनि विदुर प्रजागरका (अ० ४०। श्लोक ५, ६) हुन्।

आलस्य, शरीर र बुद्धि नशा र मोह=कुनै वस्तुमा फसावट, चञ्चलता, यताउतिका व्यर्थ कुरा गर्नु–सुन्नु, पढ्दा–पढाउँदा रोकिनु, अभिमानी र अत्यागी हुनु, यी सात दोष विद्यार्थीमा हुन्छन्॥ १ ॥ यी दोष हुनेलाई विद्या कहिल्यै आउँदैन॥

सुख भोग गर्न इच्छा गर्नेलाई विद्या कहाँ? र विद्या पढ्नेलाई सुख कहाँ? विषयसुख चाहनेले विद्यालाई र विद्या चाहनेले विषयसुखलाई छोडिदिनुपर्छ॥ २ ॥ यस्तो नगरी कहिल्यै विद्या आउन सक्तैन। अनि यस्तालाई विद्या आउँछ—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥ १ ॥

सदा सत्य आचरणमा लागिरहने, जितेन्द्रिय र कहिल्यै वीर्य अधःस्खलित नभएका व्यक्ति नै सच्चा ब्रह्मचारी हुन्छन् र उनै विद्वान् हुन्छन्॥ १ ॥ यसकारण अध्यापक र विद्यार्थीहरूले शुभ लक्षणयुक्त हुनुपर्दछ।

विद्यार्थिहरू सत्यवादि, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलता आदि शुभगुणयुक्त, शरीर र आत्मा बल बढाएर समग्र वेदादि शास्त्रका विद्वान् होऊन् भन्ने किसिमको प्रयत्न अध्यापकहरूले गर्नुपर्दछ। उनीहरूका कुचेष्टा छुटाउन र विद्या पढाउन सदा प्रयत्न गर्नुपर्छ र विद्यार्थीहरूले सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढाउने–हरूलाई प्रेमविचारशील, परिश्रमी भएर पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म र पुरुषार्थ गर्नुपर्दछ। इत्यादि ब्राह्मणवर्णका काम हुन्। क्षत्रियहरूका कर्म राजधर्ममा भनिने छन्।

वैश्यले ब्रह्मचर्यादि पूर्वक वेदादि विद्या पढेर, विवाह गरेर,

नानादेशका भाषा, नानाप्रकारका व्यापारका तरीका, उनका भाउ जान्ने, बेच्ने, किन्ने, द्वीप–द्वीपान्तरमा जाने आउने, धन बढाउने, विद्या र धर्म उन्नतिका लागि खर्च गर्ने, सत्यवादि, निष्कपटी भएर सत्यताले सबै व्यापार गर्ने र नष्ट नहुनेगरी सबै वस्तुहरू रक्षा गर्ने आदि कार्य गर्नुपर्दछ।

शूद्रले सबै सेवामा चतुर र पाक विद्यामा निपुण भएर द्विजलाई सेवा गरेर तिनैबाट आफ्नो जीविका प्राप्त गर्नु पर्दछ र द्विजले यिनको खान–पान, वस्त्र, स्थान, विवाह आदिमा हुने सम्पूर्ण व्यय दिने गर्नुपर्छ अथवा मासिक निश्चित गरिदिनुपर्दछ।

चारै वर्णले परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दुःख, हानि, लाभमा एकमत भएर राज्य र प्रजाका उन्नतिमा तन, मन, धन व्यय गर्ने गर्नुपर्दछ।

स्त्री र पुरुष वियोग कहिल्यै हुनुहुन्न। किनभने—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट्॥

—मनुस्मृति ९।१३

जाँड–रक्सी, गाँजा–भाँग आदि मादक द्रव्यसेवन गर्नु, दुष्टपुरुषसंग संसर्ग, पति–वियोग, एक्लै यताउति व्यर्थ पाखण्डी आदि दर्शनका निहुँले हिंड्नेगर्नु र अरूका घरमा गएर सुत्नु वा वास वस्नु, यी छ स्त्रीलाई दूषित गर्ने दुर्गुण हुन् र यी पुरुषका लागि पनि त्यत्तिकै हुन्। पति र पत्नीको वियोग दुई किसिमको हुन्छ—पहिलो कतै कार्यविशेषले अर्को ठाउँमा जानु र अर्को मृत्युबाट वियोग हुनु। यसमा पहिलोको उपाय हो, कतै टाढा ठाउँ यात्रामा जानुपर्दा पत्नीलाई पनि सँगै लैजानु। धेरै समयसम्म वियोग रहनु हुन्न भन्नु नै यसको प्रयोजन हो।

प्रश्न—स्त्री वा पुरुषको बहु विवाह हुनु ठीक हो वा होइन?

उत्तर—युगपत् अर्थात् एकै समयमा हुँदैन।

प्रश्न—के समयान्तरमा अनेक विवाह हुनु उचित हो?

उत्तर—हो, जस्तै—

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥

—मनुस्मृति ६।१७६

कुनै स्त्री वा पुरुषको पाणिग्रहण संस्कार भई सकेतापनि संयोग भएको छैन भने अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री र अक्षतवीर्य पुरुष छ भने तिनको अन्य स्त्री वा पुरुषसँग पुनर्विवाह हुनुपर्दछ। तर ब्राह्मण, क्षत्रिय

र वैश्व वर्णमा क्षतयोनि स्त्री र क्षतवीर्य पुरुषको पुनर्विवाह हुनुहुन्न।

प्रश्न—पुनर्विवाहमा के दोष छ?

उत्तर—पहिलो, स्त्री–पुरुषमा प्रेम कम हुनु, किनभने मनपरी रूपमा पुरुषलाई स्त्री र स्त्रीलाई पुरुषले छोडेर अर्कैसँग सम्बन्ध गर्नेछन्। दोस्रो, स्त्री वा पुरुषले पति वा पत्नीको मृत्यु पछि अर्को विवाह गर्न चाहँदा पहिली पत्नी वा पहिलो पतिको सामान लैजाने र उनका कुटुम्बीहरू तीसँग झगडा गर्नेछन्। तेस्रो, धेरैजसो भद्रकुलका नाम वा चिह्न पनि नरहेर त्यसकुलका पदार्थ छिन्न–भिन्न हुनेछन्। चौथो, पतिव्रता र पत्नीव्रत धर्म नष्ट हुने आदि दोषका कारण द्विजमा पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कहिल्यै हुनु हुँदैन।

प्रश्न—वंशच्छेद भएर पनि उसका कुल नष्ट हुनेछ र स्त्री पुरुष व्यभिचार आदि गरेर गर्भपतन आदि धेरै दुष्ट कर्म गर्नेछन्, यसकारण पुनर्विवाह हुनु राम्रो हो, होइन र?

उत्तर—होइन, होइन, किनभने स्त्री र पुरुषले ब्रह्मचर्यमा स्थिर रहन चाहेमा कुनैपनि उपद्रव हुनेछैन र कुलको परम्परा राख्नु कुनै आफ्नै स्वजातिको बच्चा काखमा लिनेछन् र त्यसैबाट कुल चल्नेछ र व्यभिचार पनि हुनेछैन, अनि ब्रह्मचर्य राख्न नसके नियोग गरेर सन्तानोत्पत्ति गर्नुपर्छ।

प्रश्न—पुनर्विवाह र नियोगमा के फरक छ?

उत्तर—पहिलो, जस्तै विवाह गर्दा कन्या आफ्नो पिताको घर छोडेर पतिको घर जान्छे र पितासँग विशेष सम्बन्ध रहँदैन भने नियोगमा विधवा स्त्री त्यसै विवाहित पतिको घरमा बस्तछे। दोस्रो, त्यसै विवाहिता स्त्रीका छोरा त्यसै विवाहित पतिका अंशियार हुन्छन् र विधवा स्त्रीका छोरा न त वीर्यदाताका पुत्र भनिन्छन्, न उसको गोत्र हुन्छ र उसको आफ्नोपन पनि ती छोराप्रति हुँदैन तर ती मृतपतिकै छोरा भनिन्छन्, उसैको गोत्र हुन्छ र उसैको धन–सम्पत्तिका अंशियार भएर त्यसै घरमा बस्तछन्। तेस्रो, विवाहित स्त्री–पुरुषले परस्पर सेवा गर्नु आवश्यक हुन्छ र नियुक्त स्त्री–पुरुषको केही पनि सम्बन्ध रहँदैन। चौथो, विवाहित स्त्री–पुरुषको सम्बन्ध मृत्युपर्यन्त रहन्छ र नियुक्त स्त्री–पुरुषको सम्बन्ध कार्यपछि छुट्टछ। पाँचौ, विवाहित स्त्री–पुरुष आपसमा घरका कार्य सिद्ध गर्न यत्न गर्ने गर्दछन् र नियुक्त स्त्री–पुरुष आ–आफ्ना घरका काम गर्दछन्।

प्रश्न—विवाह र नियोगका नियम उस्तैछन् अथवा बेग्ला बेग्लै

छन् ?

उत्तर—केही फरक छन्। जे–जति माथि भनिसकियो ती सबै र त्यसबाहेक विवाहित स्त्री–पुरुष एक पति र एकै पत्नी मिलेर दश सन्तानसम्म उत्पन्न गर्न सक्तछन् भनिएपनि (नेपालको वर्तमान कानुनले छोरा वा छोरी दो सन्तानमात्र जन्माउन सकिन्छ) र नियुक्त स्त्री वा पुरुष दुई वा चार भन्दा बढी सन्तानोत्पत्ति गर्न पाउँदैनन्। अनि जसरी कुमार वा कुमारीकै विवाह हुन्छ त्यस्तै जसको स्त्री वा पुरुष मर्दछ तिनकै नियोग हुन्छ, कुमार वा कुमारीको हुँदैन। जसरी विवाहित स्त्री–पुरुष सदा सँगै रहन्छन् त्यस्तै नियुक्त स्त्री–पुरुषको व्यवहार नभई ऋतुदानको समय बाहेक एकत्र हुँदैनन्। स्त्रीले आफ्नो लागि नियोग गरेमा दोस्रो गर्भ रहेकै दिनदेखि स्त्री–पुरुषको सम्बन्ध छुट्तछ र पुरुषले आफ्नो लागि गरेपनि दोस्रो गर्भ रहेदेखि सम्बन्ध छुट्तछ, तर त्यसै नियुक्त स्त्रीले दुई तीन वर्षसम्म ती बच्चालाई पालन गरेर नियुक्त पुरुषलाई दिनुपर्दछ। यसरी एउटी विधवा स्त्रीले दुई सन्तान आफ्नो लागि र दुई–दुई अरू चारजना नियुक्त पुरुषका लागि र एउटा विधुर पुरुषले पनि दुई आफ्नो लागि र दुई–दुई अरू चार विधवाका लागि सन्तान उत्पन्न गर्न सक्तछन्। यसरी जम्मा दश–दश सन्तानोत्पत्तिको आज्ञा वेदमा पनि छ। जस्तै—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥

—ऋग्वेद, मं० १०। सू० ८५। मं० ४५

हे (**मीढ्व इन्द्र**) वीर्यसेचन समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष! तिमी यस विवाहिता स्त्री वा विधवा स्त्रीहरूलाई श्रेष्ठ पुत्र र सौभाग्ययुक्त गर। यस विवाहिता स्त्रीमा दश पुत्र उत्पन्न गर र एघारौं स्त्रीलाई मान। हे स्त्री! तिमी पनि विवाहित पुरुष वा नियुक्तपुरुषहरूबाट दश सन्तान उत्पन्न गर र एघारौं पतिलाई सम्झ। वेदको यस आज्ञा अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्व वर्णका स्त्री र पुरुषले दश दश सन्तानभन्दा बढी उत्पन्न गर्नुहुन्न। किनभने बढी गर्नाले सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु हुन्छन् तथा स्त्री र पुरुष पनि निर्बल, अल्पायु र रोगी भएर वृद्धावस्थामा धेरै दु:ख पाउँछन्।

प्रश्न—यो नियोगको कुरा व्यभिचार जस्तै लाग्छ?

उत्तर—जसरी विवाह नभएकाहरूको व्यभिचार हुन्छ, त्यस्तै नियुक्त नगरिएकाको व्यभिचार भनिन्छ। यसबाट के सिद्ध भयो भने

जसरी नियमपूर्वक विवाह भएपछि व्यभिचारी भनिदैन त्यस्तै नियमपूर्वक नियोग हुँदा व्यभिचार भनिने छैन। जस्तै—अर्काकी कन्याको अर्कैको कुमारसँग शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह भएपछि समागममा व्यभिचार वा पाप, लाज मान्नुहुन्न।

प्रश्न—कुरा त ठीक हो, तर यो वेश्याको कर्म जस्तै देखिन्छ।

उत्तर—होइन, किनभने वेश्याको समागममा कुनै निश्चित पुरुष वा कुनै नियम हुन्न र नियोगमा भने विवाहको जस्तै नियम हुन्छन्। जसरी विवाहपछि अर्कालाई छोरी दिन वा अर्कासँग समागम गर्न लाज हुँदैन, त्यस्तै नियोगमा पनि हुनुपर्दछ। अनि व्यभिचारी पुरुष वा स्त्रीको विवाह भएपछि पनि उनीहरू के कुकर्म गर्न छोड्छन् र?

प्रश्न—हामीलाई नियोगका कुरामा पाप हुन्छ जस्तो लाग्छ।

उत्तर—नियोगका कुरामा पाप मान्छौ भने विवाहमा पाप किन मान्दैनौ? पाप त नियोगलाई रोक्ता हुन्छ। किनभने वैराग्यवान् पूर्णविद्वान् योगीहरूबाहेक ईश्वर सृष्टिक्रमअनुकूल स्त्री–पुरुषका स्वाभाविक व्यवहार रोकिन सक्तैनन्। गर्भपतनरूप भ्रूणहत्या र विधवा स्त्री तथा विधुर पुरुषहरूको महासन्तापलाई पाप मान्दैनौ? किनभने ती युवावस्थामा रहून्जेल मनमा सन्तानोत्पत्ति र विषको चाहना हुनेहरूलाई कुनै राज्यनियम वा जातिनियमले रोकटोक हुँदा गुप्त–गुप्तरूपमा गलत चाल–चलन र कुकर्म भईनै रहनेछन्।

यस व्यभिचार र कुकर्मलाई रोक्ने यही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय हो। कुनै जितेन्द्रिय रहन सक्नेले विवाह वा नियोग पनि गर्दैनन् भने राम्रै हो तर जुन यस्ता छैनन् तिनको विवाह र आपतकालमा नियोग अवश्य हुनुपर्दछ। यसबाट व्यभिचार कम हुनेछ, प्रेमपूर्वक उत्तम स्त्री र वेश्या आदि नीच स्त्रीसँग उत्तम पुरुषहरूको व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुलमा कलंक, वंश नाश, स्त्री–पुरुषको सन्ताप र गर्भहत्या आदि कुकर्म विवाह र नियोगद्वारा हट्तछन्, यसकारण नियोग गर्नुपर्दछ।

प्रश्न—नियोगमा के के कुरा हुनु पर्दछ?

उत्तर—जसरी प्रसिद्धिपूर्वक विवाह हुन्छ त्यस्तै प्रसिद्धिपूर्वक नियोग हुनुपर्दछ। जसरी विवाहमा भद्रपुरुषहरूबाट अनुमति र कन्या–वरको प्रसन्नता हुन्छ, त्यस्तै नियोगमा पनि हुनुपर्दछ। अर्थात् स्त्री–पुरुषको नियोग हुनुपर्ने भएमा आफ्नो कुटुम्ब पुरुषले स्त्रीहरूका अगाडि 'हामि दुबै सन्तानोत्पत्तिका लागि नियोग गर्दछौं, नियोगको नियम पूर्ण भएपछि हामी संयोग गर्नेछैनौं, हामीले अन्यथा गरेमा पापी र जाति वा

राज्यबाट दण्डनीय होऔं, एक महिनामा एकपटक गर्भाधान गर्नेछौं र गर्भरहेपछि एक वर्षसम्म छुट्टै रहनेछौं' भन्नुपर्दछ।

प्रश्न—नियोग आफ्नै वर्णमा हुनुपर्दछ अथवा अन्यवर्णसँग पनि गर्नुहुन्छ ?

उत्तर—आफ्नै वर्णमा अथवा आफूभन्दा उत्तम वर्णका पुरुषसँग हुनुपर्दछ। अर्थात् वैश्य स्त्रीले वैश्य, क्षत्रिय र ब्राह्मण पुरुषसँग, क्षत्रियाले क्षत्रिय र ब्राह्मणसँग, अनि ब्राह्मणीले ब्राह्मणसँग नियोग गर्न सक्तछन्। यसको तात्पर्य वीर्य समान वा उत्तम वर्णको हुनुपर्दछ, आफूभन्दा निम्न वर्णको हुनुहुँदैन भन्ने हो। धर्मपूर्वक अर्थात् वेदोक्त रीतिले विवाह वा नियोगबाट सन्तानोत्पत्ति गर्नु नै स्त्री र पुरुषको सृष्टिको प्रयोजन हो।

प्रश्न—पुरुषले नियोग गर्नुपर्ने के आवश्यकता छ र ? ऊ त अर्को विवाह गर्ने छ ?

उत्तर—द्विजमा स्त्री र पुरुषको एक पटकमात्र विवाहको विधान वेदादि शास्त्रमा छ, दोस्रो विवाहको विधान छैन भन्ने कुरा लेखिसकेको छु। कुमार र कुमारीको मात्र विवाह हुन न्याय र विधवा स्त्रीसँग कुमार केटाको तथा कुमारी कन्यासँग विधुर पुरुषको विवाह हुन अन्याय अर्थात् अधर्म हुन्छ। जसरी विधवा स्त्रीसँग कुमार पुरुष विवाह गर्न चाहँदैन त्यस्तै कुमारी पनि विवाहित स्त्रीसँग समागमा गरिसकेको पुरुषसँग विवाह गर्न चाहनेछैन। जब विवाहित पुरुषलाई कोही कुमारी कन्या र विधवा स्त्रीलाई कोही कुमार पुरुष ग्रहण गर्नेछैन, अनि पुरुष र स्त्रीलाई नियोग गर्ने आवश्यकता हुनेछ। जस्ताको साथ त्यस्तै सम्बन्ध हुनु नै धर्म पनि हो।

प्रश्न—जसरी विवाह गर्न वेदादिशास्त्र प्रमाण छ, त्यसैगरि नियोगका बारेमा पनि छ वा छैन ?

उत्तर—यस विषयमा धेरै प्रमाण छन्—

कुंह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥ १॥

—ऋग्वेद, मं० १०। सू० ४०। मं० २

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ २॥

—ऋग्वेद मं० १०। सू० १८। मं० ८

(अश्विना) हे स्त्री–पुरुषहरू! **(देवरं विधवेव)** देवरलाई विधवा र **(योषा मर्यन्न)** आफ्ना पतिलाई विवाहिता स्त्रीले **(सधस्थे)** समान स्थान शय्यामा एकत्र भएर सन्तानोत्पत्ति **(आ कृणुते)** सर्व प्रकारले उत्पन्न गरे जस्तै तिमी दुबै स्त्री–पुरुष **(कुह स्वद्दोषा)** कहाँ रात्रीमा र **(कुह वस्तः)** कहाँ दिनमा बसेका थियौ ? **(कुहाभिपित्वम्)** कहाँ पदार्थहरू प्राप्ति **(करतः)** गर्यौ ? र **(कुहोषतुः)** कुन समयमा कहाँ बस्तथ्यौ ? **(को वां शयुत्रा)** तिमीहरूको सुत्ने ठाउँ कहाँ छ ? तथा तिमी को हौ र कुन ठाउँमा बस्नेहौं ? यसबाट देश विदेशमा पति र पत्नीले सँगसँगै बस्नुपर्छ र विवाहित पति जस्तै नियुक्त पतिलाई ग्रहण गरेर विधवा स्त्रीले पनि सन्तानोत्पत्ति गरिलिनु उचितै हुन्छ भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

प्रश्न—कसैको भाइ नै छैन भने विधवाले कोसँग नियोग गर्नुपर्छ ?

उत्तर—देवरसँग, तर देवर शब्दको अर्थ तपाईले बुझेजस्तो होइन। हेर्नुहोस् निरुक्तमा—

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते॥

—निरुक्त अ० ३। खण्ड १५

विधवाको दोस्रो पतिलाई देवर भनिन्छ। भाइ होस् अथवा दाजु, आफ्नो वर्णको होस् अथवा आफूभन्दा उत्तम वर्णको होस्, जोसँग नियोग गरिन्छ त्यसैको नाम देवर हो।

(नारि) हे विधवा! तिमी **(एतं गतासुम्)** यस मरिसकेको पतिको आशा छोडेर **(शेषे)** बाँकी पुरुषमध्येबाट **(अभिजीवलोकम्)** अर्को जीउँदो पतिलाई **(उपैहि)** प्राप्त गर र **(उदीर्ष्व)** यस कुराकै निश्चय राख कि **(हस्तग्राभस्य दिधिषोः)** तिमी विधवाको पुनः पाणिग्रहण गर्ने नियुक्त पतिसंग सम्बन्धका लागि नियोग हुन्छ भने **(इदम्)** यो **(जनित्वम्)** उत्पन्न गरिएको बालक त्यसै नियुक्त **(पत्युः)** पतिको हुनेछ। अनि तिमीले आफ्नो लागि नियोग गरेमा यो सन्तान **(तव)** तिम्रो हुनेछ। यस्तो निश्चययुक्त **(अभिसम् बभूथ)** होऊ र नियुक्त पतिले पनि यसै नियमको पालन गर्नुपर्दछ।

अदेवृघ्न्यपतिघ्नोहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥

—अथर्ववेद का० १४। अनु० २। मन्त्र १८

(अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) हे पति र देवरलाई दुःख नदिने स्त्री! **(इह)** यस गृहाश्रममा **(पशुभ्यः)** पशुहरूको लागि **(शिवा)** कल्याण गर्ने **(सुयमा)** राम्ररी धर्म नियममा चल्ने, **(सुवर्चाः)** रूप र सर्वशास्त्र

विद्यायुक्त, **(प्रजावती)** उत्तमपुत्र पौत्र आदि सहित **(वीरसूः)** शूरवीर पुत्र उत्पन्न गर्ने, **(देवृकामा)** देवरको कामना गर्ने र **(स्योना)** सुखदिने तिमी पति वा देवरलाई **(एधि)** प्राप्त भएर **(इनम्)** यस **(गार्हपत्यम्)** गृहस्थ सम्बन्धी **(अग्निम्)** अग्निहोत्रलाई **(सपर्य)** सेवन गर्ने गर।

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥

—मनुस्मृति ९।६९

अक्षतयोनि स्त्री विधवा भएमा पति आफ्नै भाइ पनि त्यस स्त्रीसँग विवाह गर्न सक्तछ।

प्रश्न—एक स्त्री वा पुरुष कतिसम्म नियोग गर्न सक्तछ? र विवाहित, नियुक्त पतिको के नाम हुन्छ?

उत्तर— सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

—ऋग्वेद मं० १०। सू० ८५। मं० ४०

हे स्त्री! जो **(ते)** तिम्रो, **(प्रथमः)** पहिलो विवाहित **(पतिः)** पति तिमीलाई **(विविदे)** प्राप्त हुन्छ, त्यसको नाम **(सोमः)** सुकुमारता आदि गुणयुक्त हुनाले सोम, जो दोस्रो नियोगबाट **(विविदे)** प्राप्त हुन्छ त्यो **(गन्धर्वः)** एक स्त्रीसँग संभोग गर्नाले गन्धर्व, जो **(तृतीय उत्तरः)** दुईपछि तेस्रो पति हुन्छ त्यो **(अग्निः)** अतिउष्णातायुक्त हुनाले अग्निसँज्ञक र जो **(ते)** तिम्रा **(तुरीयः)** चौथो देखि एघारौंसम्म नियोगद्वारा पति हुन्छन्, ती **(मनुष्यजाः)** मनुष्य नाम गरिएका हुन्छन्। जस्तो **'इमां त्वमिन्द्र'** यस यन्त्रमा एघारौं पुरुषसम्म स्त्री नियोग गर्नसक्तछे, त्यस्तै पुरुष पनि एघारौं स्त्रीसम्म नियोग गर्नसक्तछ।

प्रश्न—एकादश शब्दले दश पुत्र र एघारौं पतिलाई किन नगन्ने?

उत्तर—यस्तो अर्थ गर्दा **'विधवेव देवरम्', 'देवरः कस्माद् द्वितीय वर उच्यते', 'अदेवृघ्नि'** र **'गन्धर्वो विविद उत्तरः'** इत्यादि वेदप्रमाण विरूद्ध अर्थ हुनेछ। किनकि तपाईको अर्थबाट दोस्रो पति पनि प्राप्त हुन सक्तैन।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ १ ॥
ज्येष्ठो यवीयसो भर्य्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव० ॥ ३ ॥

—मनुस्मृति ९। ५९,५८,१५९

इत्यादि कुरा मनुजीले लेख्नु भएको छ।

सपिण्ड अर्थात् पतिको ६ पुस्तामा पतिको भाइ वा दाजु वा स्वजातीय अथवा आफू भन्दा उत्तम जातिका पुरुषसँग विधवा स्त्रीको नियोग हुनुपर्दछ। तर त्यस विधुर पुरुष अथवा विधवा स्त्रीलाई सन्तानोत्पत्तिको इच्छा भएमात्र नियोग गरिनु उचितहुन्छ। अर्कोकुरा सन्तान सर्वथा क्षय भएदेखि नियोग हुनुपर्दछ। आपत्काल अर्थात् सन्तानोत्पत्तिको इच्छा हुँदा दाजुकी पत्नीसँग भाइको अथवा भाइकी पत्नीसँग दाजुको नियोग भएर सन्तानोत्पत्ति भएपछि पनि फेरि ती नियुक्त व्यक्ति परस्पर समागम गर्छन् भने तिनलाई पतित मान्नुपर्छ। अर्थात् एक नियोगमा दोस्रो सन्तानको गर्भ रहनेवेलासम्म नियोगको अवधि हो, त्यसपछि समागम गर्नुहुन्न। अनि दुबैको लागि नियोग भएकोभए चौथो गर्भसम्म अर्थात् यस्तै प्रकारले दस सन्तानसम्म हुन सक्तछन्। त्यसपछि विषयासक्ति मानिन्छ, यसबाट ती पतित मानिन्छन्। अर्थात् विवाह अथवा नियोग सन्तानका लागि गरिन्छन् पशुजस्तै कामक्रीडाका लागि होइन।

प्रश्न—नियोग मरेपछिमात्र हुन्छ अथवा पति जिउँदो हुँदा पनि हुन्छ?

उत्तर—जिउँदो भएपनि हुन्छ—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

—ऋग्वेद मं० १०। सू० १०। मं० १०

पति सन्तानोत्पत्ति गर्न असमर्थ छ भने उसले आफ्नी पत्नीलाई यस्तो आदेश दिनु पर्दछ—हे सुभगे! सौभाग्य इच्छागर्ने स्त्री! तिमी **(मत्)** म भन्दा **(अन्यम्)** अर्कै पति **(इच्छस्व)** इच्छा गर, किनभने अब म बाट सन्तानोत्पत्तिहुने आशा नगर। तब स्त्रीले अर्को व्यक्तिसँग नियोग गरेर सन्तानोत्पत्ति गर्नुपर्दछ तर त्यस विवाहित महाशय पतिका सेवामा भने तत्पर रहनुपर्दछ। त्यस्तै स्त्री पनि रोगादि दोषग्रस्त भएर सन्तानोत्पत्तिगर्न असमर्थ भए उसले आफ्नो पतिलाई यस्तो आदेश दिनुपर्दछ—हे स्वामी! तपाई सन्तानोत्पत्तिको इच्छा म बाट त्यागेर अर्की कुनै विधवा स्त्रीसँग नियोग गरेर सन्तानोत्पत्ति गर्नुहोस्। जसरी पाण्डुराजाकी पत्नी कुन्ती र माद्री आदिले गरेका थिए र जसरी व्यासजीले चित्राङ्गद र बिचित्रवीर्य मरेपछि आफ्ना भाइका स्त्रीहरूसँग नियोग गरेर अम्बिका धृतराष्ट्र, अम्बालिकाबाट पाण्डु र दासीबाट विदुर उत्पत्ति गरेका थिए। इत्यादि इतिहास पनि प्रमाण छन्।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतिक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥ १॥
वन्ध्याऽष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजाः।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ २॥

—मनुस्मृति ९। ७६, ८१

विवाहित पति धर्मार्थ परदेश गएको भए आठवर्ष, विद्या र कीर्तिका निम्ति गएका भए ६ वर्ष र धनादि कमाउने इच्छाले गएको भए तीन वर्षसम्म पर्खेर विवाहित पत्नीले नियोग गरेर सन्तानोत्पत्ति गर्नुपर्दछ। विवाहित पति आएपछि नियुक्त पति छुट्नुपर्दछ॥ १॥ त्यस्तै पुरुषका लागि पनि यस्तो नियम छ–विवाहित पत्नी बाँझी भए आठौं अर्थात् विवाहदेखि आठ वर्षसम्म गर्भ नरहेदेखि, सन्तान भएर मरेदेखि दशौं, प्रत्येक पटक छोरी नै जन्मिएदेखि एघारौं वर्षसम्म र अप्रिय बोल्ने भए तुरुन्तै त्यस स्त्रीलाई छोडेर अर्कै स्त्रीसँग नियोग गरेर सन्तानोत्पत्ति गर्नु पर्दछ॥ २॥ त्यस्तै पुरुष अत्यन्त दुःखदायक भएदेखि स्त्रीले त्यस पुरुषलाई छोडेर अर्कै पुरुषसँग नियोग गरेर त्यसै विवाहित पतिका अंशियारबाट सन्तान उत्पन्न गर्नु उचित हुन्छ। इत्यादि प्रमाण र युक्तिहरूबाट स्वयंवर विवाह र नियोगद्वारा आ–आफ्नो कुलको उन्नति गर्नुपर्दछ भन्ने कुरा बुझिन्छ। जसरी '**औरस**' अर्थात् विवाहित पतिबाट उत्पन्न भएको पुत्र पिताको धन–सम्पत्ति आदि पदार्थको स्वामी हुन्छ त्यसैगरी '**क्षेत्रज**' अर्थात् नियोगबाट उत्पन्न भएको पुत्र पनि पिताको मृत्युपछि उसको सम्पत्तिको भोग गर्न पाउने हुन्छन्।

स्त्री र पुरुषले वीर्य र रज अमूल्य हुन्छ भन्ने कुराको हेक्का राख्नुपर्दछ। यस अमूल्य पदार्थलाई परस्त्री, वेश्या अथवा दुष्ट पुरुषहरूको सङ्गमा खेरफाल्नु महामूर्ख हुन्छन्। किनभने किसान अथवा माली मूर्ख भएपनि आफ्नो खेत अथवा बगैंचा बाहेक अरूकतै बिउ राख्दैनन्। साधारण बिउ र मूर्खको त यस्तो स्थिति छ भने सर्वोत्तम मनुष्यशरीररूपी वृक्षको बिउलाई कुक्षेत्रमा फ्याँक्ने व्यक्ति महामूर्ख भनिन्छ। किनभने त्यसको फल उसलाई मिल्दैन र '**आत्मा वै जायते पुत्रः**' यो ब्राह्मणग्रन्थहरूको वचन हो।

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्॥ १॥

—छन्दोग्य ब्राह्मण १। ५। १७, १८

यो सामवेदको वचन हो। हे पुत्र! तिमी अङ्गअङ्गबाट उत्पन्न

भएका वीर्य र हृदयबाट उत्पन्न भएकाछौ। यसकारण तिमी मेरा आत्मा हौं, म भन्दा पहिले अमर एकशय वर्षसम्म बाँच। जसबाट यस्ता यस्ता महात्मा र महाशयका शरीर उत्पन्न हुन्छन् त्यसलाई वेश्या आदि दुष्ट क्षेत्रमा छर्नु अथवा दुष्ट बिउ राम्रो क्षेत्रमा छर्न लगाउनु महापाप हो।

प्रश्न—विवाह किन गर्ने? किनभने स्त्री–पुरुषलाई बन्धनमा परेर धेरै संकोच गर्नु र दुःख भोग्नु पर्दछ, यसकारण जोसँग जसको प्रीति हुन्छ तबसम्म ती मिलेर रहून, प्रीति छुटेपछि एकअर्कालाई पनि छोडिदेऊन्।

उत्तर—यो पशुपक्षीको व्यावहार हो, मानिसको होइन। मानिसमा विवाहको नियम नरहेदेखि गृहाश्रमका राम्रा व्यावहार सबै नष्ट भ्रष्ट हुनेछन्। कोही कसैको सेवागर्ने छैन। अनि महाव्यभिचार बढेर सबै रोगी, निर्बल र अल्पायु भएर छिटो–छिटो मर्नेछन्। कोही कसैदेखि भय वा लाज मान्ने छैनन्। वृद्धावस्थामा कोही कसैको सेवापनि गर्ने छैनन् र महाव्यभिचार बढेर सबै रोगी, निर्बल र अल्पायु भएर कुलका कुल नष्ट हुनेछन्। कोही कसैको धन–सम्पत्ति आदि पदार्थका स्वामी अथवा अंशभागी पनि हुनेछैनन् र कुनै पदार्थमाथि दीर्घकालसम्म कसैको स्वामित्व पनि रहनेछैन। इत्यादि दोषहरू हटाउनका निम्ति विवाह हुनु नै सर्वथा उचित हुन्छ।

प्रश्न—विवाह हुँदा एउटा पुरुषको एउटी स्त्री र एउटी स्त्रीको एउटै पुरुष रहने छ। यस्तोमा स्त्री गर्भवती, स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी भए र दुबैको युवावस्था हुनाले टिक्न नसके के गर्ने नि?

उत्तर—यसको उत्तर नियोग विषयमा दिइसकिएको छ र गर्भवति स्त्रीसँग एकवर्ष समागम नगर्ने समयमा पुरुष वा स्त्रीले टिक्न नसक्ने भए कसैसँग नियोग गरेर त्यसका लागि पुत्रोत्पत्ति गरिदिनु पर्दछ, तर वेश्यागमन–व्यभिचार कहिल्यै गर्नुहुन्न।

सकभर अप्राप्य वस्तुको इच्छा, प्राप्तको रक्षण, रक्षितलाई वृद्धि र बढेको धन व्यय देशका उपकार गर्न खर्च गर्नुपर्दछ। सबैप्रकारले अर्थात् पूर्वोक्त तरीकाले आ–आफ्नो वर्णाश्रम व्यवहारलाई अत्यन्त उत्साह र प्रयत्नपूर्वक तन, मन, धनलाई सर्वदा परमार्थमा लगाउनु पर्दछ। आफ्ना आमा, बाबु, सासु, ससुरालाई राम्रो सेवा गर्नुपर्दछ। इष्ट, मित्र, छर–छिमेकी, राजा, विद्वान्, वैद्य र सत्यपुरुषहरूसँग प्रीति राखेर दुष्ट–अधर्मीप्रति उपेक्षा राखेर अर्थात् द्रोह छोडेर तिनलाई सुधार्ने

प्रयत्न गर्नुपर्दछ। सकभर प्रेमपूर्वक आफ्ना सन्तानलाई विद्वान् र सुशिक्षित गर्न गराउन धनादि पदार्थहरू व्यय गरेर तिनलाई पूर्ण विद्वान् सुशिक्षायुक्त गरिदिनुपर्दछ र परमानन्द भोग्न धर्मयुक्त व्यवहार गरेर मोक्ष प्राप्तिको साधन पनि बनाउनु पर्दछ। अनि यस्ता श्लोक हरूलाई मान्नु हुन्न, जस्तै—

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥ १ ॥
अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराञ्च सुतोत्पतिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ २ ॥
नष्ट मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३ ॥

यी कपोलकल्पित पाराशरीका श्लोक हुन्। दुष्टाकर्म गर्ने द्विजलाई श्रेष्ठ र श्रेष्ठ कर्म गर्ने शूद्रलाई नीच मानेमा यो भन्दा ठूलो पक्षपात, अन्याय र अधर्म अरू के होला? दूध दिने वा नदिने गाई गोठालाहरूलाई पालनीय भएजस्तै कुमाले आदिलाई गधी पालनीय हुँदैन र? यो दृष्टान्त पनि विषम छ। किनभने द्विज र शूद्र मानिस जाति हुन् भने गाई र गधी अर्कै पशु जातिका हुन्। कथंकदाचित् पशुजातिसँग दृष्टान्तमा अलिकति कुरा मिल्छ भनौं भनेपनि यसको आशय अयुक्त हुनाले यी श्लोक कहिल्यै विद्वान्हरूलाई मान्य हुन सक्तैनन्॥ १ ॥

अश्वालम्भ अर्थात् घोडालाई मारेर अथवा गवालम्भ अर्थात् गाईलाई मारेर होम गर्नु नै वेदविहित होइन भने त्यसको कलियुगमा निषेध गर्नु वेदविरूद्ध किन भएन? कलियुगमा यस नीच कर्मलाई निषेधमान्दा त्रेता आदिमा विधि मान्नुपर्ने हुन्छ। तर यस्ता दुष्टकर्म श्रेष्ठयुगमा हुनु सर्वथा असम्भव हो। वेदादिशास्त्रमा संन्यासको विधि हुनाले त्यसको निषेधगर्नु निर्मूल हो। मासु निषेधभने सधैं नै निषेध छ। देवरबाट पुत्रोत्पत्ति गर्नु वेदमा लिखिएको छ भने यो श्लोककर्ता किन व्यर्थ बोल्दछ॥ २ ॥

यदि **'नष्टे'** अर्थात् पति कुनै देश–देशान्तरमा गएको छ, घरमा स्त्रीले नियोग गर्दछे र त्यसै समय पनि आइपुग्छ भने त्यो स्त्री कसकी हुन्छे? कसैले विवाहित पतिकी हुन्छे भने हामी मान्दछौं तर यस्तो व्यवस्था पाराशरीमा त लेखिएको छैन। के स्त्रीका पाँचमात्र आपत्काल हुन्? रोगी हुनु, लडाइ हुनु आदि पाँचभन्दा बढी नै आपत्काल हुन्छन्। यसैले यस्ता–यस्ता श्लोकलाई कहिल्यै मान्नुहुन्न॥ ३ ॥

प्रश्न—तपाई पराशर मुनिका वचनलाई पनि मान्नु हुन्न कि कसो हो?

उत्तर—चाहे कसैको वचन हओस्। तर वेदविरूद्ध हुनाले मान्दैनौं। अनि यो त पराशरको वचन पनि होइन। किनभने ब्रह्मोवाच, वशिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, देव्युवाच इत्यादि सर्वमान्यका नामबाट यी ग्रन्थलाई सबै संसार मानोस् र आफ्नो पर्याप्त जीविका पनि हओस् भनेर नै उनको नाम लेखेर ग्रन्थ रचना गर्दछन्। यसकारण अनर्थ गाथाले भरिएको ग्रन्थ बनाउँछन्। कुनै कुनै प्रक्षिप्त श्लोकहरूलाई छोडेर मनुस्मृति नै वेदानुकूल छ, अरू स्मृति वेदानुकूल छैनन्। यस्तै अन्य जालग्रन्थहरूका व्यवस्था बुझ्नु पर्दछ।

प्रश्न—गृहाश्रम सबैभन्दा सानो वा ठूलो कुन स्तरको आश्रम हो?

उत्तर—आ–आफ्ना कर्त्तव्य–कर्ममा सबै आश्रम ठूला छन्। तर—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥ १ ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ २ ॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही॥ ३ ॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियः॥ ४॥

—मनुस्मृति ६। ९०, ३। ७७–७९

जसरी नदी र ठूल्ठूला नदी समुद्रलाई प्राप्त नभएसम्म हिंडिरहन्छन्, त्यस्तै सबै आश्रममा बस्नेहरू गृहस्थालाई प्राप्त भए पछि स्थिर हुन्छन्॥ १ ॥ जसरी वायुका आश्रयबाट सबै जीवको वर्तमान सिद्ध हुन्छ, त्यस्तै गृहस्थकै आश्रयले सबै आश्रम स्थिर रहन्छन्, यस आश्रमविना कुनै आश्रमको कुनै व्यवहार सिद्ध हुँदैन॥ २ ॥

गृहस्थले नै ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ र संन्यासी गरी तीन आश्रमलाई प्रतिदिन दान र अन्न आदि दिएर धारण गर्ने हुनाले गृहस्थ जेठो आश्रम हो। अर्थात् सबै व्यावहारमा धुरन्धर भनिन्छ॥ ३ ॥ यस कारण मोक्ष र संसारका सुख इच्छा गर्नेले प्रयत्नपूर्वक गृहाश्रम धारण गर्नुपर्दछ॥ ४॥

यसकारण संसारमा भएभरका व्यवहारको आधार गृहाश्रम हो। यो गृहाश्रम नभएकोभए सन्तानोत्पत्ति नहुनेले ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ र

संन्यास आश्रम कहाँबाट हुन सक्तथे र? गृहाश्रमको निन्दागर्ने निन्दनीय र प्रशंसागर्ने प्रशंसनीय हुन्। तर स्त्री–पुरुष दुबै परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी र सबै किसिमका व्यवहार जान्ने भएमात्र गृहाश्रममा सुख हुन्छ। यसकारण गृहाश्रमका सुखको मुख्यकारण ब्रह्मचर्य र पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह हो।

यो संक्षेपमा समावर्त्तन, विवाह र गृहाश्रमको विषयमा शिक्षा लिखियो। यसपछि वानप्रस्थ र संन्यास विषयमा लेखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते समार्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम–समुल्लासः

अथ वानप्रस्थ–संन्यासविधिं वक्ष्यामः

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥ —शतपथ कां० १४॥

मानिसले ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त गरेर गृहस्थ भएर वानप्रस्थ भई सन्यासी हुनु उचित हुन्छ, अर्थात् यसै अनुक्रम आश्रमका विधान छन्।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥ १॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥ २॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा॥ ३॥
अग्निहोत्रं समादया गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥ ४॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वम्॥ ५॥

—मनुस्मृति ६।१।५

यसरी स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रमपूर्वक गृहाश्रममा बस्ने द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले गृहस्थाश्रम पूर्ण गरेर निश्चितात्मा र जितेन्द्रिय भएर वनमा बस्नुपर्छ॥ १॥ आफ्ना केश फुलेका र छाला चाउरी परेको देखेपछि तथा छोराका पनि छोरा भए पछि गृहस्थले वनमा गएर बस्नुपर्दछ॥ २॥ गाउँघरका सबै आहार–विहार र लत्ता–कपडा आदि असल खाने लाउने आदि पदार्थहरू छोडेर, पत्नीलाई छोराहरू जिम्मा लगाएर अथवा सँगै लिएर वनमा गई बस्नुपर्दछ॥ ३॥ साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्र साधन लिएर गाउँबाट निक्ली, दृढेन्द्रिय भएर वनमा गई बस्नुपर्दछ॥ ४॥ नानाकिसिमका सावधान, नीवार आदि अन्न, राम्रा राम्रा सागपात, कन्दमूल, फलफूल आदिबाट पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञ गर्नेगर्नुपर्छ र त्यसैबाट अतिथिसेवा, अनि आफ्नो निर्वाह पनि गर्नुपर्छ॥ ५॥

संन्यास आश्रम कहाँबाट हुन सक्तथे र ? गृहाश्रमको निन्दागर्ने निन्दनीय र प्रशंसागर्ने प्रशंसनीय हुन्। तर स्त्री–पुरुष दुबै परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी र सबै किसिमका व्यवहार जान्ने भएमात्र गृहाश्रममा सुख हुन्छ। यसकारण गृहाश्रमका सुखको मुख्यकारण ब्रह्मचर्य र पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह हो।

यो संक्षेपमा समावर्त्तन, विवाह र गृहाश्रमको विषयमा शिक्षा लिखियो। यसपछि वानप्रस्थ र संन्यास विषयमा लेखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते समार्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम–समुल्लासः

अथ वानप्रस्थ–संन्यासविधिं वक्ष्यामः

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ —शतपथ कां० १४ ॥

मानिसले ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त गरेर गृहस्थ भएर वानप्रस्थ भई सन्यासी हुनु उचित हुन्छ, अर्थात् यसै अनुक्रम आश्रमका विधान छन्।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रं समादया गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वम् ॥ ५ ॥

—मनुस्मृति ६। १। ५

यसरी स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रमपूर्वक गृहाश्रममा बस्ने द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले गृहस्थाश्रम पूर्ण गरेर निश्चितात्मा र जितेन्द्रिय भएर वनमा बस्नुपर्छ ॥ १ ॥ आफ्ना केश फुलेका र छाला चाउरी परेको देखेपछि तथा छोराका पनि छोरा भए पछि गृहस्थले वनमा गएर बस्नुपर्दछ ॥ २ ॥ गाउँघरका सबै आहार–विहार र लत्ता–कपडा आदि असल खाने लाउने आदि पदार्थहरू छोडेर, पत्नीलाई छोराहरू जिम्मा लगाएर अथवा सँगै लिएर वनमा गई बस्नुपर्दछ ॥ ३ ॥ साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्र साधन लिएर गाउँबाट निक्ली, दृढेन्द्रिय भएर वनमा गई बस्नुपर्दछ ॥ ४ ॥ नानाकिसिमका सावधान, नीवार आदि अन्न, राम्रा राम्रा सागपात, कन्दमूल, फलफूल आदिबाट पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञ गर्नेगर्नुपर्छ र त्यसैबाट अतिथिसेवा, अनि आफ्नो निर्वाह पनि गर्नुपर्छ ॥ ५ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १ ॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २ ॥

—मनुस्मृति ६ । ८, २६

स्वाध्याय अर्थात् पठन–पाठनमा सधै लागिरहने, जिवात्मा, सबैको मित्र, इन्द्रियहरूलाई दमन गर्ने, विद्या आदिको दान दिने, सबैमाथि दयालु र कसैसँग केही पनि नलिने भएर सदा बस्नुपर्दछ ॥ १ ॥ शरीरको सुखका लागि धेरै प्रयत्न गर्नुहुन्न। ब्रह्मचारी रहनुपर्दछ अर्थात् आफ्नी स्त्री सँगै भएतापनि ऊसँग विषय चेष्टा केही गर्नुहुन्न, भूईँमा सुत्नु पर्छ, आफ्ना आश्रित अथवा आफ्ना पदार्थमा ममता राख्नुहुन्न र रूखमुनि बस्नुपर्दछ।

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्यो शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ १ ॥

—मुण्डकोपनिषत् १ । २ । ११

तप, धर्मानुष्ठान र सत्यलाई श्रद्धा गरी भिक्षाचरण गर्दै वनमा बस्ने विद्वानहरू, निर्मल भएर प्राणद्वारबाट नाशरहित, पूर्णपुरुष, हानिलाभरहित परमात्मा भएको ठाउँ प्राप्त गरेर आनन्दित हुन्छन् ॥ १ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ १ ॥

—यजुर्वेदे ॥ अध्याये २० । मं० २४ ॥

वानप्रस्थीले म अग्निमा होम गरेर, दीक्षित भएर व्रत, सत्याचरण र श्रद्धा प्राप्त गरौं भन्ने इच्छा गर्दै नानाकिसिमका तपश्चर्या, सत्सङ्ग, योगाभ्यास, सुविचार आदिद्वारा ज्ञान र पवित्रता प्राप्त गर्नु उचित हुन्छ। पछि संन्यास ग्रहण गर्ने इच्छा भएमा पत्नीलाई छोराको जिम्मा लगाएर संन्यास ग्रहण गर्नुपर्दछ।

इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः ।

अथ संन्यासविधिः

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥

—मनुस्मृति ६ । ३३

यसरी आयुको तेस्रो भाग अर्थात् पचासौं वर्षदेखि पचहत्तरौं वर्षसम्म वानप्रस्थ भएर आयुका चौथो भागमा आफन्तहरू र सबै विषय–

वस्तुका समेत संग सम्पर्क त्यागेर परिव्राजक अर्थात् संन्यासी हुनुपर्दछ।

प्रश्न—गृहाश्रम र वानप्रस्थाश्रम नगरी संन्यासश्रम गर्नेलाई पाप लाग्छ वा लाग्दैन ?

उत्तर—लाग्छ पनि लाग्दैन पनि।

प्रश्न—यस्तो दोधारे कुरा किन गर्नु ?

उत्तर—यो दोधारे कुरा होइन, किनभने कुनै व्यक्ति बाल्यवस्थामा विरक्त भएर पछि विषयहरूमा फस्दछ भने त्यो महापापी र फस्दैन भने महापुण्यात्मा सत्पुरुष हो।

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् । यी ब्राह्मणग्रन्थका वचन हुन। वैराग्य भएकै दिनमा ब्रह्मचर्य, घर अथवा वनबाट संन्यास ग्रहण गर्नुपर्दछ। अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ र वानप्रस्थ पछि संन्यास ग्रहण गर्नुपर्छ भनियो। यसको विकल्पमा वानप्रस्थ नगरी गृहस्थाश्रमबाटै संन्यास ग्रहण गर्नुपर्छ भनियो। यसको विकल्पमा वानप्रस्थ नगरी गृहस्थाश्रमबाटै संन्यास ग्रहण गर्न र तेस्रो पक्षमा पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय, विषय भोगको कामना रहित, परोपकार गर्ने इच्छा भएका पुरुष छ भने त्यसले ब्रह्मचर्याश्रमबाटै संन्यास लिन पनि हुन्छ। वेदमा पनि '**यतयः ब्राह्मणस्य विजानतः**' इत्यादि पदमा संन्यासको विधान छ। तर—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

—कठोपनिषद्, वल्ली २ । मं० २४

जो दुराचारबाट अलग छैन, जसलाई शान्ति छैन, जसको आत्मा योगी छैन र जसको मन शान्त छैन त्यो संन्यास लिएर पनि प्रज्ञाद्वारा परमात्मालाई प्राप्त गर्नसक्तैन॥

यच्छेद् वाङमनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥

—कठ० वल्ली ३ । मं० १३ ॥

बुद्धिमान् संन्यासीले वाणी र मनलाई अधर्म देखि रोक्नुपर्छ। ती दुबैलाई ज्ञान र आत्मामा अनि ज्ञान र आत्मालाई परमात्मामा लगाउनुपर्छ र त्यस विज्ञानलाई शान्तस्वरूप आत्मामा स्थिर गर्नुपर्दछ।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठाम् ॥

—मुण्डकोपनिषद् १ । २ । १२

सबै लौकिक भोग कर्मबाट सञ्चित भएका हुन् भन्नेकुरा बुझेर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासीले वैराग्य हुनुपर्दछ। किनभने अकृत परमात्मा कृतकर्मले मात्र प्राप्त हुँदैन। यसकारण विज्ञान प्राप्तगर्न अर्पणगर्न केही हातमा लिएर वेद र परमेश्वरका ज्ञाता गुरुसमीप जानुपर्दछ। गएर सबै शङ्काहरू समाधान गर्नुपर्दछ—तर यस्ताको संगति छोड्नुपर्दछ।

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ १॥
अविद्यायां बहुधा वर्त्तमान वयं कृतार्थ इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ २॥

—मुण्डकोष० १।२।८, ९

अविद्याभित्रै डुबिरहेका, आफूलाई धीर र पण्डित मान्ने, नीच गतितर्फ लाग्ने मूढ व्यक्ति, अन्धाको पछिलाग्ने अन्धाहरूको दुर्दशा भएजस्तै, दुःख पाउँछन्॥ १॥ धेरैजसो अविद्यामै रमाइरहने, बालकको जस्तो बुद्धि भएका, आफूलाई कृतार्थ मान्ने, कर्मकाण्डीबाट राग अर्थात् विषयाभिलाषाका कारण मोहित भएर जान्न र बुझाउन नसकिने व्यक्ति स्वर्ग आदिका कामनाले यज्ञ आदि सकाम कर्ममा आतुर भएर जान्न–मरणरूपी दुःखमा परिरहन्छ्॥ २॥ यसकारण—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

—मुण्ड० ३। सं० २। मं० ६

वेदान्त अर्थात् परमेश्वर–प्रतिपादक वेदमन्त्रको अर्थज्ञान र आचरणमा राम्ररी स्थिर भएका र संन्यासयोगले अन्तःकरण शुद्धभएका संन्यासी परमेश्वरमा मुक्तिसुख प्राप्त भै, मुक्तिसुख भोगेर मुक्तिमा सुखको अवधि पूर्ण भैसकेपछि त्यहाँबाट छुटेर संसारमा आउँछन्। मुक्तिविना दुःख नाश हुँदैन। किनकि—

न सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहृतिरस्त्यशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥ —छान्दोग्योप० ८।१२।१

शरीरधारी कहिल्यै सुख–दुःख नपाइ रहन सक्तैन। शरीररहित जीवात्मा मुक्तिमा सर्वव्यापक परमेश्वरसँग रहँदा त्यसलाई सांसारिक सुख–दुःख प्राप्त हुँदैनन्॥ यसकारण—

लोकैषणायाश्च वितैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्य चरन्ति॥ —शतपथ० १४।६।४।१

संन्यासीहरू लोकमा मानप्रतिष्ठाको इच्छा, श्रीसम्पत्तिको इच्छा

र पुत्रादिको मोहभन्दा अलग भएर भिक्षावृत्ति गरेर रातदिन मोक्षका साधनमा तत्पर रहन्छन्।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्॥ १॥ —यजुर्वेदब्राह्मणे।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेत् गृहात्॥ २॥
यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ ३॥

—मनुस्मृति ६। ३८, ३९

प्रजापति अर्थात् परमेश्वर प्राप्तका निमित्त इष्टि अर्थात् यज्ञ गरेर त्यसमा यज्ञोपवीत अर्थात् जनै, शिखा अर्थात् टुपी आदि चिह्नलाई त्यागेर आहवनीय आदि पाँच अग्निलाई प्राण, अपान, व्यान, उदान र समान यी पाँच प्राणमा आरोपण गरेर ब्राह्मण आर्थात् ब्रह्मलाई जान्नेले घरबाट निस्किएर संन्यासी हुनुपर्दछ॥ १,२॥ सबै भूत अर्थात् प्राणिमात्र–लाई अभयदान दिएर घरबाट निस्की संन्यासी हुने ब्रह्मवादि अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याहरू उपदेश गर्ने संन्यासीका लागि प्रकाशमय अर्थात् मुक्तिको आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त हुन्छ॥ ३॥

प्रश्न—संन्यासीको के धर्म हो?

उत्तर—पक्षपातरहित न्यायको आचरण, सत्य ग्रहण, असत्य परित्याग, वेदोक्त ईश्वरका आज्ञा पालन, परोपकार, सत्यभाषण आदि लक्षण रहेको धर्म त सबै आश्रममा रहने अर्थात् मनुष्यमात्रको एउटै हो, तर संन्यासीको विशेष धर्म निम्नलिखित छ—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥ १॥
क्रुद्ध्यन्तं प्रति न क्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलं बदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्॥ २॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह॥ ३॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ ४॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥ ५॥

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥ ६॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ ७॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ८॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ ९॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च कल्बिषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ १०॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः॥ ११॥
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम्॥ १२॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥ १३॥
चतुर्भरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥ १४॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ १५॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥ १६॥

—मनुस्मृति, अ० ६। श्लोक ४६, ४८, ४९, ५२, ६०, ६६, ६७, ७०–७३, ७५, ८०, ९१, ९२, ८१

संन्यासीले बाटोमा हिंड्दा यताउति नहेरेर तल पृथ्वीमा दृष्टि राखेर हिड्नु, सधैं वस्त्रले छानेर पानी पिउनेगर्नु, निरन्तर सत्य बोल्नु र सर्वदा मनले विचार गरेर सत्य ग्रहण र असत्य त्याग गर्नुपर्छ॥ १॥ कतै उपदेश वा संवाद आदिमा कसैले संन्यासीमाथि क्रोध गरेमा अथवा निन्दा गरेमा संन्यासीले त्यसप्रति क्रोध नगरि सदा त्यसको कल्याण हुने उपदेश नै गर्नुपर्छ र मुख, नाक, आँखा र कानका गरी सात द्वारमा फिंजिएको वाणीलाई कुनै कारण पनिमिथ्या बोलेर अपवित्र गर्नुहुँदैन॥ २॥ आफ्नो आत्मा र परमात्मामा स्थिर, अपेक्षारहित, मद्यमांस

सेवन नगर्ने, आत्माकै सहायताले सुखार्थी भएर यस संसारमा धर्म र विद्या बढाउन उपदेश गर्दै सदा विचरण गरिरहनुपर्दछ॥ ३॥ कपाल, दाढी, जुँघा र नङ सधैं कटाउनुपर्छ। सुन्दर पात्र, दण्ड र कुसुम्भ आदिले रँगाइएका वस्त्र धारण गरेर निश्चितात्मा भएर कुनै प्राणीलाई कष्ट न दिई सर्वत्र विचरण गर्नुपर्दछ॥ ४॥ इन्द्रियहरूलाई अधर्माचरणबाट रोकेर, रागद्वेषलाई छोडेर, सबै प्राणीहरू सँग निर्वैर भएर व्यवहार गर्दै मोक्षका लागि सामर्थ्य बढाउनेगर्नुपर्दछ॥ ५॥ संसारमा कसैले उसलाई दूषित वा भूषित जे गरे पनि जुन सुकै आश्रममा व्यवहार गर्ने पुरुष वा संन्यासीले सबै प्राणिहरूमा पक्षपात रहित भएर स्वयं धर्मात्मा हुनु र अरूलाई धर्मात्मा बनाउने प्रयत्न गर्नेगर्नुपर्दछ साथै दण्ड, कमण्डलु, गेरूवस्त्र आदि चिन्ह धारण गर्नु धर्मको कारण होइन भन्ने कुरा आफ्नो मनमा निश्चित जान्नु पर्दछ। सत्य उपदेश र विद्यादानद्वारा मानिस आदि सबै प्राणिहरू प्रति उन्नति गर्नु संन्यासीको मुख्य कर्म हो॥ ६॥ निर्मली वृक्षको फललाई पिंधेर धमिलो पानीमा हालेपनि त्यो पानी शोधक भए तापनि त्यसको नाममात्र लिएर अथवा सुनेर मात्र त्यस्तो पानी शुद्ध हुनसक्तैन॥ ७॥ यसकारण ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवेत्ता संन्यासीले ओं कारपूर्वक सप्तव्याहृतिद्वारा विधिपूर्वक यथाशक्ति प्राणायाम गर्नुपर्छ। तर तीन भन्दा कम प्राणायाम कहिल्यै गर्नुहुन्न, यही संन्यासीको परम तप हो॥ ८॥ किनभने अग्निमा तपाउने वा गलाउने गर्नाले धातुहरूका मल नष्ट भए जस्तै प्राणका निग्रहले मन आदि इन्द्रियका दोष भस्मीभूत हुन्छन्॥ ९॥ यसकारण संन्यासीहरूले नित्यप्रति प्राणायामद्वारा आत्मा, अन्तःकरण र इन्द्रियका दोष, धारणाद्वारा पाप, प्रत्यहारद्वारा संगतिदोष तथा ध्यान द्वारा अनीश्वरका गुण अर्थात् हर्ष, शोक र अविद्या आदि जीवका दोषलाई भस्मीभूत गर्नुपर्दछ॥ १०॥ यसै ध्यानयोगद्वारा अयोगी, अविद्वान्ले जान्न कठिन परमात्माको साना ठूला पदार्थमा व्याप्त र आफ्नो आत्मा तथा अन्तर्यामी परमेश्वरको गतिलाई देख्नुपर्दछ॥ ११॥ कुनै प्राणीसँग वैर नगर्ने, वेदोक्त कर्म र अति उग्र तपश्चरणद्वारा पूर्वोक्त संन्यासी नै यस संसारमा मोक्षपद सिद्ध गर्न र गराउन सक्तछन्, अरू सक्तैन॥ १२॥

संन्यासी सबै भाव अर्थात् पदार्थहरूमा निःस्पृह, आकांक्षारहित र सबै बाहिर भित्रका व्यवहारमा भाव अर्थात् चालचलनद्वारा पवित्र भएर नै यसदेहमा र मृत्यु पछि निरन्तर सुख प्राप्त गर्दछन्॥ १३॥ यसकारण ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ र संन्यासीले प्रयत्नपूर्वक दश

लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म सेवन नित्य गर्नेगर्नुपर्छ॥ १४॥

पहिलो लक्षण—(धृत) सदा धैर्य राख्नु। **दोस्रो—(क्षमा)** निन्दा–स्तुति, मान–अपमान, हानि–लाभ आदि दुःखमा पनि सहनशील हुनु। **तेस्रो—(दम)** मनलाई सदा धर्ममा लगाएर अधर्म नगर्नु अर्थात् अधर्म गर्ने इच्छा पनि नहुनु। **चौथौ—(अस्तेय)** चोरी त्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात वा कुनै व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश द्वारा अर्काका वस्तुलाई लिनु चोरी र त्यसलाई छोड्नु साहुकारी भनिन्छ। **पाँचौ—(शौच)** रागद्वेष पक्षपात छोडेर भित्री अनि पानी, माटो, मार्जन आदिबाट बाहिरी पवित्रता राख्नु। **छैठौं—(इन्द्रियनिग्रह)** इन्द्रियहरूलाई अधर्म आचरणबाट रोकेर धर्ममा नै चलाउनु। **सातौं—(धीः)** मादकद्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ सेवन, दुष्टहरू संग संगत, आलस्य, प्रमाद आदि छोडेर श्रेष्ठ पदार्थसेवन, सत्पुरुषहरू संग संगति, योगाभ्यास, धर्माचरण, ब्रह्मचर्य आदि शुभकर्मद्वारा बुद्धि बढाउनु। **आठौं—(विद्या)** पृथ्वी देखि लिएर परमेश्वरपर्यन्त यथार्थज्ञान र तीबाट यथायोग्य उपकार लिनु विद्या र यस विपरीत अविद्याहो। **नवौं—(सत्य)** जस्तो आत्मामा त्यस्तै मनमा, जस्तो मनमा त्यस्तै वाणीमा, जस्तो वाणीमा त्यस्तै कर्ममा व्यवहार गर्नु, अर्थात् जुन पदार्थ जस्तो छ त्यसलाई त्यस्तै सम्झनु, भन्नु र त्यस्तै गर्नु पनि। तथा **दशौं—(अक्रोध)** क्रोध आदि दोषलाई छोडेर शान्ति आदि गुण ग्रहण गर्नु धर्मको लक्षण हो। यी दश लक्षणयुक्त, पक्षपात रहित न्याय आचरण धर्मका सेवन चारै आश्रमका मानिसहरूले गर्नुपर्दछ र यस वेदोक्त धर्ममा नै आफू चल्नु र अरूलाई सम्झाएर चलाउनु संन्यासीहरूको विशेष धर्म हो॥ १५॥

यस्तै किसिमले विस्तार–विस्तार संगतिका सबै दोष छोडेर, हर्ष–शोक आदि सबै द्वन्द्वबाट मुक्त भएर संन्यासी ब्रह्ममा नै अवस्थित हुन्छ। गृहस्थ आदि सबै आश्रमलाई सबै किसिमका व्यवहारहरू सत्य निश्चय गराएर अधर्म व्यवहारहरूबाट छुटाएर, सबै भ्रम र संशय छेदन गरेर सत्य–धर्मयुक्त व्यवहारहरूमा लगाउनु नै संन्यासीहरूको मुख्य कर्म हो॥ १६॥

प्रश्न—संन्यास ग्रहण गर्नु ब्राह्मणकै धर्म हो अथवा क्षत्रिय आदिको पनि हो ?

उत्तर—ब्राह्मणलाई मात्र अधिकार छ। किनभने सबै वर्णमा जुन पूर्णविद्वान्, धर्मिक, परोपकारप्रिय मानिस छ, त्यसैको ब्राह्मण नाम

हो। पूर्ण विद्या, धर्म, परमेश्वर निष्ठा र वैराग्य विना संन्यास ग्रहण गरेर संसारको विशेष उपकार हुनसक्तैन। यसैकारण ब्राह्मणलाई मात्र संन्यासको अधिकार छ, अरूलाई छैन्न भन्ने लोकश्रुति छ। मनुको यो प्रमाण पनि छ—

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मं निबोधत॥

—मनुस्मृति ६। ९७

मनु महाराज भन्नुहुन्छ—हे ऋषिहरू! यी चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ र संन्यास आश्रम ग्रहण गर्नु ब्राह्मणको धर्म हो। यही वर्तमानमा पुण्यस्वरूप र शरीर छोडे पछि मुक्तिरूप अक्षय आनन्द दिने संन्यास धर्म हो। यसपछि राजाहरूको धर्म सुन। यसबाट संन्यास ग्रहण गर्ने अधिकार मुख्यरूपमा ब्राह्मणको हो र क्षत्रिय आदिको ब्रह्मचर्याश्रम हो भन्ने कुरा सिद्धहुन्छ।

प्रश्न—संन्यास लिनु पर्ने आवश्यकता के छ ?

उत्तर—जसरी शरीरमा टाउकोको आवश्यकता हुन्छ त्यस्तै आश्रमहरूमा संन्यासाश्रमको आवश्यकता छ। किनभने यो नभई विद्या धर्म कहिल्यै बढ्न सक्तैन। अरू आश्रमको विद्याग्रहण, घरकाकाम र तपश्चर्यासँग सम्बन्ध हुनाले फुर्सद अतिनै कम हुन्छ। पक्षपात छोडेर व्यवहार गर्न अरू आश्रमहरूमा धेरै कठिन हुन्छ। जसरी संन्यासी सबैतर्फबाट मुक्त भएर जगत्कै उपकार गर्दछ, अरू आश्रमस्थले त्यस्तो गर्न सक्तैन। किनभने सत्यविद्याहरूद्वारा पदार्थहरूका विज्ञानको उन्नति जति अवसर संन्यासीलाई मिल्दछ त्यति अन्य आश्रमलाई मिल्नसक्तैन। त्यसमा पनि ब्रह्मचर्यबाट संन्यासी हुनेले जगतलाई सत्यशिक्षा गरेर जति उन्नति गर्न सक्तछ त्यति गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम पछि संन्यास आश्रम लिनेले सक्तैन।

प्रश्न—संन्यास ग्रहण गर्नु ईश्वरका अभिप्रायको विरुद्ध हो। किनभने ईश्वरको अभिप्राय मानिसलाई बढाउन छ। गृहाश्रम नगरेपछि त्यसबाट सन्तानै हुनेछैनन्। संन्यासश्रम नै मुख्य भएर सबैले संन्यास नै लिने हो भने त मानिसको मूल नष्ट भैजानेछ।

उत्तर—विवाह गरेर पनि धेरैका सन्तान हुँदैनन् अथवा भएर चाँडै नै मर्दछन् भने त्यो पनि त ईश्वरका अभिप्रायको विरुद्ध भयो। कुनै कविको भनाइमा **'यत्न कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः'** यत्न गरेर पनि कार्य सिद्ध नभए, यसमा के दोष अर्थात् केही पनि छैन, भन्नुहुन्छ

भने हामी 'गृहाश्रमबाट धेरै सन्तान भएर परस्पर विरुद्ध आचरण गरेर लडेर भिडेर मरे देखि कति ठूलो हानि हुन्छ? भन्ने कुरा सोध्छौं। सम्झेर विरोधले झगडा धेरै हुन्छन्। एउटै संन्यासी वेदोक्त धर्मको उपदेशद्वारा परस्पर प्रीति उत्पन्न गराएर लाखौं मानिसलाई बचाइदिने छ। त्यसबाट हजारौं गृहस्थजति मानिसको वृद्धि हुने छ। अर्को कुरा– सबै मानिसले संन्यास ग्रहण गर्नै सक्तैनन्, किनभने सबैको विषयासक्ति कहिल्यै छुट्नसक्तैन। संन्यासीहरूका उपदेशबाट हुने धर्मिक मानिस सबै ती संन्यासीका पुत्र तुल्य हुन् भन्ने बुझ्नु पर्दछ।

प्रश्न—संन्यासीहरू 'हाम्रो केही कर्त्तव्य छैन, अन्न वस्त्र लिएर आनन्दमा बस्नुपर्छ, अविद्यारूप संसारसँग किन बुद्धि लडाउने'? आफैंलाई ब्रह्म हौ, तिमीलाई पाप–पुण्य लाग्दैन, किनभने गर्मी–सर्दी शरीरको, भोक–प्यास प्राणको र सुख–दुःख मनको धर्म हो। जगत् मिथ्या हो र जगत्का सबै व्यवहार पनि कल्पित र झूठा हुन्, यसकारण यसमा फस्नु बुद्धिमानको काम होइन। जो जति पाप–पुण्य हुन्छ, त्यो शरीर इन्द्रियहरूको धर्म हो, आत्माको होइन, इत्यादि उपदेश गर्दछन्– तपाईंले भने केही विलक्षणनै संन्यासको धर्म बताउनुभयो। अब हामी कसको कुरालाई साँचो र कसको झूठो मानौं?

उत्तर—के तिनीहरूले असल कर्म पनि गर्नुपर्दैन? मनुजीले '**वैदिकैश्चैव कर्मभिः**' (मनुस्मृति ६.७५) भनेर वैदिक कर्म, धर्मयुक्त सत्यकर्म संन्यासीहरूले पनि गर्नैपर्छ भन्ने कुरा लेख्नु भएको छ। के ती खान–पान आदिकर्म छोड्न सक्छन्? यी कर्म छुट्न सक्दैनन् भने उत्तमकर्म छोड्नाले के ती पतित र महापापी हुने छैनन्? र गृहस्थबाट अन्न वस्त्र आदि लिएर तिनको प्रत्युपकार नगर्ने संन्यासी के महापापी हुदैनन्? जसरी आँखाले देख्ने र कानले सुन्ने नगरे आँखा र कान हुनु व्यर्थै हुन्छ, त्यस्तै संन्यासीले सत्य उपदेश र वेदादि सत्य शास्त्रका विचार, प्रचार गर्दैनन् भने ती पनि जगतमा व्यर्थ भाररूप हुन्। अविद्यारूप संसारसँग किन बुद्धि लडाउने इत्यादि लेख्ने, भन्ने र उपदेश गर्ने पनि आफैं मिथ्यारूप, पाप बढाउने पापी हुन्। शरीरबाट जे जति कर्म गरिन्छ त्यो सबै आत्माकै हुन्छ र त्यसको फल भोग्ने पनि आत्मानै हुन्छ।

जीवलाई ब्रह्म बताउनेहरू पनि अविद्यारूपी निन्द्रामा निंदाएका हुन्। किनभने जीव अल्प अर्थात् एकदेशी र अल्पज्ञ तथा ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ छ। ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वाभाव युक्त छ र जीव कहिले

बद्ध, कहिले मुक्त हुन्छ। ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ हुनाले उसलाई भ्रम वा अविद्या कहिल्यै हुन सक्तैन, जीवलाई भने कहिले विद्या र कहिले अविद्या हुन्छ। ब्रह्म जन्म–मरण–दुःख कहिल्यै प्राप्त हुँदैन, जीव भने जन्म–मरण–दुःख प्राप्त गर्दछ। यसकारण त्यो उपदेश मिथ्या हो।

प्रश्न—संन्यासी सर्वकर्मविनाशी हुन्छन् र अग्नि तथा धातुलाई स्पर्श गर्दैनन् भन्ने कुरा सत्य हो वा होइन?

उत्तर—होइन, '**सम्यङ्नित्यमास्ते यस्मिन्, यद्वा सम्यङ्न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन सः संन्यासः, स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी**' ब्रह्म र उसका आज्ञामा उपविष्ट अर्थात् स्थित हुनु र दुष्ट कर्मलाई त्याग्नु संन्यास र त्यो उत्तम स्वभाव भएको संन्यासी भनिन्छ। यसमा राम्रा कर्म गर्ने दुष्ट कर्म विनाश गर्ने व्यक्ति संन्यासी भनिन्छ।

प्रश्न—अध्यापन र उपदेश गृहस्थले गर्दछन् भने संन्यासीहरूको के काम?

उत्तर—सत्य उपदेश सबै आश्रमकाले गर्नु र सुन्नु पर्दछ। तर जति फुर्सद र निष्पक्षपातता संन्यासीलाई हुन्छ त्यति गृहस्थहरूलाई हुँदैन। ब्राह्मणको भने गर्नु पर्ने कर्म नै पुरुषले पुरुषलाई र स्त्रीले स्त्रीलाई सत्योपदेश गर्नु र पढाउनु हो। जति घुमफिर गर्ने समय संन्यासीलाई मिल्छ त्यति गृहस्थ ब्राह्मण आदिलाई कहिल्यै मिल्नसक्तैन। ब्राह्मणले वेदविरुद्ध कार्य गरेमा तिनको नियन्त्रण गर्ने संन्यासी हुन्छ। यसकारण संन्यासी हुनु उचित हो।

प्रश्न—'**एक रात्रिं वसेद् ग्रामे**' इत्यादिमा संन्यासीले एक ठाउँमा एक रात्रिभन्दा बढी बस्नुहुन्न भनिन्छ, के यो सत्य हो?

उत्तर—एकै ठाउँमा बस्ता जगत्को उपकार त्यति धेरै हुन सक्तैन भन्ने कुरा केही अंशमा राम्रै हो। यसो हुँदा स्थानान्तरको अभिमान हुन्छ र रागद्वेष पनि बढी हुन्छ। तर एकै ठाउँमा बस्नाले विशेष उपकार हुन्छ भने बसे पनि हुन्छ। जस्तै राजा जनककहाँ चार–चार महीमा सम्म पञ्चशिखा आदि र अरू संन्यासीहरू कैयौं वर्षसम्म बस्नेगर्दथे। 'एकत्र न बस्नु' भन्ने कुरो हो जोआजका पाखण्डी सम्प्रदायीहरूले संन्यासी एकै ठाउँमा धेरै बस्यो भने तिनीहरूको पाखण्ड खण्डित हुनेछ र धेरै बढ्न सक्नेछैन भन्ने हेतुले बनाएको हो।

प्रश्न— यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।
चौराणाभमयं दद्यात् स नरो नरकं व्रजेत्॥

इत्यादि वचनको अभिप्राय संन्यासीहरूलाई सुवर्ण दान दिने दाता

नरक पुग्दछ भन्ने कुरा के सत्य हो त ?

उत्तर—यो कुरा पनि वर्णाश्रमविरोधी, सम्प्रदायी र स्वार्थको समुद्र भएका पौराणिकहरूद्वारा कल्पित हो। संन्यासीले धन पाए भने ती हाम्रो खण्डन बढी गर्न सक्नेछन् र हाम्रो हानि हुनेछ र ती हाम्रो अधीन पनि रहने छैनन्। अनि भिक्षादि व्यवहार हाम्रो अधीन हुँदा भने ती डराइरहनेछन् इत्यादि स्वार्थले यस्तो कल्पना गरिएको हो। मूर्ख र स्वार्थीहरूलाई दान दिनु राम्रो लाग्छ भने विद्वान् र परोपकारी संन्यासहरूलाई दिनमा केही पनि दोष हुन सक्तैन। हेर्नुहोस्

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्॥

—मनुस्मृति ११।६

नाना प्रकारका रत्न, सुवर्ण आदि धन **'विविक्त'** अर्थात् संन्यासी–हरूलाई दिनुपर्दछ। अनि त्यो यतीनां. आदि श्लोक पनि अनर्थक हो, किनकि संन्यासीलाई सुन दिदा दाता यजमान नरक जान्छ भने चाँदी, मोती, हीरा आदि दिदा के स्वर्ग जान्छ ?

प्रश्न—पण्डितजीले यो श्लोक भन्दा पाठ बिर्सनुभएछ। श्लोक यसो हो **'यतिहस्ते धनं दद्यात्'** अर्थात् संन्यासीका हातमा धन दिने व्यक्ति नरक जान्छ।

उत्तर—यो पनि कुनै अविद्वान्ले कपोलकल्पनाद्वारा रचेको हो। किन भने हातमा धन दिदा दाता नरकमा जान्छ भने खुट्टामा पोको पारेर राखि दिंदा स्वर्ग जान्छ।

यसकारण यो कल्पना मात्र योग्य होइन। के चाहिं ठीक हो भने संन्यासीले आफ्नो योगक्षेम हुने भन्दा बढी धन राखेमा चोर आदिबाट पीडित र मोहित पनि हुनेछ। तर विद्वान् व्यक्ति भने अनुचित व्यवहार कहिल्यै गर्नैछैन र मोहमा पनि फस्नेछैन। किनभने त्यसले गृहाश्रममा अथवा ब्रह्मचर्यमा पहिले नै सबै भोगिसकेको वा सबै देखिसकेको हुन्छ र ब्रह्मचर्यबाट सोझै संन्यासी हुने पनि पूर्ण वैराग्ययुक्त हुनाले कहिल्यै कतै फस्दैन।

प्रश्न—श्राद्धमा संन्यासी आयो र त्यसलाई ख्वाइयो भने ख्वाउनेका पितर सबै भाग्दछन् र त्यो नरकमा पर्छ भन्छन् नि त। यो के सत्य हो ?

उत्तर—पहिलो कुरा त मरेका पुर्खा आउँछन् र गरेको श्राद्ध मरेका पितरसम्म पुग्दछ भन्नु नै असम्भव, वेद र युक्तिविरुद्ध हुनाले मिथ्या हो। अनि आउँदै आउँदैनन् भने भागेर को जान्छ ? आफ्ना पाप–पुण्य अनुसार ईश्वरका व्यवस्थाले मृत्यु पछि जीव जन्म लिन्छन्

भने उनीहरू कसरी आउन सक्तछन् ? यसकारण यो पनि पेटार्थी, पुराणी र वैरागीहरूको मिथ्या कल्पना हो ! के चाहिं ठीक हो भने संन्यासी गएका भएका ठाउँमा मृतक श्राद्ध आदि पाखण्ड वेदादि शास्त्र विरुद्ध हुनाले भाग्ने छ।

प्रश्न—ब्रह्मचर्यबाट संन्यास लिनेलाई जीवन निर्वाह गर्न र कामका वेगलाई रोक्न पनि धेरै कठिनाइ पर्दछ। यसकारण गृहाश्रम, वानप्रस्थ भएर वृद्ध भएपछि मात्र संन्यास लिनु राम्रो हुन्छ, होइन र ?

उत्तर—जीवन निर्वाह गर्न नसक्ने र इन्द्रियहरूलाई रोक्न नसक्ने भए ब्रह्मचर्यबाट संन्यास लिनु ठीक होइन। तर रोक्न सक्छ भने किन नलिने ? जुन पुरुषले विषयका दोष र वीर्य संरक्षणका गुण जानेको छ भने त्यो विषयासक्त कहिल्यै हुँदैन। त्यसको वीर्य विचाररूपी अग्निको इन्धन हुन्छ अर्थात् त्यसैमा व्यय हुन्छ। जसरी वैद्य र औषधिको आवश्यकता रोगीलाई हुन्छ, निरोगीलाई हुँदैन, त्यस्तै विद्या–धर्म वृद्धि र संसारको उपकार गर्नु नै प्रयोजन भएका पुरुष वा स्त्रीले विवाह नगर्नु उचति हुन्छ। जस्तै पंचशिखा आदि पुरुष र गार्गी आदि स्त्री भएका थिए। यसकारण अधिकारले नै संन्यासी हुनु उचित हुन्छ, अनधिकारीले संन्यास लिएमा आफूपनि डुब्ने छ र अरूलाई पनि डुबाउने छ। जसरी **'सम्राट्'** चक्रवर्ती राजा हुन्छ त्यस्तै **'परिव्राट्'** संन्यासी हुन्छ। अझ राजा आफ्नो देश वा आफ्ना सम्बन्धीहरूमा सत्कार पाउँछ भने संन्यासी सर्वत्र पूजित हुन्छ—

विद्वत्त्वं च नृ पत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

—चाणक्यशतक–३

यो चाणक्य नीतिशास्त्रको श्लोक हो। विद्वान् र राजाको कहिल्यै समानता हुनसक्तैन, किनकि राजा आफ्नो राज्यमा सम्मान र सत्कार र पाउँछन भने विद्वान् सर्वत्र मान र प्रतिष्ठा प्राप्त गर्दछ। यसैले विद्या पढ्न, सुशिक्षा लिन र बलवान् हुन आदिका लागि ब्रह्मचर्य्य; सबै किसिमका उत्तम व्यवहार सिद्ध गर्नको निम्ति गृहस्थ, विचार, ध्यान र विज्ञान बढाउन तथा तपश्चर्या गर्न वानप्रस्थ र वेदादि सत्यशास्त्र प्रचार, धर्मव्यवहारलाई ग्रहण र दुष्टव्यवहारलाई त्याग, सत्योपदेश र सबैलाई सन्देहरहित गर्न आदिका निम्ति संन्यासाश्रम हुन्छ। तर संन्यासका मुख्य धर्म सत्योपदेश आदि नगर्ने भने पतित र नरकगामी हुन्छन्। यसकारण सदा सत्योपदेश, शङ्का समाधान, वेदादि सत्यशास्त्र अध्यापन

र वेदोक्त धर्म वृद्धि प्रयत्नपूर्वक गरेर सबै संसारको उन्नति गर्नु संन्यासीलाई उचित हुन्छ ॥

प्रश्न—संन्यासी बाहेकका अरू साधु, वैरागी, गुसाई, खाखी आदि पनि संन्यासाश्रममै गनिन् छन् वा गनिदैनन् ?

उत्तर—गनि दैनन्। किनभने तिनमा संन्यासको एउटा पनि लक्षण देखिंदैन। ती वेदविरुद्ध मार्गमा चलेर वेदभन्दा बढी आफ्ना सम्प्रदायका गुरुका कुरा मान्दछन्, आफ्नै मत फसाउँछन्। सुधार गर्नु त टाढै जाओस्, त्यसको सट्टामा संसारलाई झुक्याएर अधोगति गराउँछन् र आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्दछन्। यसकारण यिनलाई संन्यासाश्रममा गन्न सकिंदैन, तर यी पक्कै स्वार्थाश्रमी हुन् भन्ने कुरामा केही शंकै छैन।

स्वयं धर्ममा चलेर सबै संसारलाई धर्ममा चलाउने, आफू र सबै संसारलाई यसलोक अर्थात् वर्तमान जन्ममा तथा परलोक अर्थात् अर्को जन्ममा स्वर्ग अर्थात् सुख भोग गर्ने–गराउने धर्मात्माजन नै संन्यासी र महात्मा हुन्।

यो संक्षेपमा संन्यासाश्रम शिक्षा लेखियो। अब यसपछि राज–प्रजाधर्म विषय लिखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये
पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ–समुल्लासः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

—मनुस्मृति ७। १–२

मनु महाराज ऋषिहरूसँग भन्नुहुन्छ–चारै वर्ण र चारै आश्रमका व्यवहारकथनपछि राजधर्म व्याख्या अर्थात् राजा कस्तो हुनुपर्दछ भन्ने कुरा व्याख्या गरिन्छ। राजा जस्तो हुन सम्भव छ तथा जसरी राजालाई परमसिद्ध प्राप्त हुन्छ त्यो सबै कुरा भनिन्छ ॥ १ ॥ जसरी परमविद्वान् ब्राह्मण हुन्छ त्यस्तै विद्वान् सुशिक्षित भएर क्षत्रियले राज्यको रक्षा न्यायपूर्वक यथावत् गर्नु उचितहुन्छ ॥ २ ॥ त्यसको प्रकार यो हो—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥

—ऋ० मं० ३। सू० ३८। मं० ६ ॥

ईश्वर उपदेश गर्दछ—(**राजाना**) राजा र प्रजाका पुरुषले मिलेर (**विदथे**) सुखप्राप्ति र विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजाको सम्बन्धरूप व्यवहारमा (**त्रीणि सदांसि**) तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा र राजार्य्यसभा गठन गरेर (**पुरूणि**) धेरै प्रकारका (**विश्वानि**) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्य आदि प्राणिहरूलाई (**परिभूषथः**) सबै तर्फबाट विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा र धनादिबाट अलंकृत गर्नुपर्दछ।

तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥

—अथर्व० कां० १५। अनु० २। व० ९। मं०२ ॥

सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥

—अथर्व० कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६ ॥

(**तम्**) त्यस राजधर्मलाई (**सभा च**) तिनै सभा (**समितिश्च**) हे सभाका योग्य मुख्य सभासद् ! तिमी (**मे**) मेरो (**सभाम्**) सभाको धर्मयुक्त व्यवस्थालाई (**पाहि**) पालन गर र (**ये च**) जुन (**सभ्याः**) सभाका योग्य सभासद् छन ती पनि सभाका व्यवस्था पालन

र वेदोक्त धर्म वृद्धि प्रयत्नपूर्वक गरेर सबै संसारको उन्नति गर्नु संन्यासीलाई उचित हुन्छ॥

प्रश्न—संन्यासी बाहेकका अरू साधु, वैरागी, गुसाई, खाखी आदि पनि संन्यासाश्रममै गनिन् छन् वा गनिदैनन्?

उत्तर—गनि दैनन्। किनभने तिनमा संन्यासको एउटा पनि लक्षण देखिंदैन। ती वेदविरुद्ध मार्गमा चलेर वेदभन्दा बढी आफ्ना सम्प्रदायका गुरुका कुरा मान्दछन्, आफ्नै मत फसाउँछन्। सुधार गर्नु त टाढै जाओस्, त्यसको सट्टामा संसारलाई झुक्याएर अधोगति गराउँछन् र आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्दछन्। यसकारण यिनलाई संन्यासाश्रममा गन्न सकिंदैन, तर यी पक्कै स्वार्थाश्रमी हुन् भन्ने कुरामा केही शंकै छैन।

स्वयं धर्ममा चलेर सबै संसारलाई धर्ममा चलाउने, आफू र सबै संसारलाई यसलोक अर्थात् वर्तमान जन्ममा तथा परलोक अर्थात् अर्को जन्ममा स्वर्ग अर्थात् सुख भोग गर्ने–गराउने धर्मात्माजन नै संन्यासी र महात्मा हुन्।

यो संक्षेपमा संन्यासाश्रम शिक्षा लेखियो। अब यसपछि राज–प्रजाधर्म विषय लिखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥५॥

अथ षष्ठ–समुल्लासः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा॥१॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्॥२॥

—मनुस्मृति ७। १–२

मनु महाराज ऋषिहरूसँग भन्नुहुन्छ–चारै वर्ण र चारै आश्रमका व्यवहारकथन पछि राजधर्म व्याख्या अर्थात् राजा कस्तो हुनुपर्दछ भन्ने कुरा व्याख्या गरिन्छ। राजा जस्तो हुन सम्भव छ तथा जसरी राजालाई परमसिद्ध प्राप्त हुन्छ त्यो सबै कुरा भनिन्छ॥१॥ जसरी परमविद्वान् ब्राह्मण हुन्छ त्यस्तै विद्वान् सुशिक्षित भएर क्षत्रियले राज्यको रक्षा न्यायपूर्वक यथावत् गर्नु उचितहुन्छ॥२॥ त्यसको प्रकार यो हो—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि॥

—ऋ० मं० ३। सू० ३८। मं० ६॥

ईश्वर उपदेश गर्दछ—(**राजाना**) राजा र प्रजाका पुरुषले मिलेर (**विदथे**) सुखप्राप्ति र विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजाको सम्बन्धरूप व्यवहारमा (**त्रीणि सदांसि**) तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा र राजार्य्यसभा गठन गरेर (**पुरूणि**) धेरै प्रकारका (**विश्वानि**) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्य आदि प्राणिहरूलाई (**परिभूषथः**) सबै तर्फबाट विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा र धनादिबाट अलंकृत गर्नुपर्दछ।

तं सभा च समितिश्च सेना च॥१॥

—अथर्व० कां० १५। अनु० २। व० ९। मं०२॥

सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः॥२॥

—अथर्व० कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

(**तम्**) त्यस राजधर्मलाई (**सभा च**) तिनै सभा (**समितिश्च**) हे सभाका योग्य मुख्य सभासद्! तिमी (**मे**) मेरो (**सभाम्**) सभाको धर्मयुक्त व्यवस्थालाई (**पाहि**) पालन गर र (**ये च**) जुन (**सभ्याः**) सभाका योग्य सभासद् छन ती पनि सभाका व्यवस्था पालन

गर्नेगरून्॥ २॥

यसको अभिप्राय एउटैलाई स्वतन्त्र राज्यको अधिकार दिनुहुन्न र राजा सभापति, त्यसको अधीन सभा, सभाको अधीन राजा, राजा र सभा प्रजाको अधीन अनि प्रजा राजसभाको अधीन हुनुपर्दछ। यस्तो नगरेमा—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥ १॥

—शतपथ का० १३। अनु० २। ब्रा० ३

राज्यमा प्रजाभन्दा स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग भएमा अर्थात् राजा प्रजाको अधीन नभएमा (**राष्ट्रमेव विश्याहन्ति**) राज्यमा प्रवेश गरेर प्रजाको नाश गर्दछन्। एक्लै राजा स्वाधीन वा उन्मत्त भएर (**राष्ट्री विशं घातुकः**) प्रजाको नाशक हुन्छ अर्थात् (**विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति**) त्यो राजा प्रजाको रक्षक न भएर भक्षक हुन्छ अर्थात् अत्यन्त पीडित गर्दछ। यसकारण राज्यमा कुनै एकलाई स्वाधीन गर्नुहुन्न। (**न पुष्टं पशुं मन्यते**) जसरी सिंह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशुलाई मारेर खान्छन् त्यस्तै (**राष्ट्री विशमत्ति**) निरंकुश राजाले प्रजा लाई नाश गर्दछ अर्थात् कसैलाई आफूभन्दा अधिक हुनदिँदैन। श्री अर्थात् धनसम्पत्ति भएकालाई लूटपीट गरेर अन्याय पूर्वक दण्ड अर्थात् शक्ति बलमा आफ्नो स्वार्थ पूर्ण गर्नेछ॥ १॥ यसैले—

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्योऽभवेह॥

—अथर्व० कां० ६। अनु० १०। व० ९८। मं० १॥

हे मानिसहरू! (**इह**) मानिसका समुदायमा (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्यकर्ता। शत्रुलाई (**जयाति**) जित्न सक्ने (**न पराजयातै**) शत्रुबाट पराजित नहुने (**राजसु**) राजाहरूमा (**अधिराजः**) सर्वोपरि विराजमान (**राजयातै**) प्रकाशमान (**चर्कत्यः**) सभापति हुन अत्यन्त योग्य (**ईड्यः**) प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभाव भएको (**वन्द्यः**) सत्कार गर्न योग्य (**चोपसद्यः**) समीप जान र शरण लिन योग्य (**नमस्यः**) सबैको माननीय (**भव**) भएको व्यक्तिलाई चुनेर राष्ट्रको सभापति राजा बनाओ॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय०॥ —यजुः० अ० ९। मं० ४०॥

(**देवाः**) हे विद्वान् प्रजाजन! तिमीहरू (**इमम्**) यस्तो व्यक्तिलाई (**महते क्षत्राय**) ठूला चक्रवर्ती राज्य (**महते ज्यैष्ठ्याय**) सबै भन्दा

ठूलो हुन (**महते जानराज्याय**) ठूला ठूला विद्वान् भएका राज्य पालन गर्न र (**इन्द्रस्येन्द्रियाय**) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य र धन पालनका लागि (**असपत्नꣳ सुवध्वम्**) परामर्श गरेर सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्णविद्या विनययुक्त सबैको मित्र सभापति राजालाई सर्वाधीश मानेर सम्पूर्ण भूगोललाई शत्रुरहित बनाओ। र—

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥

—ऋ० मं० १। सू० ३९। मं० २॥

ईश्वर उपदेश गर्दछ—हे राजपुरुषहरू! (**वः**) तिम्रा (**आयुधा**) आग्नेय आदि अस्त्र र शतध्नी अर्थात् तोप, भुशुण्डी अर्थात् बन्दूक, धनुषवाण तरवार आदि शास्त्र शत्रुहरूलाई (**पराणुदे**) पराजय गर्न (**उत प्रतिष्कभे**) तिनलाई रोक्न (**वीलू**) प्रशंसित र (**स्थिरा**) दृढ (**सन्तु**) होऊन्। (**युष्माकम्**) र तिम्रो (**तविषी**) सेना (**पनीयसी**) प्रशंसनीय र शक्तिशाली (**अस्तु**) होओस्, जसबाट तिमी सदा विजयी होऊ तर (**मा मर्त्यस्य मायिनः**) निन्दित अन्यायरूप काम गर्नेलाई यी वस्तु प्राप्त गराउनुहुन्न अर्थात् मानिस धार्मिक रहेसम्म राज्य उत्तरोत्तर बढ्दै जान्छ भने दुष्टाचारी भएपछि राज्य पनि नष्ट–भ्रष्ट हुनपुग्दछ।

महाविद्वान्हरूलाई विद्यासभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वान्हरूलाई धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धर्मिक पुरुषहरूलाई राजसभाका सभासद् र ती सबैमा सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव भएका महापुरुषलाई राजसभाका पतिरूप अर्थात् राजा मानेर सर्वप्रकारले उन्नति गर्नुपर्दछ। तिनै सभाको सम्मतिबाट राजनीतिका उत्तम नियम र नियमका अधीन सबैका व्यवहार हुनुपर्दछ। सबैका हितकारक काममा सम्मति लिनुपर्दछ। सबैको हित गर्न परतन्त्र र धर्मयुक्त काममा अर्थात् आफ्ना निजी काममा सबैले स्वतन्त्र हुनुपर्दछ। अनि त्यस सभापतिमा हुनुपर्ने गुण निम्नलिखित छन्—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ १॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥ २॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्चसोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ३॥

—मनुस्मृति ७। ४, ६, ७

त्यो राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् जस्तै शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायुजस्तै

सबैका प्राणसमान प्रिय र हृदयका कुरा जान्ने, यम=पक्षपातरहित न्यायाधीश जस्तै व्यवहार गर्ने, सूर्यजस्तै न्याय, धर्म, विद्याका प्रकाशक, अन्धकार अर्थात् अविद्या, अन्यायका निरोधक, अग्नि जस्तै दुष्टहरूलाई भस्म गर्ने, वरुण अर्थात् दुष्टहरूलाई अनेक प्रकारले बाँध्ने वा आफ्नो वशमा पार्ने, चन्द्र जस्तै श्रेष्ठ पुरुषहरूलाई आनन्द दिने, धनाध्यक्ष कुबेर जस्तै कोषलाई परिपूर्ण गर्ने सामर्थ्य भएको सभापति हुनुपर्दछ॥ १ ॥

सूर्यजस्तै प्रतापी सबैको बाहिर भित्र मनलाई आफ्नो तेजले तपाउने, पृथ्वीमा नराम्रो दृष्टिले हेर्न कसैले पनि नसक्ने॥ २ ॥ आफ्नो प्रभावले अग्नि, वायु, सूर्य, सोम आदि जस्तै हुने, धर्म प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टलाई बन्धक बनाउने, ठूलो ऐश्वर्ययुक्त व्यक्तिलाई नै सभाध्यक्ष वा सभेश हुन योग्य मान्नुपर्दछ॥ ३ ॥ सच्चा राजा कस्तो हुनुपर्दछ भने—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणं च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ १ ॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ २ ॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ ३ ॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोशश्च भवेद् दण्डस्य विभ्रमात्॥ ४ ॥
यत्रश्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥ ५ ॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्॥ ६ ॥
तं राज प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥ ७ ॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्॥ ८ ॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च॥ ९ ॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता॥ १० ॥

—मनुस्मृति ७। १७, १९, २४–२८, ३०, ३१

दण्ड नै पुरुष, राजा, न्याय प्रचार गर्ने, सबै शासन गर्ने तथा चारै

वर्ण र चारै आश्रमका धर्म प्रति अर्थात् उत्तरदायी हो॥ १ ॥

दण्ड नै प्रजाको शासनकर्ता, सबै प्रजाको रक्षक, सुतेका मानिसहरूमा ब्यूँझिरहने हुनाले बुद्धिमान् व्यक्ति दण्डलाई नै धर्म भन्दछन्॥ २ ॥

राम्ररी विचारपूर्वक धारण गर्नाले दण्ड सबै प्रजालाई आनन्दित गर्ने हुन्छ र विचार नगरी दण्डको प्रयोग परेमा सबै तर्फबाट राजाको नाश गर्दछ॥ ३ ॥

दण्ड विना सबैवर्ण दूषित र सबै मर्यादा छिन्न–भिन्न हुन पुग्दछन्। दण्डको यथावत प्रयोग नहुनाले सबैको प्रकोप बढ्दछ॥ ४ ॥

दण्डकर्ता व्यक्ति पक्षपातरहित विद्वान् भएमा, जहाँ कालोरङ्गको राता–राता आँखा भएको भयङ्कर पुरुष जस्तै पाप नाश गर्ने दण्ड विचरण गर्दछ त्यहाँ प्रजा मोहलाई प्राप्त न भई आनन्दित हुन्छ॥ ५ ॥

दण्ड सञ्चालनगर्ने सत्यवादी, विचारगरेर कार्यगर्ने, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ र काम सिद्धि गर्ने विद्वान् व्यक्तिलाई नै राजा भनिन्छ॥ ६ ॥

दण्डको संचालन राम्ररी गर्ने राजा सत्यवादी, विचारगरेर कार्यगर्ने, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ र कामको सिद्धिलाई बढाउँछ र विषयमा लम्पट, टेढो, ईर्ष्या गर्ने, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायधीश राजा भए, त्यो दण्डबाटै मारिन्छ॥ ७ ॥

दण्ड साह्रै तेजोमय हुन्छ। त्यसलाई अविद्वान् अधर्मात्मा धारण गर्नसक्तैनन् अनि त्यो दण्ड धर्मरहित राजाको कुटुम्बसहित नाश गर्दछ॥ ८ ॥

आप्तपुरुषका सहायता र विद्या सुशिक्षारहित, विषयमा आसक्त मूढ व्यक्ति न्यायपूर्वक दण्ड संचालन गर्न कहिल्यै समर्थ हुन सक्तैन॥ ९ ॥

पवित्र–आत्मा भएको, सत्य आचरण र सत्यपुरुषहरूसंग सङ्गति गर्ने, नीति शास्त्र अनुकूल यथावत् चल्ने, श्रेष्ठ मानिसहरूका सहायतायुक्त बुद्धिमान् व्यक्ति नै न्यायरूपी दण्ड–संचालनगर्न समर्थ हुन्छ॥ १० ॥ यसैले—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ १ ॥
दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥ २ ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद्दशावरा॥ ३ ॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥ ४॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
न विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥ ५॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते॥ ६॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति॥ ७॥

—मनुस्मृति १२।१००, ११०–११५

सम्पूर्ण सेना र सेनापति सम्बन्धी अधिकार, राज्यशासनको अधिकार, दण्ड दिने व्यवस्था सम्बन्धी सबै कार्यको अधिकार र सबैभन्दा माथि विद्यमान सर्वाधीश राज्याधिकार, यी चारै अधिकारमा सम्पूर्ण वेदशास्त्र प्रवीण, पूर्ण विद्या भएका, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सुशील व्यक्तिहरूलाई स्थापित गर्नुपर्दछ। अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश र प्रधानराजा यी चारैले सबै विद्यामा पूर्ण विद्वान् हुनुपर्दछ॥ १ ॥ कमसेकम दश विद्वान् अथवा धेरै नै कम भए तीनजना विद्वान्हरूको सभा हुनुपर्दछ र त्यस सभाले गरेको व्यवस्था अनुसारको धर्म अर्थात् व्यवस्थाको उल्लंघन कसैले पनि गर्नुहुँदैन॥ २ ॥ यस सभामा चारै वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि जान्ने विद्वान् सभासद् हुनुपर्दछ। तर ती ब्रह्मचारी, गृहस्थ र वानप्रस्थबाट हुनुपर्दछ, अनि त्यस सभामा दश विद्वानभन्दा कम हुनुहुँदैन॥ ३ ॥ जुन सभामा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदलाई जान्ने तीन सभासद् भएर व्यवस्था गर्दछन्, त्यस सभाले गरेको व्यवस्था उल्लङ्घन कसैले गर्नुहुँदैन॥ ४॥ सबै वेदलाई जान्ने द्विजहरूमा उत्तम एउटै संन्यासीले गरेका व्यवस्थालाई पनि श्रेष्ठ धर्म मान्नुपर्दछ र हजारौं, लाखौं, करोडौं अज्ञानीहरू मिलेर गरेको व्यवस्थालाई कहिल्यै मान्नुहुँदैन॥ ५ ॥ ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण आदि व्रत नभएका, वेदविद्या वा विचाररहित, जन्ममात्रले शूद्रसमान रहेका हजारौं मानिसमिलेर पनि मानिसको सभा मानिदैन॥ ६ ॥ अविद्यायुक्त, मूर्ख, वेद नजान्ने मानिसले भनेको धर्मलाई कहिल्यै मान्नुहुँदैन, किनभने मूर्खहरूले भने अनुसारको धर्ममा चल्ने व्यक्तिलाई सयकडौं किसिमका पाप आइलाग्छन्॥ ७॥ यसकारण तिनै अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा र राज सभामा मूर्खलाई कहिल्यै राख्नु हुँदैन। सदा विद्वान् र धार्मिक व्यक्तिहरूलाई राख्नुपर्दछ। अनि सबैजना—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः॥ १ ॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः॥ २ ॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३ ॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वत्मनैव तु॥ ४॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ ५ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ ६ ॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥ ७ ॥
पानपक्षाः स्त्रियश्चैव मृगाया च यथाक्रमम्।
एतत् कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ८ ॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात् कष्टमेतत् त्रिकं सदा॥ ९ ॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्॥ १० ॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥ ११ ॥

—मनु० ७। ४३–५३॥

राजा र राजसाभाका सभासद् हुन चारै वेदका कर्म, उपासना र ज्ञान यी तीन विद्या जान्नेसँग तिनै विद्या र सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्माको गुण–कर्म–स्वभावलाई यथावत् जान्नु ब्रह्मविद्या र लोकबाट वार्ताको आरम्भ अर्थात् भन्नु, सोध्नु आदि सिकेरमात्र सभासद् वा सभापति हुन सक्नु पर्दछ॥ १ ॥

सबै सभासद् वा सभापतिले इन्द्रियहरूलाई जितेर अर्थात् आफ्नो वशमा राखेर=जितेन्द्रिय भई सदा धर्मानुकूल व्यवहार गर्नु र अधर्म देखि हट्ने हटाउने हुनुपर्दछ। यसकारण रात–दिन निश्चित समयमा योगाभ्यास पनि गर्ने गर्नुपर्दछ। किनभने अजितेन्द्रिय आफ्ना इन्द्रियहरू अर्थात् मन, प्राण र शरीररूपी प्रजालाई न जिती बाहिरका प्रजालाई

आफ्नो वशमा स्थापित गर्न समर्थ कहिल्यै हुनसक्तैन॥ २॥

दृढ उत्साही भएर कामबाट हुने दश र क्रोधबाट हने आठ दुर्व्यसनलाई प्रयत्न पूर्वक छोड्नु र छोड्न लगाउँनुपर्दछ, किनभने यिनमा फसेको व्यक्तिलाई यी दूर्व्यसनबाट मुक्त हुन गाह्रो पर्दछ।

कामबाट उत्पन्न हुने दश दुष्ट व्यसनमा फसेको राजा अर्थात् राज्य, धन आदि र धर्म रहित हुन्छ, अनि कामबाट उत्पन्न आठ दूर्व्यसनमा फस्नेको भने शरीरै जान्छ॥ ४॥

शिकार खेल्नु, अक्ष अर्थात् जुवा, पासा खेल्नु, दिनमा सुत्नु, कामकथा वा अरूको निन्दा गर्ने गर्नु, स्त्रीको अतिसंगत, मादक द्रव्य अर्थात् जांड, रक्सी, अफीम, भांग, गाँजा, चरेस, आदि सेवन, गाउनु, बजाउनु, नाच्नु वा नचाउनु, सुन्नु र हेर्नु, यताउति व्यर्थ डुल्नु, यी दश कामबाट उत्पन्न व्यसन हुन्॥ ५॥

'पैशुन्य' अर्थात् कुरालगाउनु, **'साहस'** अर्थात् विचार नगरी बलात्कार द्वारा कसैकी स्त्रीसँग गलतकाम गर्नु, **'द्रोह'** राख्नु, **'ईर्ष्या'** अर्थात् अर्काको प्रशंसा वा उन्नति देखेर जल्नु, **'असूया'** अर्थात् दोषमा गुण र गुणमा दोष देख्नु, **'अर्थदूषण'** अर्थात् अर्धम युक्त गलतकाममा धनादि व्यय गर्नु, **'वाग्दण्ड'** अर्थात् कठोर बचन बोल्नु र **'पारुष्य'** अर्थात् विना अपराध कडा वचन वा विशेष दण्ड दिनु, यी आठ दुर्गुण क्रोधबाट उत्पन्न हुन्छन्॥ ६॥

सबै विद्वान्हरूमा कामज र क्रोधज दुर्गुणहरू मूल मानिएको र यी सबै दुर्गुण मानिसलाई प्राप्त गराउने **'लोभ'** लाई प्रयत्नपूर्वक त्याग्नु पर्दछ॥ ७॥

कामबाट उत्पन्न हुने दुर्गुणहरूमा पहिलो मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्य सेवन, दोस्रो जुवा आदि खेल्नु, तेस्रो स्त्रीहरू संग धेरै संगत र चौथो शिकार खेल्नु, यी चार महादुष्ट व्यसन हुन्॥ ८॥

क्रोधबाट उत्पन्न हुने, या बिना अपराध दण्ड दुनु, कठोर वचन बोल्नु र अन्यायमा धनादि व्यय गर्नु यी तीन अत्यन्त दुःखदायक दोष हुन्॥ ९॥

कामज र क्रोधज दोषमा बताइएका यी सात दुर्गुणहरूमा पूर्वको अर्थात् व्यर्थ व्यय भन्दा स्त्री संग अत्यन्त संगत, स्त्रीसंगत भन्दा जुवा र जुवा भन्दा मादक द्रव्य सेवन धेरै ठूलो व्यसन हो॥ १०॥

दुर्व्यसनमा फस्नु भन्दा मर्नु राम्रो हो किनभने दुष्टाचारी व्यक्ति बढी बाँचेमा झन् झन् पाप गर्दै गरेर नीच-नीच गति अर्थात् झन् झन् बढी दुःख प्राप्त हुँदैजान्छ। अनि कुनै व्यसनमा न फसेको व्यक्ति मरेरै

गयो भने पनि सुख प्राप्त गर्दै जान्छ। यसकारण खासगरी राजा र सबै मानिसले पनि कहिल्यै मद्यपान, शिकार खेल्नु आदि दुष्ट कर्ममा फस्नु हुँदैन। साथै दुर्व्यसन देखि टाढै रहेर धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव सदा व्यवहार गरेर राम्रा-राम्रा काम गर्दै जानुपर्दछ॥ ११॥ राजसभासद् र मन्त्री यस्ता हुनुपर्दछ—

मौलान् शास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥ १॥
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्॥ २
तैः सार्द्धं चिन्तयान्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च॥ ३॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक।
समस्तानाञ्च कार्य्येषु विदध्याद्धितमात्मनः॥ ४॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तॄ नमात्यान्सुपरीक्षितान्॥ ५॥
निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्॥ ६॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने॥ ७॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥ ८॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञःप्रशस्यते॥ ९॥

—मनु० ७। ५४-५७, ६०-६४

स्वराज्य अर्थात् स्वदेशमा जन्मिएका, वेदादिशास्त्र जान्ने, शूरवीर, लक्ष्य वा विचार निष्फल नहुने, कुलीन, सुपरीक्षित सात वा आठ उत्तम, धार्मिक, चतुर सचिव अर्थात् मन्त्री नियुक्त गर्नुपर्दछ॥ १॥

किनकि कुनै सहायक विना एक्लैले गर्दा सजिलो काम पनि कठिन हुन पुग्दछ भने ठूलो राज्यकर्म एक्लैबाट कसरी संचालन हुन सक्तछ? यसकारण एउटैलाई राजा बनाउनु र एउटैको बुद्धिमा राज्यको कार्य निर्भर राख्नु साह्रै नराम्रो काम हो॥ २॥

यस कारण सभापतिले, कसैसँग **(सन्धि)** मित्रता, कसैसँग **(विग्रह)** विरोध, यस्तै **(स्थान)** समय र परिस्थिति हेरेर चुप रहनु

वा आफ्नो राज्यको रक्षा गरेर बसिराख्नू, **(समुदयम्)** आफ्नो उदय वा वृद्धि भएपछि दुष्ट शत्रुमाथि आक्रमण गर्नु, **(गुप्तिम्)** मूलराजकीय सेना र कोश आदि रक्षा अनि **(लब्धप्रशमनानि)** प्राप्त भएका देश वा राज्यमा शान्ति स्थापना गरी उपद्रवरहित गर्नु, यी ६ गुणहरूका बारेमा राज्यकर्ममा कुशल विद्वान् मन्त्रीहरूसँग सामान्य विचार विमर्श गर्नेगर्नुपर्दछ ॥ ३ ॥

ती सभासद्हरू आ–आफ्ना विचार र अभिप्राय बेग्ला–बेग्लै सुनेर बहुपक्ष अनुसार आफ्नो र अरू सबैको हितकारक काम गर्ने–गर्नुपर्दछ ॥ ४ ॥

अरू पनि पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थहरू संग्रहगर्न अतिचतुर र सुपरीक्षित मन्त्रीहरू बनाउनुपर्दछ ॥ ५ ॥

जति मानिसबाट राजकार्य सम्पन्न हुनसक्तछ, त्यति नै आलस्य रहित, बलवान् र धेरै चतुर व्यक्तिहरूलाई अधिकृत अर्थात् नोकर बनाउनुपर्दछ ॥ ६ ॥

यिनका अधीनमा शूरवीर, बलवान् कुलमा उत्पन्न, पवित्र सेवकहरूलाई ठूला–ठूला काममा र भीरू अर्थात् अलि डराउने खालका व्यक्तिलाई भित्री कार्यमा नियुक्त गर्नुपर्दछ ॥ ७ ॥

प्रशंसित कुलमा उत्पन्न, चतुर, पवित्र, अर्काको हाउ भाउ र चेष्टाबाट हृदय भित्रका र भविष्यमा हुनसक्ने कुरालाई बुझ्नसक्ने, सबै शास्त्रका विशारद, चतुर व्यक्तिलाई राजदूत बनाउनुपर्दछ ॥ ८ ॥

राजकार्यमा अत्यन्त उत्साह, प्रीतिभएका, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, धेरै समय अघिका कुरालाई पनि न बिर्सने, देश–काल अनुसार व्यवहार गर्ने, सुन्दर रूप भएका, निर्भय र वक्तृत्व गुण भएका व्यक्तिनै राजाको दूत हुन योग्य हुन्छन् ॥ ९ ॥ क–कसलाई के–के अधिकार दिनु उचित हुन्छ—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ॥ १ ॥
दूत एव हि संधत्ते भिनत्येव च संहतान्।
दूतस्तत् कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा। २ ॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद् यथात्मानं न पीडयेत्॥ ३ ॥
धनदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्ग वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ ४ ॥

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते॥ ५ ॥
तत् स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥ ६ ॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥ ७ ॥
तदध्यास्योद्वहेद् भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्॥ ८ ॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च॥ ९ ॥

—मनु० ७। ६५, ६६, ६८, ७०, ७४–७८

मुख्यमन्त्रीलाई दण्ड दिने अधिकार दिनुपर्दछ तर दण्डमा विनय क्रिया अर्थात् अन्याय नहोस् भन्ने ध्यान राख्नुपर्दछ। राजाका अधीन कोश र राजकार्य, सभाका अधीन सबै काम तथा दूतका अधीन कसैसँग मेलमिलाप वा विरोध गर्ने अधिकार हुनुपर्दछ ॥ १ ॥

फुटेकालाई मिलाउने र मिलेकालाई फुटाउने कार्य गर्नेलाई दूत भनिन्छ। शत्रुहरूमा फूटपर्ने खालका कार्य दूतले गर्नुपर्दछ ॥ २ ॥

सभापति अर्थात् राजा, सबै सभासद् र दूत आदिले अरू विरोधी राजाहरूका यथार्थ अभिप्राय बुझेर तिनीहरूले आफुलाई दुःख न दिऊन् भन्ने प्रयत्न गर्नुपर्दछ ॥ ३ ॥ यसकारण सुन्दर वनमा **(धनदुर्गम्)** धन धान्ययुक्त देशमा धनुर्धारी व्यक्तिहरूबाट भरिभाउ, **(महीदुर्गम्)** ढुङ्गा–माटो आदिले बनाइएको, **(अब्दुर्गम्)** पानीले घेरिएको, **(वार्क्षम्)** चारैतिर वन भएको **(नृदुर्गम्)** चारैतर्फ सेना रहेको र **(गिरिदुर्गम्)** चारैतिर पहाड भएको किल्ला बनाएर त्यसका बीचमा नगर बसाल्नुपर्दछ ॥ ४ ॥

र नगरका चारैतिर (प्रकार अर्थात्) ठूलो पर्खाल बनाउनुपर्दछ। किनभने त्यसमा रहेको एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त व्यक्ति शयजनासँग र एकशयजना दशहजारसँग युद्धगर्न सक्तछन्। यसकारण दुर्ग अवश्य बनाउनु–पर्दछ ॥ ५ ॥

त्यो दुर्ग शस्त्रास्त्र, धनधान्य, वाहन, पढाउने, उपदेश गर्ने ब्राह्मण, शिल्पि=कालीगड, यन्त्र, नानाप्रकारका कला, **(यवसेन)** घाँस–चारा र पानी आदिले सम्पन्न अर्थात् भरिभराउ हुनुपर्दछ ॥ ६ ॥

त्यसका बीचमा पानी, रूख र पुष्पवाटिका आदिले युक्त, सबै

तरिकाले सुरक्षित, सबै ऋतुमा राम्रो हुने, सबै राजकार्य निर्वाह हुन सक्ने, सेतो रंगको घर आफ्नो निम्ति बनाउन लगाउनुपर्दछ॥७॥

ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढिसकेपछि र यतिसम्म राजकाज गरिसके–पछि सौन्दर्य र सद्‌गुण भएकी, हृदयलाई अतिप्रिय लाग्ने, उत्तम क्षत्रिय कुलमा जन्मेकी, राम्रा लक्षण भएकी र आफ्नै जस्तो क्षत्रिय वर्णकी अर्थात् आफू जस्तै विद्या आदि, गुण–कर्म–स्वभाव भएकी एउटीमात्र स्त्रीसँग विवाह गर्नुपर्दछ। अरू स्त्रीलाई अगम्य सम्झनुपर्दछ र नराम्रो दृष्टिले हेर्नु पनि हुँदैन॥८॥

अग्निहोत्र, पक्षेष्टि आदि राजघरका सबै कर्म गर्न पुरोहित र ऋत्विज नियुक्ति गर्नुपर्दछ। आफू भने सधैं राजकाजमै लागिरहनुपर्दछ। अर्थात् रातदिन राजकाजमा लागिरहनु र कुनै राजकीय कामलाई बिग्रन नदिनु नै राजाको सन्ध्योपासना आदि कार्य हो॥९॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु॥१॥
अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम्॥२॥
आवृत्तानं गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते॥३॥
समोत्तमाधमैर्राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्त्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्॥४॥
आवहेषु मिथोऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥५॥
न च हन्यात् स्थलारुढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥६॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥७॥
नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥८॥
यस्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः।
भर्त्तुर्यद् दुष्कृतं किंञ्चित् तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥९॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु॥१०॥

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत्॥११॥
राज्ञस्य दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञ च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥१२॥

—मनु० ७।८०–८२, ८७, ८९, ९१–९७

विश्वस्त, प्रामाणिक व्यक्तिद्वारा प्रजाबाट वार्षिक कर लिने गर्नुपर्दछ। सभापतिरूप राजा आदि प्रमुख व्यक्ति र सभासद् आदिले वेदानुकूल भएर समस्त प्रजासँग पिताजस्तै व्यवहार गर्नुपर्दछ॥१॥

त्यस राजकार्यमा सभाले विविध अध्यक्षहरू नियुक्त गर्नुपर्दछ। जुन जुन राजपुरुषलाई जे काम सुम्पिएको छ त्यो तिनले नियमानुसार यथावत् गरिरहेका छन् वा छैनन् भन्ने कुरा यी अध्यक्षहरूले हेर्नुपर्दछ। ठीक ठीक गर्नेलाई सत्कार गर्नु र विरुद्ध गर्नेलाई यथायोग्य दण्ड दिनुपर्दछ॥२॥

राजाहरूको वेद प्रचाररूप अक्षयकोष प्रचारका निम्ति गुरुकुलबाट ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदादिशास्त्र पढेर कोही आएमा, राजा र सभाले त्यसको राम्रो किसिमले सत्कार गर्नुपर्दछ। जसले पढाएका विद्वान हुन्छन् तिनलाई पनि सत्कार गर्नुपर्दछ॥३॥

यस्तो गर्नाले राज्यमा विद्याको उन्नति र राज्यको पनि उन्नति हुन्छ। कुनै वेला प्रजाको पालन गर्ने राजालाई आफू भन्दा कम, बराबर वा उत्तम राजाले संग्राममा आह्वान गरेमा क्षत्रियधर्मको स्मरण गरेर कहिल्यै युद्धमा जानबाट पछि हट्नुहुँदैन अर्थात् अत्यन्त चतुराई साथ आफ्नै जीत हुने गरी युद्ध गर्नुपर्दछ॥४॥

युद्धमा एक अर्काको हनन गर्ने इच्छाले आफ्नो सामर्थ्य अनुसार पीठ नदेखाई लड्ने राजा सुखी हुन्छन्। यसबाट विमुख कहिल्यै हुनुहुँदैन, तर कहिलेकाहीं शत्रुलाई जित्न तिनीहरूका अगाडिबाट लुक्नु भने उचित हुन्छ। किनभने जसरी शत्रुलाई जित्नसकिन्छ, त्यस्तै गर्नुपर्दछ। जसरी सिंह क्रोधले अगाडि परेर शस्त्ररूपि अग्निमा छिटै भस्म हुन्छ त्यस्तै मूर्खताले नष्ट भ्रष्ट हुनु उचित होइन॥५॥

युद्ध समयमा यताउती उभिएको, नपुंसक, हातजोरेको, कपाल फिजाएको, बसेको, 'तिम्रै शरण पर्छु' भन्ने, ॥६॥ सुतेको, मुर्च्छित, नांगो, हतियार नभएको, युद्ध दर्शक, शत्रुका साथी॥७॥ हतियारका प्रहारले पीडित, दुःखी, धेरै घायल, डराएको, भाग्ने, र सत्यपुरुषका धर्मलाई स्मरण गरिरहेको व्यक्तिलाई योद्धाले कहिल्यै मार्नुहुँदैन तर

तिनलाई समातेर राम्रो बन्दीगृहमा राखिदिनु र खानपान आदि दिनु, कोही घायल भएको भए तिनलाई औषधि उपचार राम्ररी गर्नुपर्दछ। तिनलाई गिज्याउनु र दुःख दिनुहुँदैन। तिनीहरू योग्य काम पनि गरानु पर्दछ। खासगरी स्त्री, बालक, वृद्ध, आतुर र शोकयुक्त व्यक्तिमाथि कहिल्यै शस्त्र चलाउनुहुन्न। उनका बाल–बच्चालाई आफ्नै सन्तान झैं पाल्नुपर्छ र स्त्रीलाई पनि पाल्नुपर्दछ। ती स्त्रीलाई आफ्नै आमा, दिदी–बहिनी र छोरी समान सम्झनुपर्छ र तिनीहरूलाई विषयाशक्तिका दृष्टिले कहिल्यै हेर्नुहुँदैन। राज्यका कामकाज राम्ररी व्यवस्थित भैसकेपछि र फेरी फेरी युद्धको आशंका नभएमा ती बन्दीगृहमा राखिएकालाई सम्मानपूर्वक छोडेर आ–आफ्नो घर वा देश तर्फ पठाइदिनुपर्दछ॥ ८॥

पलायन अर्थात् भाग्ने र डराएको सेवक शत्रुबाट मारिएमा त्यो आफ्नो स्वामीका अपराधको भागी भएर दण्डनीय हुन्छ॥ ९॥

यसलोक र परलोकमा सुख हुने उसका प्रतिष्ठालाई त्यसका स्वामीले लिन्छ। भाग्दा भाग्दै मारिनेलाई केही सुख हुँदैन, त्यसका सबै पुण्यफल नष्ट हुन्छन् र त्यसका प्रतिष्ठालाई धर्मपूर्वक यथावत् युद्ध गर्नेले प्राप्तगर्दछ॥ १०॥

जुन युद्धमा जुन भृत्य वा अध्यक्षले रथ, घोडा, हात्ती, छत्र, धन धान्य, गाई आदि पशु, स्त्री र अन्य सबै द्रव्य, घ्यू तेल आदि जितेको छ त्यो त्यसैको हुनुपर्दछ भन्ने व्यवस्था सधैं रहनुपर्दछ॥ ११॥

सेनाका व्यक्तिले पनि ती जितिएका पदार्थबाट सोह्रौं भाग राजालाई दिनुपर्दछ र राजाले पनि सबैले मिलेर जितेको धनबाट सोह्रौं भाग सेनाका युद्धहरूमा दिनुपर्छ। कोही युद्धमा मारिएको भए त्यस्ताको भाग त्यसकी स्त्री र सन्तानलाई दिनु र त्यस स्त्री र असमर्थ सन्तानलाई यथावत् पालन पनि गर्नुपर्दछ। त्यसका सन्तान समर्थ भएपछि तिनलाई यथायोग्य अधिकार दिनुपर्दछ। आफ्नो राज्य रक्षा, वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय र आनदवृद्धिको इच्छा राख्नेले यस मर्यादाको उल्लंघन कहिल्यै गर्नुहुँदैन॥ १२॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्॥ १॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्ध येद्वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्॥ २॥
अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः॥ ३॥

नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः॥ ४॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥ ५॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थितः।
तानानयेद् वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः॥ ६॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षिति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थितः॥ ७॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥ ८॥
शरीरकर्षणात् प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥ ९॥
राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसंगृहीत राष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते॥ १०॥
द्वयोस्त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्॥ ११॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्त्रपतिमेव च॥ १२॥
ग्रामदोषान् समुत्पन्नान् ग्रामिकःशनकैःस्वयम्।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंतीशिनम्॥ १३॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्त्रपतये स्वयम्॥ १४॥
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक् कार्याणि चैव हि।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः॥ १५॥
नगरे नगरे चैकं कुर्यात् सर्वार्थचिन्तकम्।
उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्॥ १६॥
स ताननुपरिक्रामेत् सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत् सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः॥ १७॥
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठा।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥ १८॥
यो कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्॥ १९॥

—मनु० ७। ९९, १०१, १०४–१०७, ११०–११७, १२०–१२४

राजा र राजसभाले नपाएका वस्तु पाउने इच्छा र प्राप्तवस्तुलाई प्रयत्नपूर्वक रक्षा गर्नुपर्दछ। त्यस्तै रक्षित वस्तुलाई बढाउनु र बढेको धन आदिलाई वेदविद्या, धर्मप्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गका उपदेशक तथा असमर्थ अनाथ आदिलाई पालन पोषण आदिमा लगाउनु पर्दछ॥ १॥

यी चार प्रकारका पुरुषार्थका प्रयोजनलाई राम्ररी बुझ्नुपर्दछ। आलस्य छोडेर यसलाई नित्यप्रति राम्ररी अनुष्ठान गर्नुपर्दछ।

दण्डद्वारा अप्राप्तलाई प्राप्त गर्ने इच्छा, नित्य रेखदेख गरेर प्राप्तको रक्षा, रक्षितको ब्याज आदिद्वारा वृद्धि र बढेको धनलाई पूर्वोक्तकार्यमा सधैं व्यय गर्नुपर्दछ॥ २॥

कहिल्यै कसैसँग छल नगरी सबैसँग सधैं निष्कपट भएर व्यवहार गर्नुपर्दछ। सधैं आफ्नो रक्षा गर्दै शत्रुद्वारा गरिने छललाई बुझेर बच्ने उपाय गर्नुपर्दछ॥ ३॥

कुनै शत्रुले आफ्नो छिद्र अर्थात् दुर्बलतालाई जान्न नसकोस् र स्वयं भने शत्रुका दुर्बलताहरूलाई जानिराख्नुपर्दछ। कछुआले आफ्ना अंग लुकाई राखे जस्तै शत्रुले पत्तो पाउन सक्ने कुनै दुर्बलता आफूमा भए त्यसलाई अत्यन्त गुप्त राख्नुपर्दछ॥ ४॥

बकुल्लाले माछा समात्न ध्यान लगाएझैं अर्थ-संग्रहगर्ने विचार गर्नु, धनादि पदार्थ र बल वृद्धि गरेर शत्रुलाई जित्न सिंहको जस्तै पराक्रम गर्नु, चितुवाको जस्तै लुकेर शत्रुलाई समात्नु र नजिकै आइपुगेको बलवान् शत्रु भए खरायो जस्तै टाढा भाग्नु र पछि तिनलाई छलले समात्नुपर्दछ॥ ५॥

यसरी विजय प्राप्त गर्ने सभापतिका राज्यमा कोही परिपन्थी अर्थात् डाँका लुटेरा भए, तिनलाई **(साम)** आफुतर्फ मिलाएर, **(दान)** केही दिएर अथवा **(भेद)** फुटाएर आफ्नो अधीन गर्नुपर्दछ र कुनै उपायबाट आफ्नो अधीन नभए अति कठिन दण्डद्वारा आफ्नो वशमा पार्नुपर्दछ॥ ६॥

धानको चामल नकुटि किनेगरी भुस छुट्याएर चामल रक्षा गरिएझैं राजाले चोर-डाँका आदिलाई मारेर राज्य रक्षा गर्नुपर्दछ॥ ७॥

मोह या अविचारद्वारा आफ्नो राज्यलाई दुर्बल गर्ने राजा आफ्नो राज्य र बन्धुसहित जीवनका अवधि पूर्ण हुनु अगावै नष्ट भ्रष्ट हुन्छ॥ ८॥

शरीरलाई कमजोर पार्नाले प्राणिहरूका प्राण कमजोर हुने भए जस्तै प्रजा दुर्बल हुँदा राजाका प्राण अर्थात् बल आदि बन्धुसहित नष्ट

हुन पुग्दछन्॥ ९॥

यसकारण राजा र राजसभाले राजकार्य ठीक-ठीक चल्ने गरी प्रयत्न गरिरहनुपर्दछ। राज्यको पालनमा सबै प्रकारले तत्पर रहने राजाको सुख सधैं बढ्दछ॥ १०॥

यसकारण दुई, तीन, पाँच र शय गाउँमा एक राजस्थान अर्थात् गुल्म राखेर तिनमा यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुष नियुक्त गरेर सबै राज्यका कामलाई पूर्ण गर्नुपर्दछ॥ ११॥

एक-एक गाउँमा एक-एक प्रमुख व्यक्ति, तिनै दश गाउँ भन्दा माथि दोस्रो, बीस गाउँभन्दा माथि तेस्रो, तिनै शय गाउँभन्दा माथि चौथो र एकहजार गाउँमा पाँचौ प्रमुख व्यक्ति हुनुपर्दछ। अर्थात् जसरी जोआज एक गाउँमा एक गाउँप्रमुख, तिनै दश गाउँमा एक ठाना, दुई ठाना माथि एक ठूलो ठाना र ती पाँच ठाना माथि एक तहसील र दश तहसीलमा एक जिल्ला निश्चित गरिएको छ। यो सबै मनु आदि धर्मशास्त्रबाट राजनीति अनुरूप लिइएको हो॥ १२॥

एक-एक गाउँको प्रमुखले आ-आफ्नो गाउँमा भएका नित्यप्रतिका दोष कमजोरीको जानकारी गोप्य रूपमा दश गाउँको प्रमुखलाई दिने र दश गाउँको प्रमुखले बीस गाउँको प्रमुखलाई दश गाउँको वस्तुस्थिति नित्यप्रति अवगत गराउनेगरी प्रबन्ध गर्नु र आज्ञा दिनु पर्दछ॥ १३॥

यस्तै बीस गाउँका प्रमुखले बीस गाउँको विवरण शय गाउँको प्रमुखलाई प्रतिदिन बुझाउनु पर्दछ। अनि शय-शय गाउँका प्रमुखले हजार गाउँका प्रमुखलाई शय-शय गाउँको वस्तुस्थिति अवगत गराउनुपर्दछ। त्यस्तै ती हजार-हजार गाउँका प्रमुखले दशहजारका प्रमुखलाई र दशहजारका प्रमुखले लाखौं गाउँको प्रमुख राजसभालाई प्रतिदिनको स्थिति अवगत गराउने गर्नुपर्दछ। ती सबै राजसभाले महाराजसभा अर्थात् सार्वभौम चक्रवर्ति महाराजसभामा सम्पूर्ण भूगोलको वस्तुस्थिति बताउने गर्नुपर्दछ॥ १४॥

प्रत्येक दशहजार गाउँमाथि दुई सभापति हुनु उपयुक्त हुन्छ। यिनमा एउटा राजसभामा र अर्को अध्यक्ष, आलस्य छोडेर सबै न्यायाधीश आदि राजपुरुषका कामलाई सधैं घुमी-घुमी हेर्नुपर्दछ॥ १५॥

प्रत्येक ठूला-ठूला नगरमा विचारगर्ने सभाको एक-एक सुन्दर, उच्च र विशाल चन्द्रमा जस्तै भवन बनाउनुपर्दछ। त्यसमा विद्याद्वारा सबैकिसिमका परीक्षा गरिसकेका ठूला-ठूला विद्यावृद्ध व्यक्तिहरूले बसेर, विचार गरेर राजा र प्रजाको उन्नति हुने खालका नियम र विद्या

प्रकाशित गर्ने गर्नुपर्दछ ॥ १६ ॥

आफैं नित्य घुम्ने सभापतिका अधीनमा राजपुरुष र प्रजापुरुषसँग नित्य सम्बन्ध राख्ने र भिन्न–भिन्न जातिका सबै गुप्तचर वा दूत राख्नुपर्दछ। तीबाट राजपुरुषका र प्रजापुरुषका सबै दोष र गुण गोप्य तरीकाले जानेर सधैं अपराधीलाई दण्डित र गुणीलाई प्रतिष्ठित गर्ने गर्नुपर्दछ ॥ १७ ॥

राजाले धार्मिक, सुपरीक्षित, विद्वान्, कुलीन व्यक्तिलाई प्रजाका रक्षाको अधिकार दिनु र तिनले आफ्नो अधीनमा प्राय: शठ र अरूका वस्तु हरणगर्ने चोर, डाँका आदिलाई पनि नोकर राखेर तिनलाई दुष्टकर्मबाट बचाउन राजाको नोकर बनाएर तिनै रक्षागर्ने विद्वान्हरूका अधीनमा गरेर तीबाट राम्ररी प्रजाको रक्षा गर्नुपर्दछ ॥ १८ ॥

कुनै राजपुरुषले अन्यायले वादी–प्रतिवादीसँग गुप्त धन लिएर पक्षपात गरी अन्याय गरेमा त्यस्ताको सर्वस्वहरण गरेर यथायोग्य दण्ड दिएर फर्केर आउन नसक्ने ठाउँमा राख्नुपर्दछ, किनभने त्यस्तालाई दण्ड न दिइएमा त्यस्ताको देखासिकी गरेर अरू राजकर्मचारीको जीवन निर्वाह राम्ररी हुनेगरी र ती राम्रो धनाढ्य हुनेजत्ति धन वा भूमि राज्यका तर्फबाट मासिक वा वार्षिक वा एकैपल्ट तिनीहरूले पाउने गर्नुपर्छ। बूढापाकाले पनि आधा पाउनुपर्छ तर ती बाँचुञ्जेल जीविका रहनेगरी पाउनुपर्छ, मरेपछि होइन। तिनका सन्तानहरूलाई सत्कार वा नोकरी उनीहरूका गुण अनुसार अवश्य हुनुपर्दछ। कसैका बालक असमर्थ भए र स्त्री बाँचेकी भए ती सबैका निर्वाहको लागि राज्यका तर्फबाट यथायोग्य धन प्राप्त हुनुपर्दछ। तर कसैकी स्त्री वा सन्तान कुकर्मी भएमा केहीपनि न पाउने किसिमका नीति राजको हुनुपर्दछ ॥ १९ ॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्॥ १ ॥
यथाल्पाऽल्पमदन्त्याऽऽद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥ २ ॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।
उच्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत्॥ ३ ॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात् कार्यं वीक्ष्य महीपतिः।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः॥ ४॥
एवं सर्वं विधायेदमितिकर्त्तव्यमात्मनः।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः॥ ५॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद् ध्रियन्ते दस्युभिःप्रजाः।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति॥ ६॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते॥ ७॥

—मनु० ७। १२८, १२९, १३९, १४०, १४२–१४४

राजा र कार्यकर्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फलयुक्त हुनेगरी राजा र राजसभाले विचारपूर्वक राज्यमा कर निर्धारण गर्नुपर्छ ॥ १ ॥

जुका, बाच्छा र भमराले जसरी आफ्नो खानेकुरा अलि–अलि लिन्छन्, त्यस्तै राजाले प्रजाबाट अलि–अलि वार्षिक कर लिनुपर्दछ ॥ २ ॥

बढी लोभ गरेर आफ्नो वा अरूका सुखको मूललाई कहिल्यै नष्ट गर्नुहुन्न। किनभने व्यवहार र सुखको मूललाई नष्ट गर्नेले आफूलाई र अरूलाई दुःख नै दिन्छ ॥ ३ ॥

कार्यलाई हेरेर कठोर र कोमल हुने राजा, दुष्टहरूप्रति कठोर र श्रेष्ठप्रति कोमल रहनाले अतिमाननीय हुन्छ ॥ ४ ॥

यसरी राज्यका सबै प्रबन्ध गरेर, सधैं यसमा लागेर र प्रमादरहित भएर राजाले निरन्तर आफ्ना प्रजाका पालन गर्नुपर्दछ ॥ ५ ॥

राजकर्मचारीको रेखदेख रहेको जुन राजाको राज्यबाट डाँकाहरूले रूँदै विलाप गर्दैगरेका प्रजाका पदार्थ र प्रमाण हरण गर्दछन्, त्यो राजा, मन्त्री, सचिव, नोकर–चाकर सहित बाँचे पनि मरे सरह भएर ठूलो दुःख पाउँछन् ॥ ६ ॥

यसकारण प्रजा पालन गर्नुनै राजाहरूको परमधर्म हो। मनुस्मृतिको सातौं अध्यायमा लेखिए अनुसार र सभाद्वारा निर्धारित गरिए अनुसार कर लिने वा भोगगर्ने राजा धर्मयुक्त भएर सुखपाउँछ, यस विपरीत दुःख प्राप्त गर्दछ ॥ ७ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।
हुताग्निर्ब्राह्मणाँश्चार्च्य प्रविशेत् स शुभां सभाम्॥ १ ॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥ २ ॥
गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः॥ ३ ॥
यत्र मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः॥ ४॥

—मनु० ७। १४५–१४८

राजाले रात्रिको पछिल्लो पहर रहँदैमा उठेर शौच, स्नानादि गरेर परमेश्वरको ध्यान, अग्निहोत्र र धार्मिक विद्वान्हरूलाई सत्कार, भोजन आदि गरेर, भित्र सभामा प्रवेश गर्नुपर्दछ॥ १ ॥

त्यहाँ उभिएर उपस्थित प्रजाजनलाई मान्यता दिनु र तिनीहरूलाई छोडेर मुख्यमन्त्रीसँग राज्यव्यवस्थाको विचार गर्नुपर्दछ॥ २ ॥

त्यसपछि मन्त्रीसँग घुम्न जानुपर्दछ। पर्वत शिखरमा वा एकान्त घरमा वा जङ्गलमा एउटा सिन्कोपनि नभए जस्तै अति एकान्तस्थानमा बसेर विरुद्ध भावनालाई त्यागेर मन्त्रीसँग मन्त्रणा गर्नुपर्दछ॥ ३ ॥

जुन राजाका गूढ विचारलाई अन्य व्यक्ति मिलेर बुझ्न सक्तैनन् अर्थात् जसको विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारका निम्ति सदा गुप्त रहन्छ त्यस्तो धनहीन राजापनि सम्पूर्ण पृथ्वीको राज्य गर्न समर्थ हुन्छ। यसकारण सभासद्हरूको अनुमति न भई आफ्नै मनबाट एउटा कामपनि गर्नुहुन्न॥ ४ ॥

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च॥ १ ॥
सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥ २ ॥
समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च।
तथा त्वायितसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः॥ ३ ॥
स्वयं कृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः॥ ४ ॥
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते॥ ५ ॥
क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥ ६ ॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥ ७ ॥
अर्थ संपादनार्थं च पीड्यमानः स शत्रुभिः।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥ ८ ॥
यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत्॥ ९ ॥
यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्॥ १० ॥

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपु प्रति॥ ११ ॥
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीन्॥ १२ ॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत् कार्यमात्मनः॥ १३ ॥
यदा परबालनां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम्॥ १४ ॥
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद् योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा॥ १५ ॥
यदि तत्रापि संपश्येद् दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशङ्कः समाचरेत्॥ १६ ॥

—मनु० ७। १६१–१७६

आसन=स्थिरता, यान=शत्रुसँग लड्न हिंड्नु, सन्धि=मेलमिलाप गर्नु, विग्रह=दुष्ट शत्रुहरूसँग लडाइ गर्नु, द्वैध=दुई किसिमका सेना बनाएर आफ्नो विजय गर्नु र संश्रय=निर्बलतामा अर्को प्रबलराजाको आश्रय लिनु, यी छह किसिमका कर्मलाई यथायोग्य विचार गरेर त्यसमा संयुक्त गर्नुपर्दछ॥ १ ॥

राजाले दुई–दुई किसिमका सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव र संश्रयलाई राम्ररी जान्नुपर्दछ॥ २ ॥

सन्धि=शत्रुसँग मेलमिलाप अथवा विपरीतता गर्नुपर्छ। तर वर्तमान र भविष्यमा गर्ने कार्य बराबर गर्दै जानुपर्दछ। यो दुई किसिमको **'मेल'** भनिन्छ॥ ३ ॥

विग्रह=कार्यसिद्धिका निम्ति उचित समय वा अनुचित समयमा आफैं गरिएको वा मित्रको अपराधगर्ने शत्रुसँग विरोध दुईप्रकारले गर्नुपर्दछ॥ ४ ॥

यान=अकस्मात् कुनै कार्य सिद्धिका लागि एक्लै वा मित्रसँग मिलेर शत्रुतर्फ जानु, यी दुईप्रकारका **'गमन'** हुन्छन्॥ ५ ॥

आसन=आफू कुनै कारणले क्षीण वा निर्बल भएर अथवा मित्रले रोकेर आफ्नो ठाउँमा बसिराख्नु, यो दुईप्रकारका **'आसन'** भनिन्छ॥ ६ ॥

द्वैध=कार्यसिद्धिका निम्ति सेनापति र सेनालाई दुई विभाग गरेर विजय प्राप्तगर्ने दुई किसिमको **'द्वैध'** भनिन्छ॥ ७ ॥

संश्रय=कुनै प्रयोजन सिद्धिका लागि वा शत्रुबाट हुनसक्ने पीडाबाट

बच्न कुनै बलवान् राजा वा महात्माको शरण लिनु दुई किसिमको 'संश्रय' भनिन्छ॥ ८ ॥

हालै युद्धगर्दा केही कष्ट हुनेछ र पछि गर्दा आफ्नो वृद्धि र विजय अवश्य हुनेछ भन्ने बुझेपछि शत्रुसँग मेल गरेर उचित समयसम्म धैर्यधारण गर्नुपर्दछ॥ ९ ॥

आफ्नो सम्पूर्ण प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न, उन्तिशील र श्रेष्ठ भएको र आफूपनि त्यस्तै भइएको लागेमा शत्रुसँग विग्रह=युद्ध गरिहाल्नुपर्दछ॥ १० ॥

आफ्नो बल अर्थात् सेना हर्ष र पुष्टियुक्त प्रसन्नभाव भए र शत्रुको बल आफ्नो विपरीत निर्बल भए शत्रुतर्फ युद्धका लागि प्रस्थान गर्नुपर्दछ॥ ११ ॥

सेना बल, वाहनले क्षीण भएमा शत्रुलाई विस्तार-विस्तार प्रयत्नपूर्वक शान्त गर्दै आफ्नै ठाउँमा बसिराख्नुपर्दछ॥ १२ ॥

राजाले शत्रुलाई अत्यन्त बलवान् सम्झेमा दोब्बर वा दुई किसिमका सेना बनाएर आफ्नो कार्य सिद्ध गर्नुपर्दछ॥ १३ ॥

अब छिटै शक्तिशाली शत्रुले आफूमाथि हमला गर्नेछ भन्ने बुझ्ने बित्तिकै कुनै धार्मिक बलवान् राजाको आश्रय लिइहाल्नुपर्दछ॥ १४ ॥

शत्रुका बलको विग्रह गर्ने अर्थात् रोक्ने आफ्नो प्रजा र सेनाको सेवा सबै प्रयत्नपूर्वक मान्यजनसदृश नित्य गर्नेगर्नुपर्दछ॥ १५ ॥

आश्रयदाता पुरुषको कार्यमा दोष देखिएमा त्यहाँ पनि निःशङ्क भएर राम्ररी युद्ध गर्नुपर्दछ॥ १६ ॥

कुनै धार्मिक राजा छ भने ऊसँग कहिल्यै विरोध गर्नुहुन्न, सदा मेलमिलाप राख्नुपर्छ र जो दुष्ट प्रबल छ भने त्यसैलाई जित्नका निम्ति यी पूर्वोक्त प्रयोग गर्नु उचितहुन्छ॥ १७ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः॥ १ ॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्वतः॥ २ ॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते॥ ३ ॥
यतैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः॥ ४ ॥

—मनु० ७। १७७-१८०

नीति जान्ने राजाले धेरै मित्र, उदासीन र शत्रु नहुने उपायका साथ व्यवहार गर्नुपर्दछ॥ १ ॥

सबै कार्य वर्तमान कर्तव्य, भविष्यमा गर्नुपर्ने कार्य र भूतकालमा गरिसकेका कार्यहरूका गुण दोष माथि यथार्थ विचार गर्नुपर्दछ॥ २ ॥

त्यसपछि दोषहरू निवारण र गुणहरू स्थिरतागर्ने प्रयत्न गर्नुपर्दछ। भविष्य अर्थात् पछि गरिने कार्यमा गुणदोषको ज्ञाता, वर्तमानमा तुरुन्त निश्चयकर्ता र गरिसकिएका कार्यमा बाँकी कर्तव्यलाई जान्ने राजा शत्रुहरूबाट कहिल्यै पराजित हुँदैन॥ ३ ॥

राजा आदिका मित्र, उदासीन र शत्रुले राजा वा राजपुरुषलाई मोहमा फसाउने आदिद्वारा आफ्नो वशमा गरेर अन्यथा न गराऊन् भन्ने प्रयत्न राजपुरुष वा विशेषगरी सभापति राजाले गर्नुपर्दछ। यही संक्षेपमा अर्थात् राजनीति भनिन्छ॥ ४ ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च॥ १ ॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः॥ २ ॥
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेद्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः॥ ३ ॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥ ४ ॥
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेत् बलम्।
पद्मने चैव व्यूहेन निविशते सदा स्वयम्॥ ५ ॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥ ६ ॥
गुल्माँश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः॥ ७ ॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रणे चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥ ८ ॥
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥ ९ ॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्यं तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि॥ १० ॥

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्॥ ११ ॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा॥ १२ ॥
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥ १३ ॥
आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते॥ १४॥

—मनु० ७।१८४–१९२, १९४–१९६, २०३, २०४

शत्रुसँग युद्ध गर्न जाँदा राजाले आफ्नो राज्य रक्षाको प्रबन्ध र यात्राको सबै सामान विधिपूर्वक व्यवस्था गरेर, सबै सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्र आदि परिपूर्ण लिएर सर्वत्र दूतहरू र सबैतिरका समाचार दिने व्यक्तिहरूलाई गुप्तरूपमा स्थापित गरेर शत्रुतर्फ युद्ध गर्न जानुपर्दछ॥ १ ॥

तीन प्रकारका मार्ग अर्थात् पहिलो–स्थल=भूमिमा, दोस्रो–जल=समुद्र वा नदीहरूमा, तेस्रो–आकाशमार्गलाई शुद्ध बनाएर, भूमिमार्गमा रथ, घोडा, हात्ती, जलमार्गमा नौका र आकाशमा विमान आदि यानद्वारा जानुपर्दछ र पैदल, रथ, हात्ती, घोडा, शस्त्र र अस्त्र, खानपान आदि सामानलाई यथावत् साथ लिएर बलयुक्तपूर्ण भएर कुनै कारण प्रचारका साथ शत्रु नगरनजीक विस्तार विस्तार जानुपर्दछ॥ २ ॥

भित्रबाट शत्रुसँग मिलेको र बाहिरी रूपमा आफूसँग पनि मित्रता राख्ने, गोप्य रूपमा शत्रुलाई भेद दिने व्यक्ति आउने जाले र ऊसँग कुरा गर्न अत्यन्त सावधानी राख्नुपर्दछ। किनभने भित्र शत्रु र बाहिर मित्रलाई ठूलो शत्रु ठान्नुपर्दछ॥ ३ ॥

सबै राजपुरुषलाई युद्ध–विद्या सिकाउनु, आफू सिक्नु र अरू प्रजालाई पनि सिकाउनुपर्दछ। अघिदेखि शिक्षित योद्धा नै राम्ररी लड्न–लडाउन जान्दछन्। सिकाउँदा दण्डव्यूह=दण्ड जस्तै सेनालाई चलाउन, शकट=गाडी जस्तै, वराह=बंदेल जस्तै एक=अर्काको पछि दगुर्ने परेमा सबै एकै ठाउँमा थुप्रने जस्तै, मकर=पानीमा ग्राह हिंडेजस्तै, सूचीव्यूह=सियोको अग्रभाग मसिनो तीखो र पछाडि मोटो र धागो अझ मोटो भएजस्तै र गरुड=जसरी नीलकण्ठ तल माथि झम्टिन्छ त्यस्तै सेनालाई बनाएर लडाउनुपर्दछ॥ ४॥

जुन दिशाबाट बढी भय हुन्छ त्यसैतर्फ सेनालाई फिजाउनुपर्छ।

सबै सेनापतिहरूलाई चारैतिर राखेर—व्यूह अर्थात् कमलका फूलको आकारमा चारैतिरबाट सेनालाई राखेर आफू बीचमा रहनुपर्दछ।

सेनापति र बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा दिने र सेनासँग लड्ने लडाउने वीरहरूलाई आठै दिशामा राख्नुपर्दछ। जतातर्फ लडाइ हुन्छ, सम्पूर्ण सेनाको मुख त्यतै रहनुपर्दछ, तर अर्को तर्फ पनि पक्का प्रबन्ध राख्नुपर्दछ, नत्र भने पछाडिबाट शत्रुद्वारा घात हुने सम्भावना रहन्छ॥ ६ ॥

स्तम्भ जस्तै दृढ, युद्धविद्यासुशिक्षित, धार्मिक, स्थिर रहन र युद्ध गर्न चतुर, भयरहित र मनमा कुनै किसिमका विकार नभएमा वीरहरूका गुल्म=वाहिनीलाई सेनाका चारैतिर राख्नुपर्दछ॥ ७॥

थोरै व्यक्तिबाट धेरैसँग युद्धगर्नुपर्ने भए मिलेर लडाउनु र आवश्यक परेमा तुरुन्त फैलाउनुपर्दछ। शहर, दुर्ग वा शत्रुको सेनामा पसेर युद्ध गर्नुपर्ने भए 'सूचीव्यूह' वा 'वज्रव्यूह' बनाएर दुबैतर्फ धार भएको तरवार जस्तै युद्ध गर्दै र भित्र पस्दैजानुपर्छ। यस्तै अनेक प्रकारका व्यूह बनाएर लडाउनुपर्दछ। अगाडि शतघ्नी=तोप वा भुशुण्डी=बन्दूक छुटिरहेको छ भने 'सर्पव्यूह' अर्थात् सर्पजस्तै घिस्रेर र, तिनलाई मारेर वा समातेर, तोपको मुख शत्रुतर्फै फेरेर तिनै तोप वा बन्दूकले ती शत्रुलाई मार्नु वा बूढापाकालाई तोपको मुख अगाडि घोडामा चढाएर दौडाउनु र मार्नुपर्छ। बीच–बीचमा राम्रा घुडसवार रहून्। एकपटक हमला गरेर शत्रुका सेनालाई छिन्न भिन्न गरेर समात्नु वा भगाइदिनु–पर्दछ॥ ८ ॥

सम्मभूमिमा युद्ध गर्नु छ भने रथ, घोडा र पैदल, समुद्रमा नौका, अलिकति पानी भएको ठाउँमा हात्ती, वृक्ष र झाडीमा वाण तथा बालुवा भएको ठाउँमा ढाल–तरवारले युद्ध गर्नु गराउनुपर्दछ॥ ९ ॥

युद्ध समयमा योद्धाहरूलाई उत्साहित र हर्षित गर्नुपर्दछ। युद्ध बन्द भएपछि शौर्य र युद्धमा उत्साह बढने किसिमका कुरा, खान, पान, अस्त्र, शस्त्र, सहायता र औषधि आदि द्वारा प्रसन्न राख्नुपर्दछ। व्यूह विना युद्ध गर्नु गराउनु हुँदैन साथै युद्ध समयमा आफ्नो सेना ठीक ठीक लडिरहेको छ वा कपट गर्दैछ भन्ने आफ्नो सेनाको चेष्टालाईपनि हेर्नेगर्नुपर्दछ कुनै समय उचित लागेमा शत्रुको सेनालाई घेरेर रोकिराख्नुपर्दछ र उसका राज्यलाई पीडित गरेर शत्रुको चारा, अन्न, जल र इन्धनलाई नष्ट वा दूषित गरिदिनुपर्दछ॥ ११ ॥

शत्रुका पोखरी, किल्ला, खाई आदिलाई नष्ट गर्नु, रातमा डर देखाउनु र जित्ने उपाय गर्नुपर्दछ॥ १२ ॥

शत्रुलाई जितेपछि ऊसँग प्रमाण वा प्रतिज्ञा आदि लेखाउनुपर्दछ। उचित समय लागेमा उसैका वंशको कुनै धार्मिक पुरुषलाई राजा बनाइदिनुपर्दछ र 'तिमीले हाम्रो आज्ञा अनुकूल अर्थात् जस्तो धर्मयुक्त राजनीति हुन्छ त्यस अनुसार नै चलेर न्यायपूर्वक प्रजा पालन गर्नु पर्नेछ' भने उपदेश दिनुका साथै लिखित प्रतिज्ञा पनि गराउनुपर्दछ। फेरी उपद्रव नहोओस् भन्ने हेतुले त्यहाँ त्यस्ता व्यक्ति नियुक्त गर्नुपर्दछ। प्रमुख व्यक्तिहरूसँग मिलेर **'रत्न'** आदि उत्तम पदार्थहरू दानद्वारा हारेको व्यक्तिलाई सत्कार गर्नुपर्दछ र उसको जीवन निर्वाह उचित रूपमा हुनसक्ने व्यवस्था गरिदिनुपर्दछ। त्यसलाई बन्दीगृहमै राखेपनि ऊ हारेको शोकबाट रहित भएर आनन्दमा रहनेगरी यथायोग्य सत्कार गर्नुपर्दछ ॥ १३ ॥

किनभने संसारमा अरूको पदार्थ लिनु अप्रीति र दिनु प्रीतिको कारण हुन्छ। खासगरी समयमा उचित क्रिया गर्नु र पराजित व्यक्तिले मनमा चाहेको कुरा दिनु अति उत्तम हुन्छ। अनि त्यसलाई कहिल्यै खिज्याउनु वा ऊ प्रति हाँसो ठट्टा गर्नु अथवा 'हामिले तिमीलाई हराएका छौं' आदि भन्नुहुँदैन। 'तिमी हाम्रा भाइ नै हौ' जस्ता मान, प्रतिष्ठागरेर व्यवहारसदा गर्नुपर्दछ ॥ १४ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा र मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ १ ॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टाप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ ३ ॥
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥ ४ ॥

—मनु० ७। २०८-२११

मित्रकोलक्षण—निश्चल प्रेमयुक्त, भविष्यका कुरा विचार गर्ने र कार्यसिद्ध गर्ने समर्थ वा दुर्बलै मित्रलाई प्राप्त गरेर राजा जति उन्नति गर्दछ त्यति सुवर्ण र भूमि पाएर गर्नसक्तैन ॥ १ ॥

धर्मलाई जान्ने र कृतज्ञ=गरेको उपकारलाई सदा मान्ने, प्रसन्नस्वभाव भएका, अनुरागी र स्थिराम्भी लघु=सानातिना पनि मित्र पाएर प्रशंसित भइन्छ ॥ २ ॥

बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, गरेको उपकार सम्झने र

धैर्यवान् व्यक्तिलाई कहिल्यै शत्रु बनाउनुहुन्न भन्ने कुरा राम्ररी हेक्का राख्नुपर्दछ। किनभने यस्तालाई शत्रु बनाउने व्यक्तिले दुःख पाउँछ ॥ ३ ॥

उदासीनको लक्षण—अरूबाट प्रशंसित गुणयुक्त, असल-खराब मानिसलाई चिन्ने, शूरवीर, करुणा भएको र स्थूललक्ष्य=माथि-माथिका कुरा निरन्तर सुनाउने व्यक्ति 'उदासीन' भनिन्छ ॥ ४ ॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तः पुरं विशेत् ॥

—मनु० ७। २१

सुयोग्य राजाले पूर्वोक्त प्रातःकाल=ब्रह्ममुहूर्त्तका समयमा उठेर शौच, स्नान, सन्ध्योपासन, आग्निहोत्र आदि गरेर वा गराएर, सबै मन्त्रीहरूसँग विचार विमर्श गरेर, सभामा गई सबै नोकर र सेनाध्यक्षहरूसँग मिलेर उनीहरूलाई खुशीपार्दै विभिन्न व्यूह शिक्षा वा कवायद गरेर गराएर, सबै घोडा, हात्ती, गाईको ठाउँ, शस्त्र र अस्त्र कोश, वैद्यखाना, धन कोश आदिलाई हेरेर, नित्यप्रति सबैमा दृष्टिदिइ कतै केही कमी भए त्यसलाई निकालेर, व्यायामशालामा व्यायाम गरेर भोजनका निम्ति 'अनतःपुर' अर्थात् पत्नी आदिका निवासस्थानमा प्रवेश गर्नुपर्दछ। भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबलपराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक किसिमका अन्न, व्यञ्जन, पेय भएको, सुगोन्धित, मिठाइ आदि अनेक रसयुक्त सधैं सुखी रहने किसिमका हुनुपर्दछ। यसरी सम्पूर्ण राज्य-कार्यको उन्नति गर्नुपर्दछ ॥ १ ॥ प्रजाबाट कर लिने प्रकार—

पञ्चाशद् भाग आदेयो राजा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ १ ॥

—मनु० ७। १३०

व्यापारी वा शिल्पी आदिलाई भएको सुन, चाँदी आदि लाभको पचासौं भाग र चामल आदि अन्न छैठौं वा बाह्रौं भाग लिने गर्नुपर्दछ। अन्नको सट्टामा धान लिएपनि किसानले खान-पान र धनरहित भएर दुःख नपाओस् भन्ने किसिमले लिनुपर्दछ ॥ १ ॥

किनभने प्रजा धनाढय, आरोग्य, खान-पान आदिमा सम्पन्न रहेमा राजाको ठूलो उन्नति हुन्छ। राजाले प्रजालाई आफ्नै सन्तानसरह सुख दिनुपर्दछ र प्रजाले राजा र राजपुरुषलाई आफ्नो पितातुल्य सम्झनुपर्दछ।

यो कुरा ठीक हो कि परिश्रम गर्ने किसान आदि राजाका पनि राजा हुन् र राजा उनीहरूको रक्षक हो। प्रजा नभए राजा कसको र

राजा नभए प्रजा कसको भनिने छ? दुबै आ–आफ्ना काममा स्वतन्त्र र प्रीतियुक्त, मिलेर गर्ने काममा भने परतन्त्र रहनुपर्दछ। राजा वा राजपुरुषले प्रजाका साधारण सम्पत्ति विरुद्ध हुनुहुँदैन। राजपुरुष वा प्रजाले राजाका आज्ञा विरुद्ध चल्नु हुँदैन। यो राजा र राज्य कार्य जसलाई 'पोलिटिक्स' भनिन्छ, संक्षेपमा भनियो। कसैले विशेष हेर्न चाहेमा चारै वेद, मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत आदि हेरेर निर्णय गर्नुपर्दछ।

प्रजाप्रति न्याय व्यवहार मनुस्मृतिको आठौं र नवौं अध्याय आदिका रीतिले गर्नुपर्दछ। तर यहाँपनि संक्षेपमा लेखिन्छ—

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्॥ १॥
तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥ २॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥ ३॥
सीमा विवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च॥ ४॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥ ५॥
एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात् कार्यविनिर्णयम्॥ ६॥
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥ ७॥
सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रु वन्विपिब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी॥ ८॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ ९॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मोन हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥ १०॥
वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देन्वास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥ ११॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥ १२॥

पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥ १३॥
राज भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥ १४॥

—मनु० ८। ३–८, १२–१९

देशचार र शास्त्रव्यवहार चलाउनका लागि तल लेखिएका अठार विवादास्पद कुरामा विवादयुक्त कुराको निर्णय सभा, राजा र राजपुरुष सबैले प्रतिदिन गर्ने गर्नुपर्दछ। आवश्यक देखिएका नियम शास्त्रमा उपलब्ध नभए राजा र प्रजाका उन्नति हुने किसिमका उत्तमोत्तम नियम बनाउनुपर्दछ॥ १॥

अठार कुरा यी हुन्—१. (**ऋणादान**) ऋण लेन–देनको विवाद, २. (**निक्षेप**) नासो सम्बन्धी विवाद, ३, (**अस्वामिविक्रय**) एउटाको पदार्थ अर्काले बेचेको विवाद, ४. (**संभूय च समुत्थानम्**) अनेकमिलेर कसैमाथि अत्याचार गर्नु, ५. (**दत्तस्यानपकर्म च**) दिएको पदार्थ नफर्काउनु॥ २॥ ६. (**वेतनस्यैव चादानम्**) तलब सम्बन्धी अर्थात् कसैको नोकरीबाट लिनु, थोरै दिनु वा निदिनु, ७. (**संविदश्च व्यतिक्रमः**) प्रतिज्ञाविरुद्ध व्यवहार गर्नु, ८. (**क्रयविक्रयानुशयः**) लेन–देनमा झगडा हुनु, ९. (**विवादः स्वामिपालयोः**) पशुका स्वामी र पाल्ने व्यक्ति झगडा॥ ३॥ १०. सीमा विवाद, ११, कसैलाई कठोर दण्ड दिनु, १२, कठोर वाणी बोल्नु, १३, चोरी–डकैती गर्नु, १४. जबर्जस्ती कुनैकाम गर्नु, १५. कसैकी स्त्री वा पुरुषसँग व्यभिचार हुनु, ॥ ४॥ १६. स्त्री र पुरुषको धर्ममा व्यतिक्रम हुनु, १७. विभाग अर्थात् अंशबण्डामा विवाद उठ्नु १८. द्यूत अर्थात् जड पदार्थ र समाह्वय अर्थात् चेतनशील प्राणीलाई थापेर जुआ खेल्नु, यी अठार प्रकारका परस्पर विरुद्ध व्यवहार अर्थात् मुद्दामामिला भएका कामकुरा हुन्॥ ५॥

यी व्यवहारहरूमा धेरैजसो विवाद गर्ने व्यक्तिहरूप्रति सनातन धर्मको आश्रय लिएर न्याय गर्ने गर्नुपर्दछ अर्थात् कसैको पक्षपात कहिल्यै गर्नुहुन्न॥ ६॥

जुन सभामा धर्म–अधर्मबाट घाइते भई उपस्थित हुन्छ, त्यसको शल्य अर्थात् तीर जस्तै धर्मको कलङ्कलाई ननिकाल्ने र अधर्म नाश नगर्ने भए अर्थात् धर्मीलाई मान र अधर्मिलाई दण्ड नदिइने भए, त्यस सभाका समस्त सभासद् घायलजस्तै मानिन्छन्॥ ७॥

धार्मिक मानिसले कहिल्यै सभामा प्रवेश गर्नु उचित हुन्न, अनि

प्रवेश गरिहालेमा सत्य नै बोल्नुपर्दछ। सभामा अन्याय भैरहेको देखेर चुपलाग्ने अथवा सत्य न्यायको विरुद्ध बोल्ने व्यक्ति महापापी हुन्छ॥ ८॥

जुन सभामा सबै सभासद्ले देख्तादेख्तै अधर्मबाट धर्म र असत्यबाट सत्य मारिन्छ भने त्यस सभामा सबै मृतक समाननै हुन्। त्यस सभामा जिउँदो कोहीपनि छैन भन्ने बुझ्नुपर्दछ॥ ९॥

मरेको धर्म मार्नेलाई नाश गर्छ भने रक्षा गरिएको धर्म रक्षकको रक्षा गर्दछ। यसकारण मारिएका धर्मले आफूलाई मार्नेछ भन्ने डरले भएपनि कहिल्यै धर्म हनन गर्नुहुन्न॥ १०॥

समस्त ऐश्वर्यदिने र सुख वर्षा गर्ने धर्म लोपगर्ने व्यक्तिलाई नै विद्वान्हरू वृषण अर्थात् शूद्र र नीच सम्झन्छन्। यसकारण कुनै मानिसले धर्म लोपगर्नु उचितिहुन्न॥ ११॥

यस संसारमा मृत्युपछि पनि सँगै हिंड्ने धर्म नै एकमात्र सुहृद् हो। अरू सबै पदार्थ वा सँगी–साथी भने शरीर नाशसँगै नष्ट हुन्छन् अर्थात् सबै संग साथ छुट्तछ, तर धर्म साथ कहिल्यै छुट्तैन॥ १२॥

कुनै राजसभामा पक्षपातले अन्याय गरिन्छ भने त्यहाँ अधर्मका चार भाग हुन्छन्। तिनमा एकभाग अधर्मगर्ने व्यक्ति, दोस्रो एकभाग साक्षी, तेस्रो एकभाग सभासद्हरू र चौथोभाग त्यस अधर्मि सभाको सभापति राजालाई प्राप्तहुन्छ॥ १३॥

निन्दा योग्य निन्दा, स्तुतियोग्य स्तुति, दण्डयोग्यलाई दण्ड र मान्यलाई मान हुने सभाका राजा र सबै सभासद् पापरहित र पवित्र हुनुपुग्दछन्। पापगर्नेलाई नै पाप प्राप्तहुन्छ॥ १४॥ साक्षी कस्तालाई बनाउनुपर्दछ—

आप्राः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्॥ १॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रीयः कुर्युर्द्विजानां सदृशा: द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः। शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥ २॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयडग्रणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः॥ ३॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराऽधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्॥ ४॥
समक्षदर्शनात् साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन् साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते॥ ५॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद् विब्रवन्नार्य्यसंसदि।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते॥ ६॥
स्वभावनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रू युर्धर्मार्थं तदपार्थकम्॥ ७॥
सभन्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन्॥ ८॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः।
तद् ब्रू त सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता॥ ९॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां किर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥ १०॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्ध ते।
तस्मात् सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ ११॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥ १२॥
यस्य विद्वान् हि बदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥ १३॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याणमन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥ १४॥

—मनु० ८। ६३, ६८, ७२–७५, ७८–८१, ८३, ८४, ८६, ९१

सबै वर्णमा धर्मिक, विद्वान्, विष्कपटी, सबै धर्म जान्ने, निर्लोभी, सत्यवादीलाई न्यायव्यवस्थामा साक्षी बनाउनुपर्दछ यस विपरीतलाई कहिल्यै साक्षी बनाउनुहुँदैन॥ १॥

स्त्रीहरू साक्षी स्त्री, द्विजका द्विज, शूद्रका शूद्र र अन्त्यजका अन्त्यज हुनुपर्दछ॥ २॥

बलात्कार, चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन र दण्ड जस्ता अपराधमा साक्षी जाँचबुझ गर्नुपर्दैन र साक्षी अतिआवश्यकता पनि सम्झनुपर्दैन, किनभने यी सबैकाम गुप्त हुन्छन्॥ ३॥

दुबै पक्षमा धेरै साक्षी भए बढी साक्षी अनुसार, साक्षी बराबर भए उत्तम गुणी व्यक्ति साक्षी अनुसार र दुबैपक्षमा साक्षी बराबर र उत्तम गुणी भए द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि, महर्षि र यतिवर्गको साक्षी अनुसार न्याय गर्नुपर्दछ॥ ४॥

दुई किसिमबाट साक्षी सिद्ध हुन्छन्—पहिलो साक्षात् देखेर र दोस्रो सुनेर। सभामा प्रश्न गरिंदा सत्य बोल्नेलाई धर्महीन र दण्डनीय

मान्नुहुँदैन। तर झूठ बोल्ने साक्षी भने यथायोग्य दण्डनीय हुनुपर्दछ॥ ५॥

राजसभा वा कुनै उत्तम पुरुषहरूका सभामा नदेखेको वा नसुनेको कुरा बोल्ने साक्षीले वर्तमान समयमा अवाङ्नरक अर्थात् जिब्रो काटिनाले हुने दुःखरूप नरक प्राप्त गर्ने हुनुपर्दछ र मरेपछि पनि सुखहीन हुन्छ॥ ६॥

साक्षीको स्वाभाविकरूपमा व्यावहारिक कुरालाई नै मान्नुपर्दछ, यस बाहेक जो कोही सिकाइएका कुरा बोल्दछ भने त्यस्ता कुरालाई न्यायाधीशले व्यर्थ सम्झनुपर्दछ॥ ७॥

वादी र प्रतिवादीका अगाडि आएका साक्षीहरूसँग न्यायाधीश र वकीलले शान्तिपूर्वक यसरी सोध्नुपर्दछ— ॥ ८॥

हे साक्षीहरू! यस कार्यमा यी दुवैका परस्पर कामकुरामा तिमीहरू जो–मान्दछौं, त्यसलाई सत्यपूर्वक भन, किनभने यसकार्यमा तिमीहरू साक्षी छौ॥ ९॥

सत्य बोल्ने साक्षीले अर्कोजन्ममा उत्तम जन्म र उत्तम लोकान्तरमा जन्मेर सुख भोग्दछ। यस जन्म वा परजन्ममा उत्तमकीर्ति पाउँछ। किनभने यसवाणीलाई नै वेदमा सत्कार र तिरस्कारको कारण बताइएको छ। सत्यवादी व्यक्ति प्रतिष्ठित र मिथ्यावादी निन्दित हुन्छ॥ १०॥

सत्य बोल्नाले साक्षी पवित्र हुन्छ र सत्य नै बोल्नाले धर्म बढ्दछ। यसकारण सबै वर्णका साक्षीहरूले सत्य बोल्नु नै उचित हुन्छ॥ ११॥

आत्माको साक्षी आत्मा र आत्माको गति आत्मा हो। यसकुरालाई बुझेर हे मानव! तिमी सबै मानिसहरू उत्तम साक्षी आफ्नो आत्माको अपमान नगर अर्थात् सत्यभाषण–तिम्रो आत्मा, मन, वाणीमा जे छ त्यही सत्य र यस विपरीत मिथ्याभाषण हो॥ १२॥

बोलिरहेको व्यक्ति विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीरलाई जान्ने आत्माभित्र शङ्का हुँदैन, यसबाहेक कसैलाई विद्वान्हरू उत्तम पुरुष सम्झिदैनन्॥ १३॥

हे कल्याण चाहने मानिस! तिमी आफ्नो आत्मामा 'म एक्लै छु' भन्ने सम्झेर झूठ बोल्छौ भने त्यो ठीक होइन। तिम्रो हृदयमा अन्तर्यामीरूपमा जुन परमेश्वर पाप–पुण्यलाई देख्ने अर्कोमुनि स्थित छ, त्यस परमात्माबाट डराएर सदा बोल्ने गर॥ १४॥

लोभान्मोहाद् भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥ १॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥ २॥

लोभात्सहस्रं दण्डयस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम्।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्डयौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्॥ ३॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥ ४॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नास च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च॥ ५॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्वतः।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत्॥ ६॥
अधर्मदण्डनं लोके यशोध्नं कीर्त्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तसमात्तत्परिवर्जयेत्॥ ७॥
अदण्डयान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महादाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥ ८॥
बाग्दण्डं प्रथम् कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्॥ ९॥

—मनु० ८। ११८–१२१, १२५–१२९

लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान र बालकपनले दिइएको साक्षीलाई मिथ्या सम्झिनुपर्दछ॥ १॥

यी मध्ये कुनै स्थानमा साक्षीले झूठ बोलेमा तल लेखिए अनुसार अनेक किसिमका दण्ड दिने गर्नुपर्दछ॥ २॥

लोभमा परेर असत्य साक्षी दिनेबाट पन्द्रह रुपैयाँ दश आना, मोहमा परेर झूठो साक्षी दिनेबाट तीन रुपैयाँ दुई आना, भयभीत भई मिथ्या साक्षी दिनेबाट सवा छ रुपैयाँ र मित्रताका कारण मिथ्या साक्षी बक्नेबाट साँढे बाह्र रुपैयाँ दण्ड लिनुपर्दछ॥ ३॥

कामनाले झूठो साक्षी दिनेबाट पच्चीस रुपैयाँ, क्रोधका कारण झूठो साक्षी दिनेबाट छयालीस रुपैयाँ चौदआना, अज्ञानताले असत्य साक्षी दिनेबाट छ रुपैयाँ र बालकपनले मिथ्या साक्षी दिनेबाट एक रुपैयाँ नौ आना दण्ड लिनुपर्दछ॥ ४॥

लिङ्ग, पेट, जिब्रो, हात, खुट्टा, आँखा, नाक, कान, धन र शरीर गरी दश स्थान दण्डका हुन्छन्, यिनैमा दण्ड दिइन्छ॥ ५॥

जुन–जुन दण्ड लेखियो वा लेखिने छ, जस्तै लोभले मिथ्यासाक्षीमा पन्द्रह रुपैयाँ दशआना दण्ड लेखिएको छ, त्यसमा कोही अत्यन्त निर्धन भए त्यसभन्दा कम र धनाढ्य भए दोब्बर, तेब्बर र चौबर सम्मपनि लिनुपर्दछ। अर्थात् देश, काल, व्यक्ति र अपराध अनुसार

दण्ड तोक्नुपर्दछ॥६॥

किनभने यस संसारमा अधर्मपूर्वक लगाइएका दण्डले पूर्वप्रतिष्ठा तथा वर्तमान, भविष्य र परजन्ममा हुने कीर्ति नाश गर्दछ, साथै परजन्ममा दु:खदायक हुन्छ। यसकारण कसैमाथि अधर्मयुक्त दण्ड लगाउनु हुँदैन॥७॥

दण्डनीयलाई दण्ड नदिने र अदण्डनीयलाई दण्डदिने अर्थात् दण्डदिन योग्यलाई छोडिदिने र दण्डदिन नपर्नेलाई दण्डदिने राजा यस जन्ममा ठूलो निन्दा र मरेपछि ठूलो दु:खको भागी हुन्छ। यसकारण अपराधीलाई सधैं दण्ड दिनुपर्दछ भने अनपराधीलाई कहिल्यै दण्ड दिनुहुँदैन॥८॥

पहिलो वाणीको दण्ड अर्थात् अपराध गर्नेको **'निन्दा,'** दोस्रो **'धिक्'** दण्ड अर्थात् तिमीले यस्तो खराब काम किन गर्यौ? तिमीलाई धिक्कार छ, तेस्रो अपराध गर्नेबाट **'धन लिनु'** र चौथौ **'वध'** दण्ड अर्थात् अपराधगर्नेलाई कोर्रा या बेतले हिर्काउनु वा शिर काट्नु, यी चार तरहले दण्ड दिइन्छ॥९॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यदेशाय पार्थिव:॥१॥
पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्डयो नाम रज्ञोऽस्तिय: स्वधर्मे न तिष्ठति॥२॥
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्य: प्राकृतो जन:।
तत्र राजा भवेद्दण्डय: सहस्रमिति धारणा॥३॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥४॥
ब्राह्मणस्य चुतु:षष्टि: पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतु:षष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि स:॥५॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेच क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्॥६॥
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसत:।
साहसस्य नर: कर्त्ता विज्ञेय: पापकृत्तम:॥७॥
साहसे वर्त्तमानन्तु यो मार्षयति पार्थिव:।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्॥९॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥१०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाश वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥११॥
यस्य स्तेन: पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥१२॥

—मनु० ८।३३४–३३८, ३४४–३४७, ३५०, ३५१, ३८६

चोरी जसरी जुन–जुन अङ्गबाट मानिसहरूमा विरुद्ध चेष्टा गर्दछ, सबै मानिसहरूको शिक्षाका लागि राजाले त्यसका त्यसै अङ्ग हरण वा छेदन गरिदिनुपर्दछ॥१॥

स्वधर्ममा स्थित नरहने पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र र पुरोहित नै किन नहोउन् ती राजाको अदण्डनीय हुँदैनन्। अर्थात् न्यायसनमा बसेपछि राजाले कसैलाई पक्षपात नगरी यथोचित दण्ड दिनुपर्दछ॥२॥

जुन अपराधमा साधारण मानिसमाथि एकपैसा दण्ड हुन्छ, त्यसै अपराधमा राजामाथि हजारपैसा दण्ड हुनुपर्दछ। अर्थात् साधारण मानिस भन्दा राजामाथि हजारगुना दण्ड हुनुपर्दछ। मन्त्री अर्थात् राजाका प्रमुख सहायकलाई आठसय गुना, यसरी तल तलकालाई अर्थात् सबैभन्दा तल्लो स्तरको राजपुरुष, भृत्य वा सेवकलाई आठ गुनाभन्दा कम दण्ड हुनुहुँदैन। किनभने प्रजाजनभन्दा राजपुरुषलाई बढी दण्ड नभएमा राजपुरुषलाई नाश गरिदिनेछन्। जसरी सिंह धेरै र बाख्रा थोरै दण्डले वशीभूत हुन्छन्, यसैकारण राजादेखि लिएर सबैभन्दा तल्लो स्तरका भृत्यसम्म राजपुरुषका अपराधमा प्रजापुरुष भन्दा बढी दण्ड हुनुपर्दछ॥३॥

यस्तै कोही विवेकी भएर पनि चोरी गर्दछ भने त्यस्तो शूद्रलाई चोरीभन्दा आठगुना, वैश्यलाई सोह्रगुना, क्षत्रियलाई बत्तीसगुना॥४॥ र ब्राह्मणलाई चौंसठ्ठी, सय वा एकसय अट्टाईस गुना दण्ड हुनुपर्दछ। अर्थात् जसको ज्ञान प्रतिष्ठा जति बढी हुन्छ, त्यसका अपराधमा त्यति नै बढी दण्ड हुनुपर्दछ॥५॥

राज्यका अधिकृत, धर्म र ऐश्वर्य चाहने राजाले बलात्कार काम गर्ने डाँकालाई दण्ड दिन एकक्षण पनि ढिलाइ गर्नुहुँदैन॥६॥

साहसिक पुरुषका लक्षण–जो दुष्ट वचन बोल्ने, चोरी गर्ने र विना अपराध दण्ड दिनेसँग पनि हिम्मतगरी जबर्दस्ती काम गर्छ, त्यो अत्यन्त दुष्टापापी हो॥७॥

साहसगर्ने पुरुषलाई दण्ड नदिएर सहनगर्ने राजा शीघ्र नष्ट हुन पुग्दछ र राज्यमा द्वेष बढ्दछ॥८॥

मित्रता र अपार धनप्राप्त भएपनि राजाले सबै प्राणिलाई दुःखदिने साहसिक व्यक्तिलाई बन्धन छेदन नगरी कहिल्यै छोड्नुहुँदैन॥९॥

धर्मलाई छोडेर अधर्ममा विद्यमान, अरूलाई विना अपराध सताउने वा मार्ने, गुरु, पुत्रादि बालक, पिता आदि वृद्ध, ब्राह्मण अथवा धेरै शास्त्रहरूका श्रोता नै किन नहोउन्, त्यस्तालाई विचारै नगरी मारिहाल्नुपर्दछ अर्थात् मारिसकेपछि विचार गर्नुपर्दछ॥१०॥

प्रसिद्ध वा अप्रसिद्धरूपमा दुष्ट व्यक्ति मार्नलाई पाप लाग्दैन, किनभने क्रोधीलाई क्रोधले मार्नु क्रोधसँग क्रोधको लडाइनै हो॥११॥

जुन राजाका राज्यमा चोर, परस्त्रीगामी, दुष्टवचन बोल्ने, साहसिक डाँका र दण्डध्न=राजाका आज्ञा उल्लंघनगर्ने कोही छैन भने त्यो राजा धेरै श्रेष्ठ हो॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥१॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्यते पापकृत्॥२॥
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत्।
नदी तीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम्॥३॥
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान् कोषमेव च॥४॥
एवं सर्वानिमान् राज्ञा व्यवहारान् समापयन्।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥५॥

—मनु० ८।३७१, ३७२, ४०६, ४१९, ४२०

आफ्नो जाति र गुणका घमण्डले आफ्नो पतिलाई त्यागेर व्यभिचार गर्ने स्त्रीलाई धेरै स्त्री एवं पुरुषका अगाडि राजाले जिउँदै कुक्कुरहरूबाट टोकाएर मार्न लगाउनुपर्दछ॥१॥

त्यस्तै आफ्नी पत्नीलाई छोडेर परस्त्रीगमन वा वेश्यागमन गर्ने पापी पुरुषलाई आगोले तपाइएको फलामको पलङ्गमा जिउँदै सुताएर धेरै व्यक्तिहरूका सम्मुख भस्म गरिदिनुपर्दछ॥२॥

प्रश्न—राजा, रानी, न्यायाधीश वा न्यायधीशका पत्नीले व्यभिचार आदि कुकर्म गरेमा तिनीहरूलाई कसले दण्ड दिने?

उत्तर—सभाले, अर्थात् तिनलाई त प्रजापुरुषहरू भन्दा पनि बढी

दण्ड दिइनुपर्दछ।

प्रश्न—सभाले दिएको दण्डलाई राजा आदिले स्वीकार्नेछन् र?

उत्तर—राजा पनि एउटा पुण्यात्मा भाग्यशाली मानिस हो। उसैलाई दण्ड न दिइएमा र उसले दण्ड नलिएमा अरू मानिस दण्ड किन मान्छन्? अनि सम्पूर्ण प्रजा, प्रधान राज्याधिकारी र सभाले धर्मपूर्वक दण्ड दिन चाहेमा एक्लो राजा के गर्न सक्तछ? यस्तो व्यवस्था नभएमा प्रमुख राजा र सबै समर्थ व्यक्तिहरू अन्यायमा डुबेर न्यायधर्मलाई डुबाएर सबै प्रजा नाश गरेर आफू पनि नष्ट भैजानेछन्। अर्थात् 'न्याययुक्त दण्डकै नाम राजा र धर्म हो, त्यो लोप गर्ने भन्दा नीच व्यक्ति अरू को होला र? भन्ने तात्पर्य बुझ्नुपर्दछ।

प्रश्न—यति कडा दण्ड हुनु उचित होइन। किनभने मानिस कुनै अङ्गलाई बनाउने वा बचाउने होइन। यसकारण यस्तो दण्ड दिनुहुँदैन।

उत्तर—यसलाई कडा दण्ड सम्झिने व्यक्ति राजनीतिलाई बुझ्दैनन्। किनभने एउटालाई यस्तो दण्ड दिनाले सबैजना खराब कामदेखि अलग रहेर धर्ममार्गमा स्थित रहनेछन्। सत्य त के हो भने सबैभन्दा सरल दण्ड यही हो किनकि सबैका भागमा यो दण्ड तिलजत्ति पनि पर्नेछैन। अनि सरल सुगम दण्ड दिइएमा भने दुष्टकाम धेरै बढ्नेछन्। जसलाई तिमी सरल दण्ड भन्दछौं त्यो करोडौं गुना बढी हुनाले करोडौं गुना कठिन हो। किनकि जब धेरै जना दुष्ट कर्म गर्नेछन् अनि अलि अलि गरेर पनि धेरै दिनु पर्नेछ। अर्थात् जस्तै एउटालाई एक मन र अर्कालाई एक पाउ दण्ड दिइएमा सालाखाला प्रत्येकको भागमा बीस सेर आधा पाउ दण्ड पर्यो भने दुष्टहरू यस्तो सरल दण्डलाई के सम्झन्छन्? जस्तै एउटालाई एकमन र एक हजार मानिसलाई एक-एक पाउ दण्ड भए सबै मिलाएर सवा छह मन दण्ड हुनपुग्दछ र यही कडा तथा त्यो एक मन दण्ड कम र सरल ठहर्दछ।

लामो बाटोमा, समुद्रको खाडीमा, नदी र ठूला खोलाहरूमा ठाउँको लम्बाई र ग्रीष्म वर्षा आदि समयको विचार गरेर कर निर्धारित गर्नुपर्छ। ठूला समुद्रमा निश्चित कर लगाउन सम्भव नहुने हुँदा ठूला-ठूला जहाज, नौका आदि चलाउनेलाई र राजालाई पनि लाभ हुने गरी व्यवस्था मिलाउनुपर्दछ। तर ध्यान राख्नु पर्ने कुरा के हो भने "पहिला जहाज चन्दैन थिए" भन्ने कुरा मिथ्या हो। राजाले देश देशान्तर र द्वीपद्वीपान्तरमा नाउ (डुँगा) बाट जाने आफ्ना प्रजाजनको सर्वत्र रक्षा गरेर प्रजालाई कुनै किसिमको दुःख हुनबाट बचाउनुपर्दछ॥३॥

राजाका प्रतिदिनका कामका समाप्तिमा, हात्ती–घोडा आदि वाहनको निश्चित लाभ र खर्चको, खानी–ढुकुटी आदिको रेखदेख गर्नुपर्दछ ॥ ४ ॥

यसरी सबै व्यवहारलाई यथावत् समाप्त गर्ने, गराउने राजा सबै पापतापलाई छुटाएर परमगति=मोक्षसुख प्राप्त गर्दछ ॥ ५ ॥

प्रश्न—संस्कृत विद्यामा पूरापूर राजनीति छ कि अधुरो छ ?

उत्तर—पूरापूर छ। किनभने भूमण्डलमा जे जति राजनीति चलेको छ र चल्ने छ त्यो सबै संस्कृत विद्याबाट लिइएको हो। अनि प्रत्यक्ष उल्लेख नभएका नियमका लागि—

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥ —मनु० ८। ३

राजा र प्रजाका सुखकारक धर्मयुक्त बुझिएका नियमहरू पूर्णविद्वान्हरूका राजसभाले बनाउने गर्नुपर्दछ। यथासम्भव बाल्यावस्थामा विवाह गर्न दिनुहुन्न भन्ने कुरा ध्यान सधैं राख्नुपर्दछ। युवावस्थामा पनि प्रसन्नता विना विवाह गर्नु, गराउनु र गर्नदिनुहुन्न। ब्रह्मचर्य यथावत् सेवन गर्नु गराउनुपर्छ। शरीर र आत्मामा पूर्ण बल सदा बढ्दै जाओस् भन्ने हेतुले व्यभिचार र बहुविवाह बन्दगर्नुपर्दछ, किनभने केवल आत्मा बल अर्थात् विद्याज्ञान बढाउँदै गएर शरीरको मात्र बल नबढाएमा एउटै बलवान् व्यक्ति सैकडौं ज्ञानी र विद्वान्हरूलाई जित्न सक्तछ। अनि शरीरको मात्र बल बढाएर आत्मज्ञान नबढाएमा पनि विद्या विना राज्यपालनको उत्तम व्यवस्था कहिल्यै हुन सक्तैन। व्यवस्था विना सबै आपसमा टूट–फूट, विरोध लडाइ–झगडा गरेर नष्ट भ्रष्ट हुन्छन्। यसकारण सधैं शारीरिक र आत्मिक बल बढाउने गर्नुपर्दछ।

व्यभिचार र अतिविषयासक्ति जस्तो बल–बुद्धिनाशक व्यवहार अरू कुनै छैन। खासगरी क्षत्रियहरूले दृढ अङ्ग र बलशाली हुनुपर्दछ। किनभने तिनै विषयासक्त भए राज्यधर्म नै नष्ट भईजानेछ। साथै '**यथा राजा तथा प्रजा**' (चाण्क्यनीतिदर्तण १३। ८) जस्तो राजा हुन्छ त्यस्तै त्यसका प्रजा पनि हुन्छन् भन्ने कुरामा पनि ध्यान राख्नुपर्दछ। यसकारण राजा र राजपुरुषले कहिल्यै दुष्टाचार नगरेर प्रतिदिन धर्म–न्यायपूर्वक व्यवहार गरेर सबैका लागी सुधारको दृष्टान्त बन्नुपर्दछ।

संक्षेपमा यो राजधर्मका वर्णन यहाँ गरिएको छ। विशेष मनुस्मृति सातौं, आठौं, नवौं अध्यायमा, शुक्रनीति, विदुरप्रजागर, महाभारत शान्तिपर्वको राजधर्म र आपद्धर्म आदि पुस्तकहरू हेरेर पूर्ण राजनीति

धारण गरेर माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य गर्नुपर्दछ। साथै '**वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम**' (यजुर्वेद १८। २९) 'हामी प्रजापति अर्थात् परमेश्वरका प्रजा र परमात्मा हाम्रा राजा, हामी उसका किंकर भृत्यवत् हौं भन्ने कुरा सम्झनुपर्छ। सो परमात्मा कृपा गरेर आफ्नो सृष्टिमा हामीलाई राज्याधिकारी बनाओस् र हाम्रो हातबाट आफ्नो सत्य न्याय प्रवृत्ति गराओस्।

अब यसपछि ईश्वर र वेद विषयमा लेखिनेछ।

इति श्रमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये
षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अथ सप्तम-समुल्लासः

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ १॥
—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ २॥
—यजुः० अ० ४०। मं० १॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्॥ ३॥
—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० १॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥ ४॥
—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० ५॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे॥ ५॥
—ऋ० मं० १०। सू० ४९। मं० १॥

(ऋचो अक्षरे) यस मन्त्रको अर्थ ब्रह्मचर्याश्रमका शिक्षामा लेखिसकिएको छ। अर्थात् सबै दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव-विद्यायुक्त, पृथ्वी, सूर्य आदि लोक जसमा स्थित् छन्, आकाश जस्तै व्यापक, सबै देवहरूका देव परमेश्वरलाई नजान्ने, नमान्ने र ध्यान नगर्ने नास्तिक, मन्दमति मानिस सदा दुःखसागरमै डुबिरहन्छन्। यसकारण सर्वदा उसैलाई चिनेर सबै मानिस सुखी हुन्छन्।

प्रश्न—वेदमा ईश्वर अनेक छन् भन्ने कुरालाई तिमी मान्दन्छौ वा मान्दैनौ?

उत्तर—मान्दैनौं, किनभने चारै वेदमा कतैपनि अनेक ईश्वर सिद्ध हुने कुरा लेखिएको छैन। तर ईश्वर एउटै छ भन्ने कुरा भने लेखिएको छ।

प्रश्न—वेदमा लेखिएका अनेक देवताहरूको अभिप्राय के हो?

उत्तर—'देवता' दिव्य गुणयुक्त हुनाले भनिन्छ, जस्तै पृथ्वी, तर

यिनलाई कतै ईश्वर वा उपासनीय भनिएको छैन। यसै मन्त्रमा हेर 'जुन ईश्वरमा सबै देवता स्थित छन्, त्यो नै जान्न र उपासनागर्न योग्य ईश्वर हो' भनिएको छ। देवता शब्दबाट ईश्वर अर्थ लिनेहरूको यसोगर्नु भूल हो। परमेश्वर नै सबै जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्ने, न्यायाधीश, अधिष्ठाताका साथै देवहरू पनि देव हुनाले 'महादेव' भनिन्छ।

'त्रिंयांस्त्रशत्त्रिशता' (यजुर्वेद १४। ३१) इत्यादि वेदमा भएका प्रमाणहरू व्याख्या शतपथमा (१४। ६। ९। ३-७) यसरी गरिएको छ-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य र नक्षत्र यी सबै सृष्टिका निवासस्थान हुनाले यी **'आठ वसु'**, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय र जीवात्मा, यी सबै शरीर छोड्दा रुवाउने हुनाले यी **'एघार रुद्र'**, वर्षका बाह्र महीनाले सबैको आयु लैजाने हुनाले ती बाह्र महीना नै **'बाह्र आदित्य'**, परम ऐश्वर्यका हेतु हुनाले बिजुलीको नाम **'इन्द्र'**, वायु वृष्टि, जल औषधी शुद्धि, विद्वान्हरूलाइ सत्कार र नानाप्रकारका शिल्पविद्याबाट प्रजा पालन हुनेहुँदा यज्ञको नाम **'प्रजापति'**, यी सबै गुणका कारण यी **'तेतीस देव'** भनिन्छन्। यिनको स्वामी र सबैभन्दा ठूलो हुनाले परमात्मा चौंतिसौं उपास्यदेव शतपथका चौधौं काण्डमा (१४।६। ९। १०) स्पष्ट लेखिएको छ। अन्यत्र पनि यस्तै लेखिएको छ। वेदमा अनेक ईश्वर मान्नेले यी शास्त्रहरूलाई हेरेका भए वेदमा अनेक ईश्वर मान्ने भ्रम जालमा परेर झुक्किने थिएनन्॥ ११॥

हे मनुष्य! सम्पूर्ण जगत्मा व्याप्त भएर नियन्त्रण गर्नेलाई ईश्वर भनिन्छ। ऊ देखि डराएर तिमी कसैको धन अन्यायले लिने इच्छा नगर। अन्याय परित्याग र न्यायाचरणरूप धर्मद्वारा आफ्नो आत्माबाट आनन्दभोग गर॥ २॥

ईश्वर सबैलाई उपदेश गर्दछ—हे मनुष्य! म ईश्वर सबैभन्दा अघि विद्यमान सबै जगत्को पति हुँ। म सनातन जगत्को कारण र सबै धनमाथि विजय प्राप्त गर्ने र दाता हुँ। सबै जीवहरूले, सन्तानले, पितालाई पुकारे झैं मलाई नै पुकार्नुपर्दछ। म सबै सुखदिने जगत् पालन-पोषणका लागि नानाकिसिमका भोजन विभाग गर्दछु॥ ३॥

म परम ऐश्वर्य्यवान्, सूर्यजस्तै सबै जगत् प्रकाशक हुँ। म कहिल्यै न त पराजित र न मृत्युलाई नै प्राप्त हुन्छु। जगत्रूपी धन निर्माता म नै हुँ। मलाई नै सबजगत् उत्पत्तिगर्ने जान। हे जीव! ऐश्वर्य प्राप्तिको प्रयत्न गर्दै तिमीहरू मबाट विज्ञान आदि धन माँग र मेरो मित्रताबाट

अलग कहिल्यै न होऊ॥४॥

हे मनुष्य! सत्यबोल्ने स्तुति गर्ने मानिसलाई म सनातन ज्ञान आदि धन दिन्छु। म ब्रह्म अर्थात् वेद प्रकाश गर्दछु। त्यो वेद यथावत् मेरो वर्णन गर्दछ। म त्यस वेदबाट सबैलाई ज्ञान बढाउँछु। म सत्यपुरुषको प्रेरक यज्ञ गर्नेलाई फल दिने र यस विश्वमा जे जति छ त्यस सबै कार्य बनाउँछु र धारण गर्दछु। यसकारण तिमीहरू मलाई छोडेर मेरो ठाउँमा अरू कुनैलाई जान्ने, मान्ने वा पूजागर्ने नगर।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजु० १३।४॥

यो यजुर्वेदको मन्त्र हो। हे मानिसहरू! जो सृष्टि हुनु अघि सूर्य्य आदि तेजस्वी लोकहरूका उत्पत्तिस्थान, आधार र जे जति उत्पन्न भएको थिए, छन् र हुनेछन्, ती सबैको स्वामी थिए, छन् र रहनेछन्। उनैले पृथ्वी देखि लिएर सूर्यलोक पर्यन्त सृष्टि बनाएर धारण गरिरहेका छन्। उनै सुखस्वरूप परमात्माकै भक्ति जसरी हामी गर्दछौं त्यस्तै तिमीहरूपनि गर।

प्रश्न—तपाई ईश्वर-ईश्वर भन्नुहुन्छ तर त्यसको सिद्धि कसरी गर्नुहुन्छ?

उत्तर—सबै प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूबाट।

प्रश्न—ईश्वरमा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण कहिल्यै घट्नै सक्तैनन्।

उत्तर—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि-व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

यो गौतममहर्षिकृत न्यायदर्शनको (१।१।४) सूत्र हो। कान, छाला, आँखा, जिब्रो, नाक र मनको शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध र सुख, दुःख, सत्य, असत्य विषयहरूसँग सम्बन्ध हुनाले उत्पन्न हुने भ्रमरहित ज्ञानलाई '**प्रत्यक्ष**' भनिन्छ। अब इन्द्रियहरू र मनबाट गुणहरू प्रत्यक्ष हुन्छ, गुणीको हुँदैन भन्नेकुरा विचार गर्नुपर्दछ। जसरी छाला आदि चारै इन्द्रियहरूबाट स्पर्श, रूप, रस र गन्ध ज्ञान हुनाले गुणी पृथ्वीको प्रत्यक्ष आत्मायुक्त मनबाट गरिन्छ, त्यस्तै यस प्रत्यक्ष सृष्टिमा रचनाविशेष आदि ज्ञानादि गुण प्रत्यक्ष हुनाले ईश्वर पनि प्रत्यक्ष हुन्छ। आत्माले मनलाई वा मनले इन्द्रियहरूलाई कुनै विषयमा लगाउँदा वा चोरी आदि त्यसै खराब अथवा परोपकार आदि असल काम गर्न शुरू गरिने क्षणमा जीवको इच्छा, ज्ञान आदि त्यसै इच्छित विषयप्रति झुक्दछ।

त्यसै क्षणमा आत्मा भित्रबाट गलतकाम गर्न भय, शङ्का र लाज तथा असल काम गर्न अभय, निःशङ्कता र आनन्दोत्साह उठ्दछ। त्यो जीवात्माका तर्फबाट नभई परमात्माका तर्फबाट हुन्छ। अनि जीवात्मा शुद्ध भएर परमात्मका विचार गर्न तत्पर रहेमा त्यसै समय दुबै प्रत्यक्ष हुन्छन्। परमेश्वर प्रत्यक्ष हुन्छ भने अनुमान आदिबाट परमेश्वर ज्ञान हुन के सन्देह छ त? किनभने कार्य देखेर कारण अनुमान हुन्छ।

प्रश्न—ईश्वर व्यापक छ वा कुनै स्थानविशेषमा रहन्छ?

व्यापक छ, किनभने कुनै एउटा स्थानमा रहनेभए सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबैको स्रष्टा, सबैको धर्त्ता र प्रलयकर्त्ता हुनसक्तैन। अप्राप्त देशमा कर्त्ताको क्रिया असम्भव हुन्छ।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु र न्यायकारी छ वा छैन?

उत्तर—छ।

प्रश्न—यी दुवै गुण एकअर्का विरुद्ध हुन्। न्याय गरेमा दया र दया गरे न्याय छुट्तछ। किनभने कर्म अनुसार न धेर न थोर अर्थात् ठीक-ठीक सुख वा दुःख पुर्न्याउनु 'न्याय' र अपराधीलाई दण्ड न दिई छोडिदिनु 'दया' भनिन्छ।

उत्तर—न्यायबाट सिद्ध हुने प्रयोजन नै दयाबाट सिद्ध हुनेहुँदा न्याय र दयामा नाम मात्रै फरक छ। मानिसले अपराध गर्न छोडून् र दुःखी नहोऊन् भन्ने प्रयोजनकै लागि दण्ड दिइन्छ भने अरूको दुःख दूर गर्नुनै दया भनिन्छ। न्याय र दयाको तिमीले गरेको अर्थ ठीक होइन किनभने जसले जत्ति गलत काम गरेको छ त्यसलाई त्यत्ति र त्यस्तै दण्ड दिनुपर्दछ, त्यसैको नाम न्याय हो। अपराधीलाई दण्ड नदिए दया नाश हुनेछ। किनभने एउटा अपराधी डाकूलाई छोड्नाले उसले हजारौं धर्मात्मा व्यक्तिहरूलाई दुःख दिनेछ। एउटालाई छोड्नाले हजारौं मानिस दुःख पाउँछन् भने त्यो दया कसरी हुनसक्तछ? त्यस डाकूलाई कारागारमा राखेर पाप गर्नबाट बचाउनु त्यस डाकूमाथि दया र त्यस डाकूलाई मारेरै भएपनि अरू हजारौं मानिसमाथि दया प्रकाशित हुन्छ।

प्रश्न—त्यसोभए दया र न्याय दुई शब्द किन भए? ती दुबै शब्दको अर्थ एउटै हो भने दुई शब्द हुनु नै व्यर्थ हुन्छ। त्यसो हुँदा एउटै शब्द रहनु उपयुक्त हुन्थ्यो। यसबाट दया र न्यायको एउटै प्रयोजन होइन भन्ने बुझिन्छ।

उत्तर—के एउटै अर्थको अनेक नाम र एक नामको अनेक अर्थ हुँदैनन्?

प्रश्न—हुन्छन्।

उत्तर—त्यसो भए तिमीलाई शङ्का किन भयो?

प्रश्न—संसारमा यस्तै सुन्दै आएको हुनाले।

उत्तर—संसारमा त साँचो-झूठो दुवै सुनिन्छन्, तर विचार गरेर निश्चय गर्नु आफ्नो काम हो। हेर! सबै जीवहरूका प्रयोजन सिद्धिका निम्ति ईश्वरले जगत्मा सकल पदार्थ उत्पन्न गरेर दान दिएको छ, ईश्वरको पूर्ण दया त यही नै हो। यस बाहेक ठूलो दया कुनचाहिं होला र? न्यायको फल भने सुख-दु:खको व्यवस्था धेरै-थोरै हुँदा सोही अनुसार फल प्रकाशित हुन्छ भन्ने कुरा प्रत्यक्षै छ। यी दुबैको यतिमात्र फरक छ—मनमा सबै सुखी होऊन् र दु:ख छुटोस् भन्ने इच्छा राख्नु र त्यस्तै काम गर्नु '**दया**' तथा बाहिरी चेष्टा अर्थात् बाँध्नु, काट्नु आदि उचित दण्ड दिनु **न्याय** भनिन्छ। दुबैको प्रयोजन भने एउटै 'सबैलाई पाप र दु:खबाट हटाउनु' हो।

प्रश्न—ईश्वर साकार छ वा निराकार?

उत्तर—निराकार। किनभने साकार भएको भए व्यापक हुन सक्तैन। व्यापक नभएको भए सर्वज्ञ आदि गुण पनि ईश्वरमा हुन सक्तैनन्। किनभने परिमित वस्तुमा गुण, कर्म स्वभाव पनि परिमित हुन्छन् र गर्मी-जाडो, भोक-प्यास, रोग, दोष, छेदन, भेदन आदिले रहित हुनसक्तैन। यसबाट ईश्वर निराकार छ भन्ने कुरा निश्चित हुन्छ। साकार भएदेखि उसका नाक, कान, आँखा आदि अवयव बनाउने कुनै हुनुपर्दछ। किनभने संयोगबाट उत्पन्न हुनेलाई संयुक्त गर्ने निराकार चेतन अवश्य हुनुपर्दछ। यस प्रसङ्गमा कसैले 'ईश्वरले आफ्नै स्वेच्छाले आफ्नो शरीर बनाएको हो' भन्छ भने पनि शरीर बन्नु अघि ईश्वर निराकार थियो भन्ने कुरा नै सिद्ध हुन्छ। यसकारण परमात्मा कहिल्यै शरीरधारण गर्दैन तर निराकार हुनाले सम्पूर्ण जगत्का सूक्ष्म कारणहरूबाट स्थूलाकार बनाइदिन्छ भन्ने बुझिन्छ।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान छ वा छैन?

उत्तर—छ। तर सर्वशक्तिमान शब्दको जस्तो अर्थ तिमी जान्दछौ, ईश्वर त्यस्तो होइन। ईश्वर आफ्नो काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि र सबै जीवहरूका पाप-पुण्यको यथायोग्य व्यवस्था गर्न कत्तिपनि सहायता लिंदैन अर्थात् आफ्नो अनन्त सामर्थ्यबाट नै आफ्ना सबैकाम पूर्ण गर्दछ भन्नु नै सर्वशक्तिमान शब्दको अर्थ हो।

प्रश्न—हामी त ईश्वरभन्दा माथि कोही नहुनाले ऊ जे चाहन्छ

त्यही गर्नसक्तछ भन्ने कुरा मान्दछौं।

उत्तर—ऊ के चाहन्छ? तिमी 'जे पनि चाहन्छ र गर्न सक्तछ' भन्छौ भने हामी तिमीसँग 'के परमेश्वर आफुलाई मार्न' अनेक ईश्वर बनाउन, स्वयं अविद्वान् हुन, चोरी, व्यभिचार आदि पापकर्म गर्न र दु:खी पनि हुनसक्तछ? भन्ने कुरा सोद्धछौं यो काम ईश्वरको गुण, कर्म, स्वभाव विरुद्ध हुन् भने ईश्वर जे पनि गर्न सक्तछ भन्ने तिम्रो कुरा ईश्वरमा घटित हुनसक्तैन। यसकारण सर्वशक्तिमान शब्दको हामीले गरेको अर्थ नै ठीक हो।

प्रश्न—परमेश्वर आदि छ वा अनादि?

उत्तर—अनादि छ, अर्थात् कुनै आदि कारण वा समय नभएकालाई अनादि भनिन्छ। इत्यादि सबै अर्थ पहिला समुल्लासमा गरिसकिएको छ, त्यहीं हेर्नुपर्दछ।

प्रश्न—परमेश्वर के चाहन्छ?

उत्तर—सबैको भलो र सबैका लागि सुख चाहन्छ। सबैलाई स्वतन्त्र गरेको छ र पाप नगरी कसैलाई पराधीन गर्दैन।

प्रश्न—परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासना गर्नुपर्दछ वा पर्दैन?

उत्तर—गर्नुपर्दछ।

प्रश्न—के स्तुति आदि गर्नाले ईश्वर आफ्नो नियम छोडेर स्तुति प्रार्थना गर्नेका पाप छुटाइदिन्छ?

उत्तर—अँहँ, छुटाउँदैन।

प्रश्न—त्यसो भए स्तुति, प्रार्थना किन गर्ने त?

उत्तर—त्यसो गर्नाले फल अर्कै छ।

प्रश्न—के छ?

उत्तर—स्तुतिबाट ईश्वरमा प्रीति, उसका गुण, कर्म, स्वभावबाट आफ्नो गुण, कर्म, स्वभाव सुधार्नु, प्रार्थनाबाट निरभिमानता, उत्साह र सहायता मिल्नु, उपासनाबाट परब्रह्मसंग मेल र उस संग साक्षात्कार हुनु, स्तुति, प्रार्थना, उपासनाको फल हो।

प्रश्न—यी कुरालाई स्पष्ट पारेर सम्झाउनुपर्यो।

उत्तर—जस्तै—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ १॥ —यजुः अ० ४०। मं० ८॥

यो ईश्वर स्तुति हो। त्यो सबैमा व्यापक, शीघ्रकारी र अनन्त

बलवान्, शुद्ध, सर्वज्ञ, सबैको अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर आफ्ना जीवरूप सनातन अनादि प्रजालाई सनातन विद्या वेदद्वारा यथावत् अर्थहरू बोध गराउँछ। यो सगुण–स्तुति अर्थात् जुन–जुन गुण सहित परमेश्वरको स्तुति गरिन्छ, त्यो सगुण भनिन्छ। **'अकाय'** अर्थात् ईश्वर कहिल्यै शरीर धारण गर्दैन, वा जन्म लिंदैन, उसमा छिद्र हुँदैनन्, ऊ नाडी आदि बन्धनमा पर्दैन र कहिल्यै पाप आचरण गर्दैन, उसमा क्लेश, दुःख, अज्ञान कहिल्यै हुँदैन, इत्यादि जुन–जुन राग–द्वेष आदि गुण–रहित मानेर परमेश्वरको स्तुति गरिन्छ, त्यो निर्गुण–स्तुति हो। यसको फल परमेश्वरका गुण जस्तै आफ्ना पनि गुण, कर्म, स्वभाव बनाउनु हो। जस्तै परमेश्वर न्यायकारी छ भने आफूपनि न्यायकारी हुनुपर्दछ। तर भाट जस्तै परमेश्वरको गुणकीर्तन गर्दैजाने र आफ्नो चरित्र नसुधार्ने हो भने त्यसले स्तुति गर्नु व्यर्थ छ।

प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १॥

—यजुः अ० ३२। मं० १४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ २॥ —यजुः० अ० १९। मं० ९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ३॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ५॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ६॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ७॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ८॥

—यजु० अ० ३४। मं० १, २, ३, ४, ५, ६

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! तपाईका कृपाले विद्वान्,

ज्ञानी र योगीहरू जुन बुद्धिको उपासना गर्दछन्, तपाई हामीलाई यसै वर्तमान समयमा त्यसै सद्बुद्धिले युक्त बुद्धिमान् बनाइनुहोस्॥ १॥

तपाई प्रकाशस्वरूप हुनुहुन्छ, कृपया म मा पनि प्रकाश–स्थापन गरिदिनुहोस्। तपाई अनन्त पराक्रमयुक्त हुनुहुन्छ, यसकारण आफ्नो कृपाकटाक्षले म भित्र पनि पूर्ण पराक्रम भरिदिनुहोस्। तपाई अनन्त–बलयुक्त हुनुहुन्छ, त्यसैले मलाईपनि बलशाली बनाइदिनुहोस्। तपाई अनन्तसामर्थ्ययुक्त हुनुन्छ, मलाई पनि सामर्थ्य दिनुहोस्। तपाई दुष्ट काम र दुष्टहरू प्रति क्रोध गर्नुहुन्छ, मलाई पनि त्यस्तै बनाइदिनुहोस्। तपाई निन्दा, स्तुति र आफ्ना अपराधीहरूलाई सहन गर्ने हुनुहुन्छ, कृपापूर्वक मलाई पनि त्यस्तै बनाइदिनुहोस्॥ २॥

हे दयानिधे! तपाइका कृपाले जाग्रत अवस्थामा जगत्मा टाढा टाढा जाने, दिव्यगुणयुक्त रहने र सुषुप्ति अवस्थामा सुत्ने वा स्वप्नमा टाढा टाढा गएजस्तै गर्ने, सबै प्रकाश गर्नेहरूका पनि प्रकाशक मेरो मन शिवसङ्कल्प=आफ्नो र अरू प्राणिहरूका लागि कल्याणको सङ्कल्प गर्ने होओस्। कसैको हानि नोक्सानीगर्ने इच्छा कहिल्यै नगरोस्॥ ३॥

हे सर्वान्तर्यामी! कर्मगर्ने धैर्यशाली विद्वानहरू जसबाट यज्ञ र युद्धादिमा कर्म गर्दछन्, अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय र प्रजाभित्र रहने त्यो मेरो मन धर्म गर्ने इच्छायुक्त भएर अधर्मलाई सर्वथा छोडिदियोस्॥ ४॥

उत्कृष्ट ज्ञानरूप र अरूलाई चेतनयुक्त गर्ने निश्चयात्मक वृत्ति भएका, प्राणिहरूमा भित्र प्रकाशयुक्त, नाशरहित र जसका अभावमा कसैले कुनै पनि कर्म गर्नसक्तैन त्यस्तो मेरो मन शुद्ध सद्गुणहरू इच्छागर्ने भएर दुर्गुणहरू देखि टाढै रहोस्॥ ५॥

हे जगदीश्वर! सबै योगीजन जसबाट यी सब भूत, भविष्यत् र वर्तमान व्यवहारहरूलाई जान्दन्छन्, नाशरहित जीवात्मालाई परमात्मासँग मिलाएर सबै प्रकारले त्रिकालज्ञ बनाउने, ज्ञान र क्रिया भएको, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि र आत्मायुक्त रहने, जसबाट त्यस योगरूपी यज्ञलाई बढाइन्छ, त्यो मेरो मन योगक विज्ञानयुक्त भएर अविद्या आदि क्लेशदेखि पृथक रहोस्॥ ६॥

हे परमविद्वान् परमेश्वर! जसरी रथको मध्यधुरामा आरा लागिरहेका हुन्छन् त्यसै गरी तपाईको कृपाले मेरो मनमा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद र अथर्ववेद पनि प्रतिष्ठित हुन्छन् र जुन मतमा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, प्रजाका साक्षी चित्त चेतनत्व विदित हुन्छ, त्यो मेरो मन अविद्यारहित भएर सदा विद्याप्रिय भैरहोस्॥ ७॥

हे सर्वनियन्ता परमेश्वर! योग्य सारथीले लगामद्वारा घोडाहरूलाई आफ्नो नियन्त्रणमा हिंडाएजस्तै मानिसलाई निरन्तर यताउति घुमाइरहने, हृदयमा प्रतिष्ठित गतिमान् र अत्यन्त वेगवान् त्यो मेरो मन सवै इन्द्रियहरूलाई अधर्माचरणबाट रोकेर सदा धर्ममार्गमा हिंडाउनेगरोस्। यस्तो कृपा ममाथि गरिदिनुहोला॥ ८॥

अग्ने नयं सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्युस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम॥ १॥

—यजुः अ० ४०। मं० १६॥

हे सुखदाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबैलाई जान्ने परमात्मा! तपाई हामीलाई श्रेष्ठ मार्गबाट सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान प्राप्त गराउनुहोस् र हामीमा भएका कुटिल पापाचरणका मार्गबाट हामीलाई हटाइदिनुहोस्। तपाई हामीलाई पवित्र गरिदिनुहोस् भन्ने यसै उद्देश्य निम्ति हामीहरू नम्रतापूर्वक तपाईको अनेकौं स्तुति गर्दछौं॥ १॥

मा नौ महान्तमुत मा नौऽअर्भकं मा नऽउक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नौ वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ १॥

—यजुः० अ० १६। मं० १५॥

हे रुद्र!=दुष्टहरूलाई दुःखस्वरूप पापको फल दिएर रुवाउने परमेश्वर! तपाई हाम्रा साना–ठूला सबैजनहरू, गर्भस्थ, आमा–बाबु, प्रिय बन्धुवर्ग र शरीरहरू हनन गर्न प्रेरित नगर्नुहोला। यस्तो मार्गबाट हिंडाउनुहोस् जसबाट हामी तपाईका दण्डनीय नहोऔं॥ १॥

असतो मा सद्गमय, तमसोमा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति॥ —शतपथ ब्रा० १४।३।१।३०

हे परमगुरु परमात्मा! तपाई हामीलाई असत्मार्गबाट हटाएर सन्मार्गमा पुर्याइदिनुहोस्। अविद्यारूपी अन्धकारलाई छुटाएर विद्यारूपी सूर्यजस्तो ज्योति प्राप्त गराउनुहोस र मृत्यु, रोग आदिबाट हटाएर मोक्षको आनन्दरूपी अमृत प्राप्त गराउनुहोस्। अर्थात् परमेश्वरलाई जुन जुन गुणयुक्त मानेर ती गुण आफूमा धारण गराउन गरिएको '**सगुण**' र जुन जुन दोष वा दुर्गुणदेखि परमेश्वर र आफूलाई पनि रहित मानेर प्रार्थना गरिन्छ त्यो '**निर्गुण**', यसरी विधि र निषेध हुँदा सगुण–निर्गुण प्रार्थना हुन्छ। जो मानिस जुन कुरा प्रार्थना गर्दछ, त्यसले त्यस्तै व्यवहार पनि गर्नुपर्दछ। अर्थात् सर्वोत्तम बुद्धि प्राप्त होओस् भनी प्रार्थना गरेमा त्यस निम्ति आफूले सकभर प्रयत्न गर्नुपर्दछ अर्थात् आफ्नो पुरुषार्थ पछि मात्र प्रार्थना गर्नु उचित हुन्छ॥

यस्तो प्रार्थना भने कहिल्यै गर्नुहुन्न र यस्तो प्रार्थनालाई परमेश्वरले पनि स्वीकार गर्दैन, जस्तै—'हे परमेश्वर! तपाई मेरा शत्रुहरू नाश गरेर, मलाई सबैभन्दा ठूलो गरिदिनुहोस्, मेरै प्रतिष्ठा र मेरै अधीनमा सबै भैजाऊन्' इत्यादि। किनभने दुवै शत्रुहरूले एकअर्काको नाशगर्न प्रार्थना गरेमा के परमेश्वरले दुवैलाई नाश गरीदिने? कसैले बढी प्रेम हुनेको प्रार्थना सफल हुन्छ भनेमा हामी 'त्यसो भए कम प्रेम हुनेका शत्रुको पनि कम नाश हुनुपर्दछ' भन्न सक्तछौं। यस्तो मूर्खताको प्रार्थना गर्दा गर्दै कसैले 'हे परमेश्वर! तपाई हामीलाई खाना पकाएर ख्वाइदिनुहोस्, मेरो घरको सर–सफाइ गरिदिनुहोस्, लत्ताकपडा धोइदिनुहोस् र खेतीपाती पनि सबै गरिदिनुहोस्' इत्यादि जस्ता प्रार्थना पनि गर्नेछ। यसरी परमेश्वरकै भरोसामा अल्छी भई बसिरहने व्यक्ति महामूर्ख हुन्। किनभने पुरुषार्थ गर्न परमेश्वरले दिएका आज्ञाको उल्लंघन गर्ने व्यक्ति कहिल्यै सुखी हुन सक्तैन। जस्तै—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंꣳ समाः॥

—यजु० ४०। मं० २

'मानिसले सयवर्ष सम्म अर्थात् बाँचेसम्म कर्म गर्दै नै बाँच्ने इच्छा गर्नुपर्दछ र कहिल्यै अल्छी हुनुहुँदैन' भन्ने आज्ञा परमेश्वरले दिएको छ। हेर! सृष्टीमा भएभरका प्राणी वा अप्राणी सबै आ–आफ्ना कर्म र यत्न गरिनै रहन्छन्। जस्तै कमिला आदि सधैं प्रयत्न गरिरहन्छन्, पृथ्वी आदि सधैं घुमिरहन्छन् र वृक्ष आदि सधैं घट्ने–बढ्ने गरिरहन्छन्, त्यस्तै यो दृष्टान्तलाई मानिसले पनि ग्रहण गर्नुपर्ने हो। जसरी पुरुषार्थ गर्ने व्यक्तिको सहायता अर्कोले पनि गर्दछ, त्यस्तै धर्मपूर्वक पुरुषार्थ गर्ने व्यक्तिको सहायता ईश्वरले पनि गर्दछ। जसरी कामगर्ने व्यक्तिलाई भृत्य पनि मान–सम्मान दिन्छन्, अल्छीलाई दिदैनन्। हेर्ने इच्छा भएको र आँखा भएकोलाई अरूले देखाइदिन्छन्, अन्धालाई कसैले देखाउँदैन। यस्तै परमेश्वर पनि सबैको उपकार गर्ने प्रार्थनामा सहायक हुन्छ, हानि हुने कर्ममा हुँदैन। कसैले 'सखर गुलियो छ' भन्दैमा त्यसले सखर वा सखरको स्वाद प्राप्तगर्न कहिल्यै सक्तैन अनि प्रयत्न गर्नेले भने चाँडो–ढिलो सखर अवश्य प्राप्त गर्दछ॥ अव तेस्रो उपासना—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तः करणेन गृह्यते॥ १॥

यो उपनिषद्को (मैत्रायण्यु० ४।४।९ र मैत्रा० आरण्य ६।३४) वचन हो।

अथ सप्तम-समुल्लासः

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ १॥

—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ २॥

—यजुः० अ० ४०। मं० १॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्॥ ३॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० १॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥ ४॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० ५॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे॥ ५॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४९। मं० १॥

(ऋचो अक्षरे) यस मन्त्रको अर्थ ब्रह्मचर्याश्रमका शिक्षामा लेखिसकिएको छ। अर्थात् सबै दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव-विद्यायुक्त, पृथ्वी, सूर्य आदि लोक जसमा स्थित् छन्, आकाश जस्तै व्यापक, सबै देवहरूका देव परमेश्वरलाई नजान्ने, नमान्ने र ध्यान नगर्ने नास्तिक, मन्दमति मानिस सदा दुःखसागरमै डुबिरहन्छन्। यसकारण सर्वदा उसैलाई चिनेर सबै मानिस सुखी हुन्छन्।

प्रश्न—वेदमा ईश्वर अनेक छन् भन्ने कुरालाई तिमी मान्दन्छौ वा मान्दैनौ?

उत्तर—मान्दैनौं, किनभने चारै वेदमा कतैपनि अनेक ईश्वर सिद्ध हुने कुरा लेखिएको छैन। तर ईश्वर एउटै छ भन्ने कुरा भने लेखिएको छ।

प्रश्न—वेदमा लेखिएका अनेक देवताहरूको अभिप्राय के हो?

उत्तर—'देवता' दिव्य गुणयुक्त हुनाले भनिन्छ, जस्तै पृथ्वी, तर

यिनलाई कतै ईश्वर वा उपासनीय भनिएको छैन। यसै मन्त्रमा हेर 'जुन ईश्वरमा सबै देवता स्थित छन्, त्यो नै जान्न र उपासनागर्न योग्य ईश्वर हो' भनिएको छ। देवता शब्दबाट ईश्वर अर्थ लिनेहरूको यसोगर्नु भूल हो। परमेश्वर नै सबै जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्ने, न्यायाधीश, अधिष्ठाताका साथै देवहरू पनि देव हुनाले 'महादेव' भनिन्छ।

'त्रिंयांस्त्रशत्त्रिशता' (यजुर्वेद १४। ३१) इत्यादि वेदमा भएका प्रमाणहरू व्याख्या शतपथमा (१४। ६। ९। ३-७) यसरी गरिएको छ-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य र नक्षत्र यी सबै सृष्टिका निवासस्थान हुनाले यी **'आठ वसु'**, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय र जीवात्मा, यी सबै शरीर छोड्दा रुवाउने हुनाले यी **'एघार रुद्र'**, वर्षका बाह्र महीनाले सबैको आयु लैजाने हुनाले ती बाह्र महीना नै **'बाह्र आदित्य'**, परम ऐश्वर्यका हेतु हुनाले बिजुलीको नाम **'इन्द्र'**, वायु वृष्टि, जल औषधी शुद्धि, विद्वान्हरूलाइ सत्कार र नानाप्रकारका शिल्पविद्याबाट प्रजा पालन हुनेहुँदा यज्ञको नाम **'प्रजापति'**, यी सबै गुणका कारण यी **'तेतीस देव'** भनिन्छन्। यिनको स्वामी र सबैभन्दा ठूलो हुनाले परमात्मा चौंतिसौं उपास्यदेव शतपथका चौधौं काण्डमा (१४।६। ९। १०) स्पष्ट लेखिएको छ। अन्यत्र पनि यस्तै लेखिएको छ। वेदमा अनेक ईश्वर मान्नेले यी शास्त्रहरूलाई हेरेका भए वेदमा अनेक ईश्वर मान्ने भ्रम जालमा परेर झुक्किने थिएनन्॥ ११॥

हे मनुष्य! सम्पूर्ण जगत्मा व्याप्त भएर नियन्त्रण गर्नेलाई ईश्वर भनिन्छ। ऊ देखि डराएर तिमी कसैको धन अन्यायले लिने इच्छा नगर। अन्याय परित्याग र न्यायाचरणरूप धर्मद्वारा आफ्नो आत्माबाट आनन्दभोग गर॥ २॥

ईश्वर सबैलाई उपदेश गर्दछ—हे मनुष्य! म ईश्वर सबैभन्दा अघि विद्यमान सबै जगत्को पति हुँ। म सनातन जगत्को कारण र सबै धनमाथि विजय प्राप्त गर्ने र दाता हुँ। सबै जीवहरूले, सन्तानले, पितालाई पुकारे झैं मलाई नै पुकार्नुपर्दछ। म सबै सुखदिने जगत् पालन-पोषणका लागि नानाकिसिमका भोजन विभाग गर्दछु॥ ३॥

म परम ऐश्वर्य्यवान्, सूर्यजस्तै सबै जगत् प्रकाशक हुँ। म कहिल्यै न त पराजित र न मृत्युलाई नै प्राप्त हुन्छु। जगत्रूपी धन निर्माता म नै हुँ। मलाई नै सबजगत् उत्पत्तिगर्ने जान। हे जीव! ऐश्वर्य प्राप्तिको प्रयत्न गर्दै तिमीहरू मबाट विज्ञान आदि धन माँग र मेरो मित्रताबाट

अलग कहिल्यै न होऊ॥४॥

हे मनुष्य! सत्यबोल्ने स्तुति गर्ने मानिसलाई म सनातन ज्ञान आदि धन दिन्छु। म ब्रह्म अर्थात् वेद प्रकाश गर्दछु। त्यो वेद यथावत् मेरो वर्णन गर्दछ। म त्यस वेदबाट सबैलाई ज्ञान बढाउँछु। म सत्यपुरुषको प्रेरक यज्ञ गर्नेलाई फल दिने र यस विश्वमा जे जति छ त्यस सबै कार्य बनाउँछु र धारण गर्दछु। यसकारण तिमीहरू मलाई छोडेर मेरो ठाउँमा अरू कुनैलाई जान्ने, मान्ने वा पूजागर्ने नगर।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजु० १३।४॥

यो यजुर्वेदको मन्त्र हो। हे मानिसहरू! जो सृष्टि हुनु अघि सूर्य्य आदि तेजस्वी लोकहरूका उत्पत्तिस्थान, आधार र जे जति उत्पन्न भएको थिए, छन् र हुनेछन्, ती सबैको स्वामी थिए, छन् र रहनेछन्। उनैले पृथ्वी देखि लिएर सूर्यलोक पर्यन्त सृष्टि बनाएर धारण गरिरहेका छन्। उनै सुखस्वरूप परमात्माकै भक्ति जसरी हामी गर्दछौं त्यस्तै तिमीहरूपनि गर।

प्रश्न—तपाई ईश्वर-ईश्वर भन्नुहुन्छ तर त्यसको सिद्धि कसरी गर्नुहुन्छ?

उत्तर—सबै प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूबाट।

प्रश्न—ईश्वरमा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण कहिल्यै घट्नै सक्तैनन्।

उत्तर—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि-व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

यो गौतममहर्षिकृत न्यायदर्शनको (१।१।४) सूत्र हो। कान, छाला, आँखा, जिब्रो, नाक र मनको शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध र सुख, दु:ख, सत्य, असत्य विषयहरूसँग सम्बन्ध हुनाले उत्पन्न हुने भ्रमरहित ज्ञानलाई '**प्रत्यक्ष**' भनिन्छ। अब इन्द्रियहरू र मनबाट गुणहरू प्रत्यक्ष हुन्छ, गुणीको हुँदैन भन्नेकुरा विचार गर्नुपर्दछ। जसरी छाला आदि चारै इन्द्रियहरूबाट स्पर्श, रूप, रस र गन्ध ज्ञान हुनाले गुणी पृथ्वीको प्रत्यक्ष आत्मायुक्त मनबाट गरिन्छ, त्यस्तै यस प्रत्यक्ष सृष्टिमा रचनाविशेष आदि ज्ञानादि गुण प्रत्यक्ष हुनाले ईश्वर पनि प्रत्यक्ष हुन्छ। आत्माले मनलाई वा मनले इन्द्रियहरूलाई कुनै विषयमा लगाउँदा वा चोरी आदि त्यसै खराब अथवा परोपकार आदि असल काम गर्न शुरू गरिने क्षणमा जीवको इच्छा, ज्ञान आदि त्यसै इच्छित विषयप्रति झुक्दछ।

त्यसै क्षणमा आत्मा भित्रबाट गलतकाम गर्न भय, शङ्का र लाज तथा असल काम गर्न अभय, नि:शङ्कता र आनन्दोत्साह उठ्दछ। त्यो जीवात्माका तर्फबाट नभई परमात्माका तर्फबाट हुन्छ। अनि जीवात्मा शुद्ध भएर परमात्मका विचार गर्न तत्पर रहेमा त्यसै समय दुबै प्रत्यक्ष हुन्छन्। परमेश्वर प्रत्यक्ष हुन्छ भने अनुमान आदिबाट परमेश्वर ज्ञान हुन के सन्देह छ त? किनभने कार्य देखेर कारण अनुमान हुन्छ।

प्रश्न—ईश्वर व्यापक छ वा कुनै स्थानविशेषमा रहन्छ?

व्यापक छ, किनभने कुनै एउटा स्थानमा रहनेभए सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबैको स्रष्टा, सबैको धर्त्ता र प्रलयकर्त्ता हुनसक्तैन। अप्राप्त देशमा कर्त्ताको क्रिया असम्भव हुन्छ।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु र न्यायकारी छ वा छैन?

उत्तर—छ।

प्रश्न—यी दुवै गुण एकअर्का विरुद्ध हुन्। न्याय गरेमा दया र दया गरे न्याय छुट्तछ। किनभने कर्म अनुसार न धेर न थोर अर्थात् ठीक-ठीक सुख वा दु:ख पुर्न्याउनु 'न्याय' र अपराधीलाई दण्ड न दिई छोडिदिनु 'दया' भनिन्छ।

उत्तर—न्यायबाट सिद्ध हुने प्रयोजन नै दयाबाट सिद्ध हुनेहुँदा न्याय र दयामा नाम मात्रै फरक छ। मानिसले अपराध गर्न छोडून् र दु:खी नहोऊन् भन्ने प्रयोजनकै लागि दण्ड दिइन्छ भने अरूको दु:ख दूर गर्नुनै दया भनिन्छ। न्याय र दयाको तिमीले गरेको अर्थ ठीक होइन किनभने जसले जत्ति गलत काम गरेको छ त्यसलाई त्यत्ति र त्यस्तै दण्ड दिनुपर्दछ, त्यसैको नाम न्याय हो। अपराधीलाई दण्ड नदिए दया नाश हुनेछ। किनभने एउटा अपराधी डाकूलाई छोड्नाले उसले हजारौं धर्मात्मा व्यक्तिहरूलाई दु:ख दिनेछ। एउटालाई छोड्नाले हजारौं मानिस दु:ख पाउँछन् भने त्यो दया कसरी हुनसक्तछ? त्यस डाकूलाई कारागारमा राखेर पाप गर्नबाट बचाउनु त्यस डाकूमाथि दया र त्यस डाकूलाई मारेरै भएपनि अरू हजारौं मानिसमाथि दया प्रकाशित हुन्छ।

प्रश्न—त्यसोभए दया र न्याय दुई शब्द किन भए? ती दुबै शब्दको अर्थ एउटै हो भने दुई शब्द हुनु नै व्यर्थ हुन्छ। त्यसो हुँदा एउटै शब्द रहनु उपयुक्त हुन्थ्यो। यसबाट दया र न्यायको एउटै प्रयोजन होइन भन्ने बुझिन्छ।

उत्तर—के एउटै अर्थको अनेक नाम र एक नामको अनेक अर्थ हुँदैनन्?

प्रश्न—हुन्छन्।

उत्तर—त्यसो भए तिमीलाई शङ्का किन भयो?

प्रश्न—संसारमा यस्तै सुन्दै आएको हुनाले।

उत्तर—संसारमा त साँचो-झूठो दुवै सुनिन्छन्, तर विचार गरेर निश्चय गर्नु आफ्नो काम हो। हेर! सबै जीवहरूका प्रयोजन सिद्धिका निम्ति ईश्वरले जगत्मा सकल पदार्थ उत्पन्न गरेर दान दिएको छ, ईश्वरको पूर्ण दया त यही नै हो। यस बाहेक ठूलो दया कुनचाहिं होला र? न्यायको फल भने सुख-दु:खको व्यवस्था धेरै-थोरै हुँदा सोही अनुसार फल प्रकाशित हुन्छ भन्ने कुरा प्रत्यक्षै छ। यी दुबैको यतिमात्र फरक छ—मनमा सबै सुखी होऊन् र दु:ख छुटोस् भन्ने इच्छा राख्नु र त्यस्तै काम गर्नु '**दया**' तथा बाहिरी चेष्टा अर्थात् बाँध्नु, काट्नु आदि उचित दण्ड दिनु **न्याय** भनिन्छ। दुबैको प्रयोजन भने एउटै 'सबैलाई पाप र दु:खबाट हटाउनु' हो।

प्रश्न—ईश्वर साकार छ वा निराकार?

उत्तर—निराकार। किनभने साकार भएको भए व्यापक हुन सक्तैन। व्यापक नभएको भए सर्वज्ञ आदि गुण पनि ईश्वरमा हुन सक्तैनन्। किनभने परिमित वस्तुमा गुण, कर्म स्वभाव पनि परिमित हुन्छन् र गर्मी-जाडो, भोक-प्यास, रोग, दोष, छेदन, भेदन आदिले रहित हुनसक्तैन। यसबाट ईश्वर निराकार छ भन्ने कुरा निश्चित हुन्छ। साकार भएदेखि उसका नाक, कान, आँखा आदि अवयव बनाउने अर्को हुनुपर्दछ। किनभने संयोगबाट उत्पन्न हुनेलाई संयुक्त गर्ने निराकार चेतन अवश्य हुनुपर्दछ। यस प्रसङ्गमा कसैले 'ईश्वरले आफैं स्वेच्छाले आफ्नो शरीर बनाएको हो' भन्छ भने पनि शरीर बन्नु अघि ईश्वर निराकार थियो भन्ने कुरा नै सिद्ध हुन्छ। यसकारण परमात्मा कहिल्यै शरीरधारण गर्दैन तर निराकार हुनाले सम्पूर्ण जगत्का सूक्ष्म कारणहरूबाट स्थूलाकार बनाइदिन्छ भन्ने बुझिन्छ।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान छ वा छैन?

उत्तर—छ। तर सर्वशक्तिमान शब्दको जस्तो अर्थ तिमी जान्दछौ, ईश्वर त्यस्तो होइन। ईश्वर आफ्नो काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि र सबै जीवहरूका पाप-पुण्यको यथायोग्य व्यवस्था गर्न कत्तिपनि सहायता लिंदैन अर्थात् आफ्नो अनन्त सामर्थ्यबाट नै आफ्ना सबैकाम पूर्ण गर्दछ भन्नु नै सर्वशक्तिमान शब्दको अर्थ हो।

प्रश्न—हामी त ईश्वरभन्दा माथि कोही नहुनाले ऊ जे चाहन्छ

त्यही गर्नसक्तछ भन्ने कुरा मान्दछौं।

उत्तर—ऊ के चाहन्छ? तिमी 'जे पनि चाहन्छ र गर्न सक्तछ' भन्छौ भने हामी तिमीसँग 'के परमेश्वर आफुलाई मार्न' अनेक ईश्वर बनाउन, स्वयं अविद्वान् हुन, चोरी, व्यभिचार आदि पापकर्म गर्न र दु:खी पनि हुनसक्तछ? भन्ने कुरा सोद्धछौं यो काम ईश्वरको गुण, कर्म, स्वभाव विरुद्ध हुन् भने ईश्वर जे पनि गर्न सक्तछ भन्ने तिम्रो कुरा ईश्वरमा घटित हुनसक्तैन। यसकारण सर्वशक्तिमान शब्दको हामीले गरेको अर्थ नै ठीक हो।

प्रश्न—परमेश्वर आदि छ वा अनादि?

उत्तर—अनादि छ, अर्थात् कुनै आदि कारण वा समय नभएकालाई अनादि भनिन्छ। इत्यादि सबै अर्थ पहिला समुल्लासमा गरिसकिएको छ, त्यहीं हेर्नुपर्दछ।

प्रश्न—परमेश्वर के चाहन्छ?

उत्तर—सबैको भलो र सबैका लागि सुख चाहन्छ। सबैलाई स्वतन्त्र गरेको छ र पाप नगरी कसैलाई पराधीन गर्दैन।

प्रश्न—परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासना गर्नुपर्दछ वा पर्दैन?

उत्तर—गर्नुपर्दछ।

प्रश्न—के स्तुति आदि गर्नाले ईश्वर आफ्नो नियम छोडेर स्तुति प्रार्थना गर्नेका पाप छुटाइदिन्छ?

उत्तर—अँहँ, छुटाउँदैन।

प्रश्न—त्यसो भए स्तुति, प्रार्थना किन गर्ने त?

उत्तर—त्यसो गर्नाले फल अर्कै छ।

प्रश्न—के छ?

उत्तर—स्तुतिबाट ईश्वरमा प्रीति, उसका गुण, कर्म, स्वभावबाट आफ्नो गुण, कर्म, स्वभाव सुधार्नु, प्रार्थनाबाट निरभिमानता, उत्साह र सहायता मिल्नु, उपासनाबाट परब्रह्मसंग मेल र उस संग साक्षात्कार हुनु, स्तुति, प्रार्थना, उपासनाको फल हो।

प्रश्न—यी कुरालाई स्पष्ट पारेर सम्झाउनुपर्यो।

उत्तर—जस्तै—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ १ ॥ —यजुः अ० ४०। मं० ८॥

यो ईश्वर स्तुति हो। त्यो सबैमा व्यापक, शीघ्रकारी र अनन्त

बलवान्, शुद्ध, सर्वज्ञ, सबैको अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर आफ्ना जीवरूप सनातन अनादि प्रजालाई सनातन विद्या वेदद्वारा यथावत् अर्थहरू बोध गराउँछ। यो सगुण–स्तुति अर्थात् जुन–जुन गुण सहित परमेश्वरको स्तुति गरिन्छ, त्यो सगुण भनिन्छ। **'अकाय'** अर्थात् ईश्वर कहिल्यै शरीर धारण गर्दैन, वा जन्म लिंदैन, उसमा छिद्र हुँदैनन्, ऊ नाडी आदि बन्धनमा पर्दैन र कहिल्यै पाप आचरण गर्दैन, उसमा क्लेश, दुःख, अज्ञान कहिल्यै हुँदैन, इत्यादि जुन–जुन राग–द्वेष आदि गुण–रहित मानेर परमेश्वरको स्तुति गरिन्छ, त्यो निर्गुण–स्तुति हो। यसको फल परमेश्वरका गुण जस्तै आफ्ना पनि गुण, कर्म, स्वभाव बनाउनु हो। जस्तै परमेश्वर न्यायकारी छ भने आफूपनि न्यायकारी हुनुपर्दछ। तर भाट जस्तै परमेश्वरको गुणकीर्तन गर्दैजाने र आफ्नो चरित्र नसुधार्ने हो भने त्यसले स्तुति गर्नु व्यर्थ छ।

प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १ ॥

—यजुः अ० ३२। मं० १४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ २ ॥ —यजुः० अ० १९। मं० ९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ३ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ५ ॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ६ ॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ७ ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ८ ॥

—यजु० अ० ३४। मं० १, २, ३, ४, ५, ६

हे अग्ने! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! तपाईका कृपाले विद्वान्,

ज्ञानी र योगीहरू जुन बुद्धिको उपासना गर्दछन्, तपाई हामीलाई यसै वर्तमान समयमा त्यसै सद्बुद्धिले युक्त बुद्धिमान् बनाइनुहोस्॥ १ ॥

तपाई प्रकाशस्वरूप हुनुहुन्छ, कृपया म मा पनि प्रकाश–स्थापन गरिदिनुहोस्। तपाई अनन्त पराक्रमयुक्त हुनुहुन्छ, यसकारण आफ्नो कृपाकटाक्षले म भित्र पनि पूर्ण पराक्रम भरिदिनुहोस्। तपाई अनन्त–बलयुक्त हुनुहुन्छ, त्यसैले मलाईपनि बलशाली बनाइदिनुहोस्। तपाई अनन्तसामर्थ्ययुक्त हुनुन्छ, मलाई पनि सामर्थ्य दिनुहोस्। तपाई दुष्ट काम र दुष्टहरू प्रति क्रोध गर्नुहुन्छ, मलाई पनि त्यस्तै बनाइदिनुहोस्। तपाई निन्दा, स्तुति र आफ्ना अपराधीहरूलाई सहन गर्ने हुनुहुन्छ, कृपापूर्वक मलाई पनि त्यस्तै बनाइदिनुहोस्॥ २ ॥

हे दयानिधे! तपाइका कृपाले जाग्रत अवस्थामा जगत्मा टाढा टाढा जाने, दिव्यगुणयुक्त रहने र सुषुप्ति अवस्थामा सुत्ने वा स्वप्नमा टाढा टाढा गएजस्तै गर्ने, सबै प्रकाश गर्नेहरूका पनि प्रकाशक मेरो मन शिवसङ्कल्प=आफ्नो र अरू प्राणिहरूका लागि कल्याणको सङ्कल्प गर्नेहोओस्। कसैको हानि नोक्सानीगर्ने इच्छा कहिल्यै नगरोस्॥ ३ ॥

हे सर्वान्तर्यामी! कर्मगर्ने धैर्यशाली विद्वानहरू जसबाट यज्ञ र युद्धादिमा कर्म गर्दछन्, अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय र प्रजाभित्र रहने त्यो मेरो मन धर्म गर्ने इच्छायुक्त भएर अधर्मलाई सर्वथा छोडिदियोस्॥ ४॥

उत्कृष्ट ज्ञानरूप र अरूलाई चेतनयुक्त गर्ने निश्चयात्मक वृत्ति भएका, प्राणिहरूमा भित्र प्रकाशयुक्त, नाशरहित र जसका अभावमा कसैले कुनै पनि कर्म गर्नसक्तैन त्यस्तो मेरो मन शुद्ध सद्गुणहरू इच्छागर्ने भएर दुर्गुणहरू देखि टाढै रहोस्॥ ५ ॥

हे जगदीश्वर! सबै योगीजन जसबाट यी सब भूत, भविष्यत् र वर्तमान व्यवहारहरूलाई जान्दन्छन्, नाशरहित जीवात्मालाई परमात्मासँग मिलाएर सबै प्रकारले त्रिकालज्ञ बनाउने, ज्ञान र क्रिया भएको, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि र आत्मायुक्त रहने, जसबाट त्यस योगरूपी यज्ञलाई बढाइन्छ, त्यो मेरो मन योगक विज्ञानयुक्त भएर अविद्या आदि क्लेशदेखि पृथक रहोस्॥ ६ ॥

हे परमविद्वान् परमेश्वर! जसरी रथको मध्यधुरामा आरा लागिरहेका हुन्छन् त्यसै गरी तपाईको कृपाले मेरो मनमा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद र अथर्ववेद पनि प्रतिष्ठित हुन्छन् र जुन मतमा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, प्रजाका साक्षी चित्त चेतनत्व विदित हुन्छ, त्यो मेरो मन अविद्यारहित भएर सदा विद्याप्रिय भैरहोस्॥ ७ ॥

हे सर्वनियन्ता परमेश्वर! योग्य सारथीले लगामद्वारा घोडाहरूलाई आफ्नो नियन्त्रणमा हिंडाएजस्तै मानिसलाई निरन्तर यताउति घुमाइरहने, हृदयमा प्रतिष्ठित गतिमान् र अत्यन्त वेगवान् त्यो मेरो मन सबै इन्द्रियहरूलाई अधर्माचरणबाट रोकेर सदा धर्ममार्गमा हिंडाउनेगरोस्। यस्तो कृपा ममाथि गरिदिनुहोला॥ ८॥

अग्ने नय॑ सुपथा॑ रा॒येऽअ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्। युयो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम॥ १॥

—यजु: अ० ४०। मं० १६॥

हे सुखदाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबैलाई जान्ने परमात्मा! तपाई हामीलाई श्रेष्ठ मार्गबाट सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान प्राप्त गराउनुहोस् र हामीमा भएका कुटिल पापाचरणका मार्गबाट हामीलाई हटाइदिनुहोस्। तपाई हामीलाई पवित्र गरिदिनुहोस् भन्ने यसै उद्देश्य निम्ति हामीहरू नम्रतापूर्वक तपाईको अनेकौं स्तुति गर्दछौं॥ १॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ऽअर्भ॒कं मा न॒ऽउक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्। मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा न॑: प्रि॒यास्त॒न्वो॒ रुद्र रीरिषः॥ १॥

—यजु:० अ० १६। मं० १५॥

हे रुद्र!=दुष्टहरूलाई दु:खस्वरूप पापको फल दिएर रुवाउने परमेश्वर! तपाई हाम्रा साना–ठूला सबैजनहरू, गर्भस्थ, आमा–बाबु, प्रिय बन्धुवर्ग र शरीरहरू हनन गर्न प्रेरित नगर्नुहोला। यस्तो मार्गबाट हिंडाउनुहोस् जसबाट हामी तपाईका दण्डनीय नहोऔं॥ १॥

असतो मा सद्गमय, तमसोमा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति॥ —शतपथ ब्रा० १४।३।१।३०

हे परमगुरु परमात्मा! तपाई हामीलाई असत्मार्गबाट हटाएर सन्मार्गमा पुर्‍यादिनुहोस्। अविद्यारूपी अन्धकारलाई छुटाएर विद्यारूपी सूर्यजस्तो ज्योति प्राप्त गराउनुहोस र मृत्यु, रोग आदिबाट हटाएर मोक्षको आनन्दरूपी अमृत प्राप्त गराउनुहोस्। अर्थात् परमेश्वरलाई जुन जुन गुणयुक्त मानेर ती गुण आफूमा धारण गराउन गरिएको '**सगुण**' र जुन जुन दोष वा दुर्गुणदेखि परमेश्वर र आफूलाई पनि रहित मानेर प्रार्थना गरिन्छ त्यो '**निर्गुण**', यसरी विधि र निषेध हुँदा सगुण–निर्गुण प्रार्थना हुन्छ। जो मानिस जुन कुरा प्रार्थना गर्दछ, त्यसले त्यस्तै व्यवहार पनि गर्नुपर्दछ। अर्थात् सर्वोत्तम बुद्धि प्राप्त होओस् भनी प्रार्थना गरेमा त्यस निम्ति आफूले सकभर प्रयत्न गर्नुपर्दछ अर्थात् आफ्नो पुरुषार्थ पछि मात्र प्रार्थना गर्नु उचित हुन्छ॥

यस्तो प्रार्थना भने कहिल्यै गर्नुहुन्न र यस्तो प्रार्थनालाई परमेश्वरले पनि स्वीकार गर्दैन, जस्तै—'हे परमेश्वर! तपाई मेरा शत्रुहरू नाश गरेर, मलाई सबैभन्दा ठूलो गरिदिनुहोस्, मेरै प्रतिष्ठा र मेरै अधीनमा सबै भैजाऊन्' इत्यादि। किनभने दुवै शत्रुहरूले एकअर्काको नाशगर्न प्रार्थना गरेमा के परमेश्वरले दुवैलाई नाश गरीदिने? कसैले बढी प्रेम हुनेको प्रार्थना सफल हुन्छ भनेमा हामी 'त्यसो भए कम प्रेम हुनेका शत्रुको पनि कम नाश हुनुपर्दछ' भन्न सक्तछौं। यस्तो मूर्खताको प्रार्थना गर्दा गर्दै कसैले 'हे परमेश्वर! तपाई हामीलाई खाना पकाएर ख्वाइदिनुहोस्, मेरो घरको सर–सफाइ गरिदिनुहोस्, लत्ताकपडा धोइदिनुहोस् र खेतीपाती पनि सबै गरिदिनुहोस्' इत्यादि जस्ता प्रार्थना पनि गर्नेछ। यसरी परमेश्वरकै भरोसामा अल्छी भई बसिरहने व्यक्ति महामूर्ख हुन्। किनभने पुरुषार्थ गर्न परमेश्वरले दिएका आज्ञाको उल्लंघन गर्ने व्यक्ति कहिल्यै सुखी हुन सक्तैन। जस्तै—

कु॒र्वन्ने॒वेह कर्मा॑णि जिजीवि॒षेच्छ॒तꣳ समा॑:॥

—यजु० ४०। मं० २

'मानिसले सयवर्ष सम्म अर्थात् बाँचेसम्म कर्म गर्दै नै बाँच्ने इच्छा गर्नुपर्दछ र कहिल्यै अल्छी हुनुहुँदैन' भन्ने आज्ञा परमेश्वरले दिएको छ। हेर! सृष्टीमा भएभरका प्राणी वा अप्राणी सबै आ–आफ्ना कर्म र यत्न गरिनै रहन्छन्। जस्तै कमिला आदि सधैं प्रयत्न गरिरहन्छन्, पृथ्वी आदि सधैं घुमिरहन्छन् र वृक्ष आदि सधैं घट्ने–बढ्ने गरिरहन्छन्, त्यस्तै यो दृष्टान्तलाई मानिसले पनि ग्रहण गर्नुपर्ने हो। जसरी पुरुषार्थ गर्ने व्यक्तिको सहायता अर्कोले पनि गर्दछ, त्यस्तै धर्मपूर्वक पुरुषार्थ गर्ने व्यक्तिको सहायता ईश्वरले पनि गर्दछ। जसरी कामगर्ने व्यक्तिलाई भृत्य पनि मान–सम्मान दिन्छन्, अल्छीलाई दिदैनन्। हेर्ने इच्छा भएको र आँखा भएकोलाई अरूले देखाइदिन्छन्, अन्धालाई कसैले देखाउँदैन। यस्तै परमेश्वर पनि सबैको उपकार गर्ने प्रार्थनामा सहायक हुन्छ, हानि हुने कर्ममा हुँदैन। कसैले 'सखर गुलियो छ' भन्दैमा त्यसले सखर वा सखरको स्वाद प्राप्तगर्न कहिल्यै सक्तैन अनि प्रयत्न गर्नेले भने चाँडो–ढिलो सखर अवश्य प्राप्त गर्दछ॥ अव तेस्रो उपासना—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तः करणेन गृह्यते॥ १॥

यो उपनिषद्को (मैत्रायण्यु० ४।४।९ र मैत्रा० आरण्य ६।३४) वचन हो।

समाधियोगबाट अविद्या आदि मल नष्ट भएको, आत्मस्थ भएर परमात्मामा चित्त लगाएको व्यक्तिलाई हुने परमात्माका योगको सुखलाई वाणीले भन्न सकिन्न, किनभने त्यस आनन्दलाई जीवात्मा आफ्नो अन्त:करणबाट ग्रहण गर्दछ। उपासना शब्दको अर्थ नजीक हुनुहो। अष्टाङ्गयोगद्वारा परमात्माको नजीक हुन र त्यसलाई सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूपमा प्रत्यक्ष गर्नका निम्ति गर्नुपर्ने सबैकाम गर्नुपर्दछ। अर्थात्—

तत्राऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः ॥

—योगदर्शन २। ३०

इत्यादि सूत्र पातञ्जल योगशास्त्रका हुन्। उपासनाको आरम्भ गर्न चाहने व्यक्तिका लागि 'कसैसँग वैर नराख्नु सधैं सबैसँग प्रेम व्यवहार गर्नु', सत्यबोल्नु मिथ्या कहिल्यै नबोल्नु, चोरी नगर्नु सत्य व्यवहार गर्नु, जितेन्द्रिय हुनु लम्पट नहुनु र निरभिमानीहुनु अभिमान कहिल्यै नगर्नु, यी पाँच प्रकारका '**यम**' मिलेर उपासनायोगको प्रथम अङ्ग हुन्छ अर्थात् यिनै पाँच कुरा बाट उपासना आरम्भ हुन्छ।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

—योगसूत्र २। ३२

राग–द्वेष छोडेर भित्र जलादिद्वारा बाहिर पवित्र हुनु, धर्मपूर्वक आलस्य छोडेर सदा पुरुषार्थ गर्नेगर्नु, सदा दु:ख–सुखलाई सहेर धर्मकै अनुष्ठान गर्नु अधर्मको नगर्नु, सर्वदा सत्यशास्त्रहरूलाई पढ्नु–पढाउनु, सत्पुरुषहरूको संगत गर्नु र '**ओ३म्**' एक परमात्माका नामको अर्थ विचार गर्नु, नित्यप्रति जप गर्नु अनि आफ्नो आत्मालाई परमेश्वरका आज्ञानुकूल समर्पित गरिदिनु, यी पाँच प्रकारका '**नियम**' लाई मिलाएर '**उपासनायोगको दोश्रो अङ्ग**' भनिन्छ। यस पछिका छ अङ्ग योगशास्त्र वा ऋग्वेददिभाष्यभूमिकामा हेर्नुहोला।

उपासना गर्न चाहेमा एकान्त, शुद्ध ठाउँमा गएर, आसन लगाएर, प्राणायाम गरेर, बाह्यविषयहरूबाट इन्द्रियहरूलाई रोकेर, मनलाई नाभिप्रदेशमा, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पिठयूँको मध्य हाडमा कुनै ठाउँमा स्थिर गरेर आफ्नो आत्मा र परमात्माको विवेचना गरेर परमात्मामा मग्न भएर संयमी हुनुपर्दछ।

यी साधन गर्नेको आत्मा र अन्त:करण पवित्र भएर सत्यले परिपूर्ण हुन्छ, नित्यप्रति ज्ञानविज्ञान बढाएर मुक्तिसम्म पुग्दछ। आठ पहरमा एक घडीमात्र पनि यसरी ध्यान गर्नेको सदा उन्नति हुँदै जान्छ। सर्वज्ञ आदि

गुणका साथ परमेश्वरको उपासना गर्नु '**सगुण**' र द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणरहित मानेर अतिसूक्ष्म आत्माको भित्र–बाहिर व्यापक परमेश्वरमा दृढ भई स्थित हुनु '**निर्गुण**' उपासना भनिन्छ।

यसको फल–जसरी जाडोले सताइएको व्यक्ति आगोछेउ गएमा त्यसको जाडो छुट्तछ, त्यस्तै परमेश्वर नजिक पुग्नाले सबै दोष, दु:ख छुटेर परमेश्वरका गुण–कर्म–स्वभाव जस्तै जीवात्माका गुण–कर्म–स्वभाव पवित्र हुन्छन्। यसकारण परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासना अवश्य गर्नुपर्दछ। यसको फल छुट्टै हुन्छ तर आत्माको बल यत्ति बढ्नेछ कि पर्वत समान दु:ख आइपरे पनि डराउने छैन र सबैलाई सहन गर्न सक्नेछ। के यो सानो तिनो कुरा हो? अनि परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासना नगर्ने व्यक्ति भने कृतघ्न र महामूर्ख पनि हुन्छ, किनभने जीवहरूका सुखका लागि यस जगत्का समस्त पदार्थ दिने परमात्माका गुणलाई विर्सनु, ईश्वरलाई नै नमान्नु, कृतघ्नता र मूर्खता हो।

प्रश्न—परमेश्वरका कान, आँखा आदि इन्द्रिय छैनन् भने ऊ इन्द्रियहरूको काम कसरी गर्नसक्तछ?

उत्तर—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम्॥ १ ॥

—यो उपनिषद्को (श्वेताश्वतर ३। १९) वचन हो।

परमेश्वरका हात छैनन्, तर आफ्नो शक्तिरूपी हातबाट सबैको रचना, ग्रहण गर्दछ। खुट्टा छैनन्, तर व्यापक हुनाले सर्वाधिक वेगवान् छ। आँखाका नानी छैनन्, तर सबैलाई जस्ताको तस्तै देख्तछ। कान छैनन्, तर सबैका कुरा सुन्दछ। अन्त:करण छैन, तर सम्पूर्ण जगत्लाई जान्दछ र उसलाई अवधिसहित यस्तो यत्रो भनेर जान्ने कोही पनि छैन। त्यसैलाई सनातन, सर्वश्रेष्ठ र सबैमा पूर्ण हुनाले '**पुरुष,** भन्दछन्। ऊ इन्द्रियहरू र अत:करणबाट हुने काम आफ्नै सामार्थ्यबाट गर्दछ॥ १ ॥

प्रश्न—धेरैजसो मानिस परमेश्वरलाई निष्क्रिय र निर्गुण भन्दछन् नित, यो के कुरा हो?

उत्तर—

न तस्य कार्य्यं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिय च॥ १ ॥

—यो उपनिषद्को (श्वेताश्वतर ६। ८) वचन हो।

परमेश्वरलाई उसले गरे जस्तैकार्य वा करण अर्थात् निकटतम साधकको कुनै अपेक्षा हुँदैन। उ तुल्य वा ऊभन्दा बढी कोही पनि छैन। उसमा सर्वोत्तम शक्ति, अनन्तज्ञान, अनन्तबल र अनन्तक्रिया स्वाभाविक अर्थात् सहज छ भन्ने सुनिन्छ। परमेश्वर निष्क्रिय भएको भए जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्नसक्ने थिएन। यसकारण ऊ विभु अर्थात् व्यापक छ चेतन हुनाले उसमा क्रिया पनि छ॥

प्रश्न—उसले क्रिया गर्दा अन्त हुने वा अनन्त कस्तो क्रिया हुन्छ होला?

उत्तर—ऊ विद्वान् हुनाले जति देश, कालमा क्रिया गर्न उचित सम्झन्छ त्यति नै देश कालमा क्रियागर्दछ, धेरै वा थोरै गर्दैन।

प्रश्न—परमेश्वर आफ्नो अन्त जान्दछ वा जान्दैन?

उत्तर—परमात्मा पूर्ण ज्ञानी छ। किनभने जस्ताको तस्तै जान्नु नै ज्ञान भनिन्छ। अर्थात् जुन पदार्थ जस्तो छ, त्यसलाई त्यस्तै जान्नु नै '**ज्ञान**' हो। परमेश्वर अनन्त छ भने त्यसलाई अनन्तै जान्नु ज्ञान र यसविरुद्ध अज्ञान हुन्छ। अर्थात् अनन्तलाई सान्त र सान्तलाई अनन्त जान्नु '**भ्रम**' भनिन्छ। '**यथार्थदर्शनं** ज्ञान जसको जस्तो गुण, कर्म, स्वभाव छ, त्यस पदार्थलाई त्यस्तै जानेर मान्नु नै ज्ञान र विज्ञान' भनिन्छ र यसको मिति उल्टो अज्ञान हुन्छ। यसकारण—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥

—योगसूत्र १।२४

अविद्या आदि क्लेश, कुशल–अकुशल, इष्ट–अनिष्ट र मिश्रफल–दायक कर्मका वासनारहित, सबै जीवहरूमा विशेष 'ईश्वर' भनिन्छ॥

प्रश्न— **ईश्वरासिद्धेः॥ १॥** —सांख्यसूत्र १।९२

प्रामाणाभावान्न तत्सिद्धिः॥ २॥ —सांख्यसूत्र ५।१०

सम्बन्धाभावान्नानुनम्॥ ३॥ —सांख्यसूत्र ५।११

प्रत्यक्षद्वारा ईश्वरको सिद्ध हुँदैन॥ १॥ उसको सिद्धिमा प्रत्यक्ष नै नहुनाले अनुमान आदि प्रमाण घटित हुन सक्तैनन्॥ २॥ र व्याप्ति सम्बन्ध नहुनाले अनुमान पनि हुन सक्तैन। अनि प्रत्यक्ष र अनुमान नहुनाले शब्द प्रमाण आदि पनि घटित हुन सक्तैनन्। यसकारण ईश्वर सिद्ध हुन सक्तैन॥ ३॥

उत्तर—यहाँ ईश्वर सिद्धिमा प्रत्यक्ष प्रमाण छैन र ईश्वर जगत्को उपादान कारण पनि होइन। साथै पुरुषभन्दा विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण हुनाले परमात्माको नाम पुरुष र शरीरमा शयन गर्नाले जीवको

पनि नाम पुरुष हो। किनकि यसै प्रकरणमा भनिएको छ—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः॥ १॥

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम्॥ २॥

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य॥ ३॥ —सांख्यसूत्र ५।८, ९, १२

पुरुषसँग प्रधानशक्तिको योग भए पुरुषमा सङ्गापत्ति हुनेछ। अर्थात् जसरी प्रकृति सूक्ष्ममा मिलेर कार्यरूपमा सङ्गत भएको छ, त्यस्तै परमेश्वर पनि स्थूल हुनेकुरा आउने छ। यसकारण परमेश्वर जगत्को उपादानकारण नभएर निमित्त कारण हो॥ १॥ चेतनबाट जगत् उत्पत्ति मानेमा जसरी परमेश्वर समग्र ऐश्वर्ययुक्त छ, त्यस्तै संसारमा पनि सर्वैश्वर्य योग हुनुपर्ने कुरा आउँछ, तर यस्तो छैन। यसकारण परमेश्वर जगत्को उपादानकारण होइन, निमित्तकारण हो॥ २॥ किनकि उपनिषद्मा पनि प्रधान=प्रकृतिलाई नै जगत्को उपादानकारण बताइएको छ॥ ३॥ जस्तै—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः॥ —यो श्वेताश्वतर उपनिषद्को (४।५) वचन हो। जन्मरहित सत्व–रज–तमोगुणरूप प्रकृतिनै स्वरूपाकारद्वारा धेरै प्रजारूप् हुन्छ। अर्थात् प्रकृति परिणामी हुनाले अवस्थान्तर=अर्को अवस्था धारण गर्दछ। पुरुषभने अपरिणामी हुनाले अवस्थान्तर भएर कहिल्यै अर्को रूप लिन सक्तैन, सदा कूटस्थ, निर्विकार रहन्छ। प्रकृतिचाहिं सृष्टिमा सविकार प्रलयमा निर्विकार रहन्छ। यसकारण कपिलाचार्य्यलाई अनीश्वरवादी भन्ने व्यक्तिलाई नै अनिश्वरवादी मान्नु उचित हुन्छ, कपिलाचार्य्यलाई होइन। यस्तै मीमांसाको धर्म–धर्मीबाट ईश्वर सिद्ध हुन्छ भने वैशेषिक र न्यायपनि '**आत्मा**' शब्दबाट अनीश्वर–वादी होइनन् भन्ने बुझिन्छ। किनभने सर्वज्ञत्व आदि धर्मभएको र '**अतित सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा**' सर्वत्र व्यापक तथा सर्वज्ञ आदि धर्मयुक्त सबै जीवका आत्मालाई मीमांसा, वैशेषिक र न्याय ईश्वर मान्दछन्।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लिन्छ वा लिदैन?

उत्तर—लिदैन। किनकि '**अज एकपात्**' '**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्**' यी यजुर्वेदको (३४।५३ र ४०।८) वचन हुन्। यस्ता वचनहरूबाट परमेश्वर जन्म लिदैन भन्ने कुरा सिद्ध छ।

प्रश्न—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ १॥

—भगवद्गीता ४।७

श्री कृष्णजी भन्नुहुन्छ—जब जब धर्म लोपहुन्छ तब तब म शरीर धारण गर्दछु।

उत्तर—यो कुरा वेद विरुद्ध हुनाले प्रमाण होइन। अनि यसो पनि हुन सक्तछ कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थिए र धर्म रक्षा गर्न चाहन्थे। यस कारण 'म युग युगमा जन्म लिएर श्रेष्ठहरूलाई रक्षा र दुष्टहरूलाई नाश गर्छु' भन्नुमा केही दोष छैन। किनकि '**परोपकाराय सतां विभूतयः**' सत्पुरुषहरूको तन–मन–धन परोपकार निम्ति हुन्छ। तर यसबाट श्रीकृष्ण ईश्वर हुन सक्तैनन्॥

प्रश्न—यसो हो भने संसारमा ईश्वरका चौबीस अवतार हुन्छन् भनिन्छ, यिनलाई अवतार किन भन्दछन्?

उत्तर—वेदको अर्थ नजान्नेले, सम्प्रदायी व्यक्तिहरूले झुक्याउनाले र आफैं अविद्वान् भएर भ्रमजालमा फसेर यस्ता यस्ता अप्रमाणिक कुरा गर्दछन् र मान्दछन्।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लिदैन भने कंस, रावण आदि दुष्टहरू नाश कसरी हुनसक्थ्यो?

उत्तर—पहिलो कुरा त जो जन्मेको छ, त्यो अवश्य मर्ने नै छ। अवतार लिई शरीर धारण नगरीकनै जगत् उत्पत्ति–स्थिति–प्रलय गर्ने ईश्वरसामु कंस र रावण आदि एउटा सानो कीरा भुसुना सरह पनि होइनन्। ऊ सर्वव्यापक हुनाले कंस, रावण आदिका शरीरमा पनि परिपूर्ण भैरहेकै छ भने उसले चाहेको बेलामा तिनको मर्मच्छेद गरेर नाश गर्न सक्तछ। यस अनन्त गुण–कर्म स्वभावयुक्त परमात्मालाई एउटा क्षुद्र जीव मार्न जन्मरणयुक्त भन्नेको मूर्खपन बाहेक अरू कुनै विशेष उपमा पाइएला र?

कसैले भक्तजनलाई उद्धार गर्न भगवान्ले जन्म लिन्छ भन्छ भने त्यो सत्य होइन। किनभने ईश्वरका आज्ञानुसार चल्ने भक्तजनको उद्धार गर्ने पूर्ण सामर्थ्य ईश्वरमा छँदैछ ईश्वर द्वारा पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि जगत्लाई बनाउने, धारण गर्ने र प्रलय गर्ने कार्य भन्दा के कंस रावण आदिका वध र गोवर्धन आदि पर्वतलाई उठाउने काम ठूला हुन् र? यस सृष्टिमा परमेश्वरका कर्मको विचार कसैले गरेमा '**न भूतो न भविष्यति**' ईश्वर जस्तो न कोही छ, न हुनेछ। युक्तिद्वारा पनि ईश्वरको जन्म सिद्ध हुँदैन। जस्तै कसैले अनन्त आकाशलाई '**गर्भस्थ भयो**' वा '**मुठ्ठीमा राखियो**' भन्छ भने यो कहिल्यै सत्य हुन सक्तैन। किनभने आकाश अनन्त र सबैमा व्यापक हुनाले उसको आउने–जाने कुरा

कहिल्यै सिद्ध हुनसक्तैन। न भएको ठाउँमा नै आउने–जाने कुरा सम्भव हुन्छ। के परमेश्वर गर्भमा व्यापक थिएन र, कतैबाट आयो भन्ने? अनि बाहिर थिएन र, भित्रबाट निस्कियो भन्ने? विद्याहीन बाहेक ईश्वरका बारेमा यस्तो अरू कसले भन्न र मान्न सक्तछ? यसकारण परमेश्वर आउने, जाने, जन्मने, मर्ने कुरा कहिल्यै सिद्ध हुनसक्तैन। यसै कारण '**इसा**' आदि पनि ईश्वरका अवतार होइनन् भन्ने कुरा बुझ्नुपर्दछ। किनकि रागद्वेष, भोक–तिर्खा भय–शोक, दुःख–सुख, जन्म–मरण आदि गुणयुक्त हुनाले उनी मानिस नै थिए।

प्रश्न—ईश्वर आफ्ना भक्तको पाप क्षमा गर्दछ वा गर्दैन?

उत्तर—गर्दैन। किनभने उसले पापक्षमा गरेमा उसको न्याय नष्ट हुनेछ र सबै मानिस महापापी हुनेछन्। किनकि क्षमाको कुरा सुन्दैमा मानिसमा पाप गर्न निर्भयता र उत्साह हुनेछ। जसरी राजाले अपराध क्षमा गरिदिए प्रजा उत्साहपूर्वक झन् झन् ठूला अपराध गर्नेछन्। किनकि अपराधीलाई पनि राजा अपराध क्षमा गर्नेछ र राजा सामु हात जोड्ने आदि चेष्टा गरेर आफ्नो अपराध छुटाइ लिने छौं भन्ने विश्वास हुनेछ र अपराध नगर्नेहरू पनि निर्भय भएर पाप गर्न लाग्नेछन्। यसकारण सबै कर्महरूको यथावत् फल दिनुनै ईश्वरको काम हो, क्षमा गर्नु होइन।

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र छ वा परतन्त्र?

उत्तर—आफ्ना कर्तव्य कर्महरूमा स्वतन्त्र र ईश्वरको व्यवस्थामा परतन्त्र छ। '**स्वतन्त्रः कर्त्ता**' (अष्टाध्यायी १।४।५४) यो पाणिनीय व्याकरणको सूत्र हो। स्वतन्त्र वा स्वाधीनलाई नै कर्त्ता भनिन्छ।

प्रश्न—स्वतन्त्र कसलाई भनिन्छ?

उत्तर—जसको अधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय र अन्तःकरण आदि हुन्छन्, त्यसलाई स्वतन्त्र भनिन्छ। जीव स्वतन्त्र नभए उसलाई पाप–पुण्यको फल कहिल्यै प्राप्त हुन सक्तैन। किनकि जसरी सेनाध्यक्षको आज्ञा वा प्रेरणा पाएर भृत्य, स्वामी वा सेनाले अनेक व्यक्तिलाई मारेर पनि अपराधी हुँदैनन्, त्यस्तै परमेश्वरको प्रेरणा र अधीनतामा काम गरेमा जीवलाई पाप–पुण्य र नरक स्वर्ग अर्थात् सुख–दुःख पनि परमेश्वरलाई नै प्राप्त हुनेछ। त्यस फलको भागी प्रेरक परमेश्वरलाई नै प्राप्त हुनेछ। जसरी कुनै मानिसले शस्त्रविशेष द्वारा कसैलाई मार्यो भने त्यही मार्ने व्यक्ति समातिने छ र त्यसैले दण्ड पाउने छ, शस्त्रले होइन। त्यस्तै पराधीन जीव पाप–पुण्यको भागी हुनसक्तैन। यसकारण आफ्नो

सामर्थ्य अनुकूल कर्म गर्न जीव स्वतन्त्र छ। तर उसले पाप गरिसकेपछि भने ईश्वरको व्यवस्थामा पराधीन भएर फल भोग्दछ। यसकारण जीव कर्म गर्न स्वतन्त्र र पापका दुःखरूप भोग्न परतन्त्र हुन्छ।

प्रश्न—परमेश्वरले जीवलाई नबनाएर सामर्थ्य नदिएको भए जीव केहीपनि गर्न सक्ने थिएन। यसकारण परमेश्वरका प्रेरणाले नै जीव कर्म गर्दछ, होइन र?

उत्तर—जीव कहिल्यै उत्पन्न भएको होइन, अनादि हो। जसरी ईश्वर र जगत्को उपादानकारण नित्य छ र शरीर र इन्द्रियका गोलक परमेश्वरद्वारा बनाइएका हुन् तर ती सबै जीवकै अधीन छन्। मन-कर्म-वचनबाट पाप-पुण्य गर्नेले नै फल भोग्दछ, ईश्वरले होइन। जस्तै कसैले पहाडबाट फलाम झिक्यो, त्यस फलामलाई कुनै व्यापारीले किन्यो, त्यसको पसलबाट कुनै कामीले लिएर झिक्ने, त्यसबाट लिने, तरवार बनाउने र तरवार समातेर राजाले दण्ड दिदैन तर जसले तरवारले मार्यो त्यसैले दण्ड पाउँछ। यसै गरी शरीर आदिलाई उत्पन्न गर्ने परमेश्वर त्यसका कर्मलाई भोग्ने नभई जीवबाट भोगाउने हुन्छ। परमेश्वर कर्म गराउने भएको भए कुनै पनि जीवले पाप गर्ने थिएन। किनकि परमेश्वर पवित्र र धार्मिक हुनाले कुनै जीवलाई पाप गर्न प्रेरणा गर्दैन। यसकारण जीव आफ्नो काम गर्न स्वतन्त्र छ। जसरी जीव आफ्नो काम गर्न स्वतन्त्र छ, त्यस्तै परमेश्वर पनि आफ्नो काम गर्न स्वतन्त्र छ।

प्रश्न—जीव र ईश्वरको स्वरूप, गुण कर्म, र स्वभाव कस्तो छ?

उत्तर—दुवै चेतनस्वरूप छन्। दुबैको स्वभाव पवित्र, अविनाशी र धार्मिकता आदि छ। तर सृष्टि उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय गर्नु, सबैलाई नियममा राख्नु, जीवहरू पाप पुण्यको फल दिनु इत्यादि परमेश्वरका धर्मयुक्त कर्म हुन्। र जीवका सन्तानोत्पत्ति, तिनको पालन, शिल्पविद्या आदि असल खराब कर्म हुन्। नित्य ज्ञान, आनन्द, अनन्तबल आदि ईश्वरका गुण हुन्। र जीवका—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञान्यत्मनो लिङ्गमिति॥

—न्यायदर्शन १।१।१०

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वषे प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥ —वैशेषिकदर्शन ३।२।४

(इच्छा) पदार्थहरू प्राप्तिको अभिलाषा, **(द्वेष)** दुःखादिको अनिच्छा, वैर, **(प्रयत्न)** पुरुषार्थ, बल, **(सुख)** आनन्द, **(दुःख)** विलाप, अप्रसन्नता, **(ज्ञान)** विवेक, चिन्नु यी तुल्यगुण हुन्। तर

वैशेषिकमा **(प्राण)** प्राणवायुलाई बाहिर निकाल्नु, **(अपान)** प्राणलाई बाहिरबाट भित्र लिनु, **(निमेष)** आँखा चिम्लनु, **(उन्मेष)** आँखा उघार्नु, **(मन)** निश्चय स्मरण र अहङ्कार गर्नु, **(गति)** हिंड्-डुल गर्नु, **(इन्द्रिय)** सबै इन्द्रियहरूलाई चलाउनु, **(अन्तर्विकार)** छुट्टाछुट्टै भोक-तिर्खा, हर्ष-शोक आदिले युक्त हुनु, यी जीवात्माका गुण परमात्मा भन्दा भिन्न हुन्। यिनैबाट आत्माको परिचय गर्नुपर्दछ, किनभने त्यो स्थूल छैन। आत्मा शरीरमा रहुन्जेल मात्र यी गुण प्रकाशित रहन्छन्। शरीरलाई छोडेर गएपछि शरीरमा यी गुण रहँदैनन्। कोही हुँदा हुने र नहुँदा नहुने गुण त्यसैका हुन्छन्। जस्तै दियो र सूर्य आदि नहुँदा उज्यालो नहुनु र हुँदा हुनु हुन्छ, त्यस्तै जीव र परमात्माको विशेषज्ञान गुणद्वारा हुन्छ।

प्रश्न—परमेश्वर त्रिकालदर्शी हुनाले भविष्यका कुरा जान्दछ,ऊ जस्तो निश्चय गर्नेछ, जीव त्यस्तै गर्नेछ। यसरी जीव स्वतन्त्र छैन। अनि जीवलाई ईश्वरले दण्ड पनि दिन सक्तैन, किनकि ईश्वरले आफ्नो ज्ञानद्वारा निश्चित गरे अनुसार नै जीव गर्दछ।

उत्तर—ईश्वरलाई त्रिकालदर्शी भन्नु मूर्खताको काम हो। किनभने भएर नरहने '**भूतकाल**' र नभएको हुने '**भविष्यकाल**' भनिन्छ। के ईश्वरलाई कुनै ज्ञान रहँदैन वा नभएको हुन्छ? यसकारण परमेश्वरको ज्ञान सदा एकरस अखण्डित वर्तमान रहिरहन्छ। भूत भविष्यत् जीवका लागि हो। हुँ जीवका कर्मको अपेक्षाले ईश्वरमा त्रिकालज्ञता छ, स्वतः छैन। जसरी जीव स्वतन्त्रतापूर्वक कर्म गर्दछ, त्यस्तै ईश्वर सर्वज्ञतापूर्वक जान्दछ। जस्तो ईश्वर जान्दछ त्यस्तै जीव गर्दछ। अर्थात् भूत, भविष्यत् र वर्तमानको ज्ञान र फल दिन ईश्वर स्वतन्त्र र जीव केही वर्तमानको ज्ञान कर्मगर्न स्वतन्त्र हुन्छ। ईश्वरको अनादि ज्ञान हुनाले जस्तो कर्मको ज्ञान हुन्छ त्यस्तै दण्ड दिने ज्ञान पनि अनादि हुन्छ। उसका दुबै ज्ञान सत्य हुन्। के कहिल्यै कर्मज्ञान सच्चा र दण्ड ज्ञान मिथ्या हुनसक्तछ? यसकारण यसमा कुनै दोष आउँदैन।

प्रश्न—जीव शरीरमा भिन्न रूपले विभु छ वा परिच्छिन्न?

उत्तर—परिच्छिन्न। विभु भएको भए जाग्रत, स्वप्न, सुषिप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाने, आउने आदि कहिल्यै हुनसक्नेथिएन। यस कारण जीवको स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म छ। परमेश्वर भने सूक्ष्म भन्दा पनि अत्यन्त सूक्ष्म, अनन्त, सर्वज्ञ र सर्वव्यापकस्वरूप छ। यसकारण जीव र परमेश्वरको व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध छ।

प्रश्न—एउटा वस्तु रहेको ठाउँमा अर्को वस्तु रहनसक्तैन। यसकारण जीव र ईश्वरको संयोग–सम्बन्ध हुन सक्तछ, व्यप्य–व्यापक होइन।

उत्तर—यो नियम समान आकृति भएका पदार्थमा घटित हुनसक्तछ, असमान आकृतिमा सक्तैन। जस्तै फलाम स्थूल, अग्नि सूक्ष्म हुन्छ, यसकारण फलाममा विद्युत अग्नि व्यापक भएर एउटै ठाउँमा दुबै रहन्छन्। त्यस्तै जीव परमेश्वरभन्दा स्थूल र परमेश्वर जीवभन्दा सूक्ष्म हुनाले परमेश्वर व्यापक र जीव व्याप्य हो। जसरी यो व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वरको हो, त्यस्तै सेव्य–सेवक, आधार–आधेय, स्वामी–भृत्य, राजा–प्रजा र पिता–पुत्र आदि सम्बन्ध पनि हुन्छन्।

प्रश्न—जीव र ईश्वर एउटै नभएर छुट्टाछुट्टै हुन् भने—

प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ १ ॥ —ऐतरेय ५ । ३

अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥ —बृहदारण्यक १ । ४ । १०

तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ —छान्दोग्य ६ । ८ । ७

अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥ —माण्डूक्य २

वेदका यी 'महावाक्य' हरूको अर्थ के हो?

उत्तर—यी वेदवाक्य नै होइनन्, यी त ब्रह्मणग्रन्थका वचन हुन्। सत्यशास्त्रहरूमा कतैपनि यिनको नाम 'महावाक्य' लेखिएको छैन। अर्थात् **(अहम्)** म **(ब्रह्म)** ब्रह्ममा स्थित **(अस्मि)** हुँ। यहाँ तात्स्थ्योपाधि छ। जस्तै—'**मञ्चाः क्रोशन्ति**' मञ्च पुकार्दछन्। मञ्च जडवस्तु हुनाले तिनमा पुकार्ने समार्थ्य छैन, त्यसकारण मञ्चमा बसेका मानिस पुकारर्दछन्, यस्तो अर्थ हुन्छ। यस प्रसङ्गमा पनि यस्तै बुझिनुपर्दछ। कसैले ब्रह्ममा स्थित सबै पदार्थ छन्, अनि जीवलाई ब्रह्मस्थ भन्नुमा के विशेष रहस्य छ त? भन्छ भने यसको उत्तर यो हो कि सबै पदार्थ ब्रह्मस्थ भएतापनि जस्तो साधर्म्ययुक्त नजीक स्थित जीव हो, त्यस्तो अरू कुनै पदार्थ छैन। अनि जीवलाई ब्रह्मको ज्ञान हुन्छ र मुक्तिमा ऊ ब्रह्मको साक्षात्सम्बन्धमा रहन्छ। यसकारण जीवको ब्रह्मसँग तात्स्थ्य वा तत्सहचरितोपाधि छ अर्थात् ब्रह्मको सहचारी जीव हो। यसबाट जीव र ब्रह्म एउटै होइन भन्ने बुझिन्छ। जस्तै कसैले कसैसँग 'म र यो एउटै हौं अर्थात् एक अर्काको अविरोधी हौं' भन्दछ, त्यस्तै समाधिस्थ भएर परमेश्वरमा प्रेमबद्धभै निमग्न हुने जीवले 'म र ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी, एक अवकाशस्थ हौं' भन्न सक्तछ। परमेश्वरको गुण–कर्म स्वभाव अनुकूल आफ्ना गुण–कर्म–स्वभावलाई बनाउने जीवले नै साधर्म्यद्वारा ब्रह्मसँग एकताको कुरा भन्नसक्तछ।

प्रश्न—त्यसो भए यसको अर्थ कसरी गर्नेछौ?—**(तत्)** ब्रह्म, **(त्वं)** तिमी जीव **(असि)** हौ। हे जीव! **(तत्)** त्यो ब्रह्म **(त्वम्)** तिमी नै **(असि)** हौ।

उत्तर—तिमी **तत्** शब्दको के अर्थ लगाउँछौ?

प्रश्न—ब्रह्म। **उत्तर**—ब्रह्मपदको अनुवृत्ति कहाँबाट ल्ययौ?

प्रश्न—'**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म,** यस पूर्ववाक्यबाट।

उत्तर—तिमीले यस छान्दोग्योपनिषद्लाई देखेका पनि रहेनछौ। देखेका भए नभएको 'ब्रह्म' शब्दको पाठ बताएर झूठ किन बोल्नेथियौ र? '**छान्दोग्य**'मा त—'**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**' (६ । २ । १) यस्तो पाठ छ, त्यहाँ 'ब्रह्म शब्द छैन।

प्रश्न—त्यसो भए तपाई 'तत्' शब्दको के अर्थ लगाउनुहुन्छ त?

उत्तर—'**स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्य ꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति**'॥ —छान्दोग्य ६ । ८ । ७

त्यो परमात्मा जान्नयोग्य छ, जुन परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म र सबै जगत् र जीवको आत्मा हो। त्यही सत्यस्वरूप र आफ्नो आत्मा आफैं हो। हे प्रियपुत्र श्वेतकेतु! '**तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि**' तिमी त्यस अन्तर्यामी परमत्मायुक्त छौ। यही अर्थ उपनिषद्हरू अनुकूल छ। किनकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोऽयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
आत्मनोऽन्तरोमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

—यो बृहदारण्यकको (माध्यन्दिन शत० १४ । ६ । ७ । ३२) वचन हो।

महर्षि याज्ञलवल्क्य आफ्नी स्त्री मैत्रेयीसँग भन्नुहुन्छ—हे मैत्रेयी! परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीवमा स्थित र जीवात्मा भन्दा भिन्नै छ। मूढ जीवात्मा '**त्यो परमात्मा म मा व्याप्त छ**' भन्ने कुरा जान्दैन। जीवात्मा जुन परमेश्वरको शरीर हो अर्थात् जसरी शरीरमा जीव रहन्छ त्यस्तै जीवमा परमेश्वर व्याप्त छ। जीवात्मा भन्दा भिन्नै रहेर, जीवका पाप–पुण्यको साक्षी भएर, ती पाप–पुण्यको फल जीवलाई दिएर नियममा राख्तछ। त्यही अविनाशीस्वरूप तिम्रो पनि अन्तर्यामी अर्थात् तिमी भित्र व्यापक छ, त्यसलाई तिमी जान, इत्यादि वचनहरू के कोही अर्कै अर्थ गर्नसक्तछ?

'**अयमात्मा ब्रह्म**' अर्थात् समाधिदशामा योगीलाई परमेश्वर प्रत्यक्ष

भएपछि ऊ 'यो मभित्र व्यापक ब्रह्म नै सर्वत्र व्यापक छ' भन्दछ। यसकारण हिजोआजका जीव र ब्रह्मलाई एउटै मान्ने वेदान्तीहरू वेदान्तशास्त्रलाई जान्दैनन्।

प्रश्न—

अनेनात्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥ १ ॥

—छान्दोग्य उप० ६ । ३ । २

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥ २ ॥

—तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्द वल्ली ६ ॥

परमेश्वर भन्दछ—म जगत् र शरीर रचना गरेर जगत्मा व्यापक र जीवरूप भएर शरीरमा प्रविष्ट हुँदै नाम रूपको व्याख्या गर्दछु ॥ १ ॥ परमेश्वरले जगत् र शरीरलाई बनाएर त्यसमा ऊ आफैं प्रविष्ट भयो ॥ २ ॥ इत्यादि श्रुतिहरूको अर्कै अर्थ कसरी गर्न सक्छौ ?

उत्तर—तिमीले पद, पदार्थ र वाक्यार्थ जानेकाभए यस्तो अनर्थ कहिल्यै गर्ने थिएनौ। यहाँ यस्तो बुझ—एउटा प्रवेश र अर्को अनुप्रवेश अर्थात् पछिको प्रवेश भन्ने बुझिन्छ। परमेश्वर शरीरमा प्रविष्ट भएका जीवहरूसित अनुप्रविष्टजस्तै भएर वेदद्वारा सबै नाम–रूप आदि विद्यालाई प्रकट गर्दछ। र शरीरमा जीवलाई प्रवेश गराएर आफू जीवभित्र अनुप्रविष्ट भैरहेको छ। तिमीले 'अनु' शब्दको अर्थ जानेका भए त्यस्तो उल्टो अर्थ कहिल्यै गर्ने थिएनौ।

प्रश्न—'**सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः, स इदानीं प्रावृट्समये मथुरायां दृश्यते**' अर्थात् जुन देवदत्तलाई मैले गर्मीको याममा काशीमा देखेको थिएँ, त्यसैलाई वर्षा कालमा मथुरामा देख्तछु। यहाँ त्यो काशी देश, उष्णकाल र यो मथुरा देश वर्षाकाललाई छोडेर शरीरमात्रमा लक्ष्य गरेर देवदत्त लक्षित भएको छ। त्यस्तै यस '**भागत्यागलक्षणा**' द्वारा ईश्वरको परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि र जीवको यो देश, । काल, अविद्या र अल्पज्ञता उपाधि छोडेर चेतनमात्रमा लक्ष्य लिइएकाले एउटै ब्रह्म वस्तु दुबैमा लक्षित हुन्छ। यस '**भागत्यागलक्षणा**' अर्थात् केही ग्रहण गर्नु र केही छोड्नु, जस्तै—सर्वज्ञत्व आदि वाच्यार्थ ईश्वर र अल्पज्ञत्व आदि वाच्यार्थ जीव छोडेर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ ग्रहण गर्नाले अद्वैत सिद्ध हुन्छ। यसवारे केही भन्नसक्तछौ ?

उत्तर—पहिलो कुरा तिमी जीव र ईश्वरलाई नित्य मान्दछौ कि अनित्य ?

प्रश्न—यी दुबैको उपाधिजन्य कल्पित हुनाले अनित्य मान्दछौं ?

उत्तर—त्यस उपाधिलाई नित्य वा अनित्य के मान्दछौ ?

प्रश्न—हाम्रो विचारमा—

जीवेशौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः ।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥
कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

यी '**संक्षेपशीरीरक**' र '**शारीरकभाष्य**' का कारिका हुन्। हामी वेदान्ती पहिलो जीव, दोस्रो ईश्वर, तेस्रो ब्रह्म, चौथो जीव र ईश्वर विशेष भेद, पाँचौं अविद्या=अज्ञान र छैठौं अविद्या र चेतन योग यी छ पदार्थलाई अनादि मान्दछौं। तर एउटा ब्रह्म अनादि अनन्त र अरू पाँच चाहिं अनादि सान्त हुन्, जस्तो कि प्रागभाव हुन्छ। अज्ञान रहेसम्म यी पाँचै रहन्छन् र यी पाँचैको आदि थाहा हुँदैन यसकारण अनादि, र ज्ञान भएपछि रहँदैनन् यसकारण सान्त अर्थात् नाशवान् भनिन्छ।

उत्तर—तिम्रा यी दुबै श्लोक अशुद्ध छन्। किनकि तिम्रै मतमा अविद्याको योग विना जीव र मायाको योग विना ईश्वर सिद्ध हुनसक्तैन। यसरी '**तच्चितोर्योगः**' तिमीलेनै मनेको छैठौं पदार्थ रहँदैन। किनकि त्यो अविद्या माया जीव ईश्वरमा चरितार्थ भयो। ब्रह्म माया र अविद्याको योग विना ईश्वर बन्दैन। फेरि ईश्वरलाई अविद्या र ब्रह्म भन्दा छुट्टै गणना गर्नु व्यर्थ हुन्छ। यसकारण तिम्रो मतमा ब्रह्म र अविद्या यी दुईमात्र पदार्थ सिद्ध हुन्छन्, छ पदार्थ हुँदैनन्।

अर्को कुरा, अनन्त, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वव्यापक ब्रह्ममा अज्ञान सिद्ध भएमा मात्र प्रथम कार्योपाधि कारणोपाधिद्वारा जीव र ईश्वर सिद्ध हुनसक्तछ। उसको एकदेशमा स्वाश्रय र स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मान्दछौ भने सबै ब्रह्म शुद्ध हुनसक्तैन। एकदेशमा अज्ञान मान्दछौ भने ऊ परिच्छिन्न हुनाले आउने–जाने गर्नेछ। जहाँ–जहाँ जान्छ, त्यहाँ–त्यहाँको ब्रह्म अज्ञानी र जुन जुन ठाउँलाई छोड्दैजान्छ त्यस त्यस ठाउँका ब्रह्म ज्ञानी भैरहनेछ। यसरी कुनै ठाउँको ब्रह्मलाई अनादि, शुद्धयुक्त भन्न सक्नेछैनौ। अनि अज्ञानको सीमामा रहेको ब्रह्मले अज्ञानलाई नै जान्नेछ। बाहिरी र भित्री ब्रह्मका टुक्रा र हुनेछन्। 'टुक्रा भए होऊन् ब्रह्मको के हानि ?' भन्दछौ भने ऊ अखण्ड भएमा अज्ञानी भएन। अर्कोकुरा ज्ञानका अभाव वा विपरीत ज्ञान पनि गुण हुनाले कुनै द्रव्यसंग नित्यसम्बन्धले रहने छ। यस्तो हो भने, समवाय सम्बन्ध

हुनाले अनित्य कहिल्यै हुनसक्तैन। अनि जस्तै शरीरको एक अङ्गमा खटिरो हुनाले पूरै शरीरमा दु:ख फैलिन्छ, त्यस्तै एक ठाउँमा अज्ञान–सुख–दु:ख –क्लेश हुनाले सम्पूर्ण ब्रह्म दु:खादिको अनुभव गर्ने हुनेछ र सबै ब्रह्मलाई शुद्ध बताउन सक्नेछैनौ। त्यस्तै कार्योपाधि अर्थात् अन्त:करण उपाधि योगले ब्रह्मलाई जीव मान्दछौं भने हामी 'ब्रह्म व्यापक छ वा परिच्छन्न?' भन्नेकुरा सोद्धछौं। 'ब्रह्म व्यापक र उपाधि परिच्छिन्न छ अर्थात् एकदेशी र पृथक्–पृथक् छ' भन्छौ भने 'अन्त:करण चल्ने–फिर्ने गर्छ वा गर्दैन' भन्ने कुरा सोद्धछौं।

प्रतिपक्षको उत्तर—चल्दछ, फिर्दछ।

सिद्धान्तपक्षको प्रश्न—अन्त:करणसँगै ब्रह्मपनि चल्ने–फिर्ने गर्दछ वा स्थिर रहन्छ?

प्रतिपक्षको उत्तर—स्थिर रहन्छ।

सिद्धान्तपक्षको प्रश्न—अन्त:करण जब जुन–जुन ठाउँलाई छोड्दछ, त्यस–त्यस ठाउँको ब्रह्म अज्ञानरहित र जहाँ–जहाँ अन्त:करण पुग्दछ त्यस–त्यस ठाउँको शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी हुन्छ होला। यसबाट मोक्ष र बन्धन पनि क्षण भङ्गुर हुनेछ। जसरी अरूले देखेकालाई अर्कैले सम्झन सक्तैन त्यस्तै अघिल्लो दिन देखिए–सुनिएको वस्तु वा कुराको ज्ञान रहनसक्तैन। किनकि जुन बेला देखे–सुनेको थियो त्यो अर्कै ठाउँ र अर्कै समय थियो र स्मरण गर्ने ठाउँ र समय अर्कै हुनेछ।

ब्रह्म एउटै छ भन्छौ भने ऊ सर्वज्ञ किन होइन? अन्त:करण भिन्न–भिन्न हुनाले ऊ पनि भिन्न–भिन्न हुन्छ भन्छौ भने ऊ जड ठहर्नेछ र उसमा ज्ञान हुन सक्नेछैन। न त केवल ब्रह्मलाई न केवल अन्त:करणलाई ज्ञान हुन्छ तर अन्त:करणस्थ चिदाभासलाई ज्ञान हुन्छ भन्छौ भनेपनि चेतनलाई नै अन्त:करणद्वारा ज्ञान भयो भने ऊ नेत्रादिद्वारा अल्पज्ञ किन हुन्छ? यसकारण कारणोपाधि र कार्योपाधिको योगले ब्रह्मलाई जीव र ईश्वर बनाउन सक्नेछौ। तर ईश्वर नाम ब्रह्मको हो ब्रह्म भन्दा भिन्न अनादि, अनुत्पन्न अमृतस्वरूप जीवको नाम जीव हो। तिमी 'जीव चिदाभासको नाम हो' भन्छौ भने ऊ क्षणभङ्गुर हुनाले नष्ट भई जानेछ, अनि मोक्षको सुख कसले भोग्ने? यसकारण ब्रह्म जीव र जीव ब्रह्म न कहिल्यै भएको थियो, न छ र हुने पनि छैन।

प्रश्न—त्यसो भए '**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**'॥ (छान्दोग्य) अद्वैतसिद्धि कस्तो हुने छ? हाम्रो मतमा त ब्रह्म भन्दा पृथक् कुनै स्वजातीय, विजातीय र स्वागत अवयवहरू भेद न हुनाले

एउटा ब्रह्म नै सिद्ध हुन्छ। दोस्रो जीव छ भने अद्वैतसिद्धि कसरी हुन सक्तछ र?

उत्तर—यस भ्रममा परेर किन डराउँछौ? 'विशेष्य–विशेषण' विद्याको फल के हो? भन्ने कुरा बुझ। '**व्यावर्त्तकं विशेषणं भवतीति**' विशेषण भेदकारक हुन्छ भन्छौ भने '**प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीत**' विशेषण प्रवर्तक र प्रकाशक पनि हुन्छ भन्ने कुरा पनि मान। त्यसो हुँदा अद्वैत विशेषण ब्रह्मको हो भन्ने कुरा बुझ। यसमा अद्वैतले वस्तु अर्थात् अनेक जीव तत्व देखि ब्रह्मलाई पृथक् गर्दछ, यही यसमा व्यावर्त्तक धर्म हो र ब्रह्म एउटै हुने कुराको प्रवृत्ति गर्नु विशेषणको प्रकाशक धर्म हो। जस्तै—'**अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्य देवदत्तः अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिंहः**' कसैले कसैसँग भन्यो–यस नगरमा अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त र यस सेनामा अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह छ। यसबाट के सिद्ध भयो भने यस शहरमा देवदत्त जस्तो अर्को धनाढ्य र यस सेनामा विक्रमसिंह जस्तो शूरवीर अरू कुनै छैन, सो भन्दा कम चाहिं हुन् र पृथ्वी आदी जड् पदार्थ पशु आदी प्राणी र वृक्षादि पनि छन्, तिनको निषेध हुँदैन। त्यस्तै ब्रह्म जस्तो जीव वा प्रवृत्ति होइनन्, सो भन्दा कम चाहिं हुन् भन्ने कुरा स्पष्ट हुन्छ।

यसबाट के सिद्ध भयो भने ब्रह्म सदा एउटै छ र जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्त्व अनेक छन्। ती तत्वदेखि छुट्याएर ब्रह्मको एकत्व सिद्ध गर्ने विशेषण अद्वैत वा अद्वितीय हो। यसबाट जीव वा प्रकृतिको र कार्यरूप जगत्को अभाव र निषेध हुनसक्तैन। यी सब छन् तर ब्रह्म तुल्य छैनन्। यसबाट अद्वैतसिद्ध वा द्वैतसिद्धिमा कुनै बाधा पर्दैन। न डराई, विचलित नभई सोच र सम्झ।

प्रश्न—ब्रह्मका सत्, चित्, आनन्द र जीवका अस्ति, भाति, प्रियरूपसँग एकता हुन्छ। अनि किन खण्डन गर्दछौ त?

उत्तर—केही साधर्म्य हुँदैमा एकता हुनसक्तैन। जसरी पृथ्वी जड, दृश्य त्यस्तै जल, अग्नि आदि पनि जड र दृश्य छन्, यत्तिकैमा एकता हुन सक्तैन। यिनमा वैधर्म्य–भेदकारम अर्थात् विरुद्ध धर्म, जस्तै गन्ध, रूक्षता, कठोरता आदि गुण पृथ्वीका र रस, द्रवत्व कोमलता मानिस र कीरा आँखाले देख्ने, मुखले खाने र खुट्टाले हिंड्ने हुन्छन् तथापि मानिसको आकृति, दुई खुट्टा र कीराको आकृति, अनेक खुट्टा आदि भिन्न–भिन्न हुनाले एकता हुँदैन। त्यस्तै परमेश्वरका अनन्तज्ञान, आनन्द, बल, क्रिया निर्भ्रान्तित्व र व्यापकता जीव भन्दा र जीवका अल्पज्ञान,

अल्प बल, अल्प स्वरूप सबै भ्रान्तित्व र परिच्छिन्नता आदि गुण ब्रह्मभन्दा भिन्न हुनाले जीव र परमेश्वर एउटै होइनन्। किनकि परमेश्वर अतिसूक्ष्म र जीव ऊ भन्दा केही स्थूल हुनाले यिनको स्वरूप पनि भिन्नै छ।

प्रश्न—अथोदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति। (तै० उप० ब्रह्म० अनु० ७) **द्वितीयाद् वै भयं भवति।** यो बृहदारण्यकको (१।४।२) वचन हो। ब्रह्म र जीवमा अलिकति पनि भेद गर्नेलाई भयहुन्छ, किनकि भय अर्कोदेखि नै हुन्छ।

उत्तर—यसको यो अर्थ होइन। यसको अर्थ हो—परमेश्वरको निषेध गर्ने, परमात्मालाई कुनै एउटा स्थान वा समयमा परिच्छिन्न मान्ने, उसको आज्ञा र गुण कर्म स्वभाव विरुद्ध हुने अथवा कुनै अर्को मानिससँग वैर गर्ने जीवलाई भय हुन्छ। किनकि दोस्रो बुद्धि अर्थात् ईश्वरसँग मेरो कुनै सम्बन्ध छैन वा कुनै मानिससँग 'तँलाई म केही ठान्दिन, तँ मेरो केही गर्ने सक्तैनस्' आदि भन्ने, कसैको हानि गर्ने र दु;ख दिइरहनेलाई तीबाट भय हुन्छ। कुनै किसिमको विरोध न भएमा भने एक भनिन्छ। जस्तै संसारमा 'देवदत्त यज्ञदत्त र विष्णु भित्र एउटै छन्, अर्थात् अविरोधी छन्' भनिन्छ। विरोध नहुँदा सुख र विरोधबाट दु:ख प्राप्त हुन्छ।

प्रश्न—ब्रह्म र जीवको सधैं एकता–अनेकता रहन्छ अथवा कुनै वेला दुबै मिलेर एउटै पनि हुन्छन् वा हुँदैनन्?

उत्तर—अहिले माथि यसको केही उत्तर दिइसकिएको छ। तर साधर्म्य अन्वयभावद्वारा एकता हुन्छ जसरी आकाशभन्दा मूर्त द्रव्य जडत्व हुनाले र कहिल्यै छुट्टै नरहनाले एकता हुन्छ र आकाश विभू, सूक्ष्म, रूप, अनन्त आदि गुणयुक्त र मूर्त्त द्रव्य परिच्छिन्न, दृश्यत्व आदि वैधर्म्य हुनाले भेद हुन्छ। अर्थात् जसरी पृथ्वी आदि द्रव्य आकाशभन्दा भिन्नै कहिल्यै रहँदैनन्, किनकि अन्वय अर्थात् आकाश विना मूर्त्तद्रव्य कहिल्यै रहनसक्तैन, र व्यक्तिरेक अर्थात् स्वरूपमा भिन्न हुनाले पृथकता हुन्छ। त्यस्तै ब्रह्म व्यापक हुनाले जीव र पृथ्वी आदि द्रव्य ऊ देखि अलग रहदैनन् र स्वरूपमा एउटै पनि हुँदैनन्। जसरी घर बनाउनु अघि छुट्टाछुट्टै ठाउँमा माटो, काठ र फलाम आदि पदार्थ आकाशमा रहन्छन्, घर बनिसकेपछि पनि आकाशमै रहन्छन् र त्यो घर नष्ट भई सकेपछि पनि भिन्न–भिन्न ठाऊँमा रहेका त्यस घरका सबै अवयव आकाश मैं रहन्छन् र स्वरूपमा भिन्न हुनाले ती अवयव न कहिल्यै एक भएका थिए, न हुन्छन् र कहिल्यै एक हुने पनि छैनन्।

यसै गरी जीव तथा सबै संसारका पदार्थ परमेश्वरमा व्याप्त हुनाले तिनैकालमा परमेश्वरदेखि अभिन्न र स्वरूपले भिन्नै हुनाले भने एउटै कहिल्यै हुन सक्तैनन्।

हिजो–आजका वेदान्तीहरूको दृष्टि कानो व्यक्ति जस्तै अन्वय तर्फ मात्र परेर व्यतिरेक भावदेखि छुटेर विरुद्ध भएको छ। सगुण–निर्गुणता, अन्वय–व्यतिरेक, साधर्म्य–वैधर्म्य र विशेष्य विशेषणभाव नभएको कुनै पनि द्रव्य हुँदैन।

प्रश्न—परमेश्वर सगुण छ वा निर्गुण?

उत्तर—सगुण पनि छ, निर्गुण पनि छ।

प्रश्न—के एउटै दापमा दुईवटा तरवार कहिल्यै रहनसक्तछन् र? एउटै पदार्थमा सगुणता र निर्गुणता पनि कसरी रहनसक्तछ?

उत्तर—जसरी जडपदार्थमा रूप आदि गुण त छन् तर ज्ञान चेतन पदार्थका गुण जडपदार्थमा छैनन्, त्यस्तै चेतनमा इच्छा आदि गुण त छन् तर रूप आदि जडका गुण छैनन्। यसकारण—'**यद् गुणैस्सह वर्त्तमानं तत् सगुणम्**', '**गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्**' गुण भएकालाई '**सगुण**' र गुण नभएकालाई '**निर्गुण**' भनिन्छ। आ–आफ्ना स्वभाविक गुण भएका र अरू विरोधीका गुण नभएका हुनाले सबै पदार्थ सगुण र निर्गुण हुन्छन्। केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता मात्र भएको कुनैपनि पदार्थ हुँदैन, एउटै पदार्थमा सदा सगुणता र निर्गुणता पनि रहन्छ। त्यस्तै परमेश्वर आफ्ना अनन्तज्ञान, बाल आदि गुण सहित हुनाले '**सगुण**' र रूप आदि जड पदार्थका तथा द्वेष आदि जीवका गुणरहित हुनाले '**निर्गुण**' भनिन्छ।

प्रश्न—संसारमा निराकारलाई निर्गुण र साकारलाई सगुण भन्दछन्। अर्थात् जब परमेश्वरले जन्म लिएको हुँदैन तब '**निर्गुण**' र अवतार लिदा '**सगुण**' भनिन्छ, होइन र?

उत्तर—यो कल्पना अज्ञानी र अविद्वान्हरूको मात्र हो। विद्या नजान्नेहरू पशुजस्तै मनपरी बक्–बक् गर्दछन्। सन्निपातका विरामीले जथाभावी बोलेजस्तै अविद्वान्ले भनेका वा लेखेका कुरालाई व्यर्थ सम्झनुपर्दछ, तिनलाई मान्नुहुन्न।

प्रश्न—परमेश्वर रागी छ वा विरागी छ?

उत्तर—न रागी, न विरागी कुनैपनि छैन। किनकि 'राग' आफूभन्दा भिन्न उत्तम पदार्थहरूमा हुन्छ। न त कुनै पदार्थ परमेश्वरभन्दा भिन्न छ, न उत्तम छ। यसकारण उसमा राग हुन सक्तैन। त्यस्तै प्राप्त पदार्थको

त्याग गर्नेलाई विरक्त भनिन्छ। ईश्वर सर्वव्यापक हुनाले कुनै पदार्थलाई छोड्नैसक्तैन, यसकारण ऊ विरक्त पनि होइन।

प्रश्न—ईश्वरमा इच्छा छ वा छैन?

उत्तर—त्यस्तो इच्छा छैन। किनकि आप्राप्त, उत्तम र प्राप्तिबाट सुखविशेष हुने पदार्थ भए ईश्वरमा इच्छा हुने थियो। न त कुनै पदार्थ ईश्वरदेखि अप्राप्त छ, न उत्तम छ र पूर्ण सुखयुक्त हुनाले सुखको अभिलाषा पनि उसमा छैन। यस कारण ईश्वरमा कुनै किसिमको इच्छा त हुनैसक्तैन, हँ, ऊ ईक्षण गर्दछ अर्थात् सबै किसिमका विद्याको दर्शन र सम्पूर्ण सृष्टि बनाएर उसको यथावत् देखरेख भने ऊ गरिनैरहन्छ। इत्यादि संक्षिप्त विषयबाट नै विद्वानन्हरू विस्तारमा बुझ्नेछन्।

संक्षेपमा ईश्वर विषयमा लेखेर अब वेद विषय लेखिन्छ—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भन्तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

—अथर्ववेद। कां० १०। प्रपा० २३। अनु० ४। मं० २०

जो बाट ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद र अथर्ववेद प्रकाशित भएका हुन्, त्यो कुनचाहिं देव हो? यसको **उत्तर**—सबैलाई उत्पन्न गरेर धारण गर्ने परमात्मा हो।

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुर्वेद। अ० ४०। मं० ८

स्वयम्भू! सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर नै सनातन जीवरूपी प्रजाका कल्याणका लागि यथावत् रीतिपूर्वक वेदद्वारा सबै विद्याका उपदेश गर्दछ।

प्रश्न—परमेश्वरलाई निराकार वा साकार के मान्दछौ?

उत्तर—निराकार मान्दछौं।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार छ भने मुखबाट वर्णहरू उच्चारणविना वेदविद्या उपदेश कसरी हुन सक्योहोला? किनकि वर्ण उच्चारणका लागि तालु आदि स्थान र जिब्राको प्रयत्न त अवश्य हुनैपर्दछ।

उत्तर—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् र सर्वव्यापक हुनाले आफ्नो व्याप्तिद्वारा जीवलाई वेदविद्याका उपदेश गर्न मुख आदि कुनै आवश्यकता पर्दैन। परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक हुनाले जीवमा रहेका स्वरूपद्वारा आफ्नो अखिल वेदविद्या उपदेश जीवात्मामा प्रकाशित गर्दछ। त्यसपछि त्यो मानिस आफ्ना मुखबाट उच्चारण गरेर अरूलाई सुनाउँदछ। यसकारण ईश्वरमा यो दोष लाग्नसक्तैन।

प्रश्न—परमेश्वरबाट क–कसका आत्मामा कहिले वेद प्रकाश गरियो त?

उत्तर—अग्नेऋग्वेदो वायोयजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥

—शतपथ, ११।५।८।३

प्रथम सृष्टि आदिमा परमात्माले अग्नि, वायु, आदित्य र अङ्गिरा ऋषिका आत्मामा एक–एक वेद प्रकाश गरे।

प्रश्न—

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥

—यो उपनिषद्को (श्वेताश्वतर ६।१८।) वचन हो।

यस वाक्यबाट ब्रह्माजीका हृदयमा वेद उपदेश गरेको देखिन्छ, अनि किन अग्नि आदि ऋषिहरूका आत्मामा भनियो?

उत्तर—अग्नि आदिबाट ब्रह्मको आत्मामा स्थापित गराइएको हो। हेर, मनुस्मृतिमा के लेखिएको छ—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

—मनुस्मृति १।२३

परमात्माले सृष्टि आदिमा मानिसलाई उत्पन्न गरेर अग्नि आदि चारै महर्षिहरूद्वारा चारै वेद ब्रह्मालाई प्राप्त गराए, अनि ब्रह्माले अग्नि, वायु, आदित्य र अङ्गिराबाट ऋग्, यजुः साम र अथर्ववेदलाई ग्रहण गरे।

प्रश्न—वेदको प्रकाश ती चार ऋषिहरूमा नै गरेर अरूमा नगर्नाले ईश्वर पक्षपाती भएन र?

उत्तर—सबै जीवहरूमा ती चार नै सर्वाधिक पवित्रात्मा थिए। अरू ती जस्ता थिएनन्। यसकारण पवित्र विद्याको प्रकाश तिनैमा गरेको हो।

प्रश्न—वेदको प्रकाश कुनै देशको भाषामा नगरेर संस्कृतम किन गरिएको हो?

कुनै देशका भाषामा वेद प्रकाश गरेको भए ईश्वर पक्षपाती हुन्थ्यो। किनकि त्यसो गर्दा जुन देशको भाषामा वेद प्रकाश गरिन्थ्यो त्यस देशवासीलाई वेद पढ्न पढाउन सजिलो हुन्थ्यो र विदेशीहरूलाई कठिनाइ पर्थो। यसैले संस्कृतमा नै प्रकाश गरेको हो। यो कुनै देशविशेषको भाषा होइन र वेदभाषा अरू सबै भाषाहरूकै कारण हो। त्यसैमा वेदका प्रकाश भयो। जसरी पृथ्वी आदि ईश्वर सृष्टि सबै देश र सबै

देशवासीका लागि एकनास र सबै शिल्पविद्याकै कारण हो, त्यस्तै परमेश्वरका विद्याको भाषा पनि एकनासै हुनुपर्दछ। त्यसो हुँदा सबै देशवासीहरूलाई पढ्न-पढाउन समान परिश्रम लाग्ने हुनाले ईश्वर पक्षपाती होइन। सबै भाषाहरूका कारण पनि यही भाषा हो।

प्रश्न—वेद ईश्वरले नै बनाएका हुन्, अरूले होइन भन्ने कुराको के प्रमाण छ ?

उत्तर—ईश्वर पवित्र, सबै विद्या जान्ने, शुद्ध गुणकर्मस्वभाव भएका, न्यायकारी, दयालु आदि गुणशाली भएजस्तै ईश्वरका गुण, कर्म, स्वभाव अनुकूल कथन भए पुस्तक ईश्वरले नै बनाएका हो, अरूले होइन। सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा आप्त, पवित्रात्माको व्यवहार विरुद्ध कथन नहुनाले वेद ईश्वरद्वारा उपदिष्ट हुन्। ईश्वरको ज्ञान भ्रमरहित भए जस्तै भ्रान्तिरहित ज्ञान प्रतिपादन गरिएको पुस्तक ईश्वरोक्त हो। जस्तो परमेश्वर छ त्यस्तै सृष्टिक्रम रहेको, त्यस्तै ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण र जीव प्रतिपादन भएको पुस्तक परमेश्वरोक्त हो, वेदमा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण विषय विरुद्ध र शुद्धात्माको स्वभावविरुद्ध छैन। अरू बाइबल कुरान आदि यस्ता छैनन्। यस कुराको स्पष्ट व्याख्या बाइबल र कुरान प्रकरणमा तेह्रौं र चौधौं समुल्लासमा गरिनेछ।

प्रश्न—ईश्वरले वेद बनाउनुपर्ने आवश्यकतै देखिदैन किनभने मानिसहरू क्रमशः ज्ञान बढाउँदै गएर पछि पुस्तक पनि बनाइहाल्ने थिए।

उत्तर—कहिल्यै बनाउन सक्नेथिएनन्। किनभने कारण विना कार्योत्पत्ति हुनसक्तैन। जस्तै जङ्गली मानिस सृष्टिलाई देखेर पनि विद्वान् हुँदैनन् र उनलाई शिक्षा मिल्यो भने विद्वान् हुन्छन्। अहिले पनि कसैबाट शिक्षा नलिई कोही पनि विद्वान् हुँदैन। यसैगरी परमात्माले आदिसृष्टिका ती ऋषिहरूलाई वेद विद्या नपढाएको भए र उनीहरूले अरूलाई नपढाएको भए सबै अविद्वान् नै रहनेथिए। जस्तै कुनै बालकलाई जन्मेदेखि नै एकान्त ठाउँमा, अविद्वान्हरू वा पशुहरूसँग राखेमा त्यसको जस्तो सँगत हुन्छ त्यो बालक त्यस्तै नै हुन्छ। यसको दृष्टान्त जङ्गली भील आदि हुन्। जबसम्म आर्यावर्त्त देशबाट शिक्षा अन्यत्र गएको थिएन तब सम्म मिश्र, यूनान र यूरोप आदि देशका मानिसहरूमा कुनै पनि विद्या थिएन। इङ्गल्याण्डका कोलम्बस आदि व्यक्ति अमेरिकामा नगएसम्म पनि त्यहाँका मानिस हजारौं, लाखौं, करोडौं वर्ष देखि मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थिए। पछि सुशिक्षा पाएर

विद्वान् भएका हुन्। त्यस्तै परमात्माबाट सृष्टि आदिमा विद्या, शिक्षा पाएर उत्तरोत्तर कालमा विद्वान् हुँदै आएका हुन्।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥

—योगसूत्र, समाधिपाद २६

जसरी वर्तमान समयमा हामी अध्यापकसंग पढेर नै विद्वान् हुन्छौं त्यस्तै परमेश्वर सृष्टि आरम्भमा उत्पन्न भएका अग्नि आदि ऋषिहरूको गुरु हो। जसरी जीव सुषुप्ति र प्रलयमा ज्ञानरहित हुन्छन्, परमेश्वर त्यस्तो हुँदैन। उसको ज्ञान नित्य छ। यसकारण निमित्त नभई नैमित्तिक प्रयोजन कहिल्यै सिद्ध हुँदैन भन्नेकुरा निश्चित जान्नुपर्दछ।

प्रश्न—वेद संस्कृत भाषामा प्रकाशित भए, ती अग्नि आदि ऋषिहरू भने संस्कृत भाषा जान्दैनथिए, अनि उनीहरूले वेदको अर्थ कसरी बुझे त ?

उत्तर—परमेश्वरले बुझाएर। धर्मात्मा योगी महर्षिहरू जब-जब जुन-जुन कुराको अर्थ जान्ने इच्छाले ध्यानावस्थित भएर परमेश्वरका स्वरूपमा समाधिस्थ भए तब-तब परमात्माले अभीष्ट मन्त्रका अर्थ ज्ञानदिए। धेरैका आत्मामा वेदार्थ प्रकाश भएपछि ऋषिमुनिहरूले त्यो वेदार्थ र ऋषिमुनिहरूका इतिहास समेत राखेर ग्रन्थ बनाए। तिनको नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म=वेद त्यसको व्याख्या गरिएका ग्रन्थ हुनाले ब्राह्मण नाम भएको हो। र—

ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान्सम्प्रादुः॥ —निरुक्त

जुन-जुन मन्त्रको अर्थ दर्शन जुन-जुन ऋषिलाई सर्वप्रथम भयो त्यस अघि त्यस मन्त्रको अर्थ कसैले प्रकाशित गरेको थिएन भने ती ऋषिले त्यसमन्त्रको अर्थ प्रकाशित गरे र अरूलाई पढाए। यसकारण हालसम्म पनि त्यस-त्यस मन्त्रसँग त्यस-त्यस ऋषिको नाम सम्झनाका लागि लेखिने गरिएको छ। कसैले ऋषिहरूलाई मन्त्र बनाउने बताउँछ भने त्यसलाई मिथ्यावादी सम्झनुपर्दछ। उनीहरू त मन्त्रका अर्थ प्रकाश गर्ने हुन्।

प्रश्न—कुन ग्रन्थको नाम वेद हो ?

उत्तर—ऋक्, यजुः, साम र अथर्व मन्त्रसंहिताहरूको नाम वेद हो, अरूको होइन।

प्रश्न—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्॥ इत्यादि कात्यायन आदिद्वारा बनाइएका प्रतिज्ञासूत्र आदिको अर्थ के गर्नेछौ ?

उत्तर—हेर, संहिता पुस्तकको प्रारम्भ, अध्यायको समाप्तिमा

सनातनकाल देखि नै 'वेद' शब्द लेखिएको छ र ब्राह्मण ग्रन्थको आरम्भ वा अध्यायको समाप्तिमा कतै वेद शब्द लेखिएको छैन। र निरुक्तमा—

इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम्॥ —निरुक्त ५। ३, ४

छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥

—यो पाणिनीय सूत्र (४। २। ६६) हो।

यसबाटपनि वेद मन्त्रभाग र ब्राह्मण व्याख्याभाग हुन् भन्ने स्पष्ट ज्ञान हुन्छ। यस विषयमा विशेष हेर्न चाहेमा मैले लेखेको 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'मा हेर्नुहोला। त्यहाँ अनेकौं प्रमाणहरूका विरुद्ध हुनाले यो कात्यायनको वचन हुनसक्तैन भन्नेकुरा सिद्ध गरिएको छ। किनकि त्यसो मानेमा वेद सनातन कहिल्यै हुन सक्नेछैन किनभने ब्राह्मण ग्रन्थहरूमा धेरैजसो ऋषि महर्षि र राज आदिका इतिहास लेखिएकाछन् र जसको इतिहास हो त्यो त्यसको जन्मपछि लेखिन्छ। त्यो ग्रन्थ त्यसको जन्म पछिको हुन्छ। वेदमा इतिहास नभएर विशेषरूपमा जुन–जुन शब्दबाट विद्या बोध हुन्छ त्यहि–त्यहि शब्द प्रयोग गरिएको छ। कुनै व्यक्तिविशेषका नाम वा विशेषकथाको प्रसङ्ग वेदमा छैन।

प्रश्न—वेदका शाखा कति छन्?

उत्तर—एक हजार एकसय सत्ताइस।

प्रश्न—शाखा केलाई भनिन्छ?

उत्तर—व्याख्यालाई शाखा भनिन्छ।

प्रश्न—संसारमा विद्वान्हरू वेदका अवयवभूत विभागलाई शाखा मान्दछन् नि त?

उत्तर—अलिकति विचार गरे सब ठीक–ठीक बुझिनेछ। किनकि सबै शाखाहरू आश्वलायन आदि ऋषिहरूका नामबाट प्रसिद्ध छन् र मन्त्रसंहिता भने परमेश्वरका नामबाट प्रसिद्ध छन्। जसरी चारै वेद परमेश्वरकृत मानिन्छन् भने आश्वलायनी आदि शाखाहरू त्यस–त्यस नामकै ऋषिकृत मानिन्छन् र सबै शाखाहरूमा मन्त्रका प्रतीक राखेर व्याख्या गरिन्छ। जस्तै—तैत्तिरीय शाखामा '**इषे त्वोर्जे त्वेति**' इत्यादि प्रतिकहरू राखिएर व्याख्या गरिएको छ। वेद संहिताहरूमा भने कसैको प्रतीक राखिएको छैन। यसकारण परमेश्वरकृत चारै वेद मूलवृक्ष र आश्वलाय आदि सबै शाखा ऋषिमुनिकृत हुन्, परमेश्वरकृत होइनन्। यस विशेषको विशेष व्याख्या हेर्न चाहनेले 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'मा

हेर्नुहोला। जसरी आमा–बाबु आफ्ना सन्तानप्रति कृपादृष्टि राखेर उन्नति चाहान्छन् त्यस्तै परमात्माले सबै मानिसमाथि कृपागरेर वेदहरू प्रकाशित गरेको हो। जसबाट मानिस अविद्यारूपी अन्धकार, भ्रमजालबाट छुटेर विद्या, विज्ञानरूपी सूर्य समान भएर अति आनन्दमा रहून् र विद्या तथा सुख वृद्धि गर्दैजाऊन्।

प्रश्न—वेद नित्य छन् वा अनित्य छन्?

उत्तर—नित्य छन्। किनकि परमेश्वर नित्य हुनाले उसका ज्ञान आदि गुणपनि नित्य हुन्छन्। नित्य पदार्थका गुण, कर्म, स्वभाव नित्य र अनित्य द्रव्यका गुण, कर्म, स्वभाव अनित्य हुन्छन्। **प्रश्न**—के यो पुस्तक पनि नित्य हो?

उत्तर—होइन। किनकि पुस्तक त कागज र मसीबाट बनेको हो। सो नित्य कसरी हुनसक्तछ? तर शब्द, अर्थ र सम्बन्धभने नित्य हुन्।

प्रश्न—ईश्वरले ती ऋषिहरूलाई ज्ञान दिएको होला र त्यहि ज्ञानबाट उनीहरूले वेद बनाएहोलान्?

उत्तर—यज्ञ बिना ज्ञान हुँदैन। गायत्री आदि छन्द, षड्ज आदि र उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरका ज्ञान सहित गायत्री आदि छन्दहरू निर्माण गर्न बाहेक कसैको सामर्थ्य नहुनाले ऋषिहरूले यस प्रकारको सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बनाउन सक्तैनन्। हँ, वेद पढेपछि व्याकरण निरुक्त र छन्द आदि ग्रन्थ ऋषिमुनिहरूले विद्या प्रकाशका लागि बनाएका हुन्। परमात्माले वेद प्रकाश नगरेमा कसैले केहीपनि बनाउन सक्तैनन्। यसकारण वेद परमेश्वरोक्त हुन्। यिनै अनुसार सबैले चल्नुपर्दछ। अनि कसैले कसैसँग 'तिम्रो मत के हो?' भनी सोधे यही उत्तर दिनुपर्दछ कि हाम्रो मत वेद हो अर्थात् जे जति वेदमा भनिएको छ, हामी त्यसैलाई मान्दछौं। अब यस पछि सृष्टि विषयमा लेखिनेछ। यो संक्षेपमा ईश्वर र वेद विषयमा व्याख्यान गरिएको हो।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये
सप्तमः समुल्लास सम्पूर्णः॥ ७॥

अथाष्टम-समुल्लासः

अथ सृष्ट्यु त्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥ १॥

—ऋग्वेद। मं० १०। सू० १२९। मं० ७

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥ २॥

—ऋ०। मं० १०। सू० १२९। मं० ३॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥

—ऋ०। म० १०। सू० १२१। मं० १॥

पुरुषऽएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ ४॥

—यजु:० अ० ३१। मं० २॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥ ५॥

—तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली १

हे (**अङ्ग**) मनुष्य! यस विविध सृष्टिलाई प्रकाशित गर्ने, धारण र प्रलयकर्ता, यस जगत्का स्वामी, व्यापक, सम्पूर्ण जगत् उत्पत्ति, स्थिति र प्रलयकर्ता नै परमात्मा हो। उसलाई तिमीहरू जान र अरूलाई सृष्टिकर्ता नमान॥ १॥

यो सबै जगत् सृष्टि अघि अन्धकारले घेरिएको, रात्रि रूप जान्न अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वरका सम्मुख एकदेशी र आच्छादित थियो। पछि परमेश्वरले आफ्नो सामर्थ्यद्वारा कारणरूपबाट कार्यरूपमा परिणत गरेको हो॥ २॥

हे मनुष्य! सबै सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थहरूका आधार र उत्पन्न भएको र हुने जगत्का एक अद्वितीय पति परमात्मा यस जगत् उत्पत्ति-भन्दा पूर्व विद्यमान थियो र जसले पृथ्वी देखि लिएर सूर्यपर्यन्त जगत्

लाई उत्पन्न गरेको छ, त्यसै परमात्मा देवको प्रेमपूर्वक भक्ति गर्ने गरौं॥ ३॥

हो मनुष्य। सबैमा पूर्णपुरुष, नाशरहित कारण, जीवका स्वामी, पृथ्वी आदि जड र जीवभन्दा भिन्न पुरुष नै यो सब भूत, भविष्यत् र वर्तमानमा स्थित जगत्लाई बनाउँदछ॥ ४॥

जुन परमात्माका रचनाबाट यी सबै पृथिव्यादि भूत उत्पन्न हुन्छन्, जसबाट जीवित छन् र जसमा प्रलय हुन्छन्, त्यो ब्रह्म हो। उसलाई जान्ने इच्छा गर॥ ५॥

जन्माद्यस्य यतः॥ —शारीरक सूत्र, अ० १। सू० २

जसबाट जगत् जन्म, स्थिति र प्रलय हुन्छ, त्यही ब्रह्म जान्न योग्य छ।

प्रश्न—यो जगत् परमेश्वरबाट उत्पन्न भएको हो वा अरू कसैबाट?

उत्तर—निमित्तकारण परमात्माबाट उत्पन्न भएको हो, तर यसको उपादान कारण प्रकृति हो।

प्रश्न—के प्रकृतिलाई परमेश्वरले उत्पन्न गरेको होइन?

उत्तर—होइन, त्यो अनादि छ।

प्रश्न—अनादि कसलाई भनिन्छ र कति पदार्थ अनादि छन्?

उत्तर—ईश्वर, जीव र जगत्को कारण, यी तीन अनादि हुन्।

प्रश्न—यसमा के प्रमाण छ?

उत्तर—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥ १॥

—ऋ०। म० १। सू० १६४। मं० २०॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ २॥ —यजु:० अ० ४०। मं ८॥

(**द्वा**) ब्रह्म र जीव दुबै (**सुपर्णा**) चेतनता र पालन आदि गुणहरू जस्तै (**सयुजा**) व्याप्य-व्यापकभाव सम्बन्धले संयुक्त (**सखाया**) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि छन् र (**समानम्**) त्यस्तै (**वृक्षम्**) अनादि मूलरूप कारण र शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् स्थूल भएर प्रलयमा छिन्न भिन्न हुने त्यो तेस्रो पदार्थ यी तिनैको गुण, कर्म, स्वभाव पनि अनादि छन् (**तयोरन्यः**) यी जीव र ब्रह्ममा एउटा जीव चाहिं यस वृक्षरूपी संसारमा पापपुण्यरूपी फल (**स्वाद्वत्ति**) राम्ररी भोग गर्दछ र दोस्रो परमात्मा भने कर्मका फललाई (**अनश्नन्**) नभोगी चारैतर्फ अर्थात् भित्र, बाहिर, सर्वत्र प्रकाशमान भैरहन्छ। जीवभन्दा ईश्वर, ईश्वर भन्दा जीव र दुवैभन्दा प्रकृति भिन्न स्वरूप र

तिनै अनादि छन्॥ १ ॥

(शाश्वती) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूपी प्रजाका लागि वेदद्वारा परमात्माले सबै विद्या बोध गराएको हो॥ २ ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

—यो उपनिषद्को (श्वेताश्वतर उप० ४।५) वचन हो।

प्रकृति, जीव र परमात्मा यी तिनै अज हुन् अर्थात् यी कहिल्यै नजन्मने र सबजगत्का कारण हुन्। यिनको कुनै कारण छैन। अनादि प्रकृति भोग गर्दै अनादि जीव त्यसमा फस्दछ भने परमात्मा र उसको भोग गर्दछ न त्यसमा फस्दछ। ईश्वर र जीवका लक्षण ईश्वर विषयमा भनिसकियो। अब **प्रकृतिका लक्षण** लेखिन्छ—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ —सांख्यसूत्र १।६१

(सत्व) शुद्ध **(रजः)** मध्य **(तमः)** जाड्य अर्थात् जडता यी तीन वस्तु मिलेर हुने एउटा संघातको नाम प्रकृति हो। त्यसबाट महत्तत्त्व बुद्धिबाट अहंकार, अहंकारबाट पञ्चतन्मात्रा=सूक्ष्मभूत र दश इन्द्रियहरू तथा एघारौं मन, पाँच तन्मात्राबाट पृथ्वी आदि पाँचभूत यी चौबीस र पच्चिसौं पुरुष अर्थात् जीव परमेश्वर हुन्। यिनमा प्रकृति अविकारिणी छ र महत्तत्त्व, अहंकार तथा पाँच सूक्ष्मभूत प्रकृतिका कार्य हुन् भने इन्द्रियहरू, मन तथा स्थूलभूतका कारण हुन्। पुरुष न त कुनै पदार्थको प्रकृति=उपादान कारण हो कि कसैको कार्य हो।

प्रश्न—सदेव सोम्येदमग्र आसीत्॥ १ ॥ —छा० उप० ६।२।१
असद्वा इदमग्र आसीत्॥ २ ॥ —तैत्ति० उप० ब्रह्म० वल्ली ७
आत्मा वा इदमग्र आसीत्॥ ३ ॥ —बृह० उप० १।४।१
ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्॥ ४ ॥ —शतपथ ब्रा० ११।१।१।१

यी उपनिषद्का वाक्य हुन्। हे श्वेतकेतु! ये जगत् सृष्टि हुनु अघि सत्॥ १ ॥ असत्॥ २ ॥ आत्मा॥ ३ ॥ र ब्रह्मरूप थियो॥ ४ ॥ पछि—

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति॥ १ ॥ —छान्दो० उप० ६।२।२
सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति॥ २ ॥

यो तैत्तिरीयोपनिषद्को (ब्रह्मा० वल्ली ६) वाक्य हो। त्यही परमात्मा आफ्नो इच्छाद्वारा बहुरूप भएको हो॥ १–२ ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ यो पनि उपनिषद्को

वाक्य हो। यो समस्त जगत् निश्चितरूपमा ब्रह्म नै हो। त्यसमा अरू नाना प्रकारका पदार्थ केही पनि होइनन्, सबै ब्रह्मरूप नै हो।

उत्तर—यी वाक्यहरूको अनर्थ किन गर्दछौ? किनकि ती उपनिषद्हरूमा नै—

अन्नेन सोम्य शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्यप्रतिष्ठाः॥

—छान्दोग्य उपनिषद् ६।८।४

हे श्वेतकेतु! अन्नरूप पृथ्वी कार्यबाट जलरूप मूलकारणलाई जान। कार्यरूप जलबाट तेजोरूप मूल र तेजोरूप कार्यबाट सत्रूप कारण नित्यप्रकृतिलाई जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत्को मूलघर र स्थितिको ठाउँ हो। यो सम्पूर्ण जगत् सृष्टि भन्दा पूर्व असत्जस्तै र जीवात्मा, ब्रह्म तथा प्रकृतिमा लीन भएर रहेको थियो। यसको अभाव थिएन र 'सर्वं खलु०' यो वचन यताउतिका कुरा जोडेर आफ्नो अनुकूल अर्थ गर्न गरिएको लीला हो। किनकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। यो छान्दोग्य उपनिषद्को (३।१४।१) र **'नेह नानास्ति किंचन॥'** यो कठवल्ली (कठोपनिषद् २।४।११) को वाक्य हो। शरीरका अङ्ग शरीरमा रहेसम्म काम गर्नसक्ने र शरीरबाट छुट्टिनाले वा अरू निकम्मा हुन्छन्, त्यस्तै प्रकरणमा रहेका वाक्य सार्थक हुन्छन् भने प्रकरणबाट अलग्याउँदै वा अरू कुनैसँग जोड्दा अनर्थक हुन पुग्दछन्। सुन, यसको अर्थ यो हो—हे जीव! तिमी, ब्रह्मको उपासना गर, जुन ब्रह्मबाट जगत् उत्पत्ति, स्थिति अर्थात् जीवन र प्रलय हुन्छ। जसले बनाएर र धारण गरेर यो सब जगत् विद्यामान छ वा ब्रह्मसँग सम्बद्ध छ, त्यसलाई छोडेर अरू कसैको उपासना गर्नुहुन्न। यस चेतनमात्र, अखण्डैकरस, ब्रह्मस्वरूपमा नाना वस्तुहरू मेल छैन तर यी सब पृथक् पृथक् स्वरूपमा परमेश्वरके आधारमा स्थित छन्।

प्रश्न—जगत्का कारण कति हुन्छन्?

उत्तर—तीन। पहिलो निमित्तकारण, दोस्रो उपादानकारण र तेस्रो साधारणकारण। जसले बनाऊ केही बन्दछ, नबनाए बन्दैन, आफू केही बन्दैन अर्थात् जस्ताको त्यस्तै रहन्छ र अरूलाई एउटा रूपबाट अर्कै रूप बनाइदिन्छ त्यसलाई निमित्तकारण भनिन्छ। जुन विना केही पनि बन्दैन, जुन आफ्नो अवस्था र रूप बदलेर बन्दछ र बिग्रन्छ पनि,

त्यसलाई उपादान कारण भनिन्छ। कुनै वस्तु बनाउने साधन र साधारण निमित्तलाई साधारणकारण भनिन्छ।

निमित्तकारण दुई प्रकार हुन्छन्। पहिलो—सम्पूर्ण सृष्टि बनाउने, धारण गर्ने, प्रलय गर्ने र सबैको व्यवस्था राख्ने मुख्य निमित्तकारण परमात्मा हो। दोस्रो—परमेश्वरका सृष्टि पदार्थहरूबाट अनेक किसिमका कार्यान्तर बनाउने साधारण निमित्तकारण जीव हो।

सबै संसार बनाउने सामग्री भनिने प्रकृति, परमाणु नै उपादन कारण हो। यो जड हुनाले आफैं न त बन्नसक्तछ, न बिग्रन नै सक्छ तर अरूले बनाउँदा बन्दछ र बिगार्दा बिग्रन्छ। कतै कतै जड वस्तुकै कारणले भने जडवस्तु पनि बन्ने वा बिग्रने गर्दछ। जस्तै परमेश्वरले बनाएको बिउ पृथ्वीमा पर्ने र पानी मिल्ने हुँदा वृक्षाकार हुन्छन् र अग्नि आदि जडका संयोगले बिग्रन्छन् पनि। तर यिनको नियमपूर्वक बन्ने र बिग्रने काम भने परमेश्वर र जीवको अधीन हुन्छ।

कुनै वस्तु बनाउँदा जुन जुन साधन उपयोग हुन्छ ती सबै साधारणकारण हुन् जस्तै ज्ञान, दर्शन, बल हात र अरू नाना किसिमका साधन, दिशा, काल र आकाश यी सबै साधारण कारण हुन्। जस्तै घैंटो बनाउने कुमाले निमित्तकारण, माटो उपादान कारण र दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त, दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आँखा, हात, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण र निमित्तकारण पनि हुन्छन्। यी तीन कारण नभई कुनै वस्तु बन्नसक्तैन र बिग्रन पनि सक्तैन।

प्रश्न—नवीन वेदान्तीहरू केवल परमेश्वरलाई नै जगत्को अभिन्न निमित्तोपादान कारण मान्दछन्—

यथोर्णनाभिः सृजते गृहणते च।

—यो उपनिषद्को (मुण्डकोपनिषद् १।१।७) वाक्य हो।

जसरी माकुरो बाहिरबाट कुनै पदार्थ नलिई आफ्नै भित्रबाट तन्तु निकालेर जालो बनाएर आफैं त्यसमा खेल्दछ त्यस्तै ब्रह्म आफैंबाट जगत्लाई बनाएर आफैं जगदाकार भएर आफैं खेलिरहेछ। त्यस ब्रह्मले इच्छा र कामना गर्दै 'म बहुरूप अर्थात् जगदाकार भैजाऊँ' भन्ने संकल्प गर्दैमा सबै जगद्रूप बन्यो। किनकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा॥

यो माण्डूक्योपनिषद्सँग सम्बन्धित कारिका हो। जुन वस्तु अघि थिएन र पछि रहने छैन भने त्यो वर्तमानमा पनि छैन। सृष्टि आदिमा जगत् थिएन, ब्रह्ममात्र थियो, प्रलय पछि पनि संसार रहने छैन। यसकारण

वर्तमानमा पनि यो सब जगत् ब्रह्म नै किन होइन?

उत्तर—तिम्रो कथन अनुसार जगत्को उपादान कारण ब्रह्म भएमा ऊ परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त, विकारी हुनेछ र उपादान कारणका गुण, कर्म, स्वभाव कार्यमा पनि आउँछन्—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः॥

—वैशेषिक दर्शन २।१।२४

उपादानकारणका जस्तै गुण कार्यमा हुन्छन्। ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप छ भने जगत् कार्यरूपमा असत्, जड र आनन्दरहित छ, ब्रह्म अज छ भने जगत् उत्पन्न भएको, ब्रह्म अदृश्य जगत् दृश्य र ब्रह्म अखण्ड जगत् खण्डरूप छ। ब्रह्मबाट पृथ्वी आदि कार्य उत्पन्न भएका भए पृथ्वी आदि कार्य जड आदि गुण ब्रह्ममा पनि हुनुपर्दछ अर्थात् जसरी पृथ्वी आदि जड छन् त्यस्तै ब्रह्म पनि जडहुनुपर्ने र जसरी ब्रह्म चेतन छ त्यस्तै पृथ्वी आदि कार्य पनि चेतन हुनुपर्ने हुन्छ।

तिमीले दिएको माकुरोका दृष्टान्त पनि तिम्रो मतको साधक नभई बाधक नै हो किनकि त्यो जडरूप शरीर तन्तुको उपादान र जीवात्मा निमित्त कारण हो यो पनि परमात्माका अद्‌भुत रचनाको प्रभाव हो। किनकि अन्य जन्तुको शरीरबाट जीव तन्तु निकाल्नसक्तैन। त्यस्तै व्यापक ब्रह्मले आफू भित्र व्याप्य प्रकृति र परमाणु कारणबाट स्थूल जगत्लाई बनाएर बाहिर स्थूलरूप गरेर आफू त्यसैमा व्यापक भएर साक्षीभूत आनन्दमय भैरहेछ। परमात्माले 'म सब जगत्लाई बनाएर प्रसिद्ध होऊँ' भन्ने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार र कामना गर्‍यो भन्ने कुरा पनि व्यर्थ हो। किनकि जब जगत् उत्पन्न हुन्छ तब जीवहरूमा विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण परमेश्वर प्रसिद्ध र धेरै स्थूल पदार्थहरूसँग विद्यमान हुन्छ। प्रलय भएपछि भने परमेश्वर र मुक्तजीव बाहेक उसलाई कोही जान्दैन।

अनि त्यो कारिका पनि भ्रममूलक हो। किनकि प्रलयमा जगत् प्रसिद्ध थिएन र सृष्टिको अन्त अर्थात् प्रलयका आरम्भदेखि अर्को सृष्टि नभएसम्म पनि जगत्को कारण सूक्ष्म भएर अप्रसिद्ध नै रहन्छ। किनकि—

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑॥

—यो ऋग्वेदको (१०।१२९।३) वचन हो।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ २॥

—मनुस्मृति० १।५

यो सब जगत् सृष्टि हुनु अघि प्रलयमा अन्धकारद्वारा आवृत, आच्छादित या ढाकेको थियो र प्रलय शुरु भएपछि पनि त्यस्तै हुनेछ। त्यस समय कसैले जान्न, तर्क गर्न र प्रसिद्ध चिह्नयुक्त इन्द्रियहरूबाट जान्न सकिने न त थियो, न हुनेछ। तर वर्तमानमा जानिन्छ, प्रसिद्ध चिह्नयुक्त हुनाले जान्नयोग्य हुन्छ र यथावत् उपलब्ध छ फेरि यस कारिका बनाउनेले वर्तमानमा पनि जगत् अभाव लेखेको छ यो सर्वथा अप्रामाणिक हो। किनकि प्रमाता जसलाइ प्रमाणपूर्वक जान्दछ र प्राप्त गर्दछ, त्यो कहिल्यै अन्यथा हुनसक्तैन।

प्रश्न—जगत् बनाउन परमेश्वरको के प्रयोजन छ?

उत्तर—न बनाउन चाहिं के प्रयोजन छ त?

प्रश्न—न बनाएको भए आनन्दमा रहिरहन्थ्यो र जीवहरूलाई पनि सुख दु:ख प्राप्त हुने थिएनन्।

उत्तर—यी पुरुषार्थीका कुरा न भई अल्छी र दरिद्र व्यक्तिका कुरा हुन्। अनि जीवलाई प्रलयमा सुख वा दु:ख हुन्छ? सृष्टिका सुख दु:ख तुलना गर्ने हो भने सुख धेरै बढी हुन्छ र धेरै पवित्रात्मा जीव मुक्तिका साधन सिद्ध गरेर मोक्ष आनन्द पनि प्राप्त गर्दछन्। प्रलयामा निकम्माहरू सुषुप्तिमा रहेसरह रहन्छन् र प्रलय अघि सृष्टिमा जीवले गरेका पाप-पुण्य कर्मको फल ईश्वर कसरी दिनसक्थ्यो र जीव जसरी भोग्न सक्नेथिए?

कसैले तिमीसँग 'आँखा कुन प्रयोजनका लागि छन्' भनी सोधे 'देख्न' नै भन्ने छौ। त्यस्तै ईश्वरमा जगत् रचना गर्ने विज्ञान, बल र क्रिया प्रयोजन जगत् उत्पत्ति गर्नुबाहेक के हो र? अरू कुनै पनि प्रयोजन बताउन सक्नेछैन। अनि परमात्माका न्याय, धारण, दया आदि गुण पनि जगत्लाई बनाएर नै सार्थक हुनसक्तछन्। उसको अनन्त सामर्थ्य जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय र व्यवस्था गर्नाले नै सफल हुन्छ। जसरी आँखाको स्वाभाविक गुण देख्नु हो त्यस्तै परमेश्वरको स्वाभाविक गुण जगत्को उत्पत्ति गरेर सबै जीवलाई असंख्य पदार्थ दिएर परोपकार गर्नु हो।

प्रश्न—बिउ र वृक्षमा कुनचाहिं पहिले उत्पन्न भएको हो?

उत्तर—बिउ। किनकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त र कारण आदि शब्द एकार्थवाचक हुन्। कारणकै नाम बिउ हुनाले कार्यभन्दा पूर्व हुन्छ।

प्रश्न—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् छ भने ऊ कारण र जीवलाई पनि

उत्पन्न गर्नसक्तछ। उत्पन्न गर्नसक्तैन भने सर्वशक्तिमान् रहन पनि सक्तैन?

उत्तर—सर्वशक्तिमान् शब्दको अर्थ अघि लेखिसकियो। के असम्भव कुरा पनि गर्नसक्नेलाई सर्वशक्तिमान् भनिन्छ? कसैले असम्भव कुरा अर्थात् कारणै विना कार्य गर्नसक्ने भए कारण विना अर्को ईश्वर उत्पत्ति गरेर, स्वयं मृत्यु ग्रहण गरेर, जड, दु:खी, अन्यायकारी, अपवित्र र कुकर्मी आदि हुनसक्तछ वा सक्तैन! ईश्वरले पनि स्वाभाविक नियम अर्थात् जस्तै आगो तातो, पानी चिसो यस्तै पृथ्वी आदि जड पदार्थलाई विपरीत गुणशाली बनाउनसक्तैन। जसरी ईश्वर आफू जड हुनसक्तैन त्यस्तै जडलाई चेतन बनाउन पनि सक्तैन। फेरि ईश्वरका नियम सत्य र परिपूर्ण हुनाले उनमा परिवर्तन गर्नसक्तैन। यसकारण सर्वशक्तिमान् शब्दको अर्थ यति मात्र हो कि परमात्मा कसैको सहायता विना नै आफ्ना सबै काम पूर्ण गर्नसक्तछ।

प्रश्न—ईश्वर साकार छ वा निराकार? निराकार छ भने हात आदि साधनविना जगत् बनाउन सक्तैन र साकार छ भने कुनै दोष छैन?

उत्तर—ईश्वर निराकार छ। साकार वा शरीरधारी भए ऊ ईश्वर होइन। किनकि त्यसो हुँदा ऊ परिमित शक्तिभएको, देश, काल वस्तुहरूमा परिच्छिन्न, भोक-प्यास, गर्मी-जाडो, छेदन-भेदन, पीडा आदि समेत भएको हुनुपर्दछ। जीव विना उसमा ईश्वरका गुण कहिल्यै घटित हुनसक्तैनन्। जसरी तिमी हामी साकार अर्थात् शरीरधारी छौं यसकारण त्रसरेणु, अणु, परमाणु र प्रकृतिलाई आफ्नो अधीन गर्न सक्तैनौं र ती सूक्ष्म पदार्थलाई समातेर स्थूल बनाउन पनि सक्तैनौं त्यस्तै स्थूल शरीरधारी परमेश्वर पनि ती सूक्ष्म पदार्थबाट स्थूल जगत् बनाउन सक्तैन। भौतिक इन्द्रियगोलोक, हात-खुट्टा आदि अवयवरहित तर आफ्नो अनन्त बल, शक्ति पराक्रम भएको परमेश्वर नै ती शक्ति, बल पराक्रमबाट सबैकाम गर्दछ। जीव र प्रकृतिबाट यस्तो कहिल्यै हुनसक्तैन। परमेश्वर प्रकृतिभन्दा पनि सूक्ष्म र उनमा व्यापक हुनाले सबैलाई धारण र प्रलय पनि गर्नसक्तछ।

प्रश्न—जसरी मानिस आदिका आमा बाबु साकार छन्, उनका सन्तान पनि साकार हुन्छन्। यिनीहरू निराकार भएका भए यिनका छोरा-छोरी पनि निराकार हुने थिए। त्यस्तै परमेश्वर निराकार छ भने उसले बनाएको जगत् पनि निराकार हुनुपर्ने हो।

उत्तर—तिम्रो यो प्रश्न—केटाकेटीको कुरा जस्तै छ। किनकि

परमेश्वर जगत्को उपादान कारण होइन् निमित्तकारण हो भन्ने कुरा भर्खरै भनिसक्यौं। अनि जुन जुन वस्तु स्थूल हुन्छ त्यस्तो प्रकृति र र परमाणु नै जगत्को उपादानकारण हो, तर ती सर्वथा निराकार होइनन्, ती परमेश्वर भन्दा स्थूल र अरू कार्य भन्दा सूक्ष्म आकार भएका हुन्छन्।

प्रश्न—के परमेश्वर कारण विना कार्य गर्न सक्तैन?

उत्तर—सक्तैन। किनकि अभाव अर्थात् विद्यमान नरहेको पदार्थको भाव अर्थात् वर्तमान हुन नितान्त असम्भव हुन्छ। जस्तै कसैले 'मैले बाँझीका छोराछोरीको विवाह देखें। उनीहरूले मानिसका सींगको धनुष र आकाशमा फुलेको फूलको माला धारण गरेका थिए, मृगतृष्णाको पानीमा स्नान गर्दथे र गन्धर्वनगरमा बस्तथे, त्यहाँ विना बादल वर्षा, पृथ्वी विना सबै अन्न उत्पन्न हुन्थ्यो' आदि गफ हाँक्दछ भने असम्भव हुनाले मान्य हुनसक्तैन। त्यस्तै विना कारण कार्य हुन असम्भव हुन्छ। जस्तै **'मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च'** अर्थात् मेरा आमा बाबु थिएनन् म त त्यसै जन्मेको हुँ, मेरो मुखमा जिब्रो छैन तर म बोल्दछु, प्वालमा सर्प थिएन तर निस्केर आयो, म कतै थिइन, यिनीहरू पनि कतै थिएनन् र हामी आएका हौं, भन्छ यस्ता असम्भव कुरा बहुलाएकाहरूले मात्र गर्दछन्।

प्रश्न—कारण विना कार्य हुँदैन भने कारणको कारण चाहिं कुन हो त?

उत्तर—ती केवल कारणरूप हुन्, ती कसैका कार्य हुँदैनन्। जो कसैको कारण र कसैको कार्य हुने वस्तु अर्कै भनिन्छ। जस्तै पृथ्वी घर आदिको कारण जल आदि कार्य हो। तर आदि कारण प्रकृति भने अनादि हो।

मूलो मूलाभावादमूलं मूलम्॥

—सांख्यसूत्र (सांख्यदर्शन १।६७)

मूलको मूल अर्थात् कारणको कारण हुँदैन। यसैले सबै कार्योको कारण अकारण हुन्छ। किनकी कुनै कार्यको आरम्भ हुने समय अघि तिनै कारण अवश्य हुन्छन्। जस्तै—कपडा बनाउनु अघि बुन्ने व्यक्ति, कपासको धागो र हतासो आदि अघिदेखि नै विद्यमान हुनाले कपडा बन्दछ त्यस्तै जगत्को उत्पत्ति हुनु अघि परमेश्वर, प्रकृति, काल, र आकाश तथा जीवहरू अनादि हुनाले जगत् उत्पत्ति हुन्छ। यी मध्ये एउटा पनि नभएको भए जगत् उत्पत्ति हुन सक्ने थिएन। **अत्र नास्तिका आहुः**—

शुन्यं तत्त्वं भावोऽपि नश्यति वस्तुधर्मत्वादिनाशस्य ॥ १ ॥

—सांख्यसूत्र १।४४

अभावत् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ॥ २ ॥
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ ३ ॥
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्णयादिदर्शनात् ॥ ४ ॥
सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ५ ॥
सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥ ६ ॥
सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्ववात् ॥ ७ ॥
सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥ ८ ॥
न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ॥ ९ ॥

—न्याय सू० अ० ४। आह्वक १। सू० १४, १९, २२ २५ २९, ३४, ३७, ३९

यस सम्बन्धमा नास्तिकहरू यसो भन्दछन्—

पहिलो नास्तिक—शून्य नै एउटा पदार्थ हो। सृष्टि हुनु अघि शून्य थियो, अन्तमा शून्य रहनेछ, किनकि भाव अर्थात् वर्तमान पदार्थको अभाव भएर शून्य हुनेछ।

उत्तर—आकाश, अदृश्य, अवकाश, र विन्दुलाई पनि शून्य भनिन्छ। शून्य जड पदार्थ हो। यस शून्यमा सबै पदार्थ अदृश्य रहन्छन्। जस्तै एउटा विन्दुबाट रेखा, रेखाहरूबाट बाटुलो आकार हुनाले भूमि पर्वत आदि ईश्वरका रचनाबाट बन्दछन् र शून्यलाई जान्ने शून्य हुँदैन॥ १॥

दोस्रो नास्तिक—अभावबाट भावको उत्पत्ति हुन्छ। जस्तै—बिउलाई नभिजाइकन टुसो उम्रिदैन र बिउलाई फोरेर हेर्दा त्यसमा टुसो हुँदैन, टुसोको अभाव हुन्छ। पहिलो टुसो न देखिने हुँदा अभावबाटै उत्पत्ति भएको मान्नुपर्दछ।

उत्तर—जुन बिउ भिजाइन्छ, त्यसमा त्यो अङ्कुर वा टुसो पहिलैदेखि थियो। नभएको भए कहिल्यै उम्रने थिएन॥ २॥

तेस्रो नास्तिक—व्यक्तिले काम गर्दा कर्मको फल प्राप्त हुँदैन। कत्ति कर्म निष्फल भएका देखिन्छन्। यसैकारण कर्मको फल ईश्वरको अधीन हुन्छ भन्ने अनुमान गरिन्छ, ईश्वर जुन कर्मको फल दिन चाहान्छ, दिन्छ। जुन कर्मको फल दिन चाहदैन, दिंदैन। यसबाट कर्मफल ईश्वराधीन छ भन्ने बुझिन्छ।

उत्तर—कर्म फल ईश्वराधीन भए, कर्म नगरिकनै ईश्वर फल किन दिंदैन? यस कारण मानिस जस्तो कर्म गर्दछ, त्यस्तै फल ईश्वर

दिन्छ। यसबाट स्वतन्त्र भएर अर्थात् स्वेच्छाले पुरुष कर्मको फल दिनसक्तैन र जीव जस्तो कर्म गर्दछ, त्यस्तै फल ईश्वर दिन्छ भन्ने कुरा स्पष्ट छ॥ ३॥

चौथो नास्तिक—निमित्त विना नै पदार्थहरू उत्पत्ति हुन्छन्। जस्तै बबूल आदि वृक्षका काँडा तीखा टुप्पा भएका हुन्छन्। यसबाट सृष्टि आरम्भ हुँदा शरीर आदि पदार्थ निमित्त विना नै हुन्छन् भन्ने ज्ञात हुन्छ।

उत्तर—जसबाट पदार्थ उत्पन्न हुन्छ, त्यही त्यसको निमित्त हो। कंटकीवृक्ष विना काँडा किन उत्पन्न हुँदैनन्॥ ४॥

पाँचौं नास्तिक—सबै पदार्थ उत्पन्न र विनाश हुने हुनाले सब अनित्य छ।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

यो कुन ग्रन्थको श्लोक हो। नवीन वेदान्तीहरू पाँचौं नास्तिकको कोटिमा छन्। किनकि उनको भनाइमा 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या र जीव ब्रह्मभन्दा भिन्न होइन, भन्ने कुरा करोडौं ग्रन्थको सिद्धान्त हो।

उत्तर—सधैं सबैको अनित्यता छ भने सब अनित्य हुन सक्तैन।

प्रश्न—सबैको अनित्यता पनि अनित्य छ। जस्तै आगो काठलाई नष्ट गरेर आफैं पनि नष्ट हुन्छ।

उत्तर—यथावत् उपलब्ध भएकाको वर्तमानमा अनित्यत्व र परमसूक्ष्म कारणको अनित्यत्व कहिल्यै हुनसक्तैन। वेदान्तीहरू ब्रह्मबाट जगत् उत्पत्ति मान्दछन् भने ब्रह्म सत्य हुनाले उसको कार्य असत्य कहिल्यै हुनसक्तैन। स्वप्न, डोरी, सर्प आदि जस्तै कल्पित भन्न पनि मिल्दैन, किनकि कल्पना गुण हो। गुणबाट द्रव्य उत्पन्न हुँदैन र गुण द्रव्यदेखि पृथक रहनसक्तैन। कल्पना गर्ने नित्य छ भने त्यसको कल्पना पनि नित्य हुनुपर्दछ। नत्र भने कल्पना गर्नेलाई पनि अनित्य मान। जस्तै नदेखे नसुनेका कुराको स्वप्न कहिल्यै देखिंदैन। जागृत अर्थात् वर्तमान समयमा जुन पदार्थ सत्य छन् तिनको साक्षात सम्बन्धबाट प्रत्यक्ष आदि ज्ञान हुँदा संस्कार अर्थात् तिनको वासनारूप ज्ञान आत्मामा स्थिर हुन्छ, स्वप्नमा तिनलाई प्रत्यक्ष देख्तछ। जसरी सुषुप्ति हुनाले बाह्य पदार्थ ज्ञानका अभावमा पनि बाह्य पदार्थ विद्यमान रहन्छन्, त्यस्तै प्रलयमा पनि कारण द्रव्य विद्यमान रहन्छ। संस्कार विना नै स्वप्न देखिने भए जन्मेदेखि अन्धोले पनि रूपको स्वप्न देख्नेथियो।

यसकारण बाहिर सबै पदार्थ विद्यमान रहन्छन् स्वप्नमा त तिनको ज्ञानमात्र हुन्छ।

प्रश्न—जागृत अवस्थाका पदार्थ स्वप्नमा र जागृत-स्वप्न दुबैका सुषुप्तिमा अनित्य भए जस्तै जागृतका पदार्थलाई पनि स्वप्न तुल्य मान्नुपर्दछ।

उत्तर—यस्तो कहिल्यै मान्न सकिन्न। किनकि स्वप्न र सुषुप्तिमा बाह्य पदार्थहरूको अज्ञानमात्र हुन्छ, अभाव हुँदैन। जसरी कसैका पछाडिपट्टि धेरैजसो पदार्थ न देखिने हुन्छ तिनको अभाव हुँदैन, त्यस्तै स्वप्न र सुषुप्तिको कुरा हो। यसकारण अघि भनिएको ब्रह्म, जीव र जगत् कारण अनादि नित्य हुन् भन्ने कुरानै सत्य हो॥ ५॥

छैठौं नास्तिक—पाँच भूत नित्य हुनाले सबैजगत् नित्य छ।

उत्तर—यो कुरा सत्य होइन। सबै स्थूल जगत् तथा शरीर, घट-पट आदि पदार्थहरू उत्पन्न र विनष्ट भैरहेको देखिएकाले उत्पत्ति र विनाशका कारण देखिएका पदार्थ नित्य होइनन् भन्ने बुझिन्छ। यसैले कार्यलाई नित्य मान्न सकिन्न॥ ६॥

सातौं नास्तिक—सबै छुट्टा छुट्टै छन् कुनै एउटा पदार्थ छैन। जुन-जुन पदार्थलाई हामी देख्तछौं तिनमा कुनै पनि अर्को पदार्थ देखिंदैन।

उत्तर—अवयवहरूमा अवयवी, वर्तमानकाल, आकाश, परमात्मा र जाति छुट्टाछुट्टै पदार्थ समूहहरूमा एक एक हुन्,। तीभन्दा बाहेक कुनै पदार्थ हुनसक्तैन। यस कारण सबै पदार्थ पृथक्-पृथक् होइनन्, तर स्वरूपमा भने छुट्टा छुट्टै हुन् र पृथक् पृथक् पदार्थहरूमा एउटै पदार्थ पनि छ॥ ७॥

आठौं नास्तिक—सबै पदार्थ इतरेतर अभाव सिद्ध हुनाले सबै अभावरूप छन्। जस्तै '**अनश्वो गौः। अगौरश्वः**' गाई घोडा होइन, घोडा गाई होइन। यसकारण सबैलाई अभावरूप मान्नुपर्दछ।

उत्तर—सबै पदार्थहरूमा एक अर्काको अभाव रहोस् 'तर **गवि गोरश्वेऽश्वो** भावरूपी वर्तन एव' गाईमा गाई र घोडामा घोडाको भाव त छँदैछ, अभाव कहिल्यै हुनसक्तैन। पदार्थमा भाव वा अस्तित्व न भए इतरेतराभाव पनि कसरी हुन्छ र?॥ ८॥

नवौं नास्तिक—स्वभावबाट जगत् उत्पत्ति हुन्छ। जसरी पानी र अन्न एकै ठाउँमा भएर कुहिनाले कीरा जन्मिन्छन्, बिउ, पृथ्वी, जल मिलेर घाँस, वृक्ष आदि र ढुङ्गा आदि बन्दछन्, समुद्र, वायु हुनाले तरङ्ग र तरङ्गबाट समुद्रफिंज तथा चूना बेसार र कागतीको रस मिलाउँदा

रोरी वा अबीर आदि बन्दछ त्यस्तै सबै जगत् तत्वहरू स्वभाविक गुणहरूबाट उत्पन्न भएको हो। यसलाई बनाउने कोही पनि छैन।

उत्तर—स्वभावबाट जगत् उत्पन्न हुने भए कहिल्यै विनाश हुनेथिएन र विनाश पनि स्वभावैबाट मान्दछौ भने उत्पत्ति हुनेछैन। दुबै स्वभाव एकसाथ द्रव्यमा हुन्छ भन्छौं भने उत्पत्ति र विनाशको व्यवस्था कहिल्यै हुनसक्नेछैन। निमित्त हुनाले उत्पत्ति र विनाश मान्दछौ भने निमित्तलाई उत्पन्न एवं विनाश हुने द्रव्य भन्दा छुट्टै मान्नुपर्नेछ। स्वभावबाटै जगत् उत्पन्न हुने भए यस भूगोलको नजिकै अर्को भूगोल, चन्द्र, सूर्य आदि उत्पन्न किन हुँदैनन् ?

अनि जसजसको संयोगले जुन जुन पदार्थ उत्पन्न हुन्छ त्यो ईश्वरले बनाएकै बिउ, अन्न, जलादिबाट घाँस, वृक्ष र कीरा आदि उत्पन्न हुन्छन्, ती विना हुँदैनन्। जसरी बेसार, चूना र कागतीको रस टाढा-टाढाबाट आएर आफैं मिल्दैनन्, कसैले मिलाउँदा मिल्दछन्, त्यसमा पनि उचितमात्रमा मिलाउँदा अबीर बन्दछ। धेर थोर वा यताउती गर्नाले अबीर बन्दैन। त्यस्तै प्रकृतिमा परमाणुहरूलाई ज्ञान र युक्तिद्वारा परमेश्वरले नमिलाई जडपदार्थ कुनै कार्य सिद्धिका लागि आफैं विशेष पदार्थ बन्नसक्तैन। यसकारण सृष्टि स्वभाव आदिबाट होइन परमेश्वरका रचनाबाट हुन्छ॥ ९ ॥

प्रश्न—जगत् कर्त्ता थिएन, छैन र हुने छैन तर यो जगत् अनादिकाल देखि जस्ताको तस्तै बनेको छ। न त कहिल्यै यसको उत्पत्ति भएको थियो र विनाश नै हुनेछ।

उत्तर—कर्त्ता विना कुनैपनि क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ हुन वा बन्न सक्तैन। जुन पृथ्वी आदि पदार्थहरूमा संयोग विशेषबाट रचना भएको देखिन्छ, ती अनादि कहिल्यै हुनसक्तैनन्। अर्कोकुरा संयोगबाट बन्ने पदार्थ संयोग हुनु अघि हुँदैन र वियोगका अन्तमा रहँदैन। यस कुरालाई मान्दैनौ भने कठोर भन्दा कठोर ढुङ्गा, फलाम र हीरा आदिलाई टुटाएर, फुटाएर, टुक्रा-टुक्रा गरेर, गलाएर वा भस्म गरेर यिनमा परमाणु छुट्टा छुट्टै मिलेका छन वा छैनन् भन्ने कुरा हेर, मिलेका छन् भने अवसर पाएपछि छुट्टा छुट्टै पनि अवश्य हुन्छन्।

प्रश्न—अनादि ईश्वर कुनै छैन तर योगाभ्यासद्वारा अणिमा आदि ऐश्वर्य्य प्राप्त गरेर सर्वज्ञ आदि गुणयुक्त हुने ज्ञानी जीव नै परमेश्वर भनिन्छ।

उत्तर—अनादि ईश्वर जगत्को स्रष्टा नभए साधानहरूद्वारा सिद्ध

हुने जीवको आधार जीवनरूपी जगत्, शरीर र इन्द्रियलोक कसरी बन्ने थिए ? यी बिना जीव साधना गर्नै सक्तैन र साधान नभई सिद्ध कहाँबाट हुन्छ ? जीव आफूखुसी साधन गरेर सिद्ध हुन्छ भने पनि ईश्वरको स्वयं सनातन अनादि सिद्धि-जुनमा अनन्त सिद्धिछन्, कुनै पनि जीव त्यसको तुल्य हुनसक्तैन। किनकि परम अवधिसम्म जीवको ज्ञान बढेपछि ऊ परिमित ज्ञान र सामर्थ्यवान् हुन्छ। अनन्त ज्ञानवान् र अनन्त सामर्थ्यवान् कहिल्यै हुनसक्तैन।

हेर, आजसम्म ईश्वरकृत सृष्टिक्रमलाई बदल्ने कोही पनि भएको छैन र हुने पनि छैन। जसरी अनादि सिद्ध परमेश्वरले आँखाले देख्ने र कानले सुन्ने व्यवस्था गरेको छ त्यसलाई कुनै पनि योगीले बदल्न सक्तैन। यसकारण जीव कहिल्यै ईश्वर हुनसक्तैन।

प्रश्न—कल्प-कल्पान्तरमा ईश्वर विलक्षण सृष्टि बनाउँछ वा एकनाश बनाउँछ ?

उत्तर—जस्तो अहिले छ, त्यस्तै अघि थियो र पछि पनि त्यस्तै हुनेछ, फरक गर्दैन।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋग्वेद मं० १०। सू० १९०। मं० ३॥

धाता=परमेश्वरले नै जसरी पूर्वकल्पमा सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अन्तरिक्ष आदि बनाएको थियो, त्यस्तै अहिले बनाएको छ र पछि पनि त्यस्तै बनाउँनेछ॥ १ ॥ यसकारण परमेश्वरका काममा भूलचूल हुनसक्तछ, ईश्वरका काममा भूलचूक हुनसक्तैन।

प्रश्न—सृष्टि विषयमा वेदादिशास्त्रमा विरोध वा अविरोध के छ ?

उत्तर—विरोध छैन, अविरोध छ।

प्रश्न—अविरोध भएदेखि—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम् अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। सव एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥

यो तैत्तिरीयोपनिषद्को (ब्रह्मानन्दनवल्ल० १) वचन हो। त्यस परमेश्वर र प्रकृतिबाट आकाश, अवकाश अर्थात् सर्वत्र फैलिएको कारणरूप द्रव्यलाई समेट्ता अवकाश उत्पन्न भएजस्तो भयो। वास्तवमा

आकाश उत्पन्न हुँदैन किनकि आकाश विना प्रकृति र परमाणुहरू कहाँ टिक्नेछन् र? आकाश पछि वायु, वायुपछि अग्नि, अग्नि पछि जल, जल पछि पृथ्वी, पृथ्वीबाट औषधी, औषधीहरूबाट अन्न, अन्नबाट वीर्य्य र वीर्यबाट पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न हुन्छ। यहाँ आकाश आदि क्रमले, छान्दोग्यमा अग्नि आदि र ऐतरेयमा जलादि क्रमले सृष्टि बताइएको छ। वेदमा कतै पुरुष, कतै हिरण्यगर्भ आदिबाट, मीमांसामा कर्मबाट, वैशेषिकमा कालबाट, न्यायमा परमाणुबाट, योगमा पुरुषार्थबाट, सांख्यमा प्रकृतिबाट र वेदान्तमा ब्रह्मबाट सृष्टि उत्पत्ति भएको मानिन्छ। अब कुनलाई साँचो र कुनलाई चाहिं झूठो मानौं?

उत्तर—यसमा सबै सच्चा छन्, कुनै पनि झूठा छैनन्। जसले उल्टो सम्झन्छ त्यही झूठो हो। किनकि परमेश्वर जगत्को निमित्तकारण र प्रकृति उपादानकारण हो। महाप्रलय पछि आकाशादि क्रमबाट, अग्नि आदि प्रलय भैसकेपछि आकाश र वायु प्रलय नहुँदैमा अग्नि आदि क्रमले र विद्युत् अग्नि पनि प्रलय नहुँदै जलका क्रमले सृष्टि हुन्छ। अर्थात् जुन जुन प्रलयमा जहाँ जहाँ सम्म प्रलय हुन्छ त्यही त्यहींबाट सृष्टि उत्पत्ति हुन्छ। पुरुष र हिरण्यगर्भ आदि नाम परमेश्वरका हुन् भन्ने कुरा पहिलो समुल्लासमा लेखिसकिएको छ। एउटा कार्यमा एउटै विषयवारे विरुद्ध कार्य कुरा भएमा त्यसलाई विरोध भनिन्छ। हेर, छ शास्त्रमा यसरी अवरोध छ—

मीमांसामा—जगत्मा कर्मचेष्टा नगरी कुनै पनि कार्य हुनसक्दैन, वैशेषिकमा–समय नलागी केही बन्दैन, न्यायमा–उपादानकारण न भई केही पनि बन्नसक्तैन, योगमा—विद्या ज्ञान विचार नगरी केही बन्नसक्तैन, सांख्यमा–तत्त्वहरूको मेल नभई कुनै कार्य बन्दैन, अनि वेदान्तमा–बनाउनेले नबनाएमा कुनै पनि पदार्थ बन्नैसक्तैन, भनिएको छ। यसैकारण छ कारणहरूबाट सृष्टि बन्दछ, ती छ कारण मध्ये एक–एकको व्याख्या एक–एक शास्त्रमा छ। यसकारण तिनमा केही पनि विरोध छैन। छ जनाले मिलेर एउटा छाप्रोलाई उठाएर थाममाथि राखे जस्तै सृष्टिरूपी कार्यको व्याख्या छ शास्त्रकारहरूले मिलेर पूर्ण गरेका हुन्।

जस्तै पाँच जना अन्धा र एउटा अलि अलि देख्ने मानिसलाई कसैले हात्तीको एक एक अङ्ग बताएर हात्ती कस्तो छ? भनी सोद्धा, एउटाले–खम्बा जस्तो, अर्कोले नाडलोजस्तो, तेस्रोले–मूसल जस्तो, चौथाले कुच्चो जस्तो, पाँचौंले चौतारी जस्तो तथा छैठौंले कालो–कालो चार खम्बामाथि भैंसी जस्तो–जस्तो आकारको बताउँछ। यसैगरी

हिजोआजका प्राकृतभाषीहरूले ऋषिप्रणीत ग्रन्थ नपढेर नयाँ क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृतग्रन्थ र भाषाका नयाँ अनार्ष ग्रन्थ पढेर एक अर्काको निन्दा गर्न तत्पर भएर झूठो झगडा मच्चाएका छन्। बुद्धिमान्हरू वा अन्य व्यक्तिहरूले पनि यिनका कुरा मान्नु उचित होइन। किनकि अन्धाको पछि लागेर अन्धा हिंड्छन् भने तिनले दु:ख किन पाउदैनन्? त्यस्तै आजका अल्पविद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियका विलासमा लागेका व्यक्तिहरूका लीला संसार नाश गर्ने खालको हुन्छ।

प्रश्न—कारण नभई कार्य हुँदैन भने कारण किन हुँदैन?

उत्तर—ए सोझा सज्जनवृन्द! आफ्नो बुद्धिलाई केही काममा किन लगाउँदैनौ? संसारमा दुईमात्र पदार्थ हुन्छन्—एउटा कारण र दोस्रो कार्य। कारण कार्य हुँदैन र जुनबेला कार्य हुन्छ त्यो कारण हुँदैन। मानिस जब सम्म सृष्टिलाई यथावत् बुझ्दैन तब सम्म उसलाई यथावत् ज्ञान प्राप्त हुँदैन—

नित्यायाः सत्त्वरजस्तमयां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पत्नानां परमसुक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्ति सृष्टिरुच्यते।

अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् र तमोगुणको एकावस्थारूप प्रकृतिबाट उत्पन्न परमसूक्ष्म पृथक्–पृथक् विद्यमान तत्वावयवकै पहिलो संयोग हुन्छ। संयोगविशेषले अवस्थान्तर हुँदै अर्को अर्को अवस्था, सूक्ष्मबाट स्थूल हुँदै बन्दै बनाउँदै विभिन्न रूपको भएको हो। यसै कारण अर्थात् संसर्ग हुनाले सृष्टि भनिन्छ। पहिलो संयोगमा मिल्ने मिलाउने पदार्थ, जसको संयोगमा आदि वियोगमा अन्त हुँदैन अर्थात् जसको विभाग हुनसक्तैन, त्यसलाई कारण भनिन्छ भने संयोगपछि बन्ने र वियोगपछि त्यस्तो नरहनेलाई कार्य भनिन्छ। त्यस कारणको कारण, कार्यको कार्य, कर्त्ता, साधनको साधन र साध्यको साध्य बताउने व्यक्ति देख्ने भएर पनि अन्धो, सुनेर पनि बहिरो र जान्ने भएर पनि मूर्ख हो। के आँखाका आँखा, दियोको दियो र सूर्यको सूर्य कहिल्यै हुनसक्तछ? जो जसबाट उत्पन्न हुन्छ त्यो कारण, उत्पन्न हुने कार्य र कारणलाई कार्यरूप बनाउने कर्त्ता भनिन्छ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

—भगवद्गीता २।१६

असत्को भाव र सत्को अभाव कहिल्यै हुदैन। यी दुबैको निर्णय तत्वदर्शीहरूले गरेका हुन्। अरू पक्षपाती, हठी, मलिन आत्मा भएका, अविद्वानहरू यस कुरालाई सहज रूपमा कसरी जान्न सक्तछन् र? किनकि विद्वान्, सत्सङ्गी भएर पूर्ण विचार नगर्ने मानिस सदा भ्रमजालमा परिरहन्छन्। सबै विद्याका सिद्धान्त जान्ने, जान्न परिश्रम गर्ने र जानेर निष्कपटताले अरूलाई बताउने व्यक्ति धन्य हुन्। यसरी कारण विनानै सृष्टि भएको मान्ने व्यक्ति केही पनि जान्दैन भन्ने कुरा बुझिन्छ।

सृष्टि के समयमा परमात्मा ती परमसूक्ष्म पदार्थहरूलाई जम्मा पार्दछ। त्यसको प्रथम अवस्थामा परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारणबाट हुने केही स्थूल तत्वको नाम महत्तत्व, त्यसभन्दा स्थूलको नाम अहङ्कार र अहङ्कारबाट छुट्टा–छुट्टै पाँच सूक्ष्मभुत र कान, छाला, आँखा, जोब्रो, नाक यी पाँच ज्ञानेन्द्रिय, वाणी, हात, खुट्टा, उपस्थ र गुदा यी पाँच कर्मेन्द्रिय र एघारौं मन केही स्थूल उत्पन्न हुन्छन्। अनि ती पाँच सूक्ष्मभूत अर्थात् तन्मात्रबाट अनेक स्थूलावस्था भएका हामीहरूले प्रत्यक्ष देख्न सक्ने पाँच स्थूलभूत क्रमशः उत्पन्न हुन्छन्। तिनैबाट नानाकिसिमका औषधी, वृक्ष आदि, तीबाट अन्न, अन्नबाट वीर्य र वीर्यबाट शरीर बन्दछ। तर आदि सृष्टि भने मैथुनि हुँदैन। परमात्माले स्त्री पुरुषका शरीर बनाएर तिनमा जीवको संयोग गरेपछि मैथुनि सृष्टि चल्दछ।

हेर, शरीरमा यस्तो ज्ञानपूर्वक सृष्टि रचिएको छ जसलाई देखेर विद्वानहरू आश्चर्यचकित हुन्छन्। भित्र हाडका जोर्नी, नाडीहरूको बन्धन, मासूको लेप, छालाको बिर्को, प्लीहा कलेजो, फोक्सो=पंखा कलाको स्थापना, रक्तशोधन, विद्युत स्थापना, जीव संयोजन, शिरुरूपी मूलरचना, रौं नङ आदि स्थापना, आँखाका अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुलाई तारले जस्तै गाँसेको, इन्द्रियहरूका मार्ग प्रकाशन, जीवलाई जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था भोग्न स्थान विशेषको निर्माण, सबै धातुहरूको विभाग, कला, कौशल स्थापना आदि अद्भुसृष्टि परमेश्वर बाहेक कसले बनाउन सक्तछ?

यसका अतिरिक्त नाना किसिमका रत्न, धातुयुक्त भूमि, विविध प्रकारका बर आदि वृक्षको अति सूक्ष्म बिउ निर्माण, असंख्य हरिया, सेता, पहेंला, काला, छिरबिरे, मध्यरूपयुक्त पात, फूल, फल, जरो, निर्माण, गुलियो, नुनिलो, तीतो, टर्रो, पीरो, अमिलो यी विविध रस, सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्दमूल आदि रचना, असंख्य

भूगोल, सूर्य, चन्द्र आदि लोक निर्माण, धारण, भ्रमण गराउनु, नियमहरूमा राख्नु आदि परमेश्वर बाहेक कसैले गर्नसक्तैन।

कसैले कुनै पदार्थलाई देख्ता दुई किसिमको ज्ञान उत्पन्न हुन्छ। पहिलो जस्तो त्यो पदार्थ छ, त्यसको ज्ञान र दोस्रो त्यस पदार्थलाई देखेर त्यसलाई बनाउनेको ज्ञान हुन्छ। जस्तै कुनै व्यक्तिले जङ्गलमा सुन्दर आभूषण भेट्टायो, देख्ता त्यो सुनको रहेछ भन्ने बुझयो र कुनै बुद्धिमान् कालीगडले बनाएको रहेछ भन्ने स्पष्ट भयो। यसैगरी यस्ता नानाकिसिमका सृष्टिमा विविध रचना गर्ने परमेश्वर रहेछन् भन्ने सिद्ध हुन्छ।

प्रश्न—मानिसको सृष्टि अघि भयो अथवा पृथ्वी आदिको अघि भएको हो?

उत्तर—पृथ्वी आदिको किनकि पृथ्वी आदि नभई मानिसको स्थिति र पालन हुनसक्तैन।

प्रश्न—सृष्टि आदिमा एउटै वा धेरै मानिस बनाइएका थिए?

उत्तर—धेरै जुन जीवका कर्म ईश्वरीय सृष्टिमा उत्पन्न हुने खालका थिए, तिनलाई ईश्वर सृष्टि आदिमा जन्माउँछ। किनकि **'मनुष्या ऋषयश्च ये।** (यजु० ३१।९) **ततो मनुष्या अजायन्त'** (शत० १४।४।२।५) यो यजुर्वेद र उसको ब्राह्मणमा लेखिएको छ। यस प्रमाणबाट सृष्टि आरम्भमा सयकडौं, हजारौं मानिस जन्मिएका थिए भन्ने निश्चय हुन्छ र सृष्टि देख्तापनि मानिस धेरै आमा–बाबुका सन्तान हुन् भन्ने निश्चय हुन्छ।

प्रश्न—सृष्टि आदिमा मानिस बालक, युवा, बूढा वा तिनै, कुन अवस्थामा जन्मेका थिए?

उत्तर—युवावस्थामा किनभने बालक उत्पन्न गरेका थिए भने तिनलाई पालन पोषणगर्न अरू मानिस आवश्यकता पर्ने थियो र वृद्धावस्थामा मानिस सृष्टि गरेको थियो।

प्रश्न—कहिल्यै सृष्टि आरम्भ हुन्छ वा हुँदैन?

उत्तर—हुँदैन, जसरी दिन अघि रात, रात अघि दिन, दिन पछि रात र रात पछि दिन निरन्तर चलिरहन्छ त्यस्तै सृष्टि अघि प्रलय, प्रलय अघि सृष्टि, सृष्टि पछि प्रलय र प्रलय पछि सृष्टिको चक्र अनादिकाल देखि चलिरहेको छ। यसको आदि वा अन्त हुँदैन। तर जसरी दिन वा रातको आरम्भ र अन्त देखिन्छ त्यस्तै सृष्टि र प्रलयको आदि र अन्त भैरहन्छ। किनभने जसरी परमात्मा, जीव र जागत्को कारण

यी तिनै स्वरूपले अनादि छन् त्यस्तै उत्पत्ति, स्थिति र प्रलय प्रवाहले अनादि छन्। जस्तोकि नदीको प्रवाह कहिले देखिन्छ, कहिले सुक्तछ= देखिन्न, वर्षायाममा फेरि देखिन्छ र गर्मीमा देखिन्न, यस्ता व्यवहारलाई 'प्रवाहरूप' भनिन्छ। जसरी परमेश्वरका गुण, कर्म, स्वभाव अनादि छन्, त्यस्तै जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्ने उसका काम पनि अनादि छन्। जसरी ईश्वरका गुण, कर्म, स्वभावको आरम्भ र अन्त कहिल्यै हुँदैन, त्यस्तै उसका कर्त्तव्य कर्महरूको पनि आरम्भ र अन्त हुँदैन।

प्रश्न—ईश्वरले कुनै जीवलाई मनुष्य जन्म, कुनैलाई सिंह आदि क्रूर जन्म, कुनैलाई हरिण, गाई आदि पशु, कुनैलाई वृक्ष आदि, कीरा=फट्याङ्ग्रा आदि जन्म दिएको छ। यसबाट परमात्मामा पक्षपातको दोष लाग्दछ लाग्दैन?

उत्तर—ती जीवहरूले अघिल्लो सृष्टिमा गरेका कर्मानुसार व्यवस्था हुनाले पक्षपात लाग्दैन। कर्मविना जन्म दिने भए पक्षपात हुने थियो।

प्रश्न—मानिसको आदि सृष्टि कुन ठाउँमा भयो?

उत्तर—त्रिविष्टप् अर्थात् जसलाई तिब्बत भनिन्छ।

प्रश्न—आदि सृष्टिमा एउटै जाति थिए वा अनेक थिए?

उत्तर—एउटै मनुष्यजाति थिए। पछि **विजा॑नी॒ह्यार्य्या॒न् ये च॒ दस्य॑वः।** यो ऋग्वेदको (१।५१।८) वाक्य हो। श्रेष्ठहरूको नाम आर्य, विद्वान्, देव र दुष्टहरूको दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख हुनाले, आर्य, र 'दस्यु' दुई नाम भए। '**उ॒त शू॒द्र उ॒तार्ये॑**' अथर्ववेद (१९।६२।१) आदिमा पूर्वोक्त प्रकारले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य र शूद्र चार भेद भए। द्विज=विद्वान्को नाम 'आर्य' र मूर्खको नाम शूद्र र अनार्य अर्थात् अनाडी भयो।

प्रश्न—फेरि ती यहाँ कहाँबाट आए त?

उत्तर—आर्य र दस्युहरूमा अर्थात् विद्वान्=देव र अविद्वान्= असुरहरूमा सधैं झै झगडा हुन थाल्यो। उपद्रव धेरै हुन थालेपछि आर्यहरू यस भूखण्डलाई सम्पूर्ण भूगोलमा उत्तम सम्झेर यहाँ आएर बसे। यसैबाट यस देशको नाम '**आर्य्यावर्त्त**' भयो।

प्रश्न—आर्य्यावर्त्तको सीमा कहाँसम्म छ?

उत्तर— **आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्** ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

—मनु० २।२२, १७

उत्तर हिमालय, दक्षिण विन्ध्याचल, पूर्व र पश्चिम समूद्र तथा पश्चिम सरस्वती अटकनदी, पूर्व नेपालको पूर्व पहाडी भागबाट निस्केर बङ्गाल आसामको पूर्व, वर्माको पश्चिम भएर दक्षिण समुद्रमा पुगेर मिसिएको दृषद्वती, जसलाई '**ब्रह्मपुत्र,** भनिन्छ र उत्तरका पहाडहरूबाट निस्केर दक्षिण समुद्रका खाडीमा पुगेर मिसिन्छ। हिमालयको मध्यरेखा देखि दक्षिण र पहाडहरूभित्र र रामेश्वरसम्म विन्ध्याचलभित्रको सम्पूर्ण ठाउँलाई आर्यावर्त्त भनिन्छ। देव अर्थात् विद्वान्हरूले बसाएको र आर्यहरू रहने भएकाले यसलाई आर्यावर्त्त भनिएको हो।

प्रश्न—पहिले यस ठाउँको नाम के थियो र यसमा को बस्तथे?

उत्तर—त्यस अघि यस ठाउँको कुनै नाम थिएन र आर्य्यभन्दा पूर्व यस ठाउँमा कोही पनि बस्तैनथे। किनकि आर्य्यहरू सृष्टि आदिमा केही समय पछि तिब्बतबाट सोझै यस ठाउँमा आएर बसेका थिए।

प्रश्न—कोही 'आर्यहरू ईरानबाट आएका हुन्, यसैले यिनको नाम आर्य भएको हो, त्यस अघि यहाँ जङ्गली-आदिवासी बस्तथे, तिनीलाई असुर र राक्षस भनिन्थ्यो, आर्य आफूलाई देवता बताउँथे, तिनको युद्धलाई नै कथाहरूमा देवासुरसंग्राम भनिन्छ' भन्दछन्, यो सत्य होइन र?

उत्तर—यो कुरा पूरै झूठो हो। किनकि—

वि जा॑नी॒ह्यार्या॒न् ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान्॥

—ऋग्वेद १।५१।८

उत शूद्र उतार्ये॥ यो पनि वेदको (अथर्ववेद १९।६२।१) प्रमाण हो। आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषहरूको र यस विपरीत व्यक्तिको नाम दस्यु अर्थात् डाकू दुष्ट, अधार्मिक र अविद्वान्को हो। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यी द्विजको नाम आर्य र शूद्रको नाम अनार्य या अनाडी हो भन्ने कुरा लेखिसकिएको छ।

वेदले यसो भनेको छ भने अरू विदेशीहरूका कपोलकल्पित कुरालाई बुद्धिमान्हरू कहिल्यै मान्नसक्तैनन्। अनि देवासुर संग्राममा हिमालय पहाडमा आर्य र दस्यु म्लेच्छ असुरहरूका युद्धमा आर्य्यवर्त्तका अर्जुन तथा महाराज दशरथ आदि, देव अर्थात् आर्यहरूलाइ रक्षा र असुरहरूलाइ पराजय गर्न सहायक भएका भए।

यसबाट आर्य्यवर्त्तको बाहिरीतर्फ अर्थात् हिमालयभन्दा पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर र ईशानतर्फका देशमा बस्ने मानिसहरूको नाम 'असुर' सिद्ध हुन्छ। किनकि जब जब हिमाल

प्रदेशका आर्यहरूमाथि लडाइ गर्न चढाई गर्दथे तब तब यहाँका राजा महाराजाहरू तिनै उत्तर आदि देशमा आर्यहरूका सहायक हुन्थे। अनि श्री रामचन्द्र सँग दक्षिणमा भएका युद्धको नाम 'देवासुर–संग्राम' होइन। यसलाई राम–रावण युद्ध वा आर्य र राक्षसहरूको संग्राम् भनिन्छ।

कुनै संस्कृत ग्रन्थ वा इतिहासमा आर्यहरू ईरानबाट आएर यहाँका जङ्गलीहरूसँग लडेर, जितेर, निकालेर यस देशका राजा भएका थिए भन्ने कुरा लेखिएको छैन। अनि विदेशीहरूको लेख कसरी मान्य हुनसक्तछ र— ?

आर्यवाचो म्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ १ ॥

—मनुस्मृति १०।४५

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ २ ॥ —मनुस्मृति २।२३

आर्य्यावर्त्त देशभन्दा भिन्न देश दस्युदेश र म्लेच्छदेश भनिन्छन्। यसबाट पनि आर्य्यावर्त्त भन्दा भिन्न पूर्वदेश देखि लिएर ईशान, उत्तर, वायव्य र पश्चिम देशमा बस्नेहरूको नाम दस्यु, म्लेच्छ तथा असुर हो। अनि आर्य्यावर्त्त देशभन्दा भिन्न नैऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशामा बस्नेहरूको नाम 'राक्षस' हो। अझै पनि हेर, हबशीहरूको स्वरूप, जस्तो राक्षसहरूको वर्णन गरिन्छ त्यस्तै भयङ्कर देखिन्छ। त्यस्तै आर्य्यावर्त्तका मानिसहरूको पाद अर्थात् गोडामुनि भएका र नागवंशी अर्थात् नाग नामका पुरुषको वंशका राजा हुनाले आर्थ्वर्त्तको सोझै तल बस्नेहरूको नाम नाग र त्यस देशको नाम पाताल भनिन्छ। त्यसैको राजकन्या उलोपीसँग अर्जुनको विवाह भएको थियो अर्थात् इक्ष्वाकुदेखि लिएर कौरव पांडव सम्म सम्पूर्ण भूगोल आर्यहरूको राज्य र आर्य्यावर्त्त भन्दा भिन्न देशहरूमा पनि वेद अलि अलि प्रचार थियो।

ब्रह्माका पुत्र विराट्, विराट्का मनु, मनुका मरीचि आदि दश, यिनका स्वायंभुव आदि सात राजा तिनका सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा आर्य्यावर्त्तका प्रथम राजा भए, तिनले यो आर्य्यावर्त्त देश बसाएका थिए भन्ने प्रमाण छ।

अब अभाग्यको उदय, आर्यहरूको आलस्य–प्रमाद र परस्पर विरोधका कारण अरू देशमा राज्य गर्ने त कुरा आर्य्यावर्त्तमै पनि आर्य्यहरूको अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य यत्तिखेर छैन। जे जति छ त्यो पनि विदेशीहरूको पादाक्रान्त भैरहेछ, केही मात्र राजा स्वतन्त्र छन्। दुर्दिन आएपछि देशवासीहरूले अनेक किसिमका दुःख भोग्नु पर्दछ।

कसैले जतिसुकै गरोस् तर स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम हुन्छ अर्थात् मतमतान्तरका आग्रहरहित, आफ्नो र अर्काको भन्ने पक्षपातशून्य, प्रजामाथि बाबुआमासरह कृपा, न्याय र दयासहित पनि विदेशीहरूको राज्य पूर्णसुखदाय हुँदैन। तर भिन्नभिन्न भाषा, बेग्ला–बेग्लै शिक्षा र अलग व्यवहारको विरोध छुट्नु अत्यन्त कठिन हुन्छ। यस्तो विरोध नछुटिकन परस्पर पूरा उपकार र अभिप्राय सिद्ध हुन कठिन हुन्छ। यसकारण वेदादिशास्त्रमा गरिएको व्यवस्था वा लेखिएको इतिहासलाई मान्यता प्रदान गर्नु भद्रपुरुषहरूको कर्तव्य हो।

प्रश्न—जगत् उत्पत्ति भएको कति समय बित्यो ?

उत्तर—जगत्को उत्पत्ति र वेद प्रकाश भएको एक अर्ब छयान्न्वे करोड कैयौं लाख र कैयौं हजार वर्ष भैसक्यो। यसको स्पष्ट व्याख्यान मैले लेखेको ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकाको वेदोत्पत्तिविषयमा लेखिएको छ, त्यहीं हेर्नुहोला। इत्यादि प्रकार सृष्टि बन्ने र बनाउने हो। यसमा यो पनि जान्नुपर्ने छ कि सबैभन्दा सूक्ष्म टुक्रो, जसलाई काट्नु वा टुक्र्याउन सकिन्न त्यसको नाम परमाणु, साठी परमाणु मिलेर अणु, दुई अणुको एक द्व्यणुकको स्थूलवायु, तीन द्व्यणुकको अग्नि, चार द्व्यणुकको जल, पाँच द्व्यणुकको पृथ्वी अर्थात् तीन द्व्यणुकको त्रसरेणु र त्यसको दोब्बर हुँदै पृथ्वी आदि दृश्य पदार्थ हुन्छन्। यसैगरी क्रमपूर्वक मिलाएर परमात्माले भूगोल आदि बनाएको हो।

प्रश्न—यसलाई कसले धारण गर्दछ ? कुनै भन्दछन्—शेष अर्थात् हजारौं फणा भएको सर्पको टाउकोमा पृथ्वी छ, अर्को भन्छ—साँढेको सींगमा छ, तेस्रो—कुनैमा छैन भन्छ, चौथो—वायुको आधारमा, पाँचौं—सूर्यको आकर्षणले तानिएर आफ्नो ठाउँमा अवस्थित र छैठौं—पृथ्वी गह्रौं हुनाले आकाशमा तल तल गैरहेको छ भन्छन्, यिनमा कुन कुरालाई चाहिं सत्य मानौं ?

उत्तर—शेष नाग र साँढेको सींगमा राखिएर पृथ्वी स्थिर भएको भन्नेसँग 'सर्प र साँढेका बाबुआमा जन्मसमय पृथ्वी कहाँ स्थिर भयो ? र सर्प र साँढे के मा स्थिर छन् ?' भन्ने सोध्नुपर्दछ। साँढेको कुरा गर्ने मुसलमान त चुप भई नै हाल्नेछन्। तर शेष नाग भन्नेहरू—सर्प कछुआमा, कछुआ पानीमा, पानी अग्निमा, अग्नि वायुमा र वायु आकाशमा अवस्थित छ' भन्नेछन्। तीसँग यी सबै केमा अवस्थित छन् ? भनी सोद्धा अवश्य नै परमेश्वरमा स्थित बताउनेछन्। तीसँग शेष र साँढे कसका बच्चा हुन् ? भनी सोधेमा ती भन्नेछन्—शेष

कश्यापकद्रू र साँढे गाईको, त्यस्तै कश्यप मरीचिको, मरीचि मनुको, मनु विराटको र विराट् ब्रह्माको छोरो थियो र ब्रह्मा आदिसृष्टिको थियो। शेष जन्मिनु अघि पाँच पुस्ता बितिसक्तासम्म यस पृथ्वीलाई कसले धारण गरिरहेको थियो ? अर्थात् कश्यपको जन्म समयमा पृथ्वी केमा अवस्थित थियो ? भनी सोध्दा तैं चुप मैं चुप भन्ने स्थित आउँछ र लड्न थाल्दछन्। यसको वास्तविक अभिप्राय भने बाँकी रहनेलाई शेष भनिन्छ भन्ने हो। यसै अनुसार कुनै कविले '**शेषधारा पृथ्वीत्युक्तम्**' 'शेष'को आधारमा पृथ्वी छ भनेको हो। अरूले त्यसको अभिप्राय नसम्झेर सर्पको मिथ्या कल्पना गरेका हुन्। तर उत्पत्ति र प्रलयबाट बाँकी नै रहिरहने अर्थात् छुट्टै रहने हुनाले परमेश्वरलाई शेष भनिन्छ, यो पृथ्वी त्यसैको आधारमा छ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः ॥ यो ऋग्वेदको (१०।८५।१) वाक्य हो।

सत्य अर्थात् तिनै कालमा अबाधित, कहिल्यै नाश नहुने परमेश्वरले भूमि, सूर्य र सबै लोकलोकान्तरलाई धारण गरेको छ।

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ यो पनि ऋग्वेदको (१०।३१।८) वाक्य हो।

यसै उक्षा शब्दलाई देखेर कसैले साँढेको अर्थ लिएको हुनुपर्दछ,। किनकि उक्षा साँढेलाई पनि भनिन्छ। तर यस्तो अर्थ लगाउने मूर्खले यति ठूलो भूगोललाई धारण गर्ने समार्थ्य साँढेमा कहाँ बाट आउन सक्छ ? भन्ने पनि बुझ्न किन नसकेको होला ? यसकारण वर्षाद्वारा भूगोलको सेचन गर्ने हुनाले सूर्यलाई उक्षा भनिन्छ। त्यसैले सूर्यको आफ्नो आकर्षणद्वारा पृथ्वीलाई धारण गरेको छ। तर सूर्य आदिलाई धारण गर्ने परमेश्वर बाहेक अरू कुनै छैन।

प्रश्न—यत्रा यत्रा विशाल भूगोललाई परमेश्वरले कसरी धारण गर्न सक्छ होला ?

उत्तर—जसरी अनन्त आकाश सामु ठूला–ठूला भूखण्डल केही पनि होइनन् अर्थात् समुद्रमा पानीका साना–साना थोपा सरह हुन् त्यस्तै अनन्त परमेश्वर सामु असंख्य लोकलाई एउटा परमाणु जत्ति पनि भन्नसकिन्न। ऊ बाहिर भित्र सर्वत्र व्यापक छ अर्थात् '**विभूः प्रजासु**' यो यजुर्वेदको (३२।८) वाक्य हो, त्यो परमात्मा सबै प्रजाहरूमा व्यापक भएर सबैलाई धारण गरिरहेछ। ईसाई, मुसलमान र पौराणिकहरूको कथन अनुसार ईश्वर विभू=व्यापक नभएको भए उसले सबै सृष्टिलाई धारण गर्न सक्नेथिएन। किनकि प्राप्त नभई

कसैले कसैलाई धारण गर्न सक्तैन।

कसैले 'यी सबै लोक परस्पर आकर्षणले टिकेका छन्, अनि परमेश्वरले धारण गर्नुपर्ने अपेक्षा नै के रहन्छ र ?' भन्छ भने यसो भन्नेसँग 'सृष्टि अनन्त वा सान्त के छ ?' भनी सोध्नुपर्दछ, अनन्त भनेमा 'साकार वस्तु अनन्त कहिल्यै हुनसक्तैन' भन्नुपर्दछ र सान्त भनेमा 'लोकहरूको अन्तिम सीमा अर्थात् जुन लोक भन्दा पर कुनै लोक छैन, त्यहाँ कसको आकर्षणले टिक्ने छ ?' भनी सोध्नुपर्दछ। जसरी समष्टि र व्यष्टि अर्थात् वृक्षहरूका समूहलाई वन भने जस्तै 'समष्टि' र एउटा–एउटा वृक्षलाई छुट्टा–छुट्टै गनेजस्तै' 'व्यष्टि' हुन्छ, त्यस्तै सबै भूगोलहरूलाई समष्टि मानेर 'जगत्' भनेमा सम्पूर्ण जगत्लाई परमेश्वर बाहेक कसैले धारण र आकर्षण गर्ने अरू कोही छैन। यसकारण जसले सबै जगत्लाई बनाउँछ त्यही—

स दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ यो यजुर्वेदको (१३।४) वाक्य हो।

पृथ्वी आदि प्रकाश रहित लोकलोकान्तर पदार्थ र सूर्य आदि प्रकाशमान लोक र पदार्थहरू रचना तथा धारण गर्ने परमात्मा सबैमा व्यापक भैरहेछ, त्यही सब जगत्लाई बनाउँछ र धारण गर्दछ।

प्रश्न—पृथ्वी आदि लोक घुम्दछन् वा स्थिर छन् ?

उत्तर—घुम्दछन्।

प्रश्न—धेरैजसो मानिस 'सूर्य घुम्छ, पृथ्वी घुम्दैन' भन्छन्, अरू केही व्यक्ति भने 'पृथ्वी घुम्छ, सूर्य घुम्दैन' भन्छन्, यसमा कुनलाई चाहिं सत्य मान्ने ?

उत्तर—यी दुबै आधा झूठा हुन्। किनकि वेदमा लेखेको छ कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥

—यजुर्वेद अ० ३। मं० ६

अर्थात् यो भूगोल पानी सहित सूर्यको चारैतर्फ घुमिरहन्छ। यसबाट पृथ्वी घुम्दछ भन्ने बुझिन्छ।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

—यजु० ३३।४३

वर्षा आदिका कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीय स्वरूपमा विद्यमान सविता अर्थात् सूर्य, सबै प्राणि, अप्राणिहरूमा अमृतरूप

वृष्टि वा किरणद्वारा अमृत प्रवेश गराएर सबै मूर्त्तिमान=देखिने द्रव्यहरूलाई देखाउँदै सबैलोकसंग आकर्षणगुणसँगै विद्यमान भएर आफ्नैं परिधिमा घुमिरन्छ तर कुनै लोकको चारैतिर भने घुम्दैन। त्यस्तै एउटा–एउटा ब्रह्माण्डमा एउटा सूर्य प्रकाशक र अरू सबै लोकलोकान्तर प्रकाश्य हुन्छन्। जस्तै—

दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ –अथर्ववेद कां० १४। मं० १

जसरी यो चन्द्रलोक सूर्यबाट प्रकाशित हुन्छ, त्यस्तै पृथ्वी आदि लोक पनि सूर्यकै प्रकाशबाट प्रकाशित हुन्छन्। पृथ्वी आदि लोक घुमेर सूर्यका अगाडि आएको भागमा दिन र पछाडि परेको भागमा रात हुने हुँदा रात र दिन सधैं भई नै रहन्छन्। अर्थात् उदय, अस्तय सन्ध्या, मध्याह्न, मध्यरात आदि भएभरका कालावयव देश–देशान्तरहरूमा सधैं रहन्छन् अर्थात् आर्य्वर्त्तमा सूर्योदय हुँदा पाताल अर्थात् अमेरिकामा अस्तयर यहाँ पाताल देशमा मध्य रात वा मध्यदिन हुन्छ।

सूर्य घुम्छ र पृथ्वी घुम्दैन भन्नेहरू अज्ञानी हुन्। किनकि यस्तो भएमा हजारौं वर्ष सम्म दिन वा रात रहिरहने थिए। तात्पर्य के भने सूर्यको नाम **ब्रध्नः** (शतपथ १३।२।६।१) हो र यो सूर्य पृथ्वी भन्दा लाखौं गुना ठूलो र करोडौं कोस टाढा छ। जसरी रायोको अगाडि पहाड घुमेमा धेरै समय लाग्ने छ र रायोको दाना घुमे देखि धेरै समय लाग्दैन त्यस्तै पृथ्वी घुम्नाले यथायोग्य दिन–रात हुन्छन् भने सूर्य घुम्ने भएको भए यसो हुनसक्ने थिएन। अनि सूर्यलाई स्थिर भन्नेहरू पनि ज्योतिष विद्यालाई नजान्ने हुन्। किनकि सूर्य न घुम्ने भए एउटा राशिबाट अर्को राशि अर्थात् ठाउँमा पुग्न सक्नेथिएन। अर्को कुरा गह्रौं पदार्थ नघुमिकन आफ्नो निश्चित ठाउँमा कहिल्यै हट्नसक्तैन।

पृथ्वी घुम्दैन बरू तल तल जान्छ र जम्बुद्वीपमा मात्र दुईवटा सूर्य र दुईवटा चन्द्रमा छन् भन्ने जैनीहरूलाई त भाँगको गहिरो नशामा डुबेको ठान्नुपर्दछ। किनकि पृथ्वी तल–तल जाने भए चारै तर्फ वायु चक्र नबन्ने हुँदै पृथ्वी छिन्न भिन्न हुने थियो र माथिकै तल्ला ठाउँमा बस्नेहरूलाई वायु स्पर्श हुने थिएन र तलकाहरूलाई भने वायु बढी हुने थियो र वायुको गति एकनासै हुने थियो। दुई–दुई सूर्य र चन्द्र भएका भए रात र कृष्णपक्ष हुने व्यवस्थानै नष्ट भ्रष्ट हुने थियो। यसकारण एउटा भूमि अर्थात् ग्रहसँग एउटा चन्द्र अर्थात् उपग्रह र अनेक भूमि वा ग्रह र अनेक चन्द्र वा उपग्रहका बीचमा एउटा सूर्य हुन्छ।

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र र तारा के हुन् र तिनमा मनुष्य आदि सृष्टि छ

वा छैन?

यी सबै भूगोल लोक हुन् र यिनमा मनुष्य आदि प्रजा पनि रहन्छन्, किनकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं बसुहितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते, तद्यदिद ꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ —शतपथ १४।२।९।४

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र र सूर्यमा नै सबै पदार्थ र प्रजा बस्ने हुँदा तथा यिनैले सबैलाई बसाउने हुँदा यिनको नाम **'वसु'** हो। वास वा बस्नका लगि घर हुनाले यिनलाई बसु भनिन्छ। पृथ्वी जस्तै सूर्य, चन्द्र र नक्षत्र बसु भएपछि तिनमा पनि यसैगरी प्रजा छन् भन्ने कुरामा के शङ्का रह्यो त? परमेश्वरको यो एउटा सानो लोक त मनुष्य आदिले भरिएको छ भने के अरू सबैलोक खाली होलान् त? परमेश्वरको कुनैपनि काम निष्प्रयोजन हुँदैन भने यतिका असंख्य लोकहरूमा मनुष्य आदि सृष्टि नभए कसरी सफल हुनसक्छ र? यसकारण सबै ठाउँमा मनुष्य आदि सृष्टि छन्।

प्रश्न—जसरी ठाउँमा मनुष्य आदि सृष्टिको आकृति अवयव छ, अरूलोकमा पनि त्यस्तै होला अथवा फरक होला?

उत्तर—आकृतिमा केही फरक हुनसक्छ, जसरी यस पृथ्वी मा चीनियाँ, हवशी आर्यावर्त्तका र यूरोपीयमा अवयव, रङ्ग–रूप र आकृति पनि अलि अलि भेद हुन्छ, यसैगरी लोकलोकान्तरमा पनि फरक हुन्छ। तर जुन जातिको जस्तो सृष्टि यसलोकमा छ त्यस जातिको त्यस्तै सृष्टि अरूलोकमा पनि छ। जुन शरीरको जुन ठाउँमा आँखा आदि अङ्ग छन्, लोकान्तरमा पनि त्यसै जातिको त्यसै त्यसै ठाउँमा त्यस्तै नै हुन्छन्। किनकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

—ऋग्वेद १०।१९०।३

धाता=परमात्माले जुन किसमका सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष र त्यहाँका सुखविशेष पदार्थ पूर्वकल्पमा रचेको थियो, त्यस्तै यस कल्प अर्थात् यस सृष्टिमा रचेको छ तथा सबै लोकलोकान्तरमा पनि बनाएका छन्। कत्तिपनि भिन्नता छैन॥

प्रश्न—जुन वेद प्रकाश यस लोकमा छ, अन्य लोकमा पनि यो वेद प्रकाश छ वा छैन?

उत्तर—प्रकाश छ। जसरी एउटा राजाका राज्यव्यवस्था, नीति

सबै ठाउँमा समान हुन्छन्, त्यस्तै राजराजेश्वर परमात्माको वेदोक्त नीति आ–आफ्ना सृष्टिरूपी सबै राज्यमा एकनास छ।

प्रश्न—यी जीव र प्रकृतिका तत्त्वहरू अनादि हुन् र ईश्वरले बनाएका होइनन् भने यी सबै स्वतन्त्र हुनाले ईश्वरको अधिकार पनि यी माथि नहुनु पर्नेहो ?

उत्तर—जसरी राजा र प्रजा एउटै समयमा हुन्छन् र सबै प्रजा राजाका अधीन हुन्छन् त्यस्तै सबै जीव र जड पदार्थ परमेश्वरको अधीन छन्। परमेश्वर सबै सृष्टि बनाउने, जीवका कर्मको फल दिने, यथावत् सबैको रक्षक र अनन्त सामर्थ्यवान् छ भने थोरै सामर्थ्य भएका जीव र जड पदार्थ उसका अधीन किन नहुने ? यसकारण जीव कर्म गर्न स्वतन्त्र तर कर्मका फल भोग्नमा ईश्वर व्यवस्थाले परतन्त्र छन्। त्यस्तै सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सबै विश्व सृष्टि, संहार र पालन गर्दछ।

यसपछि विद्या, अविद्या, वन्ध र मोक्ष विषयमा लेखिने छ। यो आठौं समुल्लास पूर्णभयो।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सृष्टयुत्पत्तिस्थितिप्रलयविषये अष्टमः समुल्लासः सम्पूर्ण॥ ८॥

अथ नवम–समुल्लासः

अथ विद्याऽविद्यावन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयंꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

—यजुर्वेद ४०।१४

विद्या र अविद्याका स्वरूपलाई सँगसँगै जान्ने मानिसले अविद्या अर्थात् कर्मोपासनाबाट मृत्युलाई पार गरेर विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञानबाट मोक्ष प्राप्त गर्दछ। **अविद्याका लक्षण**—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्वशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

—यो योगसूत्रको (२।५) वचन हो।

अनित्य संसार र शरीर आदिमा नित्य मान्नु अर्थात् देखिने सुनिने कार्यजगत्लाई सदा देखिरहेको, सधैं रहने र योगबालद्वारा यही देवहरूको शरीर सदा रहन्छ, यस्तो विपरीत बुद्धि हुनु अविद्याको पहिलो भाग हो। अशुचि अर्थात् खलयुक्त स्त्रीको शरीर आदि र झूठ बोल्नु चोरी गर्नु आदि अपवित्रमा पवित्र बुद्धि हुनु दोस्रो भाग हो। धेरै विषय भोगमा लाग्नुरूपी दुःखमा सुख–बुद्धि हुनु तेस्रो र अनात्मामा आत्माबुद्धि गर्नु अविद्याको चौथो भाग हो। यसरी चार प्रकारले विपरीत ज्ञानलाई **'अविद्या'** भनिन्छ। यसको उल्टो अर्थात् अनित्यमा अनित्य, नित्यमा नित्य, अपवित्रमा अपवित्र, पवित्रमा पवित्र, दुःखमा दुःख, सुखमा सुख, अनात्मामा अनात्मा र आत्मामा आत्माको ज्ञान हुनु **'विद्या'** हो। अर्थात् **वेत्ति यथावत् तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या**'। '**यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति साऽविद्या**' जसबाट पदार्थहरूका यथार्थस्वरूप बोध हुन्छ, त्यो विद्या र जसबाट तत्वस्वरूप जानिदैन, एउटा पदार्थमा अर्कै ज्ञान हुन्छ त्यो अविद्या भनिन्छ। अर्थात् कर्म र उपासनाको नाम अविद्या हो, किनकि यो ब्रह्म र अन्तरक्रियाविशेषको नाम हो, ज्ञानविशेषको होइन। यसै मन्त्रमा 'शुद्ध कर्म र परमेश्वरको उपासना नगरी कोहीपनि मृत्यु दुःखबाट पार हुँदैन' भनिएको छ। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्र उपासना र पवित्र

सबै ठाउँमा समान हुन्छन्, त्यस्तै राजराजेश्वर परमात्माको वेदोक्त नीति आ–आफ्ना सृष्टिरूपी सबै राज्यमा एकनास छ।

प्रश्न—यी जीव र प्रकृतिका तत्त्वहरू अनादि हुन् र ईश्वरले बनाएका होइनन् भने यी सबै स्वतन्त्र हुनाले ईश्वरको अधिकार पनि यी माथि नहुनु पर्नेहो ?

उत्तर—जसरी राजा र प्रजा एउटै समयमा हुन्छन् र सबै प्रजा राजाका अधीन हुन्छन् त्यस्तै सबै जीव र जड पदार्थ परमेश्वरको अधीन छन्। परमेश्वर सबै सृष्टि बनाउने, जीवका कर्मको फल दिने, यथावत् सबैको रक्षक र अनन्त सामर्थ्यवान् छ भने थोरै सामर्थ्य भएका जीव र जड पदार्थ उसका अधीन किन नहुने ? यसकारण जीव कर्म गर्न स्वतन्त्र तर कर्मका फल भोग्नमा ईश्वर व्यवस्थाले परतन्त्र छन्। त्यस्तै सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सबै विश्व सृष्टि, संहार र पालन गर्दछ।

यसपछि विद्या, अविद्या, वन्ध र मोक्ष विषयमा लेखिने छ। यो आठौं समुल्लास पूर्णभयो।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सृष्टयुत्पत्तिस्थितिप्रलयविषये अष्टमः समुल्लासः सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अथ नवम–समुल्लासः

अथ विद्याऽविद्यावन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

—यजुर्वेद ४०।१४

विद्या र अविद्याका स्वरूपलाई सँगसँगै जान्ने मानिसले अविद्या अर्थात् कर्मोपासनाबाट मृत्युलाई पार गरेर विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञानबाट मोक्ष प्राप्त गर्दछ। **अविद्याका लक्षण**—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्वशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

—यो योगसूत्रको (२।५) वचन हो।

अनित्य संसार र शरीर आदिमा नित्य मान्नु अर्थात् देखिने सुनिने कार्यजगत्लाई सदा देखिरहेको, सधैं रहने र योगबालद्वारा यही देवहरूको शरीर सदा रहन्छ, यस्तो विपरीत बुद्धि हुनु अविद्याको पहिलो भाग हो। अशुचि अर्थात् खलयुक्त स्त्रीको शरीर आदि र झूठ बोल्नु चोरी गर्नु आदि अपवित्रमा पवित्र बुद्धि हुनु दोस्रो भाग हो। धेरै विषय भोगमा लाग्नुरूपी दुःखमा सुख–बुद्धि हुनु तेस्रो र अनात्मामा आत्माबुद्धि गर्नु अविद्याको चौथो भाग हो। यसरी चार प्रकारले विपरीत ज्ञानलाई **'अविद्या'** भनिन्छ। यसको उल्टो अर्थात् अनित्यमा अनित्य, नित्यमा नित्य, अपवित्रमा अपवित्र, पवित्रमा पवित्र, दुःखमा दुःख, सुखमा सुख, अनात्मामा अनात्मा र आत्मामा आत्माको ज्ञान हुनु **'विद्या'** हो। अर्थात् **वेत्ति यथावत् तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या'**। **'यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति साऽविद्या'** जसबाट पदार्थहरूका यथार्थस्वरूप बोध हुन्छ, त्यो विद्या र जसबाट तत्वस्वरूप जानिदैन, एउटा पदार्थमा अर्कै ज्ञान हुन्छ त्यो अविद्या भनिन्छ। अर्थात् कर्म र उपासनाको नाम अविद्या हो, किनकि यो ब्रह्म र अन्तरक्रियाविशेषको नाम हो, ज्ञानविशेषको होइन। यसै मन्त्रमा 'शुद्ध कर्म र परमेश्वरको उपासना नगरी कोहीपनि मृत्यु दुःखबाट पार हुँदैन' भनिएको छ। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्र उपासना र पवित्र

ज्ञानबाट नै मुक्ति र अपवित्र झूठो बोल्नु आदि कर्म, ढुङ्गाका मूर्ति आदिको उपासना र मिथ्या ज्ञानबाट 'बन्ध' हुन्छ। कुनैपनि मानिस क्षण मात्र पनि कर्म, उपासना र ज्ञानदेखि रहित हुँदैन। यसकारण धर्मयुक्त सत्यबोल्नु आदि कर्म गर्नु र झूठ बोल्नु आदि अधर्मलाई छोड्नु नै मुक्तिको साधान हो।

प्रश्न—कसलाई मुक्ति प्राप्त हुँदैन?

उत्तर—बद्धलाई।

प्रश्न—कस्तालाई बद्ध भनिन्छ?

उत्तर—अधर्म अज्ञानमा फँसेको जीवलाई बद्ध भनिन्छ।

प्रश्न—बन्ध र मोक्ष स्वभावले हुन्छ वा कुनै निमित्तले?

उत्तर—निमित्तले हुन्छ। किनकि स्वभावले हुने भएको भए बन्ध र मोक्षको निवृत्ति कहिल्यै हुनेथिएन

प्रश्न— **न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकोः।**
न मुक्षुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमार्थकता॥

यो श्लोक माण्डूक्योपनिषद्माथि गौडपाद कारिकाको (२।३२) हो। जीव ब्रह्म हुनाले वस्तुतः जीवको निरोध हुँदैन अर्थात् न त कहिल्यै आवरणमा आयो, न जन्म लिन्छ, न बद्ध छ, न साधक हो अर्थात् केही साधना गर्दैन, न छुट्ने इच्छा गर्दछ र कहिल्यै यसको मुक्ति पनि हुँदैन, किनभने वास्तवमा बन्ध नै कसैको भएको छैन भने मुक्ति कसको हुने?

उत्तर—नवीन वेदान्तीहरूको यो कथन सत्य होइन, किनकि जीवको स्वरूप अल्प हुनाले ऊ आवरणमा आउँछ, शरीरसँग प्रकट हुनुरूपी जन्म लिन्छ, पापरूप कर्म फल=भोगरूप बन्धनमा फस्दछ, त्यस बन्धनलाई छुटाउने प्रयत्न गर्दछ, दुःखबाट छुट्ने इच्छा गर्दछ र दुःखहरूबाट छुटेर परमानन्द परमेश्वरलाई प्राप्त गरेर मुक्ति सुख पनि भोग्दछ।

प्रश्न—यी सबै शरीर र अन्तःकरणका धर्म हुन्, जीवका होइनन्। किनकि जीव त पापपुण्यरहित साक्षीमात्र हो। जाडो, गर्मी आदि शरीर आदिका धर्म हुन्, आत्मा त निर्लेप छ।

उत्तर—शरीर र अन्तःकरण जड हुन्। तिनलाई जाडो, गर्मी हुँदैन। त्यस शरीरसँग संयुक्त हुने चेतन मनुष्य आदि प्राणीलाई नै जाडो–गर्मी भान र भोग हुन्छ। त्यस्तै प्राण पनि जड हुनाले त्यसलाई भोक–तिर्खा आदि हुँदैन, तर प्राणवान् जीवलाई भोक प्यास आदि लाग्छ। त्यस्तै

मन पनि जड हुनाले उसलाई हर्ष–शोक हुनसक्तैन, तर जीव मनबाट हर्ष–शोक, दुःख–सुखको भोग गर्दछ। जसरी बहिष्कारण अर्थात् कान आदि इन्द्रियहरूबाट असल–खराब शब्द आदि विषयलाई ग्रहण गरेर जीव सुखी–दुःखी हुन्छ त्यस्तै अन्तःकरण अर्थात् मन–बुद्धि–चित्त–अहंकारबाट संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण र अभिमान गर्ने जीव दण्ड र मानको भागी हुन्छ।

जसरी तरवारले मार्ने व्यक्तिदण्डनीय हुन्छ, तरवार दण्डनीय हुँदैन, त्यस्तै शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण र प्राणरूप साधानहरूद्वारा असल खराब कर्म गर्ने जीव सुख–दुःख भोग्दछ। जीव कर्मको साक्षी होइन, कर्ता–भोक्ता हो। कर्महरूको साक्षी त एउटै अद्वितीय परमात्मा हो। कर्म गर्ने जीव नै कर्ममा लिप्त हुन्छ, साक्षी ईश्वर लिप्त हुँदैन।

प्रश्न—जीव ब्रह्मको प्रतिबिम्ब हो। जसरी ऐना टुट्–फुट् हुदा बिम्बको केही हानि हुँदैन, त्यस्तै अन्तःकरणमा ब्रह्म प्रतिबिम्ब जीव तब सम्म रहन्छ जबसम्म ऊ अन्तःकरणको पछि छ। अन्तःकरण नष्ट भएपछि जीव मुक्त हुन्छ।

उत्तर—यो बालकपनको कुरा हो। किनकि प्रतिबिम्ब साकारको साकारमा हुन्छ। जस्तै मुख र ऐना दुबै आकारयुक्त हुन् र छुट्टै पनि हुन्। छुट्टै नभए पनि प्रतिबिम्ब हुनसक्तैन। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक हुनाले उसको प्रतिबिम्ब हुनसक्तैन।

प्रश्न—हेर, गहिरो सफा पानीमा निराकार र व्यापक आकाशको आभास हुन्छ। यस्तै स्वच्छ अन्तःकरणमा परमात्मा आभास हुन्छ। यसलाई चिदाभास भनिन्छ।

उत्तर—यो बालबुद्धिको मिथ्या प्रलाप हो। किनकि आकाश दृश्य होइन भने त्यसलाई आँखाले कसैले पनि कसरी देख्नसक्तछ?

प्रश्न—मास्तिर नीलो धमिलो–धमिलो देखिन्छ, त्यो नीलो आकाश हो कि होइन?

उत्तर—होइन।

प्रश्न—त्यसो भए त्यो के हो?

उत्तर—छुट्टा–छुट्टै पृथ्वी, जल र अग्निका त्रसरेणु देखिन्छन्। त्यसमा देखिने नीलोपन भने बढी पानी हुनाले हो, वर्षामा पर्ने पानीको नीलोपनि हो। धमिलोपन भने पृथ्वीबाट उडेर वायुमा घुम्ने धूलोका कण हुन्। तिनैको प्रतिबिम्ब पानी वा ऐनामा देखिन्छ, आकाशको प्रतिबिम्ब कहिल्यै देखिन्न।

प्रश्न—जसरी व्यवहारमा घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश र महदाकाशका भेद हुन्छन् त्यस्तै ब्रह्माण्ड र अन्त:करण उपाधिका भेदले ब्रह्मको नाम ईश्वर र जीव हुन्छ। घट आदि नष्ट भए पछि महाकाश नै रहे जस्तै अन्त:करण नष्ट भएपछि ब्रह्म नै रहन्छ।

उत्तर—यी पनि अविद्वान्हरूका कुरा हुन्। किनकि आकाश कहिल्यै छिन्न–भिन्न हुँदैन। व्यवहारमा पनि 'घैंटो ल्याऊ' आदि व्यवहार हुन्छ, 'घैंटोको आकाश ल्याऊ' कसैले भन्दैन। यसकारण यो कुरा ठीक होइन।

प्रश्न—जसरी समुद्रमा माछा, कीरा आदि र आकाशमा चरा आदि घुम्दछन् त्यस्तै चिदाकाश ब्रह्ममा सबै अन्त:करण घुम्दछन्। ती आफैं त जड हुन् तर सर्वव्यापक परमात्माका सत्ताबाट आगोबाट फलाम तातो भए जस्तै चेतन भईरहेकाछन्। जसरी ती चल्छन् फिर्छन् र आकाश तथा ब्रह्म निश्चल छ, त्यस्तै जीवलाई ब्रह्म मान्न कुनै दोष आउँदैन।

उत्तर—तिम्रो यो दृष्टात पनि सत्य होइन। किनकि अन्त:करणमा प्रकाशमान भएर जीव हुने सर्वव्यापी ब्रह्ममा सर्वज्ञ आदि गुण हुन्छन् वा हुँदैनन्? आवरण हुनाले सर्वज्ञाता हुँदैन भन्छौं भने ब्रह्म आवृत्त र खण्डित छ वा अखण्डित? अखण्डित छ भन्छौं भने बीचमा कसैले पनि आवरण वा पर्दा हाल्नसक्तैन। पर्दा नभएपछि सर्वज्ञता किन नहुने? आफ्नो स्वरूपलाई बिर्सेर अन्त:करणसित हिंडेजस्तो गर्दछ, आफ्नो स्वरूपबाट होइन भन्छौ भने ऊ आफू न हिंड्ने हुँदा जति जति अघिल्लो ठाउँलाई अन्त:करणले छोड्दै र पर–पर जहाँ जहाँ सर्दै जान्छ त्यहाँ त्यहाँको ब्रह्म अज्ञानी भ्रान्त हुन्छ। जुन ठाउँबाट अन्त:करण हट्तै जान्छ। त्यहाँ त्यहाँको ब्रह्म ज्ञानी, पवित्र र मुक्त हुँदै जान्छ। यसैगरी सर्वत्र सृष्टिको ब्रह्मलाई अन्त:करणले बिगारिरहनेछ र बन्धन–मोक्ष पनि क्षण क्षणमा भईरहने छ। तिमीले भने अनुसार त्यस्तो हुने भए जीवलाई अघि देखे–सुनेका कुरा याद रहनेथिएनन्, किनकि जुन ब्रह्मले देखेको थियो त्यो रहँदैन। यसकारण ब्रह्म जीव र जीव ब्रह्म कहिल्यै एउटै हुनसक्तैनन् सधैं छुट्टा छुट्टै छन् र रहनेछन्।

प्रश्न—यो सबै अध्यारोप मात्र हो अर्थात् एउटा वस्तुमा अर्कै वस्तुलाई स्थापित गर्नु वा एउटा वस्तुलाई अर्कै वस्तु भन्नु अध्यारोप भनिन्छ। यस्तै ब्रह्म वस्तुमा सब जगत् र यसका व्यवहारको अध्यारोप गर्नाले जिज्ञासुलाई बोध गराइन्छ। वास्तवमा सबै ब्रह्मनै हो।

सिद्धान्तपक्षको प्रश्न—अध्यारोप गर्ने को हो?

प्रतिपक्षको उत्तर—जीव।

प्रश्न—जीव कसलाई भन्दछौ?

उत्तर—अन्त:करणावच्छिन्न चेतनलाई जीव भनिन्छ।

प्रश्न—अन्त:करणावच्छिन्न चेतन अर्कै हो अथवा त्यही ब्रह्म हो?

उत्तर—त्यही ब्रह्म हो।

प्रश्न—त्यसो भए के ब्रह्मले नै आफूभित्र जगत्को झूठो कल्पना गरेको हो।

उत्तर—हो, यसबाट ब्रह्मको के हानि हुन्छ र?

प्रश्न—मिथ्याकल्पना गर्ने झूठो हुँदैन र?

उत्तर—हुँदैन। किनकि मन, वाणीद्वारा कल्पित ना कथित सबै झूठो हो।

प्रश्न—त्यसो भए मन, वाणीद्वारा झूठो कल्पना गर्ने मिथ्या र बोल्ने ब्रह्म कल्पित र मिथ्यावादी भयो कि भएन?

उत्तर—हो, हामीलाई इष्टापत्ति छ।

अरे झूठा वेदान्तीहरू हो! तिमीहरूले सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्मालाई मिथ्याचारी बनाइदियौ। के यो तिमीहरूको दुर्गतिको कारण होइन र? कुन उपनिषद्, सूत्र वा वेदमा परमेश्वर मिथ्या–सङ्कल्प र मिथ्यावादी हो भनेर लेखिएको छ? किनकि कुनै चोरले थानेदारलाई दण्ड दिएर 'जो चोर उसैको ठूलो स्वर' भन्ने उक्ति जस्तै यो तिम्रो कुरा भयो। प्रहरीले चोरलाई दण्ड दिने कुरा त उचितै हो तर चोरले प्रहरीलाई दण्ड दिने कुरा उल्टो हो। त्यस्तै तिमी मिथ्यासङ्कल्प र मिथ्यावादी भएर आफ्नो त्यही दोष ब्रह्ममाथि व्यर्थै लगाउँदैछौ।

ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी भए सबै अनन्त ब्रह्म नै त्यस्तै भैजानेछ, किनकि ऊ एक रस, सत्यस्वरूप, सत्यमानी, सत्यवादी र सत्यकारी छ। यी सबै दोष तिम्रा हुन्, ब्रह्मका होइनन्। जसलाई तिमी विद्या भन्दैछौ त्यो अविद्या हो र तिम्रो अध्यारोप पनि मिथ्या हो। किनकि आफू ब्रह्म नभएर पनि आफैंलाई ब्रह्म र ब्रह्मलाई जीव मान्नु मिथ्याज्ञान नभएर के हो त? जो सर्वव्यापक छ त्यो परिच्छिन्न, अज्ञान र बन्धनमा कहिल्यै पर्दैन किनकि अज्ञान, परिच्छिन्न, एकदेशी, अल्प, अल्पज्ञ आदि गुण जीवमा हुन्छ सर्वव्यापी ब्रह्ममा हुँदैन।

अब मुक्ति—बन्धनको वर्णन गरिन्छ।

प्रश्न—मुक्ति केलाई भनिन्छ?

उत्तर—**'मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः'** छुट्टिनु नै

मुक्ति हो।

प्रश्न—कसबाट छुट्टिने ?

उत्तर—जसबाट छुट्टने इच्छा सबै जीव गर्दछन्।

प्रश्न—कसबाट छुट्टिने इच्छा गर्दछन् ?

उत्तर—जसबाट छुट्टिन चाहन्छन्।

प्रश्न—कसबाट छुट्टिन चाहन्छन् ? **उत्तर**—दुःखबाट।

प्रश्न—छुटेर के प्राप्त गर्छन् र कहाँ बस्तछन् ?

उत्तर—सुख प्राप्त गर्दछन् र ब्रह्ममा रहन्छन्।

प्रश्न—मुक्ति र बन्ध कुन कुन कुराले हुन्छ ?

उत्तर—परमेश्वरका आज्ञापालन गर्नु, अधर्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, दुर्व्यसनहरू देखि टाढै बस्नाने र सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपात रहित न्याय, धर्म वृद्धि गर्नु, अघि भनिए जस्तै परमेश्वरको स्तुति, प्रार्थना र उपासना अर्थात् योगाभ्यास गर्नु, विद्या पढ्ने पढाउने र धर्म पूर्वक पुरुषार्थ गरेर ज्ञान उन्नति गर्नु सर्वोत्तम साधन जुटाउनु र जे जति गरिन्छ त्यो सबै पक्षपात रहित न्याय धर्मानुसार नै गर्नु आदि साधानबाट मुक्ति र यसको उल्टो ईश्वर आज्ञाको उल्लंघन आदि काम गर्नाले बन्ध हुन्छ।

प्रश्न—मुक्तिमा जीव लय हुन्छ वा विद्यमान रहन्छ ?

उत्तर—विद्यमान रहन्छ।

प्रश्न—कहाँ रहन्छ ?

उत्तर—ब्रह्ममा।

प्रश्न—ब्रह्म कहाँ छ र त्यो मुक्त जीव एकै ठाउँमा रहन्छ अथवा स्वेच्छचारी भएर सर्वत्र विचरण गर्दछ ?

उत्तर—सर्वत्र पूर्ण ब्रह्ममा नै मुक्त जीव अव्याहतगति=बेरोकटोक विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरण गर्दछ ?

प्रश्न—मुक्तजीव स्थूल शरीर रहन्छ वा रहँदैन ?

उत्तर—रहँदैन।

प्रश्न—त्यसोभए उसले सुख र आनन्द भोग कसरी गर्दछ ?

उत्तर—उसका सत्यसङ्कल्प आदि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सबै रहन्छन्, भौतिक सङ्गमात्र रहँदैन। जस्तै—

श्रुण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो

भवति॥ —शतपथ कां० १४

मोक्षमा जीवात्मासंग भौतिक शरीर वा इन्द्रियगोलक हुँदैनन्, तर आफ्ना स्वाभाविक शुद्ध गुण भने रहन्छन्। जीवात्मा मोक्षमा आफ्नै शक्तिद्वारा सुन्न चाहेमा कान, छुन चाहेमा छाला, हेर्न चाहेमा सङ्कल्प–बाटै चक्षु, चाख्न जिब्रो, सुँध्न नाक, संकल्प–विकल्प गर्न मन र अहङ्कारकालागि अहङ्कारयुक्त हुन्छ र सङ्कल्पमात्र शरीर हुन्छ। जसरी जीव शरीरका आधारमा रहेर इन्द्रियगोलकद्वारा आफ्ना कार्य गर्दछ, त्यस्तै मुक्तिमा आफ्नो शक्तिद्वारा सबै आनन्द भोग्दछ।

प्रश्न—उसको शक्ति कति किसिमको र कति छ ?

उत्तर—मुख्य शक्ति त एकै किसिमको हुन्छ। तर जीवमा बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भय, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजन, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, गन्धग्रहण र ज्ञान, यी चौबीस किसिमका सामार्थ्य हुन्छन्।

मुक्तिमा जीव लय हुने भए मुक्ति सुख कसले भोग्ने ? अनि जीवको नाशलाई नै मुक्ति सम्झनेहरू त महामूर्ख हुन्, किनकि दुःखहरूदेखि छुटेर, आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त परमेश्वर आनन्दपूर्वक रहनुनै जीवको मुक्ति हो। हेर, वेदान्तको शारीरक सूत्रहरूमा

अभावं वादरिराह ह्यवम्॥ —वेदान्तदर्शन ४।४।१०

व्यासजीका पिता वादरि=पराशरजी मुक्तिमा जीवको र ऊसँगै मनको भाव मान्दछन् अर्थात्पराशरजी मुक्तिमा जीव र मनको लय मान्दैनन्। त्यस्तै—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्॥ —वेदान्तदर्शन ४।४।११

जैमिनि आचार्य मुक्त व्यक्तिको मनजस्तै सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियहरू, प्राण आदिलाई पनि विद्यमान मान्दछन्, उनी यिनको अभाव मान्दैनन्।

द्वादशावहवदुभयविधं वादरायणोऽतः॥

—वेदान्तदर्शन ४।४।१२

व्यासमुनि मुक्तिमा भाव र अभाव दुबैलाई मान्दछन् अर्थात् मुक्तिमा जीव शुद्धसामर्थ्य युक्त रहिनैरहन्छ भने मुक्त जीवमा अपवित्रता, पापाचरण, दुःख, अज्ञान आदि अभाव हुन्छ भन्ने मान्दछन्।

यदा पञ्चावतिष्ठिन्ते ज्ञानानि मनता सह।
बुद्धिश्च न विचेश्टते तामाहुः परमां गतिम्॥

—कठोपनिषद् २।३।१०

यो उपनिषद्को वचन हो। जब शुद्धमनयुक्त पाँच ज्ञानेन्द्रिय जीवसँगै रहन्छन् र बुद्धि निश्चय स्थिर हुन्छ भने त्यसलाई परमगति अर्थात् **'मोक्ष'** भनिन्छ।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजावातीति॥ —छान्दोग्य उपनिषद् ८।७।१

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कमान् पश्यन् रमते॥

य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः सर्वाꣳ श्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳ श्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति॥

—छान्दोग्य उपनिषद् ८।१२।५, ६

न मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याऽशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोर पहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥ —छान्दोग्य उपनिषद् ८।१२।१

अपहतपाप्मा, सबै पाप, बुढापा, मृत्यु, शोक, भोक, तिर्खादेखि रहित, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्माकै खोज र त्यसैलाई जान्ने इच्छा गर्नुपर्दछ। जुन परमात्माका सम्बन्धले मुक्तजीव सबै लोक र सबै कामलाइ प्राप्त गर्दछ। त्यस परमात्मालाई जानेर मोक्षको साधन र आफूलाई शुद्ध पार्नजान्ने मुक्ति प्राप्त भएको जीव शुद्ध दिव्य नेत्र र शुद्धमनबाट कामहरूलाई देख्दै र प्राप्त हुँदै रमण गर्दछ।

मुक्ति प्राप्त गर्ने विद्वानहरू ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मामा स्थिर भएर मोक्षसुख भोग्दछन्, र सबैको अन्तर्यामी आत्मायसै परमात्माको उपासना गर्दछन्। त्यसबाट तिनलाई सबैलोक र सबै काम प्राप्त हुन्छन् अर्थात् जुन-जुन सङ्कल्प गर्दछन् त्यही-त्यही लोक र त्यही-त्यही काम प्राप्त हुन्छ र ती मुक्तजीव स्थूल शरीरलाई जीव सांसारिक दुःखदेखि रहित हुनसक्तैनन्।

जसरी प्रजापतिले इन्द्रसँग भनेको छ—हे परमपूज्य धनवान् पुरुष! यो स्थूल शरीर मरणधर्मा हो र सिंहको मुखमा बाख्रो भए जस्तै यो शरीर मृत्युको मुखमा छ यो शरीर मरण र शरीररहित जीवात्माको निवास स्थान हो। यसैकारण यो जीव सधैं सुख र दुःखग्रस्त रहन्छ, किनकि शरीर सहित जीवको सांसारिक प्रसन्नता निवृत्त भई नै रहन्छ

भने ब्रह्ममा रहने शरीर रहित मुक्त जीवात्मालाई सांसारिक सुख दुःख स्पर्श पनि हुँदैन र सदा आनन्दमा रहन्छ।

प्रश्न—जीवले मुक्तिलाई प्राप्त गरेर कुनै वेला फेरि ती जन्म-मरणरूप दुःखमा आउँछन् वा आउँदैन्? किनकि—

न च पुनरावर्त्त ने न च पुनरावर्त्तत इति॥

—उपनिषद् वचनम् (छां० उ० ८।१५।१)

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्॥

—शारीरकसूत्र (वेदान्त दर्शन ४।४।२२)

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

—भगवद्गीता १५।६

इत्यादि वाक्यहरूबाट 'मुक्ति त्यही हो जहाँबाट फर्केर जीव संसारमा कहिल्यै आउँदैन' भन्ने बुझिन्छ।

उत्तर—वेदमा यो कुराको निषेध गरिएको हुनाले यो कुरा ठीक होइन—

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥ १॥
अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥ २॥

—ऋग्वेद, मं० १। सू० २४। मं० १-२

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥ ३॥ —सांख्यसूत्र १।१६०

प्रश्न—हामीहरू कसको नामलाई पवित्र सम्झौं? नाशरहित पदार्थहरूको मध्यमा विद्यमान, सदा प्रकाशस्वरूप देव को हो? हामीलाई मुक्ति सुख भोगाएर फेरि यस संसारमा जन्म दिने र आमा-बाबु दर्शन गराउने को हो?॥ १॥

उत्तर—हामीलाई मुक्तिमा आनन्द भोगाएर पृथ्वीमा पुनः जन्म दिएर आमा बाबुको सम्बन्ध र दर्शन गराउने यस स्वप्रकाशस्वरूप, अनादि, सदा मुक्त परमात्मा हो॥ २॥

जसरी यस समय जीवहरू बन्ध र मुक्त छन्, सर्वदा त्यस्तै सहन्छन्। बन्ध र मुक्ति पूरै विच्छेद कहिल्यै हुँदैन तथा बन्ध र मुक्ति सधैं रहँदैन॥ ३॥

प्रश्न— तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः॥ —न्यायदर्शन १।१।२२

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥ —न्यायदर्शन १।१।२

दुःखको अत्यन्त विच्छेदलाई नै मुक्ति भनिन्छ। मिथ्याज्ञान, अविद्या, लोभ आदि दोष, विषयभोग आदि दुष्ट व्यसनहरूमा प्रवृत्ति, जन्म र दुःख उत्तरोत्तर छुट्तैजानाले र अघिल्ला अघिल्ला हट्तैजानाले नै मोक्ष हुन्छ र यो सधैं रहिरहन्छ।

उत्तर—अत्यन्त शब्दको अर्थ अत्यन्ताभाव नै हुन्छ भन्ने होइन। जस्तै **'अत्यन्त दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्तते'** मानिसलाई धेरै दुःख वा धेरै सुख छ। यसबाट यसलाई धेरै दुःख वा धेरै सुख भएको कुरा बुझिन्छ। अत्यन्त शब्दको अर्थ यस प्रसङ्गमा पनि जस्तै हो भन्ने बुझ्नुर्दछ।

प्रश्न—जीव मुक्तिबाट फर्केर आउँछ भने ऊ मुक्ति भएर कति समयसम्म रहन्छ त?

उत्तर—ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥

—यो मुण्डकोपनिषदको (३।२।६) वाक्य हो।

ती मुक्त जीव मुक्ति प्राप्त गरेर ब्रह्ममा तबसम्म आनन्द भोगेर महाकल्प पछि मुक्ति सुखलाई छोडेर फेरि संसारमा आउँछन्। यसको संख्या यो हो—त्रिचालीस लाख बीसहजार वर्षको एक चतुर्युगी, दुई हजार चतुर्युगीको एक अहोरात्र, यस्तै तीस अहोरात्रको एक महीना, यस्तै बाह्र महीनाको एक वर्ष र यस्तै एकसयवर्षको परान्तकाल हुन्छ। यसलाई गणितका तरीकाले राम्ररी बुझ्नुपर्दछ। मुक्तिमा सुख भोग्ने समय यति हो।

प्रश्न—सबै संसार र ग्रन्थकारहरूको मत 'जहाँबाट जीव पुनः जन्म मरणमा कहिल्यै आउँदैन, त्यही मुक्ति हो' भन्ने छ कि त?

उत्तर—यो कुरा कहिल्यै हुनसक्तैन। किनकि पहिलो कुरा त जीवको सामर्थ्य, शरीर आदि पदार्थ र साधन परिमित छन् भने त्यसको फल अनन्त कसरी हुनसक्तछ र? अनन्त आनन्द भेग्ने असीम सामर्थ्य कर्म र साधन जीवमा नहुनाले अनन्त सुख भोग्न सक्तैनन्। अनित्य साधनको फल नित्य कहिल्यै हुनसक्तैन। अर्को कुरा जीव मुक्तिबाट फर्केर यस संसारमा न आउने भए यस संसारको उच्छेद अर्थात् संसारबाट जीव समाप्त हुनुपर्दछ।

प्रश्न—जति जीव मुक्त हुन्छन् ईश्वर त्यति नै नयाँ जन्माएर संसारमा राखिदिन्छ। यसकारण जीव संसारबाट नीःशेष हुने छैनन्।

उत्तर—त्यसो भए जीव अनित्य हुनेछन्। किनकि उत्पन्न भएकाको नाश अवश्य हुन्छ। फेरि तिम्रो विचार अनुसार मुक्त पाएर पनि विनष्ट भएमा मुक्ति अनित्य हुनेछ र मुक्तिका स्थानमा ठूलो घुँइचो हुनेछ।

किनकि त्यहाँ आउने धेरै र जाने कोही पनि नहुँदै लाग्ने ओइरोको कुनै सीमा रहनेछैन।

अर्को कुरा, दुःखको अनुभव नभए केही पनि सुख हुनसक्तैन। जस्तै तीतो स्वाद नभए मीठो र मीठो नभए तीतोको केही महत्व हुँदैन। किनकि एउटा स्वाद अर्का विरुद्ध छ भने एउटैबाट दुबैको परीक्षा हुन्छ। जस्तै कसैले गुलियो-मीठो खाइरहन्छ भने त्यसलाई सबै किसिमको स्वाद लिनेलाई जति आनन्द हुँदैन।

अनि फेरि, ईश्वर अन्त हुने कर्मको अनन्त फल दिन्छ भने न्याय नष्ट हुन्छ। जसले जति भार उठाउनसक्तछ ऊमाथि त्यत्तिनै भार राख्नु बुद्धिमानी हुन्छ। जस्तै एक मन भार उठाउन सक्नेका काँधमा दश मन भार राखिदिएमा भार राख्ने व्यक्तिकै निन्दा हुन्छ, त्यस्तै अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्यवान् जीवमाथि अनन्त सुखको भार राख्ने व्यक्तिकै निन्दै हुन्छ, त्यस्तै अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्यवान् जीव माथि अनन्त सुखको भार राख्नु ईश्वरका लागि उचित हुनेछैन। परमेश्वरले नयाँ जीव उत्पन्न गर्ने भए जुन कारणले उत्पन्न हुन्छन् त्यसमा भूल हुनेछ। किनकि जतिसुकै ठूलो ढुकुटी भए पनि त्यसबाट खर्चमात्र भैरहने र आम्दानी नहुने भए एक न एक दिन अवश्य रित्तिन्छ। यसकारण मुक्तिमा जाने र फेरि त्यहाँबाट फर्कने व्यवस्थानै राम्रो हो। अलिदिनको जेलभन्दा आजन्म कारावास वा फाँसीलाई कसैले ठीक मान्दछ र? मुक्तिबाट फर्कन नपर्ने भए त्यस मुक्ति र आजन्म कारावासमा यतिमात्र फरक रहने छ कि त्यहाँ परिश्रम गर्नुपर्दैन। अनि ब्रह्ममै लीन हुनु भनेको समुद्रमा डुबेर मर्नु नै हो।

प्रश्न—परमेश्वर नित्यमुक्त र पूर्ण सुखी छ, त्यस्तै जीव पनि नित्यमुक्त र सुखी भएमा कुनै दोष आउँदैन कि?

उत्तर—परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभावयुक्त हुनाले ऊ कहिल्यै अविद्या र दुःख बन्धनमा पर्नसक्तैन। जीव भने मुक्त भएर पनि शुद्ध स्वरूप, अल्पज्ञ र परिमित गुण, कर्म, स्वभावयुक्त रहन्छ, ऊ परमेश्वर जस्तो कहिल्यै हुँदैन।

प्रश्न—यसो हो भने मुक्ति पनि जन्म-मरण जस्तै हुनाले परिश्रम गर्नु व्यर्थै हुन्छ?

उत्तर—मुक्ति जन्म-मरण जस्तै होइन। किनभने छत्तीस हजार पटक उत्पत्ति र प्रलय हुने समय जति समय सम्म मुक्तिका आनन्दमा बस्नु र दुःख नहुनु के सानोतिनो कुरा? आज खाने-पिउने गरेर पनि

भोली फेरि भोक लाग्ने छ भन्ने कुरा जानेर पनि खान–पानको व्यवस्था किन गरिन्छ ? भोक–प्यास, धन–सम्पत्ति, राज्य–प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदिका लागि प्रयत्न गर्न आवश्यक छ भने मुक्तिको प्रयत्न किन नगर्ने ? जसरी मर्नु आवश्यक भए पनि बाँच्ने उपाय गरिन्छ, त्यस्तै मुक्तिबाट फर्केर जन्म–मरणमा पर्नु पर्ने भए पनि मुक्तिको उपाय गर्नु अत्यन्त आवश्यक छ।

प्रश्न—मुक्तिका साधन के के हुन् ?

उत्तर—केही साधन त अघि बताइसकियो। तर विशेष उपाय यी हुन्–मुक्ति चाहनेले जीवनमुक्त हुनु अर्थात् दुःखरूप फल दिने मिथ्याभाषणादि पापकर्म छोडेर सुखरूप फल दिने सत्यभाषण आदि धर्माचरण अवश्य गर्नुपर्दछ। दुःख छुटाउन र सुख प्राप्त गर्न चाहनेले अधर्म त्यागेर धर्म अवश्य गर्नुपर्दछ। किनकि दुःखको मूलकारण पापाचरण र सुखको मूलकारण धर्माचरण हो।

सत्यपुरुषहरूका संगतबाट विवेक अर्थात् सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्यको निश्चय गरेर तिनलाई छुट्टाछुट्टै जान्नुपर्दछ। र जीवले शरीर अर्थात् पञ्चकोशको विवेचन गर्नुपर्दछ—पहिलो–**'अन्नमय'**=छालादेखि हाडसम्मको पृथ्वीमय समुदाय, दोस्रो–**'प्राणयम'**=**'प्राण'** अर्थात् भित्रबाट श्वास बाहिर जाने, **'अपान'** बाहिरबाट भित्र आउने **'समान'** नाभिमा रहेर शरीरमा सर्वत्र रस पुर्याउने, **'उदान'** कण्ठको अन्नपान तानिने र बलपराक्रम हुने र **'व्यान'** जीवद्वारा सबै शरीरमा चेष्टा आदि कर्म गरिने, तेस्रो—**मनोमय**=मनसँग अहङ्कार, वाक्, पाद, पाणि, पायु र उपस्थ, यी पाँच कर्मेन्द्रिय हुनु, चौथो–**विज्ञानमय**=जीवद्वारा बुद्धि, चित्तका साथै कान, छाला, आँखा, जिब्रो र नाकबाट ज्ञान आदि व्यवहार गर्नु र पाँचौं–**आनन्दमयकोश**=प्रीति, प्रसन्नता, थोर र धेर आनन्दको आधार कारणरूप प्रकृति, यी **'पाँचकोश'** भनिन्छन्। यिनैबाट जीव सबै किसिमका कर्म, उपासना र ज्ञान आदि व्यवहार गर्दछ।

पहिले—**'जागृत'**, दोस्रो—**'स्वप्न'** र तेस्रो—**'सुषुप्ति'** यी तीन अवस्था हुन्छन्। पहिलो—यो देखिने **'स्थूलशरीर'** हो, दोस्रो पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्मभूत, मन र बुद्धि यी सत्र तत्त्वहरूको समुदाय **'सूक्ष्मशरीर'** भनिन्छ। यो सूक्ष्मशरीर जन्म–मरण आदिमा पनि जीवसँग रहन्छ। यसका दुई भेद छन् पहिलो=सुक्ष्मभूतका अंशबाट बनेको **'भौतिक'** र दोस्रो—जीवका स्वाभाविक गुणरूप **'स्वभाविक'**

यो दोस्रो अभौतिकि शरीर मुक्तिमा पनि रहन्छ। यसैबाट जीव मुक्तिबाट सुख भोग्दछ। तेस्रो—**'कारण शरीर'** यसमा सुषुप्ति अर्थात् गहिरो निन्द्रा हुन्छ। त्यो प्रकृतिरूप हुनाले सर्वत्र विभु र सबै जीवको लागि एउटै छ। यी तीन प्रकारका शरीर हुन्छन्। चौथो—समाधिद्वारा जीव परमात्माका आनन्दस्वरूपमा मग्न हुने **'तुरीय शरीर'** भनिन्छ। यसै समाधि–संस्कारजन्य शुद्ध शरीरको पराक्रम मुक्तिमा पनि यथावत् सहायक रहन्छ।

जीव यी सबै कोश र अवस्था भन्दा भिन्नै छ। किनकि जीव अवस्थाहरूदेखि भिन्नै हो भन्ने कुरा सर्वविदितै छ। किनकि मृत्यु हुँदा पनि सबै **'जीव निस्कियो'** नै भन्दछन्। त्यही जीव सबैको प्रेरक, सबैलाई धारण गर्ने, साक्षी कर्त्ता, भोक्ता भनिन्छ। जीव कर्त्ता, भोक्ता होइन भन्ने व्यक्ति अज्ञानी, अविवेकी हो भन्ने बुझ्नुपर्दछ। किनकि यी सबै जडपदार्थलाई जीव पाप–पुण्य कर्त्ता र सुख–दुःख भोक्ता हो।

इन्द्रियहरू आ–आफ्ना विषयमा, मन इन्द्रियहरूमा र आत्मा मनसँग संयुक्त भएर प्राणलाई प्रेरित गरेर असल–खराब कर्ममा लगाउँदा जीव बहिर्मुखी हुन्छ। त्यसै समय भित्रबाट असल कर्म गर्न आनन्द, उत्साह, निर्भयता र खराब कर्ममा भय, शङ्का, लाज उत्पन्न हुन्छ, त्यो अन्तर्यामी परमात्माको शिक्षा हो। यस शिक्षा अनुकूल व्यवहार गर्नैले नै मुक्तिजन्य सुख प्राप्त गर्दछ र विपरीत व्यवहार गर्नेले भने बन्धजन्य दुःख भोग्दछ।

पहिलो साधन—पृथ्वी देखि परमेश्वरसम्म पदार्थहरूका गुण–कर्म–स्वभावलाई जानेर उसका आज्ञापालन र उपासनामा तत्पर हुनु, त्यसका विरुद्ध व्यवहार नगर्नु र सृष्टिबाट उपकार लिनुलाई **'विवेक'** भनिन्छ।

दोस्रो साधन—'वैराग्य' विवेक द्वारा जानिएको सत्य र असत्यमा सत्य आचरण ग्रहण र असत्य आचरण त्यग गर्नु **'वैराग्य'** हो।

त्यसपछि **तेस्रो साधन—'षट्कसम्पत्ति'** अर्थात् छह किसिमका कर्म गर्नु। पहिलो—**'शम'** आफ्नो आत्मा र अन्तःकरणलाई अधर्म आचरणबाट हटाएर सधैं धर्माचरणमा लगाइराख्नु, दोस्रो—**'दम'** कान आदि इन्द्रिय र शरीरलाई व्यभिचार आदि खराब कर्मबाट हटाएर जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्ममा लगाइराख्नु, तेस्रो—**'उपरति'** खराब काम गर्ने व्यक्तिदेखि सधैं टाढै बस्नु, चौथो—**'तितिक्षा'** जतिसुकै निन्दा–स्तुति, हानि–लाभ आदि भए पनि हर्ष–शोक आदिलाई छोडेर सधैं मुक्तिका साधनहरूमा लगिरहनु, पाँचौं—**'श्रद्धा'** वेद आदि

सत्यशास्त्र र यिनका ज्ञाता पूर्ण आप्त विद्वान् सत्य उपदेश गर्ने महाशयहरूका वाणीमा विश्वास गर्नु र छैठौं—‘**समाधान चित्त एकाग्रता**, यी छ कर्म मिलेर तेस्रो साधन हुन्छ।

चौथो साधन—‘**मुमुक्षुत्व**’ जसरी भोक–तिर्खाबाट त्रस्तलाई अन्नपानी बाहेक केही पनि रुच्दैन त्यस्तै मुक्तिका साधन र मुक्ति बाहेक कुनैमा प्रीति नहुनु, यी ‘चार साधन’ र साधन पछि गर्नुपर्ने कर्म=‘**चार अनुबन्ध**’ यी हुनु—

पहिलो—‘**अधिकारी**’ यिनमा उक्त चार साधनयुक्त व्यक्तिनै मोक्षको ‘अधिकारी’ हुन्छ, **दोस्रो**—‘**सम्बन्ध**’ ब्रह्मको प्राप्तिरूप प्रतिपाद्य मुक्ति र प्रतिपादक वेदादि शास्त्रलाई यथावत् बुझेर अन्वित गर्नु, **तेस्रो**—‘**विषयी**’ सबै शास्त्र प्रतिपादक विषय ब्रह्म र उसको प्राप्तिरूप विषययुक्त पुरुषलाई ‘विषयी’ भनिन्छ र **चौथो**—‘**प्रयोजन**’ सबै दु:ख निवारण र परम आनन्द प्राप्त भएर मुक्तिसुख हुनु, यी ‘**चार अनुबन्ध**’ भनिन्छ।

अब यसपछि ‘**श्रवणचतुष्टय**’। पहिलो—‘**श्रवण**’ कुनै विद्वान्ले उपदेश गर्दा शान्त भई ध्यान दिएर सुन्नु, खासगरी सबै विद्या अतिसूक्ष्म ब्रह्मविद्यालाई सुन्न धेरै ध्यान दिनुपर्दछ, सुनेपछि–दोस्रो—‘**मनन**’ सुनेका कुरा एकान्तरमा बसेर विचार गर्नु, शङ्का लागेका कुरा दोहोर्याएर सोध्नु तथा सुन्नेवेलामा पनि वक्ता र श्रोतालाई उचित लागेमा शङ्का र समाधान गर्नु, तेस्रो—‘**निदिध्यासन**’ श्रवण र मननद्वारा सन्देहरहित भएपछि समाधिस्त भएर ध्यानयोगद्वारा ‘जुन कुरा जस्तो सुनेको सुझेको र विचारेको थियो, त्यो त्यस्तै हो वा होइन?’ भन्ने कुरा देख्नु र बुझ्नु तथा चौथो—‘**साक्षात्कार**’ पदार्थको स्वरूप, गुण र स्वभावलाई यथार्थरूपमा=जस्तो छ त्यस्तै जान्नुलाई ‘**श्रवण चतुष्टय**’ भनिन्छ।

तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलिनता आलस्य प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोष देखि सधैं अलग रहेर सत्व अर्थात् शान्त प्रकृति , पवित्रता , विद्या, विचार आदि गुणहरू धारण गर्नुपर्दछ।(**मैत्री**) सुखी, सद्‌गुणी व्यक्तिहरूसँग मित्रता, (**करुणा**) दु:खी व्यक्तिमाथि दया, (**मुदिता**) पुण्यात्माहरूदेखि हर्षित (उपेक्षा) दुष्टात्माहरूसँग न त प्रेम न वैर नै गर्नु, यी चारकुरा ध्यान राख्नुपर्दछ।

मुमुक्षु अर्थात् मुक्ति इच्छा गर्नेले भित्रका मन आदि पदार्थ साक्षात्कारका लागि नित्यप्रति दुई घण्टा सम्म ध्यान अवश्य गर्नुपर्दछ।

हेर, आत्मा चेतनस्वरूप हुनाले नै ज्ञानस्वरूप र मनको साक्षी हो। किनकि मन शान्त, चञ्चल, आनन्दित वा विषादयुक्त हुँदा त्यसलाई यथावत् देखेजस्तै इन्द्रिय, प्राण आदि ज्ञाता, अघि देखेकाको स्मरण गर्ने र एउटा समयमा अनेक पदार्थलाई जान्ने, धारण, आकर्षण गर्ने र सबै भन्दा छुट्टै छ। छुट्टै नभएको भए स्वतन्त्ररूपमा कार्य गर्ने यिनका प्रेरक अधिष्ठाता कहिल्यै हुनसक्तैन।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः॥

—योगशास्त्र २।३

यिनमा ‘**अविद्या**’ को स्वरूप भनिसकियो। आत्मादेखि भिन्नै रहेको बुद्धिलाई आत्माले नसम्झनु, ‘**अस्मिता**’, सुखमा प्रीति राख्नु ‘**राग**’, दु:खमा अप्रीति हुनु ‘**द्वेष**’ र सबै प्राणिमात्रमा ‘म सदा शरीरस्थ रहूँ, नमरूँ, यस्तो मृत्यु र दु:ख देखि त्रास हुनु ‘**अभिनिवेश**’ भनिन्छ। यी पाँच क्लेश लाई योगाभ्यास विज्ञानद्वारा छुटाएर ब्रह्म प्राप्त गरेर मुक्तिको परम आनन्द भोग्नुपर्दछ।

प्रश्न—तपाईले मानेजस्तो मुक्ति अरू कोही मान्दैन। जस्तै जैनीहरू–मोक्षशिला, शिवपुरमा गएर चुपचाप बस्नुलाई, ईसाई–विवाह लडाइ, गायन, वादन, वस्त्र आदि धारण द्वारा आनन्द भोगिने चौथो आकाश, त्यस्तै मुसलमान सातौं आकाश, वाममार्गी श्रीपुर, शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ र गोकुलिया गोसाईंहरू गोलोक आदिमा गएर उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान, यान आदि प्राप्त गरेर आनन्दमा बस्नुलाई मुक्ति मान्दछन्। पौराणिकहरू ‘**सालोक्य**’ ईश्वरका लोकमा निवास, ‘**सानुज्य**’ भाईजस्तै भएर ईश्वरसँग बस्नु, ‘**सारूप्य**’ उपासनीय देवको आकृतिजस्तै बन्नु, ‘**सामीप्य**’ सेवक जस्तै भएर ईश्वरसँग बस्नु, र ‘**सायुज्य**’ ईश्वरसँग संयुक्त हुनु, यी चार किसिमका मुक्ति मान्दछन् भने वेदान्तीहरू ब्रह्ममा लय हुनुलाई मोक्ष सम्झन्छन्।

उत्तर—जैनी, ईसाई र मुसलमानको मुक्ति आदिवारे विशेषरूपमा क्रमशः बाह्रौं, तेह्रौं र चौधौं समुल्लासमा लेखिनेछ। वाममार्गीहरूको श्रीपुरमा गएर लक्ष्मी जस्तै स्त्रीहरू, मद्य–माँस आदि खान–पान, रागरङ्ग, भोग गरिन्छ भन्ने कुरा यसै लोकभन्दा केही विशेष भएन। त्यस्तै महादेव र विष्णुको जस्तै अनुहार भएका, पार्वती र लक्ष्मी जस्तै स्त्री प्राप्त गरेर आनन्द भोग्नु यहाँका धनाढ्य राजाहरू भन्दा बढी, त्यहाँ रोगी हुँदैनन् र सधैं युवावस्था रहन्छ, भन्ने मात्र हो। तर तिनीहरूको यो कुरा पूरै झुठो हो। किनभने भोग भएको ठाउँमा रोग र रोग भएको

ठाउँमा वृद्धावस्था अवश्य हुन्छ। अनि पौराणिकहरूको जस्तो चारकिसिमको मुक्ति त कीरा–फट्याङ्ग्रा, पुतली–पशु आदि सबैलाई स्वत: सिद्ध रूपमा प्राप्त छन्। किनकि यी सबै लोक ईश्वरकार यिनैमा सबै जीव बस्ने हुँदा **'सालोक्य'** मुक्ति आफैं नै प्राप्त छ। ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हुनाले सबै उसका नजिक छन् अत: **'सामीप्य'** मुक्ति स्वत: सिद्ध भयो। जीव ईश्वर भन्दा सबै प्रकारले सानै भएको र चेतन हुनाले स्वत: बन्धुवत्=भाई सरह हो र यसबाट **'सानुज्य'** मुक्तिपनि प्रयत्न विनानै सिद्ध हुन्छ र सबै जीव सर्वव्यापक परमात्मामा व्याप्य हुनाले संयुक्त छन् अत: **'सायुज्य'** मुक्ति पनि स्वत: सिद्ध छ।

अनि साधारण नास्तिकहरूले माने जस्तै मरेपछि तत्त्वमा तत्व मिलेर हुने परममुक्ति त कुकुर, गधा आदि सबैलाई स्वत: प्राप्त छ। यी सबै वास्तवमा मुक्ति नभएर एक किसिमको बन्धन हो। किनकि यिनीहरू शिवपुर, मोक्षशिला चौथो आकाश, सातौं आकाश, श्रीपुर, कैलाश, बैकुण्ठ, गोलोकलाई एउटा ठाउँमा स्थानविशेष मान्दछन्। ती उक्त ठाउँहरूबाट छुटेदेखि उनीहरूको मुक्ति रहन्न। यसै कारण बाह्र ढुङ्गाभित्र दृष्टि पुगेर रोकिएजस्तै तिनीहरू बन्धननै पर्दछन्।

मुक्ति त स्वेच्छापूर्वक विचरण गर्नु, कतै अटक–भटक केही नहुनु, भय–शङ्का–दु:ख नहुनु आदिलाई भनिन्छ। जन्मलाई उत्पत्ति र मृत्युलाई प्रलय भनिन्छ। यथासमय सबै जीव जन्म लिन्छन्।

प्रश्न—जन्म एउटा हुन्छ वा अनेक हुन्छन्?

उत्तर—अनेक।

प्रश्न—अनेक जन्म हुन्छन् भने पूर्व जन्म र मृत्युका कुराहरू स्मरण किन हुँदैन?

उत्तर—जीव त्रिकालदर्शी नभएर अल्पज्ञ हुनाले स्मरण रहँदैन। अर्को कुरा जुन मनबाट याद गर्दछ त्यो पनि एउटै समयमा दुईवटा ज्ञान गर्नसक्तैन। पूर्व जन्मका कुरा त टाढै रहून्, यसै शरीरमा जीव गर्भमा थियो, शरीर बन्यो, जन्मियो, त्यसको पनि पाँच वर्षभन्दा अघिका कुरा सम्झिराख्न किन सक्तैन? र जागृत वा स्वप्नमा धेरैजसो व्यवहार प्रत्यक्षरूपमा गरेर सुषुप्ति अर्थात् गहिरो निन्द्रमा सुतेपछि जागृत आदि व्यवहार स्मरण गर्न किन सक्तैन? अनि कसैले तिमीसँग 'बाह्रवर्ष पछि तेह्रौं वर्षका पाचौं महीना नवौं दिन दश बजेर एक मिनेटमा तिमीले के गरेका थियौ? तिम्रो मुख, हात, कान, आँखा, शरीर कतातर्फ कसरी थिए? र मनमा के विचार थियो?' भनी सोधे केही उत्तर दिन

सकिने छैन। यसै शरीरमा त यस्तो छ भने पूर्वजन्मका कुरा स्मरण हुनुपर्ने भनी शङ्का गर्नु बालकपनका कुरा मात्र हुन्। अर्को कुरा, स्मरण नहुनाले नै जीव सुखी छ। नत्रभने जन्म जन्मान्तरका सबै दु:खहरूलाई सम्झी–सम्झी दु:खी भएरै मर्ने थियो। जीवको ज्ञान र स्वरूप अल्प हुनाले कसैले पूर्वजन्म वा परजन्मका कुरा जान्न चाहेपनि जान्नसक्तैन। यो कुरा ईश्वरले जान्नयोग्य छ, जीवले जान्नयोग्य छैन।

प्रश्न—जीवलाई पूर्वजन्मका कुरा स्मरण रहँदैन भने ईश्वरले दिएका दण्डबाट जीवको सुधार हुन सक्तैन। किनकि उनीहरूलाई 'हामीले अमुक काम गरेका थियौ, त्यसैको यो फल हो, भन्ने ज्ञान भएमा मात्र ती पापकर्मबाट बच्नसक्तछन्।

उत्तर—तिमी ज्ञान कति किसिमको मान्दछौ?

प्रश्न—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणबाट आठ किसिमको।

उत्तर—त्यसो भए तिमी संसारमा जन्मेदेखि लिएर समय समयमा राज, धन, बुद्धि,विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख–दु:खलाई देखेर पूर्वजन्मको ज्ञान किन गर्दैनौ? जसरी एउटा अवैद्य र एउटा वैद्यलाई कुनै रोग भईदिए त्यसको निदान वा कारण वैद्य वा विद्वान्ले जान्दछ भने अवैद्य वा अविद्वान्ले जान्नसक्तैन, किनकि उसले वैद्यविद्या पढेको छ, अर्कोले छैन। तर जरो आदि रोग हुँदा अवैद्य पनि 'मबाट कुनै कुपथ्य भयो, त्यसै कारण मलाई यो रोग भयो' भन्ने कुरा त जान्नसक्तछ। त्यस्तै जगत्मा विचित्र सुख–दु:ख आदि घटी–बढी देखेर पूर्वजन्मको अनुमान किन गर्दैनौ? अनि पूर्वजन्म नमानेमा परमेश्वर पक्षपाती हुन्छ, किनकि एउटालाई पाप विना दारिद्र्य, निर्बुद्धिता आदि दु:ख र अर्कोलाई पूर्वसञ्चित पुण्य विना राज्य, धनाढ्यता आदि परमेश्वरले किन दिएको त? तथा पूर्वजन्मको पाप–पुण्य अनुसार दु:ख–सुख दिनाले परमेश्वर यथावत् न्यायकारी हुन्छ।

प्रश्न—सर्वोपरि राजाले जे गर्दछ, त्यही न्याय हुने भए जस्तै एउटै जन्म हुँदै पनि परमेश्वर न्यायकारी हुनसक्तछ। जसरी बगैंचे आफ्नो बगैंचामा साना ठूला बोट–विरुवा लगाउँछ, कुनैलाई काट्छ, उखेल्छ भने कुनैलाई रक्षा गरेर बढाउँछ। जसले पनि आफ्नो वस्तुलाई आफूखुसी राख्तछ। परमेश्वर माथि पनि न्याय गर्ने र उसलाई दण्ड दिने नहुनाले र ईश्वरले कसैसँग डराउनुपर्ने नहुनाले ऊ जीवलाई आफूखुसी चलाउनसक्तछ।

उत्तर—परमेश्वर सदा न्याय चाहने, गर्ने र अन्याय कहिल्यै नगर्ने

हुनाले नै ऊ पूजनीय र ठूलो छ। न्यायविरुद्ध गर्नेभए ऊ ईश्वर नै हुँदैन। जस्तै युक्ति विनानै बाटोमा वा अनुचित ठाउँमा वृक्ष लगाउने, काट्न नपर्नेलाई काट्ने, काट्न-उखेल्नु पर्नेलाई बढाउने, बढाउन पर्नेलाई नबढाउने गर्नाले माली दूषित हुन्छ, त्यस्तै कारण विनानै कार्य गर्नाले ईश्वरमाथि दोष लाग्नेछ। परमेश्वर स्वभावले नै पवित्र र न्यायकारी हुनाले उसले न्याययुक्त काम गर्न आवश्यक हुन्छ। बहुलाहा जस्तो भएर काम गरेमा यस जगत्का श्रेष्ठ न्यायधीशभन्दा पनि कम र प्रतिष्ठारहित हुनेछ। के यस जगत्मा उत्तम काम नगरी प्रतिष्ठा र दुष्टकाम नगरी दण्ड दिने व्यक्ति निन्दनीय र अप्रतिष्ठित हुँदैन र? ईश्वर अन्याय नगर्ने हुनाले नै ऊ कसैदेखि डराउँदैन।

प्रश्न—परमेश्वरले पहिल्यैदेखि जसलाई जति दिने वा जसो गर्ने विचार गरेको हुन्छ, त्यसलाई त्यति दिन्छ वा त्यस्तै नै गर्दछ, होइन र?

उत्तर—परमेश्वरको विचार अरू कुनै किसिमले नभई जीवका कर्मानुसार हुन्छ। जीवका कर्मानुसार नगरेर अरू कुनै किसिमले फल निर्धारण गरेमा ऊ आफैं अपराधी र अन्यायकारी हुन्छ।

प्रश्न—ठूला-साना सबैलाई एकैनास सुख-दुःख हुन्छ। ठूलालाई ठूलो चिन्ता र सानालाई सानै चिन्ता हुन्छ। जस्तै कुनै साहुकारको लाखौं रूपैयाँको विवाद राजाकहाँ भएमा ऊ गर्मीयाममा आफ्नो घरबाट डोलीमा बसेर बजार हुँदै न्यायलयतर्फ जान लागेको देखेर अज्ञानीहरू 'हेर पाप-पुण्यको फल, एउटा डोलीमा आनन्दपूर्वक बसेकोछ् अनि अरू चाहिं जुत्तापनि न लगाई तल-माथिबाट तातोमा पोलिदै डोलीमा उठाएर लगिरहेको छन्' भन्छन्। तर बुद्धिमान्हरू भने 'जति न्यायालय नजिक आउँदै जान्छ त्यति साहुकारलाई ठूलो शोक र शंका बढ्दै जान्छ र डोलेहरूलाई आनन्द आउँदै जान्छ' भन्ने कुरा बुझ्दै जान्छन्। न्यायालयमा पुगेपछि सेठजी यताउती डुल्छ र कहिले वकीलकहाँ र कहिले अन्त कतै चिनाजान भएको ठाउँमा भौंतारिन्छ। आज नजाने के हुनेछ? हार्नेछु? वा जित्नेछु? इत्यादि चिन्ताले उसलाई पिरोलिरहेको हुन्छ भने डोलेहरू चाहिं तमाखू तान्दै र प्रसन्नतापूर्वक कुराकानी गर्दै आनन्दमै निदाउँछन्। ऊ जित्यो भने त केही सुख उसलाई हुन्छ तर हार्‍यो भने त्यो दुःख सागरमा डुब्दछ, ती डोलेहरू भने जस्ताको त्यस्तै रहन्छन्। त्यस्तै राजालाई सुन्दर कोमल शय्यमा पनि छिटो निन्द्रा लाग्दैन भने मजदूर रोडा-ढुङ्गा माटो भएको खाल्डा-खुल्डी भएको ठाउँमा पल्टेर पनि तुरुन्तै निदाउँछ। यस्तै सबै ठाउँमा बुझ्नुपर्दछ।

उत्तर—यो अज्ञानीहरूको विचार हो। कुनै साहुकारसँग तिमी कहार=डोले बन भनेमा र डोलेसँग तिमी साहुकार बन भनेमा साहुकार कहिल्यै डोले बन्न चाहदैन भने डोले साहुकार बन्न चाहन्छन्। सुख-दुःख बराबर हुने भए दुबैमा कुनै पनि आ-आफ्नो अवस्था छोडेर निम्न र उच्च बन्न चाहने थिएनन्।

हेर, एउटा जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजाकी रानीको गर्भमा आउँछ भने अर्को महादरिद्र घाँसेको गर्भमा पुग्दछ। एउटालाई गर्भैदेखि प्रत्येक किसिमका सुख र अर्कालाई सबै किसिमका दुःख प्राप्त हुन्छन्। एउटा जन्मदा उसलाई सुगन्धियुक्त जल आदिद्वारा स्नान, युक्तिपूर्वक नाडीछेदन, दूध आदि पेय यथायोग्य प्राप्त हुन्छन्। उसले दूध पिउन चाहेमा यथेष्ट रूपमा मिश्री आदि मिसाएर दिइन्छ। उसलाई प्रसन्न राख्न नोकर-चाकर, खेलौना-सवारी, उत्तम स्थान, लाड़ आदि आनन्द हुन्छ भने अर्काको जन्म जङ्गलमा हुन्छ, स्नानका निम्ति पानी पनि फेलापर्दैन, दूध पिउन चाँहदा दूधको सट्टा थप्पड-घूंसा पाउँछ। अत्यन्त आर्तस्वरमा रुन्छ। कसैले वास्ता गर्दैन इत्यादि जीवलाई पापपुण्य विनानै सुख-दुःख हुने भए परमेश्वरमाथि दोष लाग्छ।

अर्को कुरा, कर्म नगरिकनै सुख दुःख हुने भए पछि स्वर्गनरक पनि हुनुभएन। किनकि यस जन्ममा परमेश्वरले कर्मै नगरी सुख-दुःख दिएजस्तै मरेपछि पनि ऊ आफूखुसी कसैलाई स्वर्ग र कसैलाई नरकमा पठाउने छ। त्यसो हुँदा सबै जीव अधर्मयुक्त हुनेछन्, किनकि धर्मको फल मिल्न सन्देह भएपछि धर्म किन पो गर्नेछन् र? परमेश्वरको हात छ, जस्तो उसलाई प्रसन्न हुने छ त्यस्तै गर्नेछ। अनि त पापकर्महरूप्रति भय नभएर संसारमा पाप वृद्धि र धर्म क्षय हुनेछ। यसकारण पूर्वजन्म पाप-पुण्य अनुसार वर्तमान जन्म र वर्तमान तथा पूर्वजन्मका कर्मानुसार भविष्यका जन्म हुन्छन्।

प्रश्न—मानिस र अरू पशु आदिका शरीरमा उस्तै जीव हुन्छ अथवा भिन्न भिन्न जातिका हुन्छत्?

प्रश्न—जीव त उस्तै हुन् तर पाप पुण्यका योग्यले मलिन र पवित्र हुन्छन्।

प्रश्न—मनुष्यको जीव पशु आदिको र पशु आदिको मनुष्य शरीरमा, त्यस्तै स्त्रीको जीव पुरुषमा पुरुषको स्त्री शरीरमा आउने जाने गर्दछ वा गर्दैन?

उत्तर—आउने जाने गर्दछ। पाप बढेर पुण्य कम भए पछि मनुष्यको

जीवलाई पशु आदि निम्नशरीर र धर्म बढी, अधर्म कम हुँदा देव अर्थात् विद्वान्को शरीर प्राप्त हुन्छ। पाप–पुण्य बराबर हुँदा साधारण मनुष्यशरीर मिल्दछ। यिनमा पनि पुण्य–पाप उत्तम, मध्यम र निकृष्ट हुनाले मनुष्य आदिमा पनि उत्तम, मध्यम र निकृट शरीर आदि सामग्रीयुक्त हुन्छन्। बढी पापको फल पशु आदि शरीरमा भोगिसकेपछि पाप–पुण्य बराबर रहेपछि मनुष्य शरीरमा आउँछ र पुण्यको फल भोगेर फेरि पनि मध्यस्थ मनुष्यका शरीरमा आउँछ।

जब शरीरबाट जीव निस्कन्छ त्यसैको नाम '**मृत्यु**' र शरीरसँग संयोग हुनुनै '**जन्म**' हो। शरीर छोडेपछि यमालय अर्थात् आकाशका वायुमा रहन्छ। पछि धर्मराज अर्थात् परमेश्वर त्यसजीवका पाप पुण्य अनुसार जन्म दिन्छ। किनकि '**यमेन वायुना**' वेदमा यम नाम वायुको हो भन्ने लेखिएको छ। यो गरुडपुराणको काल्पनिक यम होइन। यसको विशेष खण्डन एघारौं समुल्लासमा लेखिनेछ।

त्यो जीव ईश्वरको प्रेरणाले अन्न, जल अथवा शरीरका छिद्रद्वारा अर्काका शरीरमा पस्तछ। प्रविष्ट भएर, क्रमश: वीर्यमा गएर गर्भमा स्थिर भएर धारण गरेर बाहिर आउँछ। स्त्रीको शरीरधारणयोग्य कर्मभए स्त्री र पुरुषको शरीरधारणयोग्य कर्म भए पुरुषको शरीरमा प्रवेश गर्दछ र गर्भका स्थितिको समय स्त्रीपुरुषको शरीरमा सम्बन्ध हुँदा रजवीर्य बराबर हुनाले नपुसंक हुन्छ।

जीवले उत्तम कर्म, उपासना, ज्ञानको अभ्यासद्वारा मुक्ति नपाएसम्म यसैगरी नाना किसिमका जन्म मरणमा परिरहन्छ। किनकि उत्तम कर्मादि गर्नाले मानिसहरूमा उत्तम जन्म र मुक्तिमा महाकल्पसम्म जन्म–मरण–दु:खरहित भएर आनन्दमा बस्तछ।

प्रश्न—मुक्ति एउटै जन्ममा हुन्छ वा अनेक जन्ममा?

उत्तर—अनेक जन्ममा। किनकि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे॥ १॥

—मुण्डकोप० २। २। १८

जब यस जीवका हृदयको अविद्या, अज्ञानरूपी गाँठो फुस्कन्छ सबै संशय छिन्न भिन्न हुन्छन्? र दुष्टकर्महरूको क्षयहुन्छ तब आफ्नो आत्माको भित्र र बाहिर व्यापक त्यस परमात्मामा त्यो जीव निवास गर्दछ।

प्रश्न—मुक्तिमा जीव परमेश्वरमै मिल्दछ वा छुट्टै रहन्छ?

उत्तर—छुट्टै रहन्छ। किनकि जीव ईश्वरमा मिल्ने भए मुक्तिको सुख कसले भोग्ने? र मुक्तिका सबै साधन निष्फल हुन्छन्। त्यसो हुनेभए त्यसलाई त मुक्ति होइन जीवको प्रलय सम्झनुपर्दछ। परमेश्वरको आज्ञापालन, उत्तम कर्म, सत्सङ्ग, योगाभ्यास आदि पूर्वोक्त सबै साधान गर्ने जीवले नै मुक्ति पाउँछ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कमान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥

—तैत्तिरीय उप० आनन्दवल्ली अनु० १। खं० १

आफ्नो बुद्धि र आत्मामा स्थित सत्य ज्ञान र अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्मालाई जान्ने जीवात्मा त्यस व्यापक ब्रह्ममा स्थित भएर त्यस '**विपश्चित्**' अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्मसँग सबै कामनाहरू प्राप्त गर्दछ। अर्थात् जुन–जुन आनन्दको कामना गर्दछ, त्यसैलाई प्राप्त गर्दछ। यसैलाई मुक्ति भनिन्छ।

प्रश्न—शरीर, विना सांसारिक सुख भोग्न नसकिने जस्तै मुक्तिमा शरीर विना आनन्द भोग्न कसरी सकिन्छ र?

उत्तर—यसको समाधान अघि भनिसकिएको छ, यति अरू सुन–शरीरको आधारमा सांसारिक सुख भोगेजस्तै जीवात्मा परमेश्वरको आधारमा मुक्ति आनन्द भोग्दछ। त्यो मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्ममा स्वच्छन्द घुम्दछ, शुद्ध ज्ञानद्वारा सम्पूर्ण सृष्टि देख्तछ, अरू मुक्तहरूसँग भेटघाट गर्छ, सृष्टिविद्यालाई क्रमपूर्वक हेर्दै सबै लोक–लोकान्तरहरूमा अर्थात् यी देखिने र नदेखिने सबैलोकमा घुम्दछ। सबै पदार्थ उसका ज्ञान अगाडि हुन्छन् र ऊ ती सबैलाई देख्तछ ज्ञान जति बढि हुन्छ, उसलाई त्यतिनै बढी आनन्द हुन्छ। मुक्तिमा जीवात्मा निर्मल हुनाले पूर्ण ज्ञानी भएर उसलाई सबै सन्निहित पदार्थहरूको भान यथावत् हुन्छ।

यही सुखविशेष स्वर्ग हो भने विषय–तृष्णामा फसेर दु:खविशेष भोग्नु नरक हो। '**स्व:**' सुखलाई भनिन्छ। '**स्व:' सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्ग:' 'अतो विपरीतो दु:खभोगे नरक इति**' सांसारिक सुखनै सामान्य स्वर्ग र परमेश्वर प्राप्तबाट हुने आनन्दनै विशेष स्वर्ग हो।

सबै जीव स्वभावले नै सुख प्राप्त गर्ने र दु:खदेखि छुट्ने इच्छा गर्दछन् तर धर्म नगरी र पाप नछोडी तिनले सुख पाउन र दु:ख छुटाउन सक्तैनन्। किनकि सुखदु:खको मूलकारण कहिल्यै नष्ट हुँदैन। जस्तै '**छिन्न मूले वृक्षो नश्यति, तथा पापे क्षौणे दु:खं नश्यति।**' जरा

काटिनाले वृक्ष नष्ट भए जस्तै पाप छोड्नाले दुःख नष्ट हुन्छ। हेर, मनुस्मृति पाप र पुण्यका धेरै प्रकारका गति बताइएको छ—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम्।
वाचा वाचा कृतंकर्म कायेनैव च कायिकम्॥ १॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥ २॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरणम्॥ ३॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञान रागद्वेषौ रजःस्मृतम्।
एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः॥ ४॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्॥ ५॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्॥ ६॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं सततस्तदुपधारयेत्॥ ७॥
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्रयो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥ ८॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम्॥ ९॥
आरभ्भरुचिताऽधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्त्रं राजसं गुणलक्षणम्॥ १०॥
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम्॥ ११॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम्॥ १२॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम्॥ १३॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम्॥ १४॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्॥ १५॥

—मनुस्मृति अ० १२। श्लोक ८, ९, २५-३३, ३५-३८

मानिसले आफ्नो श्रेष्ठ, मध्य र निकृष्ट स्वभावलाई जानेर उत्तम स्वभाव ग्रहण र मध्य तथा निकृष्ट त्याग गर्नुपर्दछ। साथै जीवले मन, वाणी र शरीरले गरेका शुभ वा अशुभ कर्म फल सुख वा दुःख तिनै मन, वाणी र शरीरले भोग्नुपर्दछ भन्ने हेक्का राख्नुपर्दछ॥ १॥

शरीरबाट चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठ व्यक्तिलाई मार्नु आदि दुष्टकर्म गर्ने व्यक्तिलाई वृक्ष आदि स्थावरको जन्म, वाणीबाट गरिएका पापकर्मले पक्षी र पशु आदि तथा मनबाट गरिएका दुष्टकर्मबाट चांडाल आदिको शरीर प्राप्त हुन्छ॥ २॥

जुन गुण यी जीवका शरीरमा बढी रहन्छ त्यो गुण त्यस जीवलाई आफू जस्तै बनाइदिन्छ॥ ३॥

आत्मामा ज्ञान हुँदा सत्त्व, अज्ञान हुँदा तम र आत्मा रागद्वेषमा लाग्दा रजोगुण जान्नुपर्दछ। प्रकृतिका यी तीन गुण संसारका सबै पदार्थमा व्याप्त भएर रहन्छन्॥ ४॥

यसको विवेचन यसरी हुन्छ—आत्मामा प्रसन्नता र मनले पनि प्रसन्न भएर पूर्णतः शान्त जस्तै शुद्ध भान हुने गरी व्यवहार गरेमा सत्त्वगुण प्रधान र रजोगुण, तमोगुण अप्रधान भएका कुरा बुझ्नुपर्दछ॥ ५॥

आत्मा र मन दुःखसंयुक्त, प्रसन्नतारहित भएर विषयहरूमा यताउति आउने-जाने गरेमा रजोगुण प्रधान तथा सत्त्वगुण, तमोगुण गौण भएको बुझ्नुपर्दछ॥ ६॥

आत्मा र मन मोहमा अर्थात् सांसारिक पदार्थहरूमा फसेको, विवेकरहित, विषय भोगमा आसक्त, तर्क वितर्करहित, जान्न योग्य नरहेको भए आफूमा तमोगुण प्रधान र सत्त्वगुण, रजोगुण, अप्रधान भएको कुरा निश्चित बुझ्नुपर्दछ॥ ७।

अब यी तिनै गुण उत्तम, मध्यम र निकृष्ट फल प्राप्त हुने प्रकार सम्पूर्ण रूपमा भनिन्छ॥ ८॥

वेद अभ्यास, धर्म अनुष्ठान, ज्ञान वृद्धि, पवित्रता इच्छा, इन्द्रियनिग्रह, धर्मक्रिया र आत्मा चिन्तन हुनु नै सत्त्वगुण भएको लक्षण हो॥ ९॥

सत्त्वगुण र तमोगुणको अन्तर्भाव भएर रजोगुणको उदय हुँदा आरम्भमा रुचिता, धैर्यत्याग, असत्कर्महरू ग्रहण र निरन्तर विषयहरूका सेवामा प्रीति हुन्छ। यस्तो हुँदा आफूमा प्रमुख रूपमा रजोगुण रहेको कुरा बुझ्नुपर्दछ॥ १०॥

तमोगुण उदय भएर सत्त्वगुण, रजोगुण अन्तर्भाव भएमा भने धेरै

लोभ लाग्नु अर्थात् सबै पापकर्म मूल बढ्नु, धेरै आलस्य र निद्रा, धैर्यको नाश, क्रूरता हुनु, नास्तिक्य=वेद र ईश्वरमा श्रद्धा नहुनु, अन्त:करणका वृत्तिहरू भिन्न भिन्न हुनु, एकाग्रता अभाव हुनु, जोसुकैसँग पनि याचना=मांग्नु, प्रमाद=मद्यपान आदि दुर्व्यसनमा फस्नु आदि भएमा आफूभित्र तमोगुण बढेको जान्नुपर्दछ ॥ ११ ॥

आफ्नो आत्माले गरेको, गर्दैगरेको र गर्ने इच्छा गरेको कर्ममा लाज, शङ्का र भय भएमा आफूभित्र तमोगुण अत्यन्त बढेको सम्झनुपर्दछ। विद्वान्हरूबाट जान्न योग्य तमोगुणको लक्षण यही हो ॥ १२ ॥

आफ्ना प्रत्येक कर्मद्वारा जीवात्माले प्रशस्त प्रसिद्धि चाहेमा र दरिद्रता हुँदाहुँदै पनि चारण, भाट आदिलाई दान दिन नछोड आफूभित्र रजोगुण प्रबल भएको जान्नुपर्दछ ॥ १३ ॥

मानिसका आत्माले सबैबाट ज्ञान लिन चाहेमा, गुणहरूलाई ग्रहण गर्दै गएमा, सत्यकर्म गर्न लाज नभएमा र आत्मा प्रसन्न हुने किसिमका धर्माचरणमानै रुचि भएमा आफूभित्र सत्त्वगुण प्रबल भएको बुझ्नुपर्दछ ॥ १४ ॥

तमोगुणको लक्षण काम, रजोगुणको लक्षण धनसंग्रहको इच्छा सत्त्वगुणको लक्षण धर्माचरण हो र यिनमा तमोगुणभन्दा रजोगुण ररजोगुणभन्दा सत्त्वगुण श्रेष्ठ हुन्छ ॥ १५ ॥

अब जुन जुन गुणबाट जीवले जे जस्तो गति प्राप्ति गर्दछ त्यो लेखिन्छ—

देवत्तवं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्त्वञ्च राजसा: ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविध गति: ॥ १ ॥
स्थावरा: कृमिकीटाश्च मत्स्या: सर्पाश्च कच्छपा: ।
पशवश्च मृगश्चैव जघन्या तामसी गति: ॥ २ ॥
हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिता: ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गति: ॥ ३ ॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिका: ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गति ॥ ४ ॥
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषा: शस्त्रवृत्तय: ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गति: ॥ ५ ॥
राजान: क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिता: ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गति: ॥ ६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरस: सर्वा राजसीषूत्तम गति: ॥ ७ ॥
तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गुणा: ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गति: ॥ ८ ॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सरा: ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीय सात्विकी गति: ॥ ९ ॥
ब्रह्म विश्वसृजो धर्म्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिण: ॥ १० ॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापन्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमा: ॥ ११ ॥

सात्त्विकी मानिस देव अर्थात् विद्वान्, रजोगुणी व्यक्ति मध्यम मनुष्य र तमोगुणी व्यक्ति नीच गति प्राप्त गर्दछन् ॥ १ ॥

अत्यन्त तमोगुणी व्यक्ति स्थावर वृक्ष आदि कीरा–फट्यांग्रा, माछा, सर्प, कछुवा, पशु र मृग आदि जन्म पाउँछन् ॥ २ ॥

मध्यम तमोगुणीहरू हात्ती, घोडा, शूद्र, म्लेच्छ, निन्दितकर्म गर्ने सिंह, व्याघ्र, बराह अर्थात् सुँगुरको जन्म पाउँछन् ॥ ३ ॥

उत्तम तमोगुणी व्यक्ति चारण=कविता आदि द्वारा मानिसको प्रशंसा गर्नु, सुन्दर पक्षी, दांभिक=आफ्नो प्रशंसा आफैं गर्ने व्यक्ति, राक्षस= हिंसक, पिशाच=अनाचारी, मद्य आदि आहार लिने र मलिन रहने, हुन्छन्। यस्ता गुणयुक्त हुनु उत्तम तमोगुणको फल हो ॥ ४ ॥

निकृष्ट रजोगुणी व्यक्ति झल्ला=तरवार आदिले मार्ने वा कोदालो आदिले खन्ने, मल्ला=नाउ चलाउने माझी आदि, नट=बाँस आदिमा उफ्र ने, चढ्ने, उत्रने, आदि कला गर्ने, शास्त्रधारी नोकर र मद्य पिउनमा आसक्त हुन्छन्, यस्तो जन्म निकृष्ट रजोगुणको फल हो ॥ ५ ॥

मध्यम रजोगुणी व्यक्ति राजा, क्षत्रियवर्ण राजाका पुरोहित, वाद– विवाद गर्ने, दूत, वकील, युद्ध विभागको अध्यक्ष आदिको जन्म पाउँछन् ॥ ६ ॥

उत्तम रजोगुणी व्यक्ति गन्धर्व=गाउने, गुह्यक=बजाउने, यक्ष= धनाढ्य, विद्वान्हरूका सेवक र अप्सरा=उत्तमरूप भएकी स्त्रीको जन्म पाउँछन् ॥ ७ ॥

तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, बिमान चालक, ज्योतिषी र दैत्य=शरीरपोषक मानिसलाई प्रथम सत्त्वगुणका कर्मको फल हो भन्ने सम्झनुपर्दछ ॥ ८ ॥

मध्यम सत्त्वगुणयुक्त भएर कर्म गर्ने जीव भने यज्ञकर्ता, वेदार्थ

जान्ने, विद्वान्, वेद, विद्युत् आदि र कालविद्याका ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी र साध्य=कार्यसिद्धिका निम्ति सेवन गर्न योग्य अध्यापक आदिको जन्म पाउँछन् ॥ ९ ॥

वेत्ता, विश्वासृज्=सबै सृष्टिक्रम विद्या जानेर विविध विमान आदि यान बनाउने, धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धि भएका र अव्यक्तको जन्म र प्रकृतिवशित्व सिद्धि प्राप्त गर्दछन् ॥ १० ॥

इन्द्रिय वशमा भएर विषयी, धर्मलाई छोडेर अधर्म गर्ने अविद्वान् व्यक्ति मनुष्यहरूमा नीच र खराब-खराब दुःख भोग्ने जन्म पाउँछन् ॥ ११ ॥

यसै गरी सत्व, रज र तमोगुणका बेगले जीव जुन-जुन किसिमको कर्म गर्दछ त्यस-त्यस गुणको त्यसै किसिमको फल प्राप्त गर्दछ।

मुक्त जीव भने गुणातीत अर्थात् कुनै गुणको स्वभावमा न फसेर महायोगी भएर मुक्तको साधन गर्दछ। किनकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १ ॥

तद द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ २ ॥

यो पातञ्जल योगशास्त्रका सूत्र (१। २, ३) हुन। मानिसले रजोगुण, तमोगुणयुक्त कर्मबाट मनलाई रोकेर, शुद्ध सत्वगुणयुक्त कर्मबाट पनि मनलाई रोकेर, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त भएर अनि त्यसको निरोध गरेर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा र धर्मयुक्त कर्म अगाडि चित्तलाई रोकिराख्नु निरुद्ध अर्थात् सबै तर्फबाट मनको वृत्तिलाई रोक्नुपर्दछ ॥ १ ॥

चित्त एकाग्र र निरुद्ध भएपछि सबैको द्रष्टा ईश्वरको स्वरूपमा जीवात्माको स्थिति हुन्छ ॥ २ ॥ इत्यादि साधन मुक्तिको लागि गर्नुपर्दछ। र—

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥

यो सांख्यको सूत्र (१। १) हो। आध्यात्मिक=शरीरसम्बन्धी पीडा, आधिभौतिक=अन्य प्राणिहरूबाट दुःखी हुनु, आधिदैविक= अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन, इन्द्रिय चञ्चलताबाट हुनेगरी त्रिविध=तीन किसिमका दुःखलाई छुटाएर मुक्ति पाउनु नै अत्यन्त पुरुषार्थ हो। यस पछि आचार-अनाचार र भक्ष्य-अभक्ष्य विषय लेखिनेछ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ९ ॥

अथदशम-समुल्लासः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान्व्याख्यास्यामः

अब आचार=धर्मयुक्त कामको आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषहरूको संगत, सद्विद्या ग्रहण गर्न रुचि आदि र यस विपरीत=अनाचार वारेमा लेखिन्छ—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १ ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥
वेदोऽखिलो धर्ममुलं स्मृतिशील च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ५ ॥
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ६ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ७ ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ ८ ॥
योऽवमन्यते ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ९ ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १० ॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ ११ ॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ १२ ॥

जान्ने, विद्वान्, वेद, विद्युत् आदि र कालविद्याका ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी र साध्य=कार्यसिद्धिका निम्ति सेवन गर्न योग्य अध्यापक आदिको जन्म पाउँछन् ॥ ९ ॥

वेत्ता, विश्वासृज्=सबै सृष्टिक्रम विद्या जानेर विविध विमान आदि यान बनाउने, धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धि भएका र अव्यक्तको जन्म र प्रकृतिवशित्व सिद्धि प्राप्त गर्दछन् ॥ १० ॥

इन्द्रिय वशमा भएर विषयी, धर्मलाई छोडेर अधर्म गर्ने अविद्वान् व्यक्ति मनुष्यहरूमा नीच र खराब–खराब दुःख भोग्ने जन्म पाउँछन् ॥ ११ ॥

यसै गरी सत्व, रज र तमोगुणका बेगले जीव जुन–जुन किसिमको कर्म गर्दछ त्यस–त्यस गुणको त्यसै किसिमको फल प्राप्त गर्दछ।

मुक्त जीव भने गुणातीत अर्थात् कुनै गुणको स्वभावमा न फसेर महायोगी भएर मुक्तको साधन गर्दछ। किनकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १ ॥

तद द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ २ ॥

यो पातञ्जल योगशास्त्रका सूत्र (१। २, ३) हुन। मानिसले रजोगुण, तमोगुणयुक्त कर्मबाट मनलाई रोकेर, शुद्ध सत्वगुणयुक्त कर्मबाट पनि मनलाई रोकेर, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त भएर अनि त्यसको निरोध गरेर, एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा र धर्मयुक्त कर्म अगाडि चित्तलाई रोकिराख्नु निरुद्ध अर्थात् सबै तर्फबाट मनको वृत्तिलाई रोक्नुपर्दछ ॥ १ ॥

चित्त एकाग्र र निरुद्ध भएपछि सबैको द्रष्टा ईश्वरको स्वरूपमा जीवात्माको स्थिति हुन्छ ॥ २ ॥ इत्यादि साधन मुक्तिको लागि गर्नुपर्दछ। र—

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥

यो सांख्यको सूत्र (१। १) हो। आध्यात्मिक=शरीरसम्बन्धी पीडा, आधिभौतिक=अन्य प्राणिहरूबाट दुःखी हुनु, आधिदैविक=अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन, इन्द्रिय चञ्चलताबाट हुनेगरी त्रिविध=तीन किसिमका दुःखलाई छुटाएर मुक्ति पाउनु नै अत्यन्त पुरुषार्थ हो। यस पछि आचार–अनाचार र भक्ष्य–अभक्ष्य विषय लेखिनेछ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ९ ॥

अथदशम–समुल्लासः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान्व्याख्यास्यामः

अब आचार=धर्मयुक्त कामको आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषहरूको संगत, सद्विद्या ग्रहण गर्न रुचि आदि र यस विपरीत=अनाचार वारेमा लेखिन्छ—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १ ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वेदिकः ॥ २ ॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
अकामस्य क्रिया काचित् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥
वेदोऽखिलो धर्ममुलं स्मृतिशील च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ५ ॥
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ६ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ७ ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ ८ ॥
योऽवमन्यते ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ९ ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १० ॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ ११ ॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ १२ ॥

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधियते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः॥१३॥

—मनुस्मृति, २।१-४, ६, ८-१३, २६, ६५

रागद्वेषरहित विद्वान्हरूद्वारा नित्य सेवन गरिएको, हृदय अर्थात् आत्माबाट सत्य कर्त्तव्य जानिएको धर्म सबै मानिसहरूद्वारा माननीय र अनुकरणीय हुन्छ॥१॥

यस संसारमा अत्यन्त कामात्मता र निष्कामता दुबै ठीक होइनन्। वेदार्थज्ञान र वेदोक्त कर्म पनि कामनाबाटै सिद्ध हुन्छन्॥२॥

कोही आफूलाई इच्छा र कामनारहित बताउँछ वा हुन चाहन्छ भने त्यो कहिल्यै सम्भव हुँदैन, किनकि सबै काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषण आदि व्रत, यमनियमरूपी धर्म इत्यादि सङ्कल्पबाटै हुन्छन्॥३॥

हात, गोडा, आँखा, मन आदि पनि कामनाबाटै चल्दछन्। इच्छा नभएमा आँखा उघार्न र चिम्लन पनि सम्भव हुँदैन॥४॥

यसकारण सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषहरूका आचार र आफ्नो आत्मा प्रसन्न रहने किसिमका कर्म अर्थात् भय, शङ्का लाज आदि नहुने खालका कर्म गर्नु उचित हुन्छ। हेर! कसैले मिथ्याभाषण, चोरी आदि गर्ने इच्छा गर्दैमा उसको आत्मामा भय, शङ्का, लाज अवश्य उत्पन्न हुन्छ, अतः त्यस्तो कर्म गर्नुहुँदैन॥५॥

मानिसले सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषहरूका आचरण, आफ्नो आत्मा अनुकूल राम्ररी विचार गरेर ज्ञाननेत्र खोलेर श्रुति प्रमाणद्वारा आफ्नो आत्मा अनुकूल धर्ममा प्रवेश गर्नुपर्दछ॥६॥

वेदोक्त धर्म र वेदानुकूल स्मृतिमा कथित धर्म अनुष्ठान गर्ने मानिसले यस लोकमा कीर्ति र मरेर सर्वोत्तम सुख प्राप्त गर्दछ॥७॥

श्रुति वेदलाई र स्मृति धर्मशास्त्रलाई भनिन्छ। यिनैबाट सबै कर्त्तव्य र अकर्त्तव्य निर्णय गर्नुपर्दछ॥८॥

वेद र वेदानुकूल आप्तग्रन्थहरू अपमान गर्ने मानिसलाई श्रेष्ठ=सज्जनहरूले जातिबाट बहिष्कृत गरिदिनुपर्दछ। किनकि वेदको निन्दा गर्ने व्यक्तिनै नास्तिक भनिन्छ॥९॥

वेद, स्मृति, सत्पुरुषहरूका आचरण र आफ्नो आत्मा ज्ञान अनुकूल प्रिय आचरण यी चार धर्मका लक्षण हुन् अर्थात् यिनै चारबाट धर्म लक्षित हुन्छ॥१०॥

द्रव्यहरूको लोभ र काम अर्थात् विषयसेवामा नफसेको व्यक्तिलाई नै धर्मको ज्ञान हुन्छ। धर्मलाई जान्न चाहनेका लागि वेद नै सबैभन्दा

ठूलो प्रमाण हो॥११॥

यसकारण सबै मानिसले वेदोक्त पुण्य कर्मद्वारा ब्रह्मण, क्षत्रिय र वैश्यले आफ्ना सन्तानको यस जन्म वा परजन्ममा पवित्र गर्ने निषेक आदि सोह्र संस्कार गर्नुपर्दछ॥१२॥

ब्राह्मणको सोह्रौं, क्षत्रियको बाइसौं र वैश्यको चौबिसौं वर्षमा केशान्तकर्म र मुण्डन भैसक्नुपर्दछ अर्थात् यस पछि शिखा=टुपी मात्र राखेर अरू दाढी, जुँघा र टाउकोका कपाल सधैं कटाउने गर्नुपर्दछ अर्थात् फेरि कहिल्यै राख्नुहुन्न। शीतप्रधान देश छ भने स्वेच्छापूर्वक जति पनि कपाल पाल्नुहुन्छ तर धेरै गर्मी ठाउँ छ भने त टुपी समेत सबै कपाल कटाउनु पर्दछ किनकि टाउकोमा कपाल रहनाले बढी गर्मी हुन्छ र त्यसबाट बुद्धि कम हुन्छ। दारी जुँघा राख्ता खान-पान ठीक ढंगले गर्न मिल्दैन र तिनमा जुठो लागिरहन्छ॥१३॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥१॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥२॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥३॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥४॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्॥५॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥६॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रू यान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥७॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥८॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥९॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥१०॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठयं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥ ११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥ १२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ १३॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ १४॥

—मनुस्मृति १।८८, ९४, ९७, ९८, १००, ११०
१३६, १५३–१५७, १५९

चित्त लोभ्याउने विषयतर्फ लगाउने इन्द्रियहरूलाई रोक्ने प्रयास गरेर सारथिले घोडालाई रोकेर ठीक बाटोमा हिंडाए जस्तै इन्द्रियहरूलाई आफ्नो अधीन गरेर अधर्ममार्गबाट हटाएर सदा धर्ममार्गमा चलाउनु नै मानिसको मुख्य आचरण हुनुपर्दछ॥ १॥

किनकि इन्द्रियहरूलाई विषयासक्ति र अधर्म चलाउनाले मानिसले निश्चितरूपमा दोष पाउँछ भने यिनलाई जितेर धर्ममार्गमा चलाउनाले अभीष्ट सिद्धि प्राप्त गर्दछ॥ २॥

जसरी आगोमा इन्धन र घ्यू हाल्दा आगो झन्–झन् बढ्दैजान्छ, त्यस्तै कामोपभोगबाट काम कहिल्यै शान्त नभएर झन्–झन् बढ्दैजान्छ। यसकारण मानिसले कहिल्यै विषयासक्त हुनुहुँदैन॥ ३॥

अजितेन्द्रिय पुरुषलाई 'विप्रदुष्ट' भनिन्छ कि त्यस्तो व्यक्तिबाट वेदज्ञान, त्याग, यज्ञ, नियम र धर्माचरण आदि कुनै पनि सिद्धि हुँदैन। यी सबै त जितेन्द्रिय धार्मिक व्यक्तिलाई मात्र सिद्ध हुन्छन्॥ ४॥

यसकारण पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय र एघारौं मनलाई आफ्नो अधीन गरेर, उचित खान–पान–व्यवहार आदिरूपी योगद्वार शरीर रक्षा गर्दै सबै सत्प्रयोजनहरू सिद्धि गर्नुपर्दछ॥ ५॥

स्तुति सुनेर हर्ष, निन्दा सुनेर शोक, सुखद वस्तु छोएर सुख, दुःखद वस्तु छोएर दुःख, राम्रो हेरेर प्रसन्न, नराम्रो हेरेर अप्रसन्न, उत्तम भोजन गरेर आनन्दित, निकृष्ट भोजनबाट दुःखित, सुगन्धमा रुचि तथा दुर्गन्धमा अरुचि नगर्ने व्यक्तिलाई नै जितेन्द्रिय भनिन्छ॥ ६॥

कसैले न सोधिकन अथवा कसैले अन्याय वा कपटपूर्वक सोधेमा बुद्धिमान् व्यक्तिले जानेर पनि अनजान बन्नुपर्दछ, उत्तर दिनुहुँदैन। तर निष्कपटी जिज्ञासुलाई भने नसोधिकन पनि उपदेश गर्नुपर्दछ॥ ७॥

पहिलो धन, दोस्रो बन्धु–कुटुम्ब–कुल, तेस्रो उमेर वा अवस्था, चौथो उत्तमकर्म र पाँचौं श्रेष्ठ विद्या, यी पाँच मान–सम्मानयोग्य हुन्छन्। यिनमा पनि धनभन्दा बन्धु, बन्धु भन्दा अवस्था, अवस्थाभन्दा श्रेष्ठ कर्म र कर्मभन्दा पवित्र विद्या बढी–बढी माननीय हुन्छन्॥ ८॥

सय वर्ष उमेर भएको पनि विद्या–विज्ञानरहित व्यक्ति बालकै हुन्छ भने विद्या–विज्ञान दिने बालक पनि बुढोपाको मान्नुपर्दछ। किनकि सबै शास्त्र, आप्त र विद्वान्हरू अज्ञानीलाई बालक र ज्ञानीलाई पिता भन्दछन्॥ ९॥

धेरै वर्ष बित्दैमा, कपाल फुल्दैंमा, बढी धन हुँदैमा र ठूलो परिवार हुँदैमा कुनै व्यक्ति वृद्ध हुँदैन। 'हाम्रो मध्यमा विद्या विज्ञानमा सर्वाधिक भएको व्यक्ति नै महान् वा **'वृद्ध'** व्यक्ति हो भन्ने निश्चय ऋषि महात्माहरूले गरेकाहुन्॥ १०॥

ब्राह्मण ज्ञानका कारण, क्षत्रिय बलले, वैश्य धनधान्यबाट र शूद्र जन्म अर्थात् बढी आयु हुँदै **'वृद्ध'** हुन्छ॥ ११॥

टाउकोमा कपाल सेता हुँदैमा कोही बूढो हुँदैन, तर विद्या पढेको युवालाई पनि विद्वान्हरू ठूलो मान्दछन्॥ १२॥

काठको हात्ती वा छालाको हरिण जस्तै विद्या नपढेको अविद्वान् व्यक्ति जगत्मा नाममात्रको मनुष्य भनिन्छ॥ १३॥

यसकारण विद्या पढेर, विद्वान्, धर्मात्मा भएर निर्वैरताले सबै प्राणीहरूलाई कल्याण गर्ने उपदेश गर्नुपर्दछ, उपदेशगर्दा वाणी मधुर र कोमल बनाउनु पर्दछ। सत्य उपदेशद्वारा धर्म वृद्धि र अधर्म नाश गर्ने व्यक्ति धन्य हुन्॥ १४॥

नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न–पान, स्थान सबै शुद्ध राख्नुपर्दछ। किनकि यी सबै शुद्ध भएमा चित्त शुद्धि र आरोग्यता प्राप्त भएर पुरुषार्थ बढ्दछ। मल र दुर्गन्ध हट्नेगरी शौच अर्थात् सर–सफाइ गर्नुपर्दछ।

आचारः परमो धर्मोः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च॥

—मनुस्मृति १।१०८

सत्य बोल्नु आदि कर्मका आचरण नै वेद र स्मृतिमा भनिएका **'आचार'** हुन्।

मा वधीः पितरं मोत मातरम्॥ —यजुर्वेद १६।१५

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

—अथर्ववेद ११।५।३

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव॥ —तैत्तितीय आरण्यक ७।११॥

आमा, बाबु, गुरु र अतिथिलाई सेवा गनु **'देवा पूजा'** भनिन्छ। जगत्‌लाई उपकार हुने किसिमका कर्म गर्नु र हानिकारक कामलाई छोड्नु नै मानिसको मुख्य कर्तव्य कर्म हो। नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मानिसहरूसंग संगत कहिल्यै गर्नुहुन्न। आप्त अर्थात् सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय व्यक्तिहरूसंग संगत गर्नु नै **'श्रेष्ठाचार'** हुन्।

प्रश्न—आर्यावर्त्त देशवासीहरू विभिन्न बाहिरी देशमा जादा तिनीहरूका आचार नष्ट हुन्छ वा हुँदैन?

उत्तर—यो झूट कुरा हो। किनकि कसैले बाहिरी–भित्री पवित्रता, सत्य बोल्नु आदि आचरण जहाँसुकै गरेपनि ऊ आचारभ्रष्ट वा धर्मभ्रष्ट कहिल्यै हुँदैन। आर्यावर्त्तमा रहेर पनि दुष्टाचार गर्ने व्यक्ति भने धर्मभ्रष्ट र आचारभ्रष्ट हुन्छ। त्यस्तो हुने भए—

मेरोर्हरेश्चद्वे वर्षे बर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव समागम्य भारतं वर्षमासदत्॥ १ ॥
स दृष्ट्वा विविधान् देशान् चीनहूणनिषेवितान्॥ २ ॥

यी श्लोक महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्ममा व्यास–शुक संवादका (३२५।१४,१५) हुन्। अर्थात् एक पटक व्यासजी आफ्ना छोरा शुक र शिष्य सहित पाताल अर्थात् वर्तमानकालमा अमेरिका भनिने देशमा बस्तथे। शुकाचार्यले आफ्ना पितासँग आत्मविद्या यत्ति हो वा अरू बढी छ? भनी सोद्धा व्यासजीले त्यस कुराको उपदेश गरिसकेका हुनाले उक्त प्रश्नको उत्तर नदिई अर्काको साक्षीका लागि आफ्नो पुत्रसँग 'हे पुत्र! तिमी मिथिलापुरीमा गएर यही प्रश्न राजा जनकसँग गर, उनै यसको यथायोग्य उत्तर दिनेछन्' भनेका थिए। पिताका कुरा सुनेर शुकाचार्य पातालबाट मिथिलापुरी तर्फ हिंडे। सर्वप्रथम मेरू अर्थात् हिमालयभन्दा ईशान, उत्तर र वायव्य दिशा स्थित देशको नाम हरिवर्ष थियो अर्थात् बाँदरलाई हरि भनिन्छ, त्यस देशका मानिस अझै पनि रातो मुख अर्थात् बाँदर जस्तै कैला आँखा भएका हुन्छन्। जुन ठाँउलाई अहिले 'यूरोप' भनिन्छ, त्यसैलाई संस्कृतमा 'हरिवर्ष' भनिन्थ्यो। ती देशलाई हेर्दै र हूण यहूदीका देशलाई हेर्दै चीन आइपुगे। चीनबाट हिमालय अनि यहाँबाट मिथिलापुरी आइपुगेका थिए।

श्रीकृष्ण तथा अर्जुनले अग्नियान नौका भनिने अश्वतरीमा बसेर पाताल गएर उद्दालक ऋषिलाई राजा युधिष्ठिरका यज्ञमा ल्याएका थिए। धृतराष्ट्रको विवाह कंधार भनिने गंधारका राजपुत्रीसँग भएको

थियो। पाण्डुकी पत्नी माद्री ईरानको राजाकी छोरी थिई। अर्जुनको विवाह हाल अमेरिका भनिने पातालका राजाकी छोरी उलोपीसँग भएको थियो। देश–देशान्तर र द्वीप–द्वीपान्तरसम्म नजानेभए यी सबै कुरा कसरी हुन सक्तथे र? मनुस्मृतिमा समुद्रमा हिंड्ने नौकामा कर लगाउनुपर्ने कुरा लेखिएकोबाट पनि आर्यावर्त्तबाट मानिस द्वीपान्तरमा जाने गर्दथे भन्ने सिद्ध हुन्छ। महाराजा युधिष्ठिरले राजसूर्य यज्ञ गर्दा, त्यस यज्ञमा सम्पूर्ण पृथ्वीका राजालाई निम्ता गरी बोलाउन भीम, अर्जुन, नकुल र सहदेव चारै दिशाहरूमा गएका थिए। बाहिर जान दोष मानिने भए, कहिल्यै जानेथिएनन्। अघि–अघि आर्यावर्त्त देशका मानिस व्यापार, राजाकाज र भ्रमणका निम्ति सम्पूर्ण भूगोलमा घुम्नेगर्दथे। हिजोआज गरिने छुवाछूत र धर्मनष्ट हुने शङ्काका कुरा भने मूर्खहरूद्वारा भ्रम पार्नाले र अज्ञान बढ्नाले मात्र चलेका हुन्। देश–देशान्तर र द्वीप–द्वीपान्तरमा जाने–आउन शङ्का नगर्ने मानिस देश–देशान्तरका भिन्न–भिन्न व्यक्तिहरूसँग सम्पर्क गरेर रीति–थीति देखेर आफ्नो राज्य र व्यवहारलाई बढाएर निर्भय शूरवीर हुँदैजान्छन् र असल व्यवहार ग्रहण र खराब कुरा छोड्न तत्पर भएर ठूलो ऐश्वर्य प्राप्त गर्दछन्। महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलमा जन्मेकी वेश्या आदिसँग समागमबाट आचारभ्रष्ट, धर्महीन नहुने तर देश–देशान्तरका उत्तम पुरुषहरूसँग सम्पर्कमा छूत र दोष मान्नेप्रति आश्चर्य बाहेक के व्यक्त गर्ने र! यो मूर्खताको कुरा होइन भने के हो त? यसमा यति कुरा त अवश्य छ कि मांसभक्षी र मद्यपान गर्नेहरूको शरीर र वीर्यादि धातु पनि दुर्गन्ध आदिले दूषित हुनाले, त्यस्ताको संगतबाट आर्यहरूमा पनि यस्तो नराम्रो बानी नलागोस् भन्ने ख्याल राख्नु उचितै हुन्छ। तर तीसँग व्यवहार र गुणग्रहण गर्न कुनैपनि दोष वा पाप लाग्दैन। साथै तिनका मद्यपान आदि दोषलाई त्यागेर गुणहरू ग्रहण गरेमा केही पनि हानि हुँदैन। मूर्खहरू तिनलाई छुन र हेर्न पनि पाप सम्झने हुँदा तीसँग युद्ध कहिल्यै गर्नसक्तैनन्। किनकि युद्धमा तिनलाई अवश्य हेर्न र छुन पर्नेहुन्छ।

सज्जन मानिसले राग, द्वेष अन्याय, झूट आदि दोष त्यागेर निर्वैर, प्रीति, परोपकार, सज्जनता आदि गुण धारण गर्नु नै उत्तम **'आचार'** हो। यहाँ यो पनि बुझ्नुपर्दछ कि धर्म हाम्रो आत्मा र कर्तव्यसँगै हुन्छ। हामी राम्रा काम गर्दछौं भने देश–देशान्तर र द्वीप–द्वीपान्तरसम्म जान केही पनि दोष लाग्न सक्तैन। दोष त पापकर्म गर्न लाग्छन्। हँ, कसैले आफुलाई झूटो कुरामा पारेर झुक्याउन नसकोस् भन्ने हेतुले वेदोक्त धर्म

निश्चय र पाखण्डमत खण्डन गर्न अवश्य सिकिराख्नु पर्दछ। देश–देशान्तर र द्वीप–द्वीपान्तरमा राज्य वा व्यापार नगरी के कहिल्यै आफ्नो देशको उन्नति हुनसक्तछ? आफ्ना देशका मानिस आफ्नै देशमा मात्र व्यवहार गर्ने र विदेशीहरू आफ्नो देशमा व्यवहार, व्यापार वा राज्य गर्ने भएपछि दरिद्रता र दुःख बाहेक अरू केही पनि हुनसक्तैन। पाखण्डीहरू 'हामीले यिनलाई विद्या पढायौं भने तथा देश–देशान्तरमा जाने आज्ञा दियौं भने यी विद्वान् हुनेछन्, हाम्रो पाखण्डजालमा फस्नेछैनन् र हाम्रो प्रतिष्ठा र जीविका नष्ट भैजानेछ' भन्नेकुरा सोच्तछन्। यसैकारण अर्को ठाउँ वा देशमा जान नसकून् भन्ने ध्येयले खानपानमा समस्या उत्पन्न गराइदिन्छन्। हँ, मद्य–मासु ग्रहण कहिल्यै झुक्किएर पनि गर्नुहुन्न भन्ने कुराको हेक्का अवश्य राख्नुपर्दछ। युद्ध समयमा राजपुरुषले चूलो चौको गरेर आफैं खाना पकाएर खानु निश्चित हारको कारण बन्दछ भन्नेकुरा सबै बुद्धिमान्हरूले निश्चय गरेकै कुरा हो। क्षत्रियहरूले त युद्धमा एउटा हातले रोटी खाँदै र पानी पिउँदै, घोडा, हात्ती, रथमा चढेर अथवा पैदल नै अर्को हातले शत्रुलाई मार्देजानु, आफूले विजय प्राप्त गर्नु नै **'आचार'** र हार खानु **'अनाचार'** हो। यस्तै मूर्खताले यिनीहरूले चुलो–चौको गर्दा गर्दै विरोध गर्दै–गराउँदै सबै स्वतन्त्रता, आनन्द, धन, राज्य, विद्या र पुरुषार्थलाई बाजी लगाएर हात बाँधेर बसेकाछन् र अझै पनि केही पदार्थ पकाइएमा पकाएर खान हुन्थ्यो भन्ने इच्छा गर्दछन्। उचित आचार नहुनाले नै सम्पूर्ण आर्यावर्त्त देशलाई नै बाजी लगाएर सर्वथा नष्ट गरिएको छ। हो, खाने ठाउँलाई धोएर, लिप–पोत गरेर, बढारेर सबै फोहर सफा गर्ने प्रयत्न अवश्य गर्नुपर्दछ। ईसाई र मुसलमान जस्तै भ्रष्ट भान्साघर बनाउनु भने उचित हुँदैन।

प्रश्न—चोखो–बिटुलो भनेको के हो?

उत्तर—पानीमा पकाइको अन्न कच्चा=बिटुलो भनिन्छ र घ्यू, दूधमा पकाएको अन्न भने चोखो भनिन्छ। यो पनि त्यस्तै धूर्तहरूद्वारा चलाइएको पाखण्ड हो। किनकि घ्यू दूध बढी भएको पदार्थ खादा स्वादिष्ट र पेटमा बढी चिल्लो जाने हुँदा यो सबै प्रपञ्च रचिएको हो। नत्र भने आगो वा समयद्वारा पाकेको 'पक्का' र नपाकेको कच्चा हुन्छ। पक्का खाने र कच्चा नखाने भन्ने कुरा पनि सबै ठाउँमा ठीक हुँदैन। किनकि चना आदि काँचै पनि खाइन्छन्।

प्रश्न—द्विजले खाना आफैं बनाएर खानुपर्दछ अथवा शूद्रलाई बनाउन लगाउनु पर्दछ?

उत्तर—शूद्रले बनाएको खाना खानु उचित हुन्छ। किनकि ब्राह्मण, क्षत्रिय र वैश्य वर्णका स्त्री पुरुषले विद्या–पढाउने, राज्य पालन गर्ने, पशुपालन, खेती र व्यापार को काममा तत्पर रहनुपर्दछ। तर शूद्रका पात्रको प्रयोग र उसका घरमा पकाइएको अन्न–भक्षण आपत्काल बाहेक गर्नुहुन्न। सुन प्रमाण—

आर्याधिष्ठता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः॥

—यो आपस्तम्बको (आप० धर्म सूत्र २।२।४।४) सूत्र हो।

आर्यका घरमा शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री र पुरुषले पकाउने आदि सेवाको काम गर्नु पर्दछ, तर तिनले शरीर, वस्त्र आदिद्वारा पवित्र रहनुपर्दछ। आर्यहरूका घरमा खाना बनाउँदा उनको मुखबाट निस्केको जुठो र श्वास पनि अन्नमा नपरोस् भन्नको निम्ति शूद्रहरूले आफ्नो मुख छोपेर काम गर्नुपर्दछ। आठौं दिन कपाल खौरने, नङ् कटाउने र प्रतिदिन स्नान गरेर खाना बनाउने तथा आर्यहरूलाई ख्वाएर आफूले पछि खाना गर्नुपर्दछ।

प्रश्न—शूद्रले छोएको, पाकेको अन्न खादा दोष लगाइन्छ भने उसका हातबाट बनाइएको खाना कसरी खान सक्लान् र?

उत्तर—यो कुरा कपोलकल्पित र झूटो हो। किनकि सखर, चीनी, घ्यू, दूध, पिंधेका कुरा, सागपात, फल, मूल खानेले संसारभरका मानिसका हातले बनाएको र जुठो खाए भन्ने बुझे हुन्छ। यस्तै शूद्र, च्यामे, पोडे, मुसलमान, ईसाई आदिले खेतबाट उखु काट्ने, ताछ्ने, पेलेर रसनिकाल्ने गर्दा दिशा–पिसाब गरेर हातै नधोई छुने, उठाउने, राख्ने, आधा लाँक्रो चुसेर आधा त्यसैमा राख्ने र रस पकाउँदा त्यसै रसमा रोटी पकाएर खाने समेत गर्दछन्। चीनी बनाउँदा मल, मूत्र, गोबर, धुलो लागेको जुत्ताले त्यसलाई रगड्दछन्। दूधमा आफ्नो घरका जुठा भाँडाबाट पानी हाल्दछन् भने त्यसैमा घ्यूपनि राख्तछन्। पीठो पिंढ्दा त्यस्तै जुठो वा फोहोर हातले उठाउँछन् र पसीना पनि पीठोमा चुहिन्छ तथा कन्द, मूल, फलका वारेमा पनि यस्तै लीला हुन्छ। यी पदार्थ खानेले सबैका हातको खायो भन्ने बुझेहुन्छ।

प्रश्न—कन्द, मूल, फल र रस आदि अदृष्ट हुनाले दोष लाग्दैन।

उत्तर—त्यसो भए पोडे वा मुसलमानले आफ्नै हातले अर्कै ठाउँमा बनाएर ल्याएर तिमीलाई दिए खानेछौं वा छैनौ? खाने छैनौ भने अदृष्टमा पनि दोष हुँदो रहेछ भन्ने बुझिन्छ। हँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य, मांस खानेका हातको खाना खाएमा आर्यहरूलाई पनि

मद्य, मांस आदि खाने पिउने अपराध लाग्दछ तर आर्यहरू परस्पर एक भोजन हुदा केही दोष देखिन्न। एउटै विचार, हानि–लाभ, सुख–दुःख परस्परा सब एउटै नमानेसम्म उन्नति हुन साह्रै कठिन हुन्छ। खराब कुरा छोड़ेर असल कुरा ग्रहण नगरेसम्म खान–पानमात्र एक हुनाले सुधार हुनसक्तैन, बरू उन्नतिको सट्टा अवनति चाहिं हुँदैजान्छ।

आर्यावर्त्तमा विदेशीको राज्य हुनाले परस्पर फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य सेवन नगर्नु, विद्या नपढ्नु , नपढाउनु, बाल्यावस्थामा अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, झूट बोल्नु आदि र वेदविद्या अप्रचार आदि कुलक्षण तथा कुकर्महरू छन्। परस्पर दाजु–भाई लड्छन् भने तेस्रो विदेशी आएर न्यायाधीश बन्नपुग्दछ।

के तिमीहरूले पाँच हजार वर्ष अघि भएका महाभारतका कुरा पनि बिर्सिसक्यौ ? महाभारत युद्धमा सबै योद्धा आदि रथ आदि सवारीसाधनमै खाने–पिउने गर्दथे। परस्परका मतभेदले कौरव, पाण्डव र यादवहरूको नाश भयो सो त भैसक्यो तर **हालसम्म पनि त्यो रोगले छोडेको छैन। नजाने यो भयङ्कर राक्षस कुनैबेला छुट्ने पनि अथवा आर्यहरूलाई सबै सुखबाट छुटाएर दुःखसागरमा डुबाउनेछ ? आर्यहरू अझैपनि त्यसै दुष्ट, गोत्रहत्यारा, स्वदेशविनाशक दुर्योधनका दुष्टमार्गमै हिंडेर दुःख बढाइरहेछन्।** परमेश्वर हामी आर्यहरूबाट यो राजरोग नष्ट हुने किसिमको कृपा गरिदेओस्।

भक्ष्याभक्ष्य दुई किसिमको हुन्छ। एउटा धर्मशास्त्रोक्त र अर्को वैद्यकशास्त्रोक्त। जस्तै धर्मशास्त्रमा—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ —मनुस्मृति ५।५

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य र शूद्रहरूले मलिन मलमूत्र आदिका संसर्गले उत्पन्न भएका सागपात, फल, मूल आदि खानुहुँदैन।

वर्जयेन्मधुमांसं च ॥ —मनुस्मृति २।१७७

अनेक किसिमका मद्य, गाँजा, भाँग, अफीम आदि—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ॥

—शार्ङ्गधर संहिता ४।२१

बुद्धि नाशगर्ने पदार्थ सेवन कहिल्यै गर्नुहुन्न र सडे–गलेका, दुर्गन्धित, राम्ररी नबनाइएका अन्न खानुहुन्न र मद्यमांसाहारी म्लेच्छका हातको अन्न पनि कहिल्यै खानुहुन्न, किनकि तिनको शरीर मद्यमांसकै परमाणुले परिपूरित हुन्छ।

उपकारक प्राणीहरूलाई हिंसा गर्नु अर्थात् मार्नु वा मार्नदिनु हुँदैन।

अर्थात् एउटा गाईको शरीरबाट दूध, घ्यू, गोरू, गाई उत्पन्न हुनेहुँदा एक पुस्तामा चारलाख पचहत्तर हजार छसय (४७५६००) मानिसलाई सुख पुग्दछ। जस्तै कुनै गाईबाट बीस सेर र कुनैबाट दुईसेर दूध प्रतिदिन भए त्यसको औसत एघार सेर दूध प्रत्येक गाईबाट प्रतिदिन हुन्छ। कुनै गाईले अठार महीना र कुनैले छ महीना दूध दिने हुँदा त्यसको औसत बाह्र महीना हुन्छ। यसरी प्रत्येक गाईका जन्मभरको दूधबाट चौबीस हजार नौ सय साठी (२४९६०) व्यक्ति एकपल्ट तृप्त हुनसक्तछन्। त्यसका ६ बाछा र ६ बाछी हुन्छन्, तिनमा दुईवटा मरे पनि दश बाँकी रहन्छन्। ती मध्ये पाँच बाछीको जन्मभरको दूध मिलाउँदा १,२४,८०० (एक लाख चौबीस हजार आठ सय) जना तृप्त हुन सक्तछन्। अब बाँकी रहेका पाँच बाछा=गोरूले उमेरभरमा कम–से–कम ५,००० (पाँच हजार) मन अन्न उत्पन्न गर्न सक्तछन्। त्यस अन्नमा प्रत्येक व्यक्तिले तीन पाउ (३/४ सेर) खाएमा साँढे दुईलाख व्यक्ति तृप्त हुन सक्तछन्। दूध र अन्न मिलाउँदा ३,७४,८०० (तीन लाख चौहत्तर हजार आठ सय) मानिस तृप्त हुन्छन्। दुबै संख्या मिलाउँदा एउटा गाईको एक पुस्तामा ४,७५,६०० (चार लाख पचहत्तर हजार छ य) मानिस एक पटकको लागि पालिन्छन्। अनि पुस्तौं पुस्तासम्म बढाएर हिसाब गर्ने हो भने असंख्य मानिसलाई पालन–पोषण गाईबाट हुन्छ। यसबाहेक गोरू गाडा, सवारी र भारी बोक्ने आदि कामद्वारा पनि मानिसको धेरै उपकार गर्दछन् भने गाई चाहिं दूधद्वारा बढी उपकार गर्दछ। यस्तै गोरू जत्तिको उपकार भैंसी पनि गर्दछ। तर गाईको दूध घ्यूबाट भएजत्ति बुद्धिवृद्धि आदि लाभ भैंसीका दूधबाट हुँदैन । यसैकारण आर्यहरूले गाईलाई मुख्य उपकारी मानेका हुन्। अरूपनि विद्वान्ले यस्तै बुझ्ने नै छन्।

बाख्राको दूधबाट २५,९२० (पच्चीस हजार नौ सय बीस) जना मानिस पालिन्छन्, त्यस्तै हात्ती, घोडा, ऊँट, भेडा, गधा आदिबाट पनि ठूला–ठूला उपकार हुन्छन्। यी पशुहरू हत्या गर्नेलाई सबैले मानवहत्यारा सम्झनुपर्दछ।

हेर! आर्यहरूको राज्य हुँदा ठूला–ठूला उपकार गर्ने गाई आदि पशु मारिने गरेका थिएनन्, अनि त आर्य्यावर्त्त र पृथ्वीभरिका अरू देशमा मानिस आदि सबै प्राणी आनन्दपूर्वक थिए, किनकि गाई आदि पशु धेरै हुनाले दूध, घ्यू, अन्न, रस आदि प्रशस्त मात्रामा प्राप्त हुन्थ्यो। गाई आदि पशु हत्यारा विदेशी मांसाहारी, मद्यपान गर्नेहरू राज्याधिकारी

भएपछि क्रमशः आर्यहरूका दुःख बढ्दै गैरहेछन्। किनकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।

वृक्षनै काटिदिए पछि फलफूल कहाँबाट हुन्छन् र?

प्रश्न—सबै अहिंसक भएमा वाघ आदि जनावर धेरै बढ्दछन् र सबै गाई आदि पशुलाई मारेर खान्छन्। अनि त तिम्रो यो पुरुषार्थ नै व्यर्थ हुन्छ?

उत्तर—हानिकारक पशु वा मनुष्यलाई पनि दण्ड दिने वा परेमा मृत्युदण्ड समेत दिने काम राजपुरुषको हो।

प्रश्न—अनि के तिनका मासुलाई फाल्ने त?

उत्तर—फालिदिनु वा कुकुर आदि मांसाहारीलाई ख्वाइदिनु वा डढाइदिनु अथवा कोही मांसाहारी खान्छ भने पनि संसारलाई केही हानि हुँदैन तर त्यो मानिसको स्वभाव मांसाहारी भएर हिंसक हुनसक्तछ।

हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदिद्वारा पदार्थहरू प्राप्त गरेर भोग्नु **'अभक्ष्य'** र अहिंसा, धर्म आदि कर्मद्वारा प्राप्त गरिने भोजन आदि **'भक्ष्य'** हुन्छ। स्वास्थ्यलाभ हुने, रोगनाशक, बल–बुद्धि–पराक्रमवृद्धि र आयुवृद्धि हुने चामल, गहुँ, फल, मूल, कन्द, दूध, घ्यू, मिठाइ इत्यादि पदार्थहरूलाई यथायोग्य मिलाएर, पकाएर, उचित समयमा मिताहार=उचितमात्रामा भोजन गर्नुलाई **'भक्ष्य'** भनिन्छ। आफ्नो प्रकृतिविरुद्ध विकार गर्ने पदार्थ र जस–जसको जुन–जुन पदार्थ निषेध वैद्यकशास्त्रमा गरिएको छ ति सर्वथा त्याग गरेर जस–जसको लागि जुन–जुन पदार्थ खानु हुने विधान छ ति सेवन गर्नु पनि भक्ष्य हो।

प्रश्न—सँगै खान दोष हुन्छ वा हुँदैन?

उत्तर—दोष हुन्छ, किनकि एउटासँग अर्काको स्वभाव र प्रकृति मिल्दैन। जस्तै कोढी आदिसँग खानाले स्वस्थ मानिसको पनि रगत बिग्रन्छ त्यस्तै अर्कासँगै खानाले केही बिग्रनै सक्छ, सुध्रने केही छैन। यसकारण—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

—मनुस्मृति २।५६

आफ्नो जुठो कसैलाई दिनु वा कसैको जुठो आफुले खानु पनि हुँदैन। बढी खानु वा खाना खाएपछि नचुठिकन यताउति हिंड्नु हुँदैन।

प्रश्न—**'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्'** यस वाक्यको अर्थ के होला?

उत्तर—यसको अर्थ 'गुरुले भोजन गरिसकेपछि छुट्टै बाँकी रहेको शुद्ध अन्न भोजन गर्नुपर्दछ अर्थात् गुरुलाई भोजन गराएपछि शिष्यले भोजन गर्नुपर्दछ' भन्ने हो।

प्रश्न—सबै किसिमको जुठो निषेध हो भने मौरीको जुठो मह, बाछाको जुठो दूध र पहिलो गाँस खाएपछि आफ्नै पनि जुठो हुन्छ, तिनलाई पनि खान नहुने हो?

उत्तर—महलाई जुठो भन्नुमात्र हो, त्यो त धेरैजसो औषधिहरूको सार हुनाले ग्राह्य हुन्छ। बाछाले आफ्नी आमाका स्तनको बाहिरैबाट दूध खान्छ भित्रका दूधलाई जुठो पार्न सक्तैन, यसकारण त्यो दूध जुठो हुँदैन तर बाछाले खाइसकेपछि पानीले थुन धोएर शुद्ध भाँडामा दूध दुहुनुपर्दछ। आफ्नो जुठो भने आफैंलाई हानि गर्दैन। हेर, कसैको जुठो कैसेले खानुहुँदैन भन्ने कुरा स्वभावैले पनि सिद्ध हुन्छ। जस्तै आफ्नो मुख, नाक, कान, आँखा, उपस्थ र गुप्तेन्द्रियका मलमूत्रादि स्पर्श गर्न घृणा लाग्दैन भने अरू कसैका मलमूत्रादि स्पर्श गर्न घृणा हुन्छ। यसबाट यो व्यवहार सृष्टिक्रम विरुद्ध होइन भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यसकारण कुनै मानिसले कसैको पनि उच्छिष्ट अर्थात् जुठोपुरो खानु उचित होइन।

प्रश्न—त्यसो भए के पति–पत्नीले पनि एक अर्काको जुठोपुरा खानुहुँदैन?

उत्तर—हुँदैन। किनकि तिनका शरीरको स्वभाव पनि भिन्नाभिन्नै हुन्छ।

प्रश्न—कुनै पनि मानिसले पकाएको खाना खान के दोष छ र? किनकि ब्राह्मण देखि चाण्डालसम्म सबैका शरीर हाड–मासु–छालाको हुन्छ। जस्तो रगत ब्राह्मणका शरीरमा हुन्छ, त्यस्तै चाण्डाल आदिको पनि हुन्छ। अनि कुनै पनि मानिसले पकाएको खान के दोष?

उत्तर—दोष छ। किनकि उत्तम पदार्थको खान–पानले ब्राह्मण ब्राह्मणीका शरीरमा जुन दुर्गन्ध आदि दोषरहित रज–वीर्य उत्पन्न हुन्छ, त्यस्तो चाण्डाल र चाण्डालीको शरीरमा हुँदैन। किनकि चाण्डालको शरीर दुर्गन्धका परमाणुले भरिपूर्ण हुन्छ तर ब्राह्मण आदि वर्ण त्यस्तो हुँदैन। यसकारण ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णका हातको खानुपर्छ र चाण्डाल आदि नीच पोडे, च्यामे आदिका हातको खानुहुँदैन। तिमीसँग कसैले 'जस्तो छालाको शरीर आमा, सासु, बहिनी, छोरी, बुहारीको हुन्छ त्यस्तै आफ्नी पत्नीको पनि हुन्छ, अनि के आमा आदिसँग पनि पत्नीजस्तै

व्यवहार गर्दछौ ?' भनी सोधेमा तिमीले संकुचित भएर चुप लाग्नु पर्ने हुन्छ। जसरी हाथ मुखद्वारा उत्तम अन्न खाइन्छ त्यसैगरी दुर्गन्ध पनि खान सकिन्छ भने के मलमूत्र आदि पनि खानेछौ ? के कोही पनि यस्तो हुनसक्तछ ?

प्रश्न—जसरी गोबरले लिपपोत गर्दछौ त्यस्तै आफ्नै गोबरले किन लिप्तैनो ? अनि गोबरले चुलो–चौको अशुद्ध किन हुँदैन ?

उत्तर—मानिसको मलबाट हुनेजस्तो दुर्गन्ध गाईको गोबरबाट हुँदैन। गोबर चिल्लो हुनाले छिटो उक्किदैन, यसबाट लुगा बिग्रदैन, मैलिदैन पनि। माटोको मयल चढे जस्तो सुक्खा गोबरबाट हुँदैन। माटो र गोबरले लिपेको ठाउँ देख्ता अति सुन्दर लाग्छ। खाना पकाउने ठाउँमा भोजनादि गर्दा घ्यू, मिठाइ र जुठो पनि पर्दछ, त्यो ठाउँ मलिन रहेमा झिंगा, कीरा आदि धेरैजसो मलिन ठाउँका जीव आउँछन्। त्यस ठाउँलाई कुच्चो लगाउने र लिप्ने आदि द्वारा प्रतिदिन शुद्ध नगरेमा त्यो ठाउँ शौचालय जस्तै हुन्छ। यसकारण गोबर, माटो, कुच्चोले राम्ररी शुद्ध राख्नुपर्दछ। अनि पक्का घर छ भने पानीले धोएर शुद्ध राख्नपर्दछ। यसो गर्दा पूर्वोक्त दोष रहन पाउँदैनन्। जस्तो मियांजीको भान्साघरमा कतै कोयला, कतै खरानी, कतै दाउरा, कतै फुटेको हाँडी, कतै जुठा भाँडा र कतै हाडगोड आदि फैलिरहेका हुन्छन् अनि तिनमा झींगाको त कुरै के गर्ने ! त्यों ठाउँ यति नराम्रो लाग्छ कि कुनै श्रेष्ठ व्यक्ति त्यहाँ गएर बसेमा वान्ता पनि हुन सक्तछ र त्यों ठाउँ भान्साघर नभई कुनै दुर्गन्धित ठाउँ जस्तै लाग्दछ। कसैले यिनीहरूसँग 'गोरबले चुलो लिप्न त तिमी दोष सम्झन्छौ र चुलोमा गुंइँठा बाल्नमा, त्यसैको आगोले तमाखु तान्न, घरको भित्तो पोत्न आदि बाट पनि मियांजीको चुलो–चौका भ्रष्ट हुनु पर्दछ भन्ने कुरामा शंका छैन होइन त ?' भनी सोध्नुपर्दछ।

प्रश्न—चौकोमा नै बसेर खाना खानुपर्दछ कि बाहिर बसेपनि हुन्छ ?

उत्तर—राम्रो, रमणीय, स्वच्छ, सुन्दर लागेको ठाउँमा बसेर खाना खानुपर्दछ। तर आपत्काल अर्थात् आवश्यक युद्ध आदिमा त घोडा आदि बाहन, यानमा बसेर वा उभिएरै खानु पनि नितान्त उचित हुन्छ।

प्रश्न—के आफैं बनाएर खानुपर्दछ र अरूले पकाएको खानुहुँदैन ?

उत्तर—शुद्ध रीतिले बनाएमा आर्यहरूमा सबै आर्यहरूसँग बसेर खानमा केही पनि हानि छैन। किनकि ब्राह्मण आदि वर्णका स्त्री–पुरुषले खाना पकाउने, पस्कने, भाँडाकुँडा माझ्ने आदि झंझटमा परिरहेमा

विद्या आदि शुभगुणहरूको वृद्धि कहिल्यै हुनसक्तैन।

हेर, महाराज युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञमा पृथ्वीभरिका राजा, ऋषि, महर्षि आएका थिए। सबै एउटै भान्सामा भोजन गर्ने गर्दथे। पछि ईसाई, मुसलमान आदिका मतमतान्तर चले, परस्पर विरोध शुरू भयो र उनीहरूले मद्यपान, गोमांस आदि खानपिउन थाले, त्यसै समयदेखि खानपानको कुरामा झंझट भएको हो।

हेर, काबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशका राजाहरूका कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदिसँग आर्य्यावर्त्त देशका राजाहरू विवाह आदि व्यवहार गर्दथे। शकुनि आदि कौरव पाण्डव आदिसँग खाने पिउने गर्दथे, केही पनि विरोध हुँदैनथ्यो, किनकि त्यसबखत सम्पूर्ण भूगोलमा वेदोक्त एकमत थियो। त्यसैमा सबैको निष्ठा थियो र एकअर्काको सुख–दुःख, हानिलाभ परस्परमा आफ्नै समान ठान्दथे। अनि त भूगोलमा सुख थियो। अब त धेरैजसो मत–मतान्तर हुनाले धेरै विरोध र दुःख बढेको छ। यसको निवारण गर्नु बुद्धिमान्हरूको काम हो।

मिथ्यामत शीघ्र नै प्रलय हुनेगरी परमात्माले सबैको मनमा सत्यमतको अङ्कुर पैदा गरून्। यसमा सबै विद्वान्हरूले विचार गरेर विरोधभाव छोडेर विरोधरहित मतलाई स्वीकार गरेर सबै मिलेर सबैको आनन्दलाई बढाऊन्। यो अलिकति आचार–अनाचार भक्ष्य–अभक्ष्य विषयमा लेखियो।

यस ग्रन्थको पूर्वार्द्ध यसै दसौं समुल्लाससँगै पूर्ण भयो। मानिसले सत्य–असत्यको विचारमा केही पनि सामर्थ्य नबढाई सूक्ष्म–स्थूल खण्डनहरूको अभिप्राय बुझ्नसक्तैनन् भन्ने कारणले नै यी समुल्लासहरूमा विशेष खण्डन–मण्डनका कुरा नलेखेको हो। यसैकारण पहिले सबैलाई सत्य शिक्षाको उपदेश गरेर अब चार समुल्लास रहेको उत्तरार्द्धमा विशेष खण्डन–मण्डन लेखिने छ। यी चारमध्ये पहिलो समुल्लासमा आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दोस्रोमा जैनीहरूको, तेस्रोमा ईसाईहरूको र चौथोमा मुसलमानहरूको मतमतान्तरको खण्डन–मण्डनको बारेमा लेखिनेछ। अनि त्यसपछि अर्थात् चौधौं समुल्लासको अन्त्यमा आफ्नो मत पनि देखाइनेछ। कसैले विशेष खण्डन–मण्डन हेर्न चाहेमा यी चारै समुल्लासलाई हेर्नुपर्दछ। तर यी दस समुल्लासमा पनि कतै कतै केही थोरै सामान्य खण्डन–मण्डन गरिएको छ।

यी चौध समुल्लासलाई पक्षपात छोडेर न्यायको दृष्टिले हेर्नेको

आत्मामा सत्य अर्थको प्रकाश भएर आनन्द हुनेछ र हठ, दुराग्रह र ईर्ष्याले देख्ने–सुन्नेलाई भने यस ग्रन्थको यथार्थ अभिप्राय बुझ्न साह्रै कठिन हुनेछ। विद्वान्हरूको काम पनि सत्य–असत्यको निर्णय गरेर सत्यलाई ग्रहण गरेर असत्यलाई त्यागेर परम आनन्दित हुनु नै हो। ती गुण ग्रहण गर्ने व्यक्ति नै विद्वान् भएर धर्म, अर्थ, काम र मोक्षरूपी फलहरूलाई प्राप्त गरेर प्रसन्न रहन्छन्॥ १०॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आचारनाचारभक्ष्याभक्ष्यविषये दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १०॥

समाप्तोऽयं पूर्वार्द्धः

अनुभूमिका

वेदोक्त कुनै कुरा विद्या–विरुद्ध नहुनाले पाँच हजार वर्ष अघि वेदमत बाहेक अरू कुनै मत थिएन भन्ने त सिद्ध भएकै कुरा हो। वेद प्रति प्रवृत्ति नहुनाले महाभारतको युद्ध भयो। वेदप्रति अप्रवृत्तिकै कारण भूगोलमा अविद्यारूपी अन्धकार फैलिनाले मानिसको बुद्धि भ्रान्त भई मनपरी मतमतान्तर चलाइए। ती मध्ये वेद विरोधी पुराणी, जैनी, किरानी=क्रिश्चियन र कुरानी यी चार मत सबै मतका मूल हुन्। ती क्रमशः एकपछि अर्को गरी चलेका हुन्। हाल यी चारैका शाखा एक हजार भन्दा कम छैनन्। यी सबै मतवादीहरू, यिनका चेलाहरू र अरू पनि सबैलाई परस्पर सत्य र असत्य को विचार गर्नमा बढी परिश्रम गर्न नपरोस् भन्ने ध्येयले यो ग्रन्थ तैयार पारिएको हो। यसमा गरिएको सत्यमतको मण्डन र असत्यको खण्डनको प्रयोजन सबैलाई यथार्थ जानकारी दिनु हो। यसमा मेरो आफ्नो बुद्धि, विद्या अनुसार र यी चारै मतका मूल ग्रन्थलाई हेर्नाले बुझिएका कुरा सबै सामु प्रस्तुत गर्नु उचित लागेको हो, किनकि विज्ञान लुप्त भएपछि फेरि प्राप्त हुन कठिन हुन्छ। पक्षपातलाई छोडेर यसलाई हेर्नाले सम्पूर्ण सत्य र असत्यमतको जानकारी हुनेछ। त्यसपछि आ–आफ्नो समझ अनुसार सत्यमतलाई ग्रहण र असत्यमलाई छोड्नु सजिलो हुनेछ। यिनमा पुराण आदि ग्रन्थबाट आर्य्यावर्त्त देशमा चलेका शाखा–शाखान्तररूपका मतहरूको संक्षिप्त गुणदोषविवेचन यस एघारौं समुल्लासमा गरिन्छ।

कसैको हानि वा विरोध गर्ने मेरो उद्देश्य नभई सत्य र असत्यको निर्णय गर्ने प्रयोजन रहेको हुनाले मेरो यस कामबाट उपकार नमानेपनि विरोध चाहिं नगर्नुहोला। यसै गरी सबैले न्यायदृष्टि राखेर व्यवहार गर्नु उचित हुन्छ। मनुष्यजन्म भएको वाद–विवाद गर्न गराउन नभई सत्य र असत्यको निर्णय गर्न गराउनका लागि हो। यसै मत मतान्तरको विवादबाट जगत्मा जे जति अनिष्ट फल भए, भई रहेछन् र हुनेछन्, पक्षपातरहित विद्वान्हरू तिनलाई जान्नसक्तछन्।

यस मनुष्यजातिमा परस्पर मिथ्या मत–मतान्तरका कुरा नछुटेसम्म एक अर्कालाई आनन्द हुने छैन। हामी सबै मानिस र खासगरी विद्वान्हरूले ईर्ष्या–द्वेषलाई त्यागेर, सत्य र असत्यको निर्णय गरेर, सत्यको ग्रहण र असत्यको त्याग गर्न गराउन चाहेमा हामीहरूका

लागि यो कुरा असाध्य होइन।

यी विद्वान्हरूको विरोधले नै सबैलाई विरोध जालमा फसाएको छ भन्ने कुरामा शंका छैन। यिनीहरूले आफ्नो स्वार्थलाई त्यागेर सबको प्रयोजन सिद्ध गर्न चाहेमा अहिल्यै एकमत हुनेछन्। यसो हुने युक्ति यस ग्रन्थको अन्तमा लेखिनेछ। सर्वशक्तिमान् परमात्मा सबै मानिसका आत्मामा एउटै मतमा लाग्ने उत्साह प्रकाशित गरोस्।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु।

उत्तरार्द्धः—

अथैकादश–समुल्लासः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्यावर्त्त देशमा बस्ने आर्यहरूका मतको खण्डन–मण्डन गरिन्छ। भूगोलभरिको कुनै देश आर्य्यावर्त्त देश जस्तो छैन। यसैकारण सुवर्ण आदि रत्न उत्पन्न गर्ने हुनाले यस भूमिको नाम सुवर्णभूमि हो। यसैकारण सृष्टिको आरम्भमा आर्यहरू यसै देशमा आएर बसेका हुन्। उत्तम मनुष्यको नाम '**आर्य**' र आर्यभन्दा भिन्न मानिसको नाम '**दस्यु**' हो भन्ने कुरा हामीले सृष्टि–विषयमा भनिसकेका छौं। भूगोलका सबै देश यसै देशको प्रशंसा गर्दै 'पारसमणि नाम गरेको कुनै शिला हुन्छ भन्ने कुरा त झूटो हो, तर आर्यावर्त्त देश नै सच्चा पारसमणि हो' भन्दछन्। किनकि यसलाई छुनेबित्तिकै फलामजस्तै दरिद्र विदेशी सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य बन्दछन्।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ —मनुस्मृति

सृष्टि भएदेखि पाँचहजार वर्ष अघिसम्म आर्य्यहरूको सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोलभरि सर्वोपरि एउटै राज्य थियो। अरू देशमा माण्डलिक अर्थात् ससाना राजा हुन्थे। कौरव–पाण्डवसम्म यहाँको राज्य र राज्यशासनमै भूगोलका सबै राजा र प्रजा चल्दथे। सृष्टिको आरम्भमा बनाइएको मनस्मृति यसको प्रमाण छ—''यसै आर्य्यावर्त्त देशमा जन्मेका ब्राह्मण अर्थात् विद्वान्हरूबाट भूगोलका सबै मानिस=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सबै आ–आफ्नो योग्य विद्या, चरित्रको शिक्षा र विद्याभ्यास गरून्।'' महाराजा युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धसम्म सबै राज्य यहींको राज्यका अधीन थिए।

सुन, चीनका भगदत्त, अमेरिकाका बब्रुवाहन, यूरोपका विडालाक्ष अर्थात् बिरालोको जस्तै आँखा भएका, यूनान भनिने यवन र ईरानका शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धमा आज्ञानुसार

लागि यो कुरा असाध्य होइन।

यी विद्वान्हरूको विरोधले नै सबैलाई विरोध जालमा फसाएको छ भन्ने कुरामा शंका छैन। यिनीहरूले आफ्नो स्वार्थलाई त्यागेर सबको प्रयोजन सिद्ध गर्न चाहेमा अहिल्यै एकमत हुनेछन्। यसो हुने युक्ति यस ग्रन्थको अन्तमा लेखिनेछ। सर्वशक्तिमान् परमात्मा सबै मानिसका आत्मामा एउटै मतमा लाग्ने उत्साह प्रकाशित गरोस्।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु।

उत्तरार्द्धः—

अथैकादश–समुल्लासः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्यावर्त्त देशमा बस्ने आर्यहरूका मतको खण्डन–मण्डन गरिन्छ। भूगोलभरिको कुनै देश आर्य्यावर्त्त देश जस्तो छैन। यसैकारण सुवर्ण आदि रत्न उत्पन्न गर्ने हुनाले यस भूमिको नाम सुवर्णभूमि हो। यसैकारण सृष्टिका आरम्भमा आर्यहरू यसै देशमा आएर बसेका हुन्। उत्तम मनुष्यको नाम '**आर्य**' र आर्यभन्दा भिन्न मानिसको नाम '**दस्यु**' हो भन्ने कुरा हामीले सृष्टि–विषयमा भनिसकेका छौं। भूगोलका सबै देश यसै देशको प्रशंसा गर्दै 'पारसमणि नाम गरेको कुनै शिला हुन्छ भन्ने कुरा त झूटो हो, तर आर्यावर्त्त देश नै सच्चा पारसमणि हो' भन्दछन्। किनकि यसलाई छुनेबित्तिकै फलामजस्तै दरिद्र विदेशी सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य बन्दछन्।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ —मनुस्मृति

सृष्टि भएदेखि पाँचहजार वर्ष अघिसम्म आर्य्यहरूको सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोलभरि सर्वोपरि एउटै राज्य थियो। अरू देशमा माण्डलिक अर्थात् ससाना राजा हुन्थे। कौरव–पाण्डवसम्म यहाँको राज्य र राज्यशासनमै भूगोलका सबै राजा र प्रजा चल्दथे। सृष्टिको आरम्भमा बनाइएको मनस्मृति यसको प्रमाण छ—''यसै आर्य्यावर्त्त देशमा जन्मेका ब्राह्मण अर्थात् विद्वान्हरूबाट भूगोलका सबै मानिस=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सबै आ–आफ्नो योग्य विद्या, चरित्रको शिक्षा र विद्याभ्यास गरून्।'' महाराजा युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धसम्म सबै राज्य यहींको राज्यका अधीन थिए।

सुन, चीनका भगदत्त, अमेरिकाका बब्रुवाहन, यूरोपका विडालाक्ष अर्थात् बिरालोको जस्तै आँखा भएका, यूनान भनिने यवन र ईरानका शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धमा आज्ञानुसार

आएका थिए। रघुवंशीहरूको राज्य छँदा रावण पनि यहाँकै अधीन थियो। रामचन्द्रको समयमा विरोधी भएपछि रामचन्द्रले उसलाई दण्ड दिएर राज्यबाट हटाएर उसका भाइ विभीषणलाई राज्य दिएका थिए। स्वायंभुव राजादेखि पाण्डवसम्म आर्यहरूको चक्रवर्ती राज्य रह्यो। त्यसपछि परस्परको विरोधले लडेर नष्ट भए। किनकि परमात्माको यस सृष्टिमा अभिमानी, अन्यायकारी र अविद्वान्‌हरूको राज्य धेरै दिन चल्दैन। असंख्य, प्रयोजनभन्दा पनि धेरै धन बढी भएपछि आलस्य, पुरुषार्थ नहुनु, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति र प्रमाद बढ्नु यस संसारको स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। यसबाट देशमा विद्या, सुशिक्षा आदि नष्ट भएर दुर्गुण र दुर्व्यसन बढ्दछन्। मद्य–मांसको सेवन, बाल्यावस्थामा विवाह र स्वेच्छाचार आदि दोष बढ्दछन् र युद्ध विभागमा युद्धविद्याकौशल र सेना धेरै बढेर त्यसको सामना गर्नसक्ने भूगोलमा कुनै पनि अर्को नभएपछि तिनमा पक्षपात, अभिमान र अन्याय बढ्दछ। यी दोष भएपछि परस्परमा विरोध भएर अथवा त्योभन्दा बढी अरू सानातिना राज्य वा कुलबाट तिनलाई हराउन सक्ने अर्कै व्यक्ति निस्कन्छ। जस्तै मुस्लिम साम्राज्यको अगाडि शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंहजी आदिले अगाडि बढेर मुसलमानहरूको राज्यलाई छिन्न–भिन्न पारिदिए।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्त्तिनः केचित् सुद्युम्न–भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशविन्दु–हरिश्चन्द्राऽम्बरीषननक्तुशर्यातिया यात्यनरण्याक्षसेनादयः अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः ॥ —मैत्र्युपनिषद् ॥

इत्यादि प्रमाणहरूबाट सृष्टिदेखि महाभारतसम्म आर्य्यकुलमा नै चक्रवर्ती सार्वभौम राजा भएका थिए भन्ने सिद्ध हुन्छ। अब यिनका सन्तानहरूको अभाग्योदय हुनाले राज–भ्रष्ट भएर विदेशीहरूको पादाक्रान्त भैरहेछन्। जस्तै यहाँ सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त र भरत, यी सबै सार्वभौम= सम्पूर्ण भूभागमा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाहरूका नाम हुन्, यस्तै स्वायम्भुव आदि चक्रवर्ती राजाहरूको नाम स्पष्टहरूमा मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थमा लेखिएका छन्। यसलाई मिथ्या मान्नु अज्ञानी र पक्षपातीहरूको काम हो।

प्रश्न—ग्रन्थहरूमा लेखिएका आग्नेयास्त्र आदि विद्या सत्य हुन् वा होइनन्? तथा त्यसबेला तोप, बन्दूक आदि थिए वा थिएनन्?

उत्तर—यी कुरा सत्य हुन् र यी शस्त्रविद्या पनि थिए, किनकि पदार्थविद्याबाट यी सबै कुरा सम्भव हुन्छन्।

प्रश्न—के यी शस्त्र आदि देवताहरूका मन्त्रबाट सिद्ध हुन्थे?

उत्तर—होइन। यी सब कुराको तात्पर्य जुन कुराबाट अस्त्र–शस्त्र सिद्ध वा तैयार हुन्थे तिनै मन्त्र=विचारपूर्वक तैयार गर्नु र चलाउनु हो। अनि शब्दमय मन्त्रबाट कुनै पदार्थ उत्पन्न हुँदैन। कसैले मन्त्रबाट आगो उत्पन्न हुन्छ भन्छ भने त्यस आगोले मन्त्रको जप गर्नेको हृदय र जिब्रोलाई भस्म गर्नेछ। त्यसो हुँदा शत्रुलाई मार्न जाँदा आफैं मर्नेछ। यसकारण विचारलाई मन्त्र भनिन्छ। जस्तै राजमन्त्री अर्थात् राजकर्मको विचार गर्ने व्यक्ति। त्यस्तै मन्त्र अर्थात् विचारपूर्वक सृष्टिका सब पदार्थहरूको पहिले ज्ञान, त्यसपछि क्रिया गर्नाले अनेक प्रकारका पदार्थ र क्रियाकौशल उत्पन्न हुन्छन्।

जस्तै एउटा कुनै फलामको बाण वा गोलो बनाएर त्यसमा आगो लगाउनाले, वायुमा धुवाँ फैलिंदा, सूर्यको किरण वा वायुको स्पर्श हुनाले आगो बल्ने किसिमको पदार्थ राखिएमा त्यसैको नाम '**आग्नेयास्त्र**' हुन्छ। कसैले यसलाई निष्क्रिय गर्न चाहेमा '**वारुणास्त्र**' छाड्नुपर्दछ। अर्थात् शत्रुले शत्रुको सेनामाथि आग्नेयास्त्र छोडेर नष्ट गर्न चाहेमा अविलम्ब आफ्नो सेनाको रक्षानिम्ति सेनापतिले वारुणास्त्रले आग्नेयास्त्रलाई निष्क्रिय पार्नुपर्दछ। धुवाँ, वायुको स्पर्श हुनासाथ बादल भएर तुरन्तै वर्षेर आगो निभाउने किसिमका पदार्थको योगबाट वारूणास्त्र बन्दछ। यस्तै '**नागपाश**' अर्थात् शत्रुमाथि छोड्नाले त्यसका अङ्गहरूलाई बाँध्ने, '**मोहनास्त्र**'=नशा गर्ने पदार्थ राखिएको हुनाले यसको धुवाँ लाग्नाले शत्रुको सेना निदाउने वा मूर्छित हुने, आदि किसिमका सबै शस्त्रास्त्र हुन्थे। अनि एउटा तार वा शीसा वा अरू कुनै पदार्थबाट विद्युत् उत्पन्न गरेर शत्रुको नाश गरिने अस्त्रलाई पनि '**आग्नेयास्त्र**' तथा '**पाशुपतास्त्र**' भनिन्छ।

'**तोप**' र '**बन्दुक**' नाम संस्कृत अथवा आर्यावर्त्तीय भाषाको नभई विदेशी भाषाका हुन्। विदेशी नाम तोप र बन्दुकलाई संस्कृत र आर्यभाषामा शतघ्नी र भुशुण्डी भनिन्छ। संस्कृत विद्या नपढेकाहरू भ्रममा परेर मनपरी लेख्ने वा बोल्ने गर्दछन्, त्यस्तोलाई बुद्धिमानहरूले प्रमाण मान्नुहुँदैन। भूगोलमा फैलिएको सबै विद्या आर्यावर्त्त देशबाट मिश्र, त्यहाँबाट यूनान, अनि रोम, त्यहाँबाट यूरोपदेश र यूपोदेशबाट अमेरिका आदि देशमा फैलिएको हो। अहिलेसम्म संस्कृतको धेरै

प्रचार छ र मैक्समूलरले पढेजति संस्कृत अरू कसैले पढेको छैन भन्ने कुरा पनि भनाइ मात्र हो। किनकि '**यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्यो द्रुमायते**' अर्थात् कुनैपनि रूख नभएको ठाउँमा अरिणलाई नै ठूलो रूख मानिन्छ। यस्तै यूरोपमा संस्कृत विद्याको प्रचार नहुनाले जर्मनीहरूले र मैक्समूलरले अलिकति पढेको पनि यूरोपवासीका लागि धेरै भएको हो। तर आर्यावर्त्ततर्फ हेर्ने हो भने तिनको धेरै कम गन्ती हुन्छ। किनकि मैले जर्मन देशमा बस्ने एकजना 'प्रिंसिपलको पत्रबाट जर्मनी देशमा संस्कृत चिठ्ठीको अर्थ गर्नसक्ने धेरै कम छन् भन्ने कुरा थाहा पाएको हुँ र मैक्समूलरको संस्कृत साहित्य र अलिकति वेदव्याख्या हेरेर मलाई 'मैक्समूलरले आर्यावर्त्तीहरूले लेखेका टीकालाई हेरेर केही यताउति गरेर लेखेका हुन् भन्नेकुराको ज्ञान भएको हो।' जस्तै—

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चारन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥'

यस मन्त्रको अर्थ घोडा गरेको छ। योभन्दा त सायणाचार्य्यले सूर्य्य अर्थ गरेकै ठीक छ। तर यसको ठीक अर्थ त परमात्मा हो भन्ने कुरा मैले लेखको '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**' मा हेर्नुहोला। त्यसमा यस मन्त्रको यथार्थ अर्थ गरिएको छ। यत्तिबाट 'जर्मनीदेश र मैक्समूलर साहेबमा कत्ति पाण्डित्य छ' भन्ने कुरा बुझ्नुहोला।

भूगोलमा फैलिएका समस्त विद्या र मत आर्य्यावर्त्त देशबाटै प्रचारित भएका हून् भन्ने कुरा निश्चित हो। हेर! प्यारिस अर्थात् फ्रांसदेश निवासी एकजना **गोल्डस्टर** साहेब आफ्नो '**बायबिल इन इण्डिया**' मा '**सबैविद्या र भलाइको भण्डार आर्यावर्त्त देश हो र सबै विद्या तथा मत यसै देशबाट फैलिएका हुन्**' भन्ने कुरा लेख्तछन् र परमेश्वरसँग प्रार्थना गर्दछन्—'**हे परमेश्वर! जस्तो उन्नति आर्य्यावर्त्त देशको पूर्वकालमा थियो त्यस्तै हाम्रो देशको गरिदिनुहोस्।**' इत्यादि कुराको लागि त्यस ग्रन्थलाई हेर्नुहोला।

बादशाह **दाराशिकोहले** पनि "**जस्तो पूर्णविद्या संस्कृतमा छ, त्यस्तो अरू कुनै भाषामा छैन्**" भन्ने निश्चय गरेका थिए। यो कुराको साथै उनी उपनिषद्को भाषान्तरमा लेख्छन्—"**मैले अरबी आदि धेरैजसो भाषाहरू पढें, तर म सन्देहमुक्त हुन सकिंन। संस्कृतलाई देखेसुने पछि सन्देहमुक्त भई मलाई ठूलो आनन्द प्राप्त भएको छ।**"

हेर, पूर्ण सुरक्षा नभएको भएतापनि काशीको मानमन्दिरमा शिशुमारचक्र कति उत्तम छ र त्यसबाट अझै पनि खगोलसम्बन्धी धेरै कुरा ज्ञात हुन्छन्। सबाई जयपुराधीशले त्यसको संभार र टुटेफुटेको

बनाइदिने गरेमा साह्रै बेस हुने थियो।

तर यस्तो शिरोमणि देशलाई महाभारतको युद्धले यस्तो धक्का दियो कि हालसम्म पनि आफ्नो अघिको अवस्थामा आउन सकेन। दाजु–भाइलाई दाजु–भाइले मार्न थालेपछि नाश त हुने नै भयो।

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥ यो कुनै कविको वचन हो। नाश हुने समय नजिक आएपछि बुद्धि उल्टो भएर उल्टै काम गर्दछन्। तिनलाई कसैले ठीक कुरा सम्झाएमा उल्टो सम्झन्छन् र उल्टो सम्झाए सुल्टो मान्दछन्। महाभारतको युद्धमा धेरै ठूला–ठूला विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षिहरू धेरैजसो मारिएपछि वेदोक्त धर्मको प्रचार नष्ट हुनथाल्यो। परस्परमा सबैमा ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान बढ्नथाल्यो। जो बलवान् थियो त्यसले देशलाई आफ्नो अधीनमा लियो। त्यस्तै सर्वत्र आर्य्यावर्त्त देशमा टुक्रा–टुक्रा राज्य हुन पुगे भने द्वीप–द्वीपान्तरका राज्यको व्यवस्था कसले गरोस्? ब्राह्मणहरू नै विद्याविहीन भएपछि क्षत्रिय, वैश्य र शूद्रहरू अविद्वान् हुने कुरामा के भन्न बाँकी रह्यो र? परम्पराबाटै वेदादिशास्त्रहरूलाई अर्थसहित पढ्ने प्रचार पनि छुट्यो। ब्राह्मणहरूले आफ्नो जीवन धान्नको लागिमात्र वेदादिको पाठमात्र पढ्न थाले भने त्यो पाठमात्र पनि क्षत्रिय आदिलाई पढ्न दिएनन्। किनकि अविद्वान्हरू गुरु भएपछि तिनमा छल, कपट, अधर्म पनि बढ्दै गयो। ब्राह्मणले 'आफ्नो जीविकाको प्रबन्ध गर्नुपर्यो' भन्ने विचार गरे। सम्मतिपूर्वक यस्तै निर्णय गरेर क्षत्रिय आदिलाई—"हामी तिम्रा पूज्यदेव हौं। हाम्रो सेवा नगरी तिमीहरूले स्वर्ग वा मुक्ति पाउने छैनौ। तिमीहरूले हाम्रो सेवा गरेनौ भने घोर नरकमा पर्नेछौ।" आदि उपदेश गर्न थाले। वेद र ऋषिमुनिका शास्त्रमा पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिकहरूलाई नै ब्राह्मण र पूजनीय बताइएकोमा आफू मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मी भएर पनि ब्राह्मणका उक्त लक्षण आफूमा सिद्ध गर्न थाले। त्यस्ता आप्त विद्वान्हरूको लक्षण यस्ता मूर्खहरूमा कसरी घटित हुनसक्तछ र? तर क्षत्रिय आदि यजमानहरू संस्कृत विद्यादेखि पूरै रहित भएपछि तिनका अगाडि जे जे गफै–गफ सुनाए, विचराहरूले जस्ताकोतस्तै मान्न थाले। अनि त यी नाममात्रका ब्राह्मणहरूको भनेजस्तै भयो। सबैलाई आफ्नो वाग्जालमा फँसाएर, वशीभूत गरेर भन्न थाले कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥ अर्थात् ब्राह्मणका मुखबाट निस्केको वचनलाई साक्षात् भगवान्को मुखबाट निस्केको ठान्नुपर्दछ। धन भैकनका अन्धा अर्थात् भित्र विद्याको आँखा फुटेका र प्रशस्त धनवान्

क्षत्रियहरूलाई ती ब्राह्मण नामधारीहरूले 'पृथ्वीमा भएभरका उत्तम पदार्थहरू ब्राह्मणकै निम्ति हुन्' भन्ने पनि प्रचार गरे। अर्थात् गुण, कर्म, स्वभावबाट ब्राह्मण आदि वर्ण व्यवस्थालाई नष्ट गरेर जन्ममा आधारित बनाए र मरेपछि पनि यजमानबाट दान लिन थाले। जस्तो उनीहरूको मनमा आयो, त्यस्तै गर्नथाले। यतिसम्म भन्न थाले कि—'हामी भूदेव=पृथ्वीका देव हौं, हाम्रो सेवाविना कसैलाई पनि देवलोक प्राप्त हुनसक्तैन।' यिनीहरूसँग के सोध्नुपर्दछ भने—'तिमीहरू कुन लोकमा पुग्नेछौ? तिम्रा काम त घोर नरक भोग्नुपर्ने किसिमका छन्, तिमीहरू कीरा फट्याङ्ग्रा, पुतली आदि बन्नेछौ।' त्यसो भन्दा त तिनीहरू अत्यन्त क्रोधित भएर—'हामीले श्राप दियौं भने तिम्रो नाश हुनेछ किनकि शास्त्रमा '**ब्रह्मद्रोही विनश्यति**' ब्राह्मणसँग द्रोह गर्ने व्यक्तिको नाश हुन्छ भने लेखिएको छ' आदि भन्दछन्। अँ, यति त सत्य हो कि सम्पूर्ण वेद र परमात्मालाई जान्ने, धर्मात्मा, सम्पूर्ण जगत्को उपकार गर्ने व्यक्तिसँग कसैले द्वेष गरेमा त्यो अवश्य नष्ट हुन्छ तर जो ब्राह्मण नै होइन त्यस्तालाई ब्राह्मण भन्नु अथवा त्यस्ताको सेवा गर्नु उचित हुँदैन।

प्रश्न—त्यसो भए हामी को हौं त?

उत्तर—तिमीहरू पोप हौ।

प्रश्न—पोप कसलाई भनिन्छ?

उत्तर—रोमन भाषामा त पोप ठूलो र पितालाई भन्दछन् तर अब छलकपटद्वारा अरूलाई ठगेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्नेलाई पोप भनिन्छ।

प्रश्न—हामी त ब्राह्मण र साधु हौं। किनकि हाम्रा बुबा-आमा ब्राह्मण-ब्राह्मणी थिए र हामी फलानो नाम गरेको साधुका चेला हौं।

उत्तर—यो कुरा त सत्य हो। तर जुन, बाबु-आमा, ब्राह्मण-ब्राह्मणी हुँदैमा र कुनै साधुको शिष्य हुँदैमा ब्राह्मण वा साधु भइँदैन। आफ्ना गुण, कर्म, स्वभावबाट र परोपकारी भएर नै ब्राह्मण र साधु भइन्छ। सुनिन्छ—रोमका पोप आफ्ना चेलाहरूसँग 'तिमीले आफ्ना सबै पाप हाम्राअगाडि भन्यौ भने हामी क्षमा गरिदिनेछौं, हाम्रो सेवा र आज्ञाविना कोही पनि स्वर्ग जान सक्तैन, तिमी स्वर्ग जान चाहेमा तिमी हामीकहाँ जति रूपैयाँ जम्मा गर्नेछौ, त्यतिनै मूल्यको सामान तिमीले स्वर्गमा पाउनेछौ।' भन्दथे। यस्तो सुनेर कुनै धन भैकनका अन्धा व्यक्तिले स्वर्गमा जाने इच्छाले पोपजीलाई भनेजति रूपैयाँ दिएमा पोप ईसा र मरियमको मूर्तिसामु उभिएर यस्तो तमसुक (हुण्डी) लेख्तथ्यो—

"हे खुदाबन्द ईसामसी! फलाना मानिसले तिम्रो नाममा लाख रूपैयाँ स्वर्गमा आउनका लागि हामीकहाँ जम्मा गरिसकेको छ। ऊ स्वर्गमा आएपछि तिमीले आफ्ना पिताको स्वर्गको राज्यमा पच्चीस हजार रूपैयाँमा बागबगैंचा र घरबार, पच्चीस हजारमा सवारी, सिकारी र नोकर-चाकर, पच्चीस हजार रूपैयाँमा खान-पान र लत्ता-कपड़ा तथा पच्चीस हजार रूपैयाँ भने यसका इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव आदिको स्वागत-सत्कार (जियाफत) का लागि दिलाइदिनू।" अनि त्यस हुण्डीको मुनि आफ्नो सही गरेर हुण्डी त्यस व्यक्तिलाई दिंदै 'आफ्नो कुटुम्बलाई तिमी मर्नेबेलामा यो तमसुक कबरमा तिम्रो सिरानमा राख्न भनिराख्नू। पछि तिमीलाई लिन देवदूत (फरिश्ते) आउनेछन् र तिमीलाई तथा तिम्रो तमसुकलाई स्वर्गमा लगेर यसमा लेखिएबमोजिम सबैकुरा तिमीलाई दिलाइदिनेछन्' भन्दथे।

अब हेर, स्वर्गको ठेक्का नै पोपजीले लिएको जस्तो छ। जबसम्म यूरोपमा मूर्खता थियो, तबसम्म मात्र त्यहाँ पोपजीको लीला चल्थ्यो तर अब त्यहाँ विद्यावृद्धि भएको हुनाले पोपजीको झूटो लीला त्यति धेरै चल्दैन तर निर्मूल पनि भएको छैन।

त्यस्तै, आर्यावर्त्तमा पनि पोपजीले लाखौं अवतार लिए लीला फैलाएजस्तै सम्झे हुन्छ। अर्थात् राजा-प्रजालाई विद्या पढ्न नदिनु, सत्पुरुषहरूको संगत गर्न नदिनु र रातदिन झुक्याउनेबाहेक यिनीहरूको अरू केही पनि काम छैन। तर 'छलकपट आदि घृणित काम गर्नेहरू नै पोप भनिन्छन्, तिनीहरूभित्र पनि कुनै व्यक्ति धार्मिक, विद्वान्, परोपकारी छन् भने ती सच्चा ब्राह्मण र साधु हुन्' भन्ने कुरा ध्यान राख्नुपर्दछ।

अब 'पोप' भन्नाले मानिसहरूलाई ठगेर आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्ने तिनै छली, कपटी, स्वार्थीहरू र 'ब्राह्मण, साधु' भन्नाले उत्तम पुरुष भन्ने बुझ्नुहोला। हेर, कुनै पनि उत्तम ब्राह्मण वा साधु नभएको भए वेद आदि सत्यशास्त्रका पुस्तक, स्वरसहित पठनपाठन आदिलाई जैन मुसलमान, ईसाई आदिका जालबाट बचाएर आर्य्यहरूलाई वेदादि सत्यशास्त्रमा प्रीतियुक्त वर्णाश्रममा राख्ने काम ब्राह्मण साधुबाहेक कसले गर्न सक्तथ्यो? '**विषादप्यमृतं ग्राह्यम्**' (मनुस्मृति २।२२९) विषबाट पनि अमृत ग्रहण गरिने जस्तै पोपलीलाको बहकाउबाट पनि जैन आदि मतबाट आर्यहरू बचिराख्नु विषमा अमृत जस्तै गुण सम्झनुपर्दछ।

यजमान विद्याहीन भएपछि पोपहरूले केही पाठ-पूजा गरेर घमण्डी भएर परस्पर सम्मति गरेर राजा आदिसँग 'ब्राह्मण र साधु अदण्ड्य'

हुन् भने। हेर, '**ब्राह्मणो न हन्तव्यः**' (महाभाष्य १।२।६४) '**साधुर्न हन्तव्यः**' यस्ता यस्ता सच्चा ब्राह्मण र सच्चा साधुका बारेमा भएका वचनलाई पोपहरूले आफ्नो पक्षमा लगाए। अरू पनि झूठा कुरा भएका ग्रन्थहरू बनाएर तिनमा ऋषिमुनिहरूका नाम राखेर उनैका नामबाट सुनाउन थाले। ती प्रतिष्ठित ऋषिमुनिहरूका नामबाट आफूमाथिका दण्डको व्यवस्था हटाउन लगाए। अनि आफूखुसी गर्न थाले अर्थात्, यस्तायस्ता कडा नियम चलाए जस–अनुसार ती पोपहरूको आज्ञाबेगर सुत्न, उठ्न, बस्न, जान, आउन, खान, पिउन आदि पनि नपाइने भयो। राजाहरूबाट यस्तो निर्णय गराए कि पोप अर्थात् नाम मात्रका ब्राह्मण, साधुले जेसुकै गरेपनि तिनलाई दण्ड दिनुहुन्न अर्थात् मनबाट तीमाथि दण्ड लगाउने विचार गर्नुपनि हुँदैन।

यस्तो मूर्खता फैलिएपछि पोप=पुजारी–पुरेतले जे जस्तो चाहे त्यस्तै गर्न गराउन थाले। यस्तो खराब चालचलन महाभारत युद्धभन्दा एक हजार वर्ष अघिदेखि शुरू भएको थियो, किनकि त्यसबखत पनि ऋषि मुनि त थिए तर मानिसमा बिस्तारै बिस्तारै अलिअलि केही आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेषका अंकुर देखिएर बढ्दैबढ्दै फैलिंदै गए। सच्चा उपदेश नरहेपछि आर्य्यावर्त्तमा अविद्या फैलिएर परस्पर झै–झगडा गर्न थाले। किनकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्धपरम्परा॥

—सांख्यदर्शन ३।७९, ८१

अर्थात्, उत्तम–उत्तम उपदेशक भएमा धर्म, अर्थ, काम र मोक्षको सिद्धि राम्ररी हुन्छ भने उत्तम उपदेशक र श्रोता नभएमा अन्धपरम्परा चल्दछ। फेरि पनि सत्पुरुषहरू जन्मेर सत्योपदेश गर्दछन्, अनिमात्र अन्धपरम्परा नष्ट भएर प्रकाशको परम्परा चल्दछ।

अनि ती पोपहरूले आफ्नो र आफ्ना चरण=पाउको पूजा गराउन र 'यसैमा तिमीहरूको कल्याण हुनेछ' भन्न थाले। यिनीहरू सबै तिनका अधीन भएपछि प्रमाद र विषयासक्तिमा डुब्दै गोठाला जस्तै झूठा गुरु र चेला फस्दै गए। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरता आदि सबै शुभगुण नष्ट हुँदैगए। अनि विषयासक्त भएपछि लुकीलुकी मद्य–मांसको सेवन गर्नथाले।

पछि तिनैमध्येबाट एउटा '**वाममार्ग**' चल्यो। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लेखेर तिनको नाम 'तन्त्र' राखियो। तिनमा यस्ता यस्ता विचित्र लीलाका कुरा लेखिएका छन्—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ १॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥ २॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ३॥
मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥ ४॥
वेशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ५॥

यी नालायक पोपका लीला यति निकृष्ट भए कि वाममार्गीहरूले वेदविरुद्ध महाअधर्मका कामलाई नै श्रेष्ठ माने। मद्य, मांस, माछा, पुरी कचौरी र ठूला ठूला रोट चपाउनु, योनि पात्राधार मुद्रा र पाँचौं मैथुन अर्थात् सबै पुरुषलाई शिव र सबै स्त्रीलाई पार्वती मानेर—'**अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यवयोरस्तु संगमः**' कुनै पनि पुरुष र कुनै पनि स्त्रीले यो मनपरी वाक्य बोलेर परस्पर समागम गर्नमा वाममार्गीहरू दोष मान्दैनन्। अर्थात् स्पर्श गर्न पनि नहुने स्त्रीलाई उनीहरूले अतिपवित्र मानेकाछन्। जस्तै शास्त्रमा रजस्वला आदि भएकी स्त्रीलाई स्पर्श गर्न निषेध छ भने वाममार्गीहरूले त्यस्तीलाई अतिपवित्र मानेका छन्। यिनका उटपटांग श्लोक सुन—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी। चर्मकारी प्रयागः स्याद्राजकी मथुरामता। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ इत्यादि

रजस्वलासँग समागम पुष्करस्नान जस्तै, चाण्डालीसँगको समागम काशीयात्रा सरह, च्यामिनीसँगको समागम प्रयागस्नान जस्तो, धोबिनीसँग समागम मथुरायात्रा जस्तै र कंजरीसँगको लीला अयोध्यातीर्थ गरिएजस्तै हुन्छ।

मद्यको 'तीर्थ', मासुको 'शूद्धि' र 'पुष्प', माछाको 'तृतीया' र 'जलतुम्बिका', मुद्राको 'चतुर्थी' तथा मैथुनको 'पञ्चमी' नाम राखे। अरू कसैले बुझ्न नसकोस् भन्ने उद्देश्यले यस्तायस्ता नाम राखेका हुन्। आफ्ना नाम कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव र गण आदि राखे र वाममार्गमा नहुनेहरूका नाम 'कण्टक' 'विमुख' 'शुष्कपशु' आदि राखे। अनि उनीहरूको भनाइमा भैरवीचक्र हुँदा त्यसमा ब्राह्मणदेखि चाण्डालसम्म सबै वर्णको नाम द्विज हुन्छ र भैरवीचक्रबाट छुटेपछि सबै आ–आफ्नै वर्णमा रहन्छन्॥

भैरवी चक्रमा वाममार्गीहरू भुइँमा वा फलेकमा एउटा विन्दु, त्रिकोण, चतुष्कोण र बाटुलो घेरा बनाएर त्यसमाथि रक्सीको घैंटो राखेर त्यसको पूजा गर्दछन्। अनि यस्तो मन्त्र पढ्दछन्—'**ब्रह्मशापं विमोचथ**' हे मद्य! तँ ब्रह्म आदिको शापरहित बन्। वाममार्गीबाहेक अर्कोलाई पुग्न नदिइने कुनै गोप्य ठाउँमा स्त्री–पुरुष जम्मा हुन्छन्। त्यहाँ पुरुषले कुनै एउटी स्त्रीलाई नाङ्गै पारेर पूजा गर्दछन् र स्त्रीले कुनै पुरुषलाई नाङ्गै गरेर पूज्दछन्। त्यसपछि कोही कसैकी पत्नी, कोही आफ्नै वा अरू कसैकी छोरी, कोही कसैकी वा आफ्नै आमा, दिदी, बहिनी, बुहारी आदि त्यहाँ आउँछन्। अनि एउटा भाँडोमा रक्सी भरेर र मासु, बडा आदिलाई एउटा थालमा राक्तछन्। त्यस रक्सीको भाँडालाई तिनका आचार्यले हातमा लिएर—'**भैरवोऽहम्, शिवोऽहम्**' अर्थात् म भैरव हुँ वा शिव हुँ भनेर पिउँछन्। त्यसपछि त्यसै जुठो भाँडाले सबैले पिउँछन्। अनि जब कसैकी पत्नी वा वेश्यालाई नाङ्गै पारेर अथवा कुनै पुरुषलाई नाङ्गै पारेर हातमा तरवार दिएर त्यस स्त्रीको नाम देवी र पुरुषको नाम महादेव राख्तछन्, तिनका उपस्थ इन्द्रियको पूजा गर्दछन्। त्यसपछि त्यस देवी वा शिवलाई रक्सीको गिलास पियाएर त्यसै जुठो भाँडाले एक–एक भाँडो सबैले पिउँछन्। फेरि त्यसैगरि बारम्बार पिएर उन्मत्त भएर जोसुकैकी बहिनी छोरी वा आमासँग अर्थात्, आफूखुसी जोसुकैसँग जोसुकैले कुकर्म गर्दछन्। कहिलेकाहीं नशा धेरै चढ्नाले जुत्ता, लात, घुस्सा चलाउने वा कपाल लुछ्ने गरेर पनि लड्दछन्। कुनै–कुनैलाई त्यहीं वान्ता हुन्छ। तिनमा सर्वाधिक सिद्ध मानिने अघोरी भन्नेले त्यस वान्तालाई पनि खान्छ। अर्थात् यिनमा सबैभन्दा ठूला सिद्धमा यस्ता कुरा हुन्छन्—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु॥
विराजते कौलवचक्रवर्ती॥

दीक्षित अर्थात् रक्सी व्यापारीकहाँ गएर बोतलमाथि बोतल धोक्न, रण्डीका घरमा गएर तीसँग कुकर्म गरेर त्यहीं रात बिताउने आदि कर्म निर्लज्ज र नि:शङ्क भएर गर्ने व्यक्ति नै वाममार्गीहरूमा सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजासमान मानिन्छ अर्थात् जो जति ठूलो कुकर्मी त्यही तिनमा ठूलो र असल काम गर्ने, खराब कामदेखि डराउने व्यक्ति सानो हुन्छ। किनकि—

पाशबद्धो भवेज्जीव: पाशमुक्त: सदा शिव॥

तन्त्रमा यसो भनिएको छ—लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुलज्जा,

देशलज्जा आदि पाश=बन्धनमा बाँधिएको ''जीव'' र निर्लज्ज भएर कुकर्म गर्ने भने 'सदाशिव' हो।

'उड्डीसतन्त्र' आदिमा एउटा प्रयोग लेखिएको छ। सोअनुसार एउटा घरमा चारैतर्फ खोपैखोपा होऊन्। तिनमा रक्सीका बोतल भरेर राखिदिनु पर्दछ। अनि एउटा खोपाबाट एउटा बोतल पिएर अर्को खोपासम्म, त्यहाँबाट तेस्रोमा, त्यहाँ पिएर चौथोमा यसैगरी लोहोरो ढलेजस्तै पृथ्वीमा नलडेसम्म पिउँदैजानु पर्दछ। नशा उत्रेपछि फेरि त्यसैगरि पिएर लड्नुपर्दछ। अनिफेरि तेस्रोपल्ट यसैगरी पिएर लडेर उठ्ने व्यक्तिको पुनर्जन्म हुँदैन अर्थात्, सत्य त के हो भने यस्ता व्यक्तिको फेरि मनुष्यजन्म हुनै कठिन छ, तर नीच योनिमा परेर धेरै समयसम्म त्यसै दु:ख भोगिरहन्छ।

वाममार्गीहरूको तन्त्रग्रन्थमा एउटा नियम 'एउटी आमा बाहेक कुनैपनि स्त्रीलाई छोड्नु हुँदैन' भन्ने छ। अर्थात् छोरी अथवा बहिनी नै भएपनि सबैसँग सम्भोग गर्नुपर्दछ। यी वाममार्गीहरूमा 'दश महाविद्या' प्रसिद्ध छन्। तीमध्ये एउटा मातङ्गी विद्याका अनुसार '**मातरमपि न त्यजेत्**' अर्थात्, आमासँग पनि सम्भोग नगरी छोड्नु हुँदैन। साथै स्त्री–पुरुषको समागम समयमा 'हामीलाई सिद्धि प्राप्त होओस्' भन्ने मन्त्र जप्तछन्। यस्ता बहुलाहा महामूर्ख व्यक्ति पनि संसारमा थोरै होलान् र?

झूठो कुरा चलाउन चाहनेले सत्यको निन्दा अवश्य गर्दछ। हेर, वाममार्गी के भन्दछन्—'वेद, शास्त्र र पुराण यी सबै सामान्य वेश्याहरू जस्तै हुन् भने वाममार्गको शाम्भवी मुद्रा कुलीन गुप्त स्त्री हो।'

यसैकारण यिनीहरूले वेदविरुद्ध मत चलाएका हुन्। पछि यिनको मत खुब चल्यो। अनि धूर्तता गरेर वेदकै नामबाट पनि वाममार्गको अलि–अलि लीला चलाए। अर्थात्—

'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्। वैदिकी हिंसा न भवति। न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥' —मनु० ५।५६

सौत्रामणी यज्ञमा रक्सी पिउनुपर्दछ। यसको ठीक अर्थ चाहिं—'सौत्रामणी यज्ञमा सोमरस अर्थात् सोमवल्लीको रस पिउनुपर्दछ' हो। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञमा मासु खानमा दोष हुँदैन, यस्ता लाछीपनका कुरा वाममार्गीहरूले चलाएका हुन्। तीसँग के सोध्नुपर्दछ भने वैदिकी हिंसा हिंसा हुँदैन भने तँलाई र तेरा कुटुम्बलाई नै मारेर होम गरेमा के

चिन्ता होला त ? मांसभक्षण, मद्यपान र परस्त्रीगमन आदिमा दोष छैन भन्नु बालकपनका कुरा हुन्। किनकि प्राणीहरूलाई दुःख नपुर्याई मासु पाइँदैन र अपराधबेगर पीडा दिनु धर्मको काम होइन। मद्यपानको त सर्वत्र निषेध नै छ किनकि हालसम्म वाममार्गी का कुनै ग्रन्थमा जाँड–रक्सी पिउने विधान छैन, सर्वत्र निषेध चाहिं छ। विवाहबेगर मैथुनमा पनि दोष हुन्छ। यसलाई निर्दोष भन्ने आफैं दुष्ट हो। वाममार्गीहरूले यस्तायस्ता कुरा पनि ऋषिहरूका ग्रन्थमा हालेर कतिपय ऋषिमुनिहरूका नामबाट ग्रन्थ बनाएर गोमेध, अश्वमेध नामक यज्ञ पनि गराउन थाले। अर्थात् यी पशुहरूलाई मारेर होम गर्नाले यजमान र पशुलाई स्वर्ग प्राप्त हुन्छ भन्ने हल्ला फिंजाए। वास्तवमा त तिनीहरूले ब्राह्मणग्रन्थमा भएका अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दका ठीक–ठीक अर्थ नै जानेनन्, जानेका भए यस्ता अनर्थ किन गर्थे र ?

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दको अर्थ के हो त ?

उत्तर—यिनको अर्थ हो—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। अन्नꣳहि गौः। अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः॥ —शतपथब्राह्मण।

घोडा, गाई आदि पशु तथा मानिसलाई मारेर होम गर्न कतै पनि लेखिएको छैन। यस्तो अनर्थ त मात्र वाममार्गीहरूका ग्रन्थमा लेखेको छ र यो कुरा पनि वाममार्गीहरूले चलाएका हुन् र जहाँ–जहाँ ग्रन्थमा लेखिएको छ भने त्यो पनि वाममार्गीहरूले प्रक्षेप गरेका हुन्। हेर्, राजाले न्याय–धर्मपूर्वक प्रजाको पालन गर्नुपर्दछ, विद्या आदि दिने यजमान र आगोमा घिउ आदिको होम गर्नु 'अश्वमेध', अन्न, इन्द्रियहरू, किरण, पृथ्वी आदिलाई पवित्र राख्नु 'गोमेध' र मानिस मरिसकेपछि त्यसको शरीरको विधिपूर्वक दाह गर्नु 'नरमेध' भनिन्छ।

प्रश्न—यज्ञ गर्नेहरू 'यज्ञ गर्नाले यजमान र पशु स्वर्ग जान्छन् र होम गरेर पशुलाई फेरि जीउँदो गरिन्थ्यो भन्छन्। यो कुरा सत्य हो वा होइन ?'

उत्तर—होइन। स्वर्गमा जान्छन् भने यसो भन्नेलाई मारेर स्वर्ग पुर्याउनुपर्दछ अथवा उसका आमा, बाबु, पत्नी र सन्तान आदिलाई मारेर होम गरेर स्वर्गमा किन पुर्याउँदैनन् ? अथवा वेदीबाट फेरि किन बिउँताउँदैनन् ?

प्रश्न—यज्ञ गर्दा वेदका मन्त्र पढिन्छन्। वेदमा यी कुरा नभएका भए कहाँबाट पढिन्थ्यो र ?

उत्तर—मन्त्र शब्दरूप हुनाले त्यसले कसैलाई पढ्नबाट रोक्तैन। तर तिनको अर्थ पशुलाई मारेर होम गर्नुपर्दछ भन्ने होइन। जस्तै **'अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रको अर्थ अग्निमा हवि, पुष्टि आदि गर्ने, घिउ आदि उत्तम पदार्थको होम गर्नाले वायु, वृष्टि, जल शुद्ध भएर जगत्को सुखकारक हुन्छन्। तर यी सत्य अर्थलाई ती मुर्खहरू सम्झँदैनन् किनकि स्वार्थबुद्धि भएकाहरू आफ्नो स्वार्थबाहेक अरू केही पनि न त जान्दछन्, न मान्दछन्।

यी पोप=पुरेत–पुजारीहरूको यस्तो अनाचार देखेर र अर्को मरिसकेकाको श्राद्ध तर्पण आदि गरिने कुरा देखेर नै वेदादिशास्त्रको भयंकर निन्दा गर्ने बौद्ध, जैनमत प्रचलित भएका हुन्। यस्तो सुनिन्छ कि यसै देशमा एउटा गोरखपुरको राजा थियो। उसले पोप=पुरेत–पुजारीहरूबाट यज्ञ गरायो। ती पोपहरूले उसकी प्रिया रानीको समागम घोडासँग गराउनाले रानी मरेपछि राजा वैराग्यवान् भएर, आफ्नो छोरालाई राज्य सुम्पिएर, साधु भएर, पोपहरूको पोल खोल्न थाल्यो। यसैको शाखारूप चारवाक र आभाणक मत पनि चलेको थियो। तिनीहरूले यस्ता श्लोक बनाएकाछन्—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते॥ १॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥ २॥

पशुलाई मारेर अग्निमा होम गर्नाले पशु स्वर्ग जान्छ भने यजमान आफ्ना पिता आदिलाई मारेर किन स्वर्ग पठाउँदैनन् ? मरेका मानिसको लागि श्राद्ध र तर्पण हुन्छ भने विदेश जाने व्यक्तिको निम्ति बाटो खर्च र खान–पान व्यवस्था गर्नु व्यर्थै हो। किनकि मृतकलाई श्राद्ध, तर्पणबाट अन्न जल पुग्दछ भने बाँचेकै विदेशतिर हिंडेका या बसेका व्यक्तिको घरमै तैयार भएको खानाबाट टपरीमा पस्केर पानीको लोटा भरेर उसको नाममा राख्नाले किन पुग्दैन ? बाँचेकै टाढा देश वा दश हात जति टाढा बसेकोलाई दिएर पुग्दैन भने मृतकसम्म त कुनै तरिकाले पनि पुग्नसक्तैन।

उनका यस्ता युक्तियुक्त उपदेश मान्न थाले र उनको मत बढ्न थाल्यो। धेरैजसो राजा र भूमिपतिहरू पनि तिनकै मतमा लागेका देखेर पोपजी=पुरेत–पुजारीहरू पनि त्यतैतर्फ लागे किनकि ती त जता बढी प्राप्त हुन्छ त्यतै जाने भइहाले। तुरुन्तै जैन बन्न पुगे। जैनमा पनि

विभिन्न प्रकारका पोपलीला धेरै छन्, त्यो बाह्रौं समुल्लासमा लेखिनेछ। धेरैले यिनको मतलाई स्वीकार गरे तर पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम र दक्षिणदेशवासीहरूले जैनमत स्वीकार गरिसकेका थिएनन्। ती जैनीहरू वेदको अर्थ नजान्ने हुनाले बाहिरका पोपलीलालाई भ्रान्तिले वेदकै कुरा मानेर वेदको पनि निन्दा गर्नथाले। वेदका पठन–पाठन, यज्ञोपवीत आदि र ब्रह्मचर्यादिका नियमलाई पनि नष्ट गरे। जहाँ जति पुस्तक वेदादिका फेला परे, नष्ट गरे। आर्य्यहरूमाथि धेरैजसो राजसत्ता पनि चलाए र दुःख दिए। तिनीहरूलाई भय र शंका नरहेपछि आफ्नो मतका गृहस्थ र साधुहरूको प्रतिष्ठा र वेदमार्गीहरूको अपमान गर्नुको साथै पक्षपातपूर्वक दण्ड पनि दिन थाले। आफू भने सुख, आराम घमण्डले परिपूर्ण भई डुल्न थाले। ऋषभदेवदेखि महावीरसम्म आफ्ना तीर्थंकरहरूका ठूला–ठूला मूर्ति बनाएर पूजा गर्नथाले अर्थात्, ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजाको मूलजरो जैनीहरूबाट सुरु भएको हो। परमेश्वरलाई मान्न कम भयो, ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजा बढ्न थाल्यो। यसरी तीनसय वर्षसम्म आर्यावर्त्तमा जैनीहरूको शासन रह्यो। वेदार्थज्ञानबाट प्रायः सबै नै शून्य भैसकेका थिए। यस कुराको अनुमानतः साढे दुईहजार वर्ष व्यतीत भयो होला।

बाईससय वर्षअघि शङ्कराचार्यनामक द्रविडदेशमा जन्मेका ब्राह्मणले ब्रह्मचर्यपूर्वक व्याकरण आदि सबै शास्त्रलाई पढिसकेपछि सोच्न थाले—

'अहो! सत्य आस्तिक वेदमत हटेर नास्तिक जैनमत प्रचलित हुनु ठूलो हानिको कुरो भएको छ। यिनलाई कुनै तरिकाले हटाउनुपर्दछ' शङ्कराचार्यले शास्त्र त पढेकै थिए तर जैनमतका पुस्तक पनि पढेका थिए। अनि उनको युक्ति पनि धेरै प्रबल हुन्थ्यो। उनले यिनलाई कसरी हटाऊँ? भन्ने निश्चय गरे र यस्तो विचार गरेर उनी उज्जैन नगरमा आए। त्यस समय त्यहाँ सुधन्वा राजा थियो, उसले जैनीहरूका ग्रन्थ र केही संस्कृत पनि पढेको थियो। त्यहाँ गएर शङ्कराचार्यले वेदको उपदेश गर्नथाले तथा राजासँग भने—तपाईले संस्कृत तथा जैनीहरूका ग्रन्थ पढ्नुभएकै छ र जैनमत मान्नुहुन्छ। अतः म भन्दछु तपाईं मेरो शास्त्रार्थ जैनीहरूका पण्डितहरूसँग गराउनुहोस्। प्रतिज्ञा के हुनेछ भने हार्नेले जित्नेको मत स्वीकार गर्नुपर्नेछ र तपाईंले पनि जित्नेकै मत स्वीकार गर्नु उचित हुनेछ।

सुधन्वा जैनमतमा भएतापनि संस्कृत ग्रन्थ पढेका हुनाले उनको बुद्धिमा केही विद्याको प्रकाश थियो र उनको मनमा अत्यन्त पशुता

छाएको थिएन। विद्वान् व्यक्ति सत्य र असत्य को परीक्षा गरेर सत्यलाई ग्रहण गर्दछ भने असत्यलाई त्यागिदिन्छ। सुधन्वा राजालाई ठूलो विद्वान् उपदेशक नमिलेसम्म उनी कुन सत्य हो र कुन चाहिं असत्य हो भन्ने सन्देहमा थिए। शङ्कराचार्यको यो कुरा सुनेपछि उनले बडो प्रसन्नतासाथ 'म शास्त्रार्थ गराएर सत्य र असत्यको निर्णय अवश्य गराउँनेछु' भने।

टाढा टाढादेखि जैनीहरूका पण्डितहरूलाई बोलाएर सभा गराए। त्यसमा शङ्कराचार्यको वेदमत र जैनीहरूको वेदविरुद्ध मत थियो अर्थात् शङ्कराचार्यको पक्ष वेदमतको स्थापना र जैनीहरूको खण्डन थियो। कैयौं दिनसम्म शास्त्रार्थ भयो। जैनीहरूको मत थियो—सृष्टिको कर्त्ता कुनै अनादि ईश्वर होइन, यो जगत् र जीव अनादि हुन्। यी दुवैको उत्पत्ति र नाश कहिल्यै हुँदैन। यसको विपरीत शङ्कराचार्यको मत थियो—अनादि सिद्ध परमात्मा नै जगत्को कर्त्ता हो, उही धारण र प्रलय गर्दछ। यो जीव र प्रपञ्च स्वप्न जस्तै मिथ्या हो। परमेश्वर आफैं सब रूप भएर लीला गरिरहेछ।

धेरै दिनसम्म शास्त्रार्थ चल्यो। अन्तमा युक्ति र प्रमाणद्वारा जैनीहरूको मत खण्डित भयो भने शङ्कराचार्यको मत अखण्डित रह्यो। अनि ती सबै जैनीहरूले र राजा सुधन्वाले जैनमत त्यागेर वेदमत स्वीकार गरे। ठूलो खैलाबैला मच्चियो। सुधन्वा राजाले अरू आफ्ना इष्टमित्र राजाहरूलाई पत्र लेखेर शङ्कराचार्यसँग शास्त्रार्थ गराए र समयको अवस्थाले जैनीहरू पराजित हुँदैगए। पछि सुधन्वा आदि राजाहरूले शङ्कराचार्यको सुरक्षाका लागि नोकर–चाकर राखेर आर्यावर्त्तदेशमा सर्वत्र घुम्ने व्यवस्था पनि गरिदिए। त्यसै समयदेखि सबैका यज्ञोपवीत हुनथाले र वेदको पठन–पाठन पनि हुनथाल्यो। दर्सवर्षभित्र आर्यावर्त्तदेशमा सर्वत्र घुमेर जैनीहरूको खण्डन र वेदको मण्डन गरे। तर शङ्कराचार्यको समयमा जैन विध्वंस अर्थात् जति मूर्त्तिहरू जैनीहरूका निस्कन्छन् ती शङ्कराचार्यकै समयमा फुटाइएका थिए। सिङ्गै निस्कने मूर्तिहरू भने जैनीहरूले नफुटाइयून् भन्ने सोचेर भूमिमा गाडेका थिए। तिनै अब कतै भूमिबाट निक्लिएका हुन्। शङ्कराचार्यभन्दा अघि शैवमतको पनि अलि–अलि प्रचार थियो। उनले त्यसको पनि खण्डन गरे। वाममार्गको खण्डन गरे। त्यस बेला यस देशमा धन धेरै थियो र स्वदेशभक्ति पनि थियो। जैनीहरूका मन्दिरमा वेदादिको पाठशाला बनाउने इच्छाका कारण शङ्कराचार्य र सुधन्वाले ती मन्दिर भत्काउनबाट रोकेका थिए। वेदमतको स्थापना भैसकेपछि शङ्कराचार्य विद्या प्रचारको

विचार गर्दै थिए, त्यसैताका दुईजना नाममात्र वेदमत मान्ने र भित्रबाट कट्टर जैनी अर्थात् कपटमुनिले, शङ्कराचार्यलाई आफूप्रति प्रसन्न र विश्वस्त गराएर र मौका छोपेर शङ्कराचार्यलाई यस्तो विषयुक्त वस्तु ख्वाए जसबाट उनको भोक कम हुँदै गयो र पछि शरीरमा लुतो–खटिरा आदि भएर छ महिनाभित्र शङ्कराचार्यको शरीर छुट्यो। त्यसबाट सबै निरुत्साहित भए र जति विद्याको प्रचार हुने आशा थियो त्यो पनि हुन पाएन। शङ्कराचार्यले लेखेका शारीरकभाष्य आदिको प्रचार उनका शिष्यहरूले गर्नथाले। अर्थात्, जैनीहरूको खण्डनका लागि उनले जो ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या र जीव ब्रह्मको एकताकथन गरेका थिए, त्यसैको उपदेश उनका शिष्यहरू गर्न थाले। दक्षिणमा शृङ्गेरी, पूर्वमा भूगोवर्द्धन, उत्तरमा जोशी र द्वारिकामा शारदामठ बनाएर शङ्कराचार्यका शिष्य महन्त बनेर श्री सम्पत्तियुक्त भएर आनन्द गर्नथाले किनकि शङ्कराचार्यपछि उनका शिष्यहरूको ठूलो प्रतिष्ठा हुन थाल्यो।

अब यसमा विचारणीय कुरा के छ भने जीव र ब्रह्मको एकता र जगत् मिथ्या भन्ने कुरा शङ्कराचार्यलाई स्वीकार्य मत थियो भने त्यो ठीक होइन। जैनीहरूको खण्डनका निमित्त त्यस मतको प्रतिपादन गरिएको भए केही ठिकै छ। नवीन वेदान्तीहरूको मत यस्तो छ—

प्रश्न—जगत् स्वप्न जस्तै, डोरीमा सर्प, सीपीमा चाँदी, मृगतृष्णिकामा जल, गन्धर्वनगर र इन्द्रजालजस्तै यो संसार झूटो हो। एकमात्र ब्रह्म सच्चा हो।

सिद्धान्ती—तिमी कसलाई झूटो भन्दछौ ?

नवीन वेदान्ती—नभएको वस्तु प्रतीत हुन्छ भने त्यसलाई झूटो भनिन्छ।

सिद्धान्ती—हुँदै नभएको वस्तुको प्रतीति कसरी हुनसक्तछ ?

नवीन०—अध्यारोपद्वारा।

सिद्धान्ती—अध्यारोपन कसलाई भन्दछौ ?

नवीन०—**'वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः'**॥ **'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते'** अरू नै कुनै पदार्थमा अर्कै वस्तुको आरोपण गर्नु **'अध्यास'**, अध्यारोप र त्यसको निराकरण गर्नु अपवाद हुन्छ। यी दुवैबाट प्रपञ्चरहित ब्रह्म प्रपञ्चरूप जगत्को विस्तार हुन्छ।

सिद्धान्ती—तिमी डोरीलाई वस्तु र सर्पलाई अवस्तु सम्झेर यस भ्रमजालमा परेका छौ। के सर्प वस्तु होइन ? डोरीमा सर्प छैन भन्छौ भने देशान्तर=अर्कै ठाउँमा र उसको संस्कारमात्र हृदयमा छ भने त्यो

सर्प पनि अवस्तु रहेन। त्यस्तै ठुटोमा मानिस, सीपीमा चाँदी आदिको कुरा पनि बुझ्नुपर्दछ। अनि जुन वस्तुको स्वप्नमा पनि भान हुन्छ भने त्यो वस्तु देशान्तरमा अवश्य हुन्छ र त्यसको संस्कार आत्मामा पनि हुन्छ। यसकारण त्यो स्वप्न पनि वस्तुमा अवस्तु को आरोपणजस्तो होइन।

नवीन०—आफ्नै टाउको काटिएको र आफू रोइरहेको, पानीको धारा मास्तिर गएको जस्तो कहिल्यै नदेखेको, नसुनेको र कहिल्यै नभएको कुरा स्वप्नमा देखिन्छ, त्यो सत्य कसरी हुन सक्तछ र ?

सिद्धान्ती—यो दृष्टान्तले पनि तिम्रो पक्षलाई सिद्ध गर्दैन, किनकि नदेखी, नसुनी संस्कार बन्दैन। संस्कारविना स्मृति र स्मृतिविना साक्षात् अनुभव हुँदैन। कसैले फलानाको टाउको काटियो भन्ने देखेको वा सुनेको त्यसका बन्धुबान्धव वा पिता आदिलाई लडाइँमा प्रत्यक्ष रोएको देखेको र फोहोरा आदिको पानीको धारा मास्तिर चलेको देखेको वा सुनेको भए त्यसको संस्कार त्यसैको आत्मामा हुन्छ। यस जाग्रतका पदार्थ देखि अलग भएर अर्थात् स्वप्नमा आफ्नो आत्मामा तिनै पदार्थलाई देख्तछ, जुन वस्तुलाई देखेको वा सुनेको हुन्छ। आफैंभित्र देख्ता आफ्नो शिर काटिएको, आफैं रोइरहेको र मास्तिर चलेको पानीको धारालाई देख्तछ भन्ने बुझ्नुपर्दछ। यो पनि वस्तुमा अवस्तुको आरोप जस्तो होइन तर जसरी नक्सा बनाउनेले अघि नै देखेको, सुनेको वा गरेकोलाई आत्माबाट निकालेर कागजमा लेख्तछ अथवा, प्रतिबिम्ब उतार्ने व्यक्ति बिम्बलाई हेरेर आत्मामा आकृतिलाई राखेर त्यस्तै लेख्तछ। अँ, यति अवश्य हो कि कहिलेकाहीं स्वप्नमा स्मरण रहेका कुराको प्रतीति जस्तै अध्यापकलाई देख्नु आदि हुन्छ भने कहिले चाहिं धेरै अघि देखेसुनेको अतीतको ज्ञानको साक्षात्कार हुन्छ। त्यस समय 'मैले कुनै बेला देखेसुनेकै कुरा अहिले देख्दै, सुन्दै वा गर्दैछु' भन्ने याद रहँदैन। जसरी जाग्रत अवस्थामा स्मरण हुन्छ, त्यस्तै नियमपूर्वक स्वप्नमा हुँदैन। हेर, जन्मदेखि नै अन्धोलाई रूपको स्वप्न आउँदैन। यसकारण तिम्रो अध्यास र अध्यारोपको लक्षण झूटो हो र वेदान्तीहरूले ब्रह्ममा जगत्को भान हुने कुरामा दिएको विवर्त्तवाद अर्थात् डोरी आदिमा सर्प आदिको आभास हुने दृष्टान्त पनि ठीक होइन।

नवीन०—अधिष्ठानविना अध्यस्तको प्रतीति हुँदैन। जस्तै डोरी नभई सर्पको पनि भान हुन सक्तैन। जस्तै डोरीमा सर्प तिनै कालमा छैन तर अँध्यारो र केही उज्यालो हुँदा अपर्झट डोरीलाई देख्नाले

व्यक्तिलाई ऊ सर्पको भ्रम भएर भयले काँप्तछ। दीपक आदिबाट त्यसलाई देख्नेबित्तिकै भ्रम र भय हट्तछ। त्यस्तै ब्रह्ममा जगत्को मिथ्या प्रतीति भएकोमा ब्रह्मको साक्षात्कार भएपछि सर्पको निवृत्ति र डोरीको प्रतीति भएजस्तै जगत्को निवृत्ति भएर ब्रह्मको प्रतीति हुन्छ।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममा जगत्को भान कसलाई हुन्छ?

नवीन०—जीवलाई।

सिद्धान्ती—जीव कहाँबाट आयो?

नवीन०—अज्ञानबाट।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहाँबाट आउँछ र कहाँ रहन्छ?

नवीन०—अज्ञान अनादि छ र ब्रह्ममा रहन्छ।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममा ब्रह्मकै अज्ञान हुन्छ वा अरू कसैको? अनि त्यो अज्ञान कसलाई हुन्छ?

नवीन०—चिदाभासलाई।

सिद्धान्ती—चिदाभासको स्वरूप के हो?

नवीन०—ब्रह्म। ब्रह्मलाई ब्रह्मकै अज्ञान हुन्छ अर्थात् आफ्नो स्वरूपलाई आफैं बिर्सन्छ।

सिद्धान्ती—उसले बिर्सनमा कारण के हो?

नवीन०—अविद्या

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी, सर्वज्ञको गुण हो वा अल्पज्ञको?

नवीन०—अल्पज्ञको।

सिद्धान्ती—त्यसोभए तिम्रो मतमा एक अनन्त सर्वज्ञ चेतनबाहेक अर्को कुनै चेतन छ वा छैन? र अल्पज्ञ कहाँबाट आयो? अर्थ, अल्पज्ञ चेतनलाई ब्रह्मभन्दा भिन्नै मान्दछौ भने ठीकै छ। एउटै ठाउँको ब्रह्मलाई आफ्नो स्वरूपको अज्ञान हुन्छ भने सर्वत्र अज्ञान फैलिनेछ। जसरी शरीरको कुनै अङ्गमा हुने खटिरोको दु:ख शरीरका सबै अवयवहरूलाई काम नलाग्ने बनाउँछ, त्यसैगरी ब्रह्म पनि एक ठाउँमा अज्ञानी र क्लेशयुक्त हुनाले पूरै ब्रह्म पनि अज्ञानी र दु:खको अनुभव गर्ने हुनेछ।

नवीन०—यो सब उपाधिको धर्म हो, ब्रह्मको होइन।

सिद्धान्ती—उपाधि जड, चेतन, सत्य वा असत्य के छ?

नवीन०—अनिर्वचनीय छ। अर्थात् यसलाई जड, चेतन, सत्य वा असत्य केही भन्न मिल्दैन।

सिद्धान्ती—तिम्रो यो कथन '**वदतो व्याघात**' जस्तै हो। किनकि अविद्या भन्दछौ र त्यसलाई जड-चेतन, सत्य-असत्य भन्न मिल्दैन

भन्छौ। तिम्रो यो कुरो पीत्तल मिसिएको सुनलाई बाँडाकहाँ लगेर यो सुन हो वा पीत्तल हो भनी परीक्षण गराउँदा बाँडाले 'न त यो सुन हो न पीत्तल नै हो, यसमा त दुबै धातु मिलेका छन्' भनेजस्तै भयो।

नवीन०—हेर, घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश र महदाकाश उपाधि अर्थात् घैंटो, घर र बादल हुँदा ती छुट्टाछुट्टै प्रतीत हुन्छन् तर वास्तवमा त महदाकाश नै भएजस्तै माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि र अन्त:करणका उपाधिबाट अज्ञानीहरूलाई ब्रह्म पृथक्-पृथक् प्रतीत भैरहेछ, वास्तवमा त एउटै छ। निम्न प्रमाणलाई हेर—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

—कठोपनिषद् ५।९

अग्नि सानाठूला, लामा-फराक, बाटुला सबै आकृतिका पदार्थमा व्यापक भएर त्यसकै आकृतिको देखिने तर तीभन्दा छुट्टै भएजस्तै सर्वव्यापक परमात्मा अन्त:करणमा व्यापक भएर अन्त:करणाऽऽकार भैरहेछ तर तीभन्दा छुट्टै छ।

सिद्धान्ती—तिम्रो यो कथन पनि व्यर्थै हो किनकि तिमीले घट, मठ, मेघ र आकाशलाई छुट्टै मानेजस्तै कारणकार्य्यरूप जगत् र जीवलाई ब्रह्म भन्दा तथा ब्रह्मलाई यीभन्दा छुट्टै मान्नुपर्दछ।

नवीन०—अग्नि सबैमा प्रविष्ट भएर तदाकार देखिएजस्तै परमात्मा जड र जीवमा व्यापक भएर आकारवान् अज्ञानीहरूलाई आकारयुक्त देखिन्छ, वास्तवमा ब्रह्म न जड हो, न जीव हो। जस्तै हजारौं पानीका कुण्ड राखिएमा तिनमा सूर्यका हजारौं प्रतिबिम्ब देखिन्छन्, वास्तवमा त सूर्य एउटै हो। कुण्ड नष्ट हुनाले, पानी हल्लिनाले वा पोखिनाले=फैलिनाले सूर्य न त नष्ट हुन्छ, न हल्लिन्छ, न फैलिन्छ। यसैगरी अन्त:करणमा ब्रह्मको आभास परेको छ, यसलाई चिदाभास भनिन्छ। अन्त:करण रहेसम्म जीव छ, ज्ञानद्वारा अन्त:करण नष्ट हुँदा जीव ब्रह्मस्वरूप नै हो। यस चिदाभासलाई आफ्नो ब्रह्मस्वरूपको अज्ञान कर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दु:खी, पापी, पुण्यात्मा, जन्म, मरण आफूमा आरोपित गर्दछ। तबसम्म संसारका बन्धनबाट छुट्तैन।

सिद्धान्ती—सूर्य आकारयुक्त, जलका कुण्ड पनि आकारयुक्त हुनाले सूर्य जलकुण्डभन्दा र जलकुण्ड सूर्यभन्दा छुट्टै हुनाले तिनको प्रतिबिम्ब हुनेहुँदा तिम्रो यो दृष्टान्त व्यर्थै छ। यी निराकार भएका भए यिनको प्रतिबिम्ब कहिल्यै हुनसक्ने थिएन। परमेश्वर भने निराकार,

सर्वत्र आकाशजस्तै व्यापक हुनाले ब्रह्मभन्दा कुनै पदार्थ र पदार्थभन्दा ब्रह्म छुट्टै हुनसक्तैन र व्याप्य–व्यापक सम्बन्धका कारण एउटै पनि हुनसक्तैन। अर्थात्, अन्वयव्यतिरेकभावबाट हेर्दा व्याप्य–व्यापक सम्बन्धका कारण एउटै पनि हुनसक्तैन। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभावबाट हेर्दा व्याप्य–व्यापक सम्बन्धले मिलेका र सदा छुट्टै छन्। यो सबै एउटै भएमा व्याप्य–व्यापक भाव सम्बन्ध कहिल्यै घटित हुनसक्तैन। यो कुरा बृहदारण्यकोपनिषद्‌को अन्तर्यामी ब्राह्मण (३।७) मा स्पष्ट लेखिएको छ। ब्रह्मको आभास पर्न पनि सक्तैन किनकि आकारविना आभास हुन असम्भव हुन्छ। अन्त:करणोपाधिबाट ब्रह्मलाई जीव मान्दछौ भने यो तिम्रो बालककै जस्तो कुरा हो, किनकि अन्त:करण चलायमान, खण्ड–खण्ड र ब्रह्म भने अचल र अखण्ड छ। ब्रह्म र जीवलाई छुट्टाछुट्टै मान्दैनौ भने जहाँजहाँ अन्त:करण जानेछ त्यहाँ–त्यहाँको ब्रह्मलाई अज्ञानी र जुन–जुन ठाउँलाई छोड्दै जानेछ त्यहाँ–त्यहाँको ब्रह्मलाई ज्ञानी बनाउने छ वा छैन? प्रकाशको बीचमा जहाँ जहाँ छाता हुन्छ, त्यहाँ–त्यहाँको प्रकाशलाई आवरणयुक्त र जहाँ–जहाँबाट छाता हट्तैजान्छ त्यहाँ–त्यहाँको प्रकाश आवरणरहित त्यस छाताले गर्दछ। त्यस्तै ब्रह्मलाई अन्त:करणले क्षण क्षणमा ज्ञानी, अज्ञानी, बद्ध र मुक्त पारिरहनेछ। चेतन हुनाले अखण्ड ब्रह्मको एक ठाउँको आवरणको प्रभाव सबै ठाउँमा हुनेहुँदा सम्पूर्ण ब्रह्म अज्ञानी हुनेछ। अर्को कुरा, मथुरामा जुन अन्त:करणस्थ ब्रह्मले जुन वस्तु देखेको थियो, त्यसको स्मरण त्यसै अन्त:करणस्थ ब्रह्मबाट काशीमा हुनसक्तैन। किनकि **'अदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्'** अरूले देखेको कुराको स्मरण अर्कैलाई हुँदैन। जुन चिदाभासले मथुरामा देखेको थियो त्यो चिदाभास काशीमा रहँदैन र जो मथुरास्थ अन्त:करणको प्रकाश छ त्यो काशीस्थ ब्रह्म हुँदैन। फेरि ब्रह्म नै जीव हो र छुट्टै होइन भने जीवले सर्वज्ञ हुनुपर्दछ। ब्रह्मको प्रतिबिम्ब छुट्टै छ भने प्रत्यभिज्ञा अर्थात् अघि देखे–सुनेका कुराको ज्ञान कसैलाई हुनसक्नेछैन। ब्रह्म एउटै हुनाले स्मरण हुन्छ भन्छौ भने एक ठाउँमा अज्ञान वा दु:ख हुँदा सबै ब्रह्मलाई अज्ञान वा दु:ख हुनुपर्दछ। यस्तायस्ता दृष्टान्तहरूबाट तिमीहरूले नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्मलाई अशुद्ध, अज्ञानी र बद्ध आदि दोषयुक्त बताउनुको साथै अखण्डलाई खण्ड–खण्ड मानेकाछौ।

नवीन०—दर्पण वा पानी आदिमा आकाशको आभास भएजस्तै

निराकारको पनि आभास हुन्छ। त्यो नीलो वा अरू कुनै किसिमको गम्भीर गहिरो देखिन्छ। त्यस्तै ब्रह्मको पनि सबै अन्त:करणमा आभास हुन्छ।

सिद्धान्ती—निराकार आकाशलाई आँखाले कसैले पनि देख्नसक्तैन। देखिंदै नदेखिने वस्तु दर्पण वा जल आदिमा कसरी देखिनसक्छ? गहिरो वा धमिलो देखिने साकार वस्तु हो, निराकार होइन।

नवीन०—त्यसोभए माथि नीलो जस्तो देखिने र ऐना वा पानीमा भान हुने पदार्थ के हो?

सिद्धान्ती—ती पृथ्वीबाट उडेका जल, पृथ्वी र अग्निका त्रसरेणु हुन्। जहाँबाट वर्षा हुन्छ, त्यहाँ पानी नभए वर्षा कहाँबाट हुने? यसकारण टाढा टाढा पाल जस्तै देखिने जलको चक्र हो। जसरी कुहिरो टाढाबाट घनाकार र [illegible] पातलो उडेको जस्तो देखिन्छ त्यस्तै आकाशमा पानी देखिन्छ।

नवीन०—के डोरी, सर्प, सपना आदिका हाम्रा दृष्टान्त मिथ्या हुन्?

सिद्धान्ती—दृष्टान्त मिथ्या होइन, तिम्रो समझ चाहिं मिथ्या हो। यो कुरा हामीले अघि लेखिसक्यौं। पहिले अज्ञान कसलाई हुन्छ भन्ने कुरा त भन?

नवीन०—ब्रह्मलाई।

सिद्धान्ती—ब्रह्म अल्पज्ञ छ वा सर्वज्ञ?

नवीन०—न सर्वज्ञी, न अल्पज्ञ। किनकि उपाधिसहितमा नै सर्वज्ञता र अल्पज्ञता हुन्छ।

सिद्धान्ती—उपाधिसहित को छ?

नवीन०—ब्रह्म।

सिद्धान्ती—त्यसो भए ब्रह्म नै सर्वज्ञ अल्पज्ञ भयो, अनि तिमीले सर्वज्ञ र अल्पज्ञको निषेध किन गरेका थियौ? उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या हो भन्छौ भने कल्पक=कल्पना गर्ने को हो?

नवीन०—जीव ब्रह्म नै हो अथवा अरू कुनै हो?

सिद्धान्ती—अरू नै हो। ब्रह्मस्वरूप भएर मिथ्याकल्पना गर्दछ भने त्यो ब्रह्मनै हुन सक्तैन। मिथ्याकल्पना गर्ने कहिले सच्चा हुन सक्तछ र?

नवीन०—हामी त सत्य, असत्य दुबैलाई मिथ्या मान्दछौं, वाणीले

बोल्नु पनि मिथ्या नै हो।

सिद्धान्ती—तिमी झूट बोल्दछौ र मान्दछौ भने झूठा किन भएनौ ?

नवीन०—पख, झूट र सत्य हामीभित्रै कल्पित हो र हामी भने दुबैका साक्षी अधिष्ठान हौं।

सिद्धान्ती—तिमी सत्य र झूठका आधारहौ भने तिमीनै साहुकार र चोर जस्तै भयौ।

यसोहुँदा तिमी प्रामाणिक पनि रहेनौ ? किनकि सदासर्वदा सत्य मान्ने, सत्य बोल्ने, झूट नमान्ने, झूट नबोल्ने र कहिल्यै झूट नगर्ने नै प्रामाणिक हुन्छ। आफ्नै कुरालाई आफैं झूटो बनाउँछौ भने तिमी अनाप्त मिथ्यावादी हौ।

नवीन०—ब्रह्मको आश्रय लिएर ब्रह्मकै आवरण गर्ने अनादि मायालाई मान्दछौ वा मान्दैनौ ?

सिद्धान्ती—मान्दैनौं। नभएको वस्तु हृदयमा भासमान हुने भनिएको तिम्रो मायालाई भित्री आँखा फुटेकाले नै मान्नेछ। किनकि बाँझीका छोराको प्रतिबिम्ब कहिल्यै हुन नसकेजस्तै नभएको वस्तु भासमान हुनैसक्तैन, सर्वथा असम्भव हुन्छ। अनि तिम्रो यो कुरा **'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः'** इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद्का वचनको विरुद्ध पनि हो।

नवीन०—के तिमी वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि र निश्चलदाससम्म भएका तिमीभन्दा ठूला पण्डितहरूले लेखेका कुराको पनि खण्डन गर्दछौ ? हामीलाई त वसिष्ठ, शङ्कराचार्य र निश्चलदास आदि ठूला लाग्छन् ?

सिद्धान्ती—तिमी विद्वान् हौ वा अविद्वान् ?

नवीन०—हामी पनि केही विद्वान् हौं।

सिद्धान्ती—त्यसोभए वसिष्ठ, शङ्कराचार्य र निश्चलदासको पक्ष हाम्रो सामु स्थापित गर, हामी त्यसको खण्डन गर्दछौं। जसको पक्ष सिद्ध हुन्छ, उही ठूलो ठहर्नेछ। तिनको र तिम्रो कुरा अखण्डनीय भएको भए तिमी तिनका युक्तिहरूलाई लिएर हाम्रा कुराको खण्डन किन गर्नसक्तैनौ ? अनिमात्र तिम्रा र उनका कुरा मान्य हुनेथिए।

शङ्कराचार्य आदिले त जैनीहरूको मतको खण्डन गर्नका निम्ति यो मत स्वीकार गरेका होलान् भन्ने अनुमान छ। किनकि देश, कालअनुसार आफ्नो पक्षलाई सिद्ध गर्न धेरैजसो स्वार्थी विद्वान् आफ्नो आत्माको ज्ञान–विरुद्ध पनि कामकुरा गर्दछन्। अनि उनी यी कुराहरूलाई

अर्थात् जीव–ईश्वर एउटै हुन्, जगत् मिथ्या हो भन्ने व्यवहारलाई सच्चा मान्दथे भने उनको कुरा सत्य हुनसक्तैन।

निश्चलदासको पाण्डित्य त यस्तो छ—**'जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेत–नत्वात्'** उनले यो **'वृत्ति प्रभाकर'** (२।९) मा जीव र ब्रह्मको एकताका लागि अनुमान लेखेका हुन्—'जीव चेतन हुनाले ब्रह्मभन्दा अभिन्न छ। यो कुरा अत्यन्त थोरै समझ भएकाहरूको जस्तै हो। किनकि साधर्म्यले मात्र एक–अर्कासँग एकता हुँदैन, वैधर्म्य भेदक हुन्छ। जस्तै कसैले **'पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्'** जड हुनाले पृथ्वी जलभन्दा अभिन्न हो। जसरी यो वाक्य कहिल्यै सङ्गत हुनसक्तैन, त्यस्तै निश्चलदासजीको अनुमान पनि व्यर्थ हो। किनकि अल्प, अल्पज्ञता र भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म जीवमा ब्रह्मा भन्दा तथा सर्वगत, सर्वज्ञता र निर्भ्रान्तित्त्व आदि वैधर्म्य ब्रह्ममा जीवमा भन्दा विरुद्ध छन्, यसकारण ब्रह्म र जीव भिन्नाभिन्नै हुन्। जस्तै गन्धवत्त्व कठिनत्त्व आदि पृथ्वीका धर्म, रसवत्त्व, द्रवत्त्व आदि जलका धर्मभन्दा विरुद्ध हुनाले पृथ्वी र जल एउटै होइनन् त्यस्तै जीव र ब्रह्ममा विरुद्ध धर्म हुनाले जीव र ब्रह्म एउटै कहिल्यै न थिए, न छन् र न हुनेछन्। यतिबाटै निश्चलदास आदिमा कति पाण्डित्य थियो भन्ने कुरा बुझ्नुपर्दछ। अनि योगवासिष्ठ बनाउने कोही आधुनिक वेदान्ती थियो। त्यो वाल्मीकि, वसिष्ठ र रामचन्द्रले बनाएको, भनेको वा सुनेको होइन। किनकि ती सबै त वेदानुयायी थिए, यसकारण उनीहरू वेदको विरुद्ध बनाउन, भन्न वा सुन्न सक्तैन थे।

प्रश्न—व्यासजीले बनाएका शारीरकसूत्रमा पनि जीव ब्रह्मको एकता देखिन्छ। हेर—**सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ १ ॥ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ २ ॥ चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वा–दित्यौडुलौमिः ॥ ३ ॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः ॥ ४ ॥ अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ५ ॥**

—वेदान्तदर्शन ४।४।१, ५, ६, ७, ९

जीव पहिले ब्रह्मस्वरूप हुनाले ऊ आफ्नो स्वरूपलाई प्राप्त गरेर प्रकट हुन्छ, किनकि स्वशब्दबाट आफ्नो ब्रह्मस्वरूपको ग्रहण हुन्छ ॥ १ ॥ **'अयमात्मा अपहतपाप्मा'** (छां०उ० ८।७।१) इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्तिसम्म हेतुद्वारा जीव ब्रह्मस्वरूपबाट स्थित हुन्छ भन्ने जैमिनी आचार्यको विचार छ ॥ २ ॥ अनि औडुलौमि आचार्यको विचारमा तदात्मकस्वरूप निरूपण आदि बृहदारण्यकका हेतुरूप वचनबाट

चैतन्यमात्र स्वरूपद्वारा जीव मुक्तिमा स्थित रहन्छ॥ ३ ॥ व्यासजी यिनै पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुहरूद्वारा जीवको ब्रह्मस्वरूप हुनमा विरोध छैन भन्नुहुन्छ॥ ४॥ योगी ऐश्वर्यसहित आफ्नो ब्रह्मस्वरूपमा प्राप्त भएर अरू कुनै अधिपतिरहित अर्थात् आफैं आफ्नो र अरू सबैको अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूपबाट मुक्तिमा स्थित रहन्छ॥ ५ ॥

उत्तर—यी सूत्रहरूको अर्थ यसरी होइन। यिनको यथार्थ अर्थ त यो हो। सुन—

जीव आफ्नो स्वकीय शुद्धस्वरूपलाई प्राप्त भएर सबै मलदेखि रहित भएर पवित्र नभएसम्म योगद्वारा ऐश्वर्य प्राप्त गरेर आफ्नो अन्तर्यामी ब्रह्मलाई प्राप्त भएर आनन्दमा स्थित हुनसक्तैन॥ १ ॥ यसैगरी पापादि-रहित ऐश्वर्ययुक्त भएर योगीले ब्रह्मसँग मुक्तिको आनन्द भोग्नसक्तछ। यस्तो जैमिनी आचार्यको मत हो॥ २ ॥ जीव अविद्यादि दोषहरूबाट छुटेर शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूपद्वारा स्थिर भएपछि '**तदात्मकत्व**' अर्थात् ब्रह्मस्वरूपसँग सम्बन्ध प्राप्त गर्दछ। यो औडुलौमि आचार्यको मत हो॥ ३ ॥ जब ब्रह्मसँग ऐश्वर्य र शुद्ध विज्ञान प्राप्त गरेर बाँच्दै जीवन्मुक्त हुन्छ, तब आफ्नो निर्मल पूर्वस्वरूपलाई प्राप्त भएर आनन्दित हुन्छ। यस्तो व्यासमुनिको मत हो॥ ४॥ योगी सत्यसङ्कल्प भएपछि आफैं परमेश्वरलाई प्राप्त भएर मुक्तिसुख प्राप्तगर्दछ। त्यहाँ स्वाधीन स्वतन्त्र रहन्छ। संसारमा एउटा प्रधान र अर्को गौण भएजस्तो मुक्तिमा हुँदैन। तर मुक्तिमा त सबै मुक्त जीव एकनासै रहन्छन्॥ ५ ॥ यसो नभएको भए—

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ १ ॥
भेदव्यपदेशाच्च ॥ २ ॥ —वेदान्तदर्शन १।१।१६, १७
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ ३ ॥
—वेदान्तदर्शन १।२।२२

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शस्ति ॥ ४ ॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ ५ ॥
भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ ६ ॥ —वेदान्तदर्शन १।१।१९-२१
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ ७ ॥
अनुपपत्तेस्तु न शरीरः ॥ ८ ॥
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ ९ ॥
शरीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ १० ॥
—वेदान्तदर्शन १।२।११, ३, १८, २०

यी व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र हुन्। ब्रह्म बाहेक जीव सृष्टिकर्त्ता

होइन, किनकि अल्पज्ञ, अल्पसामर्थ्य भएको जीवमा सृष्टिकर्तृत्व घटित हुनसक्तैन। यसबाट जीव ब्रह्म होइन भन्ने बुझिन्छ॥ १ ॥ '**रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति**' यो उपनिषद्को (तैत्ति०उप०ब्रह्म०व० ७) वाक्य हो। जीव र ब्रह्म यी दुबैको भेद प्रतिपादन गरिएको हुनाले यी दुबै भिन्न हुन्। यसो नभएको भए 'रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्ममा प्राप्त भएर जीव आनन्दस्वरूप हुन्छ' भन्ने कुरामा प्राप्ति विषय ब्रह्म र प्राप्त हुने जीवको निरूपण घटित हुनसक्तैन। यसकारण जीव र ब्रह्म एउटै होइनन्॥ २ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्यान्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥
—मुण्डकोपनिषद् २।१।२

दिव्य, शुद्ध, मूर्तिरहित, सबैमा पूर्ण, भित्र-बाहिर निरन्तर व्याप्त, अज जन्म-मरण-शरीरधारणादिरहित, श्वास-प्रश्वास, शरीर र मनको सम्बन्धरहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्माका विशेषण हुन्, जीव अक्षर नाशरहित प्रकृतिभन्दा पर अर्थात् सूक्ष्म र त्यसभन्दा पनि परमेश्वर पर अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म छ। प्रकृति र जीवभन्दा ब्रह्मको भिन्नता प्रतिपादनरूप हेतुहरूका कारण ब्रह्म प्रकृति र जीवभन्दा भिन्नै छ॥ ३ ॥ यसै सर्वव्यापक ब्रह्ममा जीवको योग वा जीवमा ब्रह्मको योग प्रतिपादन गर्नाले जीव र ब्रह्म भिन्नै छन्, किनकि भिन्न पदार्थकै योग हुनेगर्दछ॥ ४॥ यस ब्रह्मका अन्तर्यामी आदि धर्म बताइएका छन्, जीवभित्र व्यापक हुनाले व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मभन्दा भिन्नै छ, किनकि व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध पनि भेदमा नै संघटित हुन्छ॥ ५॥ परमात्मा जीवभन्दा भिन्नस्वरूप भएजस्तै इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथ्वी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्य आदि दिव्यगुणका योगबाट देवता भनिने विद्वान्हरूभन्दा पनि परमात्मा भिन्नै छ॥ ६ ॥ '**गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके**' (कठोप० ३।२) इत्यादि उपनिषद्का वाक्यबाट जीव र परमात्मा भिन्नै छन् भन्ने बुझिन्छ। त्यस्तै उपनिषद्हरूमा धेरै ठाउँमा देखाइएको छ॥ ७ ॥ '**शरीरे भवः शरीरः**' शरीरधारी जीव ब्रह्म होइन। किनकि ब्रह्मका गुण-कर्म-स्वभाव जीवमा घटित हुँदैनन्॥ ८॥ अधिदैव=सबै दिव्य मन आदि र इन्द्रिय आदि पदार्थहरूमा, अधिभूत=पृथ्वी आदि भूत, अध्यात्म=सबै जीवमा परमात्मा अन्तर्यामी रूपमा स्थित छ। किनकि त्यसै परमात्माका व्यापकत्त्व आदि धर्मको व्याख्या सर्वत्र उपनिषद्हरूमा छ॥ ९ ॥ शरीरधारी जीव ब्रह्म होइन किनकि ब्रह्मभन्दा जीवको भेद

स्वरूपबाट सिद्ध छ॥ १० ॥

इत्यादि शारीरक सूत्रहरूबाट पनि स्वरूपबाटै ब्रह्म र जीवको भेद सिद्ध छ। त्यस्तै वेदान्तीहरूको **'उपक्रम'** र **'उपसंहार'** पनि घटित हुनसक्तैन। किनकि वेदान्तीहरू **'उपक्रम'** अर्थात् आरम्भ ब्रह्मबाट र **'उपसंहार'** अर्थात् प्रलय पनि ब्रह्ममा नै हुन्छ भन्ने मान्दछन्। अरू कुनै वस्तुलाई उनीहरू नमान्ने हुनाले उत्पत्ति र प्रलय पनि ब्रह्मको धर्म हुन्छ र वेदादिशास्त्रमा भने उत्पत्ति, विनाशरहित ब्रह्मको प्रतिपादन गरिएको छ। नवीन वेदान्तीहरूको यो विचार वेदादि सत्यशास्त्रहरूसँग बाझ्दछ। किनकि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध, सनातन, निभ्रान्तित्व आदि विशेषणयुक्त ब्रह्ममा विकार, उत्पत्ति र अज्ञान आदि कुनै प्रकारले पनि संभव हुनसक्तैन तथा उपसंहार=प्रलय भएपछि पनि ब्रह्म, कारणात्मक जड् र जीव रहिनैरहन्छन्। यसकारण उपक्रम र उपसंहार पनि यी वेदान्तीहरूको झूटो कल्पना हो। यस्ता शास्त्र र प्रत्यक्ष आदि प्रमाणविरुद्ध धेरैजसो अशुद्ध कुरा छन्।

यसपछि केही जैनी र केही शङ्कराचार्यका अनुयायीहरूका उपदेशका संस्कार आर्यावर्त्तमा फैलिएका थिए र परस्पर खण्डन-मण्डन पनि चल्दथ्यो। शङ्कराचार्यको तीनसय वर्षपछि उज्जैन नगरीमा राजा विक्रमादित्य केही प्रतापी भएका थिए। उनले सबै राजाहरूका बीचमा चलेका झगडा मेटाएर शान्ति स्थापना गरे। त्यसपछि काव्य आदि शास्त्र र अरू शास्त्रमा पनि केही विद्वान् राजा भर्तृहरि भए। उनले वैराग्यवान् भएर राज्यलाई छोडिदिए। विक्रमादित्यको पाँचसय वर्ष पछि राजा भोज भए। उनले केही व्याकरण र काव्यालंकार आदिको यति प्रचार गरे कि उनको राज्यमा कालिदास जस्ता गोठाला पनि रघुवंश जस्तो काव्यको रचयिता भए। राजा भोजकहाँ श्लोक बनाएर लैजाने जोसुकैलाई पनि धेरैजसो धन दिइन्थ्यो र सम्मान गरिन्थ्यो। राजा भोज पछि राजा र श्रीमान्हरूले पढ्न नै छोडिदिए।

यद्यपि शङ्कराचार्य अघि वाममार्गीहरू पछि शैव आदि सम्प्रदायका मतवादी पनि भएका थिए तर तिनको शक्ति धेरै थिएन। महाराजा विक्रमादित्यदेखि शैवहरूको बल बढ्न थाल्यो। वाममार्गीहरूमा 'दश महाविद्या' आदि शाखा भएजस्तै शैवमा **'पाशुपत'** आदि धेरै शाखा भएका थिए। केही व्यक्तिले शङ्कराचार्यलाई शिवको अवतार बताए। उनका अनुयायी संन्यासी पनि शैवमतमा लागे र वाममार्गीहरूलाई पनि मिलाउँदै गए। वाममार्गीहरू शिवजीकी पत्नी देवीका उपासक र

शैव महादेवका उपासक भए। यी दुवै हालसम्म पनि रुद्राक्ष र भस्म धारण गर्दछन्। तर शैव वाममार्गी जति वेद विरोधी छैनन्।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम्॥ १ ॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्,
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति तकं स स्वयं नीलकण्ठः॥ २ ॥

इत्यादि धेरै किसिमका श्लोक यिनीहरूले बनाएर भन्नथाले— मस्तकमा भस्म र कण्ठमा रुद्राक्ष नभएकोलाई धिक्कार छ। **'तं त्यजेदन्त्यजं यथा'** त्यसलाई चाण्डालजस्तै त्याग्नुपर्दछ॥ १ ॥ कण्ठमा ३२, टाउकोमा ४०, दुबै कानमा ६-६, दुबै हातमा १२-१२, दुबै भुजामा १४-१६, टुप्पीमा एक र हृदयमा १०८ रुद्राक्ष धारण गर्ने व्यक्ति साक्षात् महादेव जस्तै हो॥ २ ॥ यस्तै शाक्त पनि मान्दछन्।

पहिले यी वाममार्गी र शैवले सम्मति गरेर भग-लिङ्गको स्थापना गरेर त्यसलाई जलाधारी र लिङ्ग भनिन्छ र त्यसको पूजा गर्नथाले। ती लाज नभएकाहरूलाई 'यस्तो लाछीपनको काम हामी किन गर्दैछौं' भन्ने लाज पनि भएन। कुनै कवि ले **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** भनेको छ अर्थात् स्वार्थीहरू आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्नमा दुष्ट कार्यहरूलाई पनि श्रेष्ठ मान्दछन् र दोष देख्दैनन्। त्यसै ढुङ्गा आदि मूर्ति र भग-लिङ्गको पूजाबाट समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि सिद्धिहरू प्राप्त हुने कुरा मान्न थाले। राजा भोजपछि जैनीहरूले आफ्ना मन्दिरमा मूर्तिस्थापना र दर्शन स्पर्शनका लागि आउन-जान थालेपछि यी पोपका चेला पनि जैन मन्दिरमा आउन जान थाले र उता पश्चिममा केही अरू मतावलम्बी र यवन=मुसलमान पनि आर्य्यावर्त्तमा आउन थाले। त्यसो हुँदा पोपहरूले यो श्लोक बनाए—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

जतिसुकै दुःख आइपरे पनि र प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु नै आइपरे पनि यावनी=म्लेच्छभाषा मुखबाट बोल्नुहुँदैन र उन्मत्त हात्तीले आफूलाई मार्न पछ्याइरहेको तथा जैन मन्दिरमा जानाले प्राण बच्ने भएतापनि जैन मन्दिरमा जानु हुँदैन। जैनमन्दिरमा प्रवेश गरेर बाँच्नुभन्दा हात्तीको अगाडि परेर मर्नु बेस हुन्छ। आफ्ना चेलाहरूलाई यस्ता-यस्ता उपदेश गर्नथाले। तीसँग कसैले 'तिम्रो मतबारे कुनै मान्य ग्रन्थको

प्रमाण छ ?' भनी प्रमाण सोद्धा 'छ' भन्ने उत्तर दिन्थे। 'देखाऊ' भन्दा मार्कण्डेय पुराण आदिका वाक्य पढेर सुनाउँदै दुर्गापाठमा देवीको वर्णन बताउँथे।

राजा भोजको राज्यमा कसैले व्यासजीको नामबाट मार्कण्डेय पुराण र शिवपुराण बनाएर चलाएका थिए। राजा भोजले यस कुराको जानकारी पाएपछि उनले ती पण्डितहरूका हात काटिदिने जस्ता दण्ड दिएर तीसँग 'कुनै काव्य आदि ग्रन्थ बनाएमा ऋषिमुनिका नामबाट नबनाएर आफ्नै नामबाट बनाउनुपर्दछ' भनेका थिए। यो कुरा ग्वालियर राज्यको भिंडनामक नगरको तिवारी ब्राह्मणको घरमा उपलब्ध, राजा भोजद्वारा लिखित 'संजीवनी' नामक इतिहासमा लेखिएको छ। यसलाई लखुनाका राव साहेब र उनका अनुयायी रामदयाल चौबेले आफ्नै आँखाले देखेका थिए। त्यसमा 'व्यासजीले चारहजार चारसय र उनका शिष्यहरूले पाँचहजार छसय श्लोक भएको अर्थात् जम्मा दसहजार श्लोक भएको महाभारत लेखेका थिए' भन्ने कुरा स्पष्ट लेखिएको छ। महाराजा भोज भन्दछन्—''त्यो महाभारत महाराज विक्रमादित्यको समयमा बीसहजार, मेरा (भोजका) पिताको समयमा पच्चीसहजार र मेरो आधा उमेर सम्ममा तीस हजार श्लोकयुक्त महाभारत उपलब्ध हुन्छ। यसैगरी बढ्दै गयो भने महाभारतको पुस्तक एउटा ऊँटलाई भारी पुग्ने हुनेछ र ऋषिमुनिका नामबाट पुराण आदि ग्रन्थ बनाइएमा आर्य्यावर्त्तका मानिस भ्रमजालमा परेर वैदिक धर्मविहीन भएर भ्रष्ट हुनेछन्।'' यसबाट राजाभोजमा अलि-अलि वेदका संस्कार थिए भन्ने बुझिन्छ। यिनको भोज प्रबन्धमा लेखिएको छ—

घट्यै कया क्रोशदसकैमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलंविना मनुष्येण चलत्यजस्त्रम्॥

राजा भोजको राज्यमा र छेउछाउमा यस्ता यस्ता शिल्पी थिए कि तिनीहरूले एउटा घोडाको जस्तो आकृति भएको यन्त्रकलायुक्त यान बनाएका थिए। त्यो यान एक कच्ची घडीमा एघार कोस र एक घण्टामा साढे सत्ताईस कोस हिंड्थ्यो। त्यो भूमि र अन्तरिक्षमा पनि चल्थ्यो। अर्को एउटा 'मानिसले नचलाई कलायन्त्रको बलले नित्य चल्ने र प्रशस्त हावा दिने' पंखा बनाएका थिए। यी दुबै पदार्थ अहिलेसम्म भएका भए यूरोपियन यत्ति घमण्डी हुने थिएनन्।

पोपहरूले आफ्ना चेलालाई जैनीहरूको सम्पर्कबाट रोक्न खोजेतापनि तिनलाई जैन मन्दिर जानबाट रोक्न सकेनन् र मानिस

जैनीका कथामा पनि जान थाले। जैनीका पोप यी पुराणी पोपका चेलालाई भड्काउन थाले। यो देखेर पुराणीहरूले 'यसको कुनै उपाय नगरिएमा आफ्ना चेला सबै जैनी भैजानेछन्' भन्ने विचार गरेर पोपहरूले सम्मति गरेर जैनीहरूका जस्तै आफ्ना पनि अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति र कथाका पुस्तक बनाउने निर्णय गरे। यिनीहरूले जैनीका चौबीस तीर्थंकर जस्तै चौबीस अवतार, मन्दिर र मूर्त्तिहरू बनाए। जसरी जैनीका 'आदि' र 'उत्तर' पुराण आदि छन्, त्यस्तै यिनीहरूले अठार पुराण बनाउन थाले।

राजा भोजको डेढसय वर्षपछि वैष्णवमत आरम्भ भयो। एउटा शठकोप नामक कंजरवर्णमा जन्मेको व्यक्तिबाट यो मत केही चल्यो। त्यस पछि पोडेवंशमा जन्मको मुनिवाहन र तेस्रो यवनकुलमा जन्मेको यावनाचार्य यस मतलाई चलाउने भयो। त्यसपछि चौथो रामानुजाचार्य ब्राह्मणकुलमा जन्मेको थियो, उसले आफ्नो मत फिजायो। शैवले शिवपुराण आदि, शाक्तले देवीभागवत आदि, वैष्णवले विष्णुपुराण आदि बनाए। आफ्ना नामबाट बनाइएमा कसैले प्रमाण मान्नेछैन भन्ने विचारले ती ग्रन्थमा आफ्ना नाम नराखेर व्यास आदि ऋषि-मुनिहरूका नाम राखेर पुराण बनाइए। यी ग्रन्थहरूको नाम त पुराण नभएर नवीन हुनुपर्ने थियो तर कुनै दरिद्रले आफ्नो छोराको नाम महाराजाधिराज र आधुनिक वस्तुको नाम सनातन राख्दा कुनै आश्चर्य हुँदैन, त्यस्तै पुराणको पनि कुरा हो। परस्परमा यिनका जस्ता झगडा छन् पुराणहरूमा पनि यस्तै झगडाका कुरा छन्।

हेर, देवीभागवतमा 'श्री' नाम गरेकी एउटी देवी स्त्री श्रीपुरकी स्वामिनी बताइएकी छ। उसैले सब जगत्लाई र ब्रह्मा, विष्णु, महादेवलाई पनि उसैले बनाएको भनिएको छ। उसको आफ्नो इच्छा हुँदा उसले आफ्नो हात माड्दा उसको हातमा एउटा ठेलो उठ्यो। त्यसबाट ब्रह्माको उत्पत्ति भयो। त्यस देवीले भनी—'तिमी मसँग विवाह गर।' ब्रह्माले 'तिमी मेरी आमा हौ, म तिमीसँग विवाह गर्नसक्तिन' भन्यो, यो सुनेर माताले क्रोधित भएर त्यस केटोलाई भस्म गरिदिई। अनि फेरि त्यसैगरी हात माडेर अर्को केटो उत्पन्न गरी। उसको नाम विष्णु राखी। ऊसँग पनि त्यसै भन्दा उसले पनि नमान्नाले उसलाई पनि भस्म गरेर फेरि त्यसैगरी तेस्रो केटो जन्माएर उसको नाम महादेव राखेर 'तिमी मसँग विवाह गर' भनी। महादेवले 'म तिमीसँग विवाह गर्नसक्तिंन, तिमी अर्कै स्त्री-शरीर धारण गर' भन्यो। देवीले त्यसै गरी। तब महादेवले 'यो दुई ठाउँमा खरानीको थुप्रो जस्तो के हो ?' भनी सोद्धा देवीले 'यी

दुबै तेरा भाइ हुन्, यिनीहरूले मेरो आज्ञा नमान्नाले मैले यिनीहरूलाई भस्म गरिदिएँ' भनी। महादेवले 'म एक्लै के गर्नेछु र? यी दुबैलाई जिउँदो पारेर दुईवटी स्त्री अरू उत्पन्न गर अनि तिनैको विवाह तिनैसँग हुनेछ' भन्यो। देवीले यस्तै गरी। अनि तिनैको विवाह तिनैसँग भयो। अरे! आमासँग विवाह गरेन, तर बहिनीसँग गर्यो। के यसलाई उचित भन्न मिल्ला? पछि इन्द्र आदिलाई उत्पन्न गरेर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र र इन्द्रलाई आफ्नो डोली उठाउने डोले बनाई, इत्यादि मनमाना ठूल्ठूला गफ लेखिएका छन्।

तिनीहरूसँग कसैले 'त्यस देवीको शरीर र त्यस श्रीपुरलाई बनाउने र त्यस देवीका आमा–बाबु को थिए? भनी सोध्नुपर्दछ। तिनले देवी अनादि हो भन्छन् भने संयोगजन्य वस्तु अनादि कहिल्यै हुनसक्तैन। आमा–छोराको परस्पर विवाह गर्नमा डर थियो भने दाजु–बहिनी वा दिदी–भाइको परस्पर विवाह कुनचाहिं राम्रो काम हो त? जसरी यस देवी भागवतमा महादेव, विष्णु र ब्रह्मा आदिको क्षुद्रता र देवीको महत्ता लेखिएको छ त्यस्तै शिवपुराणमा देवी आदिको क्षुद्रता लेखिएको छ। अर्थात् त्यहाँ महादेव सबैको ईश्वर र अरू सबै महादेवका दास बताइएका छन्। रुद्राक्ष अर्थात् एउटा वृक्षविशेषको फलका गेडा र खरानी धारण गर्नाले मुक्ति हुनेभए खरानीमा पल्टिरहने गधा आदि पशु र घुंघुची आदि धारण गर्ने भील, कंजर आदि पनि मुक्त हुनुपर्दछ र सुँगुर, कुकुर, गधा आदि खरानीमै पल्टिने पशु किन मुक्त हुँदैनन्?

प्रश्न—कालाग्निरुद्रोपनिषद्मा भस्म लगाउने विधान छ। त्यो के झूटो हो? र **त्र्यायुषं जमदग्नेः।** (यजुर्वेद ३।६२) इत्यादि वेदमन्त्रमा पनि भस्म धारणको विधान र पुराणमा रुद्रको आँखाको अश्रुपातबाट भएको वृक्षको नाम 'रुद्राक्ष' छ। यसैकारण त्यसलाई धारण गर्नमा पुण्य हुन्छ भन्ने लेखिएको छ। एउटा मात्र रुद्राक्ष धारण गरेपनि सबै पाप देखि छुटेर स्वर्ग गइन्छ, यमराज र नरकको डर रहँदैन।

उत्तर—कालाग्निरुद्रोपनिषद् कुनै खरानिया अर्थात् खरानी घस्ने मानिसले बनाएको हो। किनकि त्यसमा '**यास्या प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः**' इत्यादि अनर्थक कुरा छन्। प्रतिदिन हातबाट बनाएको रेखा भूलोक वा त्यसको वाचक कसरी हुनसक्तछ? अनि **त्र्यायुषं जमदग्नेः।** इत्यादि मन्त्र भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारणका वाचक होइनन्। "**चक्षुर्वै जमदग्निः**" (शतपथ ८।२१।३) हे परमेश्वर! मेरा आँखाको ज्योति (त्र्यायुषम्) तीनगुणा अर्थात् तीनसय वर्षसम्म रहोस् र म दृष्टि नाश

नहुने किसिमका धर्मका काम गरूँ।

आँखाबाट निस्केको आँसुबाट पनि रूख उत्पन्न हुनसक्तछ? यो कतिसम्म मूर्खताको कुरा हो। परमेश्वरको सृष्टिक्रमलाई के कसैले उल्टाउन सक्तछ? जुन वृक्षको जस्तो बिउ परमेश्वरले बनाएको छ, त्यसैबाट त्यो वृक्ष उत्पन्न हुन्छ, अरू केहीबाट पनि हुनसक्तैन। यसकारण रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घाँस, चन्दन आदिलाई कण्ठ आदिमा धारण गर्ने काम जङ्गली पशुहरूको जस्तै काम मानिसले गरेका हुन्। यस्ता वाममार्गी र शैव धेरै मिथ्याचारी, विरोधी र कर्तव्यकर्मका त्यागी हुन्छन्। तिनमा कोही श्रेष्ठ पुरुष छ भने उसले यी कुरामाथि विश्वास नगरेर सत्कर्म गर्दछ। रुद्राक्ष धारण गर्नाले यमराजका दूत भयभीत हुन्छन् भने पुलिसका सिपाही पनि डराउँछन् होला? रुद्राक्ष धारण गर्नेहरूदेखि कुकुर, सिंह, सर्प, बिच्छी, झिंगा र लामखुट्टे त डराउँदैनन् भने न्यायाधीशहरू किन डराउँछन् र?

प्रश्न—वाममार्गी र शैव ठीक नभए पनि वैष्णव त ठीक छन्, होइनन् र?

उत्तर—यी पनि वेद विरोधी हुनाले तीभन्दा पनि बढी गलत हुन्।

प्रश्न—'**नमस्ते रुद्र मन्यवे**'। —यजु० १।१६॥ '**शिवाय च शिवतराय च**' —यजु० १६।४१॥ '**वैष्णवमसि**'—यजु० ५।२१॥ '**वामनाय च**' —यजु० १६।३०॥'**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**' —यजु० २३।१९॥'**भगवती भूयाः**' —अथर्व० ६।१०।२०॥'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। —यजु० १३।४६॥ इत्यादि वेद प्रमाणहरूबाट शैवादिमत सिद्ध हुन्छन् भने खण्डन किन गर्दछौ?

उत्तर—यी वाक्यहरूबाट शैव आदि सम्प्रदाय सिद्ध हुँदैनन्। किनकि 'रुद्र' परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि, आदिको नाम हो। क्रोधगर्ने रुद्र अर्थात् दुष्टहरूलाई रुवाउने परमात्मालाई नमस्कार गर्नु, प्राण र जठराग्निलाई अन्न दिनु, 'नम इति अन्ननाम' निघण्टु २।७॥ मङ्गलकारी, सब संसारको अत्यन्त कल्याणकारी त्यस परमात्मालाई नमस्कार गर्नुपर्दछ। '**शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः**'। '**विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः**'। '**गणपतेः सकलजगत्स्वामि–नोऽयं सेवको गाणपतः।**'' **भगवत्या वाण्या अयं सेवको भागवतः**'।'**सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः**' यो सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य आदि परमेश्वरका र भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणीको नाम हो। कुरा नबुझिकनै यसमा यस्तो झगडा

मच्चाएका हुन्। जस्तै—

एउटा कुनै वैरागीका दुईवटा चेला थिए। ती दिनहुँ गुरुका खुट्टा मिच्ने गर्दथे। एउटाले दाहिने खुट्टा र दोस्रोले देब्रे खुट्टाको सेवा गर्ने भनी भाग लगाएका थिए। एकदिन एउटा चेलो कतै बजारतिर गएको थियो र अर्काले भने आफ्नो भागको खुट्टाको सेवा गरिरहेको थियो। यत्तिकैमा गुरुले कोल्टोफेर्दा उसले सेवा गरिरहेको खुट्टामाथि अर्को गुरुभाइले सेवा गर्नुपर्ने खुट्टो पर्यो। यो देखेर त्यसले त्यस माथिल्लो खुट्टामा लौराले हान्यो। अरे दुष्ट, तैंले यो के गरेको ? भनी गुरु कराए। चेलाले 'मैले सेवा गर्नुपर्ने खुट्टामाथि यो खुट्टो किन चढेको त ?' भन्यो। यत्तिकैमा बजारतिर गएको अर्को चेलो आइपुग्यो। ऊ पनि आफ्नो भागको खुट्टाको सेवा गर्नथाल्यो। यसो हेर्दा त्यो खुट्टो त सुन्निएको रहेछ। उसले भन्यो—गुरुजी, यो मैले सेवा गर्ने खुट्टामा के भयो ? गुरुले सबै कुरा सुनाइदिए। त्यो मूर्ख पनि केही बोलेन, ऊ चुपचाप उठेर लौरो उठाएर बलपूर्वक गुरुको अर्को खुट्टामा हान्यो। गुरु चिच्याएर पुकार्न थाले। दुबै चेला भने लौरा लिएर गुरुका खुट्टामा हान्न थाले। हो-हल्ला सुनेर त्यहाँ मानिस जम्मा भए र 'साधुजी के भयो ?' भनी सोधे। तीमध्ये कुनै बुद्धिमान् व्यक्तिले साधुलाई छुटाएर ती मूर्ख चेलाहरूलाई 'हेर, यी दुबै गोडा तिम्रा गुरुका हुन्। यी दुबैको सेवा गर्नाले एउटै गुरुलाई सुख र दुःख दिनाले पनि नै गुरुलाई दुःख हुन्छ' भन्ने उपदेश दिए।

जसरी एउटा गुरुको सेवामा यी चेलाहरूले लीला गरे यसैगरी एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्माका विष्णु, रुद्र आदि अनेक नाम छन्। पहिलो समुल्लासमा स्पष्ट गरिए अनुसार यी नामहरूको सत्यार्थ नजानेर शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदायीहरू परस्पर एक अर्काका नामको निन्दा गर्दछन्। यी मन्दमति व्यक्ति यी सब विष्णु, रूद्र, शिव आदि नाम एउटै अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर अनेक गुण, कर्म, स्वभावयुक्त हुनाले उसैका वाचक हुन् भन्ने कुरा अलिकति पनि आफ्नो बुद्धिलाई विस्तृत गरेर सोच्दैनन्। के यस्ता व्यक्तिहरूदेखि ईश्वर नरिसाउँदो हो त ? अब चक्र अङ्कित वैष्णवहरूको मायाको विचार गरौं—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ १॥
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। —ऋग्वेद ९।८।३।१ इति श्रुतेः

अर्थात् **(तापः)** शङ्ख, चक्र, गदा र पद्मको चिह्नलाई आगोमा

तपाएर पाखुरामा डामेर दूधको भाँडोमा चिस्याउँछन्, कोही त्यस दूधलाई पिउने पनि गर्दछ। अब सोच, प्रत्यक्षरूपमा मानिसको मासुको स्वाद पनि त्यसमा आउँछ होला। यस्ता-यस्ता कामबाट परमेश्वर प्राप्तिको आशा गर्दछन् र शङ्ख, चक्र आदिले शरीरलाई नतपाइ त्यो शरीर **(आमः)** कच्चा हुनाले त्यसबाट जीव परमेश्वरलाई प्राप्त हुँदैन भन्दछन्। अनि 'जसरी राजकीय चिह्न धारण गर्नाले त्यस्तो चिह्न देखेर राजपुरुष सम्झेर सबैजना त्यस व्यक्तिदेखि डराउँछन्, त्यस्तै विष्णुका शङ्ख, चक्र आदि हतियारका चिह्न देखेर यमराज र उसका गण यी चिह्न धारण गर्नेदेखि डराउँछन्' भन्दछन्। अरू भन्छन—

दोहा— **वाना बड़ा दयाल का तिलक छाप और माल।**
यम डरपै कालू कहे, भय माने भूपाल॥

अर्थात् तिलक, छाप, माला आदि भगवानको पहिरन धारण गर्नु ठूलो कुरा हो, किनकि यसबाट यमराज र राजा पनि डराउँदछन्। **(पुण्ड्रम्)** मस्तकमा त्रिशूल जस्तै चित्र बनाउनु, **(नाम)** नारायणदास, विष्णुदास आदि अन्तमा 'दास' शब्द रहेको नाम राख्नु, **(माला)** कमल गट्टाको माला धारण गर्नु र पाँचौं **(मन्त्र)** जस्तै—यिनीहरूले साधारण मानिसका लागि **'ओं नमो नारायणाय॥ १॥'** यो मन्त्र बनाएका छन् र धनाढ्य तथा माननीयहरूका लागि भने— **'श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये॥ २॥, श्रीमते नारायणाय नमः॥ ३॥ श्रीमते रामानुजाय नमः॥ ४॥'** इत्यादि मन्त्र बनाएका छन्। हेर, यो पनि एउटा पसलै रहेछ! जस्तो मुख त्यस्तै तिलक। यी पाँच संस्कारलाई चक्राङ्कितहरू मुक्तिको कारण मान्दछन्। यी मन्त्रका अर्थ—म नारायणलाई नमस्कार गर्दछु॥ १॥, म लक्ष्मीयुक्त नारायणको चरणारविन्दको शरण पर्दछु॥ २॥, श्रीसहित नारायणलाई नमस्कार गर्दछु अर्थात् शोभायुक्त नारायणलाई मेरो नमस्कार होओस्॥ ३॥ र श्रीयुक्त रामानुजलाई मेरो नमस्कार होओस्॥ ४॥

वाममार्गीहरूले पाँच 'मकार' मानेजस्तै चक्राङ्कितहरू पाँच 'संस्कार' मान्दछन्। यिनीहरू शङ्ख, चक्रले डाम्ने कुरामा निम्नलिखित वेदमन्त्रको प्रमाण बताउँदछन्—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत॥ १॥
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे॥ २॥

—ऋग्वेद मं० ९। सू० ८३। मं० १, २

हे ब्रह्माण्ड र वेदको पालन गर्ने सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमान् प्रभु! तपाईंले आफ्नो व्याप्तिद्वारा संसारका सबै अवयवहरूलाई व्याप्त गरिरहनु भएको छ। ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्सङ्ग आदि तपश्चर्या नभएको अन्त:करणयुक्त अपरिपक्व आत्मा तपाईंको त्यस व्यापक, पवित्र स्वरूपलाई प्राप्त हुनसक्तैन। अनि पूर्वोक्त तपद्वारा शुद्ध नै यस तपको आचरण गर्दै तपाईंको त्यस शुद्धस्वरूपलाई राम्ररी प्राप्त हुन्छन्॥ १॥

प्रकाशस्वरूप परमेश्वरको सृष्टिमा विस्तृत पवित्राचरणरूप तप गर्नेहरू नै परमात्मामा प्राप्त हुन योग्य हुन्छन्॥ २॥

अब रामानुजीय आदि यस मन्त्रबाट 'चक्राङ्कित हुने कुरा कसरी सिद्ध गर्दछन् भन्ने कुरा विचार गरौं। ती विद्वान् अथवा अविद्वान् के थिए? विद्वान् थिए भने यस मन्त्रको यस्तो असम्भावित अर्थ किन गर्थे? किनकि यस मन्त्रमा 'अतप्तभुजैकदेश:' शब्द नभएर 'अतप्त तनू:' शब्द छ र 'अतप्ततनू:' को अर्थ 'नखशिखाग्रपर्यन्त समुदाय' हो। यस प्रमाणबाट चक्राङ्कितहरू अग्निद्वारा नै तपाउनुपर्ने कुरा स्वीकार्दछन् भने आ–आफ्ना शरीरलाई आगोको भट्टीमा हालेर सब शरीर डढाए पनि यस मन्त्रको अर्थको विरुद्ध हुन्छ, किनकि यस मन्त्रमा सत्यभाषण आदि पवित्र कर्म गर्नु नै तप मानिएको छ।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥

—तैत्तिरीय आरण्यक १०।८

इत्यादि '**तप**' भनिन्छ। अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मान्नु, सत्य बोल्नु, सत्य गर्नु, मनलाई अधर्मतर्फ जान नदिनु, बाहिरी इन्द्रियहरूलाई अन्याय आचरणतर्फ लाग्नबाट रोक्नु अर्थात् शरीर इन्द्रिय र मनबाट शुभकर्मकै आचरण गर्नु, वेदादि सत्यशास्त्रहरूलाई पढ्नु–पढाउनु, वेदानुसार आचरण गर्नु आदि उत्तम धर्मयुक्त कामलाई तप भनिन्छ। धातुलाई तपाएर छाला डाम्नुलाई तप भनिदैन।

हेर चक्राङ्कितहरू आफूलाई ठूला वैष्णव मान्दछन्, तर आफ्नो परम्परा र कुकर्मतर्फ ध्यान दिदैनन्। चक्राङ्कितहरूका ग्रन्थ र नाभा डोमले बनाएको भक्तमालमा लेखिएअनुसार यिनीहरूको मूलपुरुष '**शठकोप**' थियो—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी॥ —दिव्यसूरिचरित २।२२

इत्यादि वाक्य चक्राङ्कितहरूका ग्रन्थमा लेखिएका छन्। शठकोपयोगी सूप='नाङ्लो' बनाएर बेच्दै हिंड्थ्यो अर्थात् कंजरजातिमा

जन्मेको थियो। उसले ब्राह्मणहरूबाट पढ्न–सुन्न चाहँदा ब्राह्मणहरूले उसको तिरस्कार गरेहोलान्। अनि उसैले ब्राह्मणहरूका विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक चक्राङ्कित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमाना कुरा चलाएको होला। उसको चेलो चाण्डालवर्णमा जन्मेको '**मुनिवाहन**' थियो। उसको चेलो यवनकुलमा जन्मेको '**यावनाचार्य**' थियो, कसै–कसैले उसको नाम बदलेर '**यामुनाचार्य**' पनि भन्दछन्। तीपछि '**रामानुज**' ब्राह्मणकुलमा जन्मेर चक्राङ्कित भएको थियो। ऊभन्दा अघि केही भाषाका ग्रन्थ बनाइका थिए। रामानुजले अलि–अलि संस्कृत पढेर संस्कृतमा श्लोकबद्ध ग्रन्थ र शारीरक सूत्र र उपनिषद्हरूमाथि शङ्कराचार्यको टीकाको विरुद्ध टीका तैयार पारेको थियो साथै विभिन्न किसिमले शङ्कराचार्यको निन्दा गरेको थियो।

शङ्कराचार्यको अद्वैतमतअनुसार जीव ब्रह्म एउटै हुन्, अरू कुनै वस्तु वास्तविक होइन, जगत् प्रपञ्च, सबै मिथ्या मायारूप अनित्य हो। यसको विरुद्ध रामानुजका जीव, ब्रह्म र माया तिनै नित्य हुन्। यहाँ शङ्कराचार्यद्वारा ब्रह्मबाहेक जीव र कारणवस्तुलाई नमान्नु उचित होइन भने रामानुजद्वारा यस अंशमा विशिष्टाद्वैत जीव र मायासहित परमेश्वर एउटै हो, यसरी तीनलाई मान्नु र अद्वैत भन्नु सर्वथा व्यर्थ हो र जीवलाई सर्वथा ईश्वरको अधीन, परतन्त्र मान्नु, कण्ठी, तिलक, माला, मूर्त्तिपूजा आदि पाखण्डमत चलाउने आदि गलत कुरा चक्राङ्कितहरूमा छन्। चक्राङ्कित आदि जति वेदविरोधी छन्, शङ्कराचार्यका मतावलम्बी त्यति वेदविरोधी छैनन्।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा कहाँबाट चल्यो?

उत्तर—जैनीहरूबाट।

प्रश्न—जैनीहरूले कहाँबाट चलाए?

उत्तर—आफ्नो मूर्खताले।

प्रश्न—जैनीहरू 'शान्त ध्यानावस्थित बसेको मूर्त्तिलाई देखेर आफ्नो जीवको शुभपरिणाम पनि त्यस्तै हुन्छ' भन्छन् नि त?

उत्तर—जीव चेतन हो भने मूर्त्ति जड हो। के मूर्त्तिजस्तै जीव पनि जड हुने छ? यो मूर्त्तिपूजा पाखण्डमात्र हो र जैनीहरूले चलाएका हुन्। यसकारण यिनको खण्डन बाह्रौं समुल्लासमा गरिनेछ।

प्रश्न—शाक्त आदिले मूर्तिहरूमा जैनीहरूको अनुकरण गरेका होइनन् किनकि वैष्णव आदिका मूर्त्तिहरू जैनीहरूका मूर्त्ति जस्ता छैनन्।

उत्तर—हो, यो कुरा ठीक हो कि तिनीहरूका मूर्त्ति जैनीहरूका मूर्त्तिजस्तै हुँदैनन्। जैनीहरूका मूर्त्तिजस्तै मूर्त्ति बनाएका भए यिनीहरू जैनमतमै मिल्ने थिए, यसकारण जैनीहरूका भन्दा विरुद्ध किसिमका मूर्त्ति बनाए। किनकि जैनीसँग विरोध गर्नु यिनीहरूको र यिनीहरूसँग विरोध गर्नु जैनीहरूको मुख्य काम थियो। जस्तै जैनीहरूले नाङ्गा, ध्यानावस्थित र विरक्त मानिसका जस्तै मूर्त्ति बनाएका छन् भने तिनका विरुद्ध वैष्णव आदिले निकै शृङ्गारित स्त्रीका साथ रङ्ग–राग–भोग–विषयासक्तियुक्त आकृति भएका उभिएका र बसेका मूर्त्ति बनाएका छन्। जैनीहरू धेरै शंख, घण्टा, घडियाल आदि बाजा बजाउँदैनन् भने यिनीहरू चाहिं ठूलो होहल्ला गर्दछन्। यस्तो लीला गर्नाले वैष्णवादि सम्प्रदायका पोपका चेला जैनीहरूका जालबाट बचेर यिनै पोपका लीलामा आएर फँसे र व्यास आदि महर्षिहरूका नामबाट धेरैजसो मनमाना असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाए। तिनको नाम 'पुराण' राखेर कथा पनि सुनाउँन थाले। अनि पछि 'ढुङ्गाका मूर्त्तिहरू बनाएर गुपचुप कतै पहाड वा जङ्गल आदिमा राखेर आउने वा भूमिमा गाड्नेजस्ता विचित्र माया रच्न थाले। त्यसपछि आफ्ना चेलाहरूमा 'मलाई राति सपनामा महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण र भैरव, हनुमान आदिले 'हामी फलानो–फलानो ठाउँमा छौं, हामीलाई त्यहाँबाट ल्याएर मन्दिरमा स्थापित गरेर तिमी नै हाम्रो पुजारी भएमा मनले चाहेको फल दिनेछौं' भनेको छ' भनी प्रचार गरे।

धन भैकनका अन्धा व्यक्तिहरूले पोपका लीला सुनेर ती सबलाई सत्य मानेर ती पोपसँग 'त्यो मूर्त्ति कहाँ छ?' भनी सोध्दा पोपले भने, 'फलानो पहाड वा जङ्गलमा छ, हामीसँग हिंड, देखाइदिन्छौं'। अनि ती बुद्धिका अन्धाले त्यस धूर्त पोपसँग गएर त्यहाँ पुगेर हेरे। अनि त ती आश्चर्यचकित भएर त्यस पोपका गोडामा परेर तिनले 'तपाईंमाथि यस देवता को ठूलो कृपा छ, अब तपाईं यस मूर्त्तिलाई लिइहिंड्नुहोस्, हामी मन्दिर बनाइदिनेछौं, त्यसमा यस देवताको स्थापना गरेर तपाईंले नै पूजा गर्नुहुनेछ र हामी पनि यस प्रतापी देवताको दर्शन–स्पर्शन गरेर मनोवाञ्छित फल पाउँनेछौं' भने। यसैगरी एउटाले लीला रचेपछि त्यसैलाई देखेर सबै पोपहरूले आफ्नो जीविका चलाउन छल–कपटद्वारा मूर्त्तिहरू स्थापित गरे।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार हुनाले ध्यानमा आउन नसक्ने हुँदा मूर्त्ति अवश्य हुनैपर्ने हो। केही नगरेपनि कसैले मूर्त्तिअगाडि पुगेर हात

जोरेर परमेश्वरलाई स्मरण गर्दछन् र नाम लिन्छन् भने यसमा के हानि छ त?

उत्तर—परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक हुनाले उसको मूर्त्ति बन्नैसक्तैन। अनि मूर्त्तिको दर्शन गर्नाले मात्र परमेश्वरको स्मरण हुने भए, परमेश्वरले बनाएका पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु र वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जुन पदार्थमा ईश्वरले अद्‌भुत रचना गरेकोछ, परमेश्वरले बनाएका पृथ्वी, पहाड आदि महामूर्त्तिहरू, जुन पहाड आदिबाट मानिस मूर्त्तिहरू बनाउँदछन्, तिनैलाई देखेर के परमेश्वरको स्मरण हुनसक्तैन? मूर्त्तिको दर्शनबाट परमेश्वरको दर्शन हुन्छ भन्ने तिम्रो कुरा सर्वथा झूटो हो। किन कि यसो भएमा त्यो मूर्त्ति अगाडि नहुँदा परमेश्वरको स्मरण पनि नहुने हुनाले मानिस एकान्त अवसर पाएर चोरी–जारी आदि गर्नमा प्रवृत्त पनि हुनसक्तछ। त्यस्तो अवस्थामा मानिसले 'यतिखेर मलाई देख्ने कोही छैन' भन्ने कुरा जान्ने हुनाले उसले अनर्थ नगरी छोड्नेछैन। ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिपूजा गर्नमा इत्यादि अनेक दोष सिद्ध हुन्छन्।

अर्कोतर्फ सोच, पाषाण आदि मूर्त्तिलाई नमानेर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मालाई सर्वत्र जान्ने र मान्नेले सर्वत्र सर्वदा परमेश्वरलाई सबैका असल–खराब कर्महरूको द्रष्टा सम्झेर र एकक्षणमात्र पनि आफूलाई परमेश्वरभन्दा छुट्टै नसम्झेर कुकर्म गर्ने कुरा त परै जाओस् मनमा कुचेष्टा गर्न पनि सक्तैन। किनकि ऊ 'मैले मन, वचन वा कर्मबाट पनि कुनै गलत काम गरेमा त्यसको दण्ड नपाई यस अन्तर्यामीको न्यायबाट कहिल्यै बच्न सक्नेछैन' भन्ने कुरा जान्दछ। अर्को कुरा, नाम स्मरणबाट मात्र केही पनि फल हुँदैन। जस्तै मिश्री–मिश्री भन्नाले मुख गुलियो र नीम–नीम भन्नाले मुख तीतो हुँदैन। जिब्रोले चाखेरमात्र गुलियोपन वा तीतोपन जानिन्छ।

प्रश्न—सर्वत्र पुराणहरूमा नामस्मरणको ठूलो माहात्म्य छ भने के नाम लिनु पनि सर्वथा मिथ्या हो त?

उत्तर—तिम्रो नाम लिने तरिका उत्तम होइन। तिमीले नामस्मरण गर्ने गरेको तरिका झूटो हो।

प्रश्न—हाम्रो कस्तो तरिका छ?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—त्यसोभए वेदमा बताइएको नामस्मरणको तरिका के हो त?

उत्तर—नामस्मरण यसरी गर्नुपर्दछ—जस्तै ईश्वरको एउटा नाम 'न्यायकारी' हो। परमात्माको यस नामको अर्थमा—पक्षपात रहित भएर परमात्माले यथावत् सबैको न्याय गरेजस्तै उसलाई ग्रहण गरेर सर्वदा न्याययुक्त व्यवहार गर्नु र अन्याय कहिल्यै नगर्नु नै ईश्वरको 'न्यायकारी' यस नामको सच्चा स्मरण हो। यसरी एउटै नामबाट पनि मानिसको कल्याण हुनसक्तछ।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार छ भन्ने कुरा हामीलाई पनि थाहा छ, तर त्यस परमेश्वरले शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य र देवी आदिका शरीर धारण गरेर राम, कृष्ण आदि अवतार लियो, यसैकारण उसका मूर्त्ति बनाइन्छन्, के यो कुरा पनि झूटो हो त?

उत्तर—हो। यो कुरा अवश्य पनि झूटो हो। किनकि वेदमा परमेश्वरलाई '**अज एकपात्**' (ऋग्वेद ७।३५।१३), '**अकायम्**' (यजुर्वेद ४०।८) इत्यादि विशेषणद्वारा जन्ममरण र शरीर धारणरहित बताइएको छ। युक्तिद्वारा पनि परमेश्वरको अवतार कहिल्यै सिद्ध हुनसक्तैन। किनकि आकाश जस्तै सर्वत्र व्यापक, अनन्त र सुख–दु:ख, दृश्य आदि गुणरहित परमात्मा एउटा सानो वीर्य, गर्भाशय र शरीरमा कसरी आउन सक्तछ र? जो एकदेशीय हुन्छ, उही आउने–जाने गर्दछ। प्रत्येक परमाणुमा व्याप्त, अचल, अदृश्य परमात्माको अवतारको कुरा गर्नु भनेको बाँझीको छोराको विवाह गरेर उसको नातिलाई देखेको भने सरह हो।

प्रश्न—परमेश्वर व्यापक छ भने मूर्त्तिमा पनि छ, अनि कुनै पदार्थमा भावना गरेर पूजा गर्नु किन ठीक होइन? हेर—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न त काठमा, न ढुङ्गामा, न माटो वा माटोले बनाएका पदार्थमा नै छ तर परमात्मा त भावनामा छ। जहाँ भावना गरिन्छ, त्यहीं परमात्मा सिद्ध हुन्छ।

उत्तर—परमेश्वर सर्वत्र व्यापक भएतापनि कुनै एउटा वस्तुमा भावना गरेर अन्यत्र नगर्नु भनेको कुनै चक्रवर्ती राजालाई सम्पूर्ण राज्यको सत्ताबाट छुटाएर एउटा सानो छाप्रोको अधिपति मान्नुसरह हो। हेर, यो कति ठूलो अपमान हो? त्यस्तै तिमीहरू परमेश्वरको अपमान गर्दैछौ। परमेश्वरलाई व्यापक मान्दछौ भने बगैंचाबाट फूलपाती टिपेर किन चढाँउदछौ? श्रीखण्ड घोटेर किन लगाउँदछौ? किन धूप बालेर

अर्पण गर्दछौ? शंख, घण्टा, मुजुरा, मृदङ्ग आदिलाई काठका टुक्राले कुट्ने पिट्ने किन गर्दछौ? परमेश्वर तिम्रा हातमा छ भने हात किन जोड्दछौ? टाउकोमा छ त किन टाउको निहुराउँछौ? अन्न, पानीमा छ भने किन नैवेद्य राख्छौ? पानीमा पनि छ, किन नुहाइदिन्छौ? किनकि ती सबै पदार्थमा त परमेश्वर व्यापक छ।

अर्को कुरा, तिमी व्यापकको पूजा गर्दछौ अथवा व्याप्यको? व्यापक को गर्दछौ भने ढुङ्गा, काठ आदिमाथि चन्दन–पुष्प आदि किन चढाउँदछौ? अनि व्याप्यको पूजा गर्दछौ भने 'हामी परमेश्वरको पूजा गर्दछौं' भनेर किन झूट बोल्दछौ? किन सत्य कुरा 'हामी ढुङ्गा आदिकै पुजारी हौं' भन्दैनौ?

फेरि भन—'**भाव**' सच्चा हो अथवा झूटो हो? सच्चा हो भने परमेश्वर तिम्रो भावको अधीन भएर बाँधिने छ। त्यसो हुँदा तिमी माटोमा सुन चाँदीको, ढुङ्गामा हीरा पन्ना आदिको, समुद्रका फिँजमा मोतीको, पानीमा घिउ, दूध, दही आदिको र धुलोमा पीठो, मैदा, सख्खर आदिको भावना गरेर तिनलाई त्यस्तै किन बनाउन सक्तैनौ? तिमीहरू कहिल्यै दु:खको भावना गर्दैनौ, दु:ख किन हुन्छ त? सधैं सुखको भावना गर्दछौ, सुख किन मिल्दैन? अन्धो व्यक्ति आँखाको भावना गरेर देख्नसक्ने किन हुँदैन? मर्ने भावना कहिल्यै गर्दैनौ अनि किन मर्दछौ? इत्यादि कारणले तिम्रो भावना सच्चा होइन भन्ने बुझिन्छ, किनकि जस्तोमा त्यस्तै गर्नुलाई भावना भनिन्छ। जस्तै आगोलाई आगो, पानीलाई पानी जान्नु–मान्नु भावना हो भने पानीलाई आगो, आगोलाई पानी सम्झनु अभावना हो। जुन वस्तु जस्तो छ त्यसलाई त्यस्तै जान्नु '**ज्ञान**' र उल्टो मान्नु '**अज्ञान**' हो। यस्तै तिमी अभावनालाई भावना र भावनालाई अभावना सम्झिरहेका छौं।

प्रश्न—हेर, वेदमन्त्रद्वारा आह्वान नगरेसम्म देवता आउँदैन, आह्वान गर्दैमा झटपट आउँछ र विसर्जन गर्नाले जान्छ।

उत्तर—मन्त्र पढेर आह्वान गर्नाले देवता आउने भए मूर्त्ति किन चेतन हुँदैन? अनि विसर्जन गर्नाले जान्छ।

हेर बन्धुहरू, पूर्ण परमात्मा न आउँछ, न जान्छ। तिमी मन्त्रको बलले परमेश्वरलाई बोलाउँछौ भने तिनै मन्त्रबाट आफ्नो मरेको छोराको शरीरमा जीवलाई किन बोलाउँदैनौ? अनि शत्रुको शरीरबाट जीवात्माको विसर्जन गरेर किन मार्नसक्तैनौ? सुन, सोझा–साझा सज्जनवृन्द! यी पोपजी तिमीहरूलाई ठगेर आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्दछन्। वेदमा

ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा र परमेश्वरको आह्वान विसर्जन गर्ने एउटा अक्षर पनि छैन।

प्रश्न—**प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।**
आत्मेहा गच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

इत्यादि वेदमन्त्र हुँदाहुँदै किन 'एउटै अक्षर पनि छैन' भन्छौ?

उत्तर—हेर भाइ, अलिकति त आफ्नो बुद्धिलाई काममा ल्याऊ। यी सबै वाममार्गीहरूका पोपरचित वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थका कपोलकल्पित पंक्ति हुन्, वेदवाक्य होइनन्।

प्रश्न—के तन्त्र झूटो हो त?

उत्तर—हो, पूरै झूटो हो। वेदमा आह्वान, प्राणप्रतिष्ठा आदि ढुङ्गा आदिका मूर्त्ति विषयक एउटा मन्त्र पनि नभए जस्तै '**स्नानं समर्पयामि**' आदि वाक्य पनि छैनन्। वेदमा '**पाषाणादिमूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्**' अर्थात् 'ढुङ्गाका मूर्त्ति बनाएर मन्दिरमा स्थापित गरेर, चन्दन, अक्षता आदिले पूजा गर्नुपर्दछ' यस्तो कुरा लेशमात्र पनि छैन।

प्रश्न—वेदमा विधान छैन भने खण्डन पनि छैन, अनि खण्डन छ भने पनि '**प्राप्तौ सत्यां निषेधः**' मूर्त्ति भएमा नै खण्डन हुनसक्तछ।

उत्तर—वेदमा मूर्त्तिपूजाको विधान त छँदैछैन तर परमेश्वरको ठाउँमा अरू कुनै पदार्थलाई पूजनीय नमान्ने सर्वथा निषेध पनि गरिएको छ। के अपूर्वविधि हुँदैन? हेर यो छ—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳬ रताः॥१॥
—यजुः० अ० ४०। मं० ९॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति॥२॥ —यजुः० अ० ३२। मं० ३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥१॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥२॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥३॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥४॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥५॥
—केनोपनिषद् ख० १। मं० ४-८

ब्रह्मको ठाउँमा असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न, अनादि प्रकृति=कारणको उपासना गर्नेहरू अन्धकार अर्थात् अज्ञान र दुःखसागरमा डुब्दछन्। अनि ब्रह्मको ठाउँमा संभूति=कारणबाट उत्पन्न भएका कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, ढुङ्गा र वृक्ष आदि अवयव तथा मनुष्य आदिका शरीरको उपासना गर्नेहरू भने त्यस अन्धकारभन्दा पनि बढी अन्धकार अर्थात् ती महामूर्खहरू धेरै समयसम्म घोर दुःखरूपी नरकमा परेर महाक्लेश भोग्दछन्॥१॥

सब जगत्मा व्यापक त्यस निराकार परमात्माको प्रतिमा, परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति छैन॥२॥

जुन ब्रह्म 'इदन्ता'=यो पानी हो, लिनुहोस् आदि भनेजस्तै वाणीको विषय होइन तर जसले धारण गर्नाले र जसको सत्ता हुनाले वाणी आफ्नो कार्य गर्दछ त्यसैलाई ब्रह्म जानेर उपासना गर्नेगर। ऊबाहेक अरू कोही पनि उपासनीय छैन॥१॥

मनबाट '**इयत्ता**'=यो यत्ति हो आदि गरेर मनन गर्न नसकिने, मनलाई जान्नेलाई नै ब्रह्म सम्झेर तिमी उसैको उपासना गर। त्यस बाहेक त्यस ब्रह्मको ठाउँमा जीव र अन्तःकरणको उपासना नगर॥२॥

जो आँखाबाट देखिंदैन र जसबाट सबै आँखाले देख्छन्, तिमी त्यसैलाई ब्रह्म जान र त्यसैको उपासना गर। ऊबाहेक अरू सूर्य, विद्युत र अग्नि आदि जडपदार्थको उपासना नगर॥३॥

जो कानबाट सुनिंदैन र जसबाट कान सुन्दछन्, त्यसैलाई तिमी ब्रह्म सम्झ र त्यसैको उपासना गर। ऊबाहेक शब्द आदिको उपासना उसको ठाउँमा नगर॥४॥

प्राणबाट चलायमान नहुने र प्राणलाई चलायमान गर्नेलाई नै तिमी ब्रह्म सम्झेर उसैको उपासना गर। ऊबाहेक यस वायुको उपासना नगर॥५॥

इत्यादि धेरैजसो निषेधका कुरा छन्। भएकाको र नभएकाको पनि निषेध हुन्छ। प्राप्तको—जस्तै कोही कतै बसेको छ भने त्यसलाई त्यहाँबाट उठाउनु, अप्राप्तको—जस्तै हे पुत्र! तिमी चोरी कहिल्यै नगर्नू, कुवामा नपर्नू, दुष्टहरूको संगत नगर्नू, विद्याहीन नरहनू इत्यादि अप्राप्तको पनि निषेध हुन्छ। त्यस्तै मानिसको ज्ञानमा अप्राप्त र

परमेश्वरको ज्ञानमा प्राप्तको निषेध गरिएको छ। यसकारण ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको पूजा सर्वथा निषिद्ध छ।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा गर्नमा पुण्य हुँदैन भने पाप पनि त हुँदैन ?

उत्तर—कर्म दुई प्रकारका मात्र हुन्छन्—पहिला **विहित**–कर्त्तव्यताद्वारा वेदमा प्रतिपादित सत्यभाषण आदि, दोस्रा **निषिद्ध**—अकर्त्तव्यताद्वारा वेदमा निषिद्ध मिथ्याभाषण आदि। जसरी विहितकर्म गरेमा धर्म र नगरेमा अधर्म हुन्छ, त्यस्तै निषिद्धकर्म गरेमा अधर्म र नगरेमा धर्म हुन्छ। तिमी वेदमा निषिद्ध मूर्तिपूजा आदि कर्म गर्छौ भने पापी किन भएनौ ?

प्रश्न—हेर, वेद अनादि हुन्। पहिले त देवता प्रत्यक्षै थिए, त्यसकारण त्यसबेला मूर्त्तिको के काम थियो र? यो परम्परा त पछि तन्त्र र पुराणबाट चलेको हो। मानिसको ज्ञान र सामर्थ्य कम भएपछि परमेश्वरलाई ध्यानमा ल्याउन सकेनन्, अनि मूर्त्तिको ध्यान त गर्न सक्तछन्। यसकारण मूर्त्तिपूजा अज्ञानीहरूका लागि हो। किनकि एक–एक खुड्किला गरेर चढेमा पहाडको टुप्पोमा पुग्न सकिन्छ। पहिलो खुड्किलोलाई नै छोडेर माथि जान चाहेमा जान सकिंदैन ? यसकारण मूर्त्ति पहिलो खुड्किलो हो। मानिसले यस मूर्त्तिको पूजा गर्दा–गर्दा ज्ञान भए पछि र अन्त:करण पवित्र भएपछि उसले परमात्माको ध्यान गर्न सक्नेछ। जसरी निशाना लगाउँने व्यक्तिले आरम्भमा स्थूल लक्ष्यमा तीर, गोली वा गोला हान्दा–हान्दा पछि सूक्ष्म लक्ष्यमा पनि निशाना लगाउन सक्ने हुन्छ, त्यस्तै स्थूल मूर्त्तिको पूजा गर्दा–गर्दा पछि सूक्ष्म ब्रह्मलाई पनि प्राप्त गर्दछ। जसरी केटीहरू वास्तविक पतिलाई प्राप्त नभएसम्म नै खेलौनाको खेल खेल्दछन् त्यस्तै किसिमले मूर्त्तिपूजा गर्नु गलत काम होइन।

उत्तर—वेदविदित आचरणमा धर्म र वेदविरुद्ध आचरणमा अधर्म हुन्छ भने तिम्रो भनाइबाट पनि मूर्त्तिपूजा गर्नु अधर्म ठहर्दछ। वेदविरुद्ध ग्रन्थहरूको प्रमाण मान्नु नास्तिक हुनु हो। हेर,

नास्तिको वेद निन्दकः॥ १॥ —मनुस्मृति २।११

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥ २॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥ ३॥

—मनुस्मृति १२।९५, ९६

मनुजीको भनाइ अनुसार वेदको निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्ध आचरण गर्ने व्यक्ति '**नास्तिक**' भनिन्छ॥ १॥

वेदबाहेक कुत्सित व्यक्तिहरूले बनाएका संसारलाई दु:खसागरमा डुबाउने सबै ग्रन्थलाई निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप र यसलोक तथा परलोकमा दु:खदायक हुन्॥ २॥

वेदबाहेक बने बनाइका सबै ग्रन्थ आधुनिक हुनाले छिटै नष्ट हुन्छन्। ती ग्रन्थलाई मान्नु झूटो र निष्फल हुन्छ।

यसैगरी 'वेदविरुद्धलाई नमान्नु र वेदाकूल नै आचरण गर्नु धर्म हो' भन्ने विचार ब्रह्मादेखि जैमिनी महर्षिसम्मको छ। किनकि वेद सत्य अर्थको प्रतिपादक हो भने यसबाहेकका सबै तन्त्र, पुराण आदि वेदको विरुद्ध चल्ने=वेदविरुद्ध हुनाले झूठा हुन्। तिनमा बताइएको मूर्तिपूजा पनि अधर्मरूप नै हो।

जड़को पूजा गर्नाले मनुष्यको ज्ञान बढ्दैन, बरू अलिअलि भएको ज्ञान पनि नष्ट हुन्छ। यसकारण ज्ञानीहरूको सेवा र सङ्गतबाट ज्ञान बढ्छ, ढुङ्गा आदिबाट बढ्दैन। ढुङ्गा आदिको मूर्त्तिपूजाबाट के कसैले कहिल्यै परमेश्वरलाई ध्यानमा ल्याउन सक्तछ ? होइन,कहिल्यै सक्तैन। मूर्तिपूजा खुड्किलो होइन, त्यो त एउटा ठूलो भडखारो हो, जसमा परेर व्यक्ति चकनाचूर हुन्छ। अनि त्यस भडखारोबाट निक्लिन नसकेर त्यसैमा मर्दछ। तर घरको चोटा मा पुग्ने लिस्नु जस्तै सानातिना धार्मिक विद्वान्देखि लिएर परम विद्वान् योगीहरूको सङ्गतबाट सद्विद्या र सत्यभाषण आदि आचरण चाहिं परमेश्वरलाई प्राप्त गर्ने खुड्किला हुन्। मूर्तिपूजा गर्दा–गर्दा कुनैपनि ज्ञानी भएको छैन, बरू सबै मूर्तिपूजक अज्ञानी नै रहेर मनुष्य जन्मलाई व्यर्थै खेर फ्यालेर धेरैजसो मरिसके। जो अब छन् वा हुनेछन् ती पनि मनुष्य जन्मका धर्म, अर्थ, काम र मोक्षको प्राप्तिरूपी फलदेखि विमुख भएर व्यर्थै नष्ट हुनेछन्। ब्रह्मको प्राप्ति गर्न स्थूल–लक्ष्य मूर्त्तिपूजा होइन, धार्मिक विद्वान् र सृष्टिविद्या हो। धार्मिकता, विद्वत्ता र सृष्टिविद्याको ज्ञानलाई बढाउँदा–बढाउँदा व्यक्तिले ब्रह्मलाई पनि प्राप्तगर्न सक्तछ। अर्को कुरा, मूर्त्ति बच्चाको खेलजस्तो होइन, तर प्रथम अक्षरको अभ्यास र सुशिक्षा नै बच्चाको खेलजस्तै ब्रह्मप्राप्तिको साधन हो। राम्रो शिक्षा र विद्या प्राप्तगरेर व्यक्ति सच्चा स्वामी परमात्मालाई पनि प्राप्त गर्न सक्तछ।

प्रश्न—साकारमा मन सजिलै स्थिर हुने र निराकारमा मन स्थिर हुन कठिन हुनाले मूर्त्तिपूजा हुनु उपयुक्त हुन्छ।

उत्तर—साकारवस्तुलाई मनले तुरुन्तै ग्रहण गरेर त्यसैका एक–एक अवयवमा घुम्ने र अर्कातर्फ दगुर्ने हुनाले साकारमा कहिल्यै मन स्थिर हुनसक्तैन। उता निराकार अनन्त परमात्माको ग्रहणमा मन आफ्नो सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाएर दौडेपनि त्यसको अन्त भेट्टाउँदैन। अवयवरहित हुनाले चञ्चल पनि रहँदैन र उसैका गुण–कर्म–स्वभावको विचार गर्दा–गर्दा आनन्दमा मग्न भएर स्थिर हुनपुग्दछ। साकारमा मन स्थिर हुनेभए सब जगत्‌को मन स्थिर हुने थियो, किनकि—संसारमा मानिस स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकारमा फँसिरहन्छ तर कसैको पनि मन निराकारमा नलगाएसम्म स्थिर हुँदैन। निरवयव हुनाले निराकारमा मन स्थिर हुन्छ। यसकारण मूर्त्तिपूजा गर्नु अधर्म हो।

मूर्त्तिपूजा गर्न नहुने **दोस्रो** कारण–मूर्त्तिपूजा गरिंदा करोडौं रुपैयाँ मन्दिरहरूमा खर्च गरेर दरिद्र हुन्छन् र उसमा प्रमाद बढ्दछ। **तेस्रो कारण**—स्त्री–पुरुषहरूको मन्दिरमा मेला हुनाले व्यभिचार, झैं–झगडा र रोग आदि उत्पन्न हुन्छन्। **चौथो**—मानिस मूर्तिपूजालाई नै धर्म, अर्थ, काम र मुक्तिको साधन मानेर पुरुषार्थरहित भएर मनुष्य जन्मलाई व्यर्थै गुमाउँछन्। **पाँचौं**—नाना किसिमका विरुद्धस्वरूप, नाम, चरित्रयुक्त मूर्त्तिका पुजारीहरूमा एकमत नष्ट भएर परस्पर विरुद्धमतमा चलेर परस्पर फूट बढाएर देशको नाश गर्दछन्। **छैटौं**—त्यसै मूर्तिको भरमा शत्रुको पराजय र आफ्नो जीत हुने कुरा मानेर बसिरहनाले तिनको पराजय भएर राज्य, स्वतन्त्रता र धनको सुख त्यस्ताका शत्रुको अधीन हुन्छ र आफूभने धोबीको खच्चर र कुमालेको गधा जस्तै शत्रुको वशीभूत भएर अनेकौं किसिमका दुःख पाउँछन्। **सातौं**—कसैले कसैसँग 'म तिम्रो बस्ने आसन वा नाममाथि ढुङ्गा राख्छु' भन्दा त्यो ऊमाथि क्रोधित भएर पिट्ने, गालीगर्ने भएजस्तै परमेश्वरको उपासनाका स्थान हृदय र नाममा ढुङ्गा आदि मूर्त्ति राख्ने दुष्टबुद्धि भएका व्यक्तिको सत्यानाश परमेश्वरले किन नगर्ने? **आठौं**—मूर्त्तिपूजक भ्रान्त भएर मन्दिर–मन्दिर, ठाउँ–ठाउँमा घुम्दा–घुम्दा दुःख पाउँछन्, धर्म, संसार र परमार्थका काम बिगार्दछन्, चोर आदिबाट सताइन्छन् र ठगहरूबाट ठगिइरहन्छन्। **नवौं**—दुष्ट पुजारीहरूलाई धन दिन्छन्, ती पुजारीले त्यस धनलाई वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, मद्यपान, मांसाहार, झै–झगडाहरूमा खर्च गर्दछन् यसबाट दाताको सुखको मूल सुकेर दुःख बढ्दछ। **दशौं**—आमा–बाबु आदि माननीयहरूको अपमान गरेर ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको सम्मान गर्नाले कृतघ्न भइन्छ। **एघारौं**—ती मूर्तिलाई

कसैले फुटाइदिएमा वा चोरले चोरेमा हाहाकारका साथै रुनुपर्दछ, रुन्छन्। **बाह्रौं**—पुजारीहरू परस्त्रीको सङ्ग र पुजारिनी परपुरुषको सङ्गमा लाग्नाले दूषित भएर स्त्री–पुरुषको प्रेम र आनन्दलाई बर्बाद पार्दछन्। **तेह्रौं**—स्वामी–सेवकमा परस्पर आज्ञापालन आदि ठीक–ठीक नहुनाले परस्पर विरुद्ध विचार भएर नष्ट भ्रष्ट हुन्छन्। **चौधौं**—ध्येयको जडत्त्व धर्म अन्तःकरणद्वारा आत्मामा अवश्य आउने हुनाले जड्को ध्यान गर्नेको आत्मा पनि जड्बुद्धि हुन्छ। **पन्ध्रौं**—परमेश्वरले वायु, जल आदिको दुर्गन्ध निवारण र आरोग्यताका लागि बनाएका सुगन्धियुक्त पुष्प आदि पदार्थलाई टिपेर कैयौं दिनसम्म आकाशमा सुगन्ध रहेर वायु, जलको शुद्धि गर्ने र पूर्ण सुगन्धिको समयसम्म सुगन्ध भैरहने त्यस फूललाई पुजारीले पहिलेनै नष्ट गरिदिन्छन्। ती फूल आदि हिलो आदिमा मिलेर उल्टो दुर्गन्ध उत्पन्न गर्ने हुन्छन्। के परमात्माले फूल आदि सुगन्धित पदार्थ ढुङ्गामाथि चढाउनका लागि बनाएका हो? **सोह्रौं**—ढुङ्गामाथि चढाइएको फूल, चन्दन, अक्षता आदि सबै मिलेर प्वाल, दुलो वा कुण्डमा परेर पानी र माटोको संयोग हुँदा त्यसबाट मानिसको दिसाको जत्तिकै दुर्गन्ध आकाशमा चढ्दछ र हजारौं जीव त्यसमा परेर त्यसै मर्दछन् र सड्दछन्। मूर्त्तिपूजा गर्नमा यस्ता यस्ता अनेक दोषहरू हुन्छन्। यसकारण सज्जनहरूले ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा सर्वथा छाड्नु उचित हुन्छ। ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिको पूजा गर्नेहरू उपर्युक्त दोषबाट न बचेका थिए, न बचेकाछन्, न बच्नेछन्।

प्रश्न—कुनै किसिमको मूर्त्तिपूजा गर्नु गराउनु हुँदैन भने हाम्रो आर्यावर्त्तमा जुन 'पञ्चदेवपूजा' शब्द चलि आएको छ, त्यो पञ्चायतन पूजा शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश र सूर्य्यको मूर्त्ति बनाएर गरिने पञ्चायतन पूजा हो वा होइन?

उत्तर—कुनै किसिमको मूर्त्तिपूजा गर्नुहुँदैन, तर तल लेखिएअनुसार का 'मूर्त्तिमान्' हरूको पूजा अर्थात् सत्कार गर्नुपर्दछ। त्यस पञ्चदेवपूजा वा पञ्चायतनपूजा शब्दको अर्थ धेरै राम्रो छ, तर हिजोआज शिव आदि पाँचको मूर्त्ति बनाएर पूजा गर्ने विद्याहीन मूर्खहरूले त्यसको उत्तम अर्थलाई छोडेर निकृष्ट अर्थलाई ग्रहण गरेका हुन्। तिनको खण्डन त माथि भैसक्यो तर सच्चा 'पञ्चायतन' वेदोक्त र वेदानुकूल अन्यत्र बताइएको देवपूजा र मूर्त्तिपूजा हो। जस्तै—

मा[नो] वधीः पितरं मोत मातरम्॥ १ ॥ —यजुः०॥

आचार्य उपनयमानो.......ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ २ ॥

अतिथिर्गृहानुपगच्छेत् ॥ ३ ॥ —अथर्व०॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥ ४ ॥ —ऋग्वेदे॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ५ ॥

—तैत्ति०उप० १।१

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥

—शतपथ १४।५।७।१०

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥ ७ ॥ —तैत्ति०उप० १।११

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या पूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥

—मनुस्मृति ३।५५

पूज्यो हि देववत् पतिः ॥ ९ ॥ —मनुस्मृति ५।१४४

पहिलो—मूर्तिमती पूजनीय देवता '**आमा**' हुन् अर्थात् सन्तानहरूले तन, मन धनद्वारा आमाको सेवा गरेर प्रसन्न राख्नुपर्दछ। हिंसा अर्थात् कहिल्यै ताडना गर्नुहुँदैन।

दोस्रो—सत्कार गर्न योग्य देव '**पिता**' हो, उनको पनि माताको जस्तैगरी सेवा गर्नुपर्दछ ॥ १ ॥

तेस्रो—विद्या दिने गुरु वा आचार्य को सेवा तन, मन, धनद्वारा गर्नुपर्दछ ॥ २ ॥

चौथो—विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबैको उन्नति चाहने, जगत्मा भ्रमण गर्दै सत्य उपदेशद्वारा सबैलाई सुखी पार्ने '**अतिथि**'को सेवा गर्नुपर्दछ ॥ ३ ॥

पाँचौं—पत्नीका लागि पति र पतिका लागि पत्नी पूजनीय हुन्छन् ॥ ४ ॥

यी पाँच मूर्तिमान् '**देव**' हुन्। यिनकै सङ्गतबाट मनुष्य–शरीरको उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या र सत्य उपदेशको प्राप्ति हुन्छ। यी नै परमेश्वर सम्म पुग्ने खुड्किला हुन्। यिनको सेवा नगरेर ढुङ्गा का मूर्तिको पूजा गर्नेहरू पूरै वेदविरोधी हुन्।

प्रश्न—आमा–बाबु आदिको सेवा पनि र मूर्तिपूजा पनि गर्ने गरेमा त कुनै दोष हुनेछैन?

उत्तर—ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजा पूरै छोड्नु र आमा आदि मूर्तिमान्को सेवा गर्नमा नै कल्याण हुन्छ। आमा आदि साक्षात् प्रत्यक्ष सुखदायक '**देव**'हरूलाई छोडेर अदेव ढुङ्गा आदिमा टाउको ठोक्न स्वीकार गरिनु

ठूलो अनर्थको कुरा हो। आमा, बाबु आदिका समक्ष नैवेद्य वा पूजा–भेटी केही चढाएमा उनीहरूले नै नैवेद्य खानेछन् र भेटी लिनेछन् अनि आफ्नो हात त केही पनि पर्ने छैन भन्ने कारणले नै बाबु आमा आदिको सेवा आदिको सट्टा यो मूर्त्तिपूजालाई मान्न थालिएको हुनुपर्दछ। यसैकारण ढुङ्गा आदिका मूर्त्ति बनाएर, त्यसको अगाडि नैवेद्य राखेर, घंटानाद, टं टं, पूँ पूँ र शङ्ख बजाएर, होहल्ला गरेर औंठो देखाएर अर्थात् '**त्वमङ्गुष्ठं गृहाण भोजनपदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि**' कसैले कसैलाई झुक्याउन वा खिज्याउन केटाकेटीले 'माछो–माछो भ्यागुतोको' खेल खेलेजस्तै औंठो देखाएर उसको अगाडिबाट सबै पदार्थ लिएर भागेजस्तै लीला यी पुजारीहरू अर्थात् पूजा नाम गरिएको सत्कर्मका शत्रुहरूको छ। यिनीहरू झिलीमिली झल्कने आकर्षक मूर्त्ति बनाएर आफू पनि ठगहरूजस्तै सज–धज बनेर बिचरा मूर्ख अनाथहरूलाई लुट्छन् र आफैं मस्ती लिन्छन्। कुनै धार्मिक राजा भएको भए यी ढुङ्गा प्रेमीलाई ढुङ्गा फुटाउने, रोडा आदि बनाउने तथा घर बनाउने आदि काममा लगाएर खान–पान आदिको निर्वाह हुन योग्य धनादि दिने थियो।

प्रश्न—ढुङ्गा आदिकै स्त्रीको मूर्त्ति देख्नाले कामोत्पत्ति भएजस्तै वीतराग शान्तको मूर्त्ति देख्नाले वैराग्य र शान्तिको प्राप्ति किन हुँदैन?

उत्तर—त्यस मूर्त्तिको जडत्वधर्म आत्मामा आउने र विचारशक्ति घट्ने हुनाले त्यसो हुनैसक्तैन। विवेकविना वैराग्य, वैराग्यविना विज्ञान र विज्ञानविना शान्ति हुँदैन। अलिकति केही हुन्छ भने पनि त्यो त तिनको सङ्गत, उपदेश र इतिहास आदिलाई देख्नाले हुन्छ, किनकि कसैको गुणदोष नजानी त्यसको मूर्त्तिमात्र देख्नाले प्रीति हुँदैन। गुण–ज्ञान नै प्रीति हुनुको कारण हो। यस्ता मूर्त्तिपूजा आदि गलत कारणबाटै आर्यावर्त्तमा करौडौं मानिस निकम्मा पुजारी, भिक्षुक, अल्छी, पुरुषार्थरहित भएका हुन्। तिनीहरूले नै संसारमा मूर्खता फैलाएका हुन्। यसबाट धेरैजसो झूठ–छल पनि फैलिएको हो।

प्रश्न—हेर, काशीमा बादशाह औरङ्गजेबलाई 'लाटभैरव' आदिले ठूला–ठूला चमत्कार देखाएका थिए। मुसलमानहरूले त्यसलाई तोड्न–भत्काउन जाँदा र त्यसमाथि तोप गोला आदि हान्दा ठूला–ठूला भवँराहरू निस्केर सम्पूर्ण फौजलाई व्याकुल पारेर भगाइदिएका थिए।

उत्तर—यो ढुङ्गाको चमत्कार होइन, त्यहाँ भवँराका गोला रहेका होलान्। भवँराको स्वभाव क्रूर हुन्छ। तिनलाई कसैले चलाएमा टोक्न दौडिहाल्छन्। अनि त्यहाँ दूधको धाराको चमत्कार हुन्थ्यो भने त्यो त

पुजारीको लीला थियो।

प्रश्न—हेर, म्लेच्छलाई दर्शन नदिन महादेव कुवामा र वेणीमाधव एउटा ब्राह्मणका घरमा पुगेर लुकेका थिए, के यो पनि चमत्कार होइन ?

उत्तर—तिनका कालभैरव, लाटभैरव आदि भूत, प्रेत र गरुड आदि गण रक्षक थिए भने तिनै रक्षकले मुसलमानहरूसँग लडेर तिनलाई किन भगाएनन् ? किन आफू अन्तै गएर लुक्नुपर्यो ? पुराणहरूमा महादेव र विष्णुले त्रिपुरासुर आदि अनेक अति भयङ्कर दुष्टहरूलाई भस्म गरिदिए भन्ने कथा छन् भने तिनले मुसलमानहरूलाई किन भस्म गरेनन् ? यसबाट ती बिचरा ढुङ्गा के लड्न–लडाउन सक्थे र ? भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। मुसलमानहरू मन्दिर र मूर्त्तिलाई भत्काउँदै र फुटाउँदै काशी नजिक आइपुगेपछि पुजारीहरूले त्यस ढुङ्गाको लिङ्गलाई कुवामा हाले र वेणीमाधवलाई ब्राह्मणको घरमा लुकाइदिए। कालभैरवको डरले यमदूत पनि काशीमा जाँदैनन् र प्रलयकालमा पनि ती काशीको नाश हुन दिंदैनन् भने म्लेच्छका दूत त्यहाँ पुग्न किन डराएनन् ? र आफ्नो राजमन्दिरको नाश किन हुन दिए ? यो सबै पोपलीला हो।

प्रश्न—गयामा श्राद्ध गर्नाले पितरका पाप छुटेर त्यहाँको श्राद्धको पुण्यप्रभावले पितर स्वर्ग जान्छन् र पितर आफ्ना हात थापेर पिण्ड ग्रहण गर्दछन्। के यो कुरा पनि झूटो हो त ?

उत्तर—पूरै झूटो हो। पिण्ड दिएको प्रभाव त्यही हो भने पितरको सुखका निम्ति पुरेतहरूलाई दिएको लाखौं रुपैयाँको उपयोग गयावासी वेश्यागमन आदि पापमा गर्दछन्, त्यो पाप किन छुट्तैन ? अर्को कुरा, हिजोआज पण्डा–पुरेतहरूका हातबाहेक कतै पनि हात थापेको देखिंदैन। यो कुरा पनि कुनैबेला कुनै धूर्त्तले पृथ्वीमा गुफा खनेर त्यसमा कुनै मानिसलाई बसाइदियो होला। कुनै धन भैकनका अन्धा व्यक्तिलाई यसरी ठगेको भए कुनै आश्चर्य छैन। त्यस्तै बैजनाथलाई रावणले ल्याएको थियो भन्ने कुरापनि मिथ्या हो।

प्रश्न—हेर, कलकत्ताकी काली र कामाक्षा आदि देवीलाई लाखौं व्यक्ति मान्दछन्। के यो चमत्कार होइन ?

उत्तर—केही पनि चमत्कार छैन। ती अन्धाहरू भेडाजस्तै एउटाका पछि अरू हिंड्छन्। कुवा, खाल्डोमा पर्दछन्, तर हट्नसक्तैनन्। त्यस्तै एउटा मूर्खको पछिलागेर अरूपनि मूर्त्तिपूजारूपी खाल्डोमा फँसेर दुःख पाउँछन्।

प्रश्न—लौ यो त भैगयो, तर जगन्नाथजीमा त प्रत्यक्ष चमत्कार

छ। एउटा चोला बदल्दा समुद्रमा आफैं चन्दनको लाठो आइपुग्दछ। चूलोमाथि एउटामाथि अर्कोगरी खप्टेर सात हाँडी राखेमा माथि माथिका हाँडीमा अघि पाक्दछ। त्यहाँ कसैले जगन्नाथको परसादी नखाएमा त्यो कोढी हुन्छ। रथ आफैं चल्दछ, पापीलाई दर्शन हुँदैन। इन्द्रदमनको राज्यमा देवताहरूले मन्दिर बनाएका हुन्। चोला बदल्ने बेला राजा, एउटा पंडा र एउटा सिकर्मी मर्ने आदि चमत्कारलाई तिमी झूटो सिद्ध गर्नसक्ने छैनौ।

उत्तर—बाह्र वर्षसम्म जगन्नाथको पूजा गर्ने व्यक्ति विरक्त भएर मथुरा आएको थियो र मलाई भेटेको थियो मैले यी कुराको उत्तर सोद्धा उसले यी सबै कुरा झूटा हुन्, भनेको थियो। तर विचारगर्दा वास्तविकता यो रहेछ—चोला बदल्ने समय आउँदा नौकामा चन्दनको काठ राखेर समुद्रमा हाल्छन्। समुद्र लहरीका कारण त्यो किनारामा आइपुग्दछ। त्यसलाई लिएर सिकर्मीहरू मूर्ति बनाउँदछन्। खाना बनाउँदा ढोका थुनेर भान्से बाहेक अरू कसैलाई जान वा हेर्न दिंदैनन्। भुईंमा चारैतिर छओटा र बीचमा एउटा चक्राकार चूलो बनाउँदछन्। ती हाँडीलाई मुन्तिर घिउ, माटो र खरानी लगाएर छओटा चूलामा चामल पकाएर, तिनको पिंधलाई माझेर, त्यस बीचको हाँडीमा त्यसै समय चामल हालेर, छओटा चूलाको मुखलाई फलामका तावाले छोपेर दर्शन गर्ने धनाढ्य व्यक्तिलाई बोलाएर देखाउँदछन्। माथि–माथिका हाँडीबाट पाकेको भात निकालेर देखाएर तलको काँचो चामल निकालेर देखाएर तिनीहरूसँग 'हाँडीका लागि केही भेटी राख' भन्दछन्। ती धन भैकनका अन्धा व्यक्ति रूपैयाँ, असर्फी राख्तछन् र कोही त महिनावारी बाँधिदिन्छन्।

शूद्र नीच व्यक्ति मन्दिरमा नैवेद्य ल्याउँछन्। नैवेद्य लगाइसकेपछि ती शूद्र नीच व्यक्तिले जुठो पारिदिन्छन्। पछि कसैले रूपैयाँ तिरेर हाँडी लिएमा त्यसको घरैमा पुर्याइन्छ भने दीनहीन गृहस्थ, साधु–सन्तदेखि शूद्र र अन्त्यजसम्म सबै एउटै पंक्तिमा बसेर एक–अर्काको जुठो खाना खान्छन्। पहिलो पंक्ति उठेपछि तिनै पात वा टपरीमा अरूलाई खान बसाइन्छ। महा–अनाचार हो यो सबै। अनि धेरैजसो मानिस त्यहाँ गएर, तिनको जुठो खानुको साटो आफैं पकाएर खाएर फर्कन्छन् तर कोढ आदि कुनै पनि रोग हुँदैन र त्यस जगन्नाथ पुरीमा बस्नेमा पनि धेरैजसो व्यक्ति परसादी खाँदैनन्, तर तिनलाई पनि कुष्ठ आदि रोग हुँदैनन्। अनि त्यसै जगन्नाथपुरीमा धेरै कोढी छन्। दिनहुँ

जुठो खानाले पनि रोग छुट्‌तैन।

श्रीकृष्ण र बलदेवकी बहिनी पर्ने सुभद्रालाई दुबै दाजु–भाइको बीचमा पत्नी र आमाको ठाउँमा बसाएको हुनाले यो सबै जगन्नाथमा वाममार्गीहरूले भैरवीचक्र चलाएका हुन् भन्ने बुझिन्छ। भैरवीचक्र नभएको भए यस्तो कहिल्यै हुनसक्ने थिएन।

रथका पाङ्ग्रामा कलाकृति गरिएको छ। तिनलाई सोझो घुमाउनाले घुम्दछन् र रथ हिंड्दछ। मेलाको बीचमा पुग्नेबित्तिकै त्यसको किलोलाई उल्टो घुमाइदिनाले रथ रोकिन्छ। पुजारीहरू 'दान देओ, पुण्य गर, अनि जगन्नाथजी प्रसन्न भएर रथ चलाउनेछन्, आफ्नो धर्म रहनेछ' भनी पुकार्दछन्। भेटी आउने क्रम चलेसम्म यसैगरी पुकारिरहन्छन्। भेटी आइसकेपछि एउटा कुनै ब्रजवासी राम्रा लुगा लगाएर र दोसल्ला ओढेर अगाडि उभिएर हात जोडेर स्तुति गर्दछ—'हे जगन्नाथ स्वामिन्! तपाईं कृपा गरेर रथ चलाउनुहोस्, हाम्रो धर्म राखिदिनुहोस्' इत्यादि भनेर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम गरेर रथमा चढ्दछ। त्यसै समय किलालाई सोझो घुमाइदिन्छन् र जय जयकार गर्दै हजारौं मानिस डोरी तान्दछन् र रथ चल्दछ।

मन्दिर धेरै ठूलो हुनाले धेरै मानिस दर्शन गर्न गएका बेलामा दिउँसै पनि अँध्यारो हुन्छ र दियो बाल्नुपर्दछ। ती मूर्त्तिका अगाडि दुबैतर्फकाले पर्दा तान्नेबित्तिकै मूर्त्ति कोल्टोतर्फ पर्दछ। त्यसैबखत पण्डा पुजारी 'तिमीहरू भेटी राख, तिम्रा पाप छुट्नेछन्, अनि दर्शन हुनेछ, छिटो गर' भनी कराउँछन्। ती बिचरा सोझा मानिस धूर्त्तहरूबाट लुटिन्छन् अनि तुरुन्तै अर्को पर्दा तान्दछन् र दर्शन हुन्छ। अनि जय–जय भन्दै प्रसन्न भएर धक्का खाएर तिरस्कृत भएर फर्कन्छन्।

इन्द्रदमनको कुलका व्यक्ति हालसम्म पनि कलकत्तामा छन्। ऊ धनाढ्य राजा र देवीको उपासक थियो। आर्यावर्त्त देशका व्यक्तिले यसरी खान–पानको झगड़ा मेटाऊन् भन्ने उद्देश्यले उसले लाखौं रुपैयाँ खर्च गरेर मन्दिर बनाउन लगाएको थियो। तर ती मूर्ख–मूर्खतालाई किन छोड्थे र? देव मान्दछौ भने मन्दिर बनाउने शिल्पी–कालीगडलाई नै मान्नु उचित हुन्छ।

राजा, पाण्डा र सिकर्मी त्यसबखत मर्दैनन्, ती तिनै त्यहाँ प्रमुख हुन्छन्। साना व्यक्तिलाई दुःखदिन्थे होलान्। चोला बदल्ने समयमा तिनै उपस्थित रहन्छन्। मूर्त्तिको भित्रको भाग खोक्रो हुन्छ त्यसमा सुनको सम्पुटमा एउटा शालिग्राम राख्दछन्। त्यसलाई धोएर प्रतिदिन

चरणामृत बनाउँछन्। त्यसमा ती सताइएका व्यक्तिहरूले रात्रिको शयन आरतीको बेलामा विषको तेजाब लगाइदिए होलान्। त्यसलाई धोएर तिनले तिनैलाई पियाए होलान् र त्यसैले कुनैबेला ती मरेका होलान्। यसरी मरेका कुरालाई भोजनभट्टहरूले 'जगन्नाथजीले आफ्नो शरीर बदल्ने समयमा तिनै भक्तलाई पनि आफूसँगै लगे' भनी प्रचार फिंजाएको हुनुपर्दछ। अरूको धन ठग्नका निम्ति यस्ता झूठा कुरा धेरैजसो हुनेगर्दछन्।

प्रश्न—रामेश्वरमा गंगोत्तरीको जल चढाउँदा लिङ्ग बढ्दछ भन्ने कुरा पनि के झूटो हो?

उत्तर—झूठो हो। त्यस मन्दिरमा पनि दिउँसै अँध्यारो रहन्छ। दिन–रात दीपक बालिन्छन्। जलको धारा छोड्दा पानीमा बिजुली चम्केझैं दीपकको प्रतिबिम्ब टल्किन्छ, अरू केही पनि होइन। ढुङ्गो न त घट्छ, न बढ्दछ, त्यो त जत्तिकोत्यत्ति नै रहन्छ. यस्तो लीला गरेर बिचरा निर्बुद्धिहरूलाई ठग्दछन्।

प्रश्न—रामेश्वरलाई रामचन्द्रले स्थापित गरेका हुन्। मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध भएको भए रामचन्द्रले किन मूर्त्तिस्थापना गर्थे र वाल्मीकिले किन रामायणमा लेख्ने थिए?

उत्तर—रामचन्द्रको समयमा त्यस लिंग वा मन्दिरको नाम निशान पनि थिएन तर दक्षिणदेशका राम नामक राजाले मन्दिर बनाउन लगाएर लिङ्गको नाम रामेश्वर राखेको थियो भन्ने कुरा ठीकै हो। रामचन्द्रले सीताजीलाई लिएर हनुमान आदिसँग लङ्काबाट हिंडेर आकाशमार्गद्वारा विमानमा बसेर अयोध्या आउँदा सीताजीसँग यसो भनेका थिए—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
सेतुबन्ध इति विख्यातम्॥

—वाल्मीकि रामायण लङ्का काण्ड सर्ग १२३। श्लोक २२,२१॥

हे सीता! तिम्रो वियोगमा व्याकुल भएर घुम्दै यसै ठाउँमा मैले चातुर्मास गरेको थिएँ र परमेश्वरको उपासना, ध्यान पनि गर्दथें। उसै सर्वत्र विभु=व्यापक देवहरूको देव महादेव परमात्माको कृपाबाट यहाँ मलाई सबै सामग्री प्राप्त भएका थिए। अनि हेर, मैले यो पुल बनाएर लङ्कामा आएर त्यस रावणलाई मारेर तिमीलाई ल्याएको हुँ। यसबाहेक वाल्मीकि रामायणमा केही पनि त्यस्तो लेखिएको छैन।

प्रश्न—'रङ्ग है कालियाकान्तको। जिसने हुक्का पिलाया सन्तको' दक्षिण भारतमा एउटा कालियाकान्तको मूर्त्ति छ। त्यसले

हालसम्म पनि हुक्का तान्ने गर्दछ। मूर्त्तिपूजा झूटो भए यो चमत्कार पनि झूटो ठहर्छ त?

उत्तर—झूटो हो, पूरै झूटो। यो सबै पोपलीला हो। त्यस मूर्त्तिको मुख खोक्रो होला, त्यसको पछाडि प्वाल पारेर भित्ताबाट अर्कोतर्फ अर्कै कोठामा नली लगाएका होलान्। पुजारीले चिलिम भर्न लगाएर हुक्कामा लगाएर, मुखमा नली जमाएर पर्दा हालेर निस्कने बित्तिकै पछाडिको व्यक्तिले मुखले तान्दोहोला, अनि यता हुक्का गडगड गर्दो होला। दोस्रो प्वाल भने नाक र मुखसँग जोडिएको हुँदो हो। पछाडिबाट फुक्दा नाक र मुखका प्वालबाट धुवाँ निस्कँदो हो। अनि त्यसैसमय धेरैजसो मूर्खहरूबाट धनादि पदार्थ लुटेर तिनलाई दरिद्र बनाउँदा हुन्।

प्रश्न—हेर, डाकोरजीको मूर्त्ति द्वारिकाबाट भक्तजनसँगै आएछ। एउटा सवा रत्ती सुनको टुक्रासँग अनेक मनको मूर्त्ति जोखियो। के यो पनि चमत्कार होइन?

उत्तर—त्यसो होइन। त्यो भक्तले मूर्त्तिलाई चोरेर ल्यायो होला र जोखाइको कुरा भने अवश्य पनि कुनै भाँङ्को नशालु व्यक्तिले गफ हाँकेको हुनुपर्दछ।

प्रश्न—अनि के त, सोमनाथजी पृथ्वीभन्दा माथि बस्तथे र ठूलो चमत्कार थियो भन्ने कुरा पनि मिथ्या नै हो त?

उत्तर—हो, मिथ्या हो। सुन, तल–माथि चुम्बकीय पदार्थ लगाइएका थिए, तिनैको आकर्षणद्वारा त्यो मूर्त्ति बीचमै टिकेको थियो। महमूद–गजनवीले त्यहाँ आएर लड्दा चमत्कार चाहिं यही भयो कि सोमनाथको मन्दिर भत्काइयो, पुजारी भक्तजनको दुर्दशा भयो र दसहजार सेनाले लाखौं सेनालाई धपायो। पोप पुजारी भने पूजा, पुरश्चरम, स्तुति, प्रार्थना गरिरहेका थिए—'हे महादेव, यस म्लेच्छलाई मारिदेऊ, हाम्रो रक्षा गर।' उता आफ्ना चेला राजाहरूलाई सम्झाउँदथे—'हजुर निश्चिन्त रहिबक्स्योस्, महादेवजीले भैरव अथवा वीरभद्रलाई पठाइदिनेछन्। उनले सबै म्लेच्छरूलाई मार्नेछन् वा अन्धा गरिदिनेछन्।' हाम्रो देउता सिद्ध हुनेनै वाला छ। हनुमान्, दुर्गा र भैरवले स्वप्नमा 'हामी सबै काम गरिदिनेछौं' भनेका छन्। आदि ती बिचरा सोझा राजा र क्षत्रियहरू पोपहरूको छक्याइको विश्वासमा परे। कतिका ज्योतिषी पोपहरूले 'अहिले तिमीले चढाइ गर्ने मुहूर्त्त छैन' भने। कुनैले आठौं चन्द्रमा बतायो भने अर्कोले योगिनी अगाडि परेको बतायो। इत्यादि किसिमले झुक्याइरहे। म्लेच्छका फौजले आएर घेरेपछि दुर्दशाका

साथ ती सबै भागे। कतिका पोप–पुजारी र तिनका चेला समातिए। पुजारीहरूले हात जोरेर 'तीन करोड रूपैयाँ दिन्छौं, मन्दिर र मूर्त्तिलाई नभत्काऊ, नफुटाऊ' भने। मुसलमानले जवाफ दिए—'हामी बुतपरस्त= मूर्त्तिपूजक होइनौं, हामी त बुतशिकन=मूर्त्तिभंजक अर्थात् मूर्त्तिको नाश गर्ने हौं।' अनि गएर मन्दिरलाई भत्काइदिए। माथिको छानो भत्केपछि त्यहाँको चुम्बकीय ढुङ्गो अलग्गिनाले मूर्त्ति तल खस्यो। सुनिन्छ, त्यो मूर्त्ति फोर्दा अठार करोड मूल्य बराबरका रत्न निस्केका थिए। पुजारी–पोपमाथि कोर्रा पर्दा तिनीहरू रुन थाले। म्लेच्छहरूले 'ढुकुटी कहाँ छ?' भने। कुटाइ–पिटाइका डरले तुरन्तै खर खजाना सबै बताइदिए। अनि सम्पूर्ण कोश लुटपीट गरेर, पोप र तिनका चेलालाई 'गुलाम' करदाता बनाएर पिंध्ने काम गराए, घाँस खुर्कन लगाए, दिसा–पिसाब उठाउन लगाए र खान भने चनासम्म मात्र दिए। हरे! किन ढुङ्गाको पूजा गरेर सत्यानाशी भयौ? किन परमेश्वरको भक्ति गरेनौ? जुन भक्तिबाट म्लेच्छका दाँत भाँचेर आफ्नो विजय गर्ने थियौ। हेर, जति मूर्त्तिहरूको पूजा गर्यौ, त्यति शूरवीरहरूको पूजा गरेका भए कति रक्षा हुन्थ्यो? पुजारीहरूले ती ढुङ्गाको भक्ति यतिको गरे तर एउटा मूर्त्ति पनि उडेर ती शत्रुहरूको टाउकोमा बज्रन पुगेन। मूर्त्तिकै सेवा गरेझैं कुनै शूरवीर व्यक्तिको सेवा गरेको भए उसले आफ्ना सेवकहरूलाई सकभर बचाउने थियो र ती शत्रुलाई मार्ने थियो।

प्रश्न—'द्वारकाजीका रणछोड़जीले नर्सिमहितालाई हुण्डी पठाएर उसको ऋण चुक्ता गरिदिएका थिए' इत्यादि कुरा पनि के झूठा हुन्?

उत्तर—कुनै साहुकारले रुपैयाँ दियो होला, त्यसैलाई कसैले 'श्रीकृष्णले पठाएको' भनेर झूटो नाम उडाइदियो होला। संवत् १९१४ सालमा अंग्रेजहरूले मन्दिर मूर्त्तिलाई तोप हानेर उडाउँदा ती मूर्त्ति कहाँ गएका थिए? उता भाघेर जातिका व्यक्तिहरूले धेरै वीरता प्रदर्शित गरेर लडेका र शत्रुलाई मारेका थिए भने मूर्त्तिले त कुनै झिंगाको एउटा खुट्टो भाँच्न पनि सकेनन्। कोही श्रीकृष्णजस्तै भएको भए यिनको उछित्तो पारिदिन्थे। यिनीहरू भागाभाग गर्ने थिए। कसैको रक्षक नै कुटाइ–पिटाइ खान्छ भने त्यसका शरणागत किन पिटिने छैनन्?

प्रश्न—ज्वालामुखी त प्रत्यक्ष देवी हुन्, सबैलाई खाइदिन्छिन्। प्रसाद दिंदा आधा खाएर आधा छोडिदिन्छिन्। मुसलमान बादशाहहरूले ती देवीमाथि पानी को नहर हाल्न लगाउँदा र फलामका तावा राख्न लगाउँदा पनि ज्वाला न त निभ्यो, न रोकियो। त्यस्तै हिंगलाज पनि

आधीरातमा पहाडमा सवारी भएकी देखिन्छिन् र पहाडलाई गर्जन गराउँछिन्। चन्द्रकूप बोल्दछ र यो नियन्त्रबाट निस्कनाले पुनर्जन्म हुँदैन। ठुमरा बाँध्नाले पूर्णमहापुरुष कहलाइन्छ भने हिंगलाज पुगेर नआएसम्म आधा महापुरुष भइन्छ। इत्यादि कुरा के मान्नयोग्य होइनन्?

उत्तर—होइन। त्यो त ज्वालामुखीबाट आगो=लावा निस्कन्छ। त्यसमा पुजारीहरूले विचित्र लीला गरेका हुन्। खारेको घिउको चम्चामा आगो बल्ने, छुट्ट्याउँदा वा फुक्ता निभ्ने र अलिकति घिउलाई खाने, बाँकी छाडिदिने भएजस्तै त्यहाँको कुरा हो। कुनै चुलोमा दन्किएको ज्वालामा हालेको जेपनि भस्म हुने र जङ्गल वा घरमा आगो सल्किनाले सबैलाई त्यस आगोले भस्म गरेजस्तै त्यहाँ एउटा मन्दिर, कुण्ड र यताउति नलको रचनाबाहेक खासकुरा के छ र? हिंगजालमा कुनै सवारी हुँदैन, त्यहाँ हुने सबैकुरा पोप-पुजारी का लीलाबाहेक अरू केही पनि होइन। एउटा पानी र हिलोको कुण्ड बनाइएको छ। यसको मुन्तिरबाट बुलबुला उठ्दछन्। मूर्खहरू त्यसैलाई यात्राको सफलता मान्दछन्। तिनीहरूले धनहरण गर्नका निम्ति योनिको यन्त्र बनाउन लगाएर राखेका हुन्। अनि ठुमरा=जन्तर पनि त्यस्तै पोपलीलाकै हुन्। त्यसबाटै महापुरुष हुनेभए एउटा पशुमाथि ठुमराको भारी बोकाइदिएमा के त्यो महापुरुष हुनेछ? महापुरुष त धेरै उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थबाट भइन्छ।

प्रश्न—अमृतसरको पोखरी अमृतरूप छ, एउटा मुरेठीको फल आधा गुलियो हुन्छ र एउटा भित्तो नुहेपनि झर्दैन। रेवालसरमा बेडा वार-पार तर्दछन्, अमरनाथमा आफैं नै लिङ्ग बन्दछन्, हिमालयबाट परेवाको जोडी आएर सबैलाई दर्शन दिएर जान्छन्। के यो कुरा पनि मान्न योग्य होइन?

उत्तर—होइन। त्यस पोखरीको नाममात्र अमृतसर हो। कुनैबेला त्यहाँ जङ्गल हुँदा त्यसको पानी राम्रो-मीठो हुँदो हो। यसैले त्यसको नाम 'अमृतसर' राखिएको होला। पुराणीहरूले मानेजस्तै अमृत हुँदो हो त कोहीपनि किन मर्दो हो? भित्ताको बनावट नै नुहुने तर नलड्ने किसिमको होला। रीठा कलमका पैबन्दी होलान् अथवा गफमात्र होला। रेवालसरमा बेडा तर्दछन् भन्ने कुरामा केही कारीगरी हुनुपर्दछ। अमरनाथमा हिउँका पहाड बन्दछन् भने पानी जमेर स-साना लिङ्ग बन्नुमा कुन ठूलो आश्चर्य हो? अनि परेवाको जोड़ा भने पालिएका हुँदा हुन्, पहाड़को कोल्टोतर्फबाट तिनलाई उडाएर देखाएर मानिस

धनसम्पत्ति हरण गर्दाहुन्।

प्रश्न—हरद्वार स्वर्गको द्वार हो, हरकी पैडीमा स्नान गर्नाले पाप छुट्तछन्। तपोवनमा बस्नाले तपस्वी भइन्छ। देव प्रयाग, गंगोत्तरीमा गोमुखको र उत्तरकाशीमा गुप्तकाशी, त्रियुगीनाराणको दर्शन हुन्छ। केदार र बद्रीनारायणको पूजा ६ महिनासम्म मानिस र ६ महिना देवताहरू गर्दछन्। नेपालमा पशुपति महादेवको मुख हो, नितम्ब केदार हो, घुँडा तुङ्गनाथमा र गोडा अमरनाथमा छन्। यिनको दर्शन, स्पर्शन र स्नान गर्नाले मुक्ति हुन्छ। त्यहाँ केदार र बद्रीबाट स्वर्ग जानचाहेमा जान सकिन्छ। इत्यादि कुरा कस्ता हुन्?

उत्तर—हरद्वार उत्तरबाट पहाडतर्फ जान एउटा बाटोको आरम्भ हो। 'हरकीपौड़ी' भनेको स्नानका निम्ति बनाइएको खुड्किला समेत रहेको एउटा कुण्ड हो। त्यसमा देश-देशान्तरका मृतकका हाड़ हालिने हुनाले साँच्चै भनौं भने त्यो त 'हाडपैडी' हो। पाप नभोगिकन न त छुट्तछन् न काटिन्छन्। 'तपोवन' जहिले थियो थियो, अब त त्यो 'भिक्षुकवन' छ। तपोवनमा जानाले वा बस्नाले कहिल्यै तप हुँदैन, तप त गर्नाले हुन्छ। त्यहाँ त धेरैजसो झूट बोल्ने पसलेहरूपनि बस्तछन्, के तिनको पनि पाप छुट्नेछ?

'हिमवतः प्रभवति गङ्गा' पर्वतको माथिल्लो भागबाट पानी खस्तछ। गोमुखको आकार पैसा ठग्नेहरूले बनाएका होलान् र त्यही पहाड़ पोप-पुजारीहरूको स्वर्ग हो। त्यहाँ उत्तरकाशी आदि ठाउँ ध्यान गर्नेहरूका लागि राम्रो छ तर त्यहाँ पनि व्यापारीहरूको व्यापार नै चल्दछ। **'देवप्रयाग'** पुराणका गफहरूको लीला हो अर्थात् अलखनन्दा र गङ्गा मिलेको ठाउँमा देवता बस्तछन् भन्ने गफ न हाँकेमा त्यहाँ को जान्छ र धन कसले दिने? गुप्तकाशी होइन त्यो त प्रसिद्ध काशी हो। त्यहाँ तीन युगको धुनी त देखिंदैन तर पोप-पुजारीका दस-बीस पुस्ताको भने हुनसक्तछ। त्यो खाखीहरूको धुनी र पारसीहरूको अग्यारी सधैं बलेजस्तै हो। पहाडभित्र ऊष्मा=गर्मी हुन्छ, त्यसैमा तातेर आएको पानीको कुण्ड नै **'तप्तकुण्ड'** हो। त्यसको नजिकै अर्को कुण्डमा माथि गर्मी नभएको ठाउँको पानी आउँछ, यसकारण त्यो चिसो छ। केदारको ठाउँ धेरै राम्रो छ। तर त्यहाँपनि एउटा स्थिर ढुङ्गामाथि पुजारी वा तिनका चेलाले मन्दिर बनाएका छन्। त्यहाँ महन्त, पुजारी, पण्डा-पुरेत धन भैकनका अन्धाहरूबाट धन लिएर विषय भोगको आनन्द लिन्छन्। त्यस्तै बद्रीनारायणमा धेरैजसो ठगविद्यावान् बस्तछन्।

त्यहाँका प्रमुख **'रावलजी'** छन्, एउटी स्त्रीलाई छोडेर अनेक स्त्री राखेका छन्। **एउटा मन्दिरको नाम पशुपति र मूर्त्तिको नाम 'पञ्चमुखी' राखेका छन्। सोधपुछ गर्ने कोही नहुँदा नै यस्ता लीला बढ्दैजान्छन्। तर तीर्थका व्यक्ति जस्तो धूर्त्त धन ठग्ने हुन्छन्, पहाडबासीहरू त्यस्ता हुँदैनन्। त्यहाँको भूमि बडो रमणीय र पवित्र छ।**

प्रश्न—विन्ध्याचलमा विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य हुन्। विन्ध्येश्वरी तीन समयमा तीन रूप बदल्दछिन्। उनको टहरोमा एउटा झिंगो पनि हुँदैन। प्रयाग तीर्थराज हो, त्यहाँ टाउको खौरिनाले सिद्धि हुन्छ। गङ्गा–यमुनाको सङ्गममा स्नान गर्नाले इच्छासिद्धि हुन्छ। त्यस्तै **'अयोध्या'** नगरी धेरैपटक उडेर बस्तीसहित स्वर्ग गइन्। **'मथुरा'** सबै तीर्थभन्दा धेरै हो, **'वृन्दावन'** लीला–स्थान हो र गोवर्धन ब्रजयात्रा ठूलो भाग्यले मात्र हुन्छ। सूर्यग्रहणमा कुरुक्षेत्रमा लाखौंको मेला हुन्छ। यी सबै कुरा के मिथ्या हुन्?

उत्तर—प्रत्यक्षरूपमा त विन्ध्येश्वरीमा तीन मूर्त्ति आँखैले देखिन्छन् र ती तिनै ढुङ्गाका मूर्त्ति हुन् तथा तीन कालमा तीन प्रकारको रूप देखिने कारण भने पुजारीहरूद्वारा वस्त्र–आभूषण आदि लगाइदिने चातुर्य हो। अनि झिंगा त हजारौं लाखौं हुन्छन्, मैले आफ्नै आँखाले देखेको छु। **'प्रयागमा'** कोही हजाम (नाईं) श्लोक बनाउन जान्ने हुँदो हो, अथवा उसले पोप–पुजारीलाई केही धनदिएर मुण्डनको माहात्म्य बनाएको वा बनाउन लगाएको हुनुपर्दछ। प्रयागमा स्नान गर्नाले स्वर्ग गइन्छ भने घर घर फर्किने कोही पनि त नदेखिनु पर्ने हो, तर सबै घर फर्केका देखिन्छन्। अथवा त्यहाँ कोही डूबेरै मर्यो भने उसको जीव पनि आकाशमा वायुसँग घुमेर पुनः जन्म लिदो नै हो। **'तीर्थराज'** नाम पनि धन ठग्नेहरूले राखेका हुन्। जड़वस्तुमा राजा–प्रजाभाव कहिल्यै हुनसक्तैन। अयोध्यानगरी पूरै बस्ती=कुकुर, गधा, च्यामे, पोडे, चोर, जार आदिसमेत तीनपटक स्वर्ग पुगेको भन्ने कुरा पूर्णतया असम्भव छ। अयोध्या त स्वर्ग गएको छैन, जहाँको त्यहीं छ, तर पोप–पुजारीका मुख र गफमा भने अयोध्या स्वर्गतर्फ उडेको हो। यो शब्दरूपी गफ उड्ने–फिर्ने गर्दछ। यस्तै नैमिषारण्य आदिका कुरा पनि यिनैका लीला हुन् भन्ने बुझ्नुपर्दछ।

'मथुरा' तिनैलोकमा निरालो=विशेष त होइन तर त्यहाँ तीन जन्तु भने अवश्य ठूलो लीलाधारी छन्। तिनै तीन किसिमका जन्तुको

कारण जल, थल र अन्तरिक्षमा कसैलाई सुख प्राप्तहुन बडो कठिन हुन्छ। पहिला—**'चौबे'** स्नान गर्न जानेहरूसँग आफ्नो कर लिन पर्खिरहेका र कराइरहेका हुन्छन्—'ल्याऊ यजमान! भाङ्, खुर्सानी र लड्डु खाऔं, पिऔं र यजमानकै जय जय मनाऔं।' दोस्रो—**'कछुवा'** पानीमा टोकिहाल्ने किसिमका हुन्छन्, तिनैको कारण घाटमा स्नान गर्न पनि कठिन हुन्छ। तेस्रो—माथि आकाशमा अर्थात् रुख आदिमा राता–राता मुख भएका **बाँदर** दोपट्टा, टोपी, गहना र जुत्ता पनि छाड्दैनन्। मानिसलाई पनि टोक्छन्, धक्का दिएर लडाउँछन्, मार्दछन्। यी तिनै पोप र पोपका चेलाहरूका पूजनीय हुन्छन्। मानौं चना आदि अन्नबाट कछुवाको, चना–सखर आदिबाट बाँदरको र दक्षिणा तथा लड्डू आदिबाट चौबेहरूको सेवा तिनका सेवकहरू गर्दछन्। अनि वृन्दावन जब लीलास्थान थियो थियो, अब त **'वेश्यावान्'** जस्तै उच्छृङ्खल युवा–युवती र गुरु–चेलीका लीला फैलिरहेछन्। त्यस्तै दीपमालिकाको मेला हुने गोवर्द्धन र ब्रजयात्रामा पनि पोपहरूले भनेजस्तै हुन्छ। कुरुक्षेत्रमा पनि उही पेट पाल्ने लीला हो भन्ने बुझ्नुपर्दछ। यिनमा कोही धार्मिक परोपकारी व्यक्ति भएमा ऊ यस पोपलीलादेखि छुट्टै रहन्छ।

प्रश्न—सनातनदेखि चलिआएको मूर्त्तिपूजा र तीर्थ कसरी झूठा हुनसक्छन् र?

उत्तर—तिमी सनातन केलाई भन्दछौ? परा–पूर्वदेखि चलिआएकोलाई सनातन भनिन्छ। यो मूर्त्तिपूजा र तीर्थ परापूर्वकालदेखि चलिआएको भए वेद र ऋषिमुनिकृत ग्रन्थहरूमा यिनको नाम किन कतै छैन? यो मूर्त्तिपूजा साढे दुई–तीनहजार वर्ष यता वाममार्गीहरू र जैनीहरूबाट चलेको हो। त्यसअघि आर्य्यावर्त्तमा न त मूर्त्तिपूजा थियो, न यी तीर्थ थिए। जैनीहरूले गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय र आबू आदि तीर्थ बनाएपछि तिनकै देखासिकी यिनीहरूले पनि बनाए। यिनको आरम्भको खोज गर्न चाहनेले पण्डाहरूका सबैभन्दा पुराना बहीखाता र ताम्रपत्र आदि हेरेमा यी सबै तीर्थ पाँचसय वा एक हजार वर्ष यता नै बनेका हुन् भन्ने कुरा निश्चित हुनेछ। एक हजार वर्ष उताको लेख कसैसँग पनि उपलब्ध हुँदैन, यसकारण यी सबै आधुनिक हुन्, न कि सनातन।

प्रश्न—'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति' इत्यादि तीर्थका माहात्म्य वा नाम माहात्म्यका कुरा सच्चा हुन् वा होइनन्?

उत्तर—होइनन्। पाप छुट्ने भए दरिद्रलाई धन, राजपाट, अन्धालाई आँखा प्राप्त हुनुपर्ने हो, कोढीको कोढ छुट्नुपर्ने हो, तर यस्तो हुँदैन। यसकारण कसैको पाप वा पुण्य छुट्तैन।

प्रश्न— **गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।**
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराणका हुन्। सैकडौं, हजारौं कोस टाढाबाट पनि गङ्गा-गङ्गा भन्नेका सबै पाप नष्ट भएर ऊ विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ पुग्दछ॥ १॥ '**हरि**' यी दुई अक्षरको नामको उच्चारणले सबै पाप नष्ट गर्दछ। त्यस्तै राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामको माहात्म्य छ॥ २॥ शिवको अर्थात् लिङ्ग या त्यसको मूर्त्तिको दर्शन विहानै गर्ने व्यक्तिको रात्रिमा गरिएको, मध्याह्नमा दर्शन गर्नाले जन्मभरिको तथा सायंकाल दर्शन गर्नाले सातजन्मको पाप छुट्तछ। दर्शनको यो माहात्म्य छ॥ ३॥ के यो झूटो हुनसक्तछ?

उत्तर—गङ्गा गङ्गा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव र भगवती आदि नाम स्मरणले कहिल्यै पाप नछुट्ने हुँदा उक्त कुरा झूटो हो भन्ने कुरामा शङ्कै छैन। त्यसरी पाप छुट्ने भए कोही पनि दुःखी रहने थिएन। हिजोआज पोपलीला अन्तर्गत पाप बढिरहेजस्तै पाप गर्नदेखि कोही डराउने पनि छैन। हामीले पाप गरेर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा गर्नाले सबै पाप छुट्नेछन् भन्ने विश्वास मूर्खहरूलाई मात्र छ। ती मूर्खहरू यसै विश्वासको आधारमा पाप गरेर यस लोक र परलोकलाई बिगार्दछन्। गरेको पाप वास्तवमा भोग्नैपर्दछ।

प्रश्न—त्यसोभए कुनै तीर्थ, नामस्मरण सत्य छ वा छैन?

उत्तर—छ। वेदादि सत्यशास्त्रलाई पढ्नु-पढाउनु, धार्मिक विद्वान्हरूको सङ्गत, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्यलाई मान्नु, सत्य व्यवहार गर्नु, ब्रह्मचर्यपालन, आचार्य्य-अतिथि-आमा-बाबुको सेवा, परमेश्वरको स्तुति-प्रार्थना-उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण तथा कर्म दुःखहरूबाट पार उतार्ने हुनाले तीर्थ हुन्। जल स्थलमय स्थान विशेष कहिल्यै तीर्थ हुनसक्तैनन्। किनभने '**जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि**' जे-जसो गर्नाले मानिस दुःखबाट पार उत्रन्छन्

तिनकै नाम तीर्थ हो। जल-स्थल पार उतार्ने होइन डुबाएर मार्ने चाहिं हुन्छन्। बरू समुद्र आदिबाट पार उत्रने साधन डुङ्गा आदिको नाम तीर्थ हुनसक्तछ।

समानतीर्थे वासी॥ १॥ —अष्टाध्यायी ४।४।१०७

नमस्तीर्थ्याय च॥ २॥ —यजुर्वेद १६।४२

एउटा आचार्य्यबाट एउटा शास्त्र सँगसँगै पढ्ने सबै ब्रह्मचारी सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थको सेवन गर्ने हुन्छन्। वेदादिशास्त्र र सत्यभाषण आदि धर्मका लक्षणमा श्रेष्ठ व्यक्तिलाई अन्न आदि पदार्थ दिनु र तीबाट विद्याग्रहण गर्नु आदि तीर्थ भनिन्छन्। नामस्मरण यसलाई भनिन्छ—

यस्य नाम महद्यशः॥ —यजुर्वेद ३२।३

परमेश्वरको नाम ठूलो यश अर्थात् धर्मयुक्त कर्म गर्नु हो। जस्तै—ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वरका गुण, कर्म, स्वभावबाटै रहेका हुन्। जस्तै—'**ब्रह्म**'=सबैभन्दा ठूलो, '**परमेश्वर**'=ईश्वरहरूको पनि ईश्वर, '**ईश्वर**'=सामर्थ्ययुक्त, '**न्यायकारी**'=कहिल्यै अन्याय नगर्ने, '**दयालु**'=सबैमाथि कृपादृष्टि राख्ने, '**सर्वशक्तिमान्**'=आफ्नै सामर्थ्यबाटै सबजगत्को उत्पत्ति, स्थिति र प्रलय गर्ने, कसैको सहायता नलिने, '**ब्रह्म**'=जगत्का विविध पदार्थ बनाउने, '**विष्णु**'=सबैमा व्यापक भएर रक्षा गर्ने, '**महादेव**'=सबै देवहरूको पनि देव, '**रुद्र**'=प्रलय गर्ने आदि नामको अर्थलाई आफूभित्र धारण गर्नुपर्दछ। अर्थात् ठूला काममा ठूलो हुनु, समर्थहरूमा समर्थहुनु र आफ्ना सामर्थ्यलाई बढाउँदै जानुपर्दछ। कहिल्यै अधर्म गर्नुहुँदैन, सबैमाथि दयाभाव राख्नुपर्दछ। सबै किसिमका साधनलाई समर्थ बनाउनु पर्दछ। शिल्पविद्याबाट नाना किसिमका पदार्थ बनाउनुपर्दछ। सब संसारमा आफ्नो आत्मामा जस्तै सुख-दुःख सम्झनुपर्दछ। सबैको रक्षा गर्नु र विद्वान्हरूमा पनि विद्वान् हुनुपर्दछ। दुष्ट कर्म गर्नेलाई प्रयत्नपूर्वक दण्ड दिनु-दिलाउनु र सज्जनहरूको रक्षा गर्नुपर्दछ। यसरी परमेश्वरका नामहरूको अर्थ जानेर आफ्ना गुण, कर्म, स्वभावलाई परमेश्वरको गुण, कर्म, स्वभावको अनुकूल बनाउँदै जानु नै परमेश्वरको नामस्मरण गर्नु हो।

प्रश्न—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरु माहात्म्य त सच्चा हो? गुरुका गोडा धोएर पानी खानु तथा गुरुले आज्ञा दिएअनुसार नै कर्म गर्नुपर्दछ। गुरु लोभी भए

वामनजस्तो, क्रोधी भए नृसिंहजस्तो, मोही भए रामजस्तो र कामी भए कृष्णजस्तो गुरुलाई सम्झनुपर्दछ। गुरुजीले जस्तोसुकै पाप गरेपनि गुरुप्रति अश्रद्धा गर्नुहुँदैन। साधु–सन्त वा गुरुको दर्शन गर्न जाँदा पाइलैपिच्छे अश्वमेधको फल पाइन्छ। यो कुरा ठीक हो वा होइन?

उत्तर—ठीक होइन। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर र परब्रह्म नाम परमेश्वरका हुन्। गुरु त्यस परमेश्वरको दाँजोमा कहिल्यै पुग्नसक्तैन। यो गुरु माहात्म्य गुरुगीता पनि एउटा ठूलो पोपलीला हो। 'गुरु' त आमा, बाबु, आचार्य र अतिथि हुन्छन्। तिनकै सेवा गर्नु, तीबाट शिक्षा लिनु–दिनु शिष्य र गुरुको काम हो। तर गुरु लोभी, क्रोधी, मोही र कामी छ भने उसलाई सर्वथा छोड्नु र उक्त दुर्गुण त्याग्ने शिक्षा, उपदेश गर्नुपर्दछ। राम्रो मुखले सम्झाउँदा नमानेमा अर्घ्य–पाद्य अर्थात् ताडनादण्ड=कुटपीट गर्नु र त्यसबाट पनि नमानेमा प्राणै लिनमा पनि कुनै दोष हुँदैन। विद्या आदि सद्गुणमा गुरुत्व हुँदैन भने उक्त विद्या आदि नभएको र देखावटी कंठी, तिलक धारण गर्ने र वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश गर्नेहरू गुरु नभएर गोठाला जस्ता हुन्। गोठालाले आफ्ना भेडा बाख्राबाट दूध आदि प्रयोजन सिद्ध गरेजस्तै तिनीहरू पनि शिष्य वा चेला–चेलीको धनहरण गरेर आफ्नो स्वार्थपूर्ति गर्दछन्। तिनीहरू—

दोहा— गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
भव सागरमें डुबते, बैठ पत्थरकी नाव॥

गुरु, 'चेला चेलीले केही न केही दिने नै छन्' भन्ने सम्झन्छ र चेला भने 'ठिकै छ, गुरु झूटा किरिया खान र पाप छुटाउने काममा आउने नै छन्' भन्ठान्दछन्। यस्तै लोभ–लालचले गर्दा ती दुबै कसैपनि ढुङ्गाका डुङ्गामा बसेर समुद्र तर्न खोज्नेहरू समुद्रमा डुबे जस्तै भवसागरको दुःखमा डुब्दछन्। यस्ता गुरु र चेलाको मुखमा धुलो र खरानी परोस् अर्थात् यस्ताले त माटै खाऊन्। त्यस्ताको अगाडि उभिनु पनि हुँदैन। त्यस्ताको नजिक पुग्ने व्यक्ति दुःखसागरमा पर्नेछ। जस्तो पोपलीला पुजारी–पुराणीहरूले चलाए, त्यस्तै यी गोठाला गुरुहरूले पनि लीला मच्चाएका छन्। यो सब स्वार्थीहरूको काम हो। परमार्थी व्यक्ति त आफू दुःख उठाएर पनि जगत्को उपकार गर्न छोड्दैनन्। गुरुमाहात्म्य र गुरुगीता आदि पनि यिनै लोभी, कुकर्मी गुरुहरूले बनाएका हुन्।

प्रश्न— अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः॥ १॥
इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥ २॥
—महाभारते, आदिपर्व ३।२६७

पुराणानि खिलानि च॥ ३॥ —मनुस्मृति ३।२३२
इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः॥ ४॥
—छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।४
दशमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत॥ ५॥
पुराण विद्या वेद॥ ६॥ —सूत्रम्

अठार पुराणका कर्त्ता व्यासजी हुन्। व्यासवचनको प्रमाण अवश्य मान्नुपर्दछ॥ १॥ इतिहास र पुराण वेदकै अर्थको अनुकूल हुनाले इतिहास, महाभारत, अठार पुराणबाट वेदको अर्थ बुझ्नु–बुझाउनु पर्दछ॥ २॥ पितृकर्ममा पुराण र खिल अर्थात् हरिवंशको कथा सुन्नुपर्दछ॥ ३॥ इतिहास र पुराण पाँचौं वेद भनिन्छन्॥ ४॥ अश्वमेधको समाप्तिमा दसौं दिन अलिकति केही पुराणको कथा सुन्नुपर्दछ॥ ५॥ वेदको अर्थ बताउने हुँदा पुराणविद्या वेद नै हो॥ ६॥ इत्यादि प्रमाणहरूबाट पुराण प्रमाणिक ठहरिन्छन् र पुराणहरूमा मूर्त्तिपूजा र तीर्थस्थलको विधान हुनाले पुराणका प्रमाणबाट मूर्त्तिपूजा र तीर्थहरू प्रामाणिक सिद्ध हुन्छन्॥

उत्तर—अठार पुराणका कर्त्ता व्यासजी भएका भए तिनका यतिका झूठा गफ हुने थिएनन्। शारीरकसूत्र, योगशास्त्रकको भाष्य आदि व्यासकृत ग्रन्थ हेर्दा व्यासजी ठूला विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थिए भन्ने कुरा बुझिन्छ। उनले यस्ता झुठा कथा कहिल्यै लेख्नेथिएनन्। यसबाट सम्प्रदायी, परस्पर विरोधी व्यक्तिहरूले बनाएका नयाँ कपोलकल्पित ग्रन्थहरूमा व्यासजीका गुणहरूको लेशमात्र पनि थिएन भन्ने बुझिन्छ। वेदशास्त्र विरुद्ध असत्य कुरा लेख्ने काम व्यासजस्ता विद्वान्हरूको होइन, यो काम त वेदशास्त्रविरोधी, स्वार्थी अविद्वान्हरूको हो। सत्यशास्त्रहरूमा इतिहास र पुराण भनेर शिवपुराण आदिको नाम भनिएको होइन। त्यो त—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥

यो ब्राह्मणग्रन्थ र सूत्रहरूको वाक्य हो। ऐतरेय, शतपथ, साम र गोपथ यी ब्राह्मणग्रन्थकै पाँच नाम—'इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा र नाराशंसी' छन्। '**इतिहास**'—जस्तै जनक र याज्ञवल्क्यको संवाद, **पुराण**—जगत्को उत्पत्ति आदिको वर्णन, '**कल्प**'—वेदका शब्दहरूको सामर्थ्यको वर्णन र अर्थ निरूपण गर्नु, '**गाथा**'—कसैको दृष्टान्त–दार्ष्टान्तरूप कथा–प्रसंग भन्नु, '**नाराशंसी**'—मानिसका प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्महरूको कथन गर्नु, यिनको यथार्थ तात्पर्य हो। यिनैबाट वेदार्थको ज्ञान हुन्छ। पितृकर्म अर्थात् ज्ञानीहरूको प्रशंसामा केही सुन्नु

र अश्वमेधको अन्त्यमा पनि यिनैलाई सुन्नुपर्ने कुरा लेखिएको छ। व्यासकृत ग्रन्थलाई सुन्ने–सुनाउने काम व्यासजीको जन्मपछि हुनसक्तछ, त्यसअघि हुनसक्तैन। व्यासजीको जन्म हुनुअघि पनि वेदार्थ पढ्ने–पढाउने, सुन्ने–सुनाउने काम हुन्थ्यो। यसैकारण सबैभन्दा प्राचीन ब्राह्मण–ग्रन्थमा नै यो सबै घटित हुनसक्तछ। यी नयाँ कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत्, शिवपुराण आदि मिथ्या वा दूषित ग्रन्थहरूमा उक्त कुरा घटित हुनसक्तैन।

व्यासजीले वेद पढेर, पढाएर, वेदार्थ फैलाएको हुनाले उनको नाम '**वेदव्यास**' भएको हो। वार–पारको मध्यरेखालाई 'व्यास' भनिन्छ यस्तै उनले ऋग्वेदको आरम्भ देखि लिए अथर्ववेदको अन्त्यसम्म चारै वेद पढेका थिए र शुकदेव तथा जैमिनी आदि शिष्यहरूलाई पढाएका पनि थिए। नत्र उनको जन्मको नाम त '**कृष्णद्वैपायन**' थियो। वेदलाई व्यासजीले एकत्रित गरेका हुन् भन्ने कुरा झूटो हो। व्यासजीका पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वशिष्ठ र ब्रह्मा आदिले पनि चारै वेद पढेका थिए। व्यासजीले वेद एकत्र गरेका भए उनका बाबु–बराजुले कसरी वेद पढे?

प्रश्न—पुराणमा सबै कुरा झूठा छन् अथवा कुनै कुरा सच्चा पनि छन्?

उत्तर—धेरैजसो कुरा झूठा छन् भने कुनै कुरा घृणाक्षरन्यायले सच्चा पनि छ। सच्चा कुरा जति वेदादि सत्यशास्त्रका र झूठा जति ती पोपका पुराणरूपी घरका हुन्। जस्तै शिवपुराणमा शैवहरूले शिवलाई परमेश्वर मानेर विष्णु, ब्रह्म, इन्द्र, गणेश र सूर्य्य आदिलाई शिवका दास बताए। वैष्णवले विष्णुपुराण आदिमा विष्णुलाई परमात्मा मानेर शिव आदिलाई विष्णुका दास माने। देवीभागवतमा देवीलाई परमेश्वरी र शिव, विष्णु आदिलाई उसका नोकर बनाए। गणेशखण्डमा गणेशलाई ईश्वर र बाँकी सबैलाई दास भने। यी सबै कुरा सम्प्रदायीहरूका होइनन् भने कसका हुन् त? एउटै मानिसले बनाएको ग्रन्थमा यस्ता परस्परविरुद्ध कुरा हुँदैनन्, अझ विद्वान्ले बनाएकोमा त यस्तो हुनैसक्तैन। यिनमा एउटा कुरालाई सत्य मानेमा दोस्रो झूठो, दोस्रोलाई सत्य माने तेस्रो झूटो र तेस्रोलाई सत्य माने अरू सबै झूटा ठहर्दछन्।

शिवपुराण मान्नेले शिवबाट, विष्णुपुराणीले विष्णुबाट, देवीपुराणका अनुयायीले देवीबाट, गणेशखण्डीले गणेशबाट, सूर्यपुराणीले सूर्यबाट र वायुपुराणीले वायुबाट सृष्टिको उत्पत्ति, प्रलय लेखेर फेरि एक–एकबाट जगतको एउटा–एउटा कारण बताए र तिनको उत्पत्ति एक–

एकबाट भयो भने। यिनीहरूसँग कसैले 'जगत्को उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्ने उत्पन्न हुन र उत्पन्न भएको सृष्टिको कारण हुन के कहिल्यै सक्तछ?' भनी सोधेमा चुपलाग्नुबाहेक केही पनि भन्न सक्तैनन्। अनि यी सबैका शरीरको उत्पत्ति पनि यसैबाट भयो होला। त्यसो हुँदा ती आफैं सृष्टिका पदार्थ र परिच्छिन्न भएर पनि संसारको उत्पत्तिकर्त्ता कसरी हुन सक्छन्? अनि तिनमा उत्पत्ति पनि अत्यन्त विलक्षण एवं असम्भव किसिमको मानिएको छ। जस्तै—

शिवपुराणमा—शिवले 'म सृष्टि गरूँ' भन्ने इच्छा गर्दा एउटा नारायण जलाशयलाई उत्पन्न गरेर त्यसको नाभिबाट कमल र कमलबाट ब्रह्मा उत्पन्न भयो। उसले यो सबै जलमय देख्यो। पानीको अञ्जलि उठाएर हेरेर पानीमै फाल्यो। त्यसबाट एउटा बुलबुलो उठ्यो र बुलबुलाबाट एउटा पुरुष उत्पन्न भयो। त्यसले ब्रह्मासँग 'हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न गर' भन्यो। ब्रह्माले ऊसँग 'म तेरो पुत्र होइन, तँ मेरो पुत्र होस्' भन्यो। तिनमा विवाद भयो र हजारौं दिव्य वर्षसम्म दुबै पानीमै लडिरहे। तिनको लडाइँ देखेर महादेवले 'जस–जसलाई मैले सृष्टि गर्न पठाएको थिएँ, ती दुबै त लडिरहेछन्' भन्ने सोचे, अनि ती दुबैको बीचबाट एउटा तेजोमय लिङ्ग उत्पन्न भयो र त्यो छिटै आकाशमा फैलिंदै गयो। आश्चर्यचकित भई त्यसको आदि–अन्त्य थाहा पाउने विचार गरे र पहिले आदि–अन्त्य पता लगाएर आउने पिता र पछि पत्ता लगाउने वा पत्ता लगाउन नसक्ने पुत्र हुने निधो दुबैले गरे। विष्णु कछुवाको रूप धारण गरेर तल्तिर लाग्यो र ब्रह्मा हाँसको शरीर धारण गरेर मास्तिर उड्यो। दुबै मन जत्तिकै तेजीका साथ हिंडे। दिव्यसहस्र वर्षसम्म दुबै हिंडिरहे तर त्यसको अन्त्य पाउन सकेनन्। अनि विष्णु तलबाट मास्तिर लाग्यो र ब्रह्मा माथिबाट तल्तिर झर्यो। ब्रह्माले सोच्यो, 'उसले पत्ता लगाइसकेको रहेछ भने मैले पुत्र बन्नुपर्नेछ।' यस्तो विचार गर्दा–गर्दै एउटा गाई र एउटा क्यातुकेको बोट माथिबाट झरे। ब्रह्माले तीसँग 'तिमीहरू कहाँबाट आयौ'? भनी सोध्यो। तिनले 'हामी हजारौं वर्षदेखि यस लिङ्गको आधारबाट आइरहेका छौं' भने। ब्रह्माले फेरि सोध्यो—'यस लिङ्गको आदि वा अन्त्य छ वा छैन?' तिनले उत्तर दिए—'छैन'। ब्रह्माले तीसँग भन्यो—'तिमीहरू मसँग हिंड र गाईले चाहिं 'म यस लिङ्गको टाउकोमा दूधको धारा बहाउने गर्दथें' भन्ने साक्षी देऊ र वृक्षले चाहिं 'म पुष्पवर्षा गर्दथें' भन। यस्तो साक्षी बकिदिन्छौ भने म तिमीहरूलाई ठाउँमा पुर्याइदिन्छु।' तिनले 'हामी झूटो साक्षी दिन्नौं'

भने। अनि ब्रह्माले क्रोधित भएर 'यस्तो साक्षी दिंदैनौ भने म तिमीहरूलाई अहिल्यै भस्म गरिदिन्छु' भन्यो। तब दुबैले डराएर 'जसो तिमी भन्छौ त्यस्तै साक्षी दिनेछौं' भने। अनि ती तिनै तल्तिर लागे।

विष्णु पहिल्यै आइपुगेको थियो, ब्रह्मा पनि पुग्यो। ब्रह्माले विष्णुसँग 'थाहा पाइस् वा पाइनस्' भनी सोध्यो। विष्णुले 'मैले यसको थाहा पाइँन' भन्यो। ब्रह्माले 'मैले थाहा पाएँ' भन्यो। विष्णुले 'कुनै साक्षी देऊ' भन्यो। अनि गाई र वृक्षले 'हामी दुबै लिङ्गको टाउकोमा थियौं' भनी साक्षी दिए। त्यत्तिकैमा लिङ्गबाट शब्द निस्कियो र वृक्षलाई सराप्यो—तैंले झूट बोलिस्, यसकारण तेरो फूल म वा अरू कुनै देवतामाथि कहिल्यै चढाइने छैन, कसैले चढायो भने चढाउनेको सत्यानाश हुनेछ। गाईलाई श्राप दियो—'जुन मुखबाट तैंले झूट बोलिस्, त्यसै मुखले दिसा खाने गर्नेछस्। कसैले तेरो मुखको पूजा गर्नेछैन, तर पुच्छरको पूजा गरिनेछ।' ब्रह्मालाई श्राप दियो—'तैंले पनि झूट बोलिस्, अत: संसारमा कतै पनि तेरो पूजा हुनेछैन।' र विष्णुलाई वर दियो—'तैंले सत्य बोलिस्, अत: सर्वत्र तेरो पूजा हुनेछ।'

अनि दुबैले लिङ्गको स्तुति गरे। त्यसबाट प्रसन्न भएर त्यस लिङ्गबाट एउटा जटाधारी मूर्त्ति निस्कियो। मूर्त्तिले 'मैले तिमीहरूलाई सृष्टि गर्न पठाएको थिएँ, किन झगडा गरिरह्यौ ?' भन्यो। ब्रह्मा र विष्णुले 'सामानै नभइ हामी कहाँबाट सृष्टि गरौं ?' भने। त्यसपछि महादेवले आफ्नो जटाबाट एउटा भस्मको गोलो दियो र 'जाओ, यसैबाट सबै सृष्टि बनाओ' भन्यो। इत्यादि।

यी पुराण बनाउनेहरूसँग यति त सोध्नैपर्छ कि—जब सृष्टिका तत्त्व र पञ्चमहाभूत पनि थिएनन् भने त्यतिबेला ब्रह्मा, विष्णु, महादेवका शरीर, जल, कमल, लिङ्ग, गाई र क्यातुकेको रुख र भस्मको गोलो के तिम्रा बाबुको घरबाट आएर बजारिए ?

त्यस्तै भागवतमा विष्णुको नाभिबाट कमल, कमलबाट ब्रह्मा, ब्रह्माको दाहिना गोडाको औंठाबाट स्वायंभव, देब्रे औंठाबाट शतरूपा रानी, ललाटबाट रुद्र तथा मरीचि आदि दस पुत्र, तीबाट दस प्रजापति, तिनका तेह्र छोरीको विवाह कश्यपसँग, तीमध्ये दितिबाट दैत्य, दनुबाट दानव, अदितिबाट आदित्य, विनताबाट पक्षी, कद्रूबाट सर्प, सरमाबाट कुकुर, स्याल आदि र अरू स्त्रीहरूबाट हात्ती, घोडा, ऊँट, गधा, भैंसी, घाँस–पात र बबूल आदि वृक्ष काँडासमेत उत्पन्न भए।

अरे रे भागवत बनाउने लालबुझक्कड! के भनौं! तँलाई यस्ता–

यस्ता झूटा, असम्भव कुरा लेख्नमा अलिकति लाज–सरम पनि लागेन ? कोरा अन्धो नै भइस्। **स्त्री–पुरुषका रजवीर्यको संयोगबाट मानिस त बन्दछन् तर परमेश्वरको सृष्टिक्रमको विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कहिल्यै बन्न सक्तैनन्** भने हात्ती, ऊँट, सिंह, कुकुर, गधा र वृक्ष आदि स्त्रीको गर्भाशयमा स्थित हुने सम्भावना कहाँ रहन्छ र? अनि फेरि सिंह आदिले जन्मेर आफ्ना बाबु–आमालाई किन खाएनन्? अझ मनुष्य शरीरबाट पशु, पक्षी, वृक्ष आदि कसरी उत्पन्न हुनसक्तछन्?

यिनीहरूले बनाएको र हालसम्म पनि संसारलाई भ्रमित पारेको यस नितान्त असम्भव लीलाप्रति शोक प्रकट गर्दछु। यस्ता महाझूठा कुरालाई पनि ती अन्धा पोप=पुरेत–पुजारी र बाहिर–भित्रबाट आँखा फुटेका तिनका चेला सुन्दै र मान्दै आइरहेका छन्। ठूलो अचम्म त के हो भने यी मानिसै हुन् वा अरू केही हुन्? यी भागवत आदि पुराण बनाउनेहरू गर्भमा वा जन्मनेबित्तिकै किन मरेनन्? किनकि यी पापी पोपबाट बचेको भए आर्यावर्त्तदेश दु:खबाट बच्नेथियो।

प्रश्न—'जसको विवाह त्यसैको गीत' भनेजस्तै यी कुरामा विरोध हुनसक्तैन। विष्णुको स्तुति गर्दा विष्णुलाई परमेश्वर अरूलाई दास, अनि शिवको गुणगान गर्दा शिवलाई परमात्मा र अरूलाई नोकर चाकर बनाइएको वा बताइएको हो। अर्को कुरा, परमेश्वरको मायाबाट जेपनि हुन वा बन्न सक्तछ। परमेश्वर मानिसबाट पशु आदि र पशु आदिबाट मनुष्य आदिको उत्पत्ति गर्नसक्तछ। हेर, परमेश्वरले कारणविना नै आफ्नो मायाबाटै सम्पूर्ण सृष्टि खडा गरेको छ। त्यसमा घटित हुनसक्ने कुरा कुन चाहिं छ र? परमेश्वर आफूले चाहेअनुसार जेपनि गर्नसक्तछ।

उत्तर—अरे सोझा भाइ हो! विवाहमा जसका गीत गाइन्छन्, त्यसैलाई सबैभन्दा ठूलो र अरूलाई सानो त बनाइँदैन, निन्दा गरिंदैन अथवा उसैलाई सबैको बाबु त बनाइँदैन। भन त पोपजी! तिमी चारण र भाटभन्दा पनि बढी झूठा गफी हौ वा होइनौ ? जसको पछि लाग्छौ, त्यसैलाई सबैभन्दा ठूलो बनाउँछौ वा बताउँछौ र जसको विरोध गर्दछौ, त्यसलाई सबैभन्दा नीच ठहर गर्दछौ। तिमीलाई सत्य र धर्मसँग के प्रयोजन छ र? तिमीलाई त आफ्नो स्वार्थसँग मात्र मतलब छ। माया मानिसमा हुनसक्तछ। छली, कपटीलाई मायावी भनिन्छ। परमेश्वरमा छल, कपट आदि दोष नहुनाले उसलाई मायावी भन्न सकिन्न। आदि सृष्टिमा कश्यप र कश्यपकी पत्नीहरूबाट पशु, पक्षी, सर्प, वृक्ष आदि सन्तान भएका थिए भने तिनका त्यस्तै सन्तान हिजोआज किन हुँदैनन्?

यस ग्रन्थमा अघि लेखिएको सृष्टिक्रम नै ठीक हो। पोपहरूले भने निम्न ठाउँमा धोका खाएर नै बक–बक गरेका हुन् भन्ने अनुमान छ—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥

—तुलना–शतपथ ७।५।१।५

शतपथमा 'यो सबै सृष्टि कश्यपले बनाएको हो' भनिएको छ।

कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति ॥ —निरुक्त

'पश्यक' अर्थात् '**पश्यतीति पश्यः एव पश्यकः**' निर्भ्रम भएर चराचर जगत्, सबै जीव र यिनका कर्म, सकल विद्यालाई यथावत् देख्ने हुनाले सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरको नाम 'कश्यप' हो तथा महाभाष्यको '**आद्यन्त–विपर्ययश्च**' यस वचनअनुसार आदिको अक्षर अन्त्यमा र अन्त्यको अक्षर आदिमा आउनाले 'पश्यक' बाट नै '**कश्यप**' भएको हो। यसको यथार्थ अर्थ नजानेर भाङ् खाएर सृष्टिविरुद्ध कुरा बताउनमा आफ्नो जन्म नष्ट गरेका हुन्।

जस्तै मार्कण्डेयपुराणको दुर्गापाठमा देवहरूका शरीरबाट तेज निस्किएर एउटी देवी बनी। त्यस महिषासुरलाई मारी। रक्तबीजको शरीरबाट एउटा थोपो रगत भुईंमा खस्ता त्यस्तै खालका रक्तबीज उत्पन्न हुनाले सब जगत्मा रक्तबीज भरिनु, रगतको खोलो बग्नु आदि धेरैजसो झूठा गफ लेखिएका छन्। रक्तबीजबाट पूरै जगत् भरिपूर्ण थियो भने देवी, देवीको सिंह र उसका सेना कहाँ बस्तथे? अनि रक्तबीज देवीभन्दा टाढा–टाढा थिए भन्छौ भने 'सम्पूर्ण जगत् रक्तबीजले भरिएको थिएन' भन्ने कुरा मान्नुपर्दछ। फेरी भरिएकै भए पशु, पक्षी, मनुष्य आदि प्राणी र पानीमा बस्ने ग्राह, कछुवा, माछा, वनस्पति आदि वृक्ष कहाँ रहन्थे? 'ती सबै त्यस दुर्गापाठ बनाउने पोपका घरमा भागेर पुगेका होलान् त?' भन्ने कुरा नै सोच्नुपर्ने हुन्छ। हेर, छेउ–टुप्पो केही नभएको कस्तो असम्भव गफ भाँङ्को लहरमा उडाएका छन्?

अब 'श्रीमद्भागवत' भनिनेको लीला सुन। ब्रह्माजीलाई नारायणले चतुःश्लोकी भागवतको उपदेश गरे—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥

—श्रीमद् भागवत् २।९।३०

अर्थ—हे ब्रह्माजी! विज्ञान र रहस्ययुक्त, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको अङ्ग मेरो परमगुह्यज्ञानलाई तिमी मबाट ग्रहण गर।

ज्ञानलाई विज्ञानयुक्त भनेपछि त्यसलाई परम भन्नु अर्थात् श्रेष्ठ

ज्ञानको विशेषण राख्नु व्यर्थै हुन्छ र गुह्य विशेषणबाट रहस्य पनि पुनरुक्त छ। मूल श्लोक नै पुनरुक्त भएपछि अरू अनर्थक किन हुँदैन? भागवतको मूल नै झूटो छ भने उसको वृक्ष झूटो किन छैन? नारायणले ब्रह्माजीलाई वर दिए—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

—श्रीमद् भागवत २।९।३६

तपाईं कल्प=सृष्टि र विकल्प=प्रलयमा पनि कहिल्यै मोहित हुनुहुनेछैन। यहाँ यसो भनिएको छ भने दशमस्कन्धमा (भागवत १०। अ० १३, १४) ब्रह्माले मोहित भएर बाछा चोरेको कुरा छ। यी दुवैमा एउटा कुरा सच्चा भए अर्को झूटो ठहर्दछ। यस्तै किसिमले यी दुवै कुरा झूठा हुन्। वैकुण्ठमा राग, द्वेष, क्रोध ईर्ष्या, दुःख हुँदैन भने वैकुण्ठको ढोकामा सनकादिलाई किन रिस उठ्यो त? त्यहाँ रिस उठेको थियो भने त्यो स्वर्ग होइन। त्यसबखत जय–विजय द्वारपाल थिए। स्वामीको आज्ञापालन गर्नु आवश्यक थियो। उनीहरूले सनक आदिलाई रोके भनेको अपराध भयो त? यस प्रसङ्गमा अपराधविना नै श्राप लाग्नसक्तैन। 'पृथ्वीमा झर' भन्ने श्राप लागेको कुराबाट त्यहाँ पृथ्वी थिएन भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। आकाश, वायु, अग्नि र जल हुँदो हो त त्यस्तो मन्दिर र जल के मा टिकेको थिए? जय–विजयले फेरि 'महाराज! हामी पुनः वैकुण्ठमा कहिले फर्कनेछौं?' भनी सनकादिको स्तुति गरे। उनीहरूले 'प्रेमपूर्वक नारायणको भक्ति गर्यौ भने सातौं जन्ममा र विरोधपूर्वक भक्ति गर्यौ भने तेश्रो जन्ममा वैकुण्ठ प्राप्त गर्नेछौ' भने। (भागवत ३। अ० १५, १६)

यसमा विचारणीय कुरा के भने जय–विजय नारायणका नोकर थिए। उनको रक्षा र सहायता गर्नु नारायणको कर्त्तव्य कर्म थियो। कसैले आफ्ना नोकरलाई अपराधविना नै दुःख दिन्छन् र उनका स्वामी त्यस्ता दुःख दिनेलाई दण्ड दिंदैनन् भने जसले पनि त्यसका नोकरचाकरको दुर्दशा गर्ने नै भयो। नारायणले जय विजयको सत्कार गर्नु र सनकादिक–लाई प्रशस्त दण्ड दिनु उचित हुन्थ्यो। किनकि उनीहरूले भित्र आउने जिद्दी किन गरे? नोकरहरूसँग किन लडे? र श्राप किन दिए? ती नोकरचाकरको सट्टा सनकादिलाई चाहिं पृथ्वीमा झार्नु नारायणको न्याय हुन्थ्यो। यतिको अन्धेरखाता नारायणको घरमा छ भने वैष्णव भनिने उसका सेवकको जति दुर्दशा गर्ने नै भयो। नारायणले जय विजयको सत्कार गर्नु र सनकादिकलाई प्रशस्त दण्ड दिनु उचित

हुन्थ्यो। किनकि उनीहरूले भित्र आउने जिद्दी किन गरे? नोकरहरूसँग किन लडे? र श्राप किन दिए? ती नोकरचाकरको सट्टा सनकादिलाई चाहिं पृथ्वीमा झार्नु नारायणको न्याय हुन्थ्यो। यतिको अन्धेरखाता नारायणको घरमा छ भने वैष्णव भनिने उसका सेवकको जति दुर्दशा भए पनि थोरै हुन्छ।

ती हिरण्याक्ष र हिरण्यकशिपु भएर जन्मिए (भाग० ३।१७, १८)। तीमध्ये हिरण्याक्षलाई वराहले मार्यो। त्यसको कथा यसरी लेखिएको छ—उसले पृथ्वीलाई गुन्द्री बेरेझैं बेरेर सिरान हालेर सुत्यो (गरुड पु०उ०ख० २६।३)। विष्णुले वराहको स्वरूप धारण गरेर उसको टाउको मुनिबाट पृथ्वीलाई मुखमा हाल्यो (भागवत ३। अ० १८, १९)। हिरण्याक्ष उठ्यो। दुबैको लडाइँ भयो। वराहले हिरण्याक्षलाई मारिदियो।

यिनीहरूसँग 'पृथ्वी गोलो छ वा चकटी जस्तो?' भनी सोधेमा केही भन्नसक्ने छैनन्। पौराणिकहरू त भूगोलविद्याका शत्रु हुन्। पृथ्वीलाई बेरेर सिरानमै राख्यो भने ऊ आफू केमा सुत्यो त? अनि वराहजी केमाथि खुट्टा राखेर दौडेर आइपुगे? वराहजीले पृथ्वीलाई मुखमा हालेपछि ती दुबै केमा उभिएर लडे त? त्यहाँ टेक्ने अरू कुनै ठाउँ त थिएन। तर भागवत आदि पुराण बनाउने पोपका छातीमा उभिएर लडे होलान्? तर पोप के मा सुतेको हुँदो हो? यो कुरा झूठा गफीका घरमा अर्को गफाडीले आएर, मिथ्यावादीका घरमा अरू झूटा व्यक्ति आउँदा आफ्नो गफ किन घटाउने? भने जस्तै हो।

अब रह्यो हिरण्यकशिपुको कुरा। उसको छोरो प्रह्लाद थियो, ऊ बडो भक्त थियो। उसको बाबु उसलाई पढ्न भनी पाठशाला पठाउँदथ्यो। तब ऊ अध्यापकहरूसँग 'मेरो सिलोटमा राम-राम लेखिदेऊ' भन्दथ्यो। बाबुले यो कुरा थाहा पाएर 'तँ मेरो शत्रुको भजन किन गर्दछस्?' भन्यो। तर छोरो मानेन। अनि उसको बाबुले उसलाई बाँधेर पहाडबाट खसाल्यो, कुवामा हाल्यो, तर उसलाई केही भएन। अनि हिरण्यकशिपुले एउटा फलामको थामलाई आगोमा तपाएर प्रह्लादसँग भन्यो—'तेरो इष्टदेव राम सच्चा हो भने तँ यसलाई समात्लाले पनि डढ्नेछैनस्। प्रह्लाद थाम समात्न अगि बढ्यो। डढ्नबाट जोगिने छु वा छैन' भन्ने शङ्का उसको मनमा भयो। त्यत्तिकैमा नारायणले त्यस थाममा साना-साना कमिला हिंडायो। प्रह्लादलाई निश्चय भयो र थामलाई समातिहाल्यो। थाम फाट्यो। त्यसबाट नृसिंह निस्कियो र उसले

हिरण्यकशिपुलाई समातेर पेट चिरेर मार्यो। अनि प्रह्लादलाई प्यारका साथ चाट्न थाल्यो। प्रह्लादसँग 'वर माग' भन्यो। उसले आफ्नो पिताको सद्गति होओस् भन्ने वर माग्यो। नृसिंहले 'तेरा एक्काईस पुस्ताको सद्गति भयो' भनी वर दियो।

ल हेर, यो पनि गफीको दाजू गफाडी नै हो। कुनै भागवत सुन्ने वा सुनाउनेलाई समातेर पहाडको माथिबाट लडाएमा कसैले बचाउने छैन, सबै चकनाचूर भएर मर्ने नै छन्। प्रह्लादलाई उसको बाबु पढ्न पठाउँथ्यो त उसले के गलत काम गर्यो? अनि त्यो मूर्ख प्रह्लाद भने पढ्न छोडेर वैरागी बन्न चाहन्थ्यो। आगोले रन्किएको थामबाट कमिलाको ताँती हिंडेको र प्रह्लादले त्यसलाई छुँदा नडढेको कुरा सच्चा मान्नेलाई त्यस्तै खम्बामा टाँसिदिनुपर्दछ। त्यो व्यक्ति डढेन भने ऊ पनि ढढेको थिएन भन्ने जान्नुपर्दछ। अनि नृसिंह किन डढेन त?

पहिल्यै सनकादिले तेस्रो जन्ममा वैकुण्ठमा आउने वर दिएका थिए। के त्यो कुरा तिम्रा नारायणले बिर्सियो? भागवतका अनुसार ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष र हिरण्यकशिपु चौथो पुस्तामा पर्दछ। प्रह्लादका एक्काईस पुस्ता हुँदै नभई 'एक्काईस पुस्ताको सद्गति भयो' भन्नु कतिसम्म प्रमादको कुरा हो? अनि फेरि तिनै हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु-रावण, कुम्भकर्ण अनि फेरि शिशुपाल, दन्तवक्र भएर (भागवत ७। अ० १) जन्मिए भने नृसिंहको वर कहाँ उड्यो त? प्रमादीहरू नै यस्ता प्रमादका कुरा सुन्दछन् र मान्दछन्, विद्वान्हरू यस्ता कुरा सुन्दैनन्, मान्दैनन्।

पूतना र अक्रूरजीको विषयमा हेर—

रथेन वायुवेगेन॥ —भागवत १०।३९।३८

जगाम गोकुलं प्रति॥ —भागवत १०।३८।२४

कंसले पठाउँदा **अक्रूरजी** वायुको जत्तिकै वेगले दौडने घोडाहरूको रथमा बसेर सूर्योदय हुँदा हिंडेर (भागवत १०।३८।१) चार माइल टाढा रहेको गोकुलमा सूर्यास्त हुँदा पुगे (भागवत १०।३८।२४)। अर्थात् ती घोडा दिनभरि भागवत बनाउनेकै चारैतिर घुमिरहेका हुँदाहुन् अथवा बाटो बिराएर भागवत बनाउनेको घरमा पुगेर घोडा हाँक्ने र अक्रूरजी सुतिरहे होलान्? पूतनाको शरीर छ कोस चौडा र धेरै लामो बताइएको छ (भागवत १०।६।१४)। कृष्णजीले उसला मारेर मथुरा र गोकुलको बीचमा फालिदिए। यसो हुँदो हो त मथुरा र गोकुल दुबै थिचिएर यस पोपजीको घर पनि पुरिनु पर्दथ्यो। अजामेलको ऊटपटांग

कथा लेखिएको छ—अजामेलले नारदको भनाइ मानेर आफ्नो छोराको नाम 'नारायण' राख्यो। मर्नेबेला उसले आफ्नो छोरालाई बोलायो। त्यत्तिकैमा नारायण आइपुगे। के नारायण 'उसले मलाई होइन आफ्नो छोरालाई बोलाएको हो' भन्ने उसको अन्त:करणको भावलाई जान्दैनथे। नामको माहात्म्य यस्तै हो भने हिजोआज पनि नारायणलाई स्मरण गर्नेहरूका दु:ख छुटाउन उनी किन आउँदैनन्? यो कुरा सत्य हो भने कैदीहरू नारायण–नारायण गरेरै किन छुट्तैनन्?

यस्तै सुमेरु पर्वतको परिमाण ज्योतिषशास्त्रको विरुद्ध लेखिएको छ (श्रीमद्भागवत ५।१६।७)। प्रियव्रत राजाको रथका पाङ्ग्राको डोबले समुद्र बनेको (श्रीमद्भागवत ५।१६।२), पृथ्वी उनन्चास करोड योजन छ भन्ने (श्रीमद्भागवत ५।२०।३८) आदि मिथ्या कुराका गफ भागवतमा थुप्रै छन्, यिनको कुनै वारपार छैन।

यो भागवत गीत–गोविन्द बनाउने जयदेवको भाइ बोबदेवले बनाएको हो। उसले आफैंले रचेको 'हिमाद्रि' नामक ग्रन्थमा 'श्रीमद्भागवतपुराण मैले नै बनाएको हुँ' भनेको छ। त्यस लेखका तीन पत्र मसँग थिए। तिनमा एउटा हरायो। त्यस पत्रमा भएका श्लोकको आशययुक्त दुईवटा श्लोक मैले बनाएर निम्नानुसार लेख्तौ छु। मूल हेर्न चाहनेले 'हिमाद्रि' ग्रन्थमा हेर्नुपर्दछ—

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥ १॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोऽन्वितम्॥ २॥

नष्ट भएका पत्रमा यस्तै श्लोक थिए। अर्थात् राजाका सचिव हिमाद्रिले बोबदेव पण्डितसँग भने—तिमीले रचेको पूरै भागवतलाई सुन्ने फुर्सत मलाई छैन। यसकारण संक्षेपमा जान्नेछु। तदनुकूल नै त्यस बोबदेवले निम्नलिखित सूचीपत्र बनाएको थियो। तीमध्ये दस श्लोक त्यस हराएको पत्रमा परे। एघारौं श्लोकदेखि यहाँ लेखिन्छ। तर लेखेका यी श्लोक सबै बोबदेवरचित हुन्—

बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥ ११॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्यानिर्वृतिः कृतात्।
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च॥ १२॥

सुप्तघ्नं द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारकागमः॥ १३॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा तत पार्थमहापथः॥ १४॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥ १५॥
इति वै राज्ञो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रोणिजयादयः॥ १६॥
इति प्रथमः स्कन्धः॥ १॥

यस्तै किसिमले बोबदेव पण्डितले बाह्रै स्कन्धको सूचीपत्र बनाएर हिमाद्रि सचिवलाई दिएको थियो। विस्तारमा हेर्न चाहनेले बोबदेव रचित हिमाद्रिग्रन्थमा हेर्नुपर्दछ। यस्तै किसिमले अरू पुराणहरूको पनि लीला बुझ्नुपर्दछ। तर सबै पुराण एकभन्दा अर्को उन्नाइस, बीस, एक्काईस गरी बढचढ गरेर लीलायुक्त छन्।

हेर, श्रीकृष्णको चरित्र महाभारतमा अत्युत्तम छ। उनको गुण, कर्म, स्वभाव र चरित्र आप्तपुरुषहरूसरह नै छ। महाभारतमा श्रीकृष्णजीले जन्म देखि मरणसम्म कुनै पनि अधर्म वा खराब कर्म गरेको उल्लेख पाइँदैन, यस भागवत बनाउनेले भने उनीमाथि अनुचित र मन–माना दोष लगाएका छन्। दूध, दही, नौनीघिउ आदिको चोरीको दोष लगाइयो, कुब्जा दासीसँग समागम, पर–स्त्रीसँग रासमण्डल क्रिया आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजीमा लगाइएका छन्। यसलाई पढे–पढाएर, सुने–सुनाएर अरू मतावलम्बीहरूले श्रीकृष्णजीको धरैजसो निन्दा गर्दछन्। यो भागवत नभएको भए श्रीकृष्णजस्ता महात्माहरूको झूटो निन्दा किन र कसरी हुने थियो र?

शिवपुराणमा बाह्र ज्योतिर्लिङ्ग बताइएका छन्। त्यसको सर्वथा असम्भव कथा छ। नाम ज्योतिर्लिङ्ग राखिएको छ तर तिनमा प्रकाशको लेश पनि छैन। रात्रिमा दियो नदेखाई अँध्यारोमा लिङ्ग पनि देखिदैनन्। यी सबै पोपजीका लीला हुन्।

प्रश्न—वेद पढ्ने सामर्थ्य नरहेपछि स्मृति, स्मृति पढ्ने बुद्धिपनि नरहेपछि शास्त्र र शास्त्र पढ्ने सामर्थ्य पनि नरहेपछि पुराण बनाइए। अनि पुराण स्त्री र शूद्रका लागिमात्र बनाइएका हुन् किनकि यिनलाई वेद पढ्ने–सुन्ने अधिकार छैन।

उत्तर—पढ्ने–पढाउने गर्नाले सामर्थ्य बढ्ने हुनाले र वेद पढ्ने–सुन्ने अधिकार सबैलाई रहेको हुनाले उक्त कुरा मिथ्या हो। हेर, गार्गी

आदि स्त्रीहरूले र छान्दोग्य उपनिषद्मा जानुश्रुति नामक शूद्रले पनि रैक्यमुनिकहाँ वेद पढेको थियो। यजुर्वेदको २६औं अध्यायको दोस्रो मन्त्रमा स्पष्टरूपमा वेद पढ्ने–सुन्ने अधिकार मनुष्यमात्रलाई छ। त्यसोहुँदा यस्ता यस्ता मिथ्या ग्रन्थ बनाएर मानिसहरूलाई सत्यग्रन्थबाट विमुख पारेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्ने व्यक्ति महापापी किन होइनन्?

हेर, यिनीहरूले ग्रहको यस्तो चक्र चलाए कि त्यसले विद्याहीन मानिसलाई ग्रस्त पारेको छ।

'आ कृष्णेन रजसा०' ॥ १ ॥–सूर्य्य का मन्त्र। –यजुर्वेद ३३।४३

'इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वम्०' ॥ २ ॥–चन्द्र। —यजुर्वेद ९।४०

'अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०' ॥ ३ ॥–मङ्गल। —यजुर्वेद ३।१२

'उद्बुध्यस्वाग्ने०' ॥ ४ ॥–बुध। —यजुर्वेद १५।५४

'बृहस्पते अतियदर्यो०' ॥ ५ ॥ –बृहस्पति। –यजुर्वेद २६।३

'शुक्रमन्धसः' ॥ ६ ॥ –शुक्र। –यजुर्वेद १९।७५

'शन्नो देवीरभिष्टय०' ॥ ७ ॥ –शनि। –यजुर्वेद ३६।१२

'कया नश्चित्र आ भुव०' ॥ ८ ॥ –राहु। और –यजुर्वेद २७।३९

'केतुं कृण्वन्नकेतवे०' ॥ ९ ॥ –केतु की कण्डिका कहते हैं। —यजुर्वेद २९।३७

यसलाई केतुको कण्डिका भन्दछन्। (आ कृष्णे०) यो सूर्यको र भूमिको आकर्षण ॥ १ ॥ दोस्रो राजगुण विधायक ॥ २ ॥ तेस्रो अग्नि परमेश्वर ॥ ७ ॥ आठौं मित्र ॥ ८ ॥ र नवौं ज्ञान ग्रहण विधायक मन्त्र हो। यी मन्त्र ग्रहहरूका वाचक होइनन्। अर्थ नजान्नाले भ्रमजालमा परेका छन्।

प्रश्न—ग्रहहरूको फल हुन्छ वा हुँदैन?

उत्तर—पोपलीलाको जस्तो फल हुँदैन। तर सूर्य चन्द्रका किरणद्वारा उष्णता, शीतता अथवा ऋतुवत् कालचक्रको सम्बन्धमात्र द्वारा आफ्नो स्वभावको अनुकूल–प्रतिकूल सुख–दुःखका निमित्त हुन्छन्। तर 'सुन, महाराज, साहुजी वा यजमान! आज तिम्रा आठौं चन्द्र सूर्य आदि क्रूर ग्रह घरमा आएका छन। अढैयाको शनिश्चर आरम्भ भएको छ। तिमीलाई ठूलो विघ्न हुनेछ। घरबाट छुटाएर परदेश घुमाउनेछ। तर तिमीले ग्रहहरूको दान, जप, पाठ–पूजा गराएमा दुःखदेखि बच्नेछौ।' आदि भन्ने पोपलीला गर्नेहरूसँग 'सुन पोपजी! तिम्रो र ग्रहको के सम्बन्ध

छ? ग्रह के वस्तु हो?' भनी सोध्नुपर्दछ।

पोपजी— दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्।

हेर, कस्तो प्रमाण छ! देवताहरूको अधीन सारा जगत्, मन्त्रहरूको अधीन सबै देवता र ती मन्त्र ब्राह्मणहरूका अधीन हुनाले ब्राह्मण **'देवता'** भनिन्छन्, किनकि जुन चाह्यो त्यसै देवतालाई मन्त्रका बलले बोलाएर, प्रसन्न गरेर काम सिद्ध गराउने अधिकार हामी ब्राह्मणलाई नै छ। हामीमा मन्त्रशक्ति नभएको भए तिमीजस्ता नास्तिकले हामीहरूलाई संसारमा टिक्नै दिने थिएनन्।

सत्यवादी—चोर, डाकू आदि कुकर्मीहरू पनि तिम्रा देवताहरूकै अधीन हुँदाहुन्? देवता नै तीबाट दुष्ट काम गराउँदाहुन्। यस्तै हो भने तिम्रा देवता र राक्षसहरूमा केही पनि फरक रहनेछैन। मन्त्र तिम्रा अधीन छन् र तीबाट तिमी जे पनि गराउन सक्तछौं भने ती मन्त्रद्वारा देवताहरूलाई अधीन पारेर, राजाहरूका ढुकुटी उठाउन लगाएर आफ्नै घरमा भरेर किन आनन्द भोग्दैनौ? घर–घरमा शनैश्चर आदिको, तेल आदिको छायादान लिन किन भट्किरहन्छौ? जसलाई तिमी कुबेर मान्दछौ, त्यसलाई अधीनमा गरेर चाहेजति धन लिने गर। विचरा गरीबहरूलाई किन लुट्तछौ?

तिमीलाई दान दिनाले ग्रह प्रसन्न र नदिनाले अप्रसन्न हुने भए हामीलाई सूर्य आदि ग्रहहरूको प्रसन्नता वा अप्रसन्नता प्रत्यक्ष देखाऊ। एउटालाई आठौं सूर्य, चन्द्र र अर्कोलाई तेस्रो परेको छ भने ती दुबैलाई जेठको महिनामा तातेर रन्किएको भुइँमा जुत्ता नलगाई हिंडाऊ। यसो गर्दा ग्रह प्रसन्न हुनेका गोडा, शरीर नपोलिने तथा ग्रह क्रोधित हुनेका गोडा आदि डढ्ने हुनुपर्दछ। यस्तै पौष महिनामा दुबैलाई नांगै गरेर पूर्णेको रातमा रातभर खुला मैदानमा राख्दा एउटालाई शीत लाग्ने र अर्कोलाई केही नहुने भएमा ग्रह क्रूर र सौम्य हुन्छन् भन्ने कुरा मानिने छ।

अनि के ग्रह तिम्रा नाता–गोतामा पर्दछन्? र तिम्रा चिठ्ठी–पत्र वा तार–आवा तिनीहरूकहाँ आउने जाने गर्दछन्? अथवा तिमी वहाँ या उनीहरू तिमीकहाँ आउने–जाने गर्दछौ? तिमीमा मन्त्रशक्ति छ भने तिमी आफैं राजा वा धनाढ्य किन हुँदैनौ? अथवा आफ्ना शत्रुहरूलाई किन वशीभूत पार्दैनौ?

ईश्वरको आज्ञा=वेदको विरुद्ध पोपलीला चलाउने व्यक्ति नास्तिक

हुन्छ। कसैले तिमीलाई ग्रहदान नदिई आफूमाथिको ग्रहको ग्रहदानलाई आफैं भोग्दछ भने तिमीलाई चिन्ता किन? तिमीलाई नै ग्रहदान दिनाले ग्रह प्रसन्न हुन्छन्, अरूलाई दिनाले प्रसन्न हुँदैनन् भन्छौ भने के तिमीले ग्रहहरूको ठेक्का लिएका छौ? ठेक्का नै लिएका छौ भने सूर्य आदिलाई आफ्नै घरमा बोलाएर डढेर मर।

वास्तविकता त के हो भने सूर्य आदि लोक जड़ छन्। ती न त कसैलाई दुःख दिने चेष्टा गर्न सक्तछन्, न सुख दिने। तर ग्रहदानबाट आफ्नो गुजारा चलाउने तिमी सबै ती ग्रहका मूर्त्ति हौ किनकि ग्रह शब्दको अर्थ पनि तिमीहरूमा नै घटित हुन्छ। **'ये गृहणन्ति ते ग्रहाः'** ग्रहण गर्नेको नाम ग्रह हो। तिम्रा चरण राजा, रईस , सेठ, साहू–महाजन र दरिद्रहरूकहाँ नपुगेसम्म कसैलाई नवग्रहको स्मरण पनि हुँदैन। तिमीहरू साक्षात् सूर्य शनैश्चर आदि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धारण गरेर ती माथि चढेपछि केही ग्रहण नगरी तिनलाई कहिल्यै छोड्दैनौ। अनि तिम्रो ग्रासमा नपर्नेको निन्दा नास्तिक आदि शब्दद्वारा गर्दै डुल्छौ।

पोपजी—ज्योतिषको प्रत्यक्ष फल हेर। आकाशमा रहेका सूर्य, चन्द्र र राहु–केतुको संयोगरूप ग्रहणको बारेमा पहिल्यैदेखि बताइदिन्छौं। जसरी यो कुरा प्रत्यक्ष छ, त्यस्तै ग्रहहरूको फल पनि प्रत्यक्ष हुन्छ। हेर, ग्रहद्वारा नै धनी–गरीब, राजा–रङ्क, सुखी–दुःखी हुन्छन्।

सत्यवादी—यो ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल गणित विद्याको हो, न कि फलित लीलाको। गणितविद्या सच्चा र फलित विद्या भने स्वाभाविक सम्बन्धजन्य बाहेक झूटो हो। जस्तै उल्टो–सोझो घुम्ने पृथ्वी र चन्द्रको गणितद्वारा फलानो समय, फलानो देश र अवयवमा सूर्य वा चन्द्रको ग्रहण हुनेछ भन्ने कुरा स्पष्ट विदित हुन्छ। जस्तै—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः ॥

यो **'सिद्धान्त शिरोमणि'** (ग्रहलाघव चन्द्रग्रहणाधिकार ५।४) को वाक्य हो। यस्तै 'सूर्य्य सिद्धान्त' आदिमा पनि छ। अर्थात् सूर्य र पृथ्वीको बीचमा चन्द्रमा आउँदा **'सूर्यग्रहण'** तथा सूर्य र चन्द्रमाको बीचमा पृथ्वी पर्दा **'चन्द्रग्रहण'** हुन्छ। अर्थात् चन्द्रमाको छायाँ पृथ्वीमा र पृथ्वीको छायाँ चन्द्रमामा पर्दछ। सूर्य प्रकाशरूप हुनाले त्यसमा कुनैको छायाँ पर्दैन। जसरी शरीर आदिको छायाँ प्रकाशमान सूर्य वा दियोको उल्टो पर्दछ, त्यस्तै ग्रहणमा पनि बुझ्नुपर्दछ।

व्यक्ति आफ्ना कर्मबाट धनी, गरीब, प्रजा, राजा, रङ्क आदि बन्दछन्, ग्रहबाट होइन। धेरैजसो ज्योतिषीहरू आफ्ना छोरा–छोरीको विवाह

ग्रहहरूको गणितविद्याअनुसार गर्ने गराउने गर्दछन् अनि उनमा पनि परस्पर विरोध वा विधवा वा विधुर हुन्छन्। फल सच्चा भए यस्तो हुने थिएन। यसकारण कर्मको गति सच्चा हो र सुख–दुःख भोगमा ग्रहगति कारण होइनन्।

ग्रह आकाशमा र पृथ्वी पनि आकाशमा धेरै टाढा छन्। कर्त्ता र कर्मसँग यिनको साक्षात् सम्बन्ध छैन। कर्म र कर्मका फलको कर्त्ता, भोक्ता जीव र कर्मका फल भोगाउने परमात्मा हो।

तिमी ग्रहहरूको फल मान्दछौ भने 'जुन' क्षणमा एउटा मानिसको जन्म हुन्छ, जसलाई तिमी ध्रुवात्रुटि मानेर जन्मपत्र बनाउँदछौ त्यसै समयमा भूगोलमा अर्को मानिसको जन्म हुन्छ वा हुँदैन? भन्ने कुराको जवाफ देऊ। हुँदैन भन्छौ भने त्यो झूट हुनेछ र हुन्छ भन्छौ भने एउटा चक्रवर्ती भएजस्तै भूगोलमा अर्को चक्रवर्ती राजा किन हुँदैन? अँ, 'यो हाम्रो पेट भर्ने लीला हो' भन्नसक्तछौ भने कसैले यस कुरालाई मान्न पनि सक्नेछ।

प्रश्न—के गरूड़पुराण पनि झूटो हो?

उत्तर—हो, पूरै झूटो हो।

प्रश्न—त्यसो भए मरेका जीवको कुन गति हुन्छ त?

उत्तर—जस्ता उसका कर्म हुन्छन्।

प्रश्न—यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री र उसका बडा भयङ्कर गण गाजलको पर्वत जस्तै शरीरधारी हुन्छन् र उनीहरू जीवलाई समातेर लैजान्छन्। पाप–पुण्यअनुसार नरक–स्वर्गमा हाल्दछन्। त्यसको निम्ति अर्थात् वैतरणी नदी तर्न दान–पुण्य, श्राद्ध–तर्पण, गोदान आदि गरिन्छन्। यी सबैकुरा कसरी झूठा हुन सक्तछन् र?

उत्तर—यी सबैकुरा पोपलीलाका मिथ्या गफ हुन्। अन्तका जीव त्यहाँ जाने भए र धर्मराज, चित्रगुप्त आदिले तिनको न्याय गर्ने भए ती यमलोकका जीवका पापको न्याय गर्न न्यायाधीश रहेको अर्को यमलोक मान्नुपर्ने हुन्छ। अनि यमका गणहरूका शरीर पर्वतजस्तै हुन्छन् भने ती किन देखिंदैनन्? त्यसोभए मर्ने जीवलाई लिन जाँदा साना द्वारमा तिनको एउटा औंलो पनि पस्नसक्तैन? फेरि सडक गल्लीमा तिनीहरू किन अड्किंदैनन्? तिनले सूक्ष्म शरीर पनि धारण गर्दछन् भन्छौ भने तिनले पर्वतजस्तै पहिलेको शरीरका ठूला–ठूला हाडलाई पोपजीको घरबाहेक अरू कहाँ राख्नेछन् र? वनमा डढेलो लाग्दा एक्कासी धेरै कमिला आदि जीवका शरीर छुट्तछन्, तिनलाई समात्न असंख्य यमका

गण आउने भए त्यहाँ त अन्धकार हुनुपर्दछ ? अनि तिनीहरू जीवहरूलाई समात्न दगुर्दा तिनका शरीर परस्पर ठोकिएर, पहाडका ठूला–ठूला शिखर टुटेर पृथ्वीमा खसेजस्तै तिनका ठूला–ठूला अवयव गरुडपुराण सुनाउने र सुन्नेका आँगनमा खस्नेछन् र ती थिचिएर मर्नेछन्। अथवा घरको ढोका वा सडकै रोकिने छ, अनि ती कसरी निस्कन र हिंड्न सक्लान् ?

श्राद्ध–तर्पण, पिण्डदान आदि ती मरेका जीवसम्म त पुग्दैन तर मृतकका एजेन्ट पुरेत पोपका घर, पेट र हातसम्म भने अवश्य पुग्दछ। वैतरणीका निम्ति लिइएको गोदान पनि पोपको घर अथवा कसाइ आदिको घरसम्म पुग्दछ। वैतरणीमा गाई त पुग्दैन भने कसको पुच्छर समातेर तर्नेछ र ? अनि फेरि हात त यहीं डढाइन्छ वा गाडिन्छ भने पुच्छरलाई कसरी समात्ने छ र ? यस प्रसङ्गमा एउटा दृष्टान्त उपयुक्त देखिन्छ—

एउटा जाट=सोझो छेत्री थियो। त्यसको घरमा तीनपाथी दूध दिने एउटा धेरै राम्रो गाई थियो। त्यसको दूध साह्रै मीठो हुन्थ्यो। कहिलेकाहीं त्यस दूधको स्वाद पोप=पुरेतले पनि चाख्न पाउँथे। जाटका ती पुरोहित 'जाटको बूढो बाबू मर्नेबेला हुँदा यसै गाईको संकल्प गराउनेछु' भन्ने विचार गरिरहन्थे। दैवसंयोगले केही दिनपछि त्यस जाटको बाबुको मर्ने समय आयो। जिब्रो चल्न बन्द भयो र खाटबाट उतारेर भुइँमा सुताए अर्थात् प्राण छुट्ने समय आइपुग्यो। त्यसबखत जाटका इष्टमित्र र नाता–गोताका मानिस पनि भेला भएका थिए। पोपजीले भने—'यजमान! अब तिमी यसका हातबाट गोदान गराऊ।' जाटले रु० १०।– दस रुपैयाँ झिकेर बाबुको हातमा राखेर 'संकल्प पढ' भने। पोपजीले भन्यो 'वा! के बाबु बारम्बार मर्दछन् ? अहिले त सर्वोत्तम, दूध दिने र बूढो नभएको साक्षात् गाई ल्याऊ। यस्तो गाईको दान गराउनु पर्दछ।'

जाट—हामीकहाँ त एउटै गाई छ। त्योविना हाम्रा केटा–केटीको निर्वाह हुनेछैन। यसकारण त्यो त दिन्न, बरु २०/– बीस रुपैयाँ दिन्छु र संकल्प पढिदेऊ। यो रुपैयाँले अर्को दुहुनु गाई लिनू।

पोपजी—वा रे वा! तिमी गाईलाई आफ्ना बाबुभन्दा पनि बढी ठान्दछौ ? के तिमी आफ्ना बाबुलाई वैतरणी नदीमा डुबाएर दुःख दिन चाहन्छौ ? तिमी त खुबै सुपुत्र भयौ!!! अनि त सबै कुटुम्बीहरू पोपजीका तर्फ भैगए, किनकि ती सबैलाई पोपजीले पहिल्यै भ्रममा

पारिराखेका थिए। त्यसबेला पनि पोपजीले संकेत गरे र सबैले मिलेर जबर्जस्ती त्यसै गाईको दान तिनै पोपलाई गराए। त्यसबखत जाट केही पनि बोलेन। उसको बाबु मर्यो। उता पोपजी बाछी सहित गाई र दुहुने बाल्टिन लिएर आफ्नो घर गाई, बाछालाई बाँधेर बाल्टिन राखेर जाटको घर फर्के र श्मशानभूमिमा गएर दाहकर्म गराए। त्यहाँ पनि अलिअलि पोपलीला चलाए। पछि दशगात्र, सपिण्डी आदि गराउँदा पनि जाटलाई ठगे। अरू ठूला ब्राह्मणनामधारी र भोकाहरूले पनि धेरैजसो मालसामान ठग्नसम्म ठगे। सबै क्रिया भैसकेपछिसम्म जाटले छर–छिमेक आदिबाट खोजीमेली गरेर दूधको निर्वाह गर्यो। चौथौं दिन बिहानै जाट पोपजीको घर पुग्यो। पोपजी गाई दुहेर, बाल्टिन भरेर, उठ्न आँट्तै थिए। यत्तिकैमा जाट पुग्यो। उसलाई देखेर पोपजीले भने—आउनुहोस् यजमान! बस्नुहोस्।

जाटजी—पुरेतबाजे! तिमी पनि यता आऊ।

पोपजी—ल, ल, दूध राखेर आउँछु।

जाटजी—होइन–होइन। दूधको बाल्टिन यता ल्याऊ। बिचरा पोपजी गएर बाल्टिन जाटको अगाडि राखी बसे।

जाटजी—तिमी त ठूला झूटा रहेछौ।

पोपजी—के झूट गरें र ?

जाटजी—तिमीले गाई किन लिएका थियौ ? भन।

पोपजी—तिम्रा बुवालाई वैतरणी नदी तार्नका निम्ति।

जाटजी—त्यसोभए तिमीले गाईलाई त्यहाँ वैतरणी नदीको किनारमा किन पुर्याएनौ ? हामी त तिम्रो विश्वासमा पर्यौं र तिमीले भने गाईलाई आफ्नै घरमा पो बाँधेछौ। नजाने मेरा बुवाले वैतरणीमा कति गोता खाए होलान्!!

पोपजी—होइन, होइन! यस दानको पुण्यको प्रभावले वहाँ अर्को गाई बनेर तिम्रो बुवालाई पारि उतारिदियो होला।

जाटजी—वैतरणी नदी यहाँबाट कति टाढा र कतातर्फ छ ?

पोपजी—अनुमानअनुसार लगभग तीस करोड कोस टाढा छ। किनकि उनन्चास करोड योजनको पृथ्वी छ। त्यो वैतरणी नदी नैर्ऋत्य दिशामा छ।

जाटजी—यति टाढाबाट तिम्रो चिट्ठी वा तारको समाचार गएको हुँदो हो, अनि 'त्यहाँ पुण्यको गाई बन्यो, त्यसले फलानाको बाबुलाई पार उतार्यो' भन्ने त्यसको उत्तर पनि आयो होला, त्यो देखाऊ।

पोपजी—हामीसँग त ‘गरुडपुराण’ मा लेएिका कुराबाहेक अरू कुनै चिट्ठी–पत्र ल्याउने हल्कारा आदि कोही छैन।

जाटजी—यस गरुडपुराणलाई हामी कसरी साँचो मानौं ?

पोपजी—जसरी सबै मान्दछन्।

जाटजी—यो पुस्तक तिम्रा पुर्खाले तिम्रो जीविकाको निम्ति बनाएका हुन्। किनकि पितालाई आफ्नो पुत्रबाहेक अरू कोही त्यति प्रिय हुँदैन। मेरा बुबाले मलाई चिट्ठी–पत्र वा तार पठाएमा म आफैं वैतरणीको किनारमा गाई पुर्‍याउनेछु र उनलाई पार उतारेर फेरि गाईलाई घरमा ल्याएर त्यसको दूध म र मेरा छोरा–छोरीले पिउनेछन्। त्यो दूधले भरिएको बाल्टिन यता ल्याऊ। यति भनेर गाई बाछो लिएर जाट आफ्नो घरतर्फ लाग्यो।

पोपजी—तिमी दान गरेर फिर्ता लिंदैछौ। तिम्रो सत्यानाश हुनेछ।

जाटजी—चुप लाग। नत्र भने तेह्र दिनसम्म दूध नहुनाले हामीले पाएको दुःखको बदलासमेत लिनेछु। अनि पोपजी चुप लागे र जाट आफ्नो गाई बाछो लिएर घर पुग्यो।

यस्तै जाटजीसरहका व्यक्ति भएमा संसारमा पोपलीला चल्दैन। यिनीहरूको भनाइअनुसार दशगात्रका पिण्डबाट दस अङ्ग सपिण्डी गर्नाले शरीरसँग जीवको मेल भएर अङ्गुष्ठमात्र शरीर बनेर अनि योमलोक जान्छ भने मर्दाबखत यमदूतहरू आउनु व्यर्थै हुन्छ। त्यसोभए त यमदूतहरू तेह्र दिनपछि आउनुपर्दछ। अनि त्यसरी शरीर बन्ने भए आफ्ना स्त्री, सन्तान र इष्टमित्रका मोहले किन फर्केर आउँदैनन् ?

प्रश्न—स्वर्गमा केही पनि पाइँदैन। यहाँ जुन वस्तु जेजति दान गरिन्छ, त्यही त्यहाँ पाइन्छ। यसकारण सबै कुरा दान गर्नुपर्दछ।

उत्तर—तिम्रो त्यस स्वर्गभन्दा त यही लोक राम्रो छ। यहाँ धर्मशाला छन्, मानिस दान दिन्छन्, इष्टमित्र र जातिमा विभिन्न निम्ता प्रशस्त पाइन्छन्, राम्रा राम्रा लुगा पाइन्छन् भने तिम्रो भनाइअनुसार स्वर्गमा केही पनि पाइँदैन। यस्तो निर्दय, कृपण, कंगाल स्वर्गमा पोपजी नै गएर बिग्रियून्, त्यहाँ सज्जन व्यक्तिहरूको के काम ?

प्रश्न—तिम्रो भनाइमा यमलोक र यम छैनन् भने जीव मरेर कहाँ जान्छन् र यिनको न्याय कसले गर्दछ ?

उत्तर—तिम्रो गरुडपुराणमा भनिएको कुरा त प्रमाण होइन। तर वेदोक्त कुरा प्रमाण हुन्छ। जस्तै—

यमेन ऋ० १०।१४।८, **वायुना** अथर्व० २०।१४१।२

सत्यराजन् यजुः० २०।४

इत्यादि वेदवचनबाट ‘यम’ नाम वायुको हो भन्ने निश्चय हुन्छ। जीव शरीरलाई छोडेर अन्तरिक्षमा वायुसँग रहन्छ र सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा ‘धर्मराज’ हो, उही सबैको न्याय गर्दछ।

प्रश्न—तिम्रो भनाइमा कसैलाई पनि गोदान आदि दिनुपर्दैन र दानपुण्य केही पनि गर्नुपर्दैन भन्ने सिद्ध हुन्छ।

उत्तर—तिम्रो यो भनाइ पनि व्यर्थै हो। किनकि सुपात्रलाई, परोपकारीहरूको लागि परोपकार निम्ति सुन, चाँदी, हीरा, मोती, माणिक्य, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाई आदि दान अवश्य गर्नु उचित हुन्छ, तर कुपात्रलाई कहिल्यै केही दिनुहुँदैन।

प्रश्न—कुपात्र र सुपात्रको के लक्षण हो ?

उत्तर—छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोहयुक्त, अरूको हानि गर्ने, लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, अल्छी, कोही दाता छ भने ऊसँग बारम्बार माग्ने, धरना दिने, ‘दिन्न’ भन्दा पनि जिद्दी गरेर माँगिरहने, असन्तोषी, नदिनेको निन्दा गर्ने, सराप्ने र गाली दिने, कसैले अनेक पटक सेवा गरेर एकाध पटक सेवा नगरे त्यसको शत्रु बन्ने, माथि बाट साधुको भेष बनाएर जनतालाई भ्रममा पारेर ठग्ने, आफूसँग केही वस्तु भए पनि छैन भन्ने, सबैलाई फसल्याङ्ग–फुस्लुङ्ग पारेर स्वार्थ सिद्ध गर्ने, रात–दिन भिक्षा माग्नमात्र लागिरहने, निम्त्याइएमा भाँङ् आदि मादक द्रव्यको खुब सेवन गरेर धेरैजसो अरूको वस्तु खाइदिने अनि उन्मत्त भएर प्रमादी हुने, आफ्नो स्वार्थ सिद्धिका लागि सत्यमार्गको विरोध गर्ने र झूठमार्गमा हिंड्ने, त्यस्तै आफ्ना चेलालाई आफ्नैमात्र सेवा गर्ने उपदेश दिने, अरू योग्य व्यक्तिको सेवा गर्ने उपदेश नदिने, सद्विद्या आदि प्रवृत्तिको विरोधी, जगत्का व्यवहारको विरोधी अर्थात् पति, पत्नी आमा, बाबु, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्ट, मित्र आदिलाई यी सबै झूठा हुन् र जगत् पनि मिथ्या हो भनेर यिनमा घृणा उब्जाउने आदि दुष्ट उपदेश इत्यादि कुरा हुनु कुपात्रका लक्षण हुन्।

र ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या पढ्ने–पढाउने, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय पुरुषार्थी, उदार, निरन्तर विद्या–धर्म को उन्नति गर्ने, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा–स्तुतिमा हर्षशोक नगर्ने, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा र ईश्वर का गुण, कर्म, स्वभावअनुसार व्यवहार गर्ने, न्याययुक्त, पक्षपातरहित, सत्य उपदेश र सत्यशास्त्रलाई

पढ्ने–पढाउने, परीक्षक, कसैको चापलुसी नगर्ने, प्रश्नहरूका यथार्थ समाधान गर्ने, आफ्नो आत्माजस्तै अरूको पनि सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि सम्झने, अविद्या आदि क्लेश, हठ, दुराग्रह, अभिमान आदि नभएको, अपमानलाई अमृतजस्तै र मान–सम्मानलाई विषजस्तै सम्झने, सन्तोषी, कसैले प्रीतिपूर्वक जति दिन्छ त्यसैमा प्रसन्न रहने, एकपटक आपत्कालमा माग्दा नदिनाले वा दिन्न भन्नाले पनि दुःख वा गलत चेष्टा नगर्ने, त्यहाँबाट तुरुन्त फर्कने, उसको निन्दा नगर्ने, सुखी व्यक्तिहरूसँग मित्रता, दुःखीसँग करुणा, पुण्यात्माहरूसँग आनन्दित र पापीहरूसँग उपेक्षा अर्थात् रागद्वेषरहित भएर रहने, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या–द्वेषरहित, गम्भीर आशय भएको, सत्पुरुष, धर्मयुक्त र दुष्टाचारदेखि सर्वथा रहित, आफ्नो तन, मन, धनलाई परोपकारमा लगाउने, अरूको सुखका लागि आफ्नो प्राण पनि अर्पित गर्ने आदि शुभगुणयुक्त व्यक्ति सुपात्र हुन्छन्। तर दुर्भिक्ष आदि आपत्कालमा अन्न, जल, वस्त्र, औषधि, पथ्य र स्थान प्राप्त गर्ने अधिकार सबै प्राणीमात्रको हुन्छ।

प्रश्न—दाता कति किसिमका हुन्छन्?

उत्तर—तीन प्रकारका—उत्तम, मध्यम र निकृष्ट। देश, काल र पात्रलाई जानेर सत्यविद्या र धर्मको उन्नतिरूप परोपकारका निम्ति दिने व्यक्ति **उत्तम दाता** भनिन्छ। कीर्ति वा स्वार्थका लागि दिने व्यक्ति **मध्यम दाता** हुन्छ। आफ्नो वा अरूको केही उपकार गर्न नसक्ने [illegible] वेश्यागमन आदिमा वा दुराचारी, भाट आदिलाई दिने, दिंदा तिरस्कार, अपमान आदि कुचेष्टा गर्ने, पात्र–कुपात्रको केही भेद नजान्ने, गुणी–अवगुणी सबैलाई एक समान सम्झने, विवाद, लडाइँ–झगडा, अरू धर्मात्मालाई दुःख दिएर सुखी हुनका लागि दान गर्ने व्यक्ति **अधम (निकृष्ट) दाता** हुन्छ। अर्थात् परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माहरूको सत्कार गर्ने उत्तम, परीक्षा गरेर वा नगरी आफ्नो प्रशंसाको निम्ति दिने मध्यम र सोच–विचाररहित निष्फल दान दिने व्यक्ति नीच दाता भनिन्छ।

प्रश्न—दानको फल यहीं प्राप्त हुन्छ वा परलोकमा?

उत्तर—सर्वत्र हुन्छ।

प्रश्न—स्वयं प्राप्त हुन्छ अथवा फल दिने अरू कोही छ?

उत्तर—फल दिने ईश्वर छ। जसरी कुनै चोर, डाँकू आफैं कारागारमा जान चाहँदैन, राजाले उसलाई अवश्य पठाउँछन्, धर्मात्माहरूको सुखको रक्षा गर्दछन्, तिनलाई सुख भोगाउँछन्, डाकू

आदिदेखि बचाएर तिनलाई सुखी राख्तछन्, त्यस्तै परमात्माले सबैलाई पाप–पुण्यका दुःख र सुखरूप फल यथावत् भोगाउँछन्।

प्रश्न—यी गरुडपुराण आदि ग्रन्थ वेदको अर्थ वा वेदको पुष्टि गर्दछन् वा गर्दैनन्?

उत्तर—गर्दैनन्। यी त वेदका विरोधी हुन् र वेदको उल्टो चल्दछन्। तन्त्र पनि त्यस्तै हुन्। जसरी कुनै मानिस एउटाको मित्र र सबै संसारको शत्रु हुन्छ, त्यस्तै पुराण र तन्त्रलाई मान्ने व्यक्ति हुन्छ, किनकि यी ग्रन्थ एक–अर्कासँग विरोध गराउँदछन्। यिनलाई मान्नु कुनै विद्वान्को काम होइन, यिनलाई मान्नु त अविद्वत्ता हो।

हेर, शिव पुराणमा त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराणमा रविवार, चन्द्रखण्डमा सोम ग्रहग्रस्त मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर राहुकेतुको, वैष्णव एकादशी, वामनको द्वादशी, नृसिंह वा अनन्तको चतुर्दशी, चन्द्रमाको पूर्णमासी, दिक्पालहरूको दशमी, दुर्गाको नवमी वसुहरूको अष्टमी, मुनिहरूको सप्तमी, कार्तिकस्वामीको षष्ठी, नागको पञ्चमी, गणेशको चतुर्थी, गौरीको तृतीया, अश्विनीकुमारको द्वितीया, आद्यादेवीको प्रतिपदा र पितरको अमावस्या, यी दिन पुराणरीतिले उपवास गर्ने दिन हुन् तथा सर्वत्र 'यी वार र तिथिमा अन्न–पान ग्रहण गर्ने मानिस नरकगामी हुनेछ' भनिएकोछ। यस अनुसार पोप र पोपका चेलाहरूले कुनै वार वा कुनै तिथिमा भोजन गर्न नहुने ठहर्दछ, किनकि खान–पान गरेमा नरकगामी हुनेछन्।

निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, व्रतार्क आदि प्रमादी व्यक्तिहरूले बनाएका ग्रन्थमा एक–एक व्रतको ठूलो दुर्दशा गरिएको छ। जस्तै–एकादशीमा शैव दशमीविद्धा, कोही द्वादशीमा एकादशी व्रत गर्दछन्। अर्थात् यस्तो विचित्र पोपलीला छ कि भोकभोकै मर्नमा पनि वाद–विवाद नै गर्दछन्। एकादशीको व्रत चलाउनमा पनि आफ्नो स्वार्थ नै छ, दया केही पनि छैन। ती भन्दछन्—**एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति॥** भएभरका पाप एकादशीका दिन अन्नमा बस्तछन्। यस पोपसँग 'त्यसमा कसका पाप बस्तछन्? तेरा वा तेरा बाबुका?' भनी सोध्नुपर्दछ। भएभरकापाप एकादशीमा अन्नमा गएर रहन्छन् भने एकादशीका दिन कसैलाई पनि दुःख रहनुहुँदैन। यस्तो त हुँदैन, उल्टो भोक आदिका कारण दुःख हुन्छ। पापको फल दुःख हो। यसकारण भोकै मर्नु पाप हो। यसको ठूलो माहात्म्य बताएका छन्। यसको कथा सुनेर–सुनाएर धेरै व्यक्ति ठगिन्छन्। ती मध्ये एउटा कथा यस्तो छ—

ब्रह्मलोकमा एउटी वेश्या थिई। उसले केही अपराध गरी। उसले पृथ्वीमा खस्ने श्राप पाई अनि उसले 'म पृथ्वीमा खसेर पुनः स्वर्गमा कसरी आउन सक्नेछु?' भन्ने स्तुति गरी। श्राप दिनेले भन्यो—'कुनै वेला तँलाई कसैले एकादशीको व्रतको फल दियोभने तँ स्वर्गमा आउनेछेस्।' ऊ विमानसहित कुनै नगरमा खसी। त्यहाँको राजाले ऊसँग—'तँ को होस्?' भनी सध्यो। उसले सबै वृत्तान्त भनेर सुनाई र भनी—'कसैले मलाई एकादशीको फल अर्पण गरेमा म फेरि पनि स्वर्ग जान सक्तछु।' राजाले सहरभरि खोज्न लगायो। एकादशीको व्रत गर्ने कोही पनि भेट्टिएन। एकदिन कुनै शूद्र पति-पत्नीमा झगडा भएको थियो। क्रोधका कारण पत्नी रात-दिन भोकै बसेकी थिई। दैवसंयोगले त्यसदिन एकादशी नै परेछ। उसले राजाको सिपाहीसँग भनी—'मैले एकादशी सम्झेर व्रत गरेको त होइन, तर त्यसदिन अकस्मात् भोकै रहेकी थिएँ। अनि ती राजपुरुषले त्यसलाई राजाकहाँ ल्याए। राजाले ऊसँग 'यस विमानलाई छोइदेऊ' भन्यो। उसले छोइदिई र छुनेबित्तिकै विमान मास्तिर उड्यो। यो त नजानिकनै गरिएको एकादशीव्रतको फल हो भने जानेर गरेमा त्यसको फलको कुरा गरेर साध्य होला र?

अरे रे बुद्धिका अन्धा हो! यो कुरा सत्य हो भने हामी स्वर्गमा नभएको एउटा पानको बीडा स्वर्गमा पठाउन चाहन्छौं। सबै एकादशी व्रत गर्नेहरू आ-आफ्नो फल देऊ। एउटा बीडा मास्तिर गयो भने अनि लाखौं करोडौं पान त्यहाँ पठाऔंला र हामी पनि एकादशी व्रत गर्न थाल्नेछौं। अनि यसो भएन भने तिमीहरूलाई भोकै मर्नुपर्ने यस आपत्कालबाट बचाउनेछौं।

चौबीस एकादशीका नाम छुट्टा-छुट्टै राखेका छन्। कुनैको 'धनदा', कुनैको 'कामदा', कुनैको 'पुत्रदा' र कुनैको 'निर्जला'। धेरैजसो दरिद्र, धेरै कामी र धेरै निर्वंशी व्यक्ति एकादशी व्रत गरेर बूढा भए, मरेरै पनि गए तर उनलाई धन, कामना वा सन्तान केही पनि प्राप्त भएन। जेठ महिनाको शुक्लपक्ष जस्तो एक घडीसम्म पनि पानी नपाउँदा मानिस व्याकुल हुने समयमा व्रत गर्नेहरूलाई ठूलो दुःख प्राप्त हुन्छ। खासगरी बङ्गालमा सबै विधवा स्त्रीहरूको ठूलो दुर्दशा एकादशीको दिन हुन्छ। यस्तो लेख्ता यस निर्दयी कसाईको मनमा केही पनि दया पलाएन। नत्रभने 'निर्जलालाई सजला र पौष महिनाको शुक्लपक्षको एकादशीको नाम निर्जला राखेको भएपनि केही बेस हुन्थ्यो। तर यस पापीलाई दयासँग के प्रयोजन र? कोही मरोस् वा बाँचोस्, पोपजी=पुरेत-

पुजारीको पेट राम्ररी भरिए पुग्दछ।

गर्भवती, भर्खरै विवाहिता स्त्री, केटा वा युवा व्यक्तिले त कहिल्यै उपवास गर्नु हुँदैन। कसैले उपवास गर्ने छ भने पनि पेटमा अजीर्ण भएको, भोक नलागेको दिनमा सर्बत वा दूध पिएर बस्नुपर्दछ। भोकमा नखाने र भोकविना खाने दुबै किसिमका व्यक्ति रोगसागरमा गोता खाएर दुःख पाउँछन्। यी प्रमादीहरूले लेखेका, बताएका कुराको प्रमाण कसैलेपनि मान्नुहुँदैन।

अब गुरु-शिष्य मन्त्रोपदेश र मतमतान्तरका चरित्रको व्यवहार बताइन्छ—

मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायीहरू प्रश्न गर्दछन्—वेद अनन्त छन्। ऋग्वेदका एक्काईस, यजुर्वेदका एकसय एक, सामवेदका एकहजार र अथर्ववेदका नौ शाखा छन्। तिनमा थोरै शाखा उपलब्ध छन्, बाँकी सबै लोप भएका छन्। तिनमै मूर्त्तिपूजा र तीर्थहरूको प्रमाण होला। नभएको भए पुराणमा कहाँबाट आए त? कार्यलाई देखेर कारणको अनुमान गरिन्छ भने पुराणहरूलाई देखेर मूर्त्तिपूजाको अनुमान गर्नमा के शङ्का रहन्छ र?

उत्तर—कुनै वृक्षका शाखा जुन वृक्षका हुन्छन् त्यस वृक्षजस्तै हुन्छन् फरक हुँदैनन्। हाँगा साना होऊन् अथवा ठूला, तर उनमा विरोध हुनसक्तैन। जस्तै जति शाखा उपलब्ध छन् तिनमा ढुङ्गा का मूर्ति र जल-स्थल-विशेष तीर्थहरूको प्रमाण पाइँदैन भने ती लुप्त शाखाहरूमा पनि थिएनन्। चार वेद त पूर्णरूपमा उपलब्ध छँदैछन्, शाखा तिनका विरुद्ध हुन् सक्तैनन् र जो वेदविरुद्ध छन् , तिनलाई कसैले पनि शाखा सिद्ध गर्नसक्तैन। यसैअनुसार पुराण वेदका शाखा होइनन्, यी त सम्प्रदायी व्यक्तिहरूले बनाएका परस्पर विरुद्ध ग्रन्थ हुन्।

वेदलाई तिमी परमेश्वरकृत मान्दछौ वा मनुष्यकृत?

परमेश्वरकृत।

वेदलाई परमेश्वरकृत मान्दछौ भने '**आश्वलायनादि**' ऋषिमुनिका नामबाट प्रसिद्ध ग्रन्थ लाई वेद किन मान्दछौ? जसरी हाँगा र पातलाई हेरेर पीपल, बर र आँप आदि वृक्ष चिनिन्छन्, त्यस्तै ऋषिमुनिले बनाएका वेदाङ्ग, चारै ब्राह्मण, अङ्ग, उपाङ्ग र उपवेद आदिबाट वेदको अर्थ जानिन्छ। यसैकारण यी ग्रन्थलाई '**शाखा**' मानिएको हो। वेदविरुद्धको प्रमाण र वेदानुकूलको अप्रमाण हुनसक्तैन।

तिमीले वेदका लुप्त शाखाहरूमा मूर्त्ति आदिको कल्पना गर्दछौ भने कसैले यस्तो पक्ष पनि प्रस्तुत गर्नेछ कि—लुप्त शाखाहरूमा वर्णाश्रमव्यवस्था उल्टो अर्थात् अन्त्यज, शूद्रादिको नाम ब्राह्मणादि, ब्रह्मणादिको नाम शूद्र, अन्त्यज आदि, अगमनीया गमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषण आदि धर्म, सत्यभाषण आदि अधर्म आदि लेखिएको होला। यस्तो अवस्थामा तिमीले पनि हामीले दिएकै उत्तर दिनेछौ। अर्थात् 'वेद र प्रसिद्ध शाखाहरूमा जस्तो ब्राह्मणादिको नाम ब्राह्मण आदि र शूद्रादिको नाम शूद्रादि लेखिएको छ त्यस्तै लुप्तशाखाहरूमा पनि मान्नु पर्दछ। नत्रभने वर्णाश्रम व्यवस्था सबै चौपट हुनेछन्।'

अँ, जैमिनी, व्यास र पतञ्जलिका समयसम्म सबै शाखा विद्यमान थिए वा थिएनन्? थिए भने तिमी कहिल्यै निषेध गर्न सक्नेछैनौ। थिएनन् भन्छौ भने शाखा हुने कुराकै के प्रमाण? हेर, जैमिनीले मीमांसामा सबै कर्मकाण्ड, पतञ्जलिमुनिले योगशास्त्रमा सबै उपासनाकाण्ड र व्यासमुनिले शारीरकसूत्रहरूमा सम्पूर्ण ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लेखेका छन्। उनमा ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा वा प्रयाग आदि तीर्थहरूको नाम पनि लेखिएको छैन। कहाँबाट लेख्ने र? वेदमा भएको भए न लेख्थे, नलेखी छोड्ने थिएनन्। यसकारण लुप्त शाखाहरूमा पनि यी मूर्तिपूजा आदिको प्रमाण थिएन। यी सबै शाखा वेद होइनन्, किनकि यिनमा ईश्वरकृत वेदका प्रतीक राखेर व्याख्या र सांसारिक व्यक्तिहरूको इतिहास पनि लेखिएको छ। यसकारण यिनलाई कहिल्यै वेद मान्न सकिंदैन। वेदमा त केवल मनुष्यलाई विद्याको उपदेश गरिएको छ। कुनै मानिसको नाम मात्र पनि छैन। यसकारण मूर्त्तिपूजाको सर्वथा खण्डन छ।

हेर, मूर्त्तिपूजाबाट श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण, शिव आदिको ठूलो निन्दा र उपहास हुन्छ। ती ठूला महाराजाधिराज र उनका पत्नीहरू सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी र पार्वती आदि महारानी थिए भन्ने कुरा सबैलाई थाहै छ। तर तिनका मूर्त्ति बनाएर मन्दिर आदिमा राखेर पुजारीहरूले उनीहरूका नामबाट भिक्षा माँग्ने गरेर उनीहरूलाई भिखारी बनाइरहेछन्—

'आओ महाराज! साहुजी। दर्शन गर। बस, चरणामृत ग्रहण गर, केही भेटी चढाऊ। महाराज! सीता–राम, कृष्ण–रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण र महादेव–पार्वतीजीलाई तीन दिनदेखि बालभोग वा

राजभोग अर्थात् जलपान या केही खानेकुरा प्राप्त भएको छैन। आज यिनीहरूसँग केही छैन। रानीजी! वा सेठानीजी! सीता आदिका लागि टप वा फुली बनाइदेऊ। अन्न आदि पठाऊ अनि त राम कृष्ण आदिलाई भोग लगाइने छ।'

'वस्त्र सबै च्यातिइसकेका छन्। मन्दिरका कुना सबै लडिसके। माथिबाट चुहिन्छ। अलि–अलि जे–केही बाँकी थियो, त्यो सबै दुष्ट चोरले लग्यो। केही ऊन्दर=मूसाले काटेर नष्ट पारिदिए। हेर, एकदिन मूसाले यस्तो अनर्थ गर्यो कि यिनका आँखा पनि झिकेर लिईभाग्यो। अनि हामीले चाँदीका बनाउन नसकेर कौडी=सीपीका आँखा लगाएका छौं।'

रामलीला र रासमण्डल पनि गराउँछन्। सीताराम, राधाकृष्ण नाचिरहेछन्, राजा महन्त आदि उनका सेवक भने आनन्दपूर्वक बसेकाछन्। मन्दिरमा सीता, राम आदि उभिएका हुन्छन् र पुजारी वा महन्तजी भने आसन वा गद्दीमाथि तकिया लगाएर बसिरहेका हुन्छन्। भयंकर गर्मीमा पनि ताल्चा लगाएर भित्र थुनिदिन्छन्, आफूभने सुहाउँदो हावामा पलंग आदि ओछ्याएर सुत्दछन्। धेरै पुजारीहरू आफ्ना नारायणलाई सानो डिब्बामा बन्द गरेर माथिबाट कपडा आदिले बेरेर बाँधेर गलामा झुण्ड्याइराख्छन्। बाँदर्नीले आफ्ना बच्चालाई छातीमा झुण्ड्याइराखे जस्तै ती भगवानलाई पुजारीले झुण्ड्याएका हुन्छन्। कसैले मूर्त्तिलाई तोड–फोड गर्यो भने 'सीतारामजी, राधाकृष्णजी र शिवपार्वतीजीलाई दुष्टहरूले तोडफोड गरे' भनेर छाती पिटेर चिच्याउँछन्, कराउँछन्। 'अब योग्य शिल्पीले बनाएको संगमरमरको अर्को मूर्त्ति मगाएर स्थापन र पूजा गर्नुपर्यो। नारायणलाई घिउ नभई भोग लगाइँदैन। धेरै नभए पनि अलिकति अवश्य पठाइदिनु होला' इत्यादि कुरा मूर्त्तिमाथि सिद्ध गर्दछन्। रासमण्डल वा रामलीलाको अन्त्यमा सीताराम वा राधाकृष्णलाई भिक्षा माग्न लगाउँछन्। कतै मेला–उत्सव छ भने कुनै केटाको टाउकोमा मुकुट राखेर कन्हैया बनाएर बाटाको छेउमा बसाएर भिक्षा माग्न लगाउँछन्। इत्यादि कति दु:खका कुरा हुन् भन्ने विचार तपाईंहरू नै गर्नुहोला।

नत्र भने के सीता–राम आदि यस्ता दरिद्र र भिखारा थिए? यो तिनको उपहास र निन्दा होइन भने के हो त? यसबाट आफ्ना माननीय व्यक्तिहरूको निन्दा हुन्छ। यी माननीयहरूको समयमा सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी र पार्वतीलाई सडकमा वा कुनै घरमा उभ्याएर पुजारीहरूले

'आओ, यिनको दर्शन गर र केही भेटी–पूजा राख' भनेका भए यी मूर्खले यसो भन्दैमा सीता–राम आदिले न त यस्तो काम गर्नेथिए, न यसो गर्न दिनेथिए। बरु यस्तो उपहास गर्नेलाई दण्ड नदिई छोड्ने थिएनन्। अँ, तीबाट दण्ड नपाएपछि यिनकै कर्मबाट पुजारीहरूलाई धेरैजसो मारपीट, लुटपाट, मूर्त्तिचोरी, मूर्त्तितोड्नु आदिरूपी प्रसाद मूर्त्तिविरोधीहरूको तर्फबाट दिलाए र अझै पनि मिल्दैछ र यो कुकर्म नछोडेसम्म यो प्रसाद प्राप्त भैनै रहनेछ।

आर्यावर्त्तको प्रतिदिन ठूलो हानि, ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा गर्नेहरूको पराजय यिनै कर्मबाट हुन्छ भन्ने कुरामा कुनै सन्देह छैन, किनकि पापको फल दुःख हुन्छ। यिनै ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको विश्वासले धेरैजसो हानि भैसक्यो। यसलाई नछोडेमा दिन प्रतिदिन यो हानि बढ्दैजानेछ। यिनमा वाममार्गी सबैभन्दा ठूला अपराधी हुन्। यिनीहरू चेला बनाउँदा कुनै साधारण मानिसलाई—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मन्त्रहरूको उपदेश गर्दछन्। बंगालमा खासगरी एकाक्षरी मन्त्रको उपदेश गर्दछन्। जस्तै—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं॥ इत्यादि। अनि धनाढ्य व्यक्तिको पूर्णाभिषेक गर्दछन्। यस्तै दश महाविद्याका मन्त्र—

ह्रां, ह्रीं, ह्रूं वगलामुख्यै फट् स्वाह॥ कतै कतै—**हूं फट् स्वाहा॥**

यी हुन् र मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग गर्दछन्। मन्त्रबाट त त्यस्तो केही पनि हुँदैन तर क्रियाबाट नै सबै कुरा गर्दछन्। कसैलाई मार्ने प्रयोग गर्दा एकातर्फ प्रयोग गराउनेबाट धन लिएर जसलाई मार्नुपर्ने छ त्यसको पुतला वा मूर्तिजस्तो पिठो वा माटोको बनाउँछन्। उसको छाती, नाभि र कण्ठमा छुरा घोप्छन्। आँखा, हात, गोडामा कीला ठोक्छन्। त्यसमाथि भैरव वा दुर्गको मूर्त्ति बनाएर हातमा त्रिशूल दिएर उसको हृदयमा लगाउँछन्। एउटा वेदी बनाएर मासु आदिको होम गर्न थाल्दछन् भने अर्का तर्फ दूत आदि पठाएर विष आदिद्वारा त्यस व्यक्तिलाई मार्ने उपाय गर्दछन्। आफ्नो पुरश्चरणको बीचमै कसैले त्यस व्यक्तिलाई मारिहाल्यो भने आफूलाई भैरव देवीको सिद्धिसम्पन्न बताउँछन्। "**भैरवो भूतनाथश्च**" इत्यादि पाठ गर्दछन्।

मारय–मारय, उच्चाटय–उच्चाटय, विद्वेषय–विद्वेषय, छिन्धि–छिन्धि, भिन्धी–भिन्धी, वशीकुरु–वशीकुरु, खादय–भक्षय,

त्रोटय–त्रोटय, नाशय–नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु–वशीकुरु, हुं फट् स्वाहा॥

इत्यादि मन्त्र जप्तछन्। मद्यमांस आदि यथेष्ट खानेपिउने गर्दछन्। भृकुटीको बीचमा सिन्दूरको रेखा तान्दछन्। कहिलेकाहीं काली आदिका निम्ति कुनै मानिसलाई समातेर मारेर, होम गरेर, त्यसको मासु पनि अलि–अलि खान्छन्। भैरवीचक्रमा नजाने, मद्यमांस नखाने, नपिउने व्यक्तिलाई मारेर होम गरिदिन्छन्। तिनमा जुन '**अघोरी**' हुन्छ त्यसले त मरेका मानिसको मासु पनि खान्छ। **अजरी–बजरी** गर्ने तान्त्रिकहरू त दिसा–पिसाब पनि खान्छन्, पिउँछन्।

एउटा **चोलीमार्ग** र अर्को **बीजमार्गी** पनि हुन्छन्। चोलीमार्गीहरू एउटा गोप्य ठाउँ वा भुइँमा एउटा ठाउँ बनाउँछन्। त्यहाँ सबैका पति, पत्नी, छोरा, छोरी, दिदी, बहिनी, आमा, बुहारी आदि सबै जम्मा भएर सबै मिलेर मासु खान्छन्, रक्सी पिउँछन्, एउटी स्त्रीलाई नांगै पारेर सबै पुरुषले उसको गुप्तेन्द्रियको पूजा गर्दछन् र उसको नाम दुर्गादेवी राख्छन्। त्यस्तै एउटा पुरुषलाई नांगो पारेर सबै स्त्रीहरूले उसको गुप्तेन्द्रियको पूजा गर्दछन्। रक्सी धोकेकोधोक्यै गरेर उन्मत्त भएपछि सब स्त्रीहरू चोली अर्थात् छातीका वस्त्रलाई माटोको एउटा ठूलो घ्याम्पोमा हालेर एउटा–एउटा पुरुषले त्यसमा हात हालेर जसको हातमा जसको वस्त्र पर्दछ ऊ आमा, बहिनी, छोरी, बुहारी जोसुकै भएपनि त्यसबखतका लागि त्यो त्यसैको पत्नी हुन्छे। परस्पर कुकर्म गर्दछन् र धेरै नशा चढ्नाले जुत्ता आदिद्वारा हानाहान गरेर लड्ने भिड्ने पनि गर्दछन्। बिहान केही अँध्यारो छँदैमा आ–आफ्ना घर जान्छन् अनि आमा आमा, छोरी छोरी, बहिनी बहिनी र बुहारी बुराही नै हुन्छन्। अर्को कुरा, बीजमार्गी भने स्त्री पुरुषको समागम गरेर पानीमा वीर्य हालेर मिलाएर पिउँछन्। यी नालायक लाछीहरू विद्या विचार सज्जनता आदिरहित भएर यस्ता कुकृत्यलाई मुक्तिका साधन मान्दछन्।

प्रश्न—शैव मतावलम्बीहरू त ठिकै हुन्छन् होइन?

उत्तर—कसरी ठीक हुनु। 'जस्तो प्रेतनाथ त्यस्तै भूतनाथ'। जसरी वाममार्गी मन्त्रोपदेश आदिद्वारा अर्काको धन हरण गर्दछन्, त्यस्तै शैव पनि 'ॐ नमः शिवाय' इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रको उपदेश गरेर, रुद्राक्ष, भस्म धारण गरेर माटो र ढुङ्गा आदिका लिङ्ग बनाएर पुज्दछन् र 'हर–हर बं बं' तथा बोकाको शब्दजस्तै मुखबाट 'बड बड' शब्द निकाल्दछन्। यसो गर्नाको कारण चाहिं ताली बजाउनाले र 'बं बं'

शब्द बोल्नाले पार्वती प्रसन्न र महादेव अप्रसन्न हुन्छन् भन्ने कुरा बताउँछन्, किनकि भस्मासुरको अगाडिबाट महादेव भाग्दा 'बं बं' र ठट्टा गरेको ताली बजेको थियो। त्यस्तै गाला बजाउनाले पार्वती अप्रसन्न र महादेव प्रसन्न हुन्छन् रे। किनकि पार्वतीका पिता दक्षप्रजापतिको टाउको काटेर अग्निमा होमेर उसको गिंडमा बोकाको टाउको लगाइएको थियो। गाला बजाउनुलाई त्यसैको नक्कल मान्दछन्। शिवरात्रि, प्रदोषव्रत आदिबाट मुक्ति हुन्छ भन्ठान्दछन्। यस कारण जसरी वाममार्गी भ्रान्त छन्, त्यस्तै शैव पनि भ्रमित छन्। यिनमा खासगरी कनफट्टा नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत, सागर तथा गृहस्थ पनि शैव हुन्छन्। कोहीकोही दुबै घोडामा चढ्दछन् अर्थात् वाममत र शैवमत दुवैलाई मान्दछन् र कति त वैष्णव पनि हुन्छन्। उनीहरूको—

अन्तः शाक्ता बहिश्शैवः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्तीह महीतले॥

यो तन्त्रको श्लोक हो। भित्र शाक्त अर्थात् वाममार्गी, बाहिर शैव अर्थात् रुद्राक्ष, भस्म धारण गर्ने र सभामा वैष्णव भनिन्छन् अर्थात् 'हामी विष्णुका उपासक हौं' भन्दछन्। यस्ता नाना रूप धारण गरेर वाममार्गीहरू पृथ्वीमा विचरण गर्दछन्।

प्रश्न—वैष्णव त ठिकै छन्?

उत्तर—के ठीक हुन्थे र। जस्ता उनीहरू छन्, त्यस्तै यी हुन्। वैष्णवहरूका लीला त हेर! आफूलाई विष्णुका दास मान्दछन्। तिनमा चक्राङ्कित श्रीवैष्णव आफूलाई सर्वोपरि मान्दछन्, तर ती केही पनि होइनन्।

प्रश्न—केही पनि किन होइनौं? सबै नै हौं। हेर, ललाटमा नारायणको चरणारविन्द जस्तै तिलक र बीचमा पहेंलो रेखा श्री हुन्छ, यसैले हामी '**श्रीवैष्णव**' भनिन्छौं। एउटा नारायणबाहेक अरू कसैलाई मान्दैनौं। महादेवका लिङ्गको दर्शन पनि गर्दैनौं। किनकि त्यसो गर्नाले हाम्रो मस्तकमा विराजमान श्रीलाई लाज लाग्दछ। '**आलमन्दार**' आदि स्तोत्रको पाठ गर्दछौं। मन्त्रपूर्वक नारायणको पूजा गर्दछौं। मासु खाँदैनौं, जाँड–रक्सी आदि पिउँदैनौं। अनि हामी ठीक किन होइनौं?

उत्तर—तिम्रो यस तिलकलाई हरिपदको आकृति र यस पहेंलो रेखालाई श्री मान्नु व्यर्थै छ। किनकि हात्तीको मस्तकलाई चित्र–विचित्रको पारे जस्तै यो त तिम्रा हातको कारीगरी र ललाटको चित्र हो। तिम्रो मस्तकमा विष्णुका गोडाको चिह्न कहाँबाट आयो? के कसैले वैकुण्ठमा

गएर विष्णुका गोडाको चिह्न ललाटमा राखेर ल्याएको हो?

विवेकी—अनि श्री जड़ छ वा चेतन?

वैष्णव—चेतन छ।

विवेकी—त्यसोभए यो रेखा जड़ हुनाले यो श्री होइन। हामी 'श्री बनाइएको हो वा नबनाई भएको हो' भनी सोद्धछौं। बनाइएको होइन भने यो श्री होइन, किनकि यसलाई त तिमी दिनहुँ आफ्नै हातले बनाउँदछौ, अनि यसरी दिनहुँ बनाइने श्री हुँदै होइन। तिम्रो मस्तकमा श्री नै हो भने कैयौं वैष्णवहरूको मुखमण्डल नराम्रो अर्थात् शोभारहित किन देखिन्छ? ललाटमा श्री लगाएर, घरघरमा भिक्षा माग्दै र सदावर्त लिएर पेट भर्दै किन डुल्छौ? मस्तकमा श्री भिरेर कामचाहिं महादरिद्रका गर्दछौं, यी अत्यन्त घृणा र लज्जाका कुरा हुन्?

यिनमा एउटा '**परिकाल**' नामक वैष्णव भक्त थियो। त्यो चोरी, डकैती, छल–कपट गरेर अर्काको धन हरण गरेर वैष्णवहरूकहाँ पुर्याएर प्रसन्न हुने गर्दथ्यो। एकपटक चोरी गर्न जाँदा लुट्न–चोर्नलायक कुनै पदार्थ प्राप्त भएन र व्याकुल भएर यताउति घुमिरहेको थियो। नारायण 'मेरो भक्तले दुःख पाएछ' भन्ने सोचेर, महाजनको रूप धारण गरेर, औंठी आदि आभूषण भिरी रथमा बसेर परिकालको अगाडि आए। परिकालले रथको नजिक पुगेर महाजनसँग भन्यो—'सबै सामान तुरुन्त खोल, नत्र मार्नेछु।' खोल्दा–खोल्दै औंठी खोल्न ढिलो भयो। परिकालले नारायणको औंलो काटेर औंठी लियो। नारायणले अत्यन्त प्रसन्न भएर चतुर्भुज शरीर धारण गरेर दर्शन दिएर भने—'तिमी मेरा ठूला भक्त हौ। लूटमार चोरी आदि गरेर पनि सब धन प्राप्त गरेर वैष्णवहरूको सेवा गर्ने हुनाले तिमी धन्य छौ।' अनि उसले गएर सबै गर–गहना वैष्णवहरूका समीप राखिदियो।

एकपटक कुनै साहुकारले परिकाललाई नोकर बनाएर जहाजमा बसाएर अर्कै देशमा लग्यो। त्यहाँबाट जहाजमा सुपारी भर्यो। परिकालले एउटा सुपारीलाई फोरेर आधा टुक्रो पारेर साहुजीसँग भन्यो—'यो मेरो आधा कुड्को सुपारी जहाजमा राखिदेऊ र जहाजमा आधा सुपारी परिकालको छ भनेर लेखिदेऊ'। साहुजीले—'तिमीले चाहे हजार सुपारी लिए पनि हुन्छ' भन्दा परिकालले—'होइन, म अधर्मी होइन, झूटो बोलेर लिन्न, मलाई त आधा चाहिन्छ' भन्यो। व्यापारी सोझो सज्जन थियो, उसले लेखेर दियो। जहाज आफ्नो देशको बन्दरगाहमा आइपुगेर सुपारी उतार्ने तैयारी हुँदा परिकालले—'मेरो आधी सुपारी

देऊ' भन्यो। व्यापारीले त्यही आधा कुड्को सुपारी दिन खोज्यो तर परिकालले 'मेरो त जहाजमा आधा सुपारी छ, भाग लगाउनुपर्दछ' भनेर झगडा गर्न थाल्यो। झगडा राजपुरुषसम्म पुग्यो। परिकालले– व्यापारीले लेखेको देखाएर 'यसले आधा सुपारी दिन लेखेको छ' भन्यो व्यापारीले धेरै समझायो तर उसले मानेन। जहाको सम्पूर्ण आधा सुपारी लिएर वैष्णवहरूलाई अर्पण गर्यो। अनि त वैष्णव धेरै प्रसन्न भए। उनीहरू हालसम्म पनि त्यस चोर, डाकू परिकालको मूर्त्ति मन्दिरमा राख्दछन्। यो कथा भक्तमालमा लेखिएको छ। बुद्धिमान् व्यक्तिहरूले विचार गर्नुपर्दछ कि वैष्णव, उनका सेवक र नारायण यी तिनै चोरमण्डली हुन् वा होइनन्?

यद्यपि मतमतान्तरमा कोही केही ठीक पनि हुन्छन् तथापि त्यस मतमा रहेर सर्वथा ठीक कोही पनि हुनसक्तैन। अब वैष्णवहरूमा जस्तो टुट–फुट छ र बेग्लाबेग्लै तिलक कण्ठी आदि धारण गर्दछन्, त्यसबारे लेखिन्छ। रामानन्दी छेउमा गोपीचन्दन र बीचमा रातो लगाउँछन्, त्यस्तै नीमावत दुवैतर्फ पातलो रेखा र बीचमा कालो थोप्लो, माधव कालो रेखा, गौड बंगाली कचौरा जस्तै र रामप्रसादी दुवै चन्द्राकार रेखाको बीचमा एउटा सेतो बाटुलो टीको लगाउँदछन् आदि। यिनका विलक्षण विलक्षण भनाइ छन्–रामानन्दी रातो रेखालाई लक्ष्मीको चिह्न, नारायणको हृदयमा श्री र कृष्णचन्द्रको हृदयमा राधा विराजमान भएको बताउँछन्।

भक्तमालमा एउटा कथा छ। कुनै एउटा मानिस रूखमुनि सुतिरहेको थियो। सुतेकै अवस्था मर्यो। माथिबाट कागले विष्टा गरिदियो। त्यो उसको मस्तकमा तिलकाकार भएर पर्यो। त्यहाँ उसलाई लिन यमका दूत आए र त्यत्तिकैमा विष्णुका दूत पनि आइपुगे। दुबैको विवाद भयो। यमका दूतले 'यसलाई हामी यमलोक लैजान्छौं, यो हाम्रो स्वामीको आज्ञा हो' भने। विष्णुका दूतले—'हाम्रा स्वामीको आज्ञा यसलाई वैकुण्ठ लैजानेछ, हेर, यसको ललाटमा वैष्णवी तिलक छ, तिमीहरूले यसलाई कसरी लानपाउँछौ छौ?' भने। अनि त यमका दूत चुपचाप लागेर फर्के। विष्णुका दूतले उसलाई सुखपूर्वक वैकुण्ठ लगे। नारायणले उसलाई वैकुण्ठमा।

हेर, अपर्झट आफैं तिलक बनेको माहात्म्य त यस्तो छ भने आफ्नै प्रीति र हातबाट तिलक लगाउनेहरू नरकबाट छुटेर वैकुण्ठ पुग्नमा के आश्चर्य छ त?

हामी सोद्धछौं—जब सानो तिलक लगाउनाले त वैकुण्ठ गइन्छ भने सबै मुखभरि लिप्नाले, मुखमा कालोमोसो दल्नाले अथवा शरीरभरि लिप्नाले वैकुण्ठभन्दा पनि पर पुग्छौ वा पुग्दैनौ? यसकारण यी सबै कुरा व्यर्थै हुन्।

अब यिनमा धेरैजसो **खाखी** सम्प्रदायका व्यक्ति मुढाको लंगोली (ढेरी) लगाएर धुनी ताप्ने, जटा बढाउने र सिद्धको भेष धारणगर्ने गर्दछन्। बकुल्लाजस्तै ध्यानावस्थित भैटोपल्छन्। गाँजा, भाँङ्, चरेसको दम लगाउँछन्। राता–राता आँखा पार्छन्। सबैसँग मुठ्ठी–मुठ्ठी पिंधेको अन्न र एक–एक पैसा माग्दछन्, गृहस्थका केटाहरूलाई भड्काएर लैजान्छन्। तिनमा धेरैजसो ज्यामीहरू हुन्छन्। कसैले विद्या पढ्न चाहेमा पनि पढ्न दिंदैनन्। उनीहरू भन्छन्—

''पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेतिकिं कर्त्तव्यम्?'' सन्तहरूले विद्या पढेर के काम? किनकि विद्या पढ्नेहरू पनि मर्दछन् भने किन दाँत कट्कटाउने? साधुहरूले त चारधाम डुल्नु, सन्तहरूको सेवा गर्नु र रामजीको भजन गर्नु नै पर्याप्त हुन्छ।

कुनै मूर्खले अविद्या को मूर्त्ति नदेखेको भए खाखीजीको दर्शन गरेहुन्छ। खाखीको नजिक जाने व्यक्ति उनका बाबु–आमा सरह नै किन नहोओस्, सबैलाई उनीहरू बच्चा–बच्ची भन्ने गर्दछन्। खाखीजस्तै रुंखड, सुंखड्, गोदड़िया, जमातिया, सुतरेसाई, अकाली, कनफटा, जोगी, औघड् आदि सबै एकनासै हुन्।

एउटा खाखीको चेलो '**श्री गणेशाय नमः**' धोक्दै–धोक्दै कुवामा पानी भर्न पुग्यो। त्यहाँ पण्डित बसेको थियो। पण्डितले उसलाई—'**स्त्रीगनेसाजनमे**' भनि घोकोको देखेर भन्यो—अरे साधु! तिमी अशुद्ध घोक्दै छौ। '**श्री गणेशाय नमः**' यस्तो घोक। त्यो चेलोले तुरन्तै लोटा भरेर गुरुछेउ पुगेर भन्यो—'यो बाउन मैले घोकेकोलाई असुध भन्दैछ।' यसो सुन्ने बित्तिकै खाखी तुरन्तै उठ्यो र कुवामा गएर पण्डितसँग भन्यो—तँ मेरो चेलोलाई भड्काउँछस्। तँ गुरुको ताबेदारले के पढेको छस् र? हेर्, तैंले एक किसिमको पाठ जानेको छस्, हामी तीनप्रकारको पाठ जान्दछौं—

'स्त्रीगनेसाजन्नमे'; 'स्त्रीगनेसायन्न मे', 'स्त्रीगनेसाय नमे'।

पण्डित—सुन साधुजी! विद्याको कुरा धेरै कठिन हुन्छ, नपढिकन आउँदैन।

खाखी—जा जा! हामीले धेरै विद्वान्हरूलाई लतारेका छौं, तिनलाई

भाँङ् घोटेर सबैलाई उडाइदिएका छौं। सन्तहरूको घर ठूलो छ। तँ बिचरा के जान्दछस् र?

पण्डित—हेर, तिमीले विद्या पढेका भए यस्ता अपशब्द बोल्ने थिएनौ। तिमीलाई सबै किसिमको ज्ञान हुन्थ्यो।

खाखी—ए! तँ हाम्रो गुरु हुन्छस्? तेरो उपदेश हामीलाई चाहिंदैन।

पण्डित—बुद्धि नै नभएपछि कहाँबाट पाइयोस् र चाहियोस्। उपदेश सुन्न र बुझ्नका लागि विद्या चाहिन्छ।

खाखी—सबै शास्त्र पढेर पनि साधु-सन्तलाई नमान्ने व्यक्तिले केही नपढेको सम्झनुपर्दछ।

पण्डित—हो, हामी सन्तहरूको सेवा गर्दछौं, तर तिमीजस्ता हुल्याहाहरूको सेवा गर्दैनौं। किनकि सज्जन, धार्मिक, विद्वान्, परोपकारी व्यक्तिलाई नै '**सन्त**' भनिन्छ।

खाखी—हेर, हामी दिनरात नांगै बस्तछौं, धुनी ताप्छौं, गाँजा, चरेसका सयौं दम लगाउँछौं। तीन-तीन औखोरा भाँङ् पिउँछौं। गाँजा, भाँङ्, धतुराका पातको साग पकाएर खान्छौं। संखिया र अफीम पनि तुरुन्तै निल्दछौं। नशामा डुबेर रात-दिन निस्फिक्री रहन्छौं। दुनियाँलाई केही गन्दैनौं। भिक्षा मागेर सुख्खा रोट पकाएर खान्छौं। रातभरि हामी नजिक सुत्नेलाईसमेत निन्द्रा नलाग्नेगरी खोकिरहन्छौं, इत्यादि सिद्धिहरू र साधुपन हामीभित्र हुँदा-हुँदै पनि तँ किन हाम्रो निन्दा गर्दछस्? मूर्ख मोरा, अझै चेत्। हामीलाई दिक्क लाइस् भने तँलाई हामी भस्म गरिदिनेछौं।

पण्डित—यी सबै लक्षण असाधु, मूर्ख र नालायकका हुन्, साधुका होइनन्। सुन, '**साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः**' धर्मयुक्त उत्तम काम गर्ने, सदा परोपकारमा लागिरहने, कुनै दुर्गुण नभएको, विद्वान् र सत्य उपदेशद्वारा सबैको उपकार गर्नेलाई '**साधु**' भनिन्छ।

खाखी—जा जा! तँलाई साधुका कर्म के थाहा? सन्तहरूको घर ठूलो छ। कुनै सन्तसँग यसरी निहुँ नखोज्नू, नत्रभने एउटा चिम्टा उठाएर हान्योभने तेरो टाउको फुट्नेछ।

पण्डित—भई गयो खाखी जी! जाऊ, आफ्नो आसनमा जाऊ, हाम्रा सामु धेर रिस नपोख। तिमीलाई थाहा छ राज्यशासन कस्तो छ भनेर? कसैलाई मार्यौभने समातिनेछौ, जेल सजाय भोग्नुपर्नेछ, बेतका कोर्रा खानेछौ। अथवा कसैले तिमीलाई नै हान्यो वा मार्योभने के गर्नेछौ? यो त साधुको लक्षण होइन।

खाखी—हिंड् ए चेला। कुन राक्षसको मुख देखाइस् तैंले?

पण्डित—तिमीले कुनै महात्माको संगत गरेका भए यस्ता जड़मूर्ख रहने थिएनौ।

खाखी—हामी आफैं महात्मा हौं। हामीलाई अरू कुनैको आवश्यकता छैन।

पण्डित—भाग्यहीन मानिसमा नै तिम्रो जस्तो बुद्धि र घमण्ड हुन्छ।

खाखी आफ्नो आसनमा र पण्डित आफ्नो घर गए। साँझको आरतीपछि त्यस खाखीलाई बूढो सम्झेर धेरैजसो खाखीहरूले डण्डोत-डण्डोत भनी साष्टाङ्ग गरेर बसे। त्यस खाखीले 'ओ रामदासिया! तैंले के पढेकोछस्?' भनी सोध्यो।

रामदास—महाराज! मैले 'बेस्नुसहसरनाम' पढेको छु।

खाखी—ओ गोविन्दासिया! तैंले चाहिं के पढेकोछस् नि?

गोविन्ददास—मैले फलाना खाखीजीबाट 'रामसतबराज' पढेको छु। त्यसैबखत रामदासले 'महाराज! तपाईंले के पढ्नुभएको छ?' भनी सोध्यो।

खाखी—हामीले गीता पढेका छौं।

रामदास—कोसँग पढ्नुभएको?

खाखी—जा हट्। हामी कुनै गुरुलाई मान्दैनौं। हेर्! हामी 'परागराज' मा बस्तथ्यौं। हामीलाई एक अक्खर आउँदैनथ्यो। कुनै लामो धोतीधारी पण्डितलाई देख्नेबित्तिकै गीताको गुटिका तेर्स्याएर 'यस सिउर भएको अक्खरको के नाम हो?' भनी सोद्धा-सोद्धा अठार अध्ये गीता घोक्यौं। गुरु एउटा पनि बनाएनौं।

यस्ता विद्याका शत्रुकहाँ अविद्याले घर बनाएर नबसे कहाँ जाओस् त? यिनीहरू नशा, प्रमाद, लडाइँ, खाने, सुत्ने, खैंजडी ठटाउने, घण्टा, घडियाल, शङ्ख बजाउने, धुनी-चिता राख्ने, नुहाउने-धुने, यताउति व्यर्थै घुम्ने-फिर्नेबाहेक कुनै राम्रो काम गर्दैनन्। बरु कसैले ढुङ्गा पगाल्न सक्ला तर यी खाखीका आत्मामा ज्ञान दिलाउन गाह्रो पर्दछ, किनकि तिनमा धेरैजसो शूद्रवर्णका, ज्यामी, किसान, डोले आदि आफ्नो ज्यालादारी छोडेर खाख=खरानी घसेर वैरागी खाखी बनेका हुन्छन्। तिनले विद्या वा सत्सङ्ग आदिको माहात्म्य बुझ्नसक्तैनन्।

यीमध्ये नाथहरूका मन्त्र—'**नमः शिवाय**', खाखीका—'**नृसिंहाय नमः**', रामावतका—'**श्रीरामचन्द्राय नमः**' अथवा '**सीतारामाभ्यां**

नमः', कृष्णको उपासकका—'**श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः**' '**नमो भगवते वासुदेवाय**' र बङ्गालीहरूका—'**गोविन्दाय नमः**' यी मन्त्रलाई कानमा पढ्नाले मात्र यिनीहरूमा शिष्य बनाइन्छन्। अनि यस्ता–यस्ता शिक्षा दिन्छन् कि बच्चा! झोली–तुम्बाको मन्त्र पढ—

जल पवितर स्थल पवितर और पवितर कुवा।
शिव कहे सुन पार्वती, तूम्बा पवितर हुआ॥

के यस्ता व्यक्तिको योग्यता, कहिल्यै साधु वा विद्वान् हुने अथवा जगत्को उपकार गर्ने खालको हुनसक्तछ? खाखी रातदिन मुढा, जंगली गुइँठा, नर्कट बाल्ने गर्दछन्। एक महिनामा कैयौं रूपैयाँको दाउरा डढाएर सिध्याउँछन्। एक महिनामा लाग्ने दाउराको मूल्य बराबरको कम्बल किनेमा एक प्रतिशत धनबाट आनन्दपूर्वक बस्न सकिन्छ। तर तिनलाई यति बुद्धि कहाँबाट आउँदो हो र? त्यसै धुनीमा ताप्नाले उनीहरूले आफ्ना नाम पनि तपस्वी राखेका हुन्। यसरी तपस्वी भइनेभए जङ्गली मानिस यीभन्दा बढी तपस्वी ठहरिनेछन्। जटा बढाउनाले, खरानी घस्नाले वा तिलक लगाउनाले तपस्वी भइनेभए जसले पनि यति गर्न सक्तथ्यो। यिनीहरू बाहिरका देखाव त्यागस्वरूपी र भित्रका महासंग्रही हुन्छन्।

प्रश्न—'कबीरपन्थी' त ठिकै हुन्?

उत्तर—होइनन्।

प्रश्न—किन होइनन्? ती त ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजाको खण्डन गर्दछन्। कबीरसाहेब फूलबाट जन्मेका थिए र अन्त्यमा बिलाए पनि फूलमै। ब्रह्मा, विष्णु महादेवको जन्म नहुँदै पनि कबीरसाहेब थिए। उनी ठूला सिद्ध थिए। वेद, पुराणले पनि नजानेका कुरा कबीरदास जान्दथे। सोझो बाटो त कबीरले नै देखाएका हुन्। यिनको मन्त्र '**सत्यनाम कबीर**' आदि हो।

उत्तर—ढुङ्गालाई छोडेर पलंग, डसना, तकिया, खराउ, ज्योति अर्थात् दियो आदिको पूजा गर्नु ढुङ्गाका मूर्तिको पूजा गर्नुभन्दा कम होइन। फूलबाट जन्मने र अन्त्यमा फूल नै हुने कबीरसाहेब भुसुना वा कोपिला थिए र?

यसबारेमा निम्न कुरा सुनिन्छ र त्यो सत्य हुनसक्तछ। काशीमा कुनै बुनकर=कपडा बुन्ने पेसा गर्ने व्यक्ति बस्तथ्यो। उसका कुनै सन्तान थिएनन्। एकपल्ट बिहानै मिर्मिरेमा ऊ कुनै गल्लीमा हिंडिरहेको थियो। सडकको छेउमा फूलले भरिएको एउटा डालोमा त्यसै रात

जन्मिएको एउटा बालकलाई देख्यो। उसले त्यस बच्चालाई उठाएर घर लगी आफ्नी पत्नीलाई दियो। उसले त्यसको पालन–पोषण गरी। ऊ ठूलो भएपछि कपडा बुन्ने काम नै गर्दथ्यो। ऊ संस्कृत पढ्न कुनै पण्डितकहाँ गयो। त्यस पण्डितले उसको अपमान गर्यो। उसले भन्यो—'हामी बुनकर जातिलाई पढाउँदैनौ'। यसैगरी ऊ अनेक–पण्डितहरूकहाँ गयो। तर कसैले पढाएन। अनि उटपटांग भाषा बनाएर स्वजातीय र निम्नजातीय व्यक्तिहरूलाई सम्झाउन थाल्यो। एकतारे लिएर बजाउँथ्यो, भजन गाउँथ्यो। खासगरी पण्डित, वेद, शास्त्र आदिको निन्दा गर्नेगर्दथ्यो। केही मूर्ख व्यक्ति त्यसको जालमा फँसे। पछि ऊ मरेपछि त्यसका चेला चेपेटाहरूले उसलाई सिद्ध बताए। उसले बाँचुन्जेल बनाएका कविता, भजनलाई नै उसका चेलाहरूले पढ्न थाले। कान थुन्दा सुनिने शब्दलाई 'अनहत नाद' को सिद्धान्त बताए। मनको वृत्तिलाई 'सुरति' भने। उसलाई त्यो अनहत शब्द सुन्न लगाउनु पर्दछ भन्नथाले। त्यसैलाई मन्त र परमेश्वरको ध्यान बताए। 'काल त्यहाँसम्म पुग्दैन' भने। बरछी–जस्तै तिलक लगाउँदछन् र श्रीखण्ड आदि काठको कठी बाँध्छन्। विचार गरेर त हेर, के यसो गरेर आत्माको उन्नति र ज्ञानको वृद्धि हुनसक्छ? यो मत केटाकेटीको खेलसरहको लीलामात्र है।

प्रश्न—पंजाब प्रदेशमा नानकजीले एउटा पन्थ चलाएका छन्। उनी पनि मूर्त्तिको खण्डन गर्दथे। उनले धेरैलाई मुसलमान हुनबाट बचाए। उनी साधु पनि भएनन्, गृहस्थ नै रहे। हेर, उनले मन्त्रको उपदेश दिएका छन्। यसैबाट उनको आशय राम्रो थियो बन्ने बुझिन्छ।

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भोनिर्वैर अकालमूर्त्त अजोनि सहभं गुरुप्रसाद जप। आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच॥ जपजी पौडी १॥

'**ओ३म्**' जसको सत्य नाम हो, त्यो कर्त्ता पुरुष भय र वैररहित, अकालमूर्त्ति=कालमा र जुनिमा नआउने र प्रकाशमान छ, गुरुको कृपाले त्यसैको जप गर। त्यो परमात्मा आदिमा सत्य थियो, युगहरूको आदिमा सत्य थियो, वर्तमानमा सत्य छ र सत्य नै रहनेछ।

उत्तर—नानकजीको आशय त राम्रो थियो तर उनमा विद्या भने केही पनि थिएन। अँ, त्यस ठाउँको गाउँले भाषा भने जान्दथे। वेदादि शास्त्र र संस्कृत अलिकति पनि जान्दैनथे। जान्ने भएका भए 'निर्भय' शब्दलाई किन 'निर्भो' लेख्थे र? यस कुराको उदाहरण उनले बनाएको '**संस्कृतीस्तोत्र**' छ। उनी संस्कृतमा पनि आफ्नो प्रभाव जमाउन चाहन्थे,

तर नपढिकन कसरी संस्कृत जान्न सकिन्छ र? अँ, कहिल्यै संस्कृत सुन्दैनसुनेका गाउँलेहरूको अगाडि संस्कृति बनाएर संस्कृतका पनि पण्डित भएहोलान्। उनमा आफ्नो मान, प्रतिष्ठा र आफ्नो विशेष ख्यातिको इच्छा नभएको भए कहिल्यै यसो गर्ने थिएनन्। उनलाई आफ्नो प्रतिष्ठाको इच्छा अवश्य थियो। नत्रभने जस्तो भाषा जान्दथे, त्यस्तै भनिरहन्थे, साथै 'मैले संस्कृत पढेकै छैन' पनि भनिदिन्थे। केही अभिमान उनमा भएको हुनाले नै मान–प्रतिष्ठाका निम्ति केही दम भरेका होलान्। यसैकारण, उनका ग्रन्थमा ठाउँ–ठाउँमा वेदको निन्दा र स्तुति पनि छ। किनकि यसो नगरेका भए कसैले पनि उनीसँग वेदको अर्थ सोध्नेथियो र नजान्दा उनको प्रतिष्ठा नष्ट हुने थियो। यसकारण पहिल्यै आफ्ना शिष्यसामु कतैकतै वेदको विरोधमा बोल्दथे र कतैकतै वेदको लागि राम्रो पनि भनेका छन्, किनकि कतै पनि ठीक नभनेका भए जनताले उनलाई नास्तिक भन्नेथिए। जस्तै—

वेद पढत ब्रह्मा मरे, चारों वेद कहानि।
सन्त कि महिमा वेद न जानी॥ ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥

के वेद पढ्नेहरूचाहिं मरेर गए र नानकचाहिं आफूलाई अमर सम्झन्थे? के उनीचाहिं मरेनन्? वेद त सबै विद्याको भण्डार हो, तर चारै वेदलाई कथा भन्नेका सबै कुरा कथामात्र हुन्। मूर्खहरूको नाम सन्त हुन्छ भने ती विचराले वेदको महिमा कहिल्यै जान्नसक्तैनन्। नानकजीले वेदको मान–सम्मान गरेका भए उनको सम्प्रदाय चल्ने थिएन। उनी गुरु बन्न पनि सक्नेथिएनन्, किनकि उनले आफैं संस्कृतविद्या नपढेका हुनाले अरूलाई पढाएर शिष्य कसरी बनाउन सक्थे र?

साँचो कुरा के हो भने पंजाबमा नानकजी हुँदा त्यहाँ संस्कृतविद्या छँदैथिएन र पंजाब मुसलमानहरूबाट पीडित थियो। त्यसबेला उनले केही व्यक्तिहरूलाई मुसलमान हुनबाट बचाए। नानकजीको समयमा उनको कुनै सम्प्रदाय थिएन र उनका धेरैजसो शिष्य पनि थिएनन्। किनकि अविद्वान्हरूमा एउटा चाल के हुन्छ भने मरेपछि उनलाई सिद्ध बनाउँदछन् र पछि धेरैजसो माहात्म्य देखाएर ईश्वरसमान मान्न थाल्दछन्।

अँ, नानकजी ठूला धनाढ्य र धनधान्यसम्पन्न साहू थिएनन् तर उनका चेलाहरूले 'नानकचन्द्रोदय' र 'जन्मशाखी' आदिमा नानकजीलाई ठूला सिद्ध र ठूलो ऐश्वर्यसम्पन्न बताएकाछन्। नानकजीले ब्रह्मासँग भेटघाट गरे, धेरै कुराकानी गरे, सबैले यिनको सम्मान गर्दथे,

नानकजीको विवाहमा धेरैजसो घोडा, रथ, हात्ती, सुन, चाँदी, मोती, पन्ना आदि रत्नले सजि–सजाउ र अमूल्य रत्नहरूको पारावार थिएन भन्नेकुरा लेखेको छ। यी सबै गफ होइनन् त के हुन्? यसमा यिनका चेलाहरूको दोष छ, नानकजीको होइन।

उता नानकजीपछि उनका छोराबाट **उदासी** सम्प्रदाय चल्यो र रामदास आदिबाट **निर्मल** सम्प्रदाय चल्यो। कत्तिका गद्दीवालाहरूले भाषा बनाएर ग्रन्थमा राखेकाछन् अर्थात् यिनका दसौं गुरु गोविन्द सिंह भए। गुरु गोविन्द सिंहपछि त्यस ग्रन्थमा कसैको भाषा मिलाइएन। तर उनको समयसम्म रहेका सबै सानातिना पुस्तकहरूलाई जम्मा गरेर एउटै जिल्द हाले। यिनीहरूले पनि नानकजीपछि धेरैजसो भाषा बनाए। पुराणका झूठा कथा जस्तै कतिले कथा बनाए। तर आफैं ब्रह्मज्ञानी बनेर कर्म उपासना छोडेर यिनका शिष्य यतै लाग्दैगए। यसबाट ठूलो विकृति आयो। नत्रभने नानकजीले केही ईश्वरको भक्तिविशेष लेखेका थिए, त्यसो गर्दै आएका भए राम्रै थियो। यता उदासी 'हामी ठूला हौं' भन्छन्, निर्मल सम्प्रदायी आफैंलाई ठूलो बताउँछन् भने अकाली र सूतरहसाई आफैंलाई सर्वोपरि बताउँछन्।

यिनमा गुरु गोविन्दसिंहजी शूरवीर भए। मुसलमानहरूले उनका मानिसलाई दिएको धेरैजसो दु:खको बदला उनी लिन चाहन्थे, तर यिनीसँग केही साधन थिएन। उता मुसलमानहरूको राज्यशासनको वर्चस्व बढिरहेको थियो। यिनले एउटा पुरश्चरण गराए। 'देवीले वर र तरवार दिएर **मुसलमानसँग** लड, तिम्रो जीत हुनेछ भनेकी छन्' भन्ने हल्ला फिंजाए। धेरै व्यक्ति उनको समर्थनमा लागे। अनि उनले वाममार्गीले 'पञ्च मकार', चक्रांकितले 'पञ्च संस्कार' चलाइएझैं 'पञ्च ककार' चलाए अर्थात् यिनका पाँच ककार युद्धमा उपयोगी थिए।

पहिलो—'केश' अर्थात् कपाल पाल्नाले लडाइँमा लाठी आदि र तरवार आदिबाट पनि केही बचावट हुनेछ।

दोस्रो—'कंगन'=बाला, अकालीहरू टाउकोमा दोपट्टामा राख्दछन् तथा हातमा 'बाला' लगाउँछन्। यसबाट हात र टाउको बचाउन सकियोस् भन्ने उद्देश्य हो।

तेस्रो—कट्टु। यसबाट दौड्न र उफ्रन सजिलो हुन्छ। धेरैजसो अखडाका पहलवानहरू पनि यसबाट शरीरको मर्मस्थान सुरक्षित रहोस् र कुनै कुरामा अड्किनु नपरोस् भन्ने उद्देश्यले धारण गर्दछन्।

चौथो—'काँइयो'। यो कपाल कोर्न काम लाग्छ।

पाँचौ—काचू वा कटार अर्थात् चक्कू, कतै शत्रुसँग भेट भई झैं–झगड़ा भएको खण्डमा काम लागोस् भनेर राखिन्छ।

गुरु गोविन्द सिंहजीले त्यस समय र परिस्थिति अनुकूल आफ्नै बुद्धिमानीले उक्त कुरा चलाएका थिए। अब वर्तमान समयमा ती सामान राख्न केही उपयोगी हुँदैन। तर लडाइँको उद्देश्यले तोकिएका काम–कुरा वा कर्त्तव्यहरूलाई अब धर्मसँग जोडिएको छ।

यिनीहरू मूर्त्तिपूजा त गर्दैनन्, तर त्योभन्दा बढी ग्रन्थको पूजा गर्दछन्, के यो मूर्तिपूजा होइन? कुनै जडपदार्थको अगाडि टाउको निहुँराउनु वा उसको पूजा गर्नु सबै '**मूर्त्तिपूजा**' हो। जसरी मूर्त्तिपूजा गर्नेहरूले आफ्ना पसल थापेर जीविकाको उपाय गरे, त्यस्तै यिनीहरूले पनि गरेका छन्। जसरी पुरेत–पुजारीहरू मूर्तिको दर्शन गराएर भेटी चढाउन लगाउँछन्, त्यस्तै नानकपन्थीहरू ग्रन्थको पूजा गर्दछन्, गराउँछन् र भेटी पनि चढाउन लगाउँछन् अर्थात् मूर्त्तिपूजा गर्नेहरू जति वेदप्रति आस्था र मान्यता राख्छन्, यी ग्रन्थसाहेबलाई मान्नेहरू त्यति पनि गर्दैनन्। अँ, के गर्नु यिनीहरूले त वेदलाई देखे–सुनेका नै थिएनन् भन्न सकिन्छ। यिनीहरूले देख्न–सुन्न पाएका भए हठ–दुराग्रह नभएका सबै सम्प्रदायका बुद्धिमान् व्यक्ति वेदमतमा नै लाग्ने थिए। तर यिनीहरूले धेरैजसो खानपान सम्बन्धी झंझट भने हटाएका छन्। जसरी यो खानपानसम्बन्धी झंझटलाई हटाए, त्यस्तै विषयासक्ति, दुरभिमान पनि हटाएर वेदमतको उन्नति गरेमा धेरै राम्रो कुरा हुनेछ।

प्रश्न—दादूपन्थीको मत त राम्रै छ?

उत्तर—राम्रो त वेदमार्ग हो। त्यसलाई समाउन सकेमा भने समात। नत्रभने सधैं गोता खाइरहनु पर्नेछ। यिनको मतमा दादूजीको जन्म गुजरातमा भएको थियो। पछि जयपुरमा आएर 'आमेर' मा बसे। तेलीको काम गर्दथे। यसलाई ईश्वरको सृष्टिको विचित्र लीला नै भन्नुपर्दछ कि दादूजीले पनि आफ्नो पूजा गराउन थाले। अब वेदशास्त्रका सबै कुरा छोडेर 'दादूराम–दादूराम' झज्दा नै मुक्ति हुन्छ भन्ने कुरा स्वीकार गरिएको छ। सत्य उपदेशक नभएपछि यस्ता–यस्ता मतमतान्तरका झैं–झगडा चल्ने गर्दछन्।

केही समयअघि देखि शाहपुराबाट एउटा 'रामसनेही' मत चलेको छ। उनीहरूले सम्पूर्ण वेदोक्त धर्मलाई छोडेर '**राम राम**' पुकार्नु नै राम्रो मानेका छन्। त्यसैमा ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मान्दछन्। तर भोकलाग्दा 'राम नाम' बाट रोटी–तरकारी निस्कँदैन, किनकि खानपान आदि त

गृहस्थका घरमा नै पाइन्छन्। ती पनि मूर्त्तिपूजालाई धिक्कार भन्दछन् तर आफू स्वयं मूर्त्ति बनिरहेका छन्। धेरैजसो महिलावर्गको संगतमा रहन्छन्। किनकि रामजीलाई 'रमा' नभई आनन्द मिल्नैसक्तैन।

एउटा 'रामचरण' नाम गरेको साधु भयो, यसको मत मुख्यरूपमा मेवाड़को 'शाहपुरा' स्थानबाट चलेको हो। ती '**राम–राम**' भन्नुलाई नै परममन्त्र र यसैलाई सिद्धान्त मान्दछन्। तिनका सन्तदासजी आदिको वाणी रहेको एउटा ग्रन्थ छ, त्यसमा यसो लेख्छन्—

उनको वचन—

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरंजन राइ।
तब जम का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ॥ १॥

—साखी॥ ६॥

यसमा यो कुरा बुद्धिमान्हरूका लागि विचारणीय छ कि 'राम राम' भन्नाले भ्रम अर्थात् अज्ञान वा यमराजको पापानुकूल शासन या गरिएका कर्म कहिल्यै छुट्न सक्छन् वा सक्तैनन्? यो त केवल मानिसलाई पापै–पापमा फँसाउनु र मनुष्य जन्मलाई नष्ट गर्नु हो। यिनीहरूका मुख्य गुरु 'रामचरण' का वचन—

महमा नांव प्रतापकी, सुणौ सखण चित्त लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड जाइ॥ १॥
जिन जिन सुमर्‍या नांव कूं, सो अब उतर्‍या पार।
रामचरण जो वीसर्‍या सो ही जम के द्वार॥ २॥
रामविना सब झूट बतायो। राम भजत छूट्या सब क्रम्मा॥
चंद अरु सूर देइ परकम्मा। राम कहे तिन कूं भई नाहीं॥
तीन लोक में कीरति गाहीं। राम रटत जम जोर न लागै॥
राम नाम लिख पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊँच नीच कुछ भेद विचारै। सो तो जनम आपणो हारै॥
सन्तां कै कुल दीसै नाहीं। राम राम कह राम रम्हाहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरि जन कौ पार न पावै॥
राम संतांका अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

—नामप्रताप

यिनको खण्डन—पहिलो कुरा त रामचरण आदिका ग्रन्थ देख्दा ऊ एउटा साधारण गाउँले मानिस थियो, उसले केही पढेको थिएन भन्ने बुझिन्छ। नत्रभने यस्ता झूठा गफ किन लेख्तथ्यो र? यिनलाई राम–राम भन्नाले कर्म छुट्नेछन् भन्ने भ्रममात्र छ। यी त केवल आफ्नो

र अरूको पनि जन्मलाई खेर फाल्दछन् त्यत्ति हो। यमको भय=डर, त्रास त धेरै ठूलो छ तर राजकीय प्रहरी, चोर, डाकू, बाघ, सर्प, बिच्छी र लामखुट्टेको भय पनि यसरी छुट्नसक्तैन। रात दिन राम–राम जप्ने गरेपनि केही फाइदा हुने छैन। जसरी सखर सखर भन्नाले मात्र मुख गुलियो हुँदैन त्यस्तै सत्य बोल्नु आदि कर्म नगरी राम–राम भन्नाले केही पनि हुनेछैन र राम राम गर्नाले यिनका रामले सुन्दैन भने जीवनभर राम राम भनिरहे पनि सुन्नेछैन। अनि सुन्दछ भने फेरि राम–राम गर्नु पनि बेकारै हुन्छ। यिनीहरूले आफ्नो पेट भर्नका निम्ति र अरूको पनि जीवन नष्ट गर्नका लागि एउटा पाखण्ड खडा गरेका हुन्। यो ठूलो आश्चर्यको कुरा छ कि हामी के देखिरहेका छौं भने यिनीहरूले नाम त राखेका छन् रामस्नेही, तर काम गर्दछन् राँडस्नेहीका। जता हेर त्यतै रंडी नै रंडीहरूले कथित सन्तहरूलाई घेरिरहेका हुन्छन्। यस्ता–यस्ता पाखण्ड नचलेका भए आर्य्यावर्त्त देशको दुर्दशा किन हुन्थ्यो र? यिनीहरू आफ्ना चेलालाई जुठो खुवाउँछन् र महिलावर्ग पनि पूरै लम्पसार परेर दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। एकान्तमा पनि महिलाहरू र कथित साधुका बैठक भई नै रहन्छन्।

यिनीहरूको दोस्रो शाखा मारवाड़को 'खेड़ापा' नामक गाउँबाट चलेको हो। त्यसको इतिहास यस्तो छ—

एउटा ढेढ जातिको रामदास नामक व्यक्ति बडो चलाख थियो। उसका दुईवटी पत्नी थिए। पहिले ऊ धेरै दिनसम्म औघड=अघोरी भएर कुकुरसँग खाने गर्दथ्यो। पछि ऊ वामी कूण्डापन्थी र त्यसपछि रामदेवको कामडिया=अर्थात् राजपूताना देशमा च्यामेहरूद्वारा भगवा वस्त्र रंगाएर सुनाइने 'शब्द' भनिने रामदेव आदिका गीत ती च्यामे र अरू जातिका मानिसलाई सुनाउने भयो। ऊ आफ्ना दुबै पत्नीसँग गाउँथ्यो। यसरी घुम्दाघुम्दै जोधपुर राज्यको एउटा ठूलो गाउँ 'सीथल' मा ढेढहरूको गुरु 'हर–रामदास' लाई भेट्यो। उसले उसलाई 'रामदेव' पन्थ बताएर आफ्नो चेलो बनायो। त्यस रामदासले खेडापा गाउँमा आफ्नो ठाउँ बनायो र यता यसको मत चल्यो भने उता शाहपुरामा रामचरणको मतको प्रचार भयो। उसको इतिहास पनि यस्तो सुनिन्छ—ऊ जयपुरको बनियाँ=व्यापारीजातिको थियो। उसले 'दाँतडा' गाउँमा एउटा साधुबाट भेष ग्रहण गर्यो र उसैलाई गुरु बनायो। अनि शाहपुरामा आएर आफ्नो प्रभाव जमायो। सोझा–सोझा मानिसमा पाखण्ड जरो छिट्टै गाडिन्छ, त्यस्तै त्यहाँ पनि भयो। यी सबैमा माथिको रामचरणका

वचनअनुसार चेला बनाएपछि ऊँच–नीचको केही भेद रहन्न। ब्राह्मणदेखि अन्त्यजसम्म यिनमा चेला बन्दछन्। अझै पनि 'कूण्डापन्थी' जस्तै छन्, किनकि माटाका कुण्डमा नै खान्छन् र साधुहरूको जुठो खान्छन्। वेदधर्मबाट र आमा–बाबु, संसारको व्यवहारबाट भड्काएर छुटाउँछन् र आफ्ना चेला बनाउँछन्। राम नामलाई नै **'महामन्त्र'** मान्दछन् र यसैलाई छुच्छम=सूक्ष्म वेद पनि भन्दछन्। राम राम भन्नाले अनन्त जन्मका पाप छुट्तछन् अरे। यसविना कसैलाई मुक्ति प्राप्त हुँदैन अरे। श्वास लिंदा र निकाल्दा राम–राम भन्न सिकाउनेलाई **'सत्य गुरु'** भनिन्छ र सत्यगुरुलाई परमेश्वरभन्दा पनि ठूलो मान्दछन् तथा उसको मूर्त्तिको ध्यान गर्दछन्। साधुका चरण धोएर पानी खान्छन्। चेलोले गुरुभन्दा टाढा जाँदा गुरुका नङ र दाढीको रौं आफूसँग राख्नुपर्दछ। नित्य त्यसको चरणामृत लिने गर्नुपर्दछ। यिनीहरू रामदास र हररामदासको वाणीका पुस्तकलाई वेदभन्दा बढी मान्दछन्। त्यसको परिक्रमा र आठपटक दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। अनि गुरु नजिकै भए गुरुलाई दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। महिला वा पुरुषलाई 'राम–राम' एकनासै मन्त्रको उपदेश गर्दछन् र नामस्मरणबाटै कल्याण हुने कुरा मान्दछन्। अनि पढ्न लेख्नमा पाप सम्झन्छन्। उनीहरूको साखी—

पंडिताई पाने पड़ी, ओ पूरबलो पाप।
राम राम सुमरट्यां विनां रइग्यौ रीतौ आप॥ १॥
वेद पुराण पढे पढ गीता। राम भजन विन रइ गये रीता॥

यस्ता–यस्ता पुस्तक बनाएका छन्। स्त्रीले पतिको सेवा गर्नमा पाप र गुरु–साधुको सेवा गर्नमा धर्म बताउँछन्। वर्णाश्रमलाई मान्दैनन्। ब्राह्मण रामस्नेही छैनभने त्यसलाई नीच र चांडाल रामस्नेही छ भने उसलाई उत्तम सम्झन्छन्। यिनीहरू अवतार मान्दैनन् पनि, तर माथि लेखिएको रामचरणको वचनअनुसार **'भगति हेति औतार ही धरही'** अर्थात् भक्ति र सन्तहरूको हितका लागि अवतारलाई पनि मान्दछन्। इत्यादि यिनीहरूको जे जति पाखण्ड, प्रपञ्च छ त्यो सबै आर्य्यावर्त्त देशको अहित गर्ने किसिमको छ। बुद्धिमान्हरूले यतिबाटै धेरै बुझ्ने नै छन्।

प्रश्न—गोकुलिया गुसाईंहरूको मत अर्थात् वल्लभमत त धेरै राम्रो छ। हेर, कस्तो ऐश्वर्य भोग्दछन्? यस्तो ऐश्वर्य के लीलाविना हुनसक्तछ?

उत्तर—यो ऐश्वर्य गृहस्थहरूको हो, नकि गुसाईंहरूको।

प्रश्न—वा ! त्यो त सबै गुसाईंहरूको प्रभावले हो । यस्तो ऐश्वर्य अरूलाई किन मिल्दैन त ?

उत्तर—अरूले पनि यस्तै छल–प्रपञ्च गरेमा ऐश्वर्य प्राप्त हुनमा कुनै सन्देह छैन । अनि यीभन्दा बढी धूर्त्तता गरेमा बढी ऐश्वर्य पनि प्राप्त हुनसक्तछ ।

प्रश्न—वा ! यसमा के धूर्त्तता छ र ? यो त सबै गोलोकको लीला हो ।

उत्तर—गोलोकको लीला होइन, यो त सबै गुसाईंहरूको लीला हो । अनि फेरि गोलोककै लीला हो भने गोलोक पनि त्यस्तै होला । यो मत 'तैलङ्ग' देशबाट चलेको हो । एउटा लक्ष्मणभट्ट नामक तैलङ्गी ब्राह्मणले विवाह गरेपछि कुनै कारणविशेषले ऊ आमा, बाबु र पत्नीलाई छोडेर काशी पुग्यो र उसले त्यहाँ 'मेरो विवाह भएकै छैन' भनी झूट बोलेर संन्यास ग्रहण गर्‍यो । दैवसंयोगले उसका आमा, बाबु र पत्नीले ऊ काशीमा संन्यासी भयो भन्ने कुरा सुने । उसका आमा, बाबु र पत्नी काशी पुगेर उसलाई संन्यासको दीक्षा दिनेसँग 'यसलाई किन संन्यासी बनायौ ? हेर, यो यसकी युवती पत्नी हो' भने र स्त्रीले भनी–'यदि मेरा पतिलाई तपाईं मसँगै पठाउनुहुन्न भने मलाई पनि संन्यासको दीक्षा दिनुहोस् ।' अनि दीक्षा दिनेले उसलाई बोलाएर 'तँ त ठूलो मिथ्यावादी रहेछस्, संन्यास छोडेर गृहस्थ बन्, किनकि तैंले झूट बोलेर संन्यास लिइस्' भन्यो । उसले त्यस्तै गर्‍यो । संन्यास छोडेर पत्नीसँग लाग्यो ।

हेर, यस मतको मूल जरो नै झूट कपटबाट सुरु भएको छ । उनीहरू तैलङ्गदेशमा पुग्दा त्यसलाई उसका जातिमा कसैले लिएनन् । अनि त्यहाँबाट निस्किए घुम्नथाले । काशीको नजिकको चरणार्गढ= चुनारगढको नजिकको 'चम्पारण्य' नामक जंगलमा हिंडिरहेका थिए । त्यहाँ कसैले एउटा बच्चालाई जंगलमा छोडेर चारैतर्फ टाढा–टाढा आगो लगाएर गएको रहेछ । त्यस छोड्नेले 'आगो लगाइँन भने कुनै जीवले यस बालकलाई अहिल्यै मार्नेछ' भन्ठानेको थियो । लक्ष्मण भट्ट र उसकी पत्नीले त्यस बालकलाई लिएर आफ्नो पुत्र बनाए । अनि काशीमा गएर बसे । त्यो बालक ठूलो भएपछि उसका बाबु आमाको शरीर छुट्यो । उसले बाल्यावस्थादेखि युवावस्थासम्म काशीमा केही पढेको पनि थियो । त्यसपछि ऊ अन्त कतै गएर एउटा विष्णुस्वामीको मन्दिरमा चेलो भयो । कुनैबेला त्यहाँ केही खटपट हुनाले त्यहाँबाट फेरि काशीतर्फै गयो र संन्यासी भयो । उता, अर्को कुनै त्यस्तै

जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशीमा बस्तथ्यो । उसकी एउटी तरुनी छोरी थिई । उसले योसँग 'तँ संन्यास छोडेर मेरी छोरीसँग विवाह गर्' भन्यो । उसले त्यस्तै गर्‍यो । जसका बाबुले जस्तो लीला गरेको थियो, त्यस्तै छोराले किन नगर्ने ? त्यस स्त्रीलाई लिएर पहिले चेलो बनेको विष्णुस्वामीको मन्दिरमा गयो । विवाह गरेको कारणले त्यहाँबाट निकालियो । अनि त्यसपछि अविद्याको अन्धकारले व्याप्त ब्रजदेशमा गएर अनेक प्रकारका छल र युक्तिपूर्वक आफ्नो प्रपञ्च फैलाउन थाल्यो र झूठा कुराहरूको प्रचार यसरी गर्न थाल्यो—श्रीकृष्णले मलाई दर्शन दिएर 'गोलोकबाट मर्त्यलोकमा आएका 'दैवीजीव' लाई ब्रह्मसम्बन्ध आदिद्वारा पवित्र गरेर गोलोकमा पठाऊ' भनेकाछन् इत्यादि मूर्खहरूलाई प्रलोभनका कुरा सुनाएर केही व्यक्तिहरू अर्थात् चौरासी व्यक्तिलाई वैष्णव बनायो । तथा निम्नलिखित मन्त्र बनाएर तिनमा पनि फरक राख्यो । जस्तै—

श्रीकृष्णः शरणं मम ॥ १ ॥

क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॥ २ ॥

यी दुबै साधारण मन्त्र हुन्, तर ब्रह्म–सम्बन्ध र समर्पण गराउने मन्त्र यो हो—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्त्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्ण–वियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय–प्राणान्तः करणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्प्पयामि, दासोऽहं कृष्ण तवाऽस्मि ॥

यस मन्त्रको उपदेश गरेर शिष्य, शिष्यलाई समर्पण गराउँदछन् । **'क्लीं कृष्णायेति'**—यो 'क्लीं' तन्त्र ग्रन्थको हो । यसबाट यो वल्लभमत पनि वाममार्गीहरूकै भेद हो भन्ने बुझिन्छ । यसैकारण गुसाईंहरू धेरै स्त्रीसंगत गर्दछन् ।

'गोपीवल्लभेति'—के कृष्ण गोपीहरूकै मात्र प्रिय थिए, अरूका थिएनन् ? स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोगमा फँसेको व्यक्ति नै स्त्रीहरूलाई बढी प्रिय हुन्छ । के श्रीकृष्णजी यस्तै थिए ?

'सहस्त्रपरिवत्सरेति'—वल्लभ र उसका शिष्य सर्वज्ञ नहुनाले हजार वर्षको गणना व्यर्थ हो । के कृष्णको वियोग हजारौं वर्षदेखि भयो ? र आजसम्म अर्थात् वल्लभको को मत नहुँदा, वल्लभ जन्मनुअघि र त्यसभन्दा पहिले आफ्ना दैवी जीवहरूको उद्धार गर्न किन आएन ?

'ताप' र 'क्लेश' यी दुबै पर्यायवाची शब्द हुन्। यीमध्ये एउटालाई ग्रहण गर्न उचित हुन्थ्यो, दुबैको होइन।

'अनन्त' शब्दको पाठ गर्नु पनि व्यर्थ छ, किनकि अनन्त शब्द राखिएमा सहस्र शब्दको पाठ राख्नु व्यर्थ ठहर्दछ। अनि 'सहस्र' शब्दको पाठ राख्ने हो भने 'अनन्त' शब्दको पाठ राख्नु सर्वथा व्यर्थ हुन्छ। अर्कोकुरा, अनन्तकालसम्म 'तिरोहित' अर्थात् आच्छादित रहनेको मुक्तिका लागि वल्लभ हुनुपनि व्यर्थ हुन्छ, किनकि अनन्तको अन्त्य कहिल्यै हुँदैन।

लौ, देहेन्द्रिय, प्राणान्तःकरण र त्यसका धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र र प्राप्तधनको अर्पण कृष्णलाई किन गर्ने? किनकि कृष्ण पूर्णकाम=सबै कामना वा इच्छा परिपूर्ण भएको हुनाले कसैका देहादिको इच्छा गर्नै सक्तैनन्। अनि देहादि अर्पण गर्न सम्भव पनि हुँदैन। किनकि देहको अर्पण भन्नाले नङदेखि टुपी सम्मको शरीर नै 'देह' भनिन्छ। त्यसमा भएका केही राम्रा नराम्रा वस्तु=दिसा, पिसाब आदिको अर्पण कसरी गर्न सक्नेछौ?

अनि फेरि पाप–पुण्यरूप कर्मलाई कृष्णार्पण गर्नाले ती कर्मका फलभागी पनि कृष्ण नै हुनेछन्। वास्तविकता त के हो भने नाम त कृष्णजीको लिन्छन्, तर समर्पणचाहिं आफ्ना लागि गराउँछन्। शरीरमा रहेका मल–मूत्र आदि पनि गोसाईंजीकै अर्पण किन हुँदैन। के '**मीठो–मीठो क्वाप्प र तीतो तीतो थू?**'

अर्कोकुरा, गोसाईंजीलाई नै अर्पण गर्नुपर्दछ, अरू मत मान्नेलाई होइन भन्ने पनि लेखिएको छ। यो सबै स्वार्थसिन्धुप्रवर्तक अर्काका धन आदि पदार्थ हरण गर्न र वेदोक्त धर्मको नाश गर्ने लीला रचिएको हो। वल्लभको यो प्रपञ्च हेर—

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ १॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शनजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥ ३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्॥ ४॥

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्प्पणम्॥ ५॥
तस्मादादौ सर्वकार्य्ये सर्ववस्तुसमर्प्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥ ६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥ ७॥
तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गङ्गात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥ ८॥

इत्यादि श्लोक गोसाईंहरूका '**सिद्धान्तरहस्य**' आदि ग्रन्थमा लेखिएका छन्। यो नै गोसाईंहरूको मतको मूलतत्त्व हो। यिनीहरूसँग कसैले यति सोध्नुपर्ने हो कि श्रीकृष्णको देहान्त भएको झण्डै पाँच हजार वर्ष बितिसक्यो। उनी वल्लभलाई श्रावण मासको आधी रातमा कसरी मिल्नसके त?॥ १॥

'गोसाईंको चेलो भएर उसलाई सबै पदार्थको समर्पण गर्नेको शरीर र जीवका सबै दोषको निवृत्ति हुन्छ'। मूर्खहरूलाई भड्काएर आफ्नो मतमा ल्याउने वल्लभको प्रपञ्च यही हो। गोसाईंका चेला–चेलीका सबै दोष निवृत्त हुन्छन् भने तिनीहरूलाई रोग, दरिद्रता आदि दुःखको पीडा किन हुन्छ त? अनि ती दोष पाँच किसिमका हुन्छन्॥ २॥

पहिलो—स्वाभाविक अर्थात् काम, क्रोध आदिबाट उत्पन्न हुने **सहजदोष, दोस्रो**—कुनै देश, कालमा गरिने नाना प्रकार का **पाप, तेस्रो**—लोकमा भनिने **भक्ष्याऽभक्ष्य** र वेदोक्त **मिथ्याभाषण** आदि, **चौथो**—खराब संगतबाट हुने **संयोगज** अर्थात् चोरी, जारी=आमा, बहिनी, छोरी, बुहारी, गुरुपत्नी आदिसँग संयोग गर्नु, **पाँचौं—स्पर्शज**=अस्पृश्यहरूलाई स्पर्श गर्नु। यी पाँच दोषलाई गोसाईं मतका अनुयायीहरू व्यवहारमा कहिल्यै मान्दैनन्। अर्थात् आफूखुसी गर्दछन्॥ ३॥

'गोसाईंको मतबाहेक दोष निवृत्तिको अरू कुनै किसिमको उपाय छैन। यसकारण गोसाईंका चेलाहरूले समर्पण नगरी कुनै पदार्थको भोग गर्नुहुँदैन'। यसैकारण यिनका चेला आफ्नी पत्नी, छोरी, बुहारी र धन आदि पदार्थहरूलाई पनि समर्पित गर्दछन्। तर समर्पण गर्ने नियम के हो भने पत्नी गोसाईंजीको चरणसेवामा समर्पित नभएसम्म उसको पतिले आफ्नी पत्नीलाई छुनुसम्म हुँदैन॥ ४॥

'यसकारण गोसाईंका चेलाहरूले समर्पण गरिसकेपछि मात्र आ–

आफ्ना पदार्थको भोग गर्नुपर्दछ। किनकि पदार्थको स्वामीले भोग गरिसकेपछि समर्पण गर्नुपर्दछ। पहिले गोसाईंजीलाई पत्नी आदि समर्पण गरेर अनि मात्र ग्रहण गर्नुपर्दछ। त्यस्तै सबै पदार्थ हरिलाई समर्पण गरेर ग्रहण गर्नुपर्दछ'॥ ६ ॥

'गोसाईंका चेला–चेलीले गोसाईंमतबाहेक अरू कुनै मतको वाक्य मात्रलाई पनि कहिल्यै सुन्नु वा ग्रहण गर्नुहुँदैन। तिनका चेलाहरूको प्रसिद्ध व्यवहार यही हो'॥ ७ ॥

'त्यस्तै सबै वस्तुको समर्पण गरेर सबैको बीचमा ब्रह्मबुद्धि राख्नुपर्दछ। त्यसपछि गङ्गा अरू जल मिसिएर गङ्गारूप भएजस्तै आफ्नो मतमा गुण र अरूका मतमा दोष हुन्छन्। यसकारण आफ्नो मतमा गुणहरूको वर्णन गर्ने गर्नुपर्दछ'॥ ८ ॥

अब हेर, गोसाईंहरूको मत सबै मतभन्दा बढी आफ्नै स्वार्थ सिद्ध गर्ने किसिमको छ। यी गोसाईंहरूसँग के सोध्नुपर्दछ भने— 'तिमी ब्रह्मको एउटा लक्षण पनि जान्दनौ, अनि आफ्ना चेला–चेलीलाई कसरी ब्रह्मसम्बन्ध गराउनेछौ?' 'हामी नै ब्रह्म हौं' भन्छौ भने हामीसँग सम्बन्ध हुनाले ब्रह्म सम्बन्ध भैहाल्दछ, अनि तिमीमा ब्रह्मको एउटा पनि गुण–कर्म–स्वभाव छैन। तिमी त केवल भोग–विलासका निम्ति आफैं ब्रह्म बनेका हौ। शिष्य र शिष्यालाई त तिमी आफूमा समर्पित गराएर शुद्ध गर्दछौ, तर तिमी, तिम्री पत्नी, छोरी, बुहारी, आदि चाहिं असमर्पित नै रहने हुनाले अशुद्ध रहे वा रहेनन्? तिमी त समर्पित नभएको वस्तुलाई अशुद्ध मान्दछौ भने त्यस्तो अशुद्धबाट जन्मेका तिमीहरू अशुद्ध किन भएनौ? यसकारण तिमीले पनि आफ्नी पत्नी, छोरी, बुहारी आदिलाई अरू मतावलम्बीहरूसँग समर्पित गराउने गर्नु उचित हुन्छ। 'होइन होइन हामी त त्यसो गर्दैनौं' भन्छौ भने तिमी पनि अरूका स्त्री, पुरुष, धन आदि पदार्थलाई समर्पित गर्न–गराउन छोडिदेऊ। हालसम्म जे भयो सो त भैसक्यो, तर अब त आफ्ना मिथ्याप्रपञ्च आदि खराबीलाई छोडदि र ईश्वरोक्त वेदविदित सुन्दर सुमार्गमा लागेर आफ्नो मनुष्यरूपी जन्मलाई सफल तुल्याएर धर्म–अर्थ–काम–मोक्षको चतुष्टय फल प्राप्त गरेर आनन्द भोग।

अनि हेर, यी गोसाईंहरू आफ्नो सम्प्रदायलाई '**पुष्ट मार्ग**' भन्दछन् अर्थात् खानु, पिउनु, पुष्ट हुनु र सबै स्त्रीहरूसँग चाहेजति भोगविलास गर्नुलाई 'पुष्टिमार्ग' भनिन्छ। तर यिनीहरूले दुःखदायी भगन्दर आदि गुप्तरोग लागेर तड्पी–तड्पी मर्नुपर्ने हुन्छ भन्ने कुरा यिनीहरूलाई नै

थाहा हुनुपर्दछ, त्यो यिनीहरूसँगै सोध्नुपर्दछ। साँच्चै भनौं भने त्यो पुष्टिमार्ग नभएर 'कुष्ठिमार्ग' हो। जसरी कोढीको शरीरका सबै धातु पग्ली–पग्ली निस्कन्छन् र विलाप गर्दै शरीर छोड्दछ, त्यस्तै लीला यिनीहरूको देखापर्दछ। यसकारण यसैलाई '**नरकमार्ग**' भन्नु पनि उचित हुनसक्तछ, किनकि दुःखको नाम 'नरक' र सुखको नाम 'स्वर्ग हो।'

यस्तै किसिमले मिथ्याजाल रचेर विचरा सोझा–साझा मानिसलाई यिनीहरूले जालमा फसाएका हुन्। अनि आफैंलाई श्रीकृष्ण मानेर यिनीहरू सबैका स्वामी बन्दछन्। यिनीहरू 'जति दैवी जीव गोलोकबाट यहाँ आएका छन्, तिनको उद्धार गर्नकै निम्ति हामी लीलापुरुषोत्तम जन्मेका हौं। हाम्रो उपदेश नलिएसम्म गोलोकको प्राप्ति हुँदैन। त्यहाँ एउटा श्रीकृष्ण पुरुष र अरू सबै स्त्री छन्' भन्दछन्।

वा! यो तिम्रो मत त खुबै राम्रो रहेछ!!! गोसाईंहरूका सबै चेला गोपिनी बन्नेछन्। अब विचार त गरौं कि कुनै पुरुषका दुईवटीमात्र पत्नी हुँदा त त्यस पुरुषको दुर्दशा हुन्छ भने एउटा पुरुषका पछि करोडौं स्त्री लागेका छन् भने त्यसको दुःखको कुनै वार–पार होला त? 'श्रीकृष्णमा ठूलो सामर्थ्य छ, सबैलाई प्रसन्न राख्तछन्' भन्छौ भने स्वामिनीजी भनिने श्रीकृष्णजीकी पत्नी पनि उनकी अर्धाङ्गिनी हुनाले श्रीकृष्ण जतिकै सामर्थ्यवती हुँदीहुन्? जस्तै यहाँ स्त्री–पुरुषमा कामचेष्टा समानै अथवा पुरुषमा भन्दा स्त्रीमा अझ बढी नै हुन्छ, त्यस्तै गोलोकमा किन छैन? अनि यसो हो भने स्वामिनीजी को अरू स्त्रीहरूसँग सधैं झै–झगडा भैरहन्छ होला, किनकि सौताको डाह धेरै खराब हुन्छ। अनि त गोलोक स्वर्गको सट्टा नरकजस्तै भैसक्यो होला। अथवा जसरी धेरै स्त्रीगामी पुरुष भगन्दर आदि रोगले पीडित भैरहन्छन्, त्यस्तै गोलोकमा पनि होला। छि! छि!! छि!!! त्यस्तो गोलोकभन्दा त विचरा यो मर्त्यलोक नै असल छ।

हेर, यहाँ गोसाईंजी आफूलाई श्रीकृष्णजी मान्दछन् र धेरै स्त्रीहरूसँग लीला=सहवास आदि गर्नाले भगन्दर तथा प्रमेह आदि रोगबाट पीडित भएर ठूलो दुःख भोग्दछन्। अब भन त, जुन श्रीकृष्णको स्वरूप गोसाईं यहाँ पीडित हुन्छन् भने गोलोकको स्वामी श्रीकृष्ण यिनै रोगबाट पीडित किन नहुँदा हुन् त? अब उनी पीडित हुँदैनन् भने उनका स्वरूप गोसाईंजी किन पीडित हुन्छन् त?

प्रश्न—मर्त्यलोकमा लीलावतार धारण गर्नाले रोग–दोष हुन्छ, गोलोकमा हुँदैन। किनकि त्यहाँ त रोग–दोष छँदैछैन।

लागि यो कुरा असाध्य होइन।

यी विद्वान्हरूको विरोधले नै सबैलाई विरोध जालमा फसाएको छ भन्ने कुरामा शंका छैन। यिनीहरूले आफ्नो स्वार्थलाई त्यागेर सबको प्रयोजन सिद्ध गर्न चाहेमा अहिल्यै एकमत हुनेछन्। यसो हुने युक्ति यस ग्रन्थको अन्तमा लेखिनेछ। सर्वशक्तिमान् परमात्मा सबै मानिसका आत्मामा एउटै मतमा लाग्ने उत्साह प्रकाशित गरोस्।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु।

उत्तरार्द्धः —

अथैकादश–समुल्लासः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्यावर्त्त देशमा बस्ने आर्यहरूका मतको खण्डन–मण्डन गरिन्छ। भूगोलभरिको कुनै देश आर्य्यावर्त्त देश जस्तो छैन। यसैकारण सुवर्ण आदि रत्न उत्पन्न गर्ने हुनाले यस भूमिको नाम सुवर्णभूमि हो। यसैकारण सृष्टिका आरम्भमा आर्यहरू यसै देशमा आएर बसेका हुन्। उत्तम मनुष्यको नाम '**आर्य**' र आर्यभन्दा भिन्न मानिसको नाम '**दस्यु**' हो भन्ने कुरा हामीले सृष्टि–विषयमा भनिसकेका छौं। भूगोलका सबै देश यसै देशको प्रशंसा गर्दै 'पारसमणि नाम गरेको कुनै शिला हुन्छ भन्ने कुरा त झूटो हो, तर आर्यावर्त्त देश नै सच्चा पारसमणि हो' भन्दछन्। किनकि यसलाई छुनेबित्तिकै फलामजस्तै दरिद्र विदेशी सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य बन्दछन्।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ —मनुस्मृति

सृष्टि भएदेखि पाँचहजार वर्ष अघिसम्म आर्य्यहरूको सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोलभरि सर्वोपरि एउटै राज्य थियो। अरू देशमा माण्डलिक अर्थात् ससाना राजा हुन्थे। कौरव–पाण्डवसम्म यहाँको राज्य र राज्यशासनमै भूगोलका सबै राजा र प्रजा चल्दथे। सृष्टिको आरम्भमा बनाइएको मनस्मृति यसको प्रमाण छ—''यसै आर्य्यावर्त्त देशमा जन्मेका ब्राह्मण अर्थात् विद्वान्हरूबाट भूगोलका सबै मानिस=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सबै आ–आफ्नो योग्य विद्या, चरित्रको शिक्षा र विद्याभ्यास गरून्।'' महाराजा युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धसम्म सबै राज्य यहींको राज्यका अधीन थिए।

सुन, चीनका भगदत्त, अमेरिकाका बब्रुवाहन, यूरोपका विडालाक्ष अर्थात् बिरालोको जस्तै आँखा भएका, यूनान भनिने यवन र ईरानका शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ र महाभारत युद्धमा आज्ञानुसार

आएका थिए। रघुवंशीहरूको राज्य छँदा रावण पनि यहाँकै अधीन थियो। रामचन्द्रको समयमा विरोधी भएपछि रामचन्द्रले उसलाई दण्ड दिएर राज्यबाट हटाएर उसका भाइ विभीषणलाई राज्य दिएका थिए। स्वायंभुव राजादेखि पाण्डवसम्म आर्यहरूको चक्रवर्ती राज्य रह्यो। त्यसपछि परस्परको विरोधले लडेर नष्ट भए। किनकि परमात्माको यस सृष्टिमा अभिमानी, अन्यायकारी र अविद्वान्हरूको राज्य धेरै दिन चल्दैन। असंख्य, प्रयोजनभन्दा पनि धेरै धन बढी भएपछि आलस्य, पुरुषार्थ नहुनु, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति र प्रमाद बढ्नु यस संसारको स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। यसबाट देशमा विद्या, सुशिक्षा आदि नष्ट भएर दुर्गुण र दुर्व्यसन बढ्दछन्। मद्य–मांसको सेवन, बाल्यावस्थामा विवाह र स्वेच्छाचार आदि दोष बढ्दछन् र युद्ध विभागमा युद्धविद्याकौशल र सेना धेरै बढेर त्यसको सामना गर्नसक्ने भूगोलमा कुनै पनि अर्को नभएपछि तिनमा पक्षपात, अभिमान र अन्याय बढ्दछ। यी दोष भएपछि परस्परमा विरोध भएर अथवा त्योभन्दा बढी अरू सानातिना राज्य वा कुलबाट तिनलाई हराउन सक्ने अर्कै व्यक्ति निस्कन्छ। जस्तै मुस्लिम साम्राज्यको अगाडि शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंहजी आदिले अगाडि बढेर मुसलमानहरूको राज्यलाई छिन्न–भिन्न पारिदिए।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्त्तिनः केचित् सुद्युम्न–भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशविन्दु–हरिश्चन्द्राऽम्बरीषननक्तुशर्यातिया यात्यनरण्याक्षसेनादयः अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः ॥ —मैत्र्युपनिषद् ॥

इत्यादि प्रमाणहरूबाट सृष्टिदेखि महाभारतसम्म आर्यकुलमा नै चक्रवर्ती सार्वभौम राजा भएका थिए भन्ने सिद्ध हुन्छ। अब यिनका सन्तानहरूको अभाग्योदय हुनाले राज–भ्रष्ट भएर विदेशीहरूको पादाक्रान्त भैरहेछन्। जस्तै यहाँ सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त र भरत, यी सबै सार्वभौम= सम्पूर्ण भूभागमा प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाहरूका नाम हुन्, यस्तै स्वायम्भुव आदि चक्रवर्ती राजाहरूको नाम स्पष्टहरूमा मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थमा लेखिएका छन्। यसलाई मिथ्या मान्नु अज्ञानी र पक्षपातीहरूको काम हो।

प्रश्न—ग्रन्थहरूमा लेखिएका आग्नेयास्त्र आदि विद्या सत्य हुन् वा होइनन्? तथा त्यसबेला तोप, बन्दूक आदि थिए वा थिएनन्?

उत्तर—यी कुरा सत्य हुन् र यी शस्त्रविद्या पनि थिए, किनकि पदार्थविद्याबाट यी सबै कुरा सम्भव हुन्छन्।

प्रश्न—के यी शस्त्र आदि देवताहरूका मन्त्रबाट सिद्ध हुन्थे?

उत्तर—होइन। यी सब कुराको तात्पर्य जुन कुराबाट अस्त्र–शस्त्र सिद्ध वा तैयार हुन्थे तिनै मन्त्र=विचारपूर्वक तैयार गर्नु र चलाउनु हो। अनि शब्दमय मन्त्रबाट कुनै पदार्थ उत्पन्न हुँदैन। कसैले मन्त्रबाट आगो उत्पन्न हुन्छ भन्छ भने त्यस आगोले मन्त्रको जप गर्नेको हृदय र जिब्रोलाई भस्म गर्नेछ। त्यसो हुँदा शत्रुलाई मार्न जाँदा आफैं मर्नेछ। यसकारण विचारलाई मन्त्र भनिन्छ। जस्तै राजमन्त्री अर्थात् राजकर्मको विचार गर्ने व्यक्ति। त्यस्तै मन्त्र अर्थात् विचारपूर्वक सृष्टिका सब पदार्थहरूको पहिले ज्ञान, त्यसपछि क्रिया गर्नाले अनेक प्रकारका पदार्थ र क्रियाकौशल उत्पन्न हुन्छन्।

जस्तै एउटा कुनै फलामको बाण वा गोलो बनाएर त्यसमा आगो लगाउनाले, वायुमा धुवाँ फैलिंदा, सूर्यको किरण वा वायुको स्पर्श हुनासाथ आगो बल्ने किसिमको पदार्थ राखिएमा त्यसैको नाम **'आग्नेयास्त्र'** हुन्छ। कसैले यसलाई निष्क्रिय गर्न चाहेमा **'वारुणास्त्र'** छाड्नुपर्दछ। अर्थात् शत्रुले शत्रुको सेनामाथि आग्नेयास्त्र छोडेर नष्ट गर्न चाहेमा अविलम्ब आफ्नो सेनाको रक्षानिम्ति सेनापतिले वारुणास्त्रले आग्नेयास्त्रलाई निष्क्रिय पार्नुपर्दछ। धुवाँ, वायुको स्पर्श हुनासाथ बादल भएर तुरन्तै वर्षेर आगो निभाउने किसिमका पदार्थको योगबाट वारूणास्त्र बन्दछ। यस्तै **'नागपाश'** अर्थात् शत्रुमाथि छोड्नाले त्यसका अङ्गहरूलाई बाँध्ने, **'मोहनास्त्र'**=नशा गर्ने पदार्थ राखिएको हुनाले यसको धुवाँ लाग्नाले शत्रुको सेना निदाउने वा मूर्छित हुने, आदि किसिमका सबै शस्त्रास्त्र हुन्थे। अनि एउटा तार वा शीसा वा अरू कुनै पदार्थबाट विद्युत् उत्पन्न गरेर शत्रुको नाश गरिने अस्त्रलाई पनि **'आग्नेयास्त्र'** तथा **'पाशुपतास्त्र'** भनिन्छ।

'तोप' र **'बन्दुक'** नाम संस्कृत अथवा आर्यावर्त्तीय भाषाको नभई विदेशी भाषाका हुन्। विदेशी नाम तोप र बन्दुकलाई संस्कृत र आर्यभाषामा शतघ्नी र भुशुण्डी भनिन्छ। संस्कृत विद्या नपढेकाहरू भ्रममा परेर मनपरी लेख्ने वा बोल्ने गर्दछन्, त्यस्तोलाई बुद्धिमानहरूले प्रमाण मान्नुहुँदैन। भूगोलमा फैलिएको सबै विद्या आर्यावर्त्त देशबाट मिश्र, त्यहाँबाट यूनान, अनि रोम, त्यहाँबाट यूरोपदेश र यूपोदेशबाट अमेरिका आदि देशमा फैलिएको हो। अहिलेसम्म संस्कृतको धेरै

प्रचार छ र मैक्समूलरले पढेजति संस्कृत अरू कसैले पढेको छैन भन्ने कुरा पनि भनाइ मात्र हो। किनकि '**यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्यो द्रुमायते**' अर्थात् कुनैपनि रूख नभएको ठाउँमा अरिणलाई नै ठूलो रूख मानिन्छ। यस्तै यूरोपमा संस्कृत विद्याको प्रचार नहुनाले जर्मनीहरूले र मैक्समूलरले अलिकति पढेको पनि यूरोपवासीका लागि धेरै भएको हो। तर आर्यावर्त्ततर्फ हेर्ने हो भने तिनको धेरै कम गन्ती हुन्छ। किनकि मैले जर्मन देशमा बस्ने एकजना 'प्रिंसिपलको पत्रबाट जर्मनी देशमा संस्कृत चिठ्ठीको अर्थ गर्नसक्ने धेरै कम छन् भन्ने कुरा थाहा पाएको हुँ र मैक्समूलरको संस्कृत साहित्य र अलिकति वेदव्याख्या हेरेर मलाई 'मैक्समूलरले आर्यावर्त्तीहरूले लेखेका टीकालाई हेरेर केही यताउति गरेर लेखेका हुन् भन्नेकुराको ज्ञान भएको हो।' जस्तै—

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चारन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि॥'

यस मन्त्रको अर्थ घोडा गरेको छ। योभन्दा त सायणाचार्य्यले सूर्य्य अर्थ गरेकै ठीक छ। तर यसको ठीक अर्थ त परमात्मा हो भन्ने कुरा मैले लेखको '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**' मा हेर्नुहोला। त्यसमा यस मन्त्रको यथार्थ अर्थ गरिएको छ। यत्तिबाट 'जर्मनीदेश र मैक्समूलर साहेबमा कत्ति पाण्डित्य छ' भन्ने कुरा बुझ्नुहोला।

भूगोलमा फैलिएका समस्त विद्या र मत आर्य्यावर्त्त देशबाटै प्रचारित भएका हून् भन्ने कुरा निश्चित हो। हेर! प्यारिस अर्थात् फ्रांसदेश निवासी एकजना **गोल्डस्टर** साहेब आफ्नो '**बायबिल इन इण्डिया**'मा '**सबैविद्या र भलाइको भण्डार आर्यावर्त्त देश हो र सबै विद्या तथा मत यसै देशबाट फैलिएका हुन्**' भन्ने कुरा लेख्तछन् र परमेश्वरसँग प्रार्थना गर्दछन्—'**हे परमेश्वर! जस्तो उन्नति आर्य्यावर्त्त देशको पूर्वकालमा थियो त्यस्तै हाम्रो देशको गरिदिनुहोस्।**' इत्यादि कुराको लागि त्यस ग्रन्थलाई हेर्नुहोला।

बादशाह **दाराशिकोहले** पनि ''**जस्तो पूर्णविद्या संस्कृतमा छ, त्यस्तो अरू कुनै भाषामा छैन्**'' भन्ने निश्चय गरेका थिए। यो कुराको साथै उनी उपनिषद्को भाषान्तरमा लेख्छन्—''**मैले अरबी आदि धेरैजसो भाषाहरू पढें, तर म सन्देहमुक्त हुन सकिंन। संस्कृतलाई देखेसुने पछि सन्देहमुक्त भई मलाई ठूलो आनन्द प्राप्त भएको छ।**''

हेर, पूर्ण सुरक्षा नभएको भएतापनि काशीको मानमन्दिरमा शिशुमारचक्र कति उत्तम छ र त्यसबाट अझै पनि खगोलसम्बन्धी धेरै कुरा ज्ञात हुन्छन्। सबाई जयपुराधीशले त्यसको संभार र टुटेफुटेको

बनाइदिने गरेमा साह्रै बेस हुने थियो।

तर यस्तो शिरोमणि देशलाई महाभारतको युद्धले यस्तो धक्का दियो कि हालसम्म पनि आफ्नो अघिको अवस्थामा आउन सकेन। दाजु–भाइलाई दाजु–भाइले मार्न थालेपछि नाश त हुने नै भयो।

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥ यो कुनै कविको वचन हो। नाश हुने समय नजिक आएपछि बुद्धि उल्टो भएर उल्टै काम गर्दछन्। तिनलाई कसैले ठीक कुरा सम्झाएमा उल्टो सम्झन्छन् र उल्टो सम्झाए सुल्टो मान्दछन्। महाभारतको युद्धमा धेरै ठूला–ठूला विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षिहरू धेरैजसो मारिएपछि वेदोक्त धर्मको प्रचार नष्ट हुनथाल्यो। परस्परमा सबैमा ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान बढ्नथाल्यो। जो बलवान् थियो त्यसले देशलाई आफ्नो अधीनमा लियो। त्यस्तै सर्वत्र आर्य्यावर्त्त देशमा टुक्रा–टुक्रा राज्य हुन पुगे भने द्वीप–द्वीपान्तरका राज्यको व्यवस्था कसले गरोस्? ब्राह्मणहरू नै विद्याविहीन भएपछि क्षत्रिय, वैश्य र शूद्रहरू अविद्वान् हुने कुरामा के भन्न बाँकी रह्यो र? परम्पराबाटै वेदादिशास्त्रहरूलाई अर्थसहित पढ्ने प्रचार पनि छुट्यो। ब्राह्मणहरूले आफ्नो जीवन धान्नको लागिमात्र वेदादिको पाठमात्र पढ्न थाले भने त्यो पाठमात्र पनि क्षत्रिय आदिलाई पढ्न दिएनन्। किनकि अविद्वान्हरू गुरु भएपछि तिनमा छल, कपट, अधर्म पनि बढ्दै गयो। ब्राह्मणले 'आफ्नो जीविकाको प्रबन्ध गर्नुपर्यो' भन्ने विचार गरे। सम्मतिपूर्वक यस्तै निर्णय गरेर क्षत्रिय आदिलाई—''हामी तिम्रा पूज्यदेव हौं। हाम्रो सेवा नगरी तिमीहरूले स्वर्ग वा मुक्ति पाउने छैनौ। तिमीहरूले हाम्रो सेवा गरेनौ भने घोर नरकमा पर्नेछौ।'' आदि उपदेश गर्न थाले। वेद र ऋषिमुनिका शास्त्रमा पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिकहरूलाई नै ब्राह्मण र पूजनीय बताइएकोमा आफू मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मी भएर पनि ब्राह्मणका उक्त लक्षण आफूमा सिद्ध गर्न थाले। त्यस्ता आप्त विद्वान्हरूको लक्षण यस्ता मूर्खहरूमा कसरी घटित हुनसक्तछ र? तर क्षत्रिय आदि यजमानहरू संस्कृत विद्यादेखि पूरै रहित भएपछि तिनका अगाडि जे जे गफै–गफ सुनाए, विचराहरूले जस्ताकोतस्तै मान्न थाले। अनि त यी नाममात्रका ब्राह्मणहरूको भनेजस्तै भयो। सबैलाई आफ्नो वाग्जालमा फँसाएर, वशीभूत गरेर भन्न थाले कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥ अर्थात् ब्राह्मणका मुखबाट निस्केको वचनलाई साक्षात् भगवान्को मुखबाट निस्केको ठान्नुपर्दछ। धन भैकनका अन्धा अर्थात् भित्र विद्याको आँखा फुटेका र प्रशस्त धनवान्

क्षत्रियहरूलाई ती ब्राह्मण नामधारीहरूले 'पृथ्वीमा भएभरका उत्तम पदार्थहरू ब्राह्मणकै निम्ति हुन्' भन्ने पनि प्रचार गरे। अर्थात् गुण, कर्म, स्वभावबाट ब्राह्मण आदि वर्ण व्यवस्थालाई नष्ट गरेर जन्ममा आधारित बनाए र मरेपछि पनि यजमानबाट दान लिन थाले। जस्तो उनीहरूको मनमा आयो, त्यस्तै गर्नथाले। यतिसम्म भन्न थाले कि—'हामी भूदेव=पृथ्वीका देव हौं, हाम्रो सेवाविना कसैलाई पनि देवलोक प्राप्त हुनसक्तैन।' यिनीहरूसँग के सोध्नुपर्दछ भने—'तिमीहरू कुन लोकमा पुग्नेछौ? तिम्रा काम त घोर नरक भोग्नुपर्ने किसिमका छन्, तिमीहरू कीरा फट्याङ्ग्रा, पुतली आदि बन्नेछौ।' त्यसो भन्दा त तिनीहरू अत्यन्त क्रोधित भएर—'हामीले श्राप दियौं भने तिम्रो नाश हुनेछ किनकि शास्त्रमा '**ब्रह्मद्रोही विनश्यति**' ब्राह्मणसँग द्रोह गर्ने व्यक्तिको नाश हुन्छ भने लेखिएको छ' आदि भन्दछन्। अँ, यति त सत्य हो कि सम्पूर्ण वेद र परमात्मालाई जान्ने, धर्मात्मा, सम्पूर्ण जगत्को उपकार गर्ने व्यक्तिसँग कसैले द्वेष गरेमा त्यो अवश्य नष्ट हुन्छ तर जो ब्राह्मण नै होइन त्यस्तालाई ब्राह्मण भन्नु अथवा त्यस्ताको सेवा गर्नु उचित हुँदैन।

प्रश्न—त्यसो भए हामी को हौं त?

उत्तर—तिमीहरू पोप हौ।

प्रश्न—पोप कसलाई भनिन्छ?

उत्तर—रोमन भाषामा त पोप ठूलो र पितालाई भन्दछन् तर अब छलकपटद्वारा अरूलाई ठगेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्नेलाई पोप भनिन्छ।

प्रश्न—हामी त ब्राह्मण र साधु हौं। किनकि हाम्रा बुबा-आमा ब्राह्मण-ब्राह्मणी थिए र हामी फलानो नाम गरेको साधुका चेला हौं।

उत्तर—यो कुरा त सत्य हो। तर जुन, बाबु-आमा, ब्राह्मण-ब्राह्मणी हुँदैमा र कुनै साधुको शिष्य हुँदैमा ब्राह्मण वा साधु भइँदैन। आफ्ना गुण, कर्म, स्वभावबाट र परोपकारी भएर नै ब्राह्मण र साधु भइन्छ। सुनिन्छ—रोमका पोप आफ्ना चेलाहरूसँग 'तिमीले आफ्ना सबै पाप हाम्राअगाडि भन्यौ भने हामी क्षमा गरिदिनेछौं, हाम्रो सेवा र आज्ञाविना कोही पनि स्वर्ग जान सक्तैन, तिमी स्वर्ग जान चाहेमा तिमी हामीकहाँ जति रूपैयाँ जम्मा गर्नेछौ, त्यतिनै मूल्यको सामान तिमीले स्वर्गमा पाउनेछौ।' भन्दथे। यस्तो सुनेर कुनै धन भैकनका अन्धा व्यक्तिले स्वर्गमा जाने इच्छाले पोपजीलाई भनेजति रूपैयाँ दिएमा पोप ईसा र मरियमको मूर्तिसामु उभिएर यस्तो तमसुक (हुण्डी) लेख्तथ्यो—

"हे खुदाबन्द ईसामसी! फलाना मानिसले तिम्रो नाममा लाख रूपैयाँ स्वर्गमा आउनका लागि हामीकहाँ जम्मा गरिसकेको छ। ऊ स्वर्गमा आएपछि तिमीले आफ्ना पिताको स्वर्गको राज्यमा पच्चीस हजार रूपैयाँमा बागबगैंचा र घरबार, पच्चीस हजारमा सवारी, सिकारी र नोकर-चाकर, पच्चीस हजार रूपैयाँमा खान-पान र लत्ता-कपड़ा तथा पच्चीस हजार रूपैयाँ भने यसका इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव आदिको स्वागत-सत्कार (जियाफत) का लागि दिलाइदिनू।" अनि त्यस हुण्डीको मुनि आफ्नो सही गरेर हुण्डी त्यस व्यक्तिलाई दिंदै 'आफ्नो कुटुम्बलाई तिमी मर्नेबेलामा यो तमसुक कबरमा तिम्रो सिरानमा राख्न भनिराख्नू। पछि तिमीलाई लिन देवदूत (फरिश्ते) आउनेछन् र तिमीलाई तथा तिम्रो तमसुकलाई स्वर्गमा लगेर यसमा लेखिएबमोजिम सबैकुरा तिमीलाई दिलाइदिनेछन्' भन्दथे।

अब हेर, स्वर्गको ठेक्का नै पोपजीले लिएको जस्तो छ। जबसम्म यूरोपमा मूर्खता थियो, तबसम्म मात्र त्यहाँ पोपजीको लीला चल्थ्यो तर अब त्यहाँ विद्यावृद्धि भएको हुनाले पोपजीको झूटो लीला त्यति धेरै चल्दैन तर निर्मूल पनि भएको छैन।

त्यस्तै, आर्यावर्त्तमा पनि पोपजीले लाखौं अवतार लिए लीला फैलाएजस्तै सम्झे हुन्छ। अर्थात् राजा-प्रजालाई विद्या पढ्न नदिनु, सत्पुरुषहरूको संगत गर्न नदिनु र रातदिन झुक्याउनेबाहेक यिनीहरूको अरू केही पनि काम छैन। तर 'छलकपट आदि घृणित काम गर्नेहरू नै पोप भनिन्छन्, तिनीहरूभित्र पनि कुनै व्यक्ति धार्मिक, विद्वान्, परोपकारी छन् भने ती सच्चा ब्राह्मण र साधु हुन्' भन्ने कुरा ध्यान राख्नुपर्दछ।

अब 'पोप' भन्नाले मानिसहरूलाई ठगेर आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्ने तिनै छली, कपटी, स्वार्थीहरू र 'ब्राह्मण, साधु' भन्नाले उत्तम पुरुष भन्ने बुझ्नुहोला। हेर, कुनै पनि उत्तम ब्राह्मण वा साधु नभएको भए वेद आदि सत्यशास्त्रका पुस्तक, स्वरसहित पठनपाठन आदिलाई जैन मुसलमान, ईसाई आदिका जालबाट बचाएर आर्य्यहरूलाई वेदादि सत्यशास्त्रमा प्रीतियुक्त वर्णाश्रममा राख्ने काम ब्राह्मण साधुबाहेक कसले गर्न सक्तथ्यो? '**विषादप्यमृतं ग्राह्यम्**' (मनुस्मृति २।२२९) विषबाट पनि अमृत ग्रहण गरिने जस्तै पोपलीलाको बहकाउबाट पनि जैन आदि मतबाट आर्यहरू बचिराख्नु विषमा अमृत जस्तै गुण सम्झनुपर्दछ।

यजमान विद्याहीन भएपछि पोपहरूले केही पाठ-पूजा गरेर घमण्डी भएर परस्पर सम्मति गरेर राजा आदिसँग 'ब्राह्मण र साधु अदण्ड्य'

हुन् भने। हेर, '**ब्राह्मणो न हन्तव्यः**' (महाभाष्य १।२।६४) '**साधुर्न हन्तव्यः**' यस्ता यस्ता सच्चा ब्राह्मण र सच्चा साधुका बारेमा भएका वचनलाई पोपहरूले आफ्नो पक्षमा लगाए। अरू पनि झूठा कुरा भएका ग्रन्थहरू बनाएर तिनमा ऋषिमुनिहरूका नाम राखेर उनैका नामबाट सुनाउन थाले। ती प्रतिष्ठित ऋषिमुनिहरूका नामबाट आफूमाथिका दण्डको व्यवस्था हटाउन लगाए। अनि आफूखुसी गर्न थाले अर्थात्, यस्तायस्ता कडा नियम चलाए जस–अनुसार ती पोपहरूको आज्ञाबेगर सुत्न, उठ्न, बस्न, जान, आउन, खान, पिउन आदि पनि नपाइने भयो। राजाहरूबाट यस्तो निर्णय गराए कि पोप अर्थात् नाम मात्रका ब्राह्मण, साधुले जेसुकै गरेपनि तिनलाई दण्ड दिनुहुन्न अर्थात् मनबाट तीमाथि दण्ड लगाउने विचार गर्नुपनि हुँदैन।

यस्तो मूर्खता फैलिएपछि पोप=पुजारी–पुरेतले जे जस्तो चाहे त्यस्तै गर्न गराउन थाले। यस्तो खराब चालचलन महाभारत युद्धभन्दा एक हजार वर्ष अघिदेखि शुरू भएको थियो, किनकि त्यसबखत पनि ऋषि मुनि त थिए तर मानिसमा बिस्तारै बिस्तारै अलिअलि केही आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेषका अंकुर देखिएर बढ्दैबढ्दै फैलिंदै गए। सच्चा उपदेश नरहेपछि आर्य्यावर्त्तमा अविद्या फैलिएर परस्पर झै–झगडा गर्न थाले। किनकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्धपरम्परा॥

—सांख्यदर्शन ३।७९,८१

अर्थात्, उत्तम–उत्तम उपदेशक भएमा धर्म, अर्थ, काम र मोक्षको सिद्धि राम्ररी हुन्छ भने उत्तम उपदेशक र श्रोता नभएमा अन्धपरम्परा चल्दछ। फेरि पनि सत्पुरुषहरू जन्मेर सत्योपदेश गर्दछन्, अनिमात्र अन्धपरम्परा नष्ट भएर प्रकाशको परम्परा चल्दछ।

अनि ती पोपहरूले आफ्नो र आफ्ना चरण=पाउको पूजा गराउन र 'यसैमा तिमीहरूको कल्याण हुनेछ' भन्न थाले। यिनीहरू सबै तिनका अधीन भएपछि प्रमाद र विषयासक्तिमा डुब्दै गोठाला जस्तै झूठा गुरु र चेला फस्दै गए। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरता आदि सबै शुभगुण नष्ट हुँदैगए। अनि विषयासक्त भएपछि लुकीलुकी मद्य–मांसको सेवन गर्नथाले।

पछि तिनैमध्येबाट एउटा '**वाममार्ग**' चल्यो। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव उवाच' इत्यादि नाम लेखेर तिनको नाम 'तन्त्र' राखियो। तिनमा यस्ता यस्ता विचित्र लीलाका कुरा लेखिएका छन्—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ १॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥ २॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ३॥
मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥ ४॥
वेशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ५॥

यी नालायक पोपका लीला यति निकृष्ट भए कि वाममार्गीहरूले वेदविरुद्ध महाअधर्मका कामलाई नै श्रेष्ठ माने। मद्य, मांस, माछा, पुरी कचौरी र ठूला ठूला रोट चपाउनु, योनि पात्राधार मुद्रा र पाँचौं मैथुन अर्थात् सबै पुरुषलाई शिव र सबै स्त्रीलाई पार्वती मानेर—'**अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यवयोरस्तु संगमः**' कुनै पनि पुरुष र कुनै पनि स्त्रीले यो मनपरी वाक्य बोलेर परस्पर समागम गर्नमा वाममार्गीहरू दोष मान्दैनन्। अर्थात् स्पर्श गर्न पनि नहुने स्त्रीलाई उनीहरूले अतिपवित्र मानेकाछन्। जस्तै शास्त्रमा रजस्वला आदि भएकी स्त्रीलाई स्पर्श गर्न निषेध छ भने वाममार्गीहरूले त्यस्तीलाई अतिपवित्र मानेका छन्। यिनका उटपटांग श्लोक सुन—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी। चर्मकारी प्रयागः स्याद्राजकी मथुरामता। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ इत्यादि

रजस्वलासँग समागम पुष्करस्नान जस्तै, चाण्डालीसँगको समागम काशीयात्रा सरह, च्यामिनीसँगको समागम प्रयागस्नान जस्तो, धोबिनीसँग समागम मथुरायात्रा जस्तै र कंजरीसँगको लीला अयोध्यातीर्थ गरिएजस्तै हुन्छ।

मद्यको 'तीर्थ', मासुको 'शूद्धि' र 'पुष्प', माछाको 'तृतीया' र 'जलतुम्बिका', मुद्राको 'चतुर्थी' तथा मैथुनको 'पञ्चमी' नाम राखे। अरू कसैले बुझ्न नसकोस् भन्ने उद्देश्यले यस्तायस्ता नाम राखेका हुन्। आफ्ना नाम कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव र गण आदि राखे र वाममार्गमा नहुनेहरूका नाम 'कण्टक' 'विमुख' 'शुष्कपशु' आदि राखे। अनि उनीहरूको भनाइमा भैरवीचक्र हुँदा त्यसमा ब्राह्मणदेखि चाण्डालसम्म सबै वर्णको नाम द्विज हुन्छ र भैरवीचक्रबाट छुटेपछि सबै आ–आफ्नै वर्णमा रहन्छन्॥

भैरवी चक्रमा वाममार्गीहरू भुइँमा वा फलेकमा एउटा विन्दु, त्रिकोण, चतुष्कोण र बाटुलो घेरा बनाएर त्यसमाथि रक्सीको घैंटो राखेर त्यसको पूजा गर्दछन्। अनि यस्तो मन्त्र पढ्दछन्—'**ब्रह्मशापं विमोचय**' हे मद्य! तँ ब्रह्म आदिको शापरहित बन्। वाममार्गीबाहेक अर्कोलाई पुग्न नदिइने कुनै गोप्य ठाउँमा स्त्री–पुरुष जम्मा हुन्छन्। त्यहाँ पुरुषले कुनै एउटी स्त्रीलाई नाङ्गै पारेर पूजा गर्दछन् र स्त्रीले कुनै पुरुषलाई नाङ्गै गरेर पूज्दछन्। त्यसपछि कोही कसैकी पत्नी, कोही आफ्नै वा अरू कसैकी छोरी, कोही कसैकी वा आफ्नै आमा, दिदी, बहिनी, बुहारी आदि त्यहाँ आउँछन्। अनि एउटा भाँडोमा रक्सी भरेर र मासु, बडा आदिलाई एउटा थालमा राक्तछन्। त्यस रक्सीको भाँडालाई तिनका आचार्यले हातमा लिएर—'**भैरवोऽहम्, शिवोऽहम्**' अर्थात् म भैरव हुँ वा शिव हुँ भनेर पिउँछन्। त्यसपछि त्यसै जुठो भाँडाले सबैले पिउँछन्। अनि जब कसैकी पत्नी वा वेश्यालाई नाङ्गै पारेर अथवा कुनै पुरुषलाई नाङ्गै पारेर हातमा तरवार दिएर त्यस स्त्रीको नाम देवी र पुरुषको नाम महादेव राख्तछन्, तिनका उपस्थ इन्द्रियको पूजा गर्दछन्। त्यसपछि त्यस देवी वा शिवलाई रक्सीको गिलास पियाएर त्यसै जुठो भाँडाले एक–एक भाँडो सबैले पिउँछन्। फेरि त्यसैगरि बारम्बार पिएर उन्मत्त भएर जोसुकैकी बहिनी छोरी वा आमासँग अर्थात्, आफूखुसी जोसुकैसँग जोसुकैले कुकर्म गर्दछन्। कहिलेकाहीं नशा धेरै चढ्नाले जुत्ता, लात, घुस्सा चलाउने वा कपाल लुछ्ने गरेर पनि लड्दछन्। कुनै–कुनैलाई त्यहीं वान्ता हुन्छ। तिनमा सर्वाधिक सिद्ध मानिने अघोरी भन्नेले त्यस वान्तालाई पनि खान्छ। अर्थात् यिनमा सबैभन्दा ठूला सिद्धमा यस्ता कुरा हुन्छन्—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु॥
विराजते कौलवचक्रवर्ती॥

दीक्षित अर्थात् रक्सी व्यापारीकहाँ गएर बोतलमाथि बोतल धोक्न, रण्डीका घरमा गएर तीसँग कुकर्म गरेर त्यहीं रात बिताउने आदि कर्म निर्लज्ज र नि:शङ्क भएर गर्ने व्यक्ति नै वाममार्गीहरूमा सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजासमान मानिन्छ अर्थात् जो जति ठूलो कुकर्मी त्यही तिनमा ठूलो र असल काम गर्ने, खराब कामदेखि डराउने व्यक्ति सानो हुन्छ। किनकि—

पाशबद्धो भवेज्जीव: पाशमुक्त: सदा शिव॥

तन्त्रमा यसो भनिएको छ—लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुलज्जा,

देशलज्जा आदि पाश=बन्धनमा बाँधिएको ''जीव'' र निर्लज्ज भएर कुकर्म गर्ने भने 'सदाशिव' हो।

'उड्डीसतन्त्र' आदिमा एउटा प्रयोग लेखिएको छ। सोअनुसार एउटा घरमा चारैतर्फ खोपैखोपा होऊन्। तिनमा रक्सीका बोतल भरेर राखिदिनु पर्दछ। अनि एउटा खोपाबाट एउटा बोतल पिएर अर्को खोपासम्म, त्यहाँबाट तेस्रोमा, त्यहाँ पिएर चौथोमा यसैगरी लोहोरो ढलेजस्तै पृथ्वीमा नलडेसम्म पिउँदैजानु पर्दछ। नशा उत्रेपछि फेरि त्यसैगरि पिएर लड्नुपर्दछ। अनिफेरि तेस्रोपल्ट यसैगरी पिएर लडेर उठ्ने व्यक्तिको पुनर्जन्म हुँदैन अर्थात्, सत्य त के हो भने यस्ता व्यक्तिको फेरि मनुष्यजन्म हुनै कठिन छ, तर नीच योनिमा परेर धेरै समयसम्म त्यसै दु:ख भोगिरहन्छ।

वाममार्गीहरूको तन्त्रग्रन्थमा एउटा नियम 'एउटी आमा बाहेक कुनैपनि स्त्रीलाई छोड्नु हुँदैन' भन्ने छ। अर्थात् छोरी अथवा बहिनी नै भएपनि सबैसँग सम्भोग गर्नुपर्दछ। यी वाममार्गीहरूमा 'दश महाविद्या' प्रसिद्ध छन्। तीमध्ये एउटा मातङ्गी विद्याका अनुसार '**मातरमपि न त्यजेत्**' अर्थात्, आमासँग पनि सम्भोग नगरी छोड्नु हुँदैन। साथै स्त्री–पुरुषको समागम समयमा 'हामीलाई सिद्धि प्राप्त होओस्' भन्ने मन्त्र जप्तछन्। यस्ता बहुलाहा महामूर्ख व्यक्ति पनि संसारमा थोरै होलान् र?

झूठो कुरा चलाउन चाहनेले सत्यको निन्दा अवश्य गर्दछ। हेर, वाममार्गी के भन्दछन्—'वेद, शास्त्र र पुराण यी सबै सामान्य वेश्याहरू जस्तै हुन् भने वाममार्गको शाम्भवी मुद्रा कुलीन गुप्त स्त्री हो।'

यसैकारण यिनीहरूले वेदविरुद्ध मत चलाएका हुन्। पछि यिनको मत खुब चल्यो। अनि धूर्तता गरेर वेदकै नामबाट पनि वाममार्गको अलि–अलि लीला चलाए। अर्थात्—

'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्। वैदिकी हिंसा न भवति। न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥' —मनु० ५।५६

सौत्रामणी यज्ञमा रक्सी पिउनुपर्दछ। यसको ठीक अर्थ चाहिं—'सौत्रामणी यज्ञमा सोमरस अर्थात् सोमवल्लीको रस पिउनुपर्दछ' हो। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञमा मासु खानमा दोष हुँदैन, यस्ता लाछीपनका कुरा वाममार्गीहरूले चलाएका हुन्। तीसँग के सोध्नुपर्दछ भने वैदिकी हिंसा हिंसा हुँदैन भने तँलाई र तेरा कुटुम्बलाई नै मारेर होम गरेमा के

चिन्ता होला त? मांसभक्षण, मद्यपान र परस्त्रीगमन आदिमा दोष छैन भन्नु बालकपनका कुरा हुन्। किनकि प्राणीहरूलाई दुःख नपुर्याई मासु पाइँदैन र अपराधबेगर पीडा दिनु धर्मको काम होइन। मद्यपानको त सर्वत्र निषेध नै छ किनकि हालसम्म वाममार्गी का कुनै ग्रन्थमा जाँड–रक्सी पिउने विधान छैन, सर्वत्र निषेध चाहिं छ। विवाहबेगर मैथुनमा पनि दोष हुन्छ। यसलाई निर्दोष भन्ने आफैं दुष्ट हो। वाममार्गीहरूले यस्तायस्ता कुरा पनि ऋषिहरूका ग्रन्थमा हालेर कतिपय ऋषिमुनिहरूका नामबाट ग्रन्थ बनाएर गोमेध, अश्वमेध नामक यज्ञ पनि गराउन थाले। अर्थात् यी पशुहरूलाई मारेर होम गर्नाले यजमान र पशुलाई स्वर्ग प्राप्त हुन्छ भन्ने हल्ला फिंजाए। वास्तवमा त तिनीहरूले ब्राह्मणग्रन्थमा भएका अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दका ठीक–ठीक अर्थ नै जानेनन्, जानेका भए यस्ता अनर्थ किन गर्थे र?

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दको अर्थ के हो त?

उत्तर—यिनको अर्थ हो—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। अन्नꣳहि गौः। अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः॥ —शतपथब्राह्मण।

घोडा, गाई आदि पशु तथा मानिसलाई मारेर होम गर्न कतै पनि लेखिएको छैन। यस्तो अनर्थ त मात्र वाममार्गीहरूका ग्रन्थमा लेखेको छ र यो कुरा पनि वाममार्गीहरूले चलाएका हुन् र जहाँ–जहाँ ग्रन्थमा लेखिएको छ भने त्यो पनि वाममार्गीहरूले प्रक्षेप गरेका हुन्। जो, राजाले न्याय–धर्मपूर्वक प्रजाको पालन गर्नुपर्दछ, विद्या आदि दिने यजमान र आगोमा घिउ आदिको होम गर्नु 'अश्वमेध', अन्न, इन्द्रियहरू, किरण, पृथ्वी आदिलाई पवित्र राख्नु 'गोमेध' र मानिस मरिसकेपछि त्यसको शरीरको विधिपूर्वक दाह गर्नु 'नरमेध' भनिन्छ।

प्रश्न—यज्ञ गर्नेहरू 'यज्ञ गर्नाले यजमान र पशु स्वर्ग जान्छन् र होम गरेर पशुलाई फेरि जीउँदो गरिन्थ्यो भन्छन्। यो कुरा सत्य हो वा होइन?'

उत्तर—होइन। स्वर्गमा जान्छन् भने यसो भन्नेलाई मारेर स्वर्ग पुर्याउनुपर्दछ अथवा उसका आमा, बाबु, पत्नी र सन्तान आदिलाई मारेर होम गरेर स्वर्गमा किन पुर्याउँदैनन्? अथवा वेदीबाट फेरि किन बिउँताउँदैनन्?

प्रश्न—यज्ञ गर्दा वेदका मन्त्र पढिन्छन्। वेदमा यी कुरा नभएका भए कहाँबाट पढिन्थ्यो र?

उत्तर—मन्त्र शब्दरूप हुनाले त्यसले कसैलाई पढ्नबाट रोक्तैन। तर तिनको अर्थ पशुलाई मारेर होम गर्नुपर्दछ भन्ने होइन। जस्तै **'अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रको अर्थ अग्निमा हवि, पुष्टि आदि गर्ने, घिउ आदि उत्तम पदार्थको होम गर्नाले वायु, वृष्टि, जल शुद्ध भएर जगत्को सुखकारक हुन्छन्। तर यी सत्य अर्थलाई ती मुर्खहरू सम्झँदैनन् किनकि स्वार्थबुद्धि भएकाहरू आफ्नो स्वार्थबाहेक अरू केही पनि न त जान्दछन्, न मान्दछन्।

यी पोप=पुरेत–पुजारीहरूको यस्तो अनाचार देखेर र अर्को मरिसकेकाको श्राद्ध तर्पण आदि गरिने कुरा देखेर नै वेदादिशास्त्रको भयंकर निन्दा गर्ने बौद्ध, जैनमत प्रचलित भएका हुन्। यस्तो सुनिन्छ कि यसै देशमा एउटा गोरखपुरको राजा थियो। उसले पोप=पुरेत–पुजारीहरूबाट यज्ञ गरायो। ती पोपहरूले उसकी प्रिया रानीको समागम घोडासँग गराउनाले रानी मरेपछि राजा वैराग्यवान् भएर, आफ्नो छोरालाई राज्य सुम्पिएर, साधु भएर, पोपहरूको पोल खोल्न थाल्यो। यसैको शाखारूप चारवाक र आभाणक मत पनि चलेको थियो। तिनीहरूले यस्ता श्लोक बनाएकाछन्—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते॥ १॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥ २॥

पशुलाई मारेर अग्निमा होम गर्नाले पशु स्वर्ग जान्छ भने यजमान आफ्ना पिता आदिलाई मारेर किन स्वर्ग पठाउँदैनन्? मरेका मानिसको लागि श्राद्ध र तर्पण हुन्छ भने विदेश जाने व्यक्तिको निम्ति बाटो खर्च र खान–पान व्यवस्था गर्नु व्यर्थै हो। किनकि मृतकलाई श्राद्ध, तर्पणबाट अन्न जल पुग्दछ भने बाँचेकै विदेशतिर हिंडेका या बसेका व्यक्तिको घरमै तैयार भएको खानाबाट टपरीमा पस्केर पानीको लोटा भरेर उसको नाममा राख्नाले किन पुग्दैन? बाँचेकै टाढा देश वा दश हात जति टाढा बसेकोलाई दिएर पुग्दैन भने मृतकसम्म त कुनै तरिकाले पनि पुग्नसक्तैन।

उनका यस्ता युक्तियुक्त उपदेश मान्न थाले र उनको मत बढ्न थाल्यो। धेरैजसो राजा र भूमिपतिहरू पनि तिनकै मतमा लागेका देखेर पोपजी=पुरेत–पुजारीहरू पनि त्यतैतर्फ लागे किनकि ती त जता बढी प्राप्त हुन्छ त्यतै जाने भइहाले। तुरुन्तै जैन बन्न पुगे। जैनमा पनि

विभिन्न प्रकारका पोपलीला धेरै छन्, त्यो बाह्रौं समुल्लासमा लेखिनेछ। धेरैले यिनको मतलाई स्वीकार गरे तर पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम र दक्षिणदेशवासीहरूले जैनमत स्वीकार गरिसकेका थिएनन्। ती जैनीहरू वेदको अर्थ नजान्ने हुनाले बाहिरका पोपलीलालाई भ्रान्तिले वेदकै कुरा मानेर वेदको पनि निन्दा गर्नथाले। वेदका पठन–पाठन, यज्ञोपवीत आदि र ब्रह्मचर्यादिका नियमलाई पनि नष्ट गरे। जहाँ जति पुस्तक वेदादिका फेला परे, नष्ट गरे। आर्य्यहरूमाथि धेरैजसो राजसत्ता पनि चलाए र दुःख दिए। तिनीहरूलाई भय र शंका नरहेपछि आफ्नो मतका गृहस्थ र साधुहरूको प्रतिष्ठा र वेदमार्गीहरूको अपमान गर्नुको साथै पक्षपातपूर्वक दण्ड पनि दिन थाले। आफू भने सुख, आराम घमण्डले परिपूर्ण भई डुल्न थाले। ऋषभदेवदेखि महावीरसम्म आफ्ना तीर्थंकरहरूका ठूला–ठूला मूर्ति बनाएर पूजा गर्नथाले अर्थात्, ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजाको मूलजरो जैनीहरूबाट सुरु भएको हो। परमेश्वरलाई मान्न कम भयो, ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजा बढ्न थाल्यो। यसरी तीनसय वर्षसम्म आर्यावर्त्तमा जैनीहरूको शासन रह्यो। वेदार्थज्ञानबाट प्रायः सबै नै शून्य भैसकेका थिए। यस कुराको अनुमानतः साढे दुईहजार वर्ष व्यतीत भयो होला।

बाईससय वर्षअघि शङ्कराचार्यनामक द्रविडदेशमा जन्मेका ब्राह्मणले ब्रह्मचर्यपूर्वक व्याकरण आदि सबै शास्त्रलाई पढिसकेपछि सोच्न थाले—

'अहो! सत्य आस्तिक वेदमत हटेर नास्तिक जैनमत प्रचलित हुनु ठूलो हानिको कुरो भएको छ। यिनलाई कुनै तरिकाले हटाउनुपर्दछ' शङ्कराचार्यले शास्त्र त पढेकै थिए तर जैनमतका पुस्तक पनि पढेका थिए। अनि उनको युक्ति पनि धेरै प्रबल हुन्थ्यो। उनले यिनलाई कसरी हटाऊँ? भन्ने निश्चय गरे र यस्तो विचार गरेर उनी उज्जैन नगरमा आए। त्यस समय त्यहाँ सुधन्वा राजा थियो, उसले जैनीहरूका ग्रन्थ र केही संस्कृत पनि पढेको थियो। त्यहाँ गएर शङ्कराचार्यले वेदको उपदेश गर्नथाले तथा राजासँग भने—तपाईले संस्कृत तथा जैनीहरूका ग्रन्थ पढ्नुभएकै छ र जैनमत मान्नुहुन्छ। अतः म भन्दछु तपाईं मेरो शास्त्रार्थ जैनीहरूका पण्डितहरूसँग गराउनुहोस्। प्रतिज्ञा के हुनेछ भने हार्नेले जित्नेको मत स्वीकार गर्नुपर्नेछ र तपाईंले पनि जित्नेकै मत स्वीकार गर्नु उचित हुनेछ।

सुधन्वा जैनमतमा भएतापनि संस्कृत ग्रन्थ पढेका हुनाले उनको बुद्धिमा केही विद्याको प्रकाश थियो र उनको मनमा अत्यन्त पशुता

छाएको थिएन। विद्वान् व्यक्ति सत्य र असत्य को परीक्षा गरेर सत्यलाई ग्रहण गर्दछ भने असत्यलाई त्यागिदिन्छ। सुधन्वा राजालाई ठूलो विद्वान् उपदेशक नमिलेसम्म उनी कुन सत्य हो र कुन चाहिं असत्य हो भन्ने सन्देहमा थिए। शङ्कराचार्यको यो कुरा सुनेपछि उनले बडो प्रसन्नतासाथ 'म शास्त्रार्थ गराएर सत्य र असत्यको निर्णय अवश्य गराउँनेछु' भने।

टाढा टाढादेखि जैनीहरूका पण्डितहरूलाई बोलाएर सभा गराए। त्यसमा शङ्कराचार्यको वेदमत र जैनीहरूको वेदविरुद्ध मत थियो अर्थात् शङ्कराचार्यको पक्ष वेदमतको स्थापना र जैनीहरूको खण्डन थियो। कैयौं दिनसम्म शास्त्रार्थ भयो। जैनीहरूको मत थियो—सृष्टिको कर्त्ता कुनै अनादि ईश्वर होइन, यो जगत् र जीव अनादि हुन्। यी दुवैको उत्पत्ति र नाश कहिल्यै हुँदैन। यसको विपरीत शङ्कराचार्यको मत थियो—अनादि सिद्ध परमात्मा नै जगत्को कर्त्ता हो, उही धारण र प्रलय गर्दछ। यो जीव र प्रपञ्च स्वप्न जस्तै मिथ्या हो। परमेश्वर आफैं सब रूप भएर लीला गरिरहेछ।

धेरै दिनसम्म शास्त्रार्थ चल्यो। अन्तमा युक्ति र प्रमाणद्वारा जैनीहरूको मत खण्डित भयो भने शङ्कराचार्यको मत अखण्डित रह्यो। अनि ती सबै जैनीहरूले र राजा सुधन्वाले जैनमत त्यागेर वेदमत स्वीकार गरे। ठूलो खैलाबैला मच्चियो। सुधन्वा राजाले अरू आफ्ना इष्टमित्र राजाहरूलाई पत्र लेखेर शङ्कराचार्यसँग शास्त्रार्थ गराए र समयको अवस्थाले जैनीहरू पराजित हुँदैगए। पछि सुधन्वा आदि राजाहरूले शङ्कराचार्यको सुरक्षाका लागि नोकर–चाकर राखेर आर्यावर्त्तदेशमा सर्वत्र घुम्ने व्यवस्था पनि गरिदिए। त्यसै समयदेखि सबैका यज्ञोपवीत हुनथाले र वेदको पठन–पाठन पनि हुनथाल्यो। दर्सवर्षभित्र आर्यावर्त्तदेशमा सर्वत्र घुमेर जैनीहरूको खण्डन र वेदको मण्डन गरे। तर शङ्कराचार्यको समयमा जैन विध्वंस अर्थात् जति मूर्त्तिहरू जैनीहरूका निस्कन्छन् ती शङ्कराचार्यकै समयमा फुटाइएका थिए। सिङ्गै निस्कने मूर्तिहरू भने जैनीहरूले नफुटाइयून् भन्ने सोचेर भूमिमा गाडेका थिए। तिनै अब कतै भूमिबाट निक्लिएका हुन्। शङ्कराचार्यभन्दा अघि शैवमतको पनि अलि–अलि प्रचार थियो। उनले त्यसको पनि खण्डन गरे। वाममार्गको खण्डन गरे। त्यस बेला यस देशमा धन धेरै थियो र स्वदेशभक्ति पनि थियो। जैनीहरूका मन्दिरमा वेदादिको पाठशाला बनाउने इच्छाका कारण शङ्कराचार्य र सुधन्वाले ती मन्दिर भत्काउनबाट रोकेका थिए। वेदमतको स्थापना भैसकेपछि शङ्कराचार्य विद्या प्रचारको

विचार गर्दै थिए, त्यसैताका दुईजना नाममात्र वेदमत मान्ने र भित्रबाट कट्टर जैनी अर्थात् कपटमुनिले, शङ्कराचार्यलाई आफूप्रति प्रसन्न र विश्वस्त गराएर र मौका छोपेर शङ्कराचार्यलाई यस्तो विषयुक्त वस्तु ख्वाए जसबाट उनको भोक कम हुँदै गयो र पछि शरीरमा लुतो–खटिरा आदि भएर छ महिनाभित्र शङ्कराचार्यको शरीर छुट्यो। त्यसबाट सबै निरुत्साहित भए र जति विद्याको प्रचार हुने आशा थियो त्यो पनि हुन पाएन। शङ्कराचार्यले लेखेका शारीरकभाष्य आदिको प्रचार उनका शिष्यहरूले गर्नथाले। अर्थात्, जैनीहरूको खण्डनका लागि उनले जो ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या र जीव ब्रह्मको एकताकथन गरेका थिए, त्यसैको उपदेश उनका शिष्यहरू गर्न थाले। दक्षिणमा शृङ्गेरी, पूर्वमा भूगोवर्द्धन, उत्तरमा जोशी र द्वारिकामा शारदामठ बनाएर शङ्कराचार्यका शिष्य महन्त बनेर श्री सम्पत्तियुक्त भएर आनन्द गर्नथाले किनकि शङ्कराचार्यपछि उनका शिष्यहरूको ठूलो प्रतिष्ठा हुन थाल्यो।

अब यसमा विचारणीय कुरा के छ भने जीव र ब्रह्मको एकता र जगत् मिथ्या भन्ने कुरा शङ्कराचार्यलाई स्वीकार्य मत थियो भने त्यो ठीक होइन। जैनीहरूको खण्डनका निमित्त त्यस मतको प्रतिपादन गरिएको भए केही ठिकै छ। नवीन वेदान्तीहरूको मत यस्तो छ—

प्रश्न—जगत् स्वप्न जस्तै, डोरीमा सर्प, सीपीमा चाँदी, मृगतृष्णिकामा जल, गन्धर्वनगर र इन्द्रजालजस्तै यो संसार झूटो हो। एकमात्र ब्रह्म सच्चा हो।

सिद्धान्ती—तिमी कसलाई झूटो भन्दछौ?

नवीन वेदान्ती—नभएको वस्तु प्रतीत हुन्छ भने त्यसलाई झूटो भनिन्छ।

सिद्धान्ती—हुँदै नभएको वस्तुको प्रतीति कसरी हुनसक्तछ?

नवीन०—अध्यारोपद्वारा।

सिद्धान्ती—अध्यारोपन कसलाई भन्दछौ?

नवीन०—'**वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः**'॥ '**अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चयते**' अरू नै कुनै पदार्थमा अर्कै वस्तुको आरोपण गर्नु '**अध्यास**', अध्यारोप र त्यसको निराकरण गर्नु अपवाद हुन्छ। यी दुवैबाट प्रपञ्चरहित ब्रह्म प्रपञ्चरूप जगत्को विस्तार हुन्छ।

सिद्धान्ती—तिमी डोरीलाई वस्तु र सर्पलाई अवस्तु सम्झेर यस भ्रमजालमा परेका छौ। के सर्प वस्तु होइन? डोरीमा सर्प छैन भन्छौ भने देशान्तर=अर्कै ठाउँमा र उसको संस्कारमात्र हृदयमा छ भने त्यो

सर्प पनि अवस्तु रहेन। त्यस्तै ठुटोमा मानिस, सीपीमा चाँदी आदिको कुरा पनि बुझ्नुपर्दछ। अनि जुन वस्तुको स्वप्नमा पनि भान हुन्छ भने त्यो वस्तु देशान्तरमा अवश्य हुन्छ र त्यसको संस्कार आत्मामा पनि हुन्छ। यसकारण त्यो स्वप्न पनि वस्तुमा अवस्तु को आरोपणजस्तो होइन।

नवीन०—आफ्नै टाउको काटिएको र आफू रोइरहेको, पानीको धारा मास्तिर गएको जस्तो कहिल्यै नदेखेको, नसुनेको र कहिल्यै नभएको कुरा स्वप्नमा देखिन्छ, त्यो सत्य कसरी हुन सक्तछ र?

सिद्धान्ती—यो दृष्टान्तले पनि तिम्रो पक्षलाई सिद्ध गर्दैन, किनकि नदेखी, नसुनी संस्कार बन्दैन। संस्कारविना स्मृति र स्मृतिविना साक्षात् अनुभव हुँदैन। कसैले फलानाको टाउको काटियो भन्ने देखेको वा सुनेको त्यसका बन्धुबान्धव वा पिता आदिलाई लडाइँमा प्रत्यक्ष रोएको देखेको र फोहोरा आदिको पानीको धारा मास्तिर चलेको देखेको वा सुनेको भए त्यसको संस्कार त्यसैको आत्मामा हुन्छ। यस जाग्रतका पदार्थ देखि अलग भएर अर्थात् स्वप्नमा आफ्नो आत्मामा तिनै पदार्थलाई देख्तछ, जुन वस्तुलाई देखेको वा सुनेको हुन्छ। आफैंभित्र देख्ता आफ्नो शिर काटिएको, आफैं रोइरहेको र मास्तिर चलेको पानीको धारालाई देख्तछ भन्ने बुझ्नुपर्दछ। यो पनि वस्तुमा अवस्तुको आरोप जस्तो होइन तर जसरी नक्सा बनाउनेले अघि नै देखेको, सुनेको वा गरेकोलाई आत्माबाट निकालेर कागजमा लेख्तछ अथवा, प्रतिबिम्ब उतार्ने व्यक्ति बिम्बलाई हेरेर आत्मामा आकृतिलाई राखेर त्यस्तै लेख्तछ। अँ, यति अवश्य हो कि कहिलेकाहीं स्वप्नमा स्मरण रहेका कुराको प्रतीति जस्तै अध्यापकलाई देख्नु आदि हुन्छ भने कहिले चाहिं धेरै अघि देखेसुनेको अतीतको ज्ञानको साक्षात्कार हुन्छ। त्यस समय 'मैले कुनै बेला देखेसुनेकै कुरा अहिले देख्दै, सुन्दै वा गर्दैछु' भन्ने याद रहँदैन। जसरी जाग्रत अवस्थामा स्मरण हुन्छ, त्यस्तै नियमपूर्वक स्वप्नमा हुँदैन। हेर, जन्मदेखि नै अन्धोलाई रूपको स्वप्न आउँदैन। यसकारण तिम्रो अध्यास र अध्यारोपको लक्षण झूटो हो र वेदान्तीहरूले ब्रह्ममा जगत्को भान हुने कुरामा दिएको विवर्त्तवाद अर्थात् डोरी आदिमा सर्प आदिको आभास हुने दृष्टान्त पनि ठीक होइन।

नवीन०—अधिष्ठानविना अध्यस्तको प्रतीति हुँदैन। जस्तै डोरी नभई सर्पको पनि भान हुन सक्तैन। जस्तै डोरीमा सर्प तिनै कालमा छैन तर अँध्यारो र केही उज्यालो हुँदा अपर्झट डोरीलाई देख्नाले

व्यक्तिलाई ऊ सर्पको भ्रम भएर भयले काँप्तछ। दीपक आदिबाट त्यसलाई देख्नेबित्तिकै भ्रम र भय हट्तछ। त्यस्तै ब्रह्ममा जगत्‌को मिथ्या प्रतीति भएकोमा ब्रह्मको साक्षात्कार भएपछि सर्पको निवृत्ति र डोरीको प्रतीति भएजस्तै जगत्‌को निवृत्ति भएर ब्रह्मको प्रतीति हुन्छ।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममा जगत्‌को भान कसलाई हुन्छ ?

नवीन०—जीवलाई।

सिद्धान्ती—जीव कहाँबाट आयो ?

नवीन०—अज्ञानबाट।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहाँबाट आउँछ र कहाँ रहन्छ ?

नवीन०—अज्ञान अनादि छ र ब्रह्ममा रहन्छ।

सिद्धान्ती—ब्रह्ममा ब्रह्मकै अज्ञान हुन्छ वा अरू कसैको ? अनि त्यो अज्ञान कसलाई हुन्छ ?

नवीन०—चिदाभासलाई।

सिद्धान्ती—चिदाभासको स्वरूप के हो ?

नवीन०—ब्रह्म। ब्रह्मलाई ब्रह्मकै अज्ञान हुन्छ अर्थात् आफ्नो स्वरूपलाई आफैं बिर्सन्छ।

सिद्धान्ती—उसले बिर्सनमा कारण के हो ?

नवीन०—अविद्या

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी, सर्वज्ञको गुण हो वा अल्पज्ञको ?

नवीन०—अल्पज्ञको।

सिद्धान्ती—त्यसोभए तिम्रो मतमा एक अनन्त सर्वज्ञ चेतनबाहेक अर्को कुनै चेतन छ वा छैन ? र अल्पज्ञ कहाँबाट आयो ? अँ, अल्पज्ञ चेतनलाई ब्रह्मभन्दा भिन्नै मान्दछौ भने ठीकै छ। एउटा ठाउँको ब्रह्मलाई आफ्नो स्वरूपको अज्ञान हुन्छ भने सर्वत्र अज्ञान फैलिनेछ। जसरी शरीरको कुनै अङ्गमा हुने खटिरोको दुःख शरीरका सबै अवयवहरूलाई काम नलाग्ने बनाउँछ, त्यसैगरी ब्रह्म पनि एक ठाउँमा अज्ञानी र क्लेशयुक्त हुनाले पूरै ब्रह्म पनि अज्ञानी र दुःखको अनुभव गर्ने हुनेछ।

नवीन०—यो सब उपाधिको धर्म हो, ब्रह्मको होइन।

सिद्धान्ती—उपाधि जड, चेतन, सत्य वा असत्य के छ ?

नवीन०—अनिर्वचनीय छ। अर्थात् यसलाई जड, चेतन, सत्य वा असत्य केही भन्न मिल्दैन।

सिद्धान्ती—तिम्रो यो कथन '**वदतो व्याघात**' जस्तै हो। किनकि अविद्या भन्दछौ र त्यसलाई जड–चेतन, सत्य–असत्य भन्न मिल्दैन

भन्छौ। तिम्रो यो कुरो पीत्तल मिसिएको सुनलाई बाँडाकहाँ लगेर यो सुन हो वा पीत्तल हो भनी परीक्षण गराउँदा बाँडाले 'न त यो सुन हो न पीत्तल नै हो, यसमा त दुबै धातु मिलेका छन्' भनेजस्तै भयो।

नवीन०—हेर, घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश र महदाकाश उपाधि अर्थात् घैंटो, घर र बादल हुँदा ती छुट्टाछुट्टै प्रतीत हुन्छन् तर वास्तवमा त महदाकाश नै भएजस्तै माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि र अन्तःकरणका उपाधिबाट अज्ञानीहरूलाई ब्रह्म पृथक्–पृथक् प्रतीत भैरहेछ, वास्तवमा त एउटै छ। निम्न प्रमाणलाई हेर—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

—कठोपनिषद् ५।९

अग्नि साना–ठूला, लामा–फराक, बाटुला सबै आकृतिका पदार्थमा व्यापक भएर त्यसकै आकृतिको देखिने तर तीभन्दा छुट्टै भएजस्तै सर्वव्यापक परमात्मा अन्तःकरणमा व्यापक भएर अन्तःकरणाऽऽकार भैरहेछ तर तीभन्दा छुट्टै छ।

सिद्धान्ती—तिम्रो यो कथन पनि व्यर्थै हो किनकि तिमीले घट, मठ, मेघ र आकाशलाई छुट्टै मानेजस्तै कारणकार्य्यरूप जगत् र जीवलाई ब्रह्म भन्दा तथा ब्रह्मलाई यीभन्दा छुट्टै मान्नुपर्दछ।

नवीन०—अग्नि सबैमा प्रविष्ट भएर तदाकार देखिएजस्तै परमात्मा जड र जीवमा व्यापक भएर आकारवान् अज्ञानीहरूलाई आकारयुक्त देखिन्छ, वास्तवमा ब्रह्म न जड हो, न जीव हो। जस्तै हजारौं पानीका कुण्ड राखिएमा तिनमा सूर्यका हजारौं प्रतिबिम्ब देखिन्छन्, वास्तवमा त सूर्य एउटै हो। कुण्ड नष्ट हुनाले, पानी हल्लिनाले वा पोखिनाले=फैलिनाले सूर्य न त नष्ट हुन्छ, न हल्लिन्छ, न फैलिन्छ। यसैगरी अन्तःकरणमा ब्रह्मको आभास परेको छ, यसलाई चिदाभास भनिन्छ। अन्तःकरण रहेसम्म जीव छ, ज्ञानद्वारा अन्तःकरण नष्ट हुँदा जीव ब्रह्मस्वरूप नै हो। यस चिदाभासलाई आफ्नो ब्रह्मस्वरूपको अज्ञान कर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, पापी, पुण्यात्मा, जन्म, मरण आफूमा आरोपित गर्दछ। तबसम्म संसारका बन्धनबाट छुट्तैन।

सिद्धान्ती—सूर्य आकारयुक्त, जलका कुण्ड पनि आकारयुक्त हुनाले सूर्य जलकुण्डभन्दा र जलकुण्ड सूर्यभन्दा छुट्टै हुनाले तिनको प्रतिबिम्ब हुनेहुँदा तिम्रो यो दृष्टान्त व्यर्थै छ। यी निराकार भएका भए यिनको प्रतिबिम्ब कहिल्यै हुनसक्ने थिएन। परमेश्वर भने निराकार,

सर्वत्र आकाशजस्तै व्यापक हुनाले ब्रह्मभन्दा कुनै पदार्थ र पदार्थभन्दा ब्रह्म छुट्टै हुनसक्तैन र व्याप्य–व्यापक सम्बन्धका कारण एउटै पनि हुनसक्तैन। अर्थात्, अन्वयव्यतिरेकभावबाट हेर्दा व्याप्य–व्यापक सम्बन्धका कारण एउटै पनि हुनसक्तैन। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभावबाट हेर्दा व्याप्य–व्यापक सम्बन्धले मिलेका र सदा छुट्टै छन्। यो सबै एउटै भएमा व्याप्य–व्यापक भाव सम्बन्ध कहिल्यै घटित हुनसक्तैन। यो कुरा बृहदारण्यकोपनिषद्को अन्तर्यामी ब्राह्मण (३।७) मा स्पष्ट लेखिएको छ। ब्रह्मको आभास पर्न पनि सक्तैन किनकि आकारविना आभास हुन असम्भव हुन्छ। अन्त:करणोपाधिबाट ब्रह्मलाई जीव मान्दछौ भने यो तिम्रो बालककै जस्तो कुरा हो, किनकि अन्त:करण चलायमान, खण्ड–खण्ड र ब्रह्म भने अचल र अखण्ड छ। ब्रह्म र जीवलाई छुट्टाछुट्टै मान्दैनौ भने जहाँजहाँ अन्त:करण जानेछ त्यहाँ–त्यहाँको ब्रह्मलाई अज्ञानी र जुन–जुन ठाउँलाई छोड्दै जानेछ त्यहाँ–त्यहाँको ब्रह्मलाई ज्ञानी बनाउने छ वा छैन? प्रकाशको बीचमा जहाँ जहाँ छाता हुन्छ, त्यहाँ–त्यहाँको प्रकाशलाई आवरणयुक्त र जहाँ–जहाँबाट छाता हट्तैजान्छ त्यहाँ–त्यहाँको प्रकाश आवरणरहित त्यस छाताले गर्दछ। त्यस्तै ब्रह्मलाई अन्त:करणले क्षण क्षणमा ज्ञानी, अज्ञानी, बद्ध र मुक्त पारिरहनेछ। चेतन हुनाले अखण्ड ब्रह्मको एक ठाउँको आवरणको प्रभाव सबै ठाउँमा हुनेहुँदा सम्पूर्ण ब्रह्म अज्ञानी हुनेछ। अर्को कुरा, मथुरामा जुन अन्त:करणस्थ ब्रह्मले जुन वस्तु देखेको थियो, त्यसको स्मरण त्यसै अन्त:करणस्थ ब्रह्मबाट काशीमा हुनसक्तैन। किनकि **'अदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्'** अरूले देखेको कुराको स्मरण अर्कैलाई हुँदैन। जुन चिदाभासले मथुरामा देखेको थियो त्यो चिदाभास काशीमा रहँदैन र जो मथुरास्थ अन्त:करणको प्रकाश छ त्यो काशीस्थ ब्रह्म हुँदैन। फेरि ब्रह्म नै जीव हो र छुट्टै होइन भने जीवले सर्वज्ञ हुनुपर्दछ। ब्रह्मको प्रतिबिम्ब छुट्टै छ भने प्रत्यभिज्ञा अर्थात् अघि देखे–सुनेका कुराको ज्ञान कसैलाई हुनसक्नेछैन। ब्रह्म एउटै हुनाले स्मरण हुन्छ भन्छौ भने एक ठाउँमा अज्ञान वा दु:ख हुँदा सबै ब्रह्मलाई अज्ञान वा दु:ख हुनुपर्दछ। यस्तायस्ता दृष्टान्तहरूबाट तिमीहरूले नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्मलाई अशुद्ध, अज्ञानी र बद्ध आदि दोषयुक्त बताउनुको साथै अखण्डलाई खण्ड–खण्ड मानेकाछौ।

नवीन०—दर्पण वा पानी आदिमा आकाशको आभास भएजस्तै

निराकारको पनि आभास हुन्छ। त्यो नीलो वा अरू कुनै किसिमको गम्भीर गहिरो देखिन्छ। त्यस्तै ब्रह्मको पनि सबै अन्त:करणमा आभास हुन्छ।

सिद्धान्ती—निराकार आकाशलाई आँखाले कसैले पनि देख्नसक्तैन। देखिंदै नदेखिने वस्तु दर्पण वा जल आदिमा कसरी देखिनसक्छ? गहिरो वा धमिलो देखिने साकार वस्तु हो, निराकार होइन।

नवीन०—त्यसोभए माथि नीलो जस्तो देखिने र ऐना वा पानीमा भान हुने पदार्थ के हो?

सिद्धान्ती—ती पृथ्वीबाट उडेका जल, पृथ्वी र अग्निका त्रसरेणु हुन्। जहाँबाट वर्षा हुन्छ, त्यहाँ पानी नभए वर्षा कहाँबाट हुने? यसकारण टाढा टाढा पाल जस्तै देखिने जलको चक्र हो। जसरी कुहिरो टाढाबाट घनाकार र नजिक पातलो उडेको जस्तो देखिन्छ त्यस्तै आकाशमा पानी देखिन्छ।

नवीन०—के डोरी, सर्प, सपना आदिका हाम्रा दृष्टान्त मिथ्या हुन्?

सिद्धान्ती—दृष्टान्त मिथ्या होइन, तिम्रो समझ चाहिं मिथ्या हो। यो कुरा हामीले अघि लेखिसक्यौं। पहिले अज्ञान कसलाई हुन्छ भन्ने कुरा त भन?

नवीन०—ब्रह्मलाई।

सिद्धान्ती—ब्रह्म अल्पज्ञ छ वा सर्वज्ञ?

नवीन०—न सर्वज्ञी, न अल्पज्ञ। किनकि उपाधिसहितमा नै सर्वज्ञता र अल्पज्ञता हुन्छ।

सिद्धान्ती—उपाधिसहित को छ?

नवीन०—ब्रह्म।

सिद्धान्ती—त्यसो भए ब्रह्म नै सर्वज्ञ अल्पज्ञ भयो, अनि तिमीले सर्वज्ञ र अल्पज्ञको निषेध किन गरेका थियौ? उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या हो भन्छौ भने कल्पक=कल्पना गर्ने को हो?

नवीन०—जीव ब्रह्म नै हो अथवा अरू कुनै हो?

सिद्धान्ती—अरू नै हो। ब्रह्मस्वरूप भएर मिथ्याकल्पना गर्दछ भने त्यो ब्रह्मनै हुन सक्तैन। मिथ्याकल्पना गर्ने कहिले सच्चा हुन सक्तछ र?

नवीन०—हामी त सत्य, असत्य दुबैलाई मिथ्या मान्दछौं, वाणीले

बोल्नु पनि मिथ्या नै हो।

सिद्धान्ती—तिमी झूट बोल्दछौ र मान्दछौ भने झूठा किन भएनौ ?

नवीन०—पख, झूट र सत्य हामीभित्रै कल्पित हो र हामी भने दुबैका साक्षी अधिष्ठान हौं।

सिद्धान्ती—तिमी सत्य र झूठका आधारहौ भने तिमीनै साहुकार र चोर जस्तै भयौ।

यसोहुँदा तिमी प्रामाणिक पनि रहेनौ ? किनकि सदासर्वदा सत्य मान्ने, सत्य बोल्ने, झूट नमान्ने, झूट नबोल्ने र कहिल्यै झूट नगर्ने नै प्रामाणिक हुन्छ। आफ्नै कुरालाई आफैं झूटो बनाउँछौ भने तिमी अनाप्त मिथ्यावादी हौ।

नवीन०—ब्रह्मको आश्रय लिएर ब्रह्मकै आवरण गर्ने अनादि मायालाई मान्दछौ वा मान्दैनौ ?

सिद्धान्ती—मान्दैनौं। नभएको वस्तु हृदयमा भासमान हुने भनिएको तिम्रो मायालाई भित्री आँखा फुटेकाले नै मान्नेछ। किनकि बाँझीका छोराको प्रतिबिम्ब कहिल्यै हुन नसकेजस्तै नभएको वस्तु भासमान हुनैसक्तैन, सर्वथा असम्भव हुन्छ। अनि तिम्रो यो कुरा **'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः'** इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद्का वचनको विरुद्ध पनि हो।

नवीन०—के तिमी वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि र निश्चलदाससम्म भएका तिमीभन्दा ठूला पण्डितहरूले लेखेका कुराको पनि खण्डन गर्दछौ ? हामीलाई त वसिष्ठ, शङ्कराचार्य र निश्चलदास आदि ठूला लाग्छन् ?

सिद्धान्ती—तिमी विद्वान् हौ वा अविद्वान् ?

नवीन०—हामी पनि केही विद्वान् हौं।

सिद्धान्ती—त्यसोभए वसिष्ठ, शङ्कराचार्य र निश्चलदासको पक्ष हाम्रो सामु स्थापित गर, हामी त्यसको खण्डन गर्दछौं। जसको पक्ष सिद्ध हुन्छ, उही ठूलो ठहर्नेछ। तिनको र तिम्रो कुरा अखण्डनीय भएको भए तिमी तिनका युक्तिहरूलाई लिएर हाम्रा कुराको खण्डन किन गर्नसक्तैनौ ? अनिमात्र तिम्रा र उनका कुरा मान्य हुनेथिए।

शङ्कराचार्य आदिले त जैनीहरूको मतको खण्डन गर्नका निम्ति यो मत स्वीकार गरेका होलान् भन्ने अनुमान छ। किनकि देश, कालअनुसार आफ्नो पक्षलाई सिद्ध गर्न धेरैजसो स्वार्थी विद्वान् आफ्नो आत्माको ज्ञान–विरुद्ध पनि कामकुरा गर्दछन्। अनि उनी यी कुराहरूलाई

अर्थात् जीव–ईश्वर एउटै हुन्, जगत् मिथ्या हो भन्ने व्यवहारलाई सच्चा मान्दथे भने उनको कुरा सत्य हुनसक्तैन।

निश्चलदासको पाण्डित्य त यस्तो छ—**'जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्'** उनले यो **'वृत्ति प्रभाकर'** (२।९) मा जीव र ब्रह्मको एकताका लागि अनुमान लेखेका हुन्—'जीव चेतन हुनाले ब्रह्मभन्दा अभिन्न छ। यो कुरा अत्यन्त थोरै समझ भएकाहरूको जस्तै हो। किनकि साधर्म्यले मात्र एक–अर्कासँग एकता हुँदैन, वैधर्म्य भेदक हुन्छ। जस्तै कसैले **'पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्'** जड हुनाले पृथ्वी जलभन्दा अभिन्न हो। जसरी यो वाक्य कहिल्यै सङ्गत हुनसक्तैन, त्यस्तै निश्चलदासजीको अनुमान पनि व्यर्थ हो। किनकि अल्प, अल्पज्ञता र भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म जीवमा ब्रह्मा भन्दा तथा सर्वगत, सर्वज्ञता र निर्भ्रान्तित्त्व आदि वैधर्म्य ब्रह्ममा जीवमा भन्दा विरुद्ध छन्, यसकारण ब्रह्म र जीव भिन्नाभिन्नै हुन्। जस्तै गन्धवत्त्व कठिनत्त्व आदि पृथ्वीका धर्म, रसवत्त्व, द्रवत्त्व आदि जलका धर्मभन्दा विरुद्ध हुनाले पृथ्वी र जल एउटै होइनन् त्यस्तै जीव र ब्रह्ममा विरुद्ध धर्म हुनाले जीव र ब्रह्म एउटै कहिल्यै न थिए, न छन् र न हुनेछन्। यतिबाटै निश्चलदास आदिमा कति पाण्डित्य थियो भन्ने कुरा बुझ्नुपर्दछ। अनि योगवासिष्ठ बनाउने कोही आधुनिक वेदान्ती थियो। त्यो वाल्मीकि, वसिष्ठ र रामचन्द्रले बनाएको, भनेको वा सुनेको होइन। किनकि ती सबै त वेदानुयायी थिए, यसकारण उनीहरू वेदको विरुद्ध बनाउन, भन्न वा सुन्न सक्तैन थे।

प्रश्न—व्यासजीले बनाएका शारीरकसूत्रमा पनि जीव ब्रह्मको एकता देखिन्छ। हेर—**सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ १ ॥ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ २ ॥ चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमिः॥ ३ ॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः॥ ४ ॥ अत एव चानन्याधिपतिः॥ ५ ॥**

—वेदान्तदर्शन ४।४।१, ५, ६, ७, ९

जीव पहिले ब्रह्मस्वरूप हुनाले ऊ आफ्नो स्वरूपलाई प्राप्त गरेर प्रकट हुन्छ, किनकि स्वशब्दबाट आफ्नो ब्रह्मस्वरूपको ग्रहण हुन्छ॥ १ ॥ **'अयमात्मा अपहतपाप्मा'** (छां०उ० ८।७।१) इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्तिसम्म हेतुद्वारा जीव ब्रह्मस्वरूपबाट स्थित हुन्छ भन्ने जैमिनी आचार्यको विचार छ॥ २ ॥ अनि औडुलौमि आचार्यको विचारमा तदात्मकस्वरूप निरूपण आदि बृहदारण्यकका हेतुरूप वचनबाट

चैतन्यमात्र स्वरूपद्वारा जीव मुक्तिमा स्थित रहन्छ ॥ ३ ॥ व्यासजी यिनै पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुहरूद्वारा जीवको ब्रह्मस्वरूप हुनमा विरोध छैन भन्नुहुन्छ ॥ ४ ॥ योगी ऐश्वर्यसहित आफ्नो ब्रह्मस्वरूपमा प्राप्त भएर अरू कुनै अधिपतिरहित अर्थात् आफैं आफ्नो र अरू सबैको अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूपबाट मुक्तिमा स्थित रहन्छ ॥ ५ ॥

उत्तर—यी सूत्रहरूको अर्थ यसरी होइन। यिनको यथार्थ अर्थ त यो हो। सुन—

जीव आफ्नो स्वकीय शुद्धस्वरूपलाई प्राप्त भएर सबै मलदेखि रहित भएर पवित्र नभएसम्म योगद्वारा ऐश्वर्य प्राप्त गरेर आफ्नो अन्तर्यामी ब्रह्मलाई प्राप्त भएर आनन्दमा स्थित हुनसक्तैन ॥ १ ॥ यसैगरी पापादि–रहित ऐश्वर्ययुक्त भएर योगीले ब्रह्मसँग मुक्तिको आनन्द भोग्नसक्तछ। यस्तो जैमिनी आचार्यको मत हो ॥ २ ॥ जीव अविद्यादि दोषहरूबाट छुटेर शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूपद्वारा स्थिर भएपछि '**तदात्मकत्व**' अर्थात् ब्रह्मस्वरूपसँग सम्बन्ध प्राप्त गर्दछ। यो औडुलौमि आचार्यको मत हो ॥ ३ ॥ जब ब्रह्मसँग ऐश्वर्य र शुद्ध विज्ञान प्राप्त गरेर बाँच्दै जीवन्मुक्त हुन्छ, तब आफ्नो निर्मल पूर्वस्वरूपलाई प्राप्त भएर आनन्दित हुन्छ। यस्तो व्यासमुनिको मत हो ॥ ४ ॥ योगी सत्यसङ्कल्प भएपछि आफैं परमेश्वरलाई प्राप्त भएर मुक्तिसुख प्राप्तगर्दछ। त्यहाँ स्वाधीन स्वतन्त्र रहन्छ। संसारमा एउटा प्रधान र अर्को गौण भएजस्तो मुक्तिमा हुँदैन। तर मुक्तिमा त सबै मुक्त जीव एकनासै रहन्छन् ॥ ५ ॥ यसो नभएको भए—

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ १ ॥
भेदव्यपदेशाच्च ॥ २ ॥ —वेदान्तदर्शन १।१।१६, १७
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ ३ ॥
—वेदान्तदर्शन १।२।२२

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शस्ति ॥ ४ ॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ ५ ॥
भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ ६ ॥ —वेदान्तदर्शन १।१।१९–२१
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ ७ ॥
अनुपपत्तेस्तु न शरीरः ॥ ८ ॥
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ ९ ॥
शरीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ १० ॥
—वेदान्तदर्शन १।२।११, ३, १८, २०

यी व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र हुन्। ब्रह्म बाहेक जीव सृष्टिकर्त्ता

होइन, किनकि अल्पज्ञ, अल्पसामर्थ्य भएको जीवमा सृष्टिकर्तृत्व घटित हुनसक्तैन। यसबाट जीव ब्रह्म होइन भन्ने बुझिन्छ ॥ १ ॥ '**रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति**' यो उपनिषद्को (तैत्ति०उप०ब्रह्म०व० ७) वाक्य हो। जीव र ब्रह्म यी दुबैको भेद प्रतिपादन गरिएको हुनाले यी दुबै भिन्न हुन्। यसो नभएको भए 'रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्ममा प्राप्त भएर जीव आनन्दस्वरूप हुन्छ' भन्ने कुरामा प्राप्ति विषय ब्रह्म र प्राप्त हुने जीवको निरूपण घटित हुनसक्तैन। यसकारण जीव र ब्रह्म एउटै होइनन् ॥ २ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्यान्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥
—मुण्डकोपनिषद् २।१।२

दिव्य, शुद्ध, मूर्तिरहित, सबैमा पूर्ण, भित्र–बाहिर निरन्तर व्याप्त, अज जन्म–मरण–शरीरधारणादिरहित, श्वास–प्रश्वास, शरीर र मनको सम्बन्धरहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्माका विशेषण हुन्, जीव अक्षर नाशरहित प्रकृतिभन्दा पर अर्थात् सूक्ष्म र त्यसभन्दा पनि परमेश्वर पर अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म छ। प्रकृति र जीवभन्दा ब्रह्मको भिन्नता प्रतिपादनरूप हेतुहरूका कारण ब्रह्म प्रकृति र जीवभन्दा भिन्नै छ ॥ ३ ॥ यसै सर्वव्यापक ब्रह्ममा जीवको योग वा जीवमा ब्रह्मको योग प्रतिपादन गर्नाले जीव र ब्रह्म भिन्नै छन्, किनकि भिन्न पदार्थकै योग हुनेगर्दछ ॥ ४ ॥ यस ब्रह्मका अन्तर्यामी आदि धर्म बताइएका छन्, जीवभित्र व्यापक हुनाले व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मभन्दा भिन्नै छ, किनकि व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध पनि भेदमा नै संघटित हुन्छ ॥ ५ ॥ परमात्मा जीवभन्दा भिन्नस्वरूप भएजस्तै इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथ्वी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्य आदि दिव्यगुणका योगबाट देवता भनिने विद्वान्हरूभन्दा पनि परमात्मा भिन्नै छ ॥ ६ ॥ '**गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके**' (कठोप० ३।२) इत्यादि उपनिषद्का वाक्यबाट जीव र परमात्मा भिन्नै छन् भन्ने बुझिन्छ। त्यस्तै उपनिषद्हरूमा धेरै ठाउँमा देखाइएको छ ॥ ७ ॥ '**शरीरे भवः शरीरः**' शरीरधारी जीव ब्रह्म होइन। किनकि ब्रह्मका गुण–कर्म–स्वभाव जीवमा घटित हुँदैनन् ॥ ८ ॥ अधिदैव=सबै दिव्य मन आदि र इन्द्रिय आदि पदार्थहरूमा, अधिभूत=पृथ्वी आदि भूत, अध्यात्म=सबै जीवमा परमात्मा अन्तर्यामी रूपमा स्थित छ। किनकि त्यसै परमात्माका व्यापकत्त्व आदि धर्मको व्याख्या सर्वत्र उपनिषद्हरूमा छ ॥ ९ ॥ शरीरधारी जीव ब्रह्म होइन किनकि ब्रह्मभन्दा जीवको भेद

स्वरूपबाट सिद्ध छ॥ १०॥

इत्यादि शारीरक सूत्रहरूबाट पनि स्वरूपबाटै ब्रह्म र जीवको भेद सिद्ध छ। त्यस्तै वेदान्तीहरूको **'उपक्रम'** र **'उपसंहार'** पनि घटित हुनसक्तैन। किनकि वेदान्तीहरू **'उपक्रम'** अर्थात् आरम्भ ब्रह्मबाट र **'उपसंहार'** अर्थात् प्रलय पनि ब्रह्ममा नै हुन्छ भन्ने मान्दछन्। अरू कुनै वस्तुलाई उनीहरू नमान्ने हुनाले उत्पत्ति र प्रलय पनि ब्रह्मको धर्म हुन्छ र वेदादिशास्त्रमा भने उत्पत्ति, विनाशरहित ब्रह्मको प्रतिपादन गरिएको छ। नवीन वेदान्तीहरूको यो विचार वेदादि सत्यशास्त्रहरूसँग बाझ्दछ। किनकि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध, सनातन, निभ्रान्तित्व आदि विशेषणयुक्त ब्रह्ममा विकार, उत्पत्ति र अज्ञान आदि कुनै प्रकारले पनि संभव हुनसक्तैन तथा उपसंहार=प्रलय भएपछि पनि ब्रह्म, कारणात्मक जड़ र जीव रहिनैरहन्छन्। यसकारण उपक्रम र उपसंहार पनि यी वेदान्तीहरूको झूटो कल्पना हो। यस्ता शास्त्र र प्रत्यक्ष आदि प्रमाणविरुद्ध धेरैजसो अशुद्ध कुरा छन्।

यसपछि केही जैनी र केही शङ्कराचार्यका अनुयायीहरूका उपदेशका संस्कार आर्यावर्त्तमा फैलिएका थिए र परस्पर खण्डन-मण्डन पनि चल्दथ्यो। शङ्कराचार्यको तीनसय वर्षपछि उज्जैन नगरीमा राजा विक्रमादित्य केही प्रतापी भएका थिए। उनले सबै राजाहरूका बीचमा चलेका झगडा मेटाएर शान्ति स्थापना गरे। त्यसपछि काव्य आदि शास्त्र र अरू शास्त्रमा पनि केही विद्वान् राजा भर्तृहरि भए। उनले वैराग्यवान् भएर राज्यलाई छोडिदिए। विक्रमादित्यको पाँचसय वर्ष पछि राजा भोज भए। उनले केही व्याकरण र काव्यालंकार आदिको यति प्रचार गरे कि उनको राज्यमा कालिदास जस्ता गोठाला पनि रघुवंश जस्तो काव्यको रचयिता भए। राजा भोजकहाँ श्लोक बनाएर लैजाने जोसुकैलाई पनि धेरैजसो धन दिइन्थ्यो र सम्मान गरिन्थ्यो। राजा भोज पछि राजा र श्रीमान्हरूले पढ्न नै छोडिदिए।

यद्यपि शङ्कराचार्य अघि वाममार्गीहरू पछि शैव आदि सम्प्रदायका मतवादी पनि भएका थिए तर तिनको शक्ति धेरै थिएन। महाराजा विक्रमादित्यदेखि शैवहरूको बल बढ्न थाल्यो। वाममार्गीहरूमा 'दश महाविद्या' आदि शाखा भएजस्तै शैवमा **'पाशुपत'** आदि धेरै शाखा भएका थिए। केही व्यक्तिले शङ्कराचार्यलाई शिवको अवतार बताए। उनका अनुयायी संन्यासी पनि शैवमतमा लागे र वाममार्गीहरूलाई पनि मिलाउँदै गए। वाममार्गीहरू शिवजीकी पत्नी देवीका उपासक र

शैव महादेवका उपासक भए। यी दुवै हालसम्म पनि रुद्राक्ष र भस्म धारण गर्दछन्। तर शैव वाममार्गी जति वेद विरोधी छैनन्।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम्॥ १॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्,
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति तकं स स्वयं नीलकण्ठः॥ २॥

इत्यादि धेरै किसिमका श्लोक यिनीहरूले बनाएर भन्नथाले— मस्तकमा भस्म र कण्ठमा रुद्राक्ष नभएकोलाई धिक्कार छ। **'तं त्यजेदन्त्यजं यथा'** त्यसलाई चाण्डालजस्तै त्याग्नुपर्दछ॥ १॥ कण्ठमा ३२, टाउकोमा ४०, दुबै कानमा ६-६, दुबै हातमा १२-१२, दुबै भुजामा १४-१४, टुप्पीमा एक र हृदयमा १०८ रुद्राक्ष धारण गर्ने व्यक्ति साक्षात् महादेव जस्तै हो॥ २॥ यस्तै शाक्त पनि मान्दछन्।

पछि यो वाममार्गी र शैवले सम्मति गरेर भग-लिङ्गको स्थापना गरे र त्यसलाई जलाधारी र लिङ्ग भनिन्छ र त्यसको पूजा गर्नथाले। ती लाज नभएकाहरूलाई 'यस्तो लाछीपनको काम हामी किन गर्दैछौं' भन्ने लाज पनि भएन। कुनै कवि ले **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** भनेको छ अर्थात् स्वार्थीहरू आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्नमा दुष्ट कार्यहरूलाई पनि श्रेष्ठ मान्दछन् र दोष देख्दैनन्। त्यसै ढुङ्गा आदि मूर्ति र भग-लिङ्गको पूजाबाट समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि सिद्धिहरू प्राप्त हुने कुरा मान्न थाले। राजा भोजपछि जैनीहरूले आफ्ना मन्दिरमा मूर्तिस्थापना र दर्शन स्पर्शनका लागि आउन-जान थालेपछि यी पोपका चेला पनि जैन मन्दिरमा आउन जान थाले र उता पश्चिममा केही अरू मतावलम्बी र यवन=मुसलमान पनि आर्य्यावर्त्तमा आउन थाले। त्यसो हुँदा पोपहरूले यो श्लोक बनाए—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

जतिसुकै दुःख आइपरे पनि र प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु नै आइपरे पनि यावनी=म्लेच्छभाषा मुखबाट बोल्नुहुँदैन र उन्मत्त हात्तीले आफूलाई मार्न पछ्याइरहेको तथा जैन मन्दिरमा जानाले प्राण बच्ने भएतापनि जैन मन्दिरमा जानु हुँदैन। जैनमन्दिरमा प्रवेश गरेर बाँच्नुभन्दा हात्तीको अगाडि परेर मर्नु बेस हुन्छ। आफ्ना चेलाहरूलाई यस्ता-यस्ता उपदेश गर्नथाले। तीसँग कसैले 'तिम्रो मतबारे कुनै मान्य ग्रन्थको

प्रमाण छ ?' भनी प्रमाण सोद्धा 'छ' भन्ने उत्तर दिन्थे। 'देखाऊ' भन्दा मार्कण्डेय पुराण आदिका वाक्य पढेर सुनाउँदै दुर्गापाठमा देवीको वर्णन बताउँथे।

राजा भोजको राज्यमा कसैले व्यासजीको नामबाट मार्कण्डेय पुराण र शिवपुराण बनाएर चलाएका थिए। राजा भोजले यस कुराको जानकारी पाएपछि उनले ती पण्डितहरूका हात काटिदिने जस्ता दण्ड दिएर तीसँग 'कुनै काव्य आदि ग्रन्थ बनाएमा ऋषिमुनिका नामबाट नबनाएर आफ्नै नामबाट बनाउनुपर्दछ' भनेका थिए। यो कुरा ग्वालियर राज्यको भिंडनामक नगरको तिवारी ब्राह्मणको घरमा उपलब्ध, राजा भोजद्वारा लिखित 'संजीवनी' नामक इतिहासमा लेखिएको छ। यसलाई लखुनाका राव साहेब र उनका अनुयायी रामदयाल चौबेले आफ्नै आँखाले देखेका थिए। त्यसमा 'व्यासजीले चारहजार चारसय र उनका शिष्यहरूले पाँचहजार छसय श्लोक भएको अर्थात् जम्मा दसहजार श्लोक भएको महाभारत लेखेका थिए' भन्ने कुरा स्पष्ट लेखिएको छ। महाराजा भोज भन्दछन्—''त्यो महाभारत महाराज विक्रमादित्यको समयमा बीसहजार, मेरा (भोजका) पिताको समयमा पच्चीसहजार र मेरो आधा उमेर सम्ममा तीस हजार श्लोकयुक्त महाभारत उपलब्ध हुन्छ। यसैगरी बढ्दै गयो भने महाभारतको पुस्तक एउटा ऊँटलाई भारी पुग्ने हुनेछ र ऋषिमुनिका नामबाट पुराण आदि ग्रन्थ बनाइएमा आर्य्यावर्त्तका मानिस भ्रमजालमा परेर वैदिक धर्मविहीन भएर भ्रष्ट हुनेछन्।'' यसबाट राजाभोजमा अलि–अलि वेदका संस्कार थिए भन्ने बुझिन्छ। यिनको भोज प्रबन्धमा लेखिएको छ—

घट्यै कया क्रोशदसकैमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलंविना मनुष्येण चलत्यजस्रम्॥

राजा भोजको राज्यमा र छेउछाउमा यस्ता यस्ता शिल्पी थिए कि तिनीहरूले एउटा घोडाको जस्तो आकृति भएको यन्त्रकलायुक्त यान बनाएका थिए। त्यो यान एक कच्ची घडीमा एघार कोस र एक घण्टामा साढे सत्ताईस कोस हिंड्थ्यो। त्यो भूमि र अन्तरिक्षमा पनि चल्थ्यो। अर्को एउटा 'मानिसले नचलाई कलायन्त्रको बलले नित्य चल्ने र प्रशस्त हावा दिने' पंखा बनाएका थिए। यी दुबै पदार्थ अहिलेसम्म भएका भए यूरोपियन यत्ति घमण्डी हुने थिएनन्।

पोपहरूले आफ्ना चेलालाई जैनीहरूको सम्पर्कबाट रोक्न खोजेतापनि तिनलाई जैन मन्दिर जानबाट रोक्न सकेनन् र मानिस

जैनीका कथामा पनि जान थाले। जैनीका पोप यी पुराणी पोपका चेलालाई भड्काउन थाले। यो देखेर पुराणीहरूले 'यसको कुनै उपाय नगरिएमा आफ्ना चेला सबै जैनी भैजानेछन्' भन्ने विचार गरेर पोपहरूले सम्मति गरेर जैनीहरूका जस्तै आफ्ना पनि अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति र कथाका पुस्तक बनाउने निर्णय गरे। यिनीहरूले जैनीका चौबीस तीर्थंकर जस्तै चौबीस अवतार, मन्दिर र मूर्त्तिहरू बनाए। जसरी जैनीका 'आदि' र 'उत्तर' पुराण आदि छन्, त्यस्तै यिनीहरूले अठार पुराण बनाउन थाले।

राजा भोजको डेढसय वर्षपछि वैष्णवमत आरम्भ भयो। एउटा शठकोप नामक कंजरवर्णमा जन्मेको व्यक्तिबाट यो मत केही चल्यो। त्यस पछि पोडेवंशमा जन्मको मुनिवाहन र तेस्रो यवनकुलमा जन्मेको यावनाचार्य यस मतलाई चलाउने भयो। त्यसपछि चौथो रामानुजाचार्य ब्राह्मणकुलमा जन्मेको थियो, उसले आफ्नो मत फिजायो। शैवले शिवपुराण आदि, शाक्तले देवीभागवत आदि, वैष्णवले विष्णुपुराण आदि बनाए। आफ्ना नामबाट बनाइएमा कसैले प्रमाण मान्नेछैन भन्ने विचारले ती ग्रन्थमा आफ्ना नाम नराखेर व्यास आदि ऋषि–मुनिहरूका नाम राखेर पुराण बनाइए। यी ग्रन्थहरूको नाम त पुराण नभएर नवीन हुनुपर्ने थियो तर कुनै दरिद्रले आफ्नो छोराको नाम महाराजाधिराज र आधुनिक वस्तुको नाम सनातन राख्दा कुनै आश्चर्य हुँदैन, त्यस्तै पुराणको पनि कुरा हो। परस्परमा यिनका जस्ता झगडा छन् पुराणहरूमा पनि यस्तै झगडाका कुरा छन्।

हेर, देवीभागवतमा 'श्री' नाम गरेकी एउटी देवी स्त्री श्रीपुरकी स्वामिनी बताइएकी छ। उसैले सब जगत्‌लाई र ब्रह्मा, विष्णु, महादेवलाई पनि उसैले बनाएको भनिएको छ। उसको आफ्नो इच्छा हुँदा उसले आफ्नो हात माड्दा उसको हातमा एउटा ठेलो उठ्यो। त्यसबाट ब्रह्माको उत्पत्ति भयो। त्यस देवीले भनी—'तिमी मसँग विवाह गर।' ब्रह्माले 'तिमी मेरी आमा हौ, म तिमीसँग विवाह गर्नसक्तिन' भन्यो, यो सुनेर माताले क्रोधित भएर त्यस केटोलाई भस्म गरिदिई। अनि फेरि त्यसैगरी हात माडेर अर्को केटो उत्पन्न गरी। उसको नाम विष्णु राखी। ऊसँग पनि त्यसै भन्दा उसले पनि नमान्नाले उसलाई पनि भस्म गरेर फेरि त्यसैगरी तेस्रो केटो जन्माएर उसको नाम महादेव राखेर 'तिमी मसँग विवाह गर' भनी। महादेवले 'म तिमीसँग विवाह गर्नसक्तिँन, तिमी अर्कै स्त्री–शरीर धारण गर' भन्यो। देवीले त्यसै गरी। तब महादेवले 'यो दुई ठाउँमा खरानीको थुप्रो जस्तो के हो ?' भनी सोद्धा देवीले 'यी

दुबै तेरा भाइ हुन्, यिनीहरूले मेरो आज्ञा नमान्नाले मैले यिनीहरूलाई भस्म गरिदिएँ' भनी। महादेवले 'म एक्लै के गर्नेछु र? यी दुबैलाई जिउँदो पारेर दुईवटी स्त्री अरू उत्पन्न गर अनि तिनैको विवाह तिनैसँग हुनेछ' भन्यो। देवीले यस्तै गरी। अनि तिनैको विवाह तिनैसँग भयो। अरे! आमासँग विवाह गरेन, तर बहिनीसँग गर्यो। के यसलाई उचित भन्न मिल्ला? पछि इन्द्र आदिलाई उत्पन्न गरेर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र र इन्द्रलाई आफ्नो डोली उठाउने डोले बनाई, इत्यादि मनमाना ठूल्ठूला गफ लेखिएका छन्।

तिनीहरूसँग कसैले 'त्यस देवीको शरीर र त्यस श्रीपुरलाई बनाउने र त्यस देवीका आमा-बाबु को थिए? भनी सोध्नुपर्दछ। तिनले देवी अनादि हो भन्छन् भने संयोगजन्य वस्तु अनादि कहिल्यै हुनसक्तैन। आमा-छोराको परस्पर विवाह गर्नमा डर थियो भने दाजु-बहिनी वा दिदी-भाइको परस्पर विवाह कुनचाहिं राम्रो काम हो त? जसरी यस देवी भागवतमा महादेव, विष्णु र ब्रह्मा आदिको क्षुद्रता र देवीको महत्ता लेखिएको छ त्यस्तै शिवपुराणमा देवी आदिको क्षुद्रता लेखिएको छ। अर्थात् त्यहाँ महादेव सबैको ईश्वर र अरू सबै महादेवका दास बताइएका छन्। रुद्राक्ष अर्थात् एउटा वृक्षविशेषको फलका गेडा र खरानी धारण गर्नाले मुक्ति हुनेभए खरानीमा पल्टिरहने गधा आदि पशु र घुंघुची आदि धारण गर्ने भील, कंजर आदि पनि मुक्त हुनुपर्दछ र सुँगुर, कुकुर, गधा आदि खरानीमै पल्टिने पशु किन मुक्त हुँदैनन्?

प्रश्न—कालाग्निरुद्रोपनिषद्मा भस्म लगाउने विधान छ। त्यो के झूटो हो? र **त्र्यायुषं जमदग्नेः।** (यजुर्वेद ३।६२) इत्यादि वेदमन्त्रमा पनि भस्म धारणको विधान र पुराणमा रुद्रको आँखाको अश्रुपातबाट भएको वृक्षको नाम 'रुद्राक्ष' छ। यसैकारण त्यसलाई धारण गर्नमा पुण्य हुन्छ भन्ने लेखिएको छ। एउटा मात्र रुद्राक्ष धारण गरेपनि सबै पाप देखि छुटेर स्वर्ग गइन्छ, यमराज र नरकको डर रहँदैन।

उत्तर—कालाग्निरुद्रोपनिषद् कुनै खरानिया अर्थात् खरानी घस्ने मानिसले बनाएको हो। किनकि त्यसमा '**यास्या प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः**' इत्यादि अनर्थक कुरा छन्। प्रतिदिन हातबाट बनाएको रेखा भूलोक वा त्यसको वाचक कसरी हुनसक्तछ? अनि **त्र्यायुषं जमदग्नेः।** इत्यादि मन्त्र भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारणका वाचक होइनन्। "**चक्षुर्वै जमदग्निः**" (शतपथ ८।२१।३) हे परमेश्वर! मेरा आँखाको ज्योति (त्र्यायुषम्) तीनगुणा अर्थात् तीनसय वर्षसम्म रहोस् र म दृष्टि नाश

नहुने किसिमका धर्मका काम गरूँ।

आँखाबाट निस्केको आँसुबाट पनि रूख उत्पन्न हुनसक्तछ? यो कतिसम्म मूर्खताको कुरा हो। परमेश्वरको सृष्टिक्रमलाई के कसैले उल्टाउन सक्तछ? जुन वृक्षको जस्तो बिउ परमेश्वरले बनाएको छ, त्यसैबाट त्यो वृक्ष उत्पन्न हुन्छ, अरू केहीबाट पनि हुनसक्तैन। यसकारण रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घाँस, चन्दन आदिलाई कण्ठ आदिमा धारण गर्ने काम जङ्गली पशुहरूको जस्तै काम मानिसले गरेका हुन्। यस्ता वाममार्गी र शैव धेरै मिथ्याचारी, विरोधी र कर्तव्यकर्मका त्यागी हुन्छन्। तिनमा कोही श्रेष्ठ पुरुष छ भने उसले यी कुरामाथि विश्वास नगरेर सत्कर्म गर्दछ। रुद्राक्ष धारण गर्नाले यमराजका दूत भयभीत हुन्छन् भने पुलिसका सिपाही पनि डराउँछन् होला? रुद्राक्ष धारण गर्नेहरूदेखि कुकुर, सिंह, सर्प, बिच्छी, झिंगा र लामखुट्टे त डराउँदैनन् भने न्यायाधीशहरू किन डराउँछन् र?

प्रश्न—वाममार्गी र शैव ठीक नभए पनि वैष्णव त ठीक छन्, होइनन् र?

उत्तर—यी पनि वेद विरोधी हुनाले तीभन्दा पनि बढी गलत हुन्।

प्रश्न—'**नमस्ते रुद्र मन्यवे**'। —यजु० १।१६॥ '**शिवाय च शिवतराय च**' —यजु० १६।४१॥ '**वैष्णवमसि**'—यजु० ५।२१॥ '**वामनाय च**' —यजु० १६।३०॥ '**गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**' —यजु० २३।१९॥ '**भगवती भूयाः**' —अथर्व० ६।१०।२०॥ '**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। —यजु० १३।४६॥ इत्यादि वेद प्रमाणहरूबाट शैवादिमत सिद्ध हुन्छन् भने खण्डन किन गर्दछौ?

उत्तर—यी वाक्यहरूबाट शैव आदि सम्प्रदाय सिद्ध हुँदैनन्। किनकि 'रुद्र' परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि, आदिको नाम हो। क्रोधगर्ने रुद्र अर्थात् दुष्टहरूलाई रुवाउने परमात्मालाई नमस्कार गर्नु, प्राण र जठराग्निलाई अन्न दिनु, 'नम इति अन्ननाम' निघण्टु २।७॥ मङ्गलकारी, सब संसारको अत्यन्त कल्याणकारी त्यस परमात्मालाई नमस्कार गर्नुपर्दछ। '**शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः**'। '**विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः**'। '**गणपतेः सकलजगत्स्वामि-नोऽयं सेवको गाणपतः।**' '**भगवत्या वाण्या अयं सेवको भागवतः**'। '**सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः**' यो सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य आदि परमेश्वरका र भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणीको नाम हो। कुरा नबुझिकनै यसमा यस्तो झगडा

मच्चाएका हुन्। जस्तै—

एउटा कुनै वैरागीका दुईवटा चेला थिए। ती दिनहुँ गुरुका खुट्टा मिच्ने गर्दथे। एउटाले दाहिने खुट्टा र दोस्रोले देब्रे खुट्टाको सेवा गर्ने भनी भाग लगाएका थिए। एकदिन एउटा चेलो कतै बजारतिर गएको थियो र अर्काले भने आफ्नो भागको खुट्टाको सेवा गरिरहेको थियो। यत्तिकैमा गुरुले कोल्टोफेर्दा उसले सेवा गरिरहेको खुट्टामाथि अर्को गुरुभाइले सेवा गर्नुपर्ने खुट्टो पर्यो। यो देखेर त्यसले त्यस माथिल्लो खुट्टामा लौराले हान्यो। अरे दुष्ट, तैंले यो के गरेको ? भनी गुरु कराए। चेलाले 'मैले सेवा गर्नुपर्ने खुट्टामाथि यो खुट्टो किन चढेको त ?' भन्यो। यत्तिकैमा बजारतिर गएको अर्को चेलो आइपुग्यो। ऊ पनि आफ्नो भागको खुट्टाको सेवा गर्नथाल्यो। यसो हेर्दा त्यो खुट्टो त सुन्निएको रहेछ। उसले भन्यो—गुरुजी, यो मैले सेवा गर्ने खुट्टामा के भयो ? गुरुले सबै कुरा सुनाइदिए। त्यो मूर्ख पनि केही बोलेन, ऊ चुपचाप उठेर लौरो उठाएर बलपूर्वक गुरुको अर्को खुट्टामा हान्यो। गुरु चिच्याएर पुकार्न थाले। दुबै चेला भने लौरा लिएर गुरुका खुट्टामा हान्न थाले। हो-हल्ला सुनेर त्यहाँ मानिस जम्मा भए र 'साधुजी के भयो ?' भनी सोधे। तीमध्ये कुनै बुद्धिमान् व्यक्तिले साधुलाई छुटाएर ती मूर्ख चेलाहरूलाई 'हेर, यी दुबै गोडा तिम्रा गुरुका हुन्। यी दुबैको सेवा गर्नाले एउटै गुरुलाई सुख र दुःख दिनाले पनि नै गुरुलाई दुःख हुन्छ' भन्ने उपदेश दिए।

जसरी एउटा गुरुको सेवामा यी चेलाहरूले लीला गरे यसैगरी एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्माका विष्णु, रुद्र आदि अनेक नाम छन्। पहिलो समुल्लासमा स्पष्ट गरिएअनुसार यी नामहरूको सत्यार्थ नजानेर शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदायीहरू परस्पर एक अर्काका नामको निन्दा गर्दछन्। यी मन्दमति व्यक्ति यी सब विष्णु, रूद्र, शिव आदि नाम एउटै अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर अनेक गुण, कर्म, स्वभावयुक्त हुनाले उसैका वाचक हुन् भन्ने कुरा अलिकति पनि आफ्नो बुद्धिलाई विस्तृत गरेर सोच्दैनन्। के यस्ता व्यक्तिहरूदेखि ईश्वर नरिसाउँदो हो त ? अब चक्र अङ्कित वैष्णवहरूको मायाको विचार गरौं—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ १॥

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। —ऋग्वेद ९।८।३।१ इति श्रुतेः

अर्थात् **(तापः)** शङ्ख, चक्र, गदा र पद्मको चिह्नलाई आगोमा

तपाएर पाखुरामा डामेर दूधको भाँडोमा चिस्याउँछन्, कोही त्यस दूधलाई पिउने पनि गर्दछ। अब सोच, प्रत्यक्षरूपमा मानिसको मासुको स्वाद पनि त्यसमा आउँछ होला। यस्ता-यस्ता कामबाट परमेश्वर प्राप्तिको आशा गर्दछन् र शङ्ख, चक्र आदिले शरीरलाई नतपाइ त्यो शरीर **(आमः)** कच्चा हुनाले त्यसबाट जीव परमेश्वरलाई प्राप्त हुँदैन भन्दछन्। अनि 'जसरी राजकीय चिह्न धारण गर्नाले त्यस्तो चिह्न देखेर राजपुरुष सम्झेर सबैजना त्यस व्यक्तिदेखि डराउँछन्, त्यस्तै विष्णुका शङ्ख, चक्र आदि हतियारका चिह्न देखेर यमराज र उसका गण यी चिह्न धारण गर्नेदेखि डराउँछन्' भन्दछन्। अरू भन्छन—

दोहा— **वाना बड़ा दयाल का तिलक छाप और माल।**
यम डरपै कालू कहे, भय माने भूपाल॥

अर्थात् तिलक, छाप, माला आदि भगवानको पहिरन धारण गर्नु ठूलो कुरा हो, किनकि यसबाट यमराज र राजा पनि डराउँदछन्। **(पुण्ड्र)** मस्तकमा त्रिशूल जस्तै चित्र बनाउनु, **(नाम)** नारायणदास, विष्णुदास आदि अन्तमा 'दास' शब्द रहेको नाम राख्नु, **(माला)** कमल गट्टाको माला धारण गर्नु र पाँचौं **(मन्त्र)** जस्तै—यिनीहरूले साधारण मानिसका लागि **'ओं नमो नारायणाय॥ १॥'** यो मन्त्र बनाएका छन् र धनाढ्य तथा माननीयहरूका लागि भने— **'श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये॥ २॥, श्रीमते नारायणाय नमः॥ ३॥ श्रीमते रामानुजाय नमः॥ ४॥'** इत्यादि मन्त्र बनाएका छन्। हेर, यो पनि एउटा पसलै रहेछ! जस्तो मुख त्यस्तै तिलक। यी पाँच संस्कारलाई चक्राङ्कितहरू मुक्तिको कारण मान्दछन्। यी मन्त्रका अर्थ—म नारायणलाई नमस्कार गर्दछु॥ १॥, म लक्ष्मीयुक्त नारायणको चरणारविन्दको शरण पर्दछु॥ २॥, श्रीसहित नारायणलाई नमस्कार गर्दछु अर्थात् शोभायुक्त नारायणलाई मेरो नमस्कार होओस्॥ ३॥ र श्रीयुक्त रामानुजलाई मेरो नमस्कार होओस्॥ ४॥

वाममार्गीहरूले पाँच 'मकार' मानेजस्तै चक्राङ्कितहरू पाँच 'संस्कार' मान्दछन्। यिनीहरू शङ्ख, चक्रले डाम्ने कुरामा निम्नलिखित वेदमन्त्रको प्रमाण बताउँदछन्—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत॥ १॥
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे॥ २॥

—ऋग्वेद मं० ९। सू० ८३। मं० १, २

हे ब्रह्माण्ड र वेदको पालन गर्ने सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमान् प्रभु ! तपाईंले आफ्नो व्याप्तिद्वारा संसारका सबै अवयवहरूलाई व्याप्त गरिरहनु भएको छ। ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्सङ्ग आदि तपश्चर्या नभएको अन्त:करणयुक्त अपरिपक्व आत्मा तपाईंको त्यस व्यापक, पवित्र स्वरूपलाई प्राप्त हुनसक्तैन। अनि पूर्वोक्त तपद्वारा शुद्ध नै यस तपको आचरण गर्दै तपाईंको त्यस शुद्धस्वरूपलाई राम्ररी प्राप्त हुन्छन्॥ १ ॥

प्रकाशस्वरूप परमेश्वरको सृष्टिमा विस्तृत पवित्राचरणरूप तप गर्नेहरू नै परमात्मामा प्राप्त हुन योग्य हुन्छन्॥ २ ॥

अब रामानुजीय आदि यस मन्त्रबाट 'चक्राङ्कित हुने कुरा कसरी सिद्ध गर्दछन् भन्ने कुरा विचार गरौं। ती विद्वान् अथवा अविद्वान् के थिए ? विद्वान् थिए भने यस मन्त्रको यस्तो असम्भावित अर्थ किन गर्थे ? किनकि यस मन्त्रमा 'अतप्तभुजैकदेश:' शब्द नभएर 'अतप्त तनू:' शब्द छ र 'अतप्ततनू:' को अर्थ 'नखशिखाग्रपर्यन्त समुदाय' हो। यस प्रमाणबाट चक्राङ्कितहरू अग्निद्वारा नै तपाउनुपर्ने कुरा स्वीकार्दछन् भने आ–आफ्ना शरीरलाई आगोको भट्टीमा हालेर सब शरीर डढाए पनि यस मन्त्रको अर्थको विरुद्ध हुन्छ, किनकि यस मन्त्रमा सत्यभाषण आदि पवित्र कर्म गर्नु नै तप मानिएको छ।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ॥

—तैत्तिरीय आरण्यक १०।८

इत्यादि '**तप**' भनिन्छ। अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मान्नु, सत्य बोल्नु, सत्य गर्नु, मनलाई अधर्मतर्फ जान नदिनु, बाहिरी इन्द्रियहरूलाई अन्याय आचरणतर्फ लाग्नबाट रोक्नु अर्थात् शरीर इन्द्रिय र मनबाट शुभकर्मकै आचरण गर्नु, वेदादि सत्यशास्त्रहरूलाई पढ्नु–पढाउनु, वेदानुसार आचरण गर्नु आदि उत्तम धर्मयुक्त कामलाई तप भनिन्छ। धातुलाई तपाएर छाला डाम्नुलाई तप भनिदैन।

हेर चक्राङ्कितहरू आफूलाई ठूला वैष्णव मान्दछन्, तर आफ्नो परम्परा र कुकर्मतर्फ ध्यान दिदैनन्। चक्राङ्कितहरूका ग्रन्थ र नाभा डोमले बनाएको भक्तमालमा लेखिएअनुसार यिनीहरूको मूलपुरुष '**शठकोप**' थियो—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी ॥ —दिव्यसूरिचरित २।२२

इत्यादि वाक्य चक्राङ्कितहरूका ग्रन्थमा लेखिएका छन्। शठकोपयोगी सूप='नाङ्लो' बनाएर बेच्दै हिंड्थ्यो अर्थात् कंजरजातिमा

जन्मेको थियो। उसले ब्राह्मणहरूबाट पढ्न–सुन्न चाहँदा ब्राह्मणहरूले उसको तिरस्कार गरेहोलान्। अनि उसैले ब्राह्मणहरूका विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक चक्राङ्कित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमाना कुरा चलाएको होला। उसको चेलो चाण्डालवर्णमा जन्मेको '**मुनिवाहन**' थियो। उसको चेलो यवनकुलमा जन्मेको '**यावनाचार्य**' थियो, कसै–कसैले उसको नाम बदलेर '**यामुनाचार्य**' पनि भन्दछन्। तीपछि '**रामानुज**' ब्राह्मणकुलमा जन्मेर चक्राङ्कित भएको थियो। ऊभन्दा अघि केही भाषाका ग्रन्थ बनाइका थिए। रामानुजले अलि–अलि संस्कृत पढेर संस्कृतमा श्लोकबद्ध ग्रन्थ र शारीरक सूत्र र उपनिषद्हरूमाथि शङ्कराचार्यको टीकाको विरुद्ध टीका तैयार पारेको थियो साथै विभिन्न किसिमले शङ्कराचार्यको निन्दा गरेको थियो।

शङ्कराचार्यको अद्वैतमतअनुसार जीव ब्रह्म एउटै हुन्, अरू कुनै वस्तु वास्तविक होइन, जगत् प्रपञ्च, सबै मिथ्या मायारूप अनित्य हो। यसको विरुद्ध रामानुजका जीव, ब्रह्म र माया तिनै नित्य हुन्। यहाँ शङ्कराचार्यद्वारा ब्रह्मबाहेक जीव र कारणवस्तुलाई नमान्नु उचित होइन भने रामानुजद्वारा यस अंशमा विशिष्टाद्वैत जीव र मायासहित परमेश्वर एउटै हो, यसरी तीनलाई मान्नु र अद्वैत भन्नु सर्वथा व्यर्थ हो र जीवलाई सर्वथा ईश्वरको अधीन, परतन्त्र मान्नु, कण्ठी, तिलक, माला, मूर्त्तिपूजा आदि पाखण्डमत चलाउने आदि गलत कुरा चक्राङ्कितहरूमा छन्। चक्राङ्कित आदि जति वेदविरोधी छन्, शङ्कराचार्यका मतावलम्बी त्यति वेदविरोधी छैनन्।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा कहाँबाट चल्यो ?

उत्तर—जैनीहरूबाट।

प्रश्न—जैनीहरूले कहाँबाट चलाए ?

उत्तर—आफ्नो मूर्खताले।

प्रश्न—जैनीहरू 'शान्त ध्यानावस्थित बसेको मूर्त्तिलाई देखेर आफ्नो जीवको शुभपरिणाम पनि त्यस्तै हुन्छ' भन्छन् नि त ?

उत्तर—जीव चेतन हो भने मूर्त्ति जड हो। के मूर्त्तिजस्तै जीव पनि जड हुने छ ? यो मूर्त्तिपूजा पाखण्डमात्र हो र जैनीहरूले चलाएका हुन्। यसकारण यिनको खण्डन बाह्रौं समुल्लासमा गरिनेछ।

प्रश्न—शाक्त आदिले मूर्तिहरूमा जैनीहरूको अनुकरण गरेका होइनन् किनकि वैष्णव आदिका मूर्त्तिहरू जैनीहरूका मूर्त्ति जस्ता छैनन्।

उत्तर—हो, यो कुरा ठीक हो कि तिनीहरूका मूर्त्ति जैनीहरूका मूर्त्तिजस्तै हुँदैनन्। जैनीहरूका मूर्त्तिजस्तै मूर्त्ति बनाएका भए यिनीहरू जैनमतमै मिल्ने थिए, यसकारण जैनीहरूका भन्दा विरुद्ध किसिमका मूर्त्ति बनाए। किनकि जैनीसँग विरोध गर्नु यिनीहरूको र यिनीहरूसँग विरोध गर्नु जैनीहरूको मुख्य काम थियो। जस्तै जैनीहरूले नाङ्गा, ध्यानावस्थित र विरक्त मानिसका जस्तै मूर्त्ति बनाएका छन् भने तिनका विरुद्ध वैष्णव आदिले निकै शृङ्गारित स्त्रीका साथ रङ्ग–राग–भोग–विषयासक्तियुक्त आकृति भएका उभिएका र बसेका मूर्त्ति बनाएका छन्। जैनीहरू धेरै शंख, घण्टा, घडियाल आदि बाजा बजाउँदैनन् भने यिनीहरू चाहिं ठूलो होहल्ला गर्दछन्। यस्तो लीला गर्नाले वैष्णवादि सम्प्रदायका पोपका चेला जैनीहरूका जालबाट बचेर यिनै पोपका लीलामा आएर फँसे र व्यास आदि महर्षिहरूका नामबाट धेरैजसो मनमाना असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाए। तिनको नाम 'पुराण' राखेर कथा पनि सुनाउँन थाले। अनि पछि 'ढुङ्गाका मूर्त्तिहरू बनाएर गुपचुप कतै पहाड वा जङ्गल आदिमा राखेर आउने वा भूमिमा गाड्नेजस्ता विचित्र माया रच्न थाले। त्यसपछि आफ्ना चेलाहरूमा 'मलाई राति सपनामा महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण र भैरव, हनुमान आदिले 'हामी फलानो–फलानो ठाउँमा छौं, हामीलाई त्यहाँबाट ल्याएर मन्दिरमा स्थापित गरेर तिमी नै हाम्रो पुजारी भएमा मनले चाहेको फल दिनेछौं' भनेको छ' भनी प्रचार गरे।

धन भैकनका अन्धा व्यक्तिहरूले पोपका लीला सुनेर ती सबैलाई सत्य मानेर ती पोपसँग 'त्यो मूर्त्ति कहाँ छ?' भनी सोध्दा पोपले भने, 'फलानो पहाड वा जङ्गलमा छ, हामीसँग हिंड, देखाइदिन्छौं'। अनि ती बुद्धिका अन्धाले त्यस धूर्त पोपसँग गएर त्यहाँ पुगेर हेरे। अनि त ती आश्चर्यचकित भएर त्यस पोपका गोडामा परेर तिनले 'तपाईंमाथि यस देवता को ठूलो कृपा छ, अब तपाईं यस मूर्त्तिलाई लिइहिंड्नुहोस्, हामी मन्दिर बनाइदिनेछौं, त्यसमा यस देवताको स्थापना गरेर तपाईंले नै पूजा गर्नुहुनेछ र हामी पनि यस प्रतापी देवताको दर्शन–स्पर्शन गरेर मनोवाञ्छित फल पाउँनेछौं' भने। यसैगरी एउटाले लीला रचेपछि त्यसैलाई देखेर सबै पोपहरूले आफ्नो जीविका चलाउन छल–कपटद्वारा मूर्त्तिहरू स्थापित गरे।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार हुनाले ध्यानमा आउन नसक्ने हुँदा मूर्त्ति अवश्य हुनैपर्ने हो। केही नगरेपनि कसैले मूर्त्तिअगाडि पुगेर हात

जोरेर परमेश्वरलाई स्मरण गर्दछन् र नाम लिन्छन् भने यसमा के हानि छ त?

उत्तर—परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक हुनाले उसको मूर्त्ति बन्नैसक्तैन। अनि मूर्त्तिको दर्शन गर्नाले मात्र परमेश्वरको स्मरण हुने भए, परमेश्वरले बनाएका पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु र वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जुन पदार्थमा ईश्वरले अद्‌भुत रचना गरेकोछ, परमेश्वरले बनाएका पृथ्वी, पहाड आदि महामूर्त्तिहरू, जुन पहाड आदिबाट मानिस मूर्त्तिहरू बनाउँदछन्, तिनैलाई देखेर के परमेश्वरको स्मरण हुनसक्तैन? मूर्त्तिको दर्शनबाट परमेश्वरको दर्शन हुन्छ भन्ने तिम्रो कुरा सर्वथा झूटो हो। किन कि यसो भएमा त्यो मूर्त्ति अगाडि नहुँदा परमेश्वरको स्मरण पनि नहुने हुनाले मानिस एकान्त अवसर पाएर चोरी–जारी आदि गर्नमा प्रवृत्त पनि हुनसक्तछ। त्यस्तो अवस्थामा मानिसले 'यतिखेर मलाई देख्ने कोही छैन' भन्ने कुरा जान्ने हुनाले उसले अनर्थ नगरी छोड्नेछैन। ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिपूजा गर्नमा इत्यादि अनेक दोष सिद्ध हुन्छन्।

अर्कोतर्फ सोच, पाषाण आदि मूर्त्तिलाई नमानेर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मालाई सर्वत्र जान्ने र मान्नेले सर्वत्र सर्वदा परमेश्वरलाई सबैका असल–खराब कर्महरूको द्रष्टा सम्झेर र एकक्षणमात्र पनि आफूलाई परमेश्वरभन्दा छुट्टै नसम्झेर कुकर्म गर्ने कुरा त परै जाओस् मनमा कुचेष्टा गर्न पनि सक्तैन। किनकि ऊ 'मैले मन, वचन वा कर्मबाट पनि कुनै गलत काम गरेमा त्यसको दण्ड नपाई यस अन्तर्यामीको न्यायबाट कहिल्यै बच्न सक्नेछैन' भन्ने कुरा जान्दछ। अर्को कुरा, नाम स्मरणबाट मात्र केही पनि फल हुँदैन। जस्तै मिश्री–मिश्री भन्नाले मुख गुलियो र नीम–नीम भन्नाले मुख तीतो हुँदैन। जिब्रोले चाखेरमात्र गुलियोपन वा तीतोपन जानिन्छ।

प्रश्न—सर्वत्र पुराणहरूमा नामस्मरणको ठूलो माहात्म्य छ भने के नाम लिनु पनि सर्वथा मिथ्या हो त?

उत्तर—तिम्रो नाम लिने तरिका उत्तम होइन। तिमीले नामस्मरण गर्ने गरेको तरिका झूटो हो।

प्रश्न—हाम्रो कस्तो तरिका छ?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—त्यसोभए वेदमा बताइएको नामस्मरणको तरिका के हो त?

उत्तर—नामस्मरण यसरी गर्नुपर्दछ—जस्तै ईश्वरको एउटा नाम 'न्यायकारी' हो। परमात्माको यस नामको अर्थमा—पक्षपात रहित भएर परमात्माले यथावत् सबैको न्याय गरेजस्तै उसलाई ग्रहण गरेर सर्वदा न्याययुक्त व्यवहार गर्नु र अन्याय कहिल्यै नगर्नु नै ईश्वरको 'न्यायकारी' यस नामको सच्चा स्मरण हो। यसरी एउटै नामबाट पनि मानिसको कल्याण हुनसक्तछ।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार छ भन्ने कुरा हामीलाई पनि थाहा छ, तर त्यस परमेश्वरले शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य र देवी आदिका शरीर धारण गरेर राम, कृष्ण आदि अवतार लियो, यसैकारण उसका मूर्त्ति बनाइन्छन्, के यो कुरा पनि झूटो हो त?

उत्तर—हो। यो कुरा अवश्य पनि झूटो हो। किनकि वेदमा परमेश्वरलाई '**अज एकपात्**' (ऋग्वेद ७।३५।१३), '**अकायम्**' (यजुर्वेद ४०।८) इत्यादि विशेषणद्वारा जन्ममरण र शरीर धारणरहित बताइएको छ। युक्तिद्वारा पनि परमेश्वरको अवतार कहिल्यै सिद्ध हुनसक्तैन। किनकि आकाश जस्तै सर्वत्र व्यापक, अनन्त र सुख-दुःख, दृश्य आदि गुणरहित परमात्मा एउटा सानो वीर्य, गर्भाशय र शरीरमा कसरी आउन सक्तछ र? जो एकदेशीय हुन्छ, उही आउने-जाने गर्दछ। प्रत्येक परमाणुमा व्याप्त, अचल, अदृश्य परमात्माको अवतारको कुरा गर्नु भनेको बाँझीको छोराको विवाह गरेर उसको नातिलाई देखेको भने सरह हो।

प्रश्न—परमेश्वर व्यापक छ भने मूर्त्तिमा पनि छ, अनि कुनै पदार्थमा भावना गरेर पूजा गर्नु किन ठीक होइन? हेर—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न त काठमा, न ढुङ्गामा, न माटो वा माटोले बनाएका पदार्थमा नै छ तर परमात्मा त भावनामा छ। जहाँ भावना गरिन्छ, त्यहीं परमात्मा सिद्ध हुन्छ।

उत्तर—परमेश्वर सर्वत्र व्यापक भएतापनि कुनै एउटा वस्तुमा भावना गरेर अन्यत्र नगर्नु भनेको कुनै चक्रवर्ती राजालाई सम्पूर्ण राज्यको सत्ताबाट छुटाएर एउटा सानो छाप्रोको अधिपति मान्नुसरह हो। हेर, यो कति ठूलो अपमान हो? त्यस्तै तिमीहरू परमेश्वरको अपमान गर्दैछौ। परमेश्वरलाई व्यापक मान्दछौ भने बगैंचाबाट फूलपाती टिपेर किन चढाँउदछौ? श्रीखण्ड घोटेर किन लगाउँदछौ? किन धूप बालेर

अर्पण गर्दछौ? शंख, घण्टा, मुजुरा, मृदङ्ग आदिलाई काठका टुक्राले कुट्ने पिट्ने किन गर्दछौ? परमेश्वर तिम्रा हातमा छ भने हात किन जोड्दछौ? टाउकोमा छ त किन टाउको निहुराउँछौ? अन्न, पानीमा छ भने किन नैवेद्य राख्छौ? पानीमा पनि छ, किन नुहाइदिन्छौ? किनकि ती सबै पदार्थमा त परमेश्वर व्यापक छ।

अर्को कुरा, तिमी व्यापकको पूजा गर्दछौ अथवा व्याप्यको? व्यापक को गर्दछौ भने ढुङ्गा, काठ आदिमाथि चन्दन-पुष्प आदि किन चढाउँदछौ? अनि व्याप्यको पूजा गर्दछौ भने 'हामी परमेश्वरको पूजा गर्दछौं' भनेर किन झूट बोल्दछौ? किन सत्य कुरा 'हामी ढुङ्गा आदिकै पुजारी हौं' भन्दैनौ?

फेरि भन—'**भाव**' सच्चा हो अथवा झूटो हो? सच्चा हो भने परमेश्वर तिम्रो भावको अधीन भएर बाँधिने छ। त्यसो हुँदा तिमी माटोमा सुन चाँदीको, ढुङ्गामा हीरा पन्ना आदिको, समुद्रका फिँजमा मोतीको, पानीमा घिउ, दूध, दही आदिको र धुलोमा पीठो, मैदा, सक्खर आदिको भावना गरेर तिनलाई त्यस्तै किन बनाउन सक्तैनौ? तिमीहरू कहिल्यै दुःखको भावना गर्दैनौ, दुःख किन हुन्छ त? सधैं सुखको भावना गर्दछौ, सुख किन मिल्दैन? अन्धो व्यक्ति आँखाको भावना गरेर देख्नसक्ने किन हुँदैन? मर्ने भावना कहिल्यै गर्दैनौ अनि किन मर्दछौ? इत्यादि कारणले तिम्रो भावना सच्चा होइन भन्ने बुझिन्छ, किनकि जस्तोमा त्यस्तै गर्नुलाई भावना भनिन्छ। जस्तै आगोलाई आगो, पानीलाई पानी जान्नु-मान्नु भावना हो भने पानीलाई आगो, आगोलाई पानी सम्झनु अभावना हो। जुन वस्तु जस्तो छ त्यसलाई त्यस्तै जान्नु '**ज्ञान**' र उल्टो मान्नु '**अज्ञान**' हो। यस्तै तिमी अभावनालाई भावना र भावनालाई अभावना सम्झिरहेका छौं।

प्रश्न—हेर, वेदमन्त्रद्वारा आह्वान नगरेसम्म देवता आउँदैन, आह्वान गर्दैमा झटपट आउँछ र विसर्जन गर्नाले जान्छ।

उत्तर—मन्त्र पढेर आह्वान गर्नाले देवता आउने भए मूर्त्ति किन चेतन हुँदैन? अनि विसर्जन गर्नाले जान्छ।

हेर बन्धुहरू, पूर्ण परमात्मा न आउँछ, न जान्छ। तिमी मन्त्रको बलले परमेश्वरलाई बोलाउँछौ भने तिनै मन्त्रबाट आफ्नो मरेको छोराको शरीरमा जीवलाई किन बोलाउँदैनौ? अनि शत्रुको शरीरबाट जीवात्मा को विसर्जन गरेर किन मार्नसक्तैनौ? सुन, सोझा-साझा सज्जनवृन्द! यी पोपजी तिमीहरूलाई ठगेर आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्दछन्। वेदमा

ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा र परमेश्वरको आह्वान विसर्जन गर्ने एउटा अक्षर पनि छैन।

प्रश्न—प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।
आत्मेहा गच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

इत्यादि वेदमन्त्र हुँदाहुँदै किन 'एउटै अक्षर पनि छैन' भन्छौ?

उत्तर—हेर भाइ, अलिकति त आफ्नो बुद्धिलाई काममा ल्याऊ। यी सबै वाममार्गीहरूका पोपरचित वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थका कपोलकल्पित पंक्ति हुन्, वेदवाक्य होइनन्।

प्रश्न—के तन्त्र झूटो हो त?

उत्तर—हो, पूरै झूटो हो। वेदमा आह्वान, प्राणप्रतिष्ठा आदि ढुङ्गा आदिका मूर्त्ति विषयक एउटा मन्त्र पनि नभए जस्तै '**स्नानं समर्पयामि**' आदि वाक्य पनि छैनन्। वेदमा '**पाषाणादिमूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्**' अर्थात् 'ढुङ्गाका मूर्त्ति बनाएर मन्दिरमा स्थापित गरेर, चन्दन, अक्षता आदिले पूजा गर्नुपर्दछ' यस्तो कुरा लेशमात्र पनि छैन।

प्रश्न—वेदमा विधान छैन भने खण्डन पनि छैन, अनि खण्डन छ भने पनि '**प्राप्तौ सत्यां निषेधः**' मूर्त्ति भएमा नै खण्डन हुनसक्तछ।

उत्तर—वेदमा मूर्त्तिपूजाको विधान त छँदैछैन तर परमेश्वरको ठाउँमा अरू कुनै पदार्थलाई पूजनीय नमान्ने सर्वथा निषेध पनि गरिएको छ। के अपूर्वविधि हुँदैन? हेर यो छ—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याᳬ रताः॥ १ ॥

—यजुः० अ० ४०। मं० ९॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति॥ २ ॥ —यजुः० अ० ३२। मं० ३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २ ॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४ ॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ५ ॥

—केनोपनिषद् ख० १। मं० ४–८

ब्रह्मको ठाउँमा असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न, अनादि प्रकृति=कारणको उपासना गर्नेहरू अन्धकार अर्थात् अज्ञान र दुःखसागरमा डुब्दछन्। अनि ब्रह्मको ठाउँमा संभूति=कारणबाट उत्पन्न भएका कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, ढुङ्गा र वृक्ष आदि अवयव तथा मनुष्य आदिका शरीरको उपासना गर्नेहरू भने त्यस अन्धकारभन्दा पनि बढी अन्धकार अर्थात् ती महामूर्खहरू धेरै समयसम्म घोर दुःखरूपी नरकमा परेर महाक्लेश भोग्दछन्॥ १ ॥

सब जगत्मा व्यापक त्यस निराकार परमात्माको प्रतिमा, परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति छैन॥ २ ॥

जुन ब्रह्म 'इदन्ता'=यो पानी हो, लिनुहोस् आदि भनेजस्तै वाणीको विषय होइन तर जसले धारण गर्नाले र जसको सत्ता हुनाले वाणी आफ्नो कार्य गर्दछ त्यसैलाई ब्रह्म जानेर उपासना गर्नेगर। ऊबाहेक अरू कोही पनि उपासनीय छैन॥ १ ॥

मनबाट '**इयत्ता**'=यो यत्ति हो आदि गरेर मनन गर्न नसकिने, मनलाई जान्नेलाई नै ब्रह्म सम्झेर तिमी उसैको उपासना गर। त्यस बाहेक त्यस ब्रह्मको ठाउँमा जीव र अन्तःकरणको उपासना नगर॥ २ ॥

जो आँखाबाट देखिंदैन र जसबाट सबै आँखाले देख्छन्, तिमी त्यसैलाई ब्रह्म जान र त्यसैको उपासना गर। ऊबाहेक अरू सूर्य, विद्युत र अग्नि आदि जडपदार्थको उपासना नगर॥ ३ ॥

जो कानबाट सुनिंदैन र जसबाट कान सुन्दछन्, त्यसैलाई तिमी ब्रह्म सम्झ र त्यसैको उपासना गर। ऊबाहेक शब्द आदिको उपासना उसको ठाउँमा नगर॥ ४ ॥

प्राणबाट चलायमान नहुने र प्राणलाई चलायमान गर्नेलाई नै तिमी ब्रह्म सम्झेर उसैको उपासना गर। ऊबाहेक यस वायुको उपासना नगर॥ ५ ॥

इत्यादि धेरैजसो निषेधका कुरा छन्। भएकाको र नभएकाको पनि निषेध हुन्छ। प्राप्तको—जस्तै कोही कतै बसेको छ भने त्यसलाई त्यहाँबाट उठाउनु, अप्राप्तको—जस्तै हे पुत्र! तिमी चोरी कहिल्यै नगर्नू, कुवामा नपर्नू, दुष्टहरूको संगत नगर्नू, विद्याहीन नरहनू इत्यादि अप्राप्तको पनि निषेध हुन्छ। त्यस्तै मानिसको ज्ञानमा अप्राप्त र

परमेश्वरको ज्ञानमा प्राप्तको निषेध गरिएको छ। यसकारण ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको पूजा सर्वथा निषिद्ध छ।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा गर्नमा पुण्य हुँदैन भने पाप पनि त हुँदैन ?

उत्तर—कर्म दुई प्रकारका मात्र हुन्छन्—पहिला **विहित**–कर्त्तव्यताद्वारा वेदमा प्रतिपादित सत्यभाषण आदि, दोस्रा **निषिद्ध**—अकर्त्तव्यताद्वारा वेदमा निषिद्ध मिथ्याभाषण आदि। जसरी विहितकर्म गरेमा धर्म र नगरेमा अधर्म हुन्छ, त्यस्तै निषिद्धकर्म गरेमा अधर्म र नगरेमा धर्म हुन्छ। तिमी वेदमा निषिद्ध मूर्तिपूजा आदि कर्म गर्छौ भने पापी किन भएनौ ?

प्रश्न—हेर, वेद अनादि हुन्। पहिले त देवता प्रत्यक्षै थिए, त्यसकारण त्यसबेला मूर्त्तिको के काम थियो र ? यो परम्परा त पछि तन्त्र र पुराणबाट चलेको हो। मानिसको ज्ञान र सामर्थ्य कम भएपछि परमेश्वरलाई ध्यानमा ल्याउन सकेनन्, अनि मूर्त्तिको ध्यान त गर्न सक्तछन्। यसकारण मूर्त्तिपूजा अज्ञानीहरूका लागि हो। किनकि एक–एक खुड्किला गरेर चढेमा पहाडको टुप्पोमा पुग्न सकिन्छ। पहिलो खुड्किलोलाई नै छोडेर माथि जान चाहेमा जान सकिंदैन ? यसकारण मूर्त्ति पहिलो खुड्किलो हो। मानिसले यस मूर्त्तिको पूजा गर्दा–गर्दा ज्ञान भए पछि र अन्त:करण पवित्र भएपछि उसले परमात्माको ध्यान गर्न सक्नेछ। जसरी निशाना लगाउँने व्यक्तिले आरम्भमा स्थूल लक्ष्यमा तीर, गोली वा गोला हान्दा–हान्दा पछि सूक्ष्म लक्ष्यमा पनि निशाना लगाउन सक्ने हुन्छ, त्यस्तै स्थूल मूर्त्तिको पूजा गर्दा–गर्दा पछि सूक्ष्म ब्रह्मलाई पनि प्राप्त गर्दछ। जसरी केटीहरू वास्तविक [illegible]लाई प्राप्त नभएसम्म नै खेलौनाको खेल खेल्दछन् त्यस्तै किसिमले मूर्त्तिपूजा गर्नु गलत काम होइन।

उत्तर—वेदविदित आचरणमा धर्म र वेदविरुद्ध आचरणमा अधर्म हुन्छ भने तिम्रो भनाइबाट पनि मूर्त्तिपूजा गर्नु अधर्म ठहर्दछ। वेदविरुद्ध ग्रन्थहरूको प्रमाण मान्नु नास्तिक हुनु हो। हेर,

नास्तिको वेद निन्दकः ॥ १ ॥ —मनुस्मृति २।११

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ ॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ३ ॥

—मनुस्मृति १२।९५, ९६

मनुजीको भनाइ अनुसार वेदको निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्ध आचरण गर्ने व्यक्ति '**नास्तिक**' भनिन्छ ॥ १ ॥

वेदबाहेक कुत्सित व्यक्तिहरूले बनाएका संसारलाई दु:खसागरमा डुबाउने सबै ग्रन्थलाई निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप र यसलोक तथा परलोकमा दु:खदायक हुन् ॥ २ ॥

वेदबाहेक बने बनाइका सबै ग्रन्थ आधुनिक हुनाले छिटै नष्ट हुन्छन्। ती ग्रन्थलाई मान्नु झूटो र निष्फल हुन्छ।

यसैगरी 'वेदविरुद्धलाई नमान्नु र वेदाकूल नै आचरण गर्नु धर्म हो' भन्ने विचार ब्रह्मादेखि जैमिनी महर्षिसम्मको छ। किनकि वेद सत्य अर्थको प्रतिपादक हो भने यसबाहेकका सबै तन्त्र, पुराण आदि वेदको विरुद्ध चल्ने=वेदविरुद्ध हुनाले झूठा हुन्। तिनमा बताइएको मूर्तिपूजा पनि अधर्मरूप नै हो।

जड़को पूजा गर्नाले मनुष्यको ज्ञान बढ्दैन, बरू अलिअलि भएको ज्ञान परिनष्ट हुन्छ। यसकारण ज्ञानीहरूको सेवा र सङ्गतबाट ज्ञान बढ्छ, ढुङ्गा आदिबाट बढ्दैन। ढुङ्गा आदिको मूर्त्तिपूजाबाट के कसैले कहिल्यै परमेश्वरलाई ध्यानमा ल्याउन सक्तछ ? होइन,कहिल्यै सक्तैन। मूर्तिपूजा खुड्किलो होइन, त्यो त एउटा ठूलो भडखारो हो, जसमा परेर व्यक्ति चकनाचूर हुन्छ। अनि त्यस भडखारोबाट निक्लिन नसकेर त्यसैमा मर्दछ। तर घरको चोटा मा पुग्ने लिस्नु जस्तै सानातिना धार्मिक विद्वान्‌देखि लिएर परम विद्वान् योगीहरूको सङ्गतबाट सद्विद्या र सत्यभाषण आदि आचरण चाहिं परमेश्वरलाई प्राप्त गर्ने खुड्किला हुन्। मूर्तिपूजा गर्दा–गर्दा कुनैपनि ज्ञानी भएको छैन, बरू सबै मूर्तिपूजक अज्ञानी नै रहेर मनुष्य जन्मलाई व्यर्थै खेर फ्यालेर धेरैजसो मरिसके। जो अब छन् वा हुनेछन् ती पनि मनुष्य जन्मका धर्म, अर्थ, काम र मोक्षको प्राप्तिरूपी फलदेखि विमुख भएर व्यर्थै नष्ट हुनेछन्। ब्रह्मको प्राप्ति गर्न स्थूल–लक्ष्य मूर्त्तिपूजा होइन, धार्मिक विद्वान् र सृष्टिविद्या हो। धार्मिकता, विद्वत्ता र सृष्टिविद्याको ज्ञानलाई बढाउँदा–बढाउँदा व्यक्तिले ब्रह्मलाई पनि प्राप्तगर्न सक्तछ। अर्को कुरा, मूर्त्ति बच्चाको खेलजस्तो होइन, तर प्रथम अक्षरको अभ्यास र सुशिक्षा नै बच्चाको खेलजस्तै ब्रह्मप्राप्तिको साधन हो। राम्रो शिक्षा र विद्या प्राप्तगरेर व्यक्ति सच्चा स्वामी परमात्मालाई पनि प्राप्त गर्न सक्तछ।

प्रश्न—साकारमा मन सजिलै स्थिर हुने र निराकारमा मन स्थिर हुन कठिन हुनाले मूर्त्तिपूजा हुनु उपयुक्त हुन्छ।

उत्तर—साकारवस्तुलाई मनले तुरुन्तै ग्रहण गरेर त्यसैका एक–एक अवयवमा घुम्ने र अर्कातर्फ दगुर्ने हुनाले साकारमा कहिल्यै मन स्थिर हुनसक्तैन। उता निराकार अनन्त परमात्माको ग्रहणमा मन आफ्नो सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाएर दौडेपनि त्यसको अन्त भेट्टाउँदैन। अवयवरहित हुनाले चञ्चल पनि रहँदैन र उसैका गुण–कर्म–स्वभावको विचार गर्दा–गर्दा आनन्दमा मग्न भएर स्थिर हुनपुग्दछ। साकारमा मन स्थिर हुनेभए सब जगत्को मन स्थिर हुने थियो, किनकि—संसारमा मानिस स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकारमा फँसिरहन्छ तर कसैको पनि मन निराकारमा नलगाएसम्म स्थिर हुँदैन। निरवयव हुनाले निराकारमा मन स्थिर हुन्छ। यसकारण मूर्त्तिपूजा गर्नु अधर्म हो।

मूर्त्तिपूजा गर्न नहुने **दोस्रो** कारण–मूर्त्तिपूजा गरिंदा करोडौं रुपैयाँ मन्दिरहरूमा खर्च गरेर दरिद्र हुन्छन् र उसमा प्रमाद बढ्दछ। **तेस्रो कारण**—स्त्री–पुरुषहरूको मन्दिरमा मेला हुनाले व्यभिचार, झैं–झगडा र रोग आदि उत्पन्न हुन्छन्। **चौथो**—मानिस मूर्तिपूजालाई नै धर्म, अर्थ, काम र मुक्तिको साधन मानेर पुरुषार्थरहित भएर मनुष्य जन्मलाई व्यर्थै गुमाउँछन्। **पाँचौं**—नाना किसिमका विरुद्धस्वरूप, नाम, चरित्रयुक्त मूर्त्तिका पुजारीहरूमा एकमत नष्ट भएर परस्पर विरुद्धमतमा चलेर परस्पर फूट बढाएर देशको नाश गर्दछन्। **छैटौं**—त्यसै मूर्तिको भरमा शत्रुको पराजय र आफ्नो जीत हुने कुरा मानेर बसिरहनाले तिनको पराजय भएर राज्य, स्वतन्त्रता र धनको सुख त्यस्ताका शत्रुको अधीन हुन्छ र आफूभने धोबीको खच्चर र कुमालेको गधा जस्तै शत्रुको वशीभूत भएर अनेकौं किसिमका दुःख पाउँछन्। **सातौं**—कसैले कसैसँग 'म तिम्रो बस्ने आसन वा नाममाथि ढुङ्गा राख्छु' भन्दा त्यो ऊमाथि क्रोधित भएर पिट्ने, गालीगर्ने भएजस्तै परमेश्वरको उपासनाका स्थान हृदय र नाममा ढुङ्गा आदि मूर्त्ति राख्ने दुष्टबुद्धि भएका व्यक्तिको सत्यानाश परमेश्वरले किन नगर्ने? **आठौं**—मूर्त्तिपूजक भ्रान्त भएर मन्दिर–मन्दिर, ठाउँ–ठाउँमा घुम्दा–घुम्दा दुःख पाउँछन्, धर्म, संसार र परमार्थका काम बिगार्दछन्, चोर आदिबाट सताइन्छन् र ठगहरूबाट ठगिइरहन्छन्। **नवौं**—दुष्ट पुजारीहरूलाई धन दिन्छन्, ती पुजारीले त्यस धनलाई वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, मद्यपान, मांसाहार, झै–झगडाहरूमा खर्च गर्दछन् यसबाट दाताको सुखको मूल सुकेर दुःख बढ्दछ। **दशौं**—आमा–बाबु आदि माननीयहरूको अपमान गरेर ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको सम्मान गर्नाले कृतघ्न भइन्छ। **एघारौं**—ती मूर्तिलाई

कसैले फुटाइदिएमा वा चोरले चोरेमा हाहाकारका साथै रुनुपर्दछ, रुन्छन्। **बाह्रौं**—पुजारीहरू परस्त्रीको सङ्ग र पुजारिनी परपुरुषको सङ्गमा लाग्नाले दूषित भएर स्त्री–पुरुषको प्रेम र आनन्दलाई बर्बाद पार्दछन्। **तेह्रौं**—स्वामी–सेवकमा परस्पर आज्ञापालन आदि ठीक–ठीक नहुनाले परस्पर विरुद्ध विचार भएर नष्ट भ्रष्ट हुन्छन्। **चौधौं**—ध्येयको जडत्त्व धर्म अन्तःकरणद्वारा आत्मामा अवश्य आउने हुनाले जड्को ध्यान गर्नेको आत्मा पनि जड्बुद्धि हुन्छ। **पन्ध्रौं**—परमेश्वरले वायु, जल आदिको दुर्गन्ध निवारण र आरोग्यताका लागि बनाएका सुगन्धियुक्त पुष्प आदि पदार्थलाई टिपेर कैयौं दिनसम्म आकाशमा सुगन्ध रहेर वायु, जलको शुद्धि गर्ने र पूर्ण सुगन्धिको समयसम्म सुगन्ध भैरहने त्यस फूललाई पुजारीले पहिलेनै नष्ट गरिदिन्छन्। ती फूल आदि हिलो आदिमा मिलेर उल्टो दुर्गन्ध उत्पन्न गर्ने हुन्छन्। के परमात्माले फूल आदि सुगन्धित पदार्थ ढुङ्गामाथि चढाउनका लागि बनाएका हो? **सोह्रौं**—ढुङ्गामाथि चढाइएको फूल, चन्दन, अक्षता आदि सबै मिलेर प्वाल, दुलो वा कुण्डमा परेर पानी र माटोको संयोग हुँदा त्यसबाट मानिसको दिसाको जत्तिकै दुर्गन्ध आकाशमा चढ्दछ र हजारौं जीव त्यसमा परेर त्यसै मर्दछन् र सड्दछन्। मूर्त्तिपूजा गर्नमा यस्ता यस्ता अनेक दोषहरू हुन्छन्। यसकारण सज्जनहरूले ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा सर्वथा छाड्नु उचित हुन्छ। ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिको पूजा गर्नेहरू उपर्युक्त दोषबाट न बचेका थिए, न बचेकाछन्, न बच्नेछन्।

प्रश्न—कुनै किसिमको मूर्त्तिपूजा गर्नु गराउनु हुँदैन भने हाम्रो आर्यावर्त्तमा जुन 'पञ्चदेवपूजा' शब्द चलि आएको छ, त्यो पञ्चायतन पूजा शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश र सूर्य्यको मूर्त्ति बनाएर गरिने पञ्चायतन पूजा हो वा होइन?

उत्तर—कुनै किसिमको मूर्त्तिपूजा गर्नुहुँदैन, तर तल लेखिएअनुसार का 'मूर्त्तिमान्' हरूको पूजा अर्थात् सत्कार गर्नुपर्दछ। त्यस पञ्चदेवपूजा वा पञ्चायतनपूजा शब्दको अर्थ धेरै राम्रो छ, तर हिजोआज शिव आदि पाँचको मूर्त्ति बनाएर पूजा गर्ने विद्याहीन मूर्खहरूले त्यसको उत्तम अर्थलाई छोडेर निकृष्ट अर्थलाई ग्रहण गरेका हुन्। तिनको खण्डन त माथि भैसक्यो तर सच्चा 'पञ्चायतन' वेदोक्त र वेदानुकूल अन्यत्र बताइएको देवपूजा र मूर्त्तिपूजा हो। जस्तै—

मा[नो] वधीः पितरं मोत मातरम्॥ १ ॥ —यजुः०॥

आचार्य उपनयमानो.......ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ २ ॥

अतिथिर्गृहानुपगच्छेत् ॥ ३ ॥ —अथर्व०॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ॥ ४ ॥ —ऋग्वेदे॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ५ ॥
—तैत्ति०उप० १।१

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥
—शतपथ १४।५।७।१०

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥ ७ ॥ —तैत्ति०उप० १।११

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या पूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥
—मनुस्मृति ३।५५

पूज्यो हि देववत् पतिः ॥ ९ ॥ —मनुस्मृति ५।१४४

पहिलो—मूर्तिमती पूजनीय देवता '**आमा**' हुन् अर्थात् सन्तानहरूले तन, मन धनद्वारा आमाकी सेवा गरेर प्रसन्न राख्नुपर्दछ। हिंसा अर्थात् कहिल्यै ताडना गर्नुहुँदैन।

दोस्रो—सत्कार गर्न योग्य देव '**पिता**' हो, उनको पनि माताको जस्तैगरी सेवा गर्नुपर्दछ ॥ १ ॥

तेस्रो—विद्या दिने गुरु वा आचार्य को सेवा तन, मन, धनद्वारा गर्नुपर्दछ ॥ २ ॥

चौथो—विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबैको उन्नति चाहने, जगत्मा भ्रमण गर्दै सत्य उपदेशद्वारा सबैलाई सुखी पार्ने '**अतिथि**'को सेवा गर्नुपर्दछ ॥ ३ ॥

पाँचौं—पत्नीका लागि पति र पतिका लागि पत्नी पूजनीय हुन्छन् ॥ ४ ॥

यी पाँच मूर्तिमान् '**देव**' हुन्। यिनकै सङ्गतबाट मनुष्य-शरीरको उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या र सत्य उपदेशको प्राप्ति हुन्छ। यी नै परमेश्वर सम्म पुग्ने खुड्किला हुन्। यिनको सेवा नगरेर ढुङ्गा का मूर्तिको पूजा गर्नेहरू पूरै वेदविरोधी हुन्।

प्रश्न—आमा-बाबु आदिको सेवा पनि र मूर्तिपूजा पनि गर्ने गरेमा त कुनै दोष हुनेछैन?

उत्तर—ढुङ्गा आदि मूर्तिपूजा पूरै छोड्नु र आमा आदि मूर्तिमान्को सेवा गर्नमा नै कल्याण हुन्छ। आमा आदि साक्षात् प्रत्यक्ष सुखदायक '**देव**'हरूलाई छोडेर अदेव ढुङ्गा आदिमा टाउको ठोक्न स्वीकार गरिनु

ठूलो अनर्थको कुरा हो। आमा, बाबु आदिका समक्ष नैवेद्य वा पूजा-भेटी केही चढाएमा उनीहरूले नै नैवेद्य खानेछन् र भेटी लिनेछन् अनि आफ्नो हात त केही पनि पर्ने छैन भन्ने कारणले नै बाबु आमा आदिको सेवा आदिको सट्टा यो मूर्तिपूजालाई मात्र थालिएको हुनुपर्दछ। यसैकारण ढुङ्गा आदिका मूर्ति बनाएर, त्यसको अगाडि नैवेद्य राखेर, घंटानाद, टं टं, पूँ पूँ र शङ्ख बजाएर, होहल्ला गरेर औंठो देखाएर अर्थात् '**त्वमङ्गुष्ठं गृहाण भोजनपदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि**' कसैले कसैलाई झुक्याउन वा खिज्याउन केटाकेटीले 'माछो-माछो भ्यागुतोको' खेल खेलेजस्तै औंठो देखाएर उसको अगाडिबाट सबै पदार्थ लिएर भागेजस्तै लीला यी पुजारीहरू अर्थात् पूजा नाम गरिएको सत्कर्मका शत्रुहरूको छ। यिनीहरू झिलीमिली झल्कने आकर्षक मूर्ति बनाएर आफू पनि ठगहरूजस्तै सज-धज बनेर विचरा मूर्ख अनाथहरूलाई लुट्छन् र आफैं मस्ती लिन्छन्। कुनै धार्मिक राजा भएको भए यी ढुङ्गा प्रेमीलाई ढुङ्गा फुटाउने, रोडा आदि बनाउने तथा घर बनाउने आदि काममा लगाएर खान-पान आदिको निर्वाह हुन योग्य धनादि दिने थियो।

प्रश्न—ढुङ्गा आदिकै स्त्रीको मूर्ति देख्नाले कामोत्पत्ति भएजस्तै वीतराग शान्तको मूर्ति देख्नाले वैराग्य र शान्तिको प्राप्ति किन हुँदैन?

उत्तर—त्यस मूर्तिको जडत्वधर्म आत्मामा आउने र विचारशक्ति घट्ने हुनाले त्यसो हुनैसक्तैन। विवेकविना वैराग्य, वैराग्यविना विज्ञान र विज्ञानविना शान्ति हुँदैन। अलिकति केही हुन्छ भने पनि त्यो त तिनको सङ्गत, उपदेश र इतिहास आदिलाई देख्नाले हुन्छ, किनकि कसैको गुणदोष नजानी त्यसको मूर्तिमात्र देख्नाले प्रीति हुँदैन। गुण-ज्ञान नै प्रीति हुनुको कारण हो। यस्ता मूर्तिपूजा आदि गलत कारणबाटै आर्यावर्त्तमा करौडौं मानिस निकम्मा पुजारी, भिक्षुक, अल्छी, पुरुषार्थरहित भएका हुन्। तिनीहरूले नै संसारमा मूर्खता फैलाएका हुन्। यसबाट धेरैजसो झूठ-छल पनि फैलिएको हो।

प्रश्न—हेर, काशीमा बादशाह औरङ्गजेबलाई 'लाटभैरव' आदिले ठूला-ठूला चमत्कार देखाएका थिए। मुसलमानहरूले त्यसलाई तोड्न-भत्काउन जाँदा र त्यसमाथि तोप गोला आदि हान्दा ठूला-ठूला भवँराहरू निस्केर सम्पूर्ण फौजलाई व्याकुल पारेर भगाइदिएका थिए।

उत्तर—यो ढुङ्गाको चमत्कार होइन, त्यहाँ भवँराका गोला रहेका होलान्। भवँराको स्वभाव क्रूर हुन्छ। तिनलाई कसैले चलाएमा टोक्न दौडिहाल्छन्। अनि त्यहाँ दूधको धाराको चमत्कार हुन्थ्यो भने त्यो त

पुजारीको लीला थियो।

प्रश्न—हेर, म्लेच्छलाई दर्शन नदिन महादेव कुवामा र वेणीमाधव एउटा ब्राह्मणका घरमा पुगेर लुकेका थिए, के यो पनि चमत्कार होइन?

उत्तर—तिनका कालभैरव, लाटभैरव आदि भूत, प्रेत र गरुड आदि गण रक्षक थिए भने तिनै रक्षकले मुसलमानहरूसँग लडेर तिनलाई किन भगाएनन्? किन आफू अन्तै गएर लुक्नुपर्यो? पुराणहरूमा महादेव र विष्णुले त्रिपुरासुर आदि अनेक अति भयङ्कर दुष्टहरूलाई भस्म गरिदिए भन्ने कथा छन् भने तिनले मुसलमानहरूलाई किन भस्म गरेनन्? यसबाट ती बिचरा ढुङ्गा के लड्न–लडाउन सक्थे र? भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। मुसलमानहरू मन्दिर र मूर्त्तिलाई भत्काउँदै र फुटाउँदै काशी नजिक आइपुगेपछि पुजारीहरूले त्यस ढुङ्गाको लिङ्गलाई कुवामा हाले र वेणीमाधवलाई ब्राह्मणको घरमा लुकाइदिए। कालभैरवको डरले यमदूत पनि काशीमा जाँदैनन् र प्रलयकालमा पनि ती काशीको नाश हुन दिंदैनन् भने म्लेच्छका दूत त्यहाँ पुग्न किन डराएनन्? र आफ्नो राजमन्दिरको नाश किन हुन दिए? यो सबै पोपलीला हो।

प्रश्न—गयामा श्राद्ध गर्नाले पितरका पाप छुटेर त्यहाँको श्राद्धको पुण्यप्रभावले पितर स्वर्ग जान्छन् र पितर आफ्ना हात थापेर पिण्ड ग्रहण गर्दछन्। के यो कुरा पनि झूटो हो त?

उत्तर—पूरै झूटो हो। पिण्ड दिएको प्रभाव त्यही हो भने पितरको सुखका निम्ति पुरेतहरूलाई दिएको लाखौं रुपैयाँको उपयोग गयावाला वेश्यागमन आदि पापमा गर्दछन्, त्यो पाप किन छुट्‌तैन? अर्को कुरा, हिजोआज पण्डा–पुरेतहरूका हातबाहेक कतै पनि हात थापेको देखिंदैन। यो कुरा पनि कुनैबेला कुनै धूर्त्तले पृथ्वीमा गुफा खनेर त्यसमा कुनै मानिसलाई बसाइदियो होला। कुनै धन भैकनका अन्धा व्यक्तिलाई यसरी ठगेको भए कुनै आश्चर्य छैन। त्यस्तै बैजनाथलाई रावणले ल्याएको थियो भन्ने कुरापनि मिथ्या हो।

प्रश्न—हेर, कलकत्ताकी काली र कामाक्षा आदि देवीलाई लाखौं व्यक्ति मान्दछन्। के यो चमत्कार होइन?

उत्तर—केही पनि चमत्कार छैन। ती अन्धाहरू भेडाजस्तै एउटाका पछि अरू हिंड्छन्। कुवा, खाल्डोमा पर्दछन्, तर हट्‌नसक्तैनन्। त्यस्तै एउटा मूर्खको पछिलागेर अरूपनि मूर्त्तिपूजारूपी खाल्डोमा फँसेर दु:ख पाउँछन्।

प्रश्न—लौ यो त भैगयो, तर जगन्नाथजीमा त प्रत्यक्ष चमत्कार

छ। एउटा चोला बदल्दा समुद्रमा आफैं चन्दनको लाठो आइपुग्दछ। चूलोमाथि एउटामाथि अर्कोगरी खप्टेर सात हाँडी राखेमा माथि माथिका हाँडीमा अघि पाक्दछ। त्यहाँ कसैले जगन्नाथको परसादी नखाएमा त्यो कोढी हुन्छ। रथ आफैं चल्दछ, पापीलाई दर्शन हुँदैन। इन्द्रदमनको राज्यमा देवताहरूले मन्दिर बनाएका हुन्। चोला बदल्ने बेला राजा, एउटा पंडा र एउटा सिकर्मी मर्ने आदि चमत्कारलाई तिमी झूटो सिद्ध गर्नसक्ने छैनौ।

उत्तर—बाह्र वर्षसम्म जगन्नाथको पूजा गर्ने व्यक्ति विरक्त भएर मथुरा आएको थियो र मलाई भेटेको थियो मैले यी कुराको उत्तर सोद्धा उसले यी सबै कुरा झूटा हुन्, भनेको थियो। तर विचारगर्दा वास्तविकता यो रहेछ—चोला बदल्ने समय आउँदा नौकामा चन्दनको काठ राखेर समुद्रमा हाल्छन्। समुद्र लहरीका कारण त्यो किनारामा आइपुग्दछ। त्यसैलाई लिएर सिकर्मीहरू मूर्ति बनाउँदछन्। खाना बनाउँदा ढोका थुनेर भान्से बाहेक अरू कसैलाई जान वा हेर्न दिंदैनन्। भुईंमा चारैतिर छओटा र बीचमा एउटा चक्राकार चूलो बनाउँदछन्। ती हाँडीलाई मुन्तिर घिउ, माटो र खरानी लगाएर छओटा चूलामा चामल पकाएर, तिनको पिंधलाई माझेर, त्यस बीचको हाँडीमा त्यसै समय चामल हालेर, छओटा चूलाको मुखलाई फलामका तावाले छोपेर दर्शन गर्ने धनाढ्य व्यक्तिलाई बोलाएर देखाउँदछन्। माथि–माथिका हाँडीबाट पाकेको भात निकालेर देखाएर तलको काँचो चामल निकालेर देखाएर तिनीहरूसँग 'हाँडीका लागि केही भेटी राख' भन्दछन्। ती धन भैकनका अन्धा व्यक्ति रूपैयाँ, असर्फी राख्तछन् र कोही त महिनावारी बाँधिदिन्छन्।

शूद्र नीच व्यक्ति मन्दिरमा नैवेद्य ल्याउँछन्। नैवेद्य लगाइसकेपछि ती शूद्र नीच व्यक्तिले जुठो पारिदिन्छन्। पछि कसैले रूपैयाँ तिरेर हाँडी लिएमा त्यसको घरैमा पुर्याइन्छ भने दीनहीन गृहस्थ, साधु–सन्तदेखि शूद्र र अन्त्यजसम्म सबै एउटै पंक्तिमा बसेर एक–अर्काको जुठो खाना खान्छन्। पहिलो पंक्ति उठेपछि तिनै पात वा टपरीमा अरूलाई खान बसाइन्छ। महा–अनाचार हो यो सबै। अनि धेरैजसो मानिस त्यहाँ गएर, तिनको जुठो खानुको साटो आफैं पकाएर खाएर फर्कन्छन् तर कोढ आदि कुनै पनि रोग हुँदैन र त्यस जगन्नाथ पुरीमा बस्नेमा पनि धेरैजसो व्यक्ति परसादी खाँदैनन्, तर तिनलाई पनि कुष्ठ आदि रोग हुँदैनन्। अनि त्यसै जगन्नाथपुरीमा धेरै कोढी छन्। दिनहुँ

जुठो खानाले पनि रोग छुट्‌तैन।

श्रीकृष्ण र बलदेवकी बहिनी पर्ने सुभद्रालाई दुबै दाजु-भाइको बीचमा पत्नी र आमाको ठाउँमा बसाएको हुनाले यो सबै जगन्नाथमा वाममार्गीहरूले भैरवीचक्र चलाएका हुन् भन्ने बुझिन्छ। भैरवीचक्र नभएको भए यस्तो कहिल्यै हुनसक्ने थिएन।

रथका पाङ्ग्रामा कलाकृति गरिएको छ। तिनलाई सोझो घुमाउनाले घुम्दछन् र रथ हिंड्दछ। मेलाको बीचमा पुग्नेबित्तिकै त्यसको किलोलाई उल्टो घुमाइदिनाले रथ रोकिन्छ। पुजारीहरू 'दान देओ, पुण्य गर, अनि जगन्नाथजी प्रसन्न भएर रथ चलाउनेछन्, आफ्नो धर्म रहनेछ' भनी पुकार्दछन्। भेटी आउने क्रम चलेसम्म यसैगरी पुकारिरहन्छन्। भेटी आइसकेपछि एउटा कुनै ब्रजवासी राम्रा लुगा लगाएर र दोसल्ला ओढेर अगाडि उभिएर हात जोडेर स्तुति गर्दछ—'हे जगन्नाथ स्वामिन्! तपाईं कृपा गरेर रथ चलाउनुहोस्, हाम्रो धर्म राखिदिनुहोस्' इत्यादि भनेर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम गरेर रथमा चढ्दछ। त्यसै समय किलालाई सोझो घुमाइदिन्छन् र जय जयकार गर्दै हजारौं मानिस डोरी तान्दछन् र रथ चल्दछ।

मन्दिर धेरै ठूलो हुनाले धेरै मानिस दर्शन गर्न गएका बेलामा दिउँसै पनि अँध्यारो हुन्छ र दियो बाल्नुपर्दछ। ती मूर्त्तिका अगाडि दुबैतर्फकाले पर्दा तान्नेबित्तिकै मूर्त्ति कोल्टोतर्फ पर्दछ। त्यसैबखत पण्डा पुजारी 'तिमीहरू भेटी राख, तिम्रा पाप छुट्नेछन्, अनि दर्शन हुनेछ, छिटो गर' भनी कराउँछन्। ती बिचरा सोझा मानिस धूर्त्तहरूबाट लुटिन्छन् अनि तुरुन्तै अर्को पर्दा तान्दछन् र दर्शन हुन्छ। अनि जय-जय भन्दै प्रसन्न भएर धक्का खाएर तिरस्कृत भएर फर्कन्छन्।

इन्द्रदमनको कुलका व्यक्ति हालसम्म पनि कलकत्तामा छन्। ऊ धनाढ्य राजा र देवीको उपासक थियो। आर्यावर्त्त देशका व्यक्तिले यसरी खान-पानको झगड़ा मेटाऊन् भन्ने उद्देश्यले उसले लाखौं रुपैयाँ खर्च गरेर मन्दिर बनाउन लगाएको थियो। तर ती मूर्ख-मूर्खतालाई किन छोड्थे र? देव मान्दछौ भने मन्दिर बनाउने शिल्पी-कालीगडलाई नै मान्नु उचित हुन्छ।

राजा, पाण्डा र सिकर्मी त्यसबखत मर्दैनन्, ती तिनै त्यहाँ प्रमुख हुन्छन्। साना व्यक्तिलाई दुःखदिन्थे होलान्। चोला बदल्ने समयमा तिनै उपस्थित रहन्छन्। मूर्त्तिको भित्रको भाग खोक्रो हुन्छ त्यसमा सुनको सम्पुटमा एउटा शालिग्राम राख्दछन्। त्यसलाई धोएर प्रतिदिन

चरणामृत बनाउँछन्। त्यसमा ती सताइएका व्यक्तिहरूले रात्रिको शयन आरतीको बेलामा विषको तेजाब लगाइदिए होलान्। त्यसलाई धोएर तिनले तिनैलाई पियाए होलान् र त्यसैले कुनैबेला ती मरेका होलान्। यसरी मरेका कुरालाई भोजनभट्टहरूले 'जगन्नाथजीले आफ्नो शरीर बदल्ने समयमा तिनै भक्तलाई पनि आफूसँगै लगे' भनी प्रचार फिंजाएको हुनुपर्दछ। अरूको धन ठग्नका निम्ति यस्ता झूठा कुरा धेरैजसो हुनेगर्दछन्।

प्रश्न—रामेश्वरमा गंगोत्तरीको जल चढाउँदा लिङ्ग बढ्दछ भन्ने कुरा पनि के झूटो हो?

उत्तर—झूठो हो। त्यस मन्दिरमा पनि दिउँसै अँध्यारो रहन्छ। दिन-रात दीपक बालिन्छन्। जलको धारा छोड्दा पानीमा बिजुली चम्केझैं दीपकको प्रतिबिम्ब टल्किन्छ, अरू केही पनि होइन। ढुङ्गो न त घट्छ, न बढ्दछ, त्यो त जत्तिकोत्यत्ति नै रहन्छ. यस्तो लीला गरेर बिचरा निर्बुद्धिहरूलाई ठग्दछन्।

प्रश्न—रामेश्वरलाई रामचन्द्रले स्थापित गरेका हुन्। मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध भएको भए रामचन्द्रले किन मूर्त्तिस्थापना गर्थे र वाल्मीकिले किन रामायणमा लेख्ने थिए?

उत्तर—रामचन्द्रको समयमा त्यस लिंग वा मन्दिरको नाम निशान पनि थिएन तर दक्षिणदेशका राम नामक राजाले मन्दिर बनाउन लगाएर लिङ्गको नाम रामेश्वर राखेको थियो भन्ने कुरा ठीकै हो। रामचन्द्रले सीताजीलाई लिएर हनुमान आदिसँग लङ्काबाट हिंडेर आकाशमार्गद्वारा विमानमा बसेर अयोध्या आउँदा सीताजीसँग यसो भनेका थिए—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
सेतुबन्ध इति विख्यातम्॥

—वाल्मीकि रामायण लङ्का काण्ड सर्ग १२३। श्लोक २२,२१॥

हे सीता! तिम्रो वियोगमा व्याकुल भएर घुम्दै यसै ठाउँमा मैले चातुर्मास गरेको थिएँ र परमेश्वरको उपासना, ध्यान पनि गर्दथें। उसै सर्वत्र विभु=व्यापक देवहरूको देव महादेव परमात्माको कृपाबाट यहाँ मलाई सबै सामग्री प्राप्त भएका थिए। अनि हेर, मैले यो पुल बनाएर लङ्कामा आएर त्यस रावणलाई मारेर तिमीलाई ल्याएको हुँ। यसबाहेक वाल्मीकि रामायणमा केही पनि त्यस्तो लेखिएको छैन।

प्रश्न—'रङ्ग है कालियाकान्तको। जिसने हुक्का पिलाया सन्तको' दक्षिण भारतमा एउटा कालियाकान्तको मूर्त्ति छ। त्यसले

हालसम्म पनि हुक्का तान्ने गर्दछ। मूर्त्तिपूजा झूटो भए यो चमत्कार पनि झूटो ठहर्छ त?

उत्तर—झूठो हो, पूरै झूठो। यो सबै पोपलीला हो। त्यस मूर्त्तिको मुख खोक्रो होला, त्यसको पछाडि प्वाल पारेर भित्ताबाट अर्कोतर्फ अर्कै कोठामा नली लगाएका होलान्। पुजारीले चिलिम भर्न लगाएर हुक्कामा लगाएर, मुखमा नली जमाएर पर्दा हालेर निस्कने बित्तिकै पछाडिको व्यक्तिले मुखले तान्दोहोला, अनि यता हुक्का गडगड गर्दो होला। दोस्रो प्वाल भने नाक र मुखसँग जोडिएको हुँदो हो। पछाडिबाट फुक्दा नाक र मुखका प्वालबाट धुवाँ निस्कँदो हो। अनि त्यसैसमय धेरैजसो मूर्खहरूबाट धनादि पदार्थ लुटेर तिनलाई दरिद्र बनाउँदा हुन्।

प्रश्न—हेर, डाकोरजीको मूर्त्ति द्वारिकाबाट भक्तजनसँगै आएछ। एउटा सवा रत्ती सुनको टुक्रासँग अनेक मनको मूर्त्ति जोखियो। के यो पनि चमत्कार होइन?

उत्तर—त्यसो होइन। त्यो भक्तले मूर्त्तिलाई चोरेर ल्यायो होला र जोखाइको कुरा भने अवश्य पनि कुनै भाँङ्को नशालु व्यक्तिले गफ हाँकेको हुनुपर्दछ।

प्रश्न—अनि के त, सोमनाथजी पृथ्वीभन्दा माथि बस्तथे र ठूलो चमत्कार थियो भन्ने कुरा पनि मिथ्या नै हो त?

उत्तर—हो, मिथ्या हो। सुन, तल–माथि चुम्बकीय पदार्थ लगाइएका थिए, तिनैको आकर्षणद्वारा त्यो मूर्त्ति बीचमै टिकेको थियो। महमूद–गजनवीले त्यहाँ आएर लड्दा चमत्कार चाहिं यही भयो कि सोमनाथको मन्दिर भत्काइयो, पुजारी भक्तजनको दुर्दशा भयो र दसहजार सेनाले लाखौं सेनालाई धपायो। पोप पुजारी भने पूजा, पुरश्चरम, स्तुति, प्रार्थना गरिरहेका थिए—'हे महादेव, यस म्लेच्छलाई मारिदेऊ, हाम्रो रक्षा गर।' उता आफ्ना चेला राजाहरूलाई सम्झाउँदथे—'हजुर निश्चिन्त रहिबक्स्योस्, महादेवजीले भैरव अथवा वीरभद्रलाई पठाइदिनेछन्। उनले सबै म्लेच्छरूलाई मार्नेछन् वा अन्धा गरिदिनेछन्।' हाम्रो देउता सिद्ध हुनेनै वाला छ। हनुमान्, दुर्गा र भैरवले स्वप्नमा 'हामी सबै काम गरिदिनेछौं' भनेका छन्। आदि ती बिचरा सोझा राजा र क्षत्रियहरू पोपहरूको छक्याइको विश्वासमा परे। कतिका ज्योतिषी पोपहरूले 'अहिले तिमीले चढाइ गर्ने मुहूर्त्त छैन' भने। कुनैले आठौं चन्द्रमा बतायो भने अर्कोले योगिनी अगाडि परेको बतायो। इत्यादि किसिमले झुक्याइरहे। म्लेच्छका फौजले आएर घेरेपछि दुर्दशाका

साथ ती सबै भागे। कतिका पोप–पुजारी र तिनका चेला समातिए। पुजारीहरूले हात जोरेर 'तीन करोड रूपैयाँ दिन्छौं, मन्दिर र मूर्त्तिलाई नभत्काऊ, नफुटाऊ' भने। मुसलमानले जवाफ दिए—'हामी बुतपरस्त= मूर्त्तिपूजक होइनौं, हामी त बुतशिकन=मूर्त्तिभंजक अर्थात् मूर्त्तिको नाश गर्ने हौं।' अनि गएर मन्दिरलाई भत्काइदिए। माथिको छानो भत्केपछि त्यहाँको चुम्बकीय ढुङ्गो अलग्गिनाले मूर्त्ति तल खस्यो। सुनिन्छ, त्यो मूर्त्ति फोर्दा अठार करोड मूल्य बराबरका रत्न निस्केका थिए। पुजारी–पोपमाथि कोर्रा पर्दा तिनीहरू रुन थाले। म्लेच्छहरूले 'ढुकुटी कहाँ छ?' भने। कुटाइ–पिटाइका डरले तुरन्तै खर खजाना सबै बताइदिए। अनि सम्पूर्ण कोश लुटपीट गरेर, पोप र तिनका चेलालाई 'गुलाम' करदाता बनाएर पिंध्ने काम गराए, घाँस खुर्कन लगाए, दिसा–पिसाब उठाउन लगाए र खान भने चनासम्म मात्र दिए। हरे! किन ढुङ्गाको पूजा गरेर सत्यानाशी भयौ? किन परमेश्वरको भक्ति गरेनौ? जुन भक्तिबाट म्लेच्छका दाँत भाँचेर आफ्नो विजय गर्ने थियौ। हेर, जति मूर्त्तिहरूको पूजा गर्यौं, त्यति शूरवीरहरूको पूजा गरेका भए कति रक्षा हुन्थ्यो? पुजारीहरूले ती ढुङ्गाको भक्ति यतिको गरे तर एउटा मूर्त्ति पनि उडेर ती शत्रुहरूको टाउकोमा बज्रन पुगेन। मूर्त्तिकै सेवा गरेझैं कुनै शूरवीर व्यक्तिको सेवा गरेको भए उसले आफ्ना सेवकहरूलाई सकभर बचाउने थियो र ती शत्रुलाई मार्ने थियो।

प्रश्न—'द्वारकाजीका रणछोड़जीले नर्सिमहितालाई हुण्डी पठाएर उसको ऋण चुक्ता गरिदिएका थिए' इत्यादि कुरा पनि के झूठा हुन्?

उत्तर—कुनै साहुकारले रुपैयाँ दियो होला, त्यसैलाई कसैले 'श्रीकृष्णले पठाएको' भनेर झूटो नाम उडाइदियो होला। संवत् १९१४ सालमा अंग्रेजहरूले मन्दिर मूर्त्तिलाई तोप हानेर उडाउँदा ती मूर्त्ति कहाँ गएका थिए? उता भाघेर जातिका व्यक्तिहरूले धेरै वीरता प्रदर्शित गरेर लडेका र शत्रुलाई मारेका थिए भने मूर्त्तिले त कुनै झिंगाको एउटा खुट्टो भाँच्न पनि सकेनन्। कोही श्रीकृष्णजस्तै भएको भए यिनको उछित्तो पारिदिन्थे। यिनीहरू भागाभाग गर्ने थिए। कसैको रक्षक नै कुटाइ–पिटाइ खान्छ भने त्यसका शरणागत किन पिटिने छैनन्?

प्रश्न—ज्वालामुखी त प्रत्यक्ष देवी हुन्, सबैलाई खाइदिन्छिन्। प्रसाद दिंदा आधा खाएर आधा छोडिदिन्छिन्। मुसलमान बादशाहहरूले ती देवीमाथि पानी को नहर हाल्न लगाउँदा र फलामका तावा राख्न लगाउँदा पनि ज्वाला न त निभ्यो, न रोकियो। त्यस्तै हिंगलाज पनि

आधीरातमा पहाडमा सवारी भएकी देखिन्छिन् र पहाडलाई गर्जन गराउँछिन्। चन्द्रकूप बोल्दछ र यो नियन्त्रबाट निस्कनाले पुनर्जन्म हुँदैन। ठुमरा बाँध्नाले पूर्णमहापुरुष कहलाइन्छ भने हिंगलाज पुगेर नआएसम्म आधा महापुरुष भइन्छ। इत्यादि कुरा के मान्नयोग्य होइनन्?

उत्तर—होइन। त्यो त ज्वालामुखीबाट आगो=लावा निस्कन्छ। त्यसमा पुजारीहरूले विचित्र लीला गरेका हुन्। खारेको घिउको चम्चामा आगो बल्ने, छुट्ट्याउँदा वा फुक्ता निभ्ने र अलिकति घिउलाई खाने, बाँकी छाडिदिने भएजस्तै त्यहाँको कुरा हो। कुनै चुलोमा दन्किएको ज्वालामा हालेको जेपनि भस्म हुने र जङ्गल वा घरमा आगो सल्किनाले सबैलाई त्यस आगोले भस्म गरेजस्तै त्यहाँ एउटा मन्दिर, कुण्ड र यताउति नलको रचनाबाहेक खासकुरा के छ र? हिंगजालमा कुनै सवारी हुँदैन, त्यहाँ हुने सबैकुरा पोप–पुजारी का लीलाबाहेक अरू केही पनि होइन। एउटा पानी र हिलोको कुण्ड बनाइएको छ। यसको मुन्तिरबाट बुलबुला उठ्दछन्। मूर्खहरू त्यसैलाई यात्राको सफलता मान्दछन्। तिनीहरूले धनहरण गर्नका निम्ति योनिको यन्त्र बनाउन लगाएर राखेका हुन्। अनि ठुमरा=जन्तर पनि त्यस्तै पोपलीलाकै हुन्। त्यसबाटै महापुरुष हुनेभए एउटा पशुमाथि ठुमराको भारी बोकाइदिएमा के त्यो महापुरुष हुनेछ? महापुरुष त धेरै उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थबाट भइन्छ।

प्रश्न—अमृतसरको पोखरी अमृतरूप छ, एउटा मुरेठीको फल आधा गुलियो हुन्छ र एउटा भित्तो नुहेपनि झर्दैन। रेवालसरमा बेडा वार–पार तर्दछन्, अमरनाथमा आफैं नै लिङ्ग बन्दछन्, हिमालयबाट परेवाको जोडी आएर सबैलाई दर्शन दिएर जान्छन्। के यो कुरा पनि मान्न योग्य होइन?

उत्तर—होइन। त्यस पोखरीको नाममात्र अमृतसर हो। कुनैबेला त्यहाँ जङ्गल हुँदा त्यसको पानी राम्रो–मीठो हुँदो हो। यसैले त्यसको नाम 'अमृतसर' राखिएको होला। पुराणीहरूले मानेजस्तै अमृत हुँदो हो त कोहीपनि किन मर्दो हो? भित्ताको बनावट नै नुहुने तर नलड्ने किसिमको होला। रीठा कलमका पैबन्दी होलान् अथवा गफमात्र होला। रेवालसरमा बेडा तर्दछन् भन्ने कुरामा केही कारीगरी हुनुपर्दछ। अमरनाथमा हिउँका पहाड बन्दछन् भने पानी जमेर स–साना लिङ्ग बन्नुमा कुन ठूलो आश्चर्य हो? अनि परेवाको जोड़ा भने पालिएका हुँदा हुन्, पहाड़को कोल्टोतर्फबाट तिनलाई उडाएर देखाएर मानिस

धनसम्पत्ति हरण गर्दाहुन्।

प्रश्न—हरद्वार स्वर्गको द्वार हो, हरकी पैडीमा स्नान गर्नाले पाप छुट्तछन्। तपोवनमा बस्नाले तपस्वी भइन्छ। देव प्रयाग, गंगोत्तरीमा गोमुखको र उत्तरकाशीमा गुप्तकाशी, त्रियुगीनाराणको दर्शन हुन्छ। केदार र बद्रीनारायणको पूजा ६ महिनासम्म मानिस र ६ महिना देवताहरू गर्दछन्। नेपालमा पशुपति महादेवको मुख हो, नितम्ब केदार हो, घुँडा तुङ्गनाथमा र गोडा अमरनाथमा छन्। यिनको दर्शन, स्पर्शन र स्नान गर्नाले मुक्ति हुन्छ। त्यहाँ केदार र बद्रीबाट स्वर्ग जानचाहेमा जान सकिन्छ। इत्यादि कुरा कस्ता हुन्?

उत्तर—हरद्वार उत्तरबाट पहाडतर्फ जान एउटा बाटोको आरम्भ हो। 'हरकीपौड़ी' भनेको स्नानका निम्ति बनाइएको खुड्किला समेत रहेको एउटा कुण्ड हो। त्यसमा देश–देशान्तरका मृतकका हाड़ हालिने हुनाले साँच्चै भनौं भने त्यो त 'हाडपैडी' हो। पाप नभोगिकन न त छुट्तछन् न काटिन्छन्। 'तपोवन' जहिले थियो थियो, अब त त्यो 'भिक्षुकवन' छ। तपोवनमा जानाले वा बस्नाले कहिल्यै तप हुँदैन, तप त गर्नाले हुन्छ। त्यहाँ त धेरैजसो झूट बोल्ने पसलेहरूपनि बस्तछन्, के तिनको पनि पाप छुट्नेछ?

'हिमवतः प्रभवति गङ्गा' पर्वतको माथिल्लो भागबाट पानी खस्तछ। गोमुखको आकार पैसा ठग्नेहरूले बनाएका होलान् र त्यही पहाड़ पोप–पुजारीहरूको स्वर्ग हो। त्यहाँ उत्तरकाशी आदि ठाउँ ध्यान गर्नेहरूका लागि राम्रो छ तर त्यहाँ पनि व्यापारीहरूको व्यापार नै चल्दछ। **'देवप्रयाग'** पुराणका गफहरूको लीला हो अर्थात् अलखनन्दा र गङ्गा मिलेको ठाउँमा देवता बस्तछन् भन्ने गफ न हाँकेमा त्यहाँ को जान्छ र धन कसले दिने? गुप्तकाशी होइन त्यो त प्रसिद्ध काशी हो। त्यहाँ तीन युगको धुनी त देखिंदैन तर पोप–पुजारीका दस–बीस पुस्ताको भने हुनसक्तछ। त्यो खाखीहरूको धुनी र पारसीहरूको अग्यारी सधैं बलेजस्तै हो। पहाडभित्र ऊष्मा=गर्मी हुन्छ, त्यसैमा तातेर आएको पानीको कुण्ड नै **'तप्तकुण्ड'** हो। त्यसको नजिकै अर्को कुण्डमा माथि गर्मी नभएको ठाउँको पानी आउँछ, यसकारण त्यो चिसो छ। केदारको ठाउँ धेरै राम्रो छ। तर त्यहाँपनि एउटा स्थिर ढुङ्गामाथि पुजारी वा तिनका चेलाले मन्दिर बनाएका छन्। त्यहाँ महन्त, पुजारी, पण्डा–पुरेत धन भैकनका अन्धाहरूबाट धन लिएर विषय भोगको आनन्द लिन्छन्। त्यस्तै बद्रीनारायणमा धेरैजसो ठगविद्यावान् बस्तछन्।

त्यहाँका प्रमुख '**रावलजी**' छन्, एउटी स्त्रीलाई छोडेर अनेक स्त्री राखेका छन्। **एउटा मन्दिरको नाम पशुपति र मूर्त्तिको नाम 'पञ्चमुखी' राखेका छन्। सोधपुछ गर्ने कोही नहुँदा नै यस्ता लीला बढ्दैजान्छन्। तर तीर्थका व्यक्ति जस्तो धूर्त्त धन ठग्ने हुन्छन्, पहाडबासीहरू त्यस्ता हुँदैनन्। त्यहाँको भूमि बडो रमणीय र पवित्र छ।**

प्रश्न—विन्ध्याचलमा विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य हुन्। विन्ध्येश्वरी तीन समयमा तीन रूप बदल्दछिन्। उनको टहरोमा एउटा झिंगो पनि हुँदैन। प्रयाग तीर्थराज हो, त्यहाँ टाउको खौरिनाले सिद्धि हुन्छ। गङ्गा–यमुनाको सङ्गममा स्नान गर्नाले इच्छासिद्धि हुन्छ। त्यस्तै '**अयोध्या**' नगरी धेरैपटक उडेर बस्तीसहित स्वर्ग गइन्। '**मथुरा**' सबै तीर्थभन्दा धेरै हो, '**वृन्दावन**' लीला–स्थान हो र गोवर्धन ब्रजयात्रा ठूलो भाग्यले मात्र हुन्छ। सूर्यग्रहणमा कुरुक्षेत्रमा लाखौंको मेला हुन्छ। यी सबै कुरा के मिथ्या हुन्?

उत्तर—प्रत्यक्षरूपमा त विन्ध्येश्वरीमा तीन मूर्त्ति आँखैले देखिन्छन् र ती तिनै ढुङ्गाका मूर्त्ति हुन् तथा तीन कालमा तीन प्रकारको रूप देखिने कारण भने पुजारीहरूद्वारा वस्त्र–आभूषण आदि लगाइदिने चातुर्य हो। अनि झिंगा त हजारौं लाखौं हुन्छन्, मैले आफ्नै आँखाले देखेको छु। '**प्रयागमा**' कोही हजाम (नाईं) श्लोक बनाउन जान्ने हुँदो हो, अथवा उसले पोप–पुजारीलाई केही धनदिएर मुण्डनको माहात्म्य बनाएको वा बनाउन लगाएको हुनुपर्दछ। प्रयागमा स्नान गर्नाले स्वर्ग गइन्छ भने घर घर फर्किने कोही पनि त नदेखिनु पर्ने हो, तर सबै घर फर्केका देखिन्छन्। अथवा त्यहाँ कोही डूबेरै मर्यो भने उसको जीव पनि आकाशमा वायुसँग घुमेर पुनः जन्म लिदो नै हो। '**तीर्थराज**' नाम पनि धन ठग्नेहरूले राखेका हुन्। जड़वस्तुमा राजा–प्रजाभाव कहिल्यै हुनसक्तैन। अयोध्यानगरी पूरै बस्ती=कुकुर, गधा, च्यामे, पोडे, चोर, जार आदिसमेत तीनपटक स्वर्ग पुगेको भन्ने कुरा पूर्णतया असम्भव छ। अयोध्या त स्वर्ग गएको छैन, जहाँको त्यहीं छ, तर पोप–पुजारीका मुख र गफमा भने अयोध्या स्वर्गतर्फ उडेको हो। यो शब्दरूपी गफ उड्ने–फिर्ने गर्दछ। यस्तै नैमिषारण्य आदिका कुरा पनि यिनैका लीला हुन् भन्ने बुझ्नुपर्दछ।

'**मथुरा**' तिनैलोकमा निरालो=विशेष त होइन तर त्यहाँ तीन जन्तु भने अवश्य ठूलो लीलाधारी छन्। तिनै तीन किसिमका जन्तुको

कारण जल, थल र अन्तरिक्षमा कसैलाई सुख प्राप्तहुन बडो कठिन हुन्छ। पहिला—'**चौबे**' स्नान गर्न जानेहरूसँग आफ्नो कर लिन पर्खिरहेका र कराइरहेका हुन्छन्—'ल्याऊ यजमान! भाङ्, खुर्सानी र लड्डु खाऔं, पिऔं र यजमानकै जय जय मनाऔं।' दोस्रो—'**कछुवा**' पानीमा टोकिहाल्ने किसिमका हुन्छन्, तिनैको कारण घाटमा स्नान गर्न पनि कठिन हुन्छ। तेस्रो—माथि आकाशमा अर्थात् रुख आदिमा राता–राता मुख भएका **बाँदर** दोपट्टा, टोपी, गहना र जुत्ता पनि छाड्दैनन्। मानिसलाई पनि टोक्छन्, धक्का दिएर लडाउँछन्, मार्दछन्। यी तिनै पोप र पोपका चेलाहरूका पूजनीय हुन्छन्। मानौं चना आदि अन्नबाट कछुवाको, चना–सखर आदिबाट बाँदरको र दक्षिणा तथा लड्डू आदिबाट चौबेहरूको सेवा तिनका सेवकहरू गर्दछन्। अनि वृन्दावन जब लीलास्थान थियो थियो, अब त '**वेश्यावान्**' जस्तै उच्छृङ्खल युवा–युवती र गुरु–चेलीका लीला फैलिरहेछन्। त्यस्तै दीपमालिकाको मेला हुने गोवर्द्धन र ब्रजयात्रामा पनि पोपहरूले भनेजस्तै हुन्छ। कुरुक्षेत्रमा पनि उही पेट पाल्ने लीला हो भन्ने बुझ्नुपर्दछ। यिनमा कोही धार्मिक परोपकारी व्यक्ति भएमा ऊ यस पोपलीलादेखि छुट्टै रहन्छ।

प्रश्न—सनातनदेखि चलिआएको मूर्त्तिपूजा र तीर्थ कसरी झूठा हुनसक्छन् र?

उत्तर—तिमी सनातन केलाई भन्दछौ? परा–पूर्वदेखि चलिआएकोलाई सनातन भनिन्छ। यो मूर्त्तिपूजा र तीर्थ परापूर्वकालदेखि चलिआएको भए वेद र ऋषिमुनिकृत ग्रन्थहरूमा यिनको नाम किन कतै छैन? यो मूर्त्तिपूजा साढे दुई–तीनहजार वर्ष यता वाममार्गीहरू र जैनीहरूबाट चलेको हो। त्यसअघि आर्य्यावर्त्तमा न त मूर्त्तिपूजा थियो, न यी तीर्थ थिए। जैनीहरूले गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय र आबू आदि तीर्थ बनाएपछि तिनकै देखासिकी यिनीहरूले पनि बनाए। यिनको आरम्भको खोज गर्न चाहनेले पण्डाहरूका सबैभन्दा पुराना बहीखाता र ताम्रपत्र आदि हेरेमा यी सबै तीर्थ पाँचसय वा एक हजार वर्ष यता नै बनेका हुन् भन्ने कुरा निश्चित हुनेछ। एक हजार वर्ष उताको लेख कसैसँग पनि उपलब्ध हुँदैन, यसकारण यी सबै आधुनिक हुन्, न कि सनातन।

प्रश्न—'**अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति**' इत्यादि तीर्थका माहात्म्य वा नाम माहात्म्यका कुरा सच्चा हुन् वा होइनन्?

उत्तर—होइनन्। पाप छुट्ने भए दरिद्रलाई धन, राजपाट, अन्धालाई आँखा प्राप्त हुनुपर्ने हो, कोढीको कोढ छुट्नुपर्ने हो, तर यस्तो हुँदैन। यसकारण कसैको पाप वा पुण्य छुट्तैन।

प्रश्न— गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराणका हुन्। सैकडौं, हजारौं कोस टाढाबाट पनि गङ्गा-गङ्गा भन्नेका सबै पाप नष्ट भएर ऊ विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ पुग्दछ॥ १॥ **'हरि'** यी दुई अक्षरको नामको उच्चारणले सबै पाप नष्ट गर्दछ। त्यस्तै राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामको माहात्म्य छ॥ २॥ शिवको अर्थात् लिङ्ग या त्यसको मूर्त्तिको दर्शन विहानै गर्ने व्यक्तिको रात्रिमा गरिएको, मध्याह्नमा दर्शन गर्नाले जन्मभरिको तथा सायंकाल दर्शन गर्नाले सातजन्मको पाप छुट्तछ। दर्शनको यो माहात्म्य छ॥ ३॥ के यो झूटो हुनसक्तछ?

उत्तर—गङ्गा गङ्गा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव र भगवती आदि नाम स्मरणले कहिल्यै पाप नछुट्ने हुँदा उक्त कुरा झूटो हो भन्ने कुरामा शङ्कै छैन। त्यसरी पाप छुट्ने भए कोही पनि दुःखी रहने थिएन। हिजोआज पोपलीला अन्तर्गत पाप बढिरहेजस्तै पाप गर्नदेखि कोही डराउने पनि छैन। हामीले पाप गरेर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा गर्नाले सबै पाप छुट्नेछन् भन्ने विश्वास मूर्खहरूलाई मात्र छ। ती मूर्खहरू यसै विश्वासको आधारमा पाप गरेर यस लोक र परलोकलाई बिगार्दछन्। गरेको पाप वास्तवमा भोग्नैपर्दछ।

प्रश्न—त्यसोभए कुनै तीर्थ, नामस्मरण सत्य छ वा छैन?

उत्तर—छ। वेदादि सत्यशास्त्रलाई पढ्नु-पढाउनु, धार्मिक विद्वान्हरूको सङ्गत, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्यलाई मान्नु, सत्य व्यवहार गर्नु, ब्रह्मचर्यपालन, आचार्य्य-अतिथि-आमा-बाबुको सेवा, परमेश्वरको स्तुति-प्रार्थना-उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान, विज्ञान आदि शुभ गुण तथा कर्म दुःखहरूबाट पार उतार्ने हुनाले तीर्थ हुन्। जल स्थलमय स्थान विशेष कहिल्यै तीर्थ हुनसक्दैनन्। किनभने **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'** जे-जसो गर्नाले मानिस दुःखबाट पार उत्रन्छन्

तिनकै नाम तीर्थ हो। जल-स्थल पार उतार्ने होइन डुबाएर मार्ने चाहिं हुन्छन्। बरू समुद्र आदिबाट पार उत्रने साधन डुङ्गा आदिको नाम तीर्थ हुनसक्तछ।

समानतीर्थे वासी॥ १॥ —अष्टाध्यायी ४।४।१०७

नमस्तीर्थ्याय च॥ २॥ —यजुर्वेद १६।४२

एउटा आचार्य्यबाट एउटा शास्त्र सँगसँगै पढ्ने सबै ब्रह्मचारी सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थको सेवन गर्ने हुन्छन्। वेदादिशास्त्र र सत्यभाषण आदि धर्मका लक्षणमा श्रेष्ठ व्यक्तिलाई अन्न आदि पदार्थ दिनु र तीबाट विद्याग्रहण गर्नु आदि तीर्थ भनिन्छन्। नामस्मरण यसलाई भनिन्छ—

यस्य नाम महद्यशः॥ —यजुर्वेद ३२।३

परमेश्वरको नाम ठूलो यश अर्थात् धर्मयुक्त कर्म गर्नु हो। जस्तै—ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वरका गुण, कर्म, स्वभावबाटै रहेका हुन्। जस्तै—**'ब्रह्म'**=सबैभन्दा ठूलो, **'परमेश्वर'**=ईश्वरहरूको पनि ईश्वर, **'ईश्वर'**=सामर्थ्ययुक्त, **'न्यायकारी'**=कहिल्यै अन्याय नगर्ने, **'दयालु'**=सबैमाथि कृपादृष्टि राख्ने, **'सर्वशक्तिमान्'**=आफ्नै सामर्थ्यबाटै सबजगत्को उत्पत्ति, स्थिति र प्रलय गर्ने, कसैको सहायता नलिने, **'ब्रह्म'**=जगत्का विविध पदार्थ बनाउने, **'विष्णु'**=सबैमा व्यापक भएर रक्षा गर्ने, **'महादेव'**=सबै देवहरूको पनि देव, **'रुद्र'**=प्रलय गर्ने आदि नामको अर्थलाई आफूभित्र धारण गर्नुपर्दछ। अर्थात् ठूला काममा ठूलो हुनु, समर्थहरूमा समर्थहुनु र आफ्ना सामर्थ्यलाई बढाउँदै जानुपर्दछ। कहिल्यै अधर्म गर्नुहुँदैन, सबैमाथि दयाभाव राख्नुपर्दछ। सबै किसिमका साधनलाई समर्थ बनाउनु पर्दछ। शिल्पविद्याबाट नाना किसिमका पदार्थ बनाउनुपर्दछ। सब संसारमा आफ्नो आत्मामा जस्तै सुख-दुःख सम्झनुपर्दछ। सबैको रक्षा गर्नु र विद्वान्हरूमा पनि विद्वान् हुनुपर्दछ। दुष्ट कर्म गर्नेलाई प्रयत्नपूर्वक दण्ड दिनु-दिलाउनु र सज्जनहरूको रक्षा गर्नुपर्दछ। यसरी परमेश्वरका नामहरूको अर्थ जानेर आफ्ना गुण, कर्म, स्वभावलाई परमेश्वरको गुण, कर्म, स्वभावको अनुकूल बनाउँदै जानु नै परमेश्वरको नामस्मरण गर्नु हो।

प्रश्न—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरु माहात्म्य त सच्चा हो? गुरुका गोडा धोएर पानी खानु तथा गुरुले आज्ञा दिएअनुसार नै कर्म गर्नुपर्दछ। गुरु लोभी भए

वामनजस्तो, क्रोधी भए नृसिंहजस्तो, मोही भए रामजस्तो र कामी भए कृष्णजस्तो गुरुलाई सम्झनुपर्दछ। गुरुजीले जस्तोसुकै पाप गरेपनि गुरुप्रति अश्रद्धा गर्नुहुँदैन। साधु–सन्त वा गुरुको दर्शन गर्न जाँदा पाइलैपिच्छे अश्वमेधको फल पाइन्छ। यो कुरा ठीक हो वा होइन?

उत्तर—ठीक होइन। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर र परब्रह्म नाम परमेश्वरका हुन्। गुरु त्यस परमेश्वरको दाँजोमा कहिल्यै पुग्नसक्तैन। यो गुरु माहात्म्य गुरुगीता पनि एउटा ठूलो पोपलीला हो। 'गुरु' त आमा, बाबु, आचार्य र अतिथि हुन्छन्। तिनकै सेवा गर्नु, तीबाट शिक्षा लिनु–दिनु शिष्य र गुरुको काम हो। तर गुरु लोभी, क्रोधी, मोही र कामी छ भने उसलाई सर्वथा छोड्नु र उक्त दुर्गुण त्याग्ने शिक्षा, उपदेश गर्नुपर्दछ। राम्रो मुखले सम्झाउँदा नमानेमा अर्घ्य–पाद्य अर्थात् ताडनादण्ड=कुटपीट गर्नु र त्यसबाट पनि नमानेमा प्राणै लिनमा पनि कुनै दोष हुँदैन। विद्या आदि सद्‌गुणमा गुरुत्व हुँदैन भने उक्त विद्या आदि नभएको र देखावटी कंठी, तिलक धारण गर्ने र वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश गर्नेहरू गुरु नभएर गोठाला जस्ता हुन्। गोठालाले आफ्ना भेडा बाख्राबाट दूध आदि प्रयोजन सिद्ध गरेजस्तै तिनीहरू पनि शिष्य वा चेला–चेलीको धनहरण गरेर आफ्नो स्वार्थपूर्ति गर्दछन्। तिनीहरू—

दोहा— गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
भव सागरमें डुबते, बैठ पत्थरकी नाव॥

गुरु, 'चेला चेलीले केही न केही दिने नै छन्' भन्ने सम्झन्छन् र चेला भने 'ठिकै छ, गुरु झूटा किरिया खान र पाप छुटाउने काममा आउने नै छन्' भन्ठान्दछन्। यस्तै लोभ–लालचले गर्दा ती दुबै कसैमुनि ढुङ्गाका डुङ्गामा बसेर समुद्र तर्न खोज्नेहरू समुद्रमा डुबे जस्तै भवसागरको दुःखमा डुब्दछन्। यस्ता गुरु र चेलाको मुखमा धुलो र खरानी परोस् अर्थात् यस्ताले त माटै खाऊन्। त्यस्ताको अगाडि उभिनु पनि हुँदैन। त्यस्ताको नजिक पुग्ने व्यक्ति दुःखसागरमा पर्नेछ। जस्तो पोपलीला पुजारी–पुराणीहरूले चलाए, त्यस्तै यी गोठाला गुरुहरूले पनि लीला मच्चाएका छन्। यो सब स्वार्थीहरूको काम हो। परमार्थी व्यक्ति त आफू दुःख उठाएर पनि जगत्‌को उपकार गर्न छोड्दैनन्। गुरुमाहात्म्य र गुरुगीता आदि पनि यिनै लोभी, कुकर्मी गुरुहरूले बनाएका हुन्।

प्रश्न— अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः॥ १॥
इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥ २॥

—महाभारते, आदिपर्व ३।२६७

पुराणानि खिलानि च॥ ३॥ —मनुस्मृति ३।२३२
इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः॥ ४॥
—छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।४
दशमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत॥ ५॥
पुराण विद्या वेद॥ ६॥ —सूत्रम्

अठार पुराणका कर्त्ता व्यासजी हुन्। व्यासवचनको प्रमाण अवश्य मान्नुपर्दछ॥ १॥ इतिहास र पुराण वेदकै अर्थको अनुकूल हुनाले इतिहास, महाभारत, अठार पुराणबाट वेदको अर्थ बुझ्नु–बुझाउनु पर्दछ॥ २॥ पितृकर्ममा पुराण र खिल अर्थात् हरिवंशको कथा सुन्नुपर्दछ॥ ३॥ इतिहास र पुराण पाँचौं वेद भनिन्छन्॥ ४॥ अश्वमेधको समाप्तिमा दसौं दिन अलिकति केही पुराणको कथा सुन्नुपर्दछ॥ ५॥ वेदको अर्थ बताउने हुँदा पुराणविद्या वेद नै हो॥ ६॥ इत्यादि प्रमाणहरूबाट पुराण प्रमाणिक ठहरिन्छन् र पुराणहरूमा मूर्त्तिपूजा र तीर्थस्थलको विधान हुनाले पुराणका प्रमाणबाट मूर्त्तिपूजा र तीर्थहरू प्रामाणिक सिद्ध हुन्छन्॥

उत्तर—अठार पुराणका कर्त्ता व्यासजी भएका भए तिनका यतिका झूठा गफ हुने थिएनन्। शारीरकसूत्र, योगशास्त्रकको भाष्य आदि व्यासकृत ग्रन्थ हेर्दा व्यासजी ठूला विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थिए भन्ने कुरा बुझिन्छ। उनले यस्ता झुठा कथा कहिल्यै लेख्नेथिएनन्। यसबाट सम्प्रदायी, परस्पर विरोधी व्यक्तिहरूले बनाएका नयाँ कपोलकल्पित ग्रन्थहरूमा व्यासजीका गुणहरूको लेशमात्र पनि थिएन भन्ने बुझिन्छ। वेदशास्त्र विरुद्ध असत्य कुरा लेख्ने काम व्यासजस्ता विद्वान्हरूको होइन, यो काम त वेदशास्त्रविरोधी, स्वार्थी अविद्वान्हरूको हो। सत्यशास्त्रहरूमा इतिहास र पुराण भनेर शिवपुराण आदिको नाम भनिएको होइन। त्यो त—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥

यो ब्राह्मणग्रन्थ र सूत्रहरूको वाक्य हो। ऐतरेय, शतपथ, साम र गोपथ यी ब्राह्मणग्रन्थकै पाँच नाम—'इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा र नाराशंसी' छन्। '**इतिहास**'—जस्तै जनक र याज्ञवल्क्यको संवाद, **पुराण**—जगत्‌को उत्पत्ति आदिको वर्णन, '**कल्प**'—वेदका शब्दहरूको सामर्थ्यको वर्णन र अर्थ निरूपण गर्नु, '**गाथा**'—कसैको दृष्टान्त–दार्ष्टान्तिरूप कथा–प्रसंग भन्नु, '**नाराशंसी**'—मानिसका प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्महरूको कथन गर्नु, यिनको यथार्थ तात्पर्य हो। यिनैबाट वेदार्थको ज्ञान हुन्छ। पितृकर्म अर्थात् ज्ञानीहरूको प्रशंसामा केही सुन्नु

र अश्वमेधको अन्त्यमा पनि यिनैलाई सुन्नुपर्ने कुरा लेखिएको छ। व्यासकृत ग्रन्थलाई सुन्ने–सुनाउने काम व्यासजीको जन्मपछि हुनसक्तछ, त्यसअघि हुनसक्तैन। व्यासजीको जन्म हुनुअघि पनि वेदार्थ पढ्ने–पढाउने, सुन्ने–सुनाउने काम हुन्थ्यो। यसैकारण सबैभन्दा प्राचीन ब्राह्मण–ग्रन्थमा नै यो सबै घटित हुनसक्तछ। यी नयाँ कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत्, शिवपुराण आदि मिथ्या वा दूषित ग्रन्थहरूमा उक्त कुरा घटित हुनसक्तैन।

व्यासजीले वेद पढेर, पढाएर, वेदार्थ फैलाएको हुनाले उनको नाम '**वेदव्यास**' भएको हो। वार–पारको मध्यरेखालाई 'व्यास' भनिन्छ यस्तै उनले ऋग्वेदको आरम्भ देखि लिए अथर्ववेदको अन्त्यसम्म चारै वेद पढेका थिए र शुकदेव तथा जैमिनी आदि शिष्यहरूलाई पढाएका पनि थिए। नत्र उनको जन्मको नाम त '**कृष्णद्वैपायन**' थियो। वेदलाई व्यासजीले एकत्रित गरेका हुन् भन्ने कुरा झूटो हो। व्यासजीका पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वशिष्ठ र ब्रह्मा आदिले पनि चारै वेद पढेका थिए। व्यासजीले वेद एकत्र गरेका भए उनका बाबु–बराजुले कसरी वेद पढे ?

प्रश्न—पुराणमा सबै कुरा झूठा छन् अथवा कुनै कुरा सच्चा पनि छन् ?

उत्तर—धेरैजसो कुरा झूठा छन् भने कुनै कुरा घृणाक्षरन्यायले सच्चा पनि छ। सच्चा कुरा जति वेदादि सत्यशास्त्रका र झूठा जति ती पोपका पुराणरूपी घरका हुन्। जस्तै शिवपुराणमा शैवहरूले शिवलाई परमेश्वर मानेर विष्णु, ब्रह्म, इन्द्र, गणेश र सूर्य्य आदिलाई शिवका दास बताए। वैष्णवले विष्णुपुराण आदिमा विष्णुलाई परमात्मा मानेर शिव आदिलाई विष्णुका दास माने। देवीभागवतमा देवीलाई परमेश्वरी र शिव, विष्णु आदिलाई उसका नोकर बनाए। गणेशखण्डमा गणेशलाई ईश्वर र बाँकी सबैलाई दास भने। यी सबै कुरा सम्प्रदायीहरूका होइनन् भने कसका हुन् त ? एउटै मानिसले बनाएको ग्रन्थमा यस्ता परस्परविरुद्ध कुरा हुँदैनन्, अझ विद्वान्ले बनाएकोमा त यस्तो हुनैसक्तैन। यिनमा एउटा कुरालाई सत्य मानेमा दोस्रो झूठो, दोस्रोलाई सत्य माने तेस्रो झूटो र तेस्रोलाई सत्य माने अरू सबै झूटा ठहर्दछन्।

शिवपुराण मान्नेले शिवबाट, विष्णुपुराणीले विष्णुबाट, देवीपुराणका अनुयायीले देवीबाट, गणेशखण्डीले गणेशबाट, सूर्यपुराणीले सूर्यबाट र वायुपुराणीले वायुबाट सृष्टिको उत्पत्ति, प्रलय लेखेर फेरि एक–एकबाट जगतको एउटा–एउटा कारण बताए र तिनको उत्पत्ति एक–

एकबाट भयो भने। यिनीहरूसँग कसैले 'जगत्को उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय गर्ने उत्पन्न हुन र उत्पन्न भएको सृष्टिको कारण हुन के कहिल्यै सक्तछ ?' भनी सोधेमा चुपलाग्नुबाहेक केही पनि भन्न सक्तैनन्। अनि यी सबैका शरीरको उत्पत्ति पनि यसैबाट भयो होला। त्यसो हुँदा ती आफैं सृष्टिका पदार्थ र परिच्छिन्न भएर पनि संसारको उत्पत्तिकर्त्ता कसरी हुन सक्छन् ? अनि तिनमा उत्पत्ति पनि अत्यन्त विलक्षण एवं असम्भव किसिमको मानिएको छ। जस्तै—

शिवपुराणमा—शिवले 'म सृष्टि गरूँ' भन्ने इच्छा गर्दा एउटा नारायण जलाशयलाई उत्पन्न गरेर त्यसको नाभिबाट कमल र कमलबाट ब्रह्मा उत्पन्न भयो। उसले यो सबै जलमय देख्यो। पानीको अञ्जलि उठाएर हेरेर पानीमै फाल्यो। त्यसबाट एउटा बुलबुलो उठ्यो र बुलबुलाबाट एउटा पुरुष उत्पन्न भयो। त्यसले ब्रह्मासँग 'हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न गर' भन्यो। ब्रह्माले ऊसँग 'म तेरो पुत्र होइन, तँ मेरो पुत्र होस्' भन्यो। तिनमा विवाद भयो र हजारौं दिव्य वर्षसम्म दुबै पानीमै लडिरहे। तिनको लडाइँ देखेर महादेवले 'जस–जसलाई मैले सृष्टि गर्न पठाएको थिएँ, ती दुबै त लडिरहेछन्' भन्ने सोचे, अनि ती दुबैको बीचबाट एउटा तेजोमय लिङ्ग उत्पन्न भयो र त्यो छिटै आकाशमा फैलिंदै गयो। आश्चर्यचकित भई त्यसको आदि–अन्त्य थाहा पाउने विचार गरे र पहिले आदि–अन्त्य पता लगाएर आउने पिता र पछि पत्ता लगाउने वा पत्ता लगाउन नसक्ने पुत्र हुने निधो दुबैले गरे। विष्णु कछुवाको रूप धारण गरेर तल्तिर लाग्यो र ब्रह्मा हाँसको शरीर धारण गरेर मास्तिर उड्यो। दुबै मन जत्तिकै तेजीका साथ हिंडे। दिव्यसहस्र वर्षसम्म दुबै हिंडिरहे तर त्यसको अन्त्य पाउन सकेनन्। अनि विष्णु तलबाट मास्तिर लाग्यो र ब्रह्मा माथिबाट तल्तिर झर्यो। ब्रह्माले सोच्यो, 'उसले पत्ता लगाइसकेको रहेछ भने मैले पुत्र बन्नुपर्नेछ।' यस्तो विचार गर्दा–गर्दै एउटा गाई र एउटा क्यातुकेको बोट माथिबाट झरे। ब्रह्माले तीसँग 'तिमीहरू कहाँबाट आयौ' ? भनी सोध्यो। तिनले 'हामी हजारौं वर्षदेखि यस लिङ्गको आधारबाट आइरहेका छौं' भने। ब्रह्माले फेरि सोध्यो—'यस लिङ्गको आदि वा अन्त्य छ वा छैन ?' तिनले उत्तर दिए—'छैन'। ब्रह्माले तीसँग भन्यो—'तिमीहरू मसँग हिंड र गाईले चाहिं 'म यस लिङ्गको टाउकोमा दूधको धारा बहाउने गर्दथें' भन्ने साक्षी देऊ र वृक्षले चाहिं 'म पुष्पवर्षा गर्दथें' भन। यस्तो साक्षी बकिदिन्छौ भने म तिमीहरूलाई ठाउँमा पुर्याइदिन्छु।' तिनले 'हामी झूटो साक्षी दिन्नौं'

भने। अनि ब्रह्माले क्रोधित भएर 'यस्तो साक्षी दिंदैनौ भने म तिमीहरूलाई अहिल्यै भस्म गरिदिन्छु' भन्यो। तब दुबैले डराएर 'जसो तिमी भन्छौ त्यस्तै साक्षी दिनेछौं' भने। अनि ती तिनै तल्तिर लागे।

विष्णु पहिल्यै आइपुगेको थियो, ब्रह्मा पनि पुग्यो। ब्रह्माले विष्णुसँग 'थाहा पाइस् वा पाइनस्' भनी सोध्यो। विष्णुले 'मैले यसको थाहा पाइँन' भन्यो। ब्रह्माले 'मैले थाहा पाएँ' भन्यो। विष्णुले 'कुनै साक्षी देऊ' भन्यो। अनि गाई र वृक्षले 'हामी दुबै लिङ्गको टाउकोमा थियौं' भनी साक्षी दिए। त्यत्तिकैमा लिङ्गबाट शब्द निस्कियो र वृक्षलाई सराप्यो—तैंले झूट बोलिस्, यसकारण तेरो फूल म वा अरू कुनै देवतामाथि कहिल्यै चढाइने छैन, कसैले चढायो भने चढाउनेको सत्यानाश हुनेछ। गाईलाई श्राप दियो—'जुन मुखबाट तैंले झूट बोलिस्, त्यसै मुखले दिसा खाने गर्नेछस्। कसैले तेरो मुखको पूजा गर्नेछैन, तर पुच्छरको पूजा गरिनेछ।' ब्रह्मालाई श्राप दियो—'तैंले पनि झूट बोलिस्, अतः संसारमा कतै पनि तेरो पूजा हुनेछैन।' र विष्णुलाई वर दियो—'तैंले सत्य बोलिस्, अतः सर्वत्र तेरो पूजा हुनेछ।'

अनि दुबैले लिङ्गको स्तुति गरे। त्यसबाट प्रसन्न भएर त्यस लिङ्गबाट एउटा जटाधारी मूर्त्ति निस्कियो। मूर्त्तिले 'मैले तिमीहरूलाई सृष्टि गर्न पठाएको थिएँ, किन झगडा गरिरह्यौ ?' भन्यो। ब्रह्मा र विष्णुले 'सामानै नभइ हामी कहाँबाट सृष्टि गरौं ?' भने। त्यसपछि महादेवले आफ्नो जटाबाट एउटा भस्मको गोलो दियो र 'जाओ, यसैबाट सबै सृष्टि बनाओ' भन्यो। इत्यादि।

यी पुराण बनाउनेहरूसँग यति त सोध्नैपर्छ कि—जब सृष्टिका तत्त्व र पञ्चमहाभूत पनि थिएनन् भने त्यतिखेर ब्रह्मा, विष्णु, महादेवका शरीर, जल, कमल, लिङ्ग, गाई र क्यातुकेको रुख र भस्मको गोलो के तिम्रा बाबुको घरबाट आएर बजारिए ?

त्यस्तै भागवतमा विष्णुको नाभिबाट कमल, कमलबाट ब्रह्मा, ब्रह्माको दाहिना गोडाको औंठाबाट स्वायंभव, देब्रे औंठाबाट शतरूपा रानी, ललाटबाट रुद्र तथा मरीचि आदि दस पुत्र, तीबाट दस प्रजापति, तिनका तेह्र छोरीको विवाह कश्यपसँग, तीमध्ये दितिबाट दैत्य, दनुबाट दानव, अदितिबाट आदित्य, विनताबाट पक्षी, कद्रूबाट सर्प, सरमाबाट कुकुर, स्याल आदि र अरू स्त्रीहरूबाट हात्ती, घोडा, ऊँट, गधा, भैंसी, घाँस–पात र बबूल आदि वृक्ष काँडासमेत उत्पन्न भए।

अरे रे भागवत बनाउने लालबुझक्कड! के भनौं! तँलाई यस्ता–

यस्ता झूटा, असम्भव कुरा लेख्नमा अलिकति लाज–सरम पनि लागेन ? कोरा अन्धो नै भइस्। **स्त्री–पुरुषका रजवीर्यको संयोगबाट मानिस त बन्दछन् तर परमेश्वरको सृष्टिक्रमको विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कहिल्यै बन्न सक्तैनन्** भने हात्ती, ऊँट, सिंह, कुकुर, गधा र वृक्ष आदि स्त्रीको गर्भाशयमा स्थित हुने सम्भावना कहाँ रहन्छ र? अनि फेरि सिंह आदिले जन्मेर आफ्ना बाबु–आमालाई किन खाएनन् ? अझ मनुष्य शरीरबाट पशु, पक्षी, वृक्ष आदि कसरी उत्पन्न हुनसक्तछन् ?

यिनीहरूले बनाएको र हालसम्म पनि संसारलाई भ्रमित पारेको यस नितान्त असम्भव लीलाप्रति शोक प्रकट गर्दछु। यस्ता महाझूठा कुरालाई पनि ती अन्धा पोप=पुरेत–पुजारी र बाहिर–भित्रबाट आँखा फुटेका तिनका चेला सुन्दै र मान्दै आइरहेका छन्। ठूलो अचम्म त के हो भने यी मानिसै हुन् वा अरू केही हुन् ? यी भागवत आदि पुराण बनाउनेहरू गर्भमा वा जन्मनेबित्तिकै किन मरेनन् ? किनकि यी पापी पोपबाट बचेको भए आर्यावर्त्तदेश दुःखबाट बच्नेथियो।

प्रश्न—'जसको विवाह त्यसैको गीत' भनेजस्तै यी कुरामा विरोध हुनसक्तैन। विष्णुको स्तुति गर्दा विष्णुलाई परमेश्वर अरूलाई दास, अनि शिवको गुणगान गर्दा शिवलाई परमात्मा र अरूलाई नोकर चाकर बनाइएको वा बताइएको हो। अर्को कुरा, परमेश्वरको मायाबाट जेपनि हुन वा बन्न सक्तछ। परमेश्वर मानिसबाट पशु आदि र पशु आदिबाट मनुष्य आदिको उत्पत्ति गर्नसक्तछ। हेर, परमेश्वरले कारणविना नै आफ्नो मायाबाटै सम्पूर्ण सृष्टि खडा गरेको छ। त्यसमा घटित हुनसक्ने कुरा कुन चाहिं छ र ? परमेश्वर आफूले चाहेअनुसार जेपनि गर्नसक्तछ।

उत्तर—अरे सोझा भाइ हो! विवाहमा जसका गीत गाइन्छन्, त्यसैलाई सबैभन्दा ठूलो र अरूलाई सानो त बनाइँदैन, निन्दा गरिंदैन अथवा उसैलाई सबैको बाबु त बनाइँदैन। भन त पोपजी! तिमी चारण र भाटभन्दा पनि बढी झूठा गफी हौ वा होइनौ ? जसको पछि लाग्छौ, त्यसैलाई सबैभन्दा ठूलो बनाउँछौ वा बताउँछौ र जसको विरोध गर्दछौ, त्यसलाई सबैभन्दा नीच ठहर गर्दछौ। तिमीलाई सत्य र धर्मसँग के प्रयोजन छ र ? तिमीलाई त आफ्नो स्वार्थसँग मात्र मतलब छ। माया मानिसमा हुनसक्तछ। छली, कपटीलाई मायावी भनिन्छ। परमेश्वरमा छल, कपट आदि दोष नहुनाले उसलाई मायावी भन्न सकिन्न। आदि सृष्टिमा कश्यप र कश्यपकी पत्नीहरूबाट पशु, पक्षी, सर्प, वृक्ष आदि सन्तान भएका थिए भने तिनका त्यस्तै सन्तान हिजोआज किन हुँदैनन् ?

यस ग्रन्थमा अघि लेखिएको सृष्टिक्रम नै ठीक हो। पोपहरूले भने निम्न ठाउँमा धोका खाएर नै बक–बक गरेका हुन् भन्ने अनुमान छ—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥

—तुलना–शतपथ ७।५।१।५

शतपथमा 'यो सबै सृष्टि कश्यपले बनाएको हो' भनिएको छ।

कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति ॥ —निरुक्त

'पश्यक' अर्थात् '**पश्यतीति पश्यः एव पश्यकः**' निर्भ्रम भएर चराचर जगत्, सबै जीव र यिनका कर्म, सकल विद्यालाई यथावत् देख्ने हुनाले सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरको नाम 'कश्यप' हो तथा महाभाष्यको '**आद्यन्त–विपर्ययश्च**' यस वचनअनुसार आदिको अक्षर अन्त्यमा र अन्त्यको अक्षर आदिमा आउनाले 'पश्यक' बाट नै '**कश्यप**' भएको हो। यसको यथार्थ अर्थ नजानेर भाङ् खाएर सृष्टिविरुद्ध कुरा बताउनमा आफ्नो जन्म नष्ट गरेका हुन्।

जस्तै मार्कण्डेयपुराणको दुर्गापाठमा देवहरूका शरीरबाट तेज निस्किएर एउटी देवी बनी। त्यस महिषासुरलाई मारी। रक्तबीजको शरीरबाट एउटा थोपो रगत भुईंमा खस्ता त्यस्तै खालका रक्तबीज उत्पन्न हुनाले सब जगत्मा रक्तबीज भरिनु, रगतको खोलो बग्नु आदि धेरैजसो झूठा गफ लेखिएका छन्। रक्तबीजबाट पूरै जगत् भरिपूर्ण थियो भने देवी, देवीको सिंह र उसका सेना कहाँ बस्तथे? अनि रक्तबीज देवीभन्दा टाढा–टाढा थिए भन्छौ भने 'सम्पूर्ण जगत् रक्तबीजले भरिएको थिएन' भन्ने कुरा मान्नुपर्दछ। फेरी भरिएकै भए पशु, पक्षी, मनुष्य आदि प्राणी र पानीमा बस्ने ग्राह, कछुवा, माछा, वनस्पति आदि वृक्ष कहाँ रहन्थे? 'ती सबै त्यस दुर्गापाठ बनाउने पोपका घरमा भागेर पुगेका होलान् त?' भन्ने कुरा नै सोच्नुपर्ने हुन्छ। हेर, छेउ–टुप्पो केही नभएको कस्तो असम्भव गफ भाँङ्को लहरमा उडाएका छन्?

अब 'श्रीमद्भागवत' भनिनेको लीला सुन। ब्रह्माजीलाई नारायणले चतुःश्लोकी भागवतको उपदेश गरे—

ज्ञानं परमगुह्य मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥

—श्रीमद् भागवत् २।९।३०

अर्थ—हे ब्रह्माजी! विज्ञान र रहस्ययुक्त, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको अङ्ग मेरो परमगुह्यज्ञानलाई तिमी मबाट ग्रहण गर।

ज्ञानलाई विज्ञानयुक्त भनेपछि त्यसलाई परम भन्नु अर्थात् श्रेष्ठ

ज्ञानको विशेषण राख्नु व्यर्थै हुन्छ र गुह्य विशेषणबाट रहस्य पनि पुनरुक्त छ। मूल श्लोक नै पुनरुक्त भएपछि अरू अनर्थक किन हुँदैन? भागवतको मूल नै झूटो छ भने उसको वृक्ष झूटो किन छैन? नारायणले ब्रह्माजीलाई वर दिए—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

—श्रीमद् भागवत २।९।३६

तपाईं कल्प=सृष्टि र विकल्प=प्रलयमा पनि कहिल्यै मोहित हुनुहुनेछैन। यहाँ यसो भनिएको छ भने दशमस्कन्धमा (भागवत १०। अ० १३, १४) ब्रह्माले मोहित भएर बाछा चोरेको कुरा छ। यी दुवैमा एउटा कुरा सच्चा भए अर्को झूटो ठहर्दछ। यस्तै किसिमले यी दुवै कुरा झूठा हुन्। वैकुण्ठमा राग, द्वेष, क्रोध ईर्ष्या, दुःख हुँदैन भने वैकुण्ठको ढोकामा सनकादिकलाई किन रिस उठ्यो त? त्यहाँ रिस उठेको थियो भने त्यो स्वर्ग होइन। त्यसबखत जय–विजय द्वारपाल थिए। स्वामीको आज्ञापालन गर्नु आवश्यक थियो। उनीहरूले सनक आदिलाई रोके भने के अपराध भयो त? यस प्रसङ्गमा अपराधविना नै श्राप लाग्नसक्तैन। 'पृथ्वीमा झर' भन्ने श्राप लागेको कुराबाट त्यहाँ पृथ्वी थिएन भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। आकाश, वायु, अग्नि र जल हुँदो हो त त्यस्तो मन्दिर र जल के मा टिकेको थिए? जय–विजयले फेरि 'महाराज! हामी पुनः वैकुण्ठमा कहिले फर्कनेछौं?' भनी सनकादिको स्तुति गरे। उनीहरूले 'प्रेमपूर्वक नारायणको भक्ति गर्यौ भने सातौं जन्ममा र विरोधपूर्वक भक्ति गर्यौ भने तेश्रो जन्ममा वैकुण्ठ प्राप्त गर्नेछौ' भने। (भागवत ३। अ० १५, १६)

यसमा विचारणीय कुरा के भने जय–विजय नारायणका नोकर थिए। उनको रक्षा र सहायता गर्नु नारायणको कर्त्तव्य कर्म थियो। कसैले आफ्ना नोकरलाई अपराधविना नै दुःख दिन्छन् र उनका स्वामी त्यस्ता दुःख दिनेलाई दण्ड दिंदैनन् भने जसले पनि त्यसका नोकरचाकरको दुर्दशा गर्ने नै भयो। नारायणले जय विजयको सत्कार गर्नु र सनकादिक–लाई प्रशस्त दण्ड दिनु उचित हुन्थ्यो। किनकि उनीहरूले भित्र आउने जिद्दी किन गरे? नोकरहरूसँग किन लडे? र श्राप किन दिए? ती नोकरचाकरको सट्टा सनकादिलाई चाहिं पृथ्वीमा झार्नु नारायणको न्याय हुन्थ्यो। यतिको अन्धेरखाता नारायणको घरमा छ भने वैष्णव भनिने उसका सेवकको जति दुर्दशा गर्ने नै भयो। नारायणले जय विजयको सत्कार गर्नु र सनकादिकलाई प्रशस्त दण्ड दिनु उचित

हुन्थ्यो। किनकि उनीहरूले भित्र आउने जिद्दी किन गरे? नोकरहरूसँग किन लडे? र श्राप किन दिए? ती नोकरचाकरको सट्टा सनकादिलाई चाहिं पृथ्वीमा झार्नु नारायणको न्याय हुन्थ्यो। यतिको अन्धेरखाता नारायणको घरमा छ भने वैष्णव भनिने उसका सेवकको जति दुर्दशा भए पनि थोरै हुन्छ।

ती हिरण्याक्ष र हिरण्यकशिपु भएर जन्मिए (भाग० ३।१७, १८)। तीमध्ये हिरण्याक्षलाई वराहले मार्यो। त्यसको कथा यसरी लेखिएको छ—उसले पृथ्वीलाई गुन्द्री बेरेझैं बेरेर सिरान हालेर सुत्यो (गरुड पु०उ०ख० २६।३)। विष्णुले वराहको स्वरूप धारण गरेर उसको टाउको मुनिबाट पृथ्वीलाई मुखमा हाल्यो (भागवत ३। अ० १८, १९)। हिरण्याक्ष उठ्यो। दुबैको लडाइँ भयो। वराहले हिरण्याक्षलाई मारिदियो।

यिनीहरूसँग 'पृथ्वी गोलो छ वा चकटी जस्तो?' भनी सोधेमा केही भन्नसक्ने छैनन्। पौराणिकहरू त भूगोलविद्याका शत्रु हुन्। पृथ्वीलाई बेरेर सिरानमै राख्यो भने ऊ आफू केमा सुत्यो त? अनि वराहजी केमाथि खुट्टा राखेर दौडेर आइपुगे? वराहजीले पृथ्वीलाई मुखमा हालेपछि ती दुबै केमा उभिएर लडे त? त्यहाँ टेक्ने अरू कुनै ठाउँ त थिएन। तर भागवत आदि पुराण बनाउने पोपका छातीमा उभिएर लडे होलान्? तर पोप के मा सुतेको हुँदो हो? यो कुरा झूठा गफीका घरमा अर्को गफाडीले आएर, मिथ्यावादीका घरमा अरू झूटा व्यक्ति आउँदा आफ्नो गफ किन घटाउने? भने जस्तै हो।

अब रह्यो हिरण्यकशिपुको कुरा। उसको छोरो प्रल्हाद थियो, ऊ बडो भक्त थियो। उसको बाबु उसलाई पढ्न भनी पाठशाला पठाउँदथ्यो। तब ऊ अध्यापकहरूसँग 'मेरो सिलोटमा राम–राम लेखिदेऊ' भन्दथ्यो। बाबुले यो कुरा थाहा पाएर 'तँ मेरो शत्रुको भजन किन गर्दछस्?' भन्यो। तर छोरो मानेन। अनि उसको बाबुले उसलाई बाँधेर पहाडबाट खसाल्यो, कुवामा हाल्यो, तर उसलाई केही भएन। अनि हिरण्यकशिपुले एउटा फलामको थामलाई आगोमा तपाएर प्रल्हादसँग भन्यो—'तेरो इष्टदेव राम सच्चा हो भने तँ यसलाई समात्लाले पनि डढ्नेछैनस्। प्रल्हाद थाम समात्न अगि बढ्यो। डढ्नबाट जोगिने छु वा छैन' भन्ने शङ्का उसको मनमा भयो। त्यत्तिकैमा नारायणले त्यस थाममा साना–साना कमिला हिंडायो। प्रल्हादलाई निश्चय भयो र थामलाई समातिहाल्यो। थाम फाट्यो। त्यसबाट नृसिंह निस्कियो र उसले

हिरण्यकशिपुलाई समातेर पेट चिरेर मार्यो। अनि प्रल्हादलाई प्यारका साथ चाट्न थाल्यो। प्रल्हादसँग 'वर माग' भन्यो। उसले आफ्नो पिताको सद्गति होओस् भन्ने वर माग्यो। नृसिंहले 'तेरा एक्काईस पुस्ताको सद्गति भयो' भनी वर दियो।

ल हेर, यो पनि गफीको दाजू गफाडी नै हो। कुनै भागवत सुन्ने वा सुनाउनेलाई समातेर पहाडको माथिबाट लडाएमा कसैले बचाउने छैन, सबै चकनाचूर भएर मर्ने नै छन्। प्रल्हादलाई उसको बाबु पढ्न पठाउँथ्यो त उसले के गलत काम गर्यो? अनि त्यो मूर्ख प्रल्हाद भने पढ्न छोडेर वैरागी बन्न चाहन्थ्यो। आगोले रन्किएको थामबाट कमिलाको ताँती हिंडेको र प्रल्हादले त्यसलाई छुँदा नडढेको कुरा सच्चा मान्नेलाई त्यस्तै खम्बामा टाँसिदिनुपर्दछ। त्यो व्यक्ति डढेन भने ऊ पनि ढढेको थिएन भन्ने जान्नुपर्दछ। अनि नृसिंह किन डढेन त?

पहिल्यै सनकादिले तेस्रो जन्ममा वैकुण्ठमा आउने वर दिएका थिए। के त्यो कुरा तिम्रा नारायणले बिर्सियो? भागवतका अनुसार ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष र हिरण्यकशिपु चौथो पुस्तामा पर्दछ। प्रल्हादका एक्काईस पुस्ता हुँदै नभई 'एक्काईस पुस्ताको सद्गति भयो' भन्नु कतिसम्म प्रमादको कुरा हो? अनि फेरि तिनै हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु–रावण, कुम्भकर्ण अनि फेरि शिशुपाल, दन्तवक्र भएर (भागवत ७। अ० १) जन्मिए भने नृसिंहको वर कहाँ उड्यो त? प्रमादीहरू नै यस्ता प्रमादका कुरा सुन्दछन् र मान्दछन्, विद्वान्हरू यस्ता कुरा सुन्दैनन्, मान्दैनन्।

पूतना र अक्रूरजीको विषयमा हेर—

रथेन वायुवेगेन॥ —भागवत १०।३९।३८

जगाम गोकुलं प्रति॥ —भागवत १०।३८।२४

कंसले पठाउँदा **अक्रूरजी** वायुको जत्तिकै वेगले दौडने घोडाहरूको रथमा बसेर सूर्योदय हुँदा हिंडेर (भागवत १०।३८।१) चार माइल टाढा रहेको गोकुलमा सूर्यास्त हुँदा पुगे (भागवत १०।३८।२४)। अर्थात् ती घोडा दिनभरि भागवत बनाउनेकै चारैतिर घुमिरहेका हुँदाहुन् अथवा बाटो बिराएर भागवत बनाउनेको घरमा पुगेर घोडा हाँक्ने र अक्रूरजी सुतिरहे होलान्? पूतनाको शरीर छ कोस चौडा र धेरै लामो बताइएको छ (भागवत १०।६।१४)। कृष्णजीले उसला मारेर मथुरा र गोकुलको बीचमा फालिदिए। यसो हुँदो हो त मथुरा र गोकुल दुबै थिचिएर यस पोपजीको घर पनि पुरिनु पर्दथ्यो। अजामेलको ऊटपटांग

कथा लेखिएको छ—अजामेलले नारदको भनाइ मानेर आफ्नो छोराको नाम 'नारायण' राख्यो। मर्नेबेला उसले आफ्नो छोरालाई बोलायो। त्यत्तिकैमा नारायण आइपुगे। के नारायण 'उसले मलाई होइन आफ्नो छोरालाई बोलाएको हो' भन्ने उसको अन्त:करणको भावलाई जान्दैनथे। नामको माहात्म्य यस्तै हो भने हिजोआज पनि नारायणलाई स्मरण गर्नेहरूका दु:ख छुटाउन उनी किन आउँदैनन्? यो कुरा सत्य हो भने कैदीहरू नारायण-नारायण गरेरै किन छुट्तैनन्?

यस्तै सुमेरु पर्वतको परिमाण ज्योतिषशास्त्रको विरुद्ध लेखिएको छ (श्रीमद्भागवत ५।१६।७)। प्रियव्रत राजाको रथका पाङ्ग्राको डोबले समुद्र बनेको (श्रीमद्भागवत ५।१६।२), पृथ्वी उनन्चास करोड योजन छ भन्ने (श्रीमद्भागवत ५।२०।३८) आदि मिथ्या कुराका गफ भागवतमा थुप्रै छन्, यिनको कुनै वारपार छैन।

यो भागवत गीत-गोविन्द बनाउने जयदेवको भाइ बोबदेवले बनाएको हो। उसले आफैंले रचेको 'हिमाद्रि' नामक ग्रन्थमा 'श्रीमद्भागवतपुराण मैले नै बनाएको हुँ' भनेको छ। त्यस लेखका तीन पत्र मसँग थिए। तिनमा एउटा हरायो। त्यस पत्रमा भएका श्लोकको आशययुक्त दुईवटा श्लोक मैले बनाएर निम्नानुसार लेख्तै छु। मूल हेर्न चाहनेले 'हिमाद्रि' ग्रन्थमा हेर्नुपर्दछ—

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥ १॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोऽन्वितम्॥ २॥

नष्ट भएका पत्रमा यस्तै श्लोक थिए। अर्थात् राजाका सचिव हिमाद्रिले बोबदेव पण्डितसँग भने—तिमीले रचेको पूरै भागवतलाई सुन्ने फुर्सत मलाई छैन। यसकारण संक्षेपमा जान्नेछु। तदनुकूल नै त्यस बोबदेवले निम्नलिखित सूचीपत्र बनाएको थियो। तीमध्ये दस श्लोक त्यस हराएको पत्रमा परे। एघारौं श्लोकदेखि यहाँ लेखिन्छ। तर लेखेका यी श्लोक सबै बोबदेवरचित हुन्—

बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥ ११॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्यानिर्वृतिः कृतात्।
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च॥ १२॥

सुप्तघ्नं द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारकागमः॥ १३॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा तत पार्थमहापथः॥ १४॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥ १५॥
इति वै राज्ञो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रोणिजयादयः॥ १६॥
इति प्रथमः स्कन्धः॥ १॥

यस्तै किसिमले बोबदेव पण्डितले बाह्रै स्कन्धको सूचीपत्र बनाएर हिमाद्रि सचिवलाई दिएको थियो। विस्तारमा हेर्न चाहनेले बोबदेव रचित हिमाद्रिग्रन्थमा हेर्नुपर्दछ। यस्तै किसिमले अरू पुराणहरूको पनि लीला बुझ्नुपर्दछ। तर सबै पुराण एकभन्दा अर्को उन्नाइस, बीस, एक्काईस गरी बढचढ गरेर लीलायुक्त छन्।

हेर, श्रीकृष्णको चरित्र महाभारतमा अत्युत्तम छ। उनको गुण, कर्म, स्वभाव र चरित्र आप्तपुरुषहरूसरह नै छ। महाभारतमा श्रीकृष्णजीले जन्म देखि मरणसम्म कुनै पनि अधर्म वा खराब कर्म गरेको उल्लेख पाइँदैन, यस भागवत बनाउनेले भने उनीमाथि अनुचित र मन-माना दोष लगाएका छन्। दूध, दही, नौनीघिउ आदिको चोरीको दोष लगाइयो, कुब्जा दासीसँग समागम, पर-स्त्रीसँग रासमण्डल क्रिया आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजीमा लगाइएका छन्। यसलाई पढे-पढाएर, सुने-सुनाएर अरू मतावलम्बीहरूले श्रीकृष्णजीको धरैजसो निन्दा गर्दछन्। यो भागवत नभएको भए श्रीकृष्णजस्ता महात्माहरूको झूटो निन्दा किन र कसरी हुने थियो र?

शिवपुराणमा बाह्र ज्योतिर्लिङ्ग बताइएका छन्। त्यसको सर्वथा असम्भव कथा छ। नाम ज्योतिर्लिङ्ग राखिएको छ तर तिनमा प्रकाशको लेश पनि छैन। रात्रिमा दियो नदेखाई अँध्यारोमा लिङ्ग पनि देखिदैनन्। यी सबै पोपजीका लीला हुन्।

प्रश्न—वेद पढ्ने सामर्थ्य नरहेपछि स्मृति, स्मृति पढ्ने बुद्धिपनि नरहेपछि शास्त्र र शास्त्र पढ्ने सामर्थ्य पनि नरहेपछि पुराण बनाइए। अनि पुराण स्त्री र शूद्रका लागिमात्र बनाइएका हुन् किनकि यिनलाई वेद पढ्ने-सुन्ने अधिकार छैन।

उत्तर—पढ्ने-पढाउने गर्नाले सामर्थ्य बढ्ने हुनाले र वेद पढ्ने-सुन्ने अधिकार सबैलाई रहेको हुनाले उक्त कुरा मिथ्या हो। हेर, गार्गी

आदि स्त्रीहरूले र छान्दोग्य उपनिषद्मा जानुश्रुति नामक शूद्रले पनि रैक्यमुनिकहाँ वेद पढेको थियो। यजुर्वेदको २६औं अध्यायको दोस्रो मन्त्रमा स्पष्टरूपमा वेद पढ्ने-सुन्ने अधिकार मनुष्यमात्रलाई छ। त्यसोहुँदा यस्ता यस्ता मिथ्या ग्रन्थ बनाएर मानिसहरूलाई सत्यग्रन्थबाट विमुख पारेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्ने व्यक्ति महापापी किन होइनन् ?

हेर, यिनीहरूले ग्रहको यस्तो चक्र चलाए कि त्यसले विद्याहीन मानिसलाई ग्रस्त पारेको छ।

'आ कृष्णेन रजसा०' ॥ १ ॥—सूर्य्य का मन्त्र। —यजुर्वेद ३३।४३

'इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वम्०' ॥ २ ॥—चन्द्र।

—यजुर्वेद ९।४०

'अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०' ॥ ३ ॥—मङ्गल।

—यजुर्वेद ३।१२

'उद्बुध्यस्वाग्ने०' ॥ ४ ॥—बुध। —यजुर्वेद १५।५४

'बृहस्पते अतियदर्यो०' ॥ ५ ॥ —बृहस्पति। —यजुर्वेद २६।३

'शुक्रमन्धसः' ॥ ६ ॥ —शुक्र। —यजुर्वेद १९।७५

'शन्नो देवीरभिष्टय०' ॥ ७ ॥ —शनि। —यजुर्वेद ३६।१२

'कया नश्चित्र आ भुव०' ॥ ८ ॥ —राहु। और —यजुर्वेद २७।३९

'केतुं कृण्वन्नकेतवे०' ॥ ९ ॥ —केतु की कण्डिका कहते हैं।

—यजुर्वेद २९।३७

यसलाई केतुको कण्डिका भन्दछन्। (आ कृष्णे०) यो सूर्यको र भूमिको आकर्षण ॥ १ ॥ दोस्रो राजगुण विधायक ॥ २ ॥ तेस्रो अग्नि परमेश्वर ॥ ७ ॥ आठौं मित्र ॥ ८ ॥ र नवौं ज्ञान ग्रहण विधायक मन्त्र हो। यी मन्त्र ग्रहहरूका वाचक होइनन्। अर्थ नजान्नाले भ्रमजालमा परेका छन्।

प्रश्न—ग्रहहरूको फल हुन्छ वा हुँदैन ?

उत्तर—पोपलीलाको जस्तो फल हुँदैन। तर सूर्य चन्द्रका किरणद्वारा उष्णता, शीतता अथवा ऋतुवत् कालचक्रको सम्बन्धमात्र द्वारा आफ्नो स्वभावको अनुकूल-प्रतिकूल सुख-दुःखका निमित्त हुन्छन्। तर 'सुन, महाराज, साहुजी वा यजमान! आज तिम्रा आठौं चन्द्र सूर्य आदि क्रूर ग्रह घरमा आएका छन। अढैयाको शनिश्चर आरम्भ भएको छ। तिमीलाई ठूलो विघ्न हुनेछ। घरबाट छुटाएर परदेश घुमाउनेछ। तर तिमीले ग्रहहरूको दान, जप, पाठ-पूजा गराएमा दुःखदेखि बच्नेछौ।' आदि भन्ने पोपलीला गर्नेहरूसँग 'सुन पोपजी! तिम्रो र ग्रहको के सम्बन्ध

छ ? ग्रह के वस्तु हो ?' भनी सोध्नुपर्दछ।

पोपजी— दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्।

हेर, कस्तो प्रमाण छ! देवताहरूको अधीन सारा जगत्, मन्त्रहरूको अधीन सबै देवता र ती मन्त्र ब्राह्मणहरूका अधीन हुनाले ब्राह्मण **'देवता'** भनिन्छन्, किनकि जुन चाह्यो त्यसै देवतालाई मन्त्रका बलले बोलाएर, प्रसन्न गरेर काम सिद्ध गराउने अधिकार हामी ब्राह्मणलाई नै छ। हामीमा मन्त्रशक्ति नभएको भए तिमीजस्ता नास्तिकले हामीहरूलाई संसारमा टिक्नै दिने थिएनन्।

सत्यवादी—चोर, डाकू आदि कुकर्मीहरू पनि तिम्रा देवताहरूकै अधीन हुँदाहुन् ? देवता नै तीबाट दुष्ट काम गराउँदाहुन्। यस्तै हो भने तिम्रा देवता र राक्षसहरूमा केही पनि फरक रहनेछैन। मन्त्र तिम्रा अधीन छन् र तीबाट तिमी जे पनि गराउन सक्तछौं भने ती मन्त्रद्वारा देवताहरूलाई अधीन पारेर, राजाहरूका ढुकुटी उठाउन लगाएर आफ्नै घरमा भरेर किन आनन्द भोग्दैनौ ? घर-घरमा शनैश्चर आदिको, तेल आदिको छायादान लिन किन भट्किरहन्छौ ? जसलाई तिमी कुबेर मान्दछौ, त्यसलाई अधीनमा गरेर चाहेजति धन लिने गर। विचरा गरीबहरूलाई किन लुट्तछौ ?

तिमीलाई दान दिनाले ग्रह प्रसन्न र नदिनाले अप्रसन्न हुने भए हामीलाई सूर्य आदि ग्रहहरूको प्रसन्नता वा अप्रसन्नता प्रत्यक्ष देखाऊ। एउटालाई आठौं सूर्य, चन्द्र र अर्कोलाई तेस्रो परेको छ भने ती दुबैलाई जेठको महिनामा तातेर रन्किएको भुइँमा जुत्ता नलगाई हिंडाऊ। यसो गर्दा ग्रह प्रसन्न हुनेका गोडा, शरीर नपोलिने तथा ग्रह क्रोधित हुनेका गोडा आदि डढ्ने हुनुपर्दछ। यस्तै पौष महिनामा दुबैलाई नांगै गरेर पूर्णेको रातमा रातभर खुला मैदानमा राख्ता एउटालाई शीत लाग्ने र अर्कोलाई केही नहुने भएमा ग्रह क्रूर र सौम्य हुन्छन् भन्ने कुरा मानिने छ।

अनि के ग्रह तिम्रा नाता-गोतामा पर्दछन् ? र तिम्रा चिठ्ठी-पत्र वा तार-आवा तिनीहरूकहाँ आउने जाने गर्दछन् ? अथवा तिमी वहाँ या उनीहरू तिमीकहाँ आउने-जाने गर्दछौ ? तिमीमा मन्त्रशक्ति छ भने तिमी आफैं राजा वा धनाढ्य किन हुँदैनौ ? अथवा आफ्ना शत्रुहरूलाई किन वशीभूत पार्दैनौ ?

ईश्वरको आज्ञा=वेदको विरुद्ध पोपलीला चलाउने व्यक्ति नास्तिक

हुन्छ। कसैले तिमीलाई ग्रहदान नदिई आफूमाथिको ग्रहको ग्रहदानलाई आफैं भोग्दछ भने तिमीलाई चिन्ता किन ? तिमीलाई नै ग्रहदान दिनाले ग्रह प्रसन्न हुन्छन्, अरूलाई दिनाले प्रसन्न हुँदैनन् भन्छौ भने के तिमीले ग्रहहरूको ठेक्का लिएका छौ ? ठेक्का नै लिएका छौ भने सूर्य आदिलाई आफ्नै घरमा बोलाएर डढेर मर।

वास्तविकता त के हो भने सूर्य आदि लोक जड् छन्। ती न त कसैलाई दुःख दिने चेष्टा गर्न सक्तछन्, न सुख दिने। तर ग्रहदानबाट आफ्नो गुजारा चलाउने तिमी सबै ती ग्रहका मूर्त्ति हौ किनकि ग्रह शब्दको अर्थ पनि तिमीहरूमा नै घटित हुन्छ। **'ये गृहणन्ति ते ग्रहाः'** ग्रहण गर्नेको नाम ग्रह हो। तिम्रा चरण राजा, रईस , सेठ, साहू–महाजन र दरिद्रहरूकहाँ नपुगेसम्म कसैलाई नवग्रहको स्मरण पनि हुँदैन। तिमीहरू साक्षात् सूर्य शनैश्चर आदि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धारण गरेर ती माथि चढेपछि केही ग्रहण नगरी तिनलाई कहिल्यै छोड्दैनौ। अनि तिम्रो ग्रासमा नपर्नेको निन्दा नास्तिक आदि शब्दद्वारा गर्दै डुल्छौ।

पोपजी—ज्योतिषको प्रत्यक्ष फल हेर। आकाशमा रहेका सूर्य, चन्द्र र राहु–केतुको संयोगरूप ग्रहणको बारेमा पहिल्यैदेखि बताइदिन्छौं। जसरी यो कुरा प्रत्यक्ष छ, त्यस्तै ग्रहहरूको फल पनि प्रत्यक्ष हुन्छ। हेर, ग्रहद्वारा नै धनी–गरीब, राजा–रङ्क, सुखी–दुःखी हुन्छन्।

सत्यवादी—यो ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल गणित विद्याको हो, न कि फलित लीलाको। गणितविद्या सच्चा र फलित विद्या भने स्वाभाविक सम्बन्धजन्य बाहेक झूटो हो। जस्तै उल्टो–सोझो घुम्ने पृथ्वी र चन्द्रको गणितद्वारा फलानो समय, फलानो देश र अवयवमा सूर्य वा चन्द्रको ग्रहण हुनेछ भन्ने कुरा स्पष्ट विदित हुन्छ। जस्तै—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः ॥

यो **'सिद्धान्त शिरोमणि'** (ग्रहलाघव चन्द्रग्रहणाधिकार ५।४) को वाक्य हो। यस्तै 'सूर्य्य सिद्धान्त' आदिमा पनि छ। अर्थात् सूर्य र पृथ्वीको बीचमा चन्द्रमा आउँदा **'सूर्यग्रहण'** तथा सूर्य र चन्द्रमाको बीचमा पृथ्वी पर्दा **'चन्द्रग्रहण'** हुन्छ। अर्थात् चन्द्रमाको छायाँ पृथ्वीमा र पृथ्वीको छायाँ चन्द्रमामा पर्दछ। सूर्य प्रकाशरूप हुनाले त्यसमा कुनैको छायाँ पर्दैन। जसरी शरीर आदिको छायाँ प्रकाशमान सूर्य वा दियोको उल्टो पर्दछ, त्यस्तै ग्रहणमा पनि बुझ्नुपर्दछ।

व्यक्ति आफ्ना कर्मबाट धनी, गरीब, प्रजा, राजा, रङ्क आदि बन्दछन्, ग्रहबाट होइन। धेरैजसो ज्योतिषीहरू आफ्ना छोरा–छोरीको विवाह

ग्रहहरूको गणितविद्याअनुसार गर्ने गराउने गर्दछन् अनि उनमा पनि परस्पर विरोध वा विधवा वा विधुर हुन्छन्। फल सच्चा भए यस्तो हुने थिएन। यसकारण कर्मको गति सच्चा हो र सुख–दुःख भोगमा ग्रहगति कारण होइनन्।

ग्रह आकाशमा र पृथ्वी पनि आकाशमा धेरै टाढा छन्। कर्त्ता र कर्मसँग यिनको साक्षात् सम्बन्ध छैन। कर्म र कर्मका फलको कर्त्ता, भोक्ता जीव र कर्मका फल भोगाउने परमात्मा हो।

तिमी ग्रहहरूको फल मान्दछौ भने 'जुन' क्षणमा एउटा मानिसको जन्म हुन्छ, जसलाई तिमी ध्रुवात्रुटि मानेर जन्मपत्र बनाउँदछौ त्यसै समयमा भूगोलमा अर्को मानिसको जन्म हुन्छ वा हुँदैन ? भन्ने कुराको जवाफ देऊ। हुँदैन भन्छौ भने त्यो झूट हुनेछ र हुन्छ भन्छौ भने एउटा चक्रवर्ती भएजस्तै भूगोलमा अर्को चक्रवर्ती राजा किन हुँदैन ? अँ, 'यो हाम्रो पेट भर्ने लीला हो' भन्नसक्तछौ भने कसैले यस कुरालाई मात्र पतिआउनसक्नेछ।

प्रश्न—के गरूड़पुराण पनि झूटो हो ?

उत्तर—हो, पूरै झूटो हो।

प्रश्न—त्यसो भए मरेका जीवको कुन गति हुन्छ त ?

उत्तर—जस्ता उसका कर्म हुन्छन्।

प्रश्न—यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री र उसका बडा भयङ्कर गण गाजलको पर्वत जस्तै शरीरधारी हुन्छन् र उनीहरू जीवलाई समातेर लैजान्छन्। पाप–पुण्यअनुसार नरक–स्वर्गमा हाल्दछन्। त्यसको निम्ति अर्थात् वैतरणी नदी तर्न दान–पुण्य, श्राद्ध–तर्पण, गोदान आदि गरिन्छन्। यी सबैकुरा कसरी झूठा हुन सक्तछन् र ?

उत्तर—यी सबैकुरा पोपलीलाका मिथ्या गफ हुन्। अन्तका जीव त्यहाँ जाने भए र धर्मराज, चित्रगुप्त आदिले तिनको न्याय गर्ने भए ती यमलोकका जीवका पापको न्याय गर्न न्यायाधीश रहेको अर्को यमलोक मान्नुपर्ने हुन्छ। अनि यमका गणहरूका शरीर पर्वतजस्तै हुन्छन् भने ती किन देखिंदैनन् ? त्यसोभए मर्ने जीवलाई लिन जाँदा साना द्वारमा तिनको एउटा औंलो पनि पस्नसक्तैन ? फेरि सडक गल्लीमा तिनीहरू किन अड्किंदैनन् ? तिनले सूक्ष्म शरीर पनि धारण गर्दछन् भन्छौ भने तिनले पर्वतजस्तै पहिलेको शरीरका ठूला–ठूला हाडलाई पोपजीको घरबाहेक अरू कहाँ राख्नेछन् र ? वनमा डढेलो लाग्दा एक्कासी धेरै कमिला आदि जीवका शरीर छुट्तछन्, तिनलाई समात्न असंख्य यमका

गण आउने भए त्यहाँ त अन्धकार हुनुपर्दछ ? अनि तिनीहरू जीवहरूलाई समात्न दगुर्दा तिनका शरीर परस्पर ठोकिएर, पहाडका ठूला–ठूला शिखर टुटेर पृथ्वीमा खसेजस्तै तिनका ठूला–ठूला अवयव गरुडपुराण सुनाउने र सुन्नेका आँगनमा खस्नेछन् र ती थिचिएर मर्नेछन्। अथवा घरको ढोका वा सडकै रोकिने छ, अनि ती कसरी निस्कन र हिंड्न सक्लान् ?

श्राद्ध–तर्पण, पिण्डदान आदि ती मरेका जीवसम्म त पुग्दैन तर मृतकका एजेन्ट पुरेत पोपका घर, पेट र हातसम्म भने अवश्य पुग्दछ। वैतरणीका निम्ति लिइएको गोदान पनि पोपको घर अथवा कसाइ आदिको घरसम्म पुग्दछ। वैतरणीमा गाई त पुग्दैन भने कसको पुच्छर समातेर तर्नेछ र ? अनि फेरि हात त यहीं डढाइन्छ वा गाडिन्छ भने पुच्छरलाई कसरी समात्ने छ र ? यस प्रसङ्गमा एउटा दृष्टान्त उपयुक्त देखिन्छ—

एउटा जाट=सोझो छेत्री थियो। त्यसको घरमा तीनपाथी दूध दिने एउटा धेरै राम्रो गाई थियो। त्यसको दूध साह्रै मीठो हुन्थ्यो। कहिलेकाहीं त्यस दूधको स्वाद पोप=पुरेतले पनि चाख्न पाउँथे। जाटका ती पुरोहित 'जाटको बूढो बाबू मर्नेबेला हुँदा यसै गाईको संकल्प गराउनेछु' भन्ने विचार गरिरहन्थे। दैवसंयोगले केही दिनपछि त्यस जाटको बाबुको मर्ने समय आयो। जिब्रो चल्न बन्द भयो र खाटबाट उतारेर भुइँमा सुताए अर्थात् प्राण छुट्ने समय आइपुग्यो। त्यसबखत जाटका इष्टमित्र र नाता–गोताका मानिस पनि भेला भएका थिए। पोपजीले भने—'यजमान! अब तिमी यसका हातबाट गोदान गराऊ।' जाटले रु० १०।– दस रुपैयाँ झिकेर बाबुको हातमा राखेर 'संकल्प पढ' भने। पोपजीले भन्यो 'वा! के बाबु बारम्बार मर्दछन् ? अहिले त सर्वोत्तम, दूध दिने र बूढो नभएको साक्षात् गाई ल्याऊ। यस्तो गाईको दान गराउनु पर्दछ।'

जाट—हामीकहाँ त एउटै गाई छ। त्योविना हाम्रा केटा–केटीको निर्वाह हुनेछैन। यसकारण त्यो त दिन्न, बरु २०/– बीस रुपैयाँ दिन्छु र संकल्प पढिदेऊ। यो रुपैयाँले अर्को दुहुनु गाई लिनू।

पोपजी—वा रे वा! तिमी गाईलाई आफ्ना बाबुभन्दा पनि बढी ठान्दछौ ? के तिमी आफ्ना बाबुलाई वैतरणी नदीमा डुबाएर दुःख दिन चाहन्छौ ? तिमी त खुबै सुपुत्र भयौ!!! अनि त सबै कुटुम्बीहरू पोपजीका तर्फ भैगए, किनकि ती सबैलाई पोपजीले पहिल्यै भ्रममा

पारिराखेका थिए। त्यसबेला पनि पोपजीले संकेत गरे र सबैले मिलेर जबर्जस्ती त्यसै गाईको दान तिनै पोपलाई गराए। त्यसबखत जाट केही पनि बोलेन। उसको बाबु मर्यो। उता पोपजी बाछी सहित गाई र दुहुने बाल्टिन लिएर आफ्नो घर गाई, बाछालाई बाँधेर बाल्टिन राखेर जाटको घर फर्के र श्मशानभूमिमा गएर दाहकर्म गराए। त्यहाँ पनि अलिअलि पोपलीला चलाए। पछि दशगात्र, सपिण्डी आदि गराउँदा पनि जाटलाई ठगे। अरू ठूला ब्राह्मणनामधारी र भोकाहरूले पनि धेरैजसो मालसामान ठग्नसम्म ठगे। सबै क्रिया भैसकेपछिसम्म जाटले छर–छिमेक आदिबाट खोजीमेली गरेर दूधको निर्वाह गर्यो। चौथौं दिन बिहानै जाट पोपजीको घर पुग्यो। पोपजी गाई दुहेर, बाल्टिन भरेर, उठ्न आँट्तै थिए। यत्तिकैमा जाट पुग्यो। उसलाई देखेर पोपजीले भने—आउनुहोस् यजमान! बस्नुहोस्।

जाटजी—पुरेतबाजे! तिमी पनि यता आऊ।

पोपजी—ल, ल, दूध राखेर आउँछु।

जाटजी—होइन–होइन। दूधको बाल्टिन यता ल्याऊ। बिचरा पोपजी गएर बाल्टिन जाटको अगाडि राखी बसे।

जाटजी—तिमी त ठूला झूटा रहेछौ।

पोपजी—के झूट गरें र ?

जाटजी—तिमीले गाई किन लिएका थियौ ? भन।

पोपजी—तिम्रा बुवालाई वैतरणी नदी तार्नका निम्ति।

जाटजी—त्यसोभए तिमीले गाईलाई त्यहाँ वैतरणी नदीको किनारमा किन पुर्याएनौ ? हामी त तिम्रो विश्वासमा पर्यौं र तिमीले भने गाईलाई आफ्नै घरमा पो बाँधेछौ। नजाने मेरा बुवाले वैतरणीमा कति गोता खाए होलान्!!

पोपजी—होइन, होइन! यस दानको पुण्यको प्रभावले वहाँ अर्को गाई बनेर तिम्रो बुवालाई पारि उतारिदियो होला।

जाटजी—वैतरणी नदी यहाँबाट कति टाढा र कतातर्फ छ ?

पोपजी—अनुमानअनुसार लगभग तीस करोड कोस टाढा छ। किनकि उनन्चास करोड योजनको पृथ्वी छ। त्यो वैतरणी नदी नैर्ऋत्य दिशामा छ।

जाटजी—यति टाढाबाट तिम्रो चिट्ठी वा तारको समाचार गएको हुँदो हो, अनि 'त्यहाँ पुण्यको गाई बन्यो, त्यसले फलानाको बाबुलाई पार उतार्यो' भन्ने त्यसको उत्तर पनि आयो होला, त्यो देखाऊ।

पोपजी—हामीसँग त 'गरुडपुराण' मा लेएिका कुराबाहेक अरू कुनै चिट्ठी-पत्र ल्याउने हल्कारा आदि कोही छैन।

जाटजी—यस गरुडपुराणलाई हामी कसरी साँचो मानौं ?

पोपजी—जसरी सबै मान्दछन्।

जाटजी—यो पुस्तक तिम्रा पुर्खाले तिम्रो जीविकाको निम्ति बनाएका हुन्। किनकि पितालाई आफ्नो पुत्रबाहेक अरू कोही त्यति प्रिय हुँदैन। मेरा बुबाले मलाई चिट्ठी-पत्र वा तार पठाएमा म आफैं वैतरणीको किनारमा गाई पुर्याउनेछु र उनलाई पार उतारेर फेरि गाईलाई घरमा ल्याएर त्यसको दूध म र मेरा छोरा-छोरीले पिउनेछन्। त्यो दूधले भरिएको बाल्टिन यता ल्याऊ। यति भनेर गाई बाछो लिएर जाट आफ्नो घरतर्फ लाग्यो।

पोपजी—तिमी दान गरेर फिर्ता लिंदैछौ। तिम्रो सत्यानाश हुनेछ।

जाटजी—चुप लाग। नत्र भने तेह्र दिनसम्म दूध नहुनाले हामीले पाएको दुःखको बदलासमेत लिनेछु। अनि पोपजी चुप लागे र जाट आफ्नो गाई बाछो लिएर घर पुग्यो।

यस्तै जाटजीसरहका व्यक्ति भएमा संसारमा पोपलीला चल्दैन। यिनीहरूको भनाइअनुसार दशगात्रका पिण्डबाट दस अङ्ग सपिण्डी गर्नाले शरीरसँग जीवको मेल भएर अङ्गुष्ठमात्र शरीर बनेर अनि योमलोक जान्छ भने मर्दाबखत यमदूतहरू आउनु व्यर्थै हुन्छ। त्यसोभए त यमदूतहरू तेह्र दिनपछि आउनुपर्दछ। अनि त्यसरी शरीर बनेर भए आफ्ना स्त्री, सन्तान र इष्टमित्रका मोहले किन फर्केर आउँदैनन् ?

प्रश्न—स्वर्गमा केही पनि पाइँदैन। यहाँ जुन वस्तु जेजति दान गरिन्छ, त्यही त्यहाँ पाइन्छ। यसकारण सबै कुरा दान गर्नुपर्दछ।

उत्तर—तिम्रो त्यस स्वर्गभन्दा त यही लोक राम्रो छ। यहाँ धर्मशाला छन्, मानिस दान दिन्छन्, इष्टमित्र र जातिमा विभिन्न निम्ता प्रशस्त पाइन्छन्, राम्रा राम्रा लुगा पाइन्छन् भने तिम्रो भनाइअनुसार स्वर्गमा केही पनि पाइँदैन। यस्तो निर्दय, कृपण, कंगाल स्वर्गमा पोपजी नै गएर बिग्रियून्, त्यहाँ सज्जन व्यक्तिहरूको के काम ?

प्रश्न—तिम्रो भनाइमा यमलोक र यम छैनन् भने जीव मरेर कहाँ जान्छन् र यिनको न्याय कसले गर्दछ ?

उत्तर—तिम्रो गरुडपुराणमा भनिएको कुरा त प्रमाण होइन। तर वेदोक्त कुरा प्रमाण हुन्छ। जस्तै—

यमेन ऋ० १०।१४।८, **वायुना** अथर्व० २०।१४१।२

सत्यराजन् यजुः० २०।४

इत्यादि वेदवचनबाट 'यम' नाम वायुको हो भन्ने निश्चय हुन्छ। जीव शरीरलाई छोडेर अन्तरिक्षमा वायुसँग रहन्छ र सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा 'धर्मराज' हो, उही सबैको न्याय गर्दछ।

प्रश्न—तिम्रो भनाइमा कसैलाई पनि गोदान आदि दिनुपर्दैन र दानपुण्य केही पनि गर्नुपर्दैन भन्ने सिद्ध हुन्छ।

उत्तर—तिम्रो यो भनाइ पनि व्यर्थै हो। किनकि सुपात्रलाई, परोपकारीहरूको लागि परोपकार निम्ति सुन, चाँदी, हीरा, मोती, माणिक्य, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाई आदि दान अवश्य गर्नु उचित हुन्छ, तर कुपात्रलाई कहिल्यै केही दिनुहुँदैन।

प्रश्न—कुपात्र र सुपात्रको के लक्षण हो ?

उत्तर—छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोहयुक्त, अरूको हानि गर्ने, लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, अल्छी, कोही दाता छ भने ऊसँग बारम्बार माग्ने, धरना दिने, 'दिन्न' भन्दा पनि जिद्दी गरेर माँगिरहने, असन्तोषी, नदिनेको निन्दा गर्ने, सराप्ने र गाली दिने, कसैले अनेक पटक सेवा गरेर एकाध पटक सेवा नगरे त्यसको शत्रु बन्ने, माथि बाट साधुको भेष बनाएर जनतालाई भ्रममा पारेर ठग्ने, आफूसँग केही वस्तु भए पनि छैन भन्ने, सबैलाई फसल्याङ्ग-फुस्लुङ्ग पारेर स्वार्थ सिद्ध गर्ने, रात-दिन भिक्षा माग्नमात्र लागिरहने, निम्त्याइएमा भाँङ् आदि मादक द्रव्यको खुब सेवन गरेर धेरैजसो अरूको वस्तु खाइदिने अनि उन्मत्त भएर प्रमादी हुने, आफ्नो स्वार्थ सिद्धिका लागि सत्यमार्गको विरोध गर्ने र झूठमार्गमा हिंड्ने, त्यस्तै आफ्ना चेलालाई आफ्नैमात्र सेवा गर्ने उपदेश दिने, अरू योग्य व्यक्तिको सेवा गर्ने उपदेश नदिने, सद्विद्या आदि प्रवृत्तिको विरोधी, जगत्का व्यवहारको विरोधी अर्थात् पति, पत्नी आमा, बाबु, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्ट, मित्र आदिलाई यी सबै झूठा हुन् र जगत् पनि मिथ्या हो भनेर यिनमा घृणा उब्जाउने आदि दुष्ट उपदेश इत्यादि कुरा हुनु कुपात्रका लक्षण हुन्।

र ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या पढ्ने-पढाउने, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय पुरुषार्थी, उदार, निरन्तर विद्या-धर्म को उन्नति गर्ने, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा-स्तुतिमा हर्षशोक नगर्ने, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा र ईश्वर का गुण, कर्म, स्वभावअनुसार व्यवहार गर्ने, न्याययुक्त, पक्षपातरहित, सत्य उपदेश र सत्यशास्त्रलाई

पढ्ने–पढाउने, परीक्षक, कसैको चापलुसी नगर्ने, प्रश्नहरूका यथार्थ समाधान गर्ने, आफ्नो आत्माजस्तै अरूको पनि सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि सम्झने, अविद्या आदि क्लेश, हठ, दुराग्रह, अभिमान आदि नभएको, अपमानलाई अमृतजस्तै र मान–सम्मानलाई विषजस्तै सम्झने, सन्तोषी, कसैले प्रीतिपूर्वक जति दिन्छ त्यसैमा प्रसन्न रहने, एकपटक आपत्‌कालमा माग्दा नदिनाले वा दिन्न भन्नाले पनि दुःख वा गलत चेष्टा नगर्ने, त्यहाँबाट तुरुन्त फर्कने, उसको निन्दा नगर्ने, सुखी व्यक्तिहरूसँग मित्रता, दुःखीसँग करुणा, पुण्यात्माहरूसँग आनन्दित र पापीहरूसँग उपेक्षा अर्थात् रागद्वेषरहित भएर रहने, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या–द्वेषरहित, गम्भीर आशय भएको, सत्पुरुष, धर्मयुक्त र दुष्टाचारदेखि सर्वथा रहित, आफ्नो तन, मन, धनलाई परोपकारमा लगाउने, अरूको सुखका लागि आफ्नो प्राण पनि अर्पित गर्ने आदि शुभगुणयुक्त व्यक्ति सुपात्र हुन्छन्। तर दुर्भिक्ष आदि आपत्‌कालमा अन्न, जल, वस्त्र, औषधि, पथ्य र स्थान प्राप्त गर्ने अधिकार सबै प्राणीमात्रको हुन्छ।

प्रश्न—दाता कति किसिमका हुन्छन्?

उत्तर—तीन प्रकारका—उत्तम, मध्यम र निकृष्ट। देश, काल र पात्रलाई जानेर सत्यविद्या र धर्मको उन्नतिरूप परोपकारका निम्ति दिने व्यक्ति **उत्तम दाता** भनिन्छ। कीर्ति वा स्वार्थका लागि दिने व्यक्ति **मध्यम दाता** हुन्छ। आफ्नो वा अरूको केही उपकार गर्न नसक्ने भएर वेश्यागमन आदिमा वा दुराचारी, भाट आदिलाई दिने, दिंदा तिरस्कार, अपमान आदि कुचेष्टा गर्ने, पात्र–कुपात्रको केही भेद नजान्ने, गुणी–अवगुणी सबैलाई एक समान सम्झने, विवाद, लडाइँ–झगडा, अरू धर्मात्मालाई दुःख दिएर सुखी हुनका लागि दान गर्ने व्यक्ति **अधम (निकृष्ट) दाता** हुन्छ। अर्थात् परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माहरूको सत्कार गर्ने उत्तम, परीक्षा गरेर वा नगरी आफ्नो प्रशंसाको निम्ति दिने मध्यम र सोच–विचाररहित निष्फल दान दिने व्यक्ति नीच दाता भनिन्छ।

प्रश्न—दानको फल यहीं प्राप्त हुन्छ वा परलोकमा?

उत्तर—सर्वत्र हुन्छ।

प्रश्न—स्वयं प्राप्त हुन्छ अथवा फल दिने अरू कोही छ?

उत्तर—फल दिने ईश्वर छ। जसरी कुनै चोर, डाँकू आफैं कारागारमा जान चाहँदैन, राजाले उसलाई अवश्य पठाउँछन्, धर्मात्माहरूको सुखको रक्षा गर्दछन्, तिनलाई सुख भोगाउँछन्, डाकू

आदिदेखि बचाएर तिनलाई सुखी राख्तछन्, त्यस्तै परमात्माले सबैलाई पाप–पुण्यका दुःख र सुखरूप फल यथावत् भोगाउँछन्।

प्रश्न—यी गरुडपुराण आदि ग्रन्थ वेदको अर्थ वा वेदको पुष्टि गर्दछन् वा गर्दैनन्?

उत्तर—गर्दैनन्। यी त वेदका विरोधी हुन् र वेदको उल्टो चल्दछन्। तन्त्र पनि त्यस्तै हुन्। जसरी कुनै मानिस एउटाको मित्र र सबै संसारको शत्रु हुन्छ, त्यस्तै पुराण र तन्त्रलाई मान्ने व्यक्ति हुन्छ, किनकि यी ग्रन्थ एक–अर्कासँग विरोध गराउँदछन्। यिनलाई मान्नु कुनै विद्वान्‌को काम होइन, यिनलाई मान्नु त अविद्वत्ता हो।

हेर, शिव पुराणमा त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराणमा रविवार, चन्द्रखण्डमा सोम ग्रहग्रस्त मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर राहुकेतुको, वैष्णवको एकादशी, वामनको द्वादशी, नृसिंह वा अनन्तको चतुर्दशी, चन्द्रमाको पूर्णमासी, दिक्पालहरूको दशमी, दुर्गाको नवमी वसुहरूको अष्टमी, मुनिहरूको सप्तमी, कार्तिकस्वामीको षष्ठी, नागको पञ्चमी, गणेशको चतुर्थी, गौरीको तृतीया, अश्विनीकुमारको द्वितीया, आद्यादेवीको प्रतिपदा र पितरको अमावस्या, यी दिन पुराणरीतिले उपवास गर्ने दिन हुन् तथा सर्वत्र 'यी वार र तिथिमा अन्न–पान ग्रहण गर्ने मानिस नरकगामी हुनेछ' भनिएकोछ। यस अनुसार पोप र पोपका चेलाहरूले कुनै वार वा कुनै तिथिमा भोजन गर्न नहुने ठहर्दछ, किनकि खान–पान गरेमा नरकगामी हुनेछन्।

निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, व्रतार्क आदि प्रमादी व्यक्तिहरूले बनाएका ग्रन्थमा एक–एक व्रतको ठूलो दुर्दशा गरिएको छ। जस्तै–एकादशीमा शैव दशमीविद्धा, कोही द्वादशीमा एकादशी व्रत गर्दछन्। अर्थात् यस्तो विचित्र पोपलीला छ कि भोकभोकै मर्नमा पनि वाद–विवाद नै गर्दछन्। एकादशीको व्रत चलाउनमा पनि आफ्नो स्वार्थ नै छ, दया केही पनि छैन। ती भन्दछन्—**एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति॥** भएभरका पाप एकादशीका दिन अन्नमा बस्तछन्। यस पोपसँग 'त्यसमा कसका पाप बस्तछन्? तेरा वा तेरा बाबुका?' भनी सोध्नुपर्दछ। भएभरकापाप एकादशीमा अन्नमा गएर रहन्छन् भने एकादशीका दिन कसैलाई पनि दुःख रहनुहुँदैन। यस्तो त हुँदैन, उल्टो भोक आदिका कारण दुःख हुन्छ। पापको फल दुःख हो। यसकारण भोकै मर्नु पाप हो। यसको ठूलो माहात्म्य बताएका छन्। यसको कथा सुनेर–सुनाएर धेरै व्यक्ति ठगिन्छन्। ती मध्ये एउटा कथा यस्तो छ—

ब्रह्मलोकमा एउटी वेश्या थिई। उसले केही अपराध गरी। उसले पृथ्वीमा खस्ने श्राप पाई अनि उसले 'म पृथ्वीमा खसेर पुनः स्वर्गमा कसरी आउन सक्नेछु?' भन्ने स्तुति गरी। श्राप दिनेले भन्यो—'कुनै वेला तँलाई कसैले एकादशीको व्रतको फल दियोभने तँ स्वर्गमा आउनेछेस्।' ऊ विमानसहित कुनै नगरमा खसी। त्यहाँको राजाले ऊसँग—'तँ को होस्?' भनी सध्यो। उसले सबै वृत्तान्त भनेर सुनाई र भनी—'कसैले मलाई एकादशीको फल अर्पण गरेमा म फेरि पनि स्वर्ग जान सक्तछु।' राजाले सहरभरि खोज्न लगायो। एकादशीको व्रत गर्ने कोही पनि भेट्टिएन। एकदिन कुनै शूद्र पति–पत्नीमा झगडा भएको थियो। क्रोधका कारण पत्नी रात–दिन भोकै बसेकी थिई। दैवसंयोगले त्यसदिन एकादशी नै परेछ। उसले राजाको सिपाहीसँग भनी—'मैले एकादशी सम्झेर व्रत गरेको त होइन, तर त्यसदिन अकस्मात् भोकै रहेकी थिएँ। अनि ती राजपुरुषले त्यसलाई राजाकहाँ ल्याए। राजाले ऊसँग 'यस विमानलाई छोइदेऊ' भन्यो। उसले छोइदिई र छुनेबित्तिकै विमान मास्तिर उड्यो। यो त नजानिकनै गरिएको एकादशीव्रतको फल हो भने जानेर गरेमा त्यसको फलको कुरा गरेर साध्य होला र?

अरे रे बुद्धिका अन्धा हो! यो कुरा सत्य हो भने हामी स्वर्गमा नभएको एउटा पानको बीडा स्वर्गमा पठाउन चाहन्छौं। सबै एकादशी व्रत गर्नेहरू आ–आफ्नो फल देऊ। एउटा बीडा मास्तिर गयो भने अनि लाखौं करोडौं पान त्यहाँ पठाऔंला र हामी पनि एकादशी व्रत गर्न थाल्नेछौं। अनि यसो भएन भने तिमीहरूलाई भोकै मर्नुरूपी यस आपत्कालबाट बचाउनेछौं।

चौबीस एकादशीका नाम छुट्टा–छुट्टै राखेका छन्। कुनैको 'धनदा', कुनैको 'कामदा', कुनैको 'पुत्रदा' र कुनैको 'निर्जला'। धेरैजसो दरिद्र, धेरै कामी र धेरै निर्वंशी व्यक्ति एकादशी व्रत गरेर बूढा भए, मरेरै पनि गए तर उनलाई धन, कामना वा सन्तान केही पनि प्राप्त भएन। जेठ महिनाको शुक्लपक्ष जस्तो एक घडीसम्म पनि पानी नपाउँदा मानिस व्याकुल हुने समयमा व्रत गर्नेहरूलाई ठूलो दुःख प्राप्त हुन्छ। खासगरी बङ्गालमा सबै विधवा स्त्रीहरूको ठूलो दुर्दशा एकादशीको दिन हुन्छ। यस्तो लेख्दा यस निर्दयी कसाईको मनमा केही पनि दया पलाएन। नत्रभने 'निर्जलालाई सजला र पौष महिनाको शुक्लपक्षको एकादशीको नाम निर्जला राखेको भएपनि केही बेस हुन्थ्यो। तर यस पापीलाई दयासँग के प्रयोजन र? कोही मरोस् वा बाँचोस्, पोपजी=पुरेत–

पुजारीको पेट राम्ररी भरिए पुग्दछ।

गर्भवती, भर्खरै विवाहिता स्त्री, केटा वा युवा व्यक्तिले त कहिल्यै उपवास गर्नु हुँदैन। कसैले उपवास गर्ने छ भने पनि पेटमा अजीर्ण भएको, भोक नलागेको दिनमा सर्बत वा दूध पिएर बस्नुपर्दछ। भोकमा नखाने र भोकविना खाने दुबै किसिमका व्यक्ति रोगसागरमा गोता खाएर दुःख पाउँछन्। यी प्रमादीहरूले लेखेका, बताएका कुराको प्रमाण कसैलेपनि मान्नुहुँदैन।

अब गुरु–शिष्य मन्त्रोपदेश र मतमतान्तरका चरित्रको व्यवहार बताइन्छ—

मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायीहरू प्रश्न गर्दछन्—वेद अनन्त छन्। ऋग्वेदका एक्काईस, यजुर्वेदका एकसय एक, सामवेदका एकहजार र अथर्ववेदका नौ शाखा छन्। तिनमा थोरै शाखा उपलब्ध छन्, बाँकी सबै लोप भएका छन्। तिनमै मूर्त्तिपूजा र तीर्थहरूको प्रमाण होला। नभएको भए पुराणमा कहाँबाट आए त? कार्यलाई देखेर कारणको अनुमान गरिन्छ भने पुराणहरूलाई देखेर मूर्त्तिपूजाको अनुमान गर्नमा के शङ्का रहन्छ र?

उत्तर—कुनै वृक्षका शाखा जुन वृक्षका हुन्छन् त्यस वृक्षजस्तै हुन्छन् फरक हुँदैनन्। हाँगा साना होऊन् अथवा ठूला, तर उनमा विरोध हुनसक्तैन। जस्तै जति शाखा उपलब्ध छन् तिनमा ढुङ्गा का मूर्ति र जल–स्थल–विशेष तीर्थहरूको प्रमाण पाइँदैन भने ती लुप्त शाखाहरूमा पनि थिएनन्। चार वेद त पूर्णरूपमा उपलब्ध छँदैछन्, शाखा तिनका विरुद्ध हुन् सक्तैनन् र जो वेदविरुद्ध छन् , तिनलाई कसैले पनि शाखा सिद्ध गर्नसक्तैन। यसैअनुसार पुराण वेदका शाखा होइनन्, यी त सम्प्रदायी व्यक्तिहरूले बनाएका परस्पर विरुद्ध ग्रन्थ हुन्।

वेदलाई तिमी परमेश्वरकृत मान्दछौ वा मनुष्यकृत?

परमेश्वरकृत।

वेदलाई परमेश्वरकृत मान्दछौ भने '**आश्वलायनादि**' ऋषिमुनिका नामबाट प्रसिद्ध ग्रन्थ लाई वेद किन मान्दछौ? जसरी हाँगा र पातलाई हेरेर पीपल, बर र आँप आदि वृक्ष चिनिन्छन्, त्यस्तै ऋषिमुनिले बनाएका वेदाङ्ग, चारै ब्राह्मण, अङ्ग, उपाङ्ग र उपवेद आदिबाट वेदको अर्थ जानिन्छ। यसैकारण यी ग्रन्थलाई '**शाखा**' मानिएको हो। वेदविरुद्धको प्रमाण र वेदानुकूलको अप्रमाण हुनसक्तैन।

तिमीले वेदका लुप्त शाखाहरूमा मूर्त्ति आदिको कल्पना गर्दछौ भने कसैले यस्तो पक्ष पनि प्रस्तुत गर्नेछ कि—लुप्त शाखाहरूमा वर्णाश्रमव्यवस्था उल्टो अर्थात् अन्त्यज, शूद्रादिको नाम ब्राह्मणादि, ब्रह्मणादिको नाम शूद्र, अन्त्यज आदि, अगमनीया गमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषण आदि धर्म, सत्यभाषण आदि अधर्म आदि लेखिएको होला। यस्तो अवस्थामा तिमीले पनि हामीले दिएकै उत्तर दिनेछौ। अर्थात् 'वेद र प्रसिद्ध शाखाहरूमा जस्तो ब्राह्मणादिको नाम ब्राह्मण आदि र शूद्रादिको नाम शूद्रादि लेखिएको छ त्यस्तै लुप्तशाखाहरूमा पनि मान्नु पर्दछ। नत्रभने वर्णाश्रम व्यवस्था सबै चौपट हुनेछन्।'

अँ, जैमिनी, व्यास र पतञ्जलिका समयसम्म सबै शाखा विद्यमान थिए वा थिएनन्? थिए भने तिमी कहिल्यै निषेध गर्न सक्नेछैनौ। थिएनन् भन्छौ भने शाखा हुने कुराकै के प्रमाण? हेर, जैमिनीले मीमांसामा सबै कर्मकाण्ड, पतञ्जलिमुनिले योगशास्त्रमा सबै उपासनाकाण्ड र व्यासमुनिले शारीरकसूत्रहरूमा सम्पूर्ण ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लेखेका छन्। उनमा ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा वा प्रयाग आदि तीर्थहरूको नाम पनि लेखिएको छैन। कहाँबाट लेख्ने र? वेदमा भएको भए न लेख्थे, नलेखी छोड्ने थिएनन्। यसकारण लुप्त शाखाहरूमा पनि यी मूर्तिपूजा आदिको प्रमाण थिएन। यी सबै शाखा वेद होइनन्, किनकि यिनमा ईश्वरकृत वेदका प्रतीक राखेर व्याख्या र सांसारिक व्यक्तिहरूको इतिहास पनि लेखिएको छ। यसकारण यिनलाई कहिल्यै वेद मान्न सकिंदैन। वेदमा त केवल मनुष्यलाई विद्याको उपदेश गरिएको छ। कुनै मानिसको नाम मात्र पनि छैन। यसकारण मूर्त्तिपूजाको सर्वथा खण्डन छ।

हेर, मूर्त्तिपूजाबाट श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण, शिव आदिको ठूलो निन्दा र उपहास हुन्छ। ती ठूला महाराजाधिराज र उनका पत्नीहरू सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी र पार्वती आदि महारानी थिए भन्ने कुरा सबैलाई थाहै छ। तर तिनका मूर्त्ति बनाएर मन्दिर आदिमा राखेर पुजारीहरूले उनीहरूका नामबाट भिक्षा माँग्ने गरेर उनीहरूलाई भिखारी बनाइरहेछन्—

'आओ महाराज! साहुजी। दर्शन गर। बस, चरणामृत ग्रहण गर, केही भेटी चढाऊ। महाराज! सीता–राम, कृष्ण–रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण र महादेव–पार्वतीजीलाई तीन दिनदेखि बालभोग वा

राजभोग अर्थात् जलपान या केही खानेकुरा प्राप्त भएको छैन। आज यिनीहरूसँग केही छैन। रानीजी! वा सेठानीजी! सीता आदिका लागि टप वा फुली बनाइदेऊ। अन्न आदि पठाऊ अनि त राम कृष्ण आदिलाई भोग लगाइने छ।'

'वस्त्र सबै च्यातिइसकेका छन्। मन्दिरका कुना सबै लडिसके। माथिबाट चुहिन्छ। अलि–अलि जे–केही बाँकी थियो, त्यो सबै दुष्ट चोरले लग्यो। केही ऊन्दर=मूसाले काटेर नष्ट पारिदिए। हेर, एकदिन मूसाले यस्तो अनर्थ गर्यो कि यिनका आँखा पनि झिकेर लिईभाग्यो। अनि हामीले चाँदीका बनाउन नसकेर कौडी=सीपीका आँखा लगाएका छौं।'

रामलीला र रासमण्डल पनि गराउँछन्। सीताराम, राधाकृष्ण नाचिरहेछन्, राजा महन्त आदि उनका सेवक भने आनन्दपूर्वक बसेकाछन्। मन्दिरमा सीता, राम आदि उभिएका हुन्छन् र पुजारी वा महन्तजी भने आसन वा गद्दीमाथि तकिया लगाएर बसिरहेका हुन्छन्। भयंकर गर्मीमा पनि ताल्चा लगाएर भित्र थुनिदिन्छन्, आफूभने सुहाउँदो हावामा पलंग आदि ओछ्याएर सुत्दछन्। धेरै पुजारीहरू आफ्ना नारायणलाई सानो डिब्बामा बन्द गरेर माथिबाट कपडा आदिले बेरेर बाँधेर गलामा झुण्ड्याइराख्छन्। बाँदर्नीले आफ्ना बच्चालाई छातीमा झुण्ड्याइराखे जस्तै ती भगवानलाई पुजारीले झूण्ड्याएका हुन्छन्। कसैले मूर्त्तिलाई तोड–फोड गर्यो भने 'सीतारामजी, राधाकृष्णजी र शिवपार्वतीजीलाई दुष्टहरूले तोडफोड गरे' भनेर छाती पिटेर चिच्याउँछन्, कराउँछन्। 'अब योग्य शिल्पीले बनाएको संगमरमरको अर्को मूर्त्ति मगाएर स्थापन र पूजा गर्नुपर्यो। नारायणलाई घिउ नभई भोग लगाईंदैन। धेरै नभए पनि अलिकति अवश्य पठाइदिनु होला' इत्यादि कुरा मूर्त्तिमाथि सिद्ध गर्दछन्। रासमण्डल वा रामलीलाको अन्त्यमा सीताराम वा राधाकृष्णलाई भिक्षा माग्न लगाउँछन्। कतै मेला–उत्सव छ भने कुनै केटाको टाउकोमा मुकुट राखेर कन्हैया बनाएर बाटाको छेउमा बसाएर भिक्षा माग्न लगाउँछन्। इत्यादि कति दु:खका कुरा हुन् भन्ने विचार तपाईंहरू नै गर्नुहोला।

नत्र भने के सीता–राम आदि यस्ता दरिद्र र भिखारा थिए? यो तिनको उपहास र निन्दा होइन भने के हो त? यसबाट आफ्ना माननीय व्यक्तिहरूको निन्दा हुन्छ। यी माननीयहरूको समयमा सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी र पार्वतीलाई सडकमा वा कुनै घरमा उभ्याएर पुजारीहरूले

'आओ, यिनको दर्शन गर र केही भेटी–पूजा राख' भनेका भए यी मूर्खले यसो भन्दैमा सीता–राम आदिले न त यस्तो काम गर्नेथिए, न यसो गर्न दिनेथिए। बरु यस्तो उपहास गर्नेलाई दण्ड नदिई छोड्ने थिएनन्। अँ, तीबाट दण्ड नपाएपछि यिनकै कर्मबाट पुजारीहरूलाई धेरैजसो मारपीट, लुटपाट, मूर्त्तिचोरी, मूर्त्तितोड्नु आदिरूपी प्रसाद मूर्त्तिविरोधीहरूको तर्फबाट दिलाए र अझै पनि मिल्दैछ र यो कुकर्म नछोडेसम्म यो प्रसाद प्राप्त भैनै रहनेछ।

आर्यावर्त्तको प्रतिदिन ठूलो हानि, ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजा गर्नेहरूको पराजय यिनै कर्मबाट हुन्छ भन्ने कुरामा कुनै सन्देह छैन, किनकि पापको फल दुःख हुन्छ। यिनै ढुङ्गा आदि मूर्त्तिको विश्वासले धेरैजसो हानि भैसक्यो। यसलाई नछोडेमा दिन प्रतिदिन यो हानि बढ्दैजानेछ। यिनमा वाममार्गी सबैभन्दा ठूला अपराधी हुन्। यिनीहरू चेला बनाउँदा कुनै साधारण मानिसलाई—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मन्त्रहरूको उपदेश गर्दछन्। बंगालमा खासगरी एकाक्षरी मन्त्रको उपदेश गर्दछन्। जस्तै—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं॥ इत्यादि। अनि धनाढ्य व्यक्तिको पूर्णाभिषेक गर्दछन्। यस्तै दश महाविद्याका मन्त्र—

ह्रां, ह्रीं, ह्रूं वगलामुख्यै फट् स्वाह॥ कतै कतै—**हूं फट् स्वाहा॥**

यी हुन् र मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग गर्दछन्। मन्त्रबाट त त्यस्तो केही पनि हुँदैन तर क्रियाबाट नै सबै कुरा गर्दछन्। कसैलाई मार्ने प्रयोग गर्दा एकातर्फ प्रयोग गराउनेबाट धन लिएर जसलाई मार्नुपर्ने छ त्यसको पुतला वा मूर्तिजस्तो पिठो वा माटोको बनाउँछन्। उसको छाती, नाभि र कण्ठमा छुरा घोप्छन्। आँखा, हात, गोडामा कीला ठोक्छन्। त्यसमाथि भैरव वा दुर्गको मूर्त्ति बनाएर हातमा त्रिशूल दिएर उसको हृदयमा लगाउँछन्। एउटा वेदी बनाएर मासु आदिको होम गर्न थाल्दछन् भने अर्का तर्फ दूत आदि पठाएर विष आदिद्वारा त्यस व्यक्तिलाई मार्ने उपाय गर्दछन्। आफ्नो पुरश्चरणको बीचमै कसैले त्यस व्यक्तिलाई मारिहाल्यो भने आफूलाई भैरव देवीको सिद्धिसम्पन्न बताउँछन्। "**भैरवो भूतनाथश्च**" इत्यादि पाठ गर्दछन्।

मारय–मारय, उच्चाटय–उच्चाटय, विद्वेषय–विद्वेषय, छिन्धि–छिन्धि, भिन्धी–भिन्धी, वशीकुरु–वशीकुरु, खादय–भक्षय,

त्रोटय–त्रोटय, नाशय–नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु–वशीकुरु, हुं फट् स्वाहा॥

इत्यादि मन्त्र जप्तछन्। मद्यमांस आदि यथेष्ट खानेपिउने गर्दछन्। भृकुटीको बीचमा सिन्दूरको रेखा तान्दछन्। कहिलेकाहीं काली आदिका निम्ति कुनै मानिसलाई समातेर मारेर, होम गरेर, त्यसको मासु पनि अलि–अलि खान्छन्। भैरवीचक्रमा नजाने, मद्यमांस नखाने, नपिउने व्यक्तिलाई मारेर होम गरिदिन्छन्। तिनमा जुन '**अघोरी**' हुन्छ त्यसले त मरेका मानिसको मासु पनि खान्छ। **अजरी–बजरी** गर्ने तान्त्रिकहरू त दिसा–पिसाब पनि खान्छन्, पिउँछन्।

एउटा **चोलीमार्ग** र अर्को **बीजमार्गी** पनि हुन्छन्। चोलीमार्गीहरू एउटा गोप्य ठाउँ वा भुइँमा एउटा ठाउँ बनाउँछन्। त्यहाँ सबैका पति, पत्नी, छोरा, छोरी, दिदी, बहिनी, आमा, बुहारी आदि सबै जम्मा भएर सबै मिलेर मासु खान्छन्, रक्सी पिउँछन्, एउटी स्त्रीलाई नांगै पारेर सबै पुरुषले उसको गुप्तेन्द्रियको पूजा गर्दछन् र उसको नाम दुर्गादेवी राख्छन्। त्यस्तै एउटा पुरुषलाई नांगो पारेर सबै स्त्रीहरूले उसको गुप्तेन्द्रियको पूजा गर्दछन्। रक्सी धोकेकोधोक्यै गरेर उन्मत्त भएपछि सब स्त्रीहरू चोली अर्थात् छातीका वस्त्रलाई माटोको एउटा ठूलो घ्याम्पोमा हालेर एउटा–एउटा पुरुषले त्यसमा हात हालेर जसको हातमा जसको वस्त्र पर्दछ ऊ आमा, बहिनी, छोरी, बुहारी जोसुकै भएपनि त्यसबखतका लागि त्यो त्यसैको पत्नी हुन्छे। परस्पर कुकर्म गर्दछन् र धेरै नशा चढ्नाले जुत्ता आदिद्वारा हानाहान गरेर लड्ने भिड्ने पनि गर्दछन्। बिहान केही अँध्यारो छँदैमा आ–आफ्ना घर जान्छन् अनि आमा आमा, छोरी छोरी, बहिनी बहिनी र बुहारी बुराही नै हुन्छन्। अर्को कुरा, बीजमार्गी भने स्त्री पुरुषको समागम गरेर पानीमा वीर्य हालेर मिलाएर पिउँछन्। यी नालायक लाछीहरू विद्या विचार सज्जनता आदिरहित भएर यस्ता कुकृत्यलाई मुक्तिका साधन मान्दछन्।

प्रश्न—शैव मतावलम्बीहरू त ठिकै हुन्छन् होइन?

उत्तर—कसरी ठीक हुनु। 'जस्तो प्रेतनाथ त्यस्तै भूतनाथ'। जसरी वाममार्गी मन्त्रोपदेश आदिद्वारा अर्काको धन हरण गर्दछन्, त्यस्तै शैव पनि 'ॐ नमः शिवाय' इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रको उपदेश गरेर, रुद्राक्ष, भस्म धारण गरेर माटो र ढुङ्गा आदिका लिङ्ग बनाएर पुज्दछन् र 'हर–हर बं बं' तथा बोकाको शब्दजस्तै मुखबाट 'बड बड' शब्द निकाल्दछन्। यसो गर्नाको कारण चाहिं ताली बजाउनाले र 'बं बं'

शब्द बोल्नाले पार्वती प्रसन्न र महादेव अप्रसन्न हुन्छन् भन्ने कुरा बताउँछन्, किनकि भस्मासुरको अगाडिबाट महादेव भाग्दा 'बं बं' र ठट्टा गरेको ताली बजेको थियो। त्यस्तै गाला बजाउनाले पार्वती अप्रसन्न र महादेव प्रसन्न हुन्छन् रे। किनकि पार्वतीका पिता दक्षप्रजापतिको टाउको काटेर अग्निमा होमेर उसको गिंडमा बोकाको टाउको लगाइएको थियो। गाला बजाउनुलाई त्यसैको नक्कल मान्दछन्। शिवरात्रि, प्रदोषव्रत आदिबाट मुक्ति हुन्छ भन्ठान्दछन्। यस कारण जसरी वाममार्गी भ्रान्त छन्, त्यस्तै शैव पनि भ्रमित छन्। यिनमा खासगरी कनफट्टा नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत, सागर तथा गृहस्थ पनि शैव हुन्छन्। कोहीकोही दुबै घोडामा चढ्दछन् अर्थात् वाममत र शैवमत दुवैलाई मान्दछन् र कति त वैष्णव पनि हुन्छन्। उनीहरूको—

अन्तः शाक्ता बहिश्शैवः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्तीह महीतले॥

यो तन्त्रको श्लोक हो। भित्र शाक्त अर्थात् वाममार्गी, बाहिर शैव अर्थात् रुद्राक्ष, भस्म धारण गर्ने र सभामा वैष्णव भनिन्छन् अर्थात् 'हामी विष्णुका उपासक हौं' भन्दछन्। यस्ता नाना रूप धारण गरेर वाममार्गीहरू पृथ्वीमा विचरण गर्दछन्।

प्रश्न—वैष्णव त ठिकै छन्?

उत्तर—के ठीक हुन्थे र। जस्ता उनीहरू छन्, त्यस्तै यी हुन्। वैष्णवहरूका लीला त हेर! आफूलाई विष्णुका दास मान्दछन्। तिनमा चक्राङ्कित श्रीवैष्णव आफूलाई सर्वोपरि मान्दछन्, तर ती केही पनि होइनन्।

प्रश्न—केही पनि किन होइनौं? सबै नै हौं। हेर, ललाटमा नारायणको चरणारविन्द जस्तै तिलक र बीचमा पहेंलो रेखा श्री हुन्छ, यसैले हामी '**श्रीवैष्णव**' भनिन्छौं। एउटा नारायणबाहेक अरू कसैलाई मान्दैनौं। महादेवका लिङ्गको दर्शन पनि गर्दैनौं। किनकि त्यसो गर्नाले हाम्रो मस्तकमा विराजमान श्रीलाई लाज लाग्दछ। '**आलमन्दार**' आदि स्तोत्रको पाठ गर्दछौं। मन्त्रपूर्वक नारायणको पूजा गर्दछौं। मासु खाँदैनौं, जाँड–रक्सी आदि पिउँदैनौं। अनि हामी ठीक किन होइनौं?

उत्तर—तिम्रो यस तिलकलाई हरिपदको आकृति र यस पहेंलो रेखालाई श्री मान्नु व्यर्थै छ। किनकि हात्तीको मस्तकलाई चित्र–विचित्रको पारे जस्तै यो त तिम्रा हातको कारीगरी र ललाटको चित्र हो। तिम्रो मस्तकमा विष्णुका गोडाको चिह्न कहाँबाट आयो? के कसैले वैकुण्ठमा

गएर विष्णुका गोडाको चिह्न ललाटमा राखेर ल्याएको हो?

विवेकी—अनि श्री जड़ छ वा चेतन?

वैष्णव—चेतन छ।

विवेकी—त्यसोभए यो रेखा जड़ हुनाले यो श्री होइन। हामी 'श्री बनाइएको हो वा नबनाई भएको हो' भनी सोद्धछौं। बनाइएको होइन भने यो श्री होइन, किनकि यसलाई त तिमी दिनहुँ आफ्नै हातले बनाउँदछौ, अनि यसरी दिनहुँ बनाइने श्री हुँदै होइन। तिम्रो मस्तकमा श्री नै हो भने कैयौं वैष्णवहरूको मुखमण्डल नराम्रो अर्थात् शोभारहित किन देखिन्छ? ललाटमा श्री लगाएर, घरघरमा भिक्षा माग्दै र सदावर्त्त लिएर पेट भर्दै किन डुल्छौ? मस्तकमा श्री भिरेर कामचाहिं महादरिद्रका गर्दछौं, यी अत्यन्त घृणा र लज्जाका कुरा हुन्?

यिनमा एउटा '**परिकाल**' नामक वैष्णव भक्त थियो। त्यो चोरी, डकैती, छल–कपट गरेर अर्काको धन हरण गरेर वैष्णवहरूकहाँ पुर्याएर प्रसन्न हुने गर्दथ्यो। एकपटक चोरी गर्न जाँदा लुट्न–चोर्नलायक कुनै पदार्थ प्राप्त भएन र व्याकुल भएर यताउति घुमिरहेको थियो। नारायण 'मेरो भक्तले दुःख पाएछ' भन्ने सोचेर, महाजनको रूप धारण गरेर, औंठी आदि आभूषण भिरी रथमा बसेर परिकालको अगाडि आए। परिकालले रथको नजिक पुगेर महाजनसँग भन्यो—'सबै सामान तुरुन्त खोल, नत्र मार्नेछु।' खोल्दा–खोल्दै औंठी खोल्न ढिलो भयो। परिकालले नारायणको औंलो काटेर औंठी लियो। नारायणले अत्यन्त प्रसन्न भएर चतुर्भुज शरीर धारण गरेर दर्शन दिएर भने—'तिमी मेरा ठूला भक्त हौ। लूटमार चोरी आदि गरेर पनि सब धन प्राप्त गरेर वैष्णवहरूको सेवा गर्ने हुनाले तिमी धन्य छौ।' अनि उसले गएर सबै गर–गहना वैष्णवहरूका समीप राखिदियो।

एकपटक कुनै साहुकारले परिकाललाई नोकर बनाएर जहाजमा बसाएर अर्कै देशमा लग्यो। त्यहाँबाट जहाजमा सुपारी भर्यो। परिकालले एउटा सुपारीलाई फोरेर आधा टुक्रो पारेर साहुजीसँग भन्यो—'यो मेरो आधा कुड्को सुपारी जहाजमा राखिदेऊ र जहाजमा आधा सुपारी परिकालको छ भनेर लेखिदेऊ'। साहुजीले—'तिमीले चाहे हजार सुपारी लिए पनि हुन्छ' भन्दा परिकालले—'होइन, म अधर्मी होइन, झूटो बोलेर लिन्न, मलाई त आधा चाहिन्छ' भन्यो। व्यापारी सोझो सज्जन थियो, उसले लेखेर दियो। जहाज आफ्नो देशको बन्दरगाहमा आइपुगेर सुपारी उतार्ने तैयारी हुँदा परिकालले—'मेरो आधी सुपारी

देऊ' भन्यो। व्यापारीले त्यही आधा कुड्को सुपारी दिन खोज्यो तर परिकालले 'मेरो त जहाजमा आधा सुपारी छ, भाग लगाउनुपर्दछ' भनेर झगडा गर्न थाल्यो। झगडा राजपुरुषसम्म पुग्यो। परिकालले– व्यापारीले लेखेको देखाएर 'यसले आधा सुपारी दिन लेखेको छ' भन्यो व्यापारीले धेरै समझायो तर उसले मानेन। जहाको सम्पूर्ण आधा सुपारी लिएर वैष्णवहरूलाई अर्पण गर्यो। अनि त वैष्णव धेरै प्रसन्न भए। उनीहरू हालसम्म पनि त्यस चोर, डाकू परिकालको मूर्त्ति मन्दिरमा राख्तछन्। यो कथा भक्तमालमा लेखिएको छ। बुद्धिमान् व्यक्तिहरूले विचार गर्नुपर्दछ कि वैष्णव, उनका सेवक र नारायण यी तिनै चोरमण्डली हुन् वा होइनन्?

यद्यपि मतमतान्तरमा कोही केही ठीक पनि हुन्छन् तथापि त्यस मतमा रहेर सर्वथा ठीक कोही पनि हुनसक्तैन। अब वैष्णवहरूमा जस्तो टुट–फुट छ र बेग्लाबेग्लै तिलक कण्ठी आदि धारण गर्दछन्, त्यसबारे लेखिन्छ। रामानन्दी छेउमा गोपीचन्दन र बीचमा रातो लगाउँछन्, त्यस्तै नीमावत दुवैतर्फ पातलो रेखा र बीचमा कालो थोप्लो, माधव कालो रेखा, गौड बंगाली कचौरा जस्तै र रामप्रसादी दुवै चन्द्राकार रेखाको बीचमा एउटा सेतो बाटुलो टीको लगाउँदछन् आदि। यिनका विलक्षण विलक्षण भनाइ छन्–रामानन्दी रातो रेखालाई लक्ष्मीको चिह्न, नारायणको हृदयमा श्री र कृष्णचन्द्रको हृदयमा राधा विराजमान भएको बताउँछन्।

भक्तमालमा एउटा कथा छ। कुनै एउटा मानिस रूखमुनि सुतिरहेको थियो। सुतेकै अवस्था मर्यो। माथिबाट कागले विष्टा गरिदियो। त्यो उसको मस्तकमा तिलकाकार भएर पर्यो। त्यहाँ उसलाई लिन यमका दूत आए र त्यत्तिकैमा विष्णुका दूत पनि आइपुगे। दुबैको विवाद भयो। यमका दूतले 'यसलाई हामी यमलोक लैजान्छौं, यो हाम्रो स्वामीको आज्ञा हो' भने। विष्णुका दूतले—'हाम्रा स्वामीको आज्ञा यसलाई वैकुण्ठ लैजानेछ, हेर, यसको ललाटमा वैष्णवी तिलक छ, तिमीहरूले यसलाई कसरी लानपाउँछौ छौ?' भने। अनि त यमका दूत चुपचाप लागेर फर्के। विष्णुका दूतले उसलाई सुखपूर्वक वैकुण्ठ लगे। नारायणले उसलाई वैकुण्ठमा।

हेर, अपर्झट आफैं तिलक बनेको माहात्म्य त यस्तो छ भने आफ्नै प्रीति र हातबाट तिलक लगाउनेहरू नरकबाट छुटेर वैकुण्ठ पुग्नमा के आश्चर्य छ त?

हामी सोद्धछौं—जब सानो तिलक लगाउनाले त वैकुण्ठ गइन्छ भने सबै मुखभरि लिप्नाले, मुखमा कालोमोसो दल्नाले अथवा शरीरभरि लिप्नाले वैकुण्ठभन्दा पनि पर पुग्छौ वा पुग्दैनौ? यसकारण यी सबै कुरा व्यर्थै हुन्।

अब यिनमा धेरैजसो **खाखी** सम्प्रदायका व्यक्ति मुढाको लंगोली (ढेरी) लगाएर धुनी ताप्ने, जटा बढाउने र सिद्धको भेष धारणगर्ने गर्दछन्। बकुल्लाजस्तै ध्यानावस्थित भैटोपल्छन्। गाँजा, भाँङ्, चरेसको दम लगाउँछन्। राता–राता आँखा पार्छन्। सबैसँग मुठ्ठी–मुठ्ठी पिंधेको अन्न र एक–एक पैसा माग्दछन्, गृहस्थका केटाहरूलाई भड्काएर लैजान्छन्। तिनमा धेरैजसो ज्यामीहरू हुन्छन्। कसैले विद्या पढ्न चाहेमा पनि पढ्न दिंदैनन्। उनीहरू भन्छन्—

''पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेतिकिं कर्त्तव्यम्?''
सन्तहरूले विद्या पढेर के काम? किनकि विद्या पढ्नेहरू पनि मर्दछन् भने किन दाँत कट्कटाउने? साधुहरूले त चारधाम डुल्नु, सन्तहरूको सेवा गर्नु र रामजीको भजन गर्नु नै पर्याप्त हुन्छ।

कुनै मूर्खले अविद्या को मूर्त्ति नदेखेको भए खाखीजीको दर्शन गरेहुन्छ। खाखीको नजिक जाने व्यक्ति उनका बाबु–आमा सरह नै किन नहोओस्, सबैलाई उनीहरू बच्चा–बच्ची भन्ने गर्दछन्। खाखीजस्तै रुंखड, सुंखड़, गोदड़िया, जमातिया, सुतरेसाई, अकाली, कनफटा, जोगी, औघड़ आदि सबै एकनासै हुन्।

एउटा खाखीको चेलो '**श्री गणेशाय नमः**' घोक्दै–घोक्दै कुवामा पानी भर्न पुग्यो। त्यहाँ पण्डित बसेको थियो। पण्डितले उसलाई—'**स्त्रीगनेसाजनमे**' भनि घोकोको देखेर भन्यो—अरे साधु! तिमी अशुद्ध घोक्दै छौ। '**श्री गणेशाय नमः**' यस्तो घोक। त्यो चेलोले तुरन्तै लोटा भरेर गुरुछेउ पुगेर भन्यो—'यो बाउन मैले घोकेकोलाई असुध भन्दैछ।' यसो सुन्ने बित्तिकै खाखी तुरन्तै उठ्यो र कुवामा गएर पण्डितसँग भन्यो—तँ मेरो चेलोलाई भड्काउँछस्। तँ गुरुको ताबेदारले के पढेको छस् र? हेर्, तैंले एक किसिमको पाठ जानेको छस्, हामी तीनप्रकारको पाठ जान्दछौं—

'स्त्रीगनेसाजन्नमे'; 'स्त्रीगनेसायन्न मे', 'स्त्रीगनेसाय नमे'।

पण्डित—सुन साधुजी! विद्याको कुरा धेरै कठिन हुन्छ, नपढिकन आउँदैन।

खाखी—जा जा! हामीले धेरै विद्वान्हरूलाई लतारेका छौं, तिनलाई

भाँङ् घोटेर सबैलाई उडाइदिएका छौं। सन्तहरूको घर ठूलो छ। तँ बिचरा के जान्दछस् र?

पण्डित—हेर, तिमीले विद्या पढेका भए यस्ता अपशब्द बोल्ने थिएनौ। तिमीलाई सबै किसिमको ज्ञान हुन्थ्यो।

खाखी—ए! तँ हाम्रो गुरु हुन्छस्? तेरो उपदेश हामीलाई चाहिंदैन।

पण्डित—बुद्धि नै नभएपछि कहाँबाट पाइयोस् र चाहियोस्। उपदेश सुन्न र बुझ्नका लागि विद्या चाहिन्छ।

खाखी—सबै शास्त्र पढेर पनि साधु-सन्तलाई नमान्ने व्यक्तिले केही नपढेको सम्झनुपर्दछ।

पण्डित—हो, हामी सन्तहरूको सेवा गर्दछौं, तर तिमीजस्ता हुल्याहाहरूको सेवा गर्दैनौं। किनकि सज्जन, धार्मिक, विद्वान्, परोपकारी व्यक्तिलाई नै '**सन्त**' भनिन्छ।

खाखी—हेर, हामी दिनरात नांगै बस्तछौं, धुनी ताप्छौं, गाँजा, चरेसका सयौं दम लगाउँछौं। तीन-तीन औखोरा भाँङ् पिउँछौं। गाँजा, भाँङ्, धतुराका पातको साग पकाएर खान्छौं। संखिया र अफीम पनि तुरुन्तै निल्दछौं। नशामा डुबेर रात-दिन निस्फिक्री रहन्छौं। दुनियाँलाई केही गन्दैनौं। भिक्षा मागेर सुख्खा रोट पकाएर खान्छौं। रातभरि हामी नजिक सुत्नेलाईसमेत निन्द्रा नलाग्नेगरी खोकिरहन्छौं, इत्यादि सिद्धिहरू र साधुपन हामीभित्र हुँदा-हुँदै पनि तँ किन हाम्रो निन्दा गर्दछस्? ए मोरा, अझै चेत्। हामीलाई दिक्क लाइस् भने तँलाई हामी भस्म गरिदिनेछौं।

पण्डित—यी सबै लक्षण असाधु, मूर्ख र नालायकका हुन्, साधुका होइनन्। सुन, '**साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः**' धर्मयुक्त उत्तम काम गर्ने, सदा परोपकारमा लागिरहने, कुनै दुर्गुण नभएको, विद्वान् र सत्य उपदेशद्वारा सबैको उपकार गर्नेलाई '**साधु**' भनिन्छ।

खाखी—जा जा! तँलाई साधुका कर्म के थाहा? सन्तहरूको घर ठूलो छ। कुनै सन्तसँग यसरी निहुँ नखोज्नू, नत्रभने एउटा चिम्टा उठाएर हान्योभने तेरो टाउको फुट्नेछ।

पण्डित—भई गयो खाखी जी! जाऊ, आफ्नो आसनमा जाऊ, हाम्रा सामु धेर रिस नपोख। तिमीलाई थाहा छ राज्यशासन कस्तो छ भनेर? कसैलाई मार्यौभने समातिनेछौ, जेल सजाय भोग्नुपर्नेछ, बेतका कोर्रा खानेछौ। अथवा कसैले तिमीलाई नै हान्यो वा मार्योभने के गर्नेछौ? यो त साधुको लक्षण होइन।

खाखी—हिंड् ए चेला। कुन राक्षसको मुख देखाइस् तैंले?

पण्डित—तिमीले कुनै महात्माको संगत गरेका भए यस्ता जड़मूर्ख रहने थिएनौ।

खाखी—हामी आफैं महात्मा हौं। हामीलाई अरू कुनैको आवश्यकता छैन।

पण्डित—भाग्यहीन मानिसमा नै तिम्रो जस्तो बुद्धि र घमण्ड हुन्छ।

खाखी आफ्नो आसनमा र पण्डित आफ्नो घर गए। साँझको आरतीपछि त्यस खाखीलाई बूढो सम्झेर धेरैजसो खाखीहरूले डण्डोत-डण्डोत भनी साष्टाङ्ग गरेर बसे। त्यस खाखीले 'ओ रामदासिया! तैंले के पढेकोछस्?' भनी सोध्यो।

रामदास—महाराज! मैले 'बेस्नुसहसरनाम' पढेको छु।

खाखी—ओ गोविन्दासिया! तैंले चाहिं के पढेकोछस् नि?

गोविन्ददास—मैले फलाना खाखीजीबाट 'रामसतबराज' पढेको छु। त्यसैबखत रामदासले 'महाराज! तपाइँले के पढ्नुभएको छ?' भनी सोध्यो।

खाखी—हामीले गीता पढेका छौं।

रामदास—कोसँग पढ्नुभएको?

खाखी—जा हट्। हामी कुनै गुरुलाई मान्दैनौं। हेर्! हामी 'परागराज' मा बस्तथ्यौं। हामीलाई एक अक्खर आउँदैनथ्यो। कुनै लामो धोतीधारी पण्डितलाई देख्नेबित्तिकै गीताको गुटिका तेर्स्याएर 'यस सिउर भएको अक्खरको के नाम हो?' भनी सोद्धा-सोद्धा अठार अध्ये गीता घोक्यौं। गुरु एउटा पनि बनाएनौं।

यस्ता विद्याका शत्रुकहाँ अविद्याले घर बनाएर नबसे कहाँ जाओस् त? यिनीहरू नशा, प्रमाद, लडाइँ, खाने, सुत्ने, खैंजडी ठटाउने, घण्टा, घडियाल, शङ्ख बजाउने, धुनी-चिता राख्ने, नुहाउने-धुने, यताउति व्यर्थै घुम्ने-फिर्नेबाहेक कुनै राम्रो काम गर्दैनन्। बरु कसैले ढुङ्गा पगाल्न सक्ला तर यी खाखीका आत्मामा ज्ञान दिलाउन गाह्रो पर्दछ, किनकि तिनमा धेरैजसो शूद्रवर्णका, ज्यामी, किसान, डोले आदि आफ्नो ज्यालादारी छोडेर खाख=खरानी घसेर वैरागी खाखी बनेका हुन्छन्। तिनले विद्या वा सत्सङ्ग आदिको माहात्म्य बुझ्नसक्तैनन्।

यीमध्ये नाथहरूका मन्त्र—'**नमः शिवाय**', खाखीका—'**नृसिंहाय नमः**', रामावतका—'**श्रीरामचन्द्राय नमः**' अथवा '**सीतारामाभ्यां**

नमः', कृष्णको उपासककाः—'**श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः**' '**नमो भगवते वासुदेवाय**' र बङ्गालीहरूका—'**गोविन्दाय नमः**' यी मन्त्रलाई कानमा पढ्नाले मात्र यिनीहरूमा शिष्य बनाइन्छन्। अनि यस्ता–यस्ता शिक्षा दिन्छन् कि बच्चा! झोली–तुम्बाको मन्त्र पढ—

जल पवितर स्थल पवितर और पवितर कुवा।
शिव कहे सुन पार्वती, तूम्बा पवितर हुआ॥

के यस्ता व्यक्तिको योग्यता, कहिल्यै साधु वा विद्वान् हुने अथवा जगत्को उपकार गर्ने खालको हुनसक्तछ? खाखी रातदिन मुढा, जंगली गुइँठा, नर्कट बाल्ने गर्दछन्। एक महिनामा कैयौं रूपैयाँको दाउरा डढाएर सिध्याउँछन्। एक महिनामा लाग्ने दाउराको मूल्य बराबरको कम्बल किनेमा एक प्रतिशत धनबाट आनन्दपूर्वक बस्न सकिन्छ। तर तिनलाई यति बुद्धि कहाँबाट आउँदो हो र? त्यसै धुनीमा ताप्नाले उनीहरूले आफ्ना नाम पनि तपस्वी राखेका हुन्। यसरी तपस्वी भइनेभए जङ्गली मानिस यीभन्दा बढी तपस्वी ठहरिनेछन्। जटा बढाउनाले, खरानी घस्नाले वा तिलक लगाउनाले तपस्वी भइनेभए जसले पनि यति गर्न सक्तथ्यो। यिनीहरू बाहिरका देखाव त्यागस्वरूपी र भित्रका महासंग्रही हुन्छन्।

प्रश्न—'कबीरपन्थी' त ठिकै हुन्?

उत्तर—होइनन्।

प्रश्न—किन होइनन्? ती त ढुङ्गा आदि मूर्त्तिपूजाको खण्डन गर्दछन्। कबीरसाहेब फूलबाट जन्मेका थिए र अन्त्यमा बिलाए पनि फूलमै। ब्रह्मा, विष्णु महादेवको जन्म नहुँदै पनि कबीरसाहेब थिए। उनी ठूला सिद्ध थिए। वेद, पुराणले पनि नजानेका कुरा कबीरदास जान्दथे। सोझो बाटो त कबीरले नै देखाएका हुन्। यिनको मन्त्र '**सत्यनाम कबीर**' आदि हो।

उत्तर—ढुङ्गालाई छोडेर पलंग, डसना, तकिया, खराउ, ज्योति अर्थात् दियो आदिको पूजा गर्नु ढुङ्गाका मूर्तिको पूजा गर्नुभन्दा कम होइन। फूलबाट जन्मने र अन्त्यमा फूल नै हुने कबीरसाहेब भुसुना वा कोपिला थिए र?

यसबारेमा निम्न कुरा सुनिन्छ र त्यो सत्य हुनसक्तछ। काशीमा कुनै बुनकर=कपडा बुन्ने पेसा गर्ने व्यक्ति बस्तथ्यो। उसका कुनै सन्तान थिएनन्। एकपल्ट बिहानै मिर्मिरेमा ऊ कुनै गल्लीमा हिंडिरहेको थियो। सडकको छेउमा फूलले भरिएको एउटा डालोमा त्यसै रात

जन्मिएको एउटा बालकलाई देख्यो। उसले त्यस बच्चालाई उठाएर घर लगी आफ्नी पत्नीलाई दियो। उसले त्यसको पालन–पोषण गरी। ऊ ठूलो भएपछि कपडा बुन्ने काम नै गर्दथ्यो। ऊ संस्कृत पढ्न कुनै पण्डितकहाँ गयो। त्यस पण्डितले उसको अपमान गर्यो। उसले भन्यो— 'हामी बुनकर जातिलाई पढाउँदैनौ'। यसैगरी ऊ अनेक–पण्डितहरूकहाँ गयो। तर कसैले पढाएन। अनि उटपटांग भाषा बनाएर स्वजातीय र निम्नजातीय व्यक्तिहरूलाई सम्झाउन थाल्यो। एकतारे लिएर बजाउँथ्यो, भजन गाउँथ्यो। खासगरी पण्डित, वेद, शास्त्र आदिको निन्दा गर्नेगर्दथ्यो। केही मूर्ख व्यक्ति त्यसको जालमा फँसे। पछि ऊ मरेपछि त्यसका चेला चेपेटाहरूले उसलाई सिद्ध बताए। उसले बाँचुन्जेल बनाएका कविता, भजनलाई नै उसका चेलाहरूले पढ्न थाले। कान थुन्दा सुनिने शब्दलाई 'अनहत नाद' को सिद्धान्त बताए। मनको वृत्तिलाई 'सुरति' भने। उसलाई त्यो अनहत शब्द सुन्न लगाउनु पर्दछ भन्नथाले। त्यसैलाई सन्त र परमेश्वरको ध्यान बताए। 'काल त्यहाँसम्म पुग्दैन' भने। ब[illegible]री–जस्तै तिलक लगाउँदछन् र श्रीखण्ड आदि काठको कठी बाँध्छन्। विचार गरेर त हेर, के यसो गरेर आत्माको उन्नति र ज्ञानको वृद्धि हुनसक्छ? यो मत केटाकेटीको खेलसरहको लीलामात्र है।

प्रश्न—पंजाब प्रदेशमा नानकजीले एउटा पन्थ चलाएका छन्। उनी पनि मूर्त्तिको खण्डन गर्दथे। उनले धेरैलाई मुसलमान हुनबाट बचाए। उनी साधु पनि भएनन्, गृहस्थ नै रहे। हेर, उनले मन्त्रको उपदेश दिएका छन्। यसैबाट उनको आशय राम्रो थियो बन्ने बुझिन्छ।

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भोनिर्वैर अकालमूर्त्त अजोनि सहभं गुरुप्रसाद जप। आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच॥ जपजी पौडी १॥

'**ओ३म्**' जसको सत्य नाम हो, त्यो कर्त्ता पुरुष भय र वैररहित, अकालमूर्त्ति=कालमा र जुनिमा नआउने र प्रकाशमान छ, गुरुको कृपाले त्यसैको जप गर। त्यो परमात्मा आदिमा सत्य थियो, युगहरूको आदिमा सत्य थियो, वर्तमानमा सत्य छ र सत्य नै रहनेछ।

उत्तर—नानकजीको आशय त राम्रो थियो तर उनमा विद्या भने केही पनि थिएन। अँ, त्यस ठाउँको गाउँले भाषा भने जान्दथे। वेदादि शास्त्र र संस्कृत अलिकति पनि जान्दैनथे। जान्ने भएका भए 'निर्भय' शब्दलाई किन 'निर्भो' लेख्थे र? यस कुराको उदाहरण उनले बनाएको '**संस्कृतीस्तोत्र**' छ। उनी संस्कृतमा पनि आफ्नो प्रभाव जमाउन चाहन्थे,

तर नपढिकन कसरी संस्कृत जान्न सकिन्छ र? अँ, कहिल्यै संस्कृत सुन्दैनसुनेका गाउँलेहरूको अगाडि संस्कृति बनाएर संस्कृतका पनि पण्डित भएहोलान्। उनमा आफ्नो मान, प्रतिष्ठा र आफ्नो विशेष ख्यातिको इच्छा नभएको भए कहिल्यै यसो गर्ने थिएनन्। उनलाई आफ्नो प्रतिष्ठाको इच्छा अवश्य थियो। नत्रभने जस्तो भाषा जान्दथे, त्यस्तै भनिरहन्थे, साथै 'मैले संस्कृत पढेकै छैन' पनि भनिदिन्थे। केही अभिमान उनमा भएको हुनाले नै मान–प्रतिष्ठाका निम्ति केही दम भरेका होलान्। यसैकारण, उनका ग्रन्थमा ठाउँ–ठाउँमा वेदको निन्दा र स्तुति पनि छ। किनकि यसो नगरेका भए कसैले पनि उनीसँग वेदको अर्थ सोध्नेथियो र नजान्दा उनको प्रतिष्ठा नष्ट हुने थियो। यसकारण पहिल्यै आफ्ना शिष्यसामु कतैकतै वेदको विरोधमा बोल्दथे र कतैकतै वेदको लागि राम्रो पनि भनेका छन्, किनकि कतै पनि ठीक नभनेका भए जनताले उनलाई नास्तिक भन्नेथिए। जस्तै—

वेद पढत ब्रह्मा मरे, चारों वेद कहानि।
सन्त कि महिमा वेद न जानी ॥ ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥

के वेद पढ्नेहरूचाहिं मरेर गए र नानकचाहिं आफूलाई अमर सम्झन्थे? के उनीचाहिं मरेनन्? वेद त सबै विद्याको भण्डार हो, तर चारै वेदलाई कथा भन्नेका सबै कुरा कथामात्र हुन्। मूर्खहरूको नाम सन्त हुन्छ भने ती विचराले वेदको महिमा कहिल्यै जान्नसक्तैनन्। नानकजीले वेदको मान–सम्मान गरेका भए उनको सम्प्रदाय चल्ने थिएन। उनी गुरु बन्न पनि सक्नेथिएनन्, किनकि उनले आफैं संस्कृतविद्या नपढेका हुनाले अरूलाई पढाएर शिष्य कसरी बनाउन सक्थे र?

साँचो कुरा के हो भने पंजाबमा नानकजी हुँदा त्यहाँ संस्कृतविद्या छँदैथिएन र पंजाब मुसलमानहरूबाट पीडित थियो। त्यसबेला उनले केही व्यक्तिहरूलाई मुसलमान हुनबाट बचाए। नानकजीको समयमा उनको कुनै सम्प्रदाय थिएन र उनका धेरैजसो शिष्य पनि थिएनन्। किनकि अविद्वान्हरूमा एउटा चाल के हुन्छ भने मरेपछि उनलाई सिद्ध बनाउँदछन् र पछि धेरैजसो माहात्म्य देखाएर ईश्वरसमान मान्न थाल्दछन्।

अँ, नानकजी ठूला धनाढ्य र धनधान्यसम्पन्न साहू थिएनन् तर उनका चेलाहरूले 'नानकचन्द्रोदय' र 'जन्मशाखी' आदिमा नानकजीलाई ठूला सिद्ध र ठूलो ऐश्वर्यसम्पन्न बताएकाछन्। नानकजीले ब्रह्मासँग भेटघाट गरे, धेरै कुराकानी गरे, सबैले यिनको सम्मान गर्दथे,

नानकजीको विवाहमा धेरैजसो घोडा, रथ, हात्ती, सुन, चाँदी, मोती, पन्ना आदि रत्नले सजि–सजाउ र अमूल्य रत्नहरूको पारावार थिएन भन्नेकुरा लेखेको छ। यी सबै गफ होइनन् त के हुन्? यसमा यिनका चेलाहरूको दोष छ, नानकजीको होइन।

उता नानकजीपछि उनका छोराबाट **उदासी** सम्प्रदाय चल्यो र रामदास आदिबाट **निर्मल** सम्प्रदाय चल्यो। कत्तिका गद्दीवालाहरूले भाषा बनाएर ग्रन्थमा राखेकाछन् अर्थात् यिनका दसौं गुरु गोविन्द सिंह भए। गुरु गोविन्द सिंहपछि त्यस ग्रन्थमा कसैको भाषा मिलाइएन। तर उनको समयसम्म रहेका सबै सानातिना पुस्तकहरूलाई जम्मा गरेर एउटै जिल्द हाले। यिनीहरूले पनि नानकजीपछि धेरैजसो भाषा बनाए। पुराणका झूठा कथा जस्तै कतिले कथा बनाए। तर आफैं ब्रह्मज्ञानी बनेर कर्म उपासना छोडेर यिनका शिष्य यतै लाग्दैगए। यसबाट ठूलो विकृति आयो। नत्रभने नानकजीले केही ईश्वरको भक्तिविशेष लेखेका थिए, त्यसै गर्दै आएका भए राम्रै थियो। यता उदासी 'हामी ठूला हौं' भन्छन्, निर्मल सम्प्रदायी आफैंलाई ठूलो बताउँछन् भने अकाली र सूतरहसाई आफैंलाई सर्वोपरि बताउँछन्।

यिनमा गुरु गोविन्दसिंहजी शूरवीर भए। मुसलमानहरूले उनका मानिसलाई दिएको धेरैजसो दुःखको बदला उनी लिन चाहन्थे, तर यिनीसँग केही साधन थिएन। उता मुसलमानहरूको राज्यशासनको वर्चस्व बढिरहेको थियो। यिनले एउटा पुरश्चरण गराए। 'देवीले वर र तरवार दिएर **मुसलमानसँग** लड, तिम्रो जीत हुनेछ भनेकी छन्' भन्ने हल्ला फिंजाए। धेरै व्यक्ति उनको समर्थनमा लागे। अनि उनले वाममार्गीले 'पञ्च मकार', चक्रांकितले 'पञ्च संस्कार' चलाइएझैं 'पञ्च ककार' चलाए अर्थात् यिनका पाँच ककार युद्धमा उपयोगी थिए।

पहिलो—'केश' अर्थात् कपाल पाल्नाले लडाइँमा लाठी आदि र तरवार आदिबाट पनि केही बचावट हुनेछ।

दोस्रो—'कंगन'=बाला, अकालीहरू टाउकोमा दोपट्टामा राख्दछन् तथा हातमा 'बाला' लगाउँछन्। यसबाट हात र टाउको बचाउन सकियोस् भन्ने उद्देश्य हो।

तेस्रो—कट्टु। यसबाट दौड्न र उफ्रन सजिलो हुन्छ। धेरैजसो अखडाका पहलवानहरू पनि यसबाट शरीरको मर्मस्थान सुरक्षित रहोस् र कुनै कुरामा अड्किनु नपरोस् भन्ने उद्देश्यले धारण गर्दछन्।

चौथो—'काँइयो'। यो कपाल कोर्न काम लाग्छ।

पाँचौ—काचू वा कटार अर्थात् चक्कू, कतै शत्रुसँग भेट भई झैं-झगड़ा भएको खण्डमा काम लागोस् भनेर राखिन्छ।

गुरु गोविन्द सिंहजीले त्यस समय र परिस्थिति अनुकूल आफ्नै बुद्धिमानीले उक्त कुरा चलाएका थिए। अब वर्तमान समयमा ती सामान राख्न केही उपयोगी हुँदैन। तर लडाइँको उद्देश्यले तोकिएका काम-कुरा वा कर्त्तव्यहरूलाई अब धर्मसँग जोडिएको छ।

यिनीहरू मूर्त्तिपूजा त गर्दैनन्, तर त्योभन्दा बढी ग्रन्थको पूजा गर्दछन्, के यो मूर्तिपूजा होइन? कुनै जडपदार्थको अगाडि टाउको निहुँराउनु वा उसको पूजा गर्नु सबै '**मूर्त्तिपूजा**' हो। जसरी मूर्त्तिपूजा गर्नेहरूले आफ्ना पसल थापेर जीविकाको उपाय गरे, त्यस्तै यिनीहरूले पनि गरेका छन्। जसरी पुरेत-पुजारीहरू मूर्तिको दर्शन गराएर भेटी चढाउन लगाउँछन्, त्यस्तै नानकपन्थीहरू ग्रन्थको पूजा गर्दछन्, गराउँछन् र भेटी पनि चढाउन लगाउँछन् अर्थात् मूर्त्तिपूजा गर्नेहरू जति वेदप्रति आस्था र मान्यता राख्छन्, यी ग्रन्थसाहेबलाई मान्नेहरू त्यति पनि गर्दैनन्। अँ, के गर्नु यिनीहरूले त वेदलाई देखे-सुनेका नै थिएनन् भन्न सकिन्छ। यिनीहरूले देख्न-सुन्न पाएका भए हठ-दुराग्रह नभएका सबै सम्प्रदायका बुद्धिमान् व्यक्ति वेदमतमा नै लाग्ने थिए। तर यिनीहरूले धेरैजसो खानपान सम्बन्धी झंझट भने हटाएका छन्। जसरी यो खानपानसम्बन्धी झंझटलाई हटाए, त्यस्तै विषयासक्ति, दुरभिमान पनि हटाएर वेदमतको उन्नति गरेमा धेरै राम्रो कुरा हुनेछ।

प्रश्न—दादूपन्थीको मत त राम्रै छ?

उत्तर—राम्रो त वेदमार्ग हो। त्यसलाई समाउन सक्छौ भने समात। नत्रभने सधैं गोता खाइरहनु पर्नेछ। यिनको मतमा दादूजीको जन्म गुजरातमा भएको थियो। पछि जयपुरमा आएर 'आमेर' मा बसे। तेलीको काम गर्दथे। यसलाई ईश्वरको सृष्टिको विचित्र लीला नै भन्नुपर्दछ कि दादूजीले पनि आफ्नो पूजा गराउन थाले। अब वेदशास्त्रका सबै कुरा छोडेर 'दादूराम-दादूराम' झज्दा नै मुक्ति हुन्छ भन्ने कुरा स्वीकार गरिएको छ। सत्य उपदेशक नभएपछि यस्ता-यस्ता मतमतान्तरका झैं-झगडा चल्ने गर्दछन्।

केही समयअघि देखि शाहपुराबाट एउटा 'रामसनेही' मत चलेको छ। उनीहरूले सम्पूर्ण वेदोक्त धर्मलाई छोडेर '**राम राम**' पुकार्नु नै राम्रो मानेका छन्। त्यसैमा ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मान्दछन्। तर भोकलाग्दा 'राम नाम' बाट रोटी-तरकारी निस्कँदैन, किनकि खानपान आदि त

गृहस्थका घरमा नै पाइन्छन्। ती पनि मूर्त्तिपूजालाई धिक्कार भन्दछन् तर आफू स्वयं मूर्त्ति बनिरहेका छन्। धेरैजसो महिलावर्गको संगतमा रहन्छन्। किनकि रामजीलाई 'रमा' नभई आनन्द मिल्नैसक्तैन।

एउटा 'रामचरण' नाम गरेको साधु भयो, यसको मत मुख्यरूपमा मेवाड़को 'शाहपुरा' स्थानबाट चलेको हो। ती '**राम-राम**' भन्नुलाई नै परममन्त्र र यसैलाई सिद्धान्त मान्दछन्। तिनका सन्तदासजी आदिको वाणी रहेको एउटा ग्रन्थ छ, त्यसमा यसो लेख्छन्—

उनको वचन—

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरंजन राइ।
तब जम का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ॥ १॥

—साखी॥ ६॥

यसमा यो कुरा बुद्धिमान्हरूका लागि विचारणीय छ कि 'राम राम' भन्नाले भ्रम अर्थात् अज्ञान वा यमराजको पापानुकूल शासन या गरिएका कर्म कहिल्यै छुट्न सक्तछन् वा सक्तैनन्? यो त केवल मानिसलाई पापै-पापमा फँसाउनु र मनुष्य जन्मलाई नष्ट गर्नु हो। यिनीहरूका मुख्य गुरु 'रामचरण' का वचन—

महमा नांव प्रतापकी, सुणौ सखण चित्त लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड जाइ॥ १॥
जिन जिन सुमर्‍या नांव कूं, सो अब उतर्‍या पार।
रामचरण जो वीसर्‍या सो ही जम के द्वार॥ २॥
रामविना सब झूट बतायो। राम भजत छूट्या सब क्रम्मा॥
चंद अरु सूर देइ परकम्मा। राम कहे तिन कूं भई नाहीं॥
तीन लोक में कीरति गाहीं। राम रटत जम जोर न लागै॥
राम नाम लिख पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊँच नीच कुछ भेद विचारै। सो तो जनम आपणो हारै॥
सन्तां कै कुल दीसै नाहीं। राम राम कह राम रम्हाहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरि जन कौ पार न पावै॥
राम संतांका अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

—नामप्रताप

यिनको खण्डन—पहिलो कुरा त रामचरण आदिका ग्रन्थ देख्दा ऊ एउटा साधारण गाउँले मानिस थियो, उसले केही पढेको थिएन भन्ने बुझिन्छ। नत्रभने यस्ता झूठा गफ किन लेख्तथ्यो र? यिनलाई राम-राम भन्नाले कर्म छुट्नेछन् भन्ने भ्रममात्र छ। यी त केवल आफ्नो

र अरूको पनि जन्मलाई खेर फाल्दछन् त्यत्ति हो। यमको भय=डर, त्रास त धेरै ठूलो छ तर राजकीय प्रहरी, चोर, डाकू, बाघ, सर्प, बिच्छी र लामखुट्टेको भय पनि यसरी छुट्नसक्तैन। रात दिन राम–राम जप्ने गरेपनि केही फाइदा हुने छैन। जसरी सखर सखर भन्नाले मात्र मुख गुलियो हुँदैन त्यस्तै सत्य बोल्नु आदि कर्म नगरी राम–राम भन्नाले केही पनि हुनेछैन र राम राम गर्नाले यिनका रामले सुन्दैन भने जीवनभर राम राम भनिरहे पनि सुन्नेछैन। अनि सुन्दछ भने फेरि राम–राम गर्नु पनि बेकारै हुन्छ। यिनीहरूले आफ्नो पेट भर्नका निम्ति र अरूको पनि जीवन नष्ट गर्नका लागि एउटा पाखण्ड खडा गरेका हुन्। यो ठूलो आश्चर्यको कुरा छ कि हामी के देखिरहेका छौं भने यिनीहरूले नाम त राखेका छन् रामस्नेही, तर काम गर्दछन् राँडस्नेहीका। जता हेर त्यतै रंडी नै रंडीहरूले कथित सन्तहरूलाई घेरिरहेका हुन्छन्। यस्ता–यस्ता पाखण्ड नचलेका भए आर्य्यावर्त्त देशको दुर्दशा किन हुन्थ्यो र? यिनीहरू आफ्ना चेलालाई जुठो खुवाउँछन् र महिलावर्ग पनि पूरै लम्पसार परेर दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। एकान्तमा पनि महिलाहरू र कथित साधुका बैठक भई नै रहन्छन्।

यिनीहरूको दोस्रो शाखा मारवाड़को 'खेड़ापा' नामक गाउँबाट चलेको हो। त्यसको इतिहास यस्तो छ—

एउटा ढेढ जातिको रामदास नामक व्यक्ति बडो चलाख थियो। उसका दुईवटी पत्नी थिए। पहिले ऊ धेरै दिनसम्म औघड=अघोरी भएर कुकुरसँग खाने गर्दथ्यो। पछि ऊ वामी कूण्डापन्थी र त्यसपछि रामदेवको कामडिया=अर्थात् राजपूताना देशमा च्यामेहरूद्वारा भगवा वस्त्र रंगाएर सुनाइने 'शब्द' भनिने रामदेव आदिका गीत ती च्यामे र अरू जातिका मानिसलाई सुनाउने भयो। ऊ आफ्ना दुबै पत्नीसँग गाउँथ्यो। यसरी घुम्दाघुम्दै जोधपुर राज्यको एउटा ठूलो गाउँ 'सीथल' मा ढेढहरूको गुरु 'हर–रामदास' लाई भेट्यो। उसले उसलाई 'रामदेव' पन्थ बताएर आफ्नो चेलो बनायो। त्यस रामदासले खेडापा गाउँमा आफ्नो ठाउँ बनायो र यता यसको मत चल्यो भने उता शाहपुरामा रामचरणको मतको प्रचार भयो। उसको इतिहास पनि यस्तो सुनिन्छ—ऊ जयपुरको बनियाँ=व्यापारीजातिको थियो। उसले 'दाँतडा' गाउँमा एउटा साधुबाट भेष ग्रहण गर्यो र उसैलाई गुरु बनायो। अनि शाहपुरामा आएर आफ्नो प्रभाव जमायो। सोझा–सोझा मानिसमा पाखण्ड जरो छिट्टै गाडिन्छ, त्यस्तै त्यहाँ पनि भयो। यी सबैमा माथिको रामचरणका

वचनअनुसार चेला बनाएपछि ऊँच–नीचको केही भेद रहन्न। ब्राह्मणदेखि अन्त्यजसम्म यिनमा चेला बन्दछन्। अझै पनि 'कूण्डापन्थी' जस्तै छन्, किनकि माटाका कुण्डमा नै खान्छन् र साधुहरूको जुठो खान्छन्। वेदधर्मबाट र आमा–बाबु, संसारको व्यवहारबाट भड्काएर छुटाउँछन् र आफ्ना चेला बनाउँछन्। राम नामलाई नै **'महामन्त्र'** मान्दछन् र यसैलाई छुच्छम=सूक्ष्म वेद पनि भन्दछन्। राम राम भन्नाले अनन्त जन्मका पाप छुट्तछन् अरे। यसविना कसैलाई मुक्ति प्राप्त हुँदैन अरे। श्वास लिंदा र निकाल्दा राम–राम भन्न सिकाउनेलाई **'सत्य गुरु'** भनिन्छ र सत्यगुरुलाई परमेश्वरभन्दा पनि ठूलो मान्दछन् तथा उसको मूर्त्तिको ध्यान गर्दछन्। साधुका चरण धोएर पानी खान्छन्। चेलोले गुरुभन्दा टाढा जाँदा गुरुका नङ र दाढीको रौं आफूसँग राख्नुपर्दछ। नित्य त्यसको चरणामृत लिने गर्नुपर्दछ। यिनीहरू रामदास र हररामदासको वाणीका पुस्तकलाई वेदभन्दा बढी मान्दछन्। त्यसको परिक्रमा र आठपटक दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। अनि गुरु नजिकै भए गुरुलाई दण्डवत् प्रणाम गर्दछन्। महिला वा पुरुषलाई 'राम–राम' एकनासै मन्त्रको उपदेश गर्दछन् र नामस्मरणबाटै कल्याण हुने कुरा मान्दछन्। अनि पढ्न लेख्नमा पाप सम्झन्छन्। उनीहरूको साखी—

पंडिताई पाने पड़ी, ओ पूरबलो पाप।
राम राम सुमरट्यां विनां रइग्यौ रीतौ आप॥ १॥
वेद पुराण पढे पढ गीता। राम भजन विन रइ गये रीता॥

यस्ता–यस्ता पुस्तक बनाएका छन्। स्त्रीले पतिको सेवा गर्नमा पाप र गुरु–साधुको सेवा गर्नमा धर्म बताउँछन्। वर्णाश्रमलाई मान्दैनन्। ब्राह्मण रामस्नेही छैनभने त्यसलाई नीच र चांडाल रामस्नेही छ भने उसलाई उत्तम सम्झन्छन्। यिनीहरू अवतार मान्दैनन् पनि, तर माथि लेखिएको रामचरणको वचनअनुसार **'भगति हेति औतार ही धरही'** अर्थात् भक्ति र सन्तहरूको हितका लागि अवतारलाई पनि मान्दछन्। इत्यादि यिनीहरूको जे जति पाखण्ड, प्रपञ्च छ त्यो सबै आर्य्यावर्त्त देशको अहित गर्ने किसिमको छ। बुद्धिमान्हरूले यतिबाटै धेरै बुझ्ने नै छन्।

प्रश्न—गोकुलिया गुसाईंहरूको मत अर्थात् वल्लभमत त धेरै राम्रो छ। हेर, कस्तो ऐश्वर्य भोग्दछन्? यस्तो ऐश्वर्य के लीलाविना हुनसक्तछ?

उत्तर—यो ऐश्वर्य गृहस्थहरूको हो, नकि गुसाईंहरूको।

प्रश्न—वा! त्यो त सबै गुसाईंहरूको प्रभावले हो। यस्तो ऐश्वर्य अरूलाई किन मिल्दैन त?

उत्तर—अरूले पनि यस्तै छल–प्रपञ्च गरेमा ऐश्वर्य प्राप्त हुनमा कुनै सन्देह छैन। अनि यीभन्दा बढी धूर्त्तता गरेमा बढी ऐश्वर्य पनि प्राप्त हुनसक्तछ।

प्रश्न—वा! यसमा के धूर्त्तता छ र? यो त सबै गोलोकको लीला हो।

उत्तर—गोलोकको लीला होइन, यो त सबै गुसाईंहरूको लीला हो। अनि फेरि गोलोककै लीला हो भने गोलोक पनि त्यस्तै होला। यो मत 'तैलङ्ग' देशबाट चलेको हो। एउटा लक्ष्मणभट्ट नामक तैलङ्गी ब्राह्मणले विवाह गरेपछि कुनै कारणविशेषले ऊ आमा, बाबु र पत्नीलाई छोडेर काशी पुग्यो र उसले त्यहाँ 'मेरो विवाह भएकै छैन' भनी झूट बोलेर संन्यास ग्रहण गर्यो। दैवसंयोगले उसका आमा, बाबु र पत्नीले ऊ काशीमा संन्यासी भयो भन्ने कुरा सुने। उसका आमा, बाबु र पत्नी काशी पुगेर उसलाई संन्यासको दीक्षा दिनेसँग 'यसलाई किन संन्यासी बनायौ? हेर, यो यसकी युवती पत्नी हो' भने र स्त्रीले भनी–'यदि मेरा पतिलाई तपाईं मसँगै पठाउनुहुन्न भने मलाई पनि संन्यासको दीक्षा दिनुहोस्।' अनि दीक्षा दिनेले उसलाई बोलाएर 'तँ त ठूलो मिथ्यावादी रहेछस्, संन्यास छोडेर गृहस्थ बन्, किनकि तैंले झूट बोलेर संन्यास लिइस्' भन्यो। उसले त्यस्तै गर्यो। संन्यास छोडेर पत्नीसँग लाग्यो।

हेर, यस मतको मूल जरो नै झूट कपटबाट सुरु भएको छ। उनीहरू तैलङ्गदेशमा पुग्दा त्यसलाई उसका जातिमा कसैले लिएनन्। अनि त्यहाँबाट निस्किए घुम्नथाले। काशीको नजिकको चरणार्गढ= चुनारगढको नजिकको 'चम्पारण्य' नामक जंगलमा हिंडिरहेका थिए। त्यहाँ कसैले एउटा बच्चालाई जंगलमा छोडेर चारैतर्फ टाढा–टाढा आगो लगाएर गएको रहेछ। त्यस छोड्नेले 'आगो लगाइँन भने कुनै जीवले यस बालकलाई अहिल्यै मार्नेछ' भन्ठानेको थियो। लक्ष्मण भट्ट र उसकी पत्नीले त्यस बालकलाई लिएर आफ्नो पुत्र बनाए। अनि काशीमा गएर बसे। त्यो बालक ठूलो भएपछि उसका बाबु आमाको शरीर छुट्यो। उसले बाल्यावस्थादेखि युवावस्थासम्म काशीमा केही पढेको पनि थियो। त्यसपछि ऊ अन्त कतै गएर एउटा विष्णुस्वामीको मन्दिरमा चेलो भयो। कुनैबेला त्यहाँ केही खटपट हुनाले त्यहाँबाट फेरि काशीतर्फै गयो र संन्यासी भयो। उता, अर्को कुनै त्यस्तै

जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशीमा बस्तथ्यो। उसकी एउटी तरुनी छोरी थिई। उसले योसँग 'तँ संन्यास छोडेर मेरी छोरीसँग विवाह गर्' भन्यो। उसले त्यस्तै गर्यो। जसका बाबुले जस्तो लीला गरेको थियो, त्यस्तै छोराले किन नगर्ने? त्यस स्त्रीलाई लिएर पहिले चेलो बनेको विष्णुस्वामीको मन्दिरमा गयो। विवाह गरेको कारणले त्यहाँबाट निकालियो। अनि त्यसपछि अविद्याको अन्धकारले व्याप्त ब्रजदेशमा गएर अनेक प्रकारका छल र युक्तिपूर्वक आफ्नो प्रपञ्च फैलाउन थाल्यो र झूठा कुराहरूको प्रचार यसरी गर्न थाल्यो—श्रीकृष्णले मलाई दर्शन दिएर 'गोलोकबाट मर्त्यलोकमा आएका 'दैवीजीव' लाई ब्रह्मसम्बन्ध आदिद्वारा पवित्र गरेर गोलोकमा पठाऊ' भनेकाछन् इत्यादि मूर्खहरूलाई प्रलोभनका कुरा सुनाएर केही व्यक्तिहरू अर्थात् चौरासी व्यक्तिलाई वैष्णव बनायो। तथा निम्नलिखित मन्त्र बनाएर तिनमा पनि फरक राख्यो। जस्तै—

श्रीकृष्णः शरणं मम॥ १॥

क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥ २॥

यी दुबै साधारण मन्त्र हुन्, तर ब्रह्म–सम्बन्ध र समर्पण गराउने मन्त्र यो हो—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्त्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्ण–वियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय–प्राणान्तः करणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्प्ययामि, दासोऽहं कृष्ण तवाऽस्मि॥

यस मन्त्रको उपदेश गरेर शिष्य, शिष्यलाई समर्पण गराउँदछन्। **'क्लीं कृष्णायेति'**—यो 'क्लीं' तन्त्र ग्रन्थको हो। यसबाट यो वल्लभमत पनि वाममार्गीहरूकै भेद हो भन्ने बुझिन्छ। यसैकारण गुसाईंहरू धेरै स्त्रीसंगत गर्दछन्।

'गोपीवल्लभेति'—के कृष्ण गोपीहरूकै मात्र प्रिय थिए, अरूका थिएनन्? स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोगमा फँसेको व्यक्ति नै स्त्रीहरूलाई बढी प्रिय हुन्छ। के श्रीकृष्णजी यस्तै थिए?

'सहस्त्रपरिवत्सरेति'—वल्लभ र उसका शिष्य सर्वज्ञ नहुनाले हजार वर्षको गणना व्यर्थ हो। के कृष्णको वियोग हजारौं वर्षदेखि भयो? र आजसम्म अर्थात् वल्लभको को मत नहुँदा, वल्लभ जन्मनुअघि र त्यसभन्दा पहिले आफ्ना दैवी जीवहरूको उद्धार गर्न किन आएन?

'ताप' र 'क्लेश' यी दुबै पर्यायवाची शब्द हुन्। यीमध्ये एउटालाई ग्रहण गर्न उचित हुन्थ्यो, दुबैको होइन।

'अनन्त' शब्दको पाठ गर्नु पनि व्यर्थ छ, किनकि अनन्त शब्द राखिएमा सहस्र शब्दको पाठ राख्नु व्यर्थ ठहर्दछ। अनि 'सहस्र' शब्दको पाठ राख्ने हो भने 'अनन्त' शब्दको पाठ राख्नु सर्वथा व्यर्थ हुन्छ। अर्कोकुरा, अनन्तकालसम्म 'तिरोहित' अर्थात् आच्छादित रहनेको मुक्तिका लागि वल्लभ हुनुपनि व्यर्थ हुन्छ, किनकि अनन्तको अन्त्य कहिल्यै हुँदैन।

लौ, देहेन्द्रिय, प्राणान्तःकरण र त्यसका धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र र प्राप्तधनको अर्पण कृष्णलाई किन गर्ने? किनकि कृष्ण पूर्णकाम=सबै कामना वा इच्छा परिपूर्ण भएको हुनाले कसैका देहादिको इच्छा गर्नै सक्तैनन्। अनि देहादि अर्पण गर्न सम्भव पनि हुँदैन। किनकि देहको अर्पण भन्नाले नङदेखि टुपी सम्मको शरीर नै 'देह' भनिन्छ। त्यसमा भएका केही राम्रा नराम्रा वस्तु=दिसा, पिसाब आदिको अर्पण कसरी गर्न सक्नेछौ?

अनि फेरि पाप–पुण्यरूप कर्मलाई कृष्णार्पण गर्नाले ती कर्मका फलभागी पनि कृष्ण नै हुनेछन्। वास्तविकता त के हो भने नाम त कृष्णजीको लिन्छन्, तर समर्पणचाहिं आफ्ना लागि गराउँछन्। शरीरमा रहेका मल–मूत्र आदि पनि गोसाईंजीकै अर्पण किन हुँदैन। के '**मीठो मीठो क्वाप्प र तीतो तीतो थू?**'

अर्कोकुरा, गोसाईंजीलाई नै अर्पण गर्नुपर्दछ, अरू मतमान्नेलाई होइन भन्ने पनि लेखिएको छ। यो सबै स्वार्थसिन्धुप्रवर्अर्काका धन आदि पदार्थ हरण गर्न र वेदोक्त धर्मको नाश गर्ने लीला रचिएको हो। वल्लभको यो प्रपञ्च हेर—

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ १॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शनजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥ ३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्ज्जनमाचरेत्॥ ४॥

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्प्पणम्॥ ५॥
तस्मादादौ सर्वकार्य्ये सर्ववस्तुसमर्प्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥ ६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥ ७॥
तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गङ्गात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥ ८॥

इत्यादि श्लोक गोसाईंहरूका '**सिद्धान्तरहस्य**' आदि ग्रन्थमा लेखिएका छन्। यो नै गोसाईंहरूको मतको मूलतत्त्व हो। यिनीहरूसँग कसैले यति सोध्नुपर्ने हो कि श्रीकृष्णको देहान्त भएको झण्डै पाँच हजार वर्ष बितिसक्यो। उनी वल्लभलाई श्रावण मासको आधी रातमा कसरी मिल्नसके त?॥ १॥

'गोसाईंको चेलो भएर उसलाई सबै पदार्थको समर्पण गर्नेको शरीर र जीवका सबै दोषको निवृत्ति हुन्छ'। मूर्खहरूलाई भड्काएर आफ्नो मतमा ल्याउने वल्लभको प्रपञ्च यही हो। गोसाईंका चेला–चेलीका सबै दोष निवृत्त हुन्छन् भने तिनीहरूलाई रोग, दरिद्रता आदि दुःखको पीडा किन हुन्छ त? अनि ती दोष पाँच किसिमका हुन्छन्॥ २॥

पहिलो—स्वाभाविक अर्थात् काम, क्रोध आदिबाट उत्पन्न हुने **सहजदोष, दोस्रो**—कुनै देश, कालमा गरिने नाना प्रकार का **पाप, तेस्रो**—लोकमा भनिने **भक्ष्याऽभक्ष्य** र वेदोक्त **मिथ्याभाषण** आदि, **चौथो**—खराब संगतबाट हुने **संयोगज** अर्थात् चोरी, जारी=आमा, बहिनी, छोरी, बुहारी, गुरुपत्नी आदिसँग संयोग गर्नु, **पाँचौं—स्पर्शज**=अस्पृश्यहरूलाई स्पर्श गर्नु। यी पाँच दोषलाई गोसाईं मतका अनुयायीहरू व्यवहारमा कहिल्यै मान्दैनन्। अर्थात् आफूखुसी गर्दछन्॥ ३॥

'गोसाईंको मतबाहेक दोष निवृत्तिको अरू कुनै किसिमको उपाय छैन। यसकारण गोसाईंका चेलाहरूले समर्पण नगरी कुनै पदार्थको भोग गर्नुहुँदैन'। यसैकारण यिनका चेला आफ्नी पत्नी, छोरी, बुहारी र धन आदि पदार्थहरूलाई पनि समर्पित गर्दछन्। तर समर्पण गर्ने नियम के हो भने पत्नी गोसाईंजीको चरणसेवामा समर्पित नभएसम्म उसको पतिले आफ्नी पत्नीलाई छुनुसम्म हुँदैन॥ ४॥

'यसकारण गोसाईंका चेलाहरूले समर्पण गरिसकेपछि मात्र आ–

आफ्ना पदार्थको भोग गर्नुपर्दछ। किनकि पदार्थको स्वामीले भोग गरिसकेपछि समर्पण गर्नुपर्दछ। पहिले गोसाईंजीलाई पत्नी आदि समर्पण गरेर अनि मात्र ग्रहण गर्नुपर्दछ। त्यस्तै सबै पदार्थ हरिलाई समर्पण गरेर ग्रहण गर्नुपर्दछ'॥ ६ ॥

'गोसाईंका चेला–चेलीले गोसाईंमतबाहेक अरू कुनै मतको वाक्य मात्रलाई पनि कहिल्यै सुन्नु वा ग्रहण गर्नुहुँदैन। तिनका चेलाहरूको प्रसिद्ध व्यवहार यही हो'॥ ७ ॥

'त्यस्तै सबै वस्तुको समर्पण गरेर सबैको बीचमा ब्रह्मबुद्धि राख्नुपर्दछ। त्यसपछि गङ्गा अरू जल मिसिएर गङ्गारूप भएजस्तै आफ्नो मतमा गुण र अरूका मतमा दोष हुन्छन्। यसकारण आफ्नो मतमा गुणहरूको वर्णन गर्ने गर्नुपर्दछ'॥ ८ ॥

अब हेर, गोसाईंहरूको मत सबै मतभन्दा बढी आफ्नै स्वार्थ सिद्ध गर्ने किसिमको छ। यी गोसाईंहरूसँग के सोध्नुपर्दछ भने— 'तिमी ब्रह्मको एउटा लक्षण पनि जान्दनौ, अनि आफ्ना चेला–चेलीलाई कसरी ब्रह्मसम्बन्ध गराउनेछौ?' 'हामी नै ब्रह्म हौं' भन्छौ भने हामीसँग सम्बन्ध हुनाले ब्रह्म सम्बन्ध भैहाल्दछ, अनि तिमीमा ब्रह्मको एउटा पनि गुण–कर्म–स्वभाव छैन। तिमी त केवल भोग–विलासका निम्ति आफैं ब्रह्म बनेका हौ। शिष्य र शिष्यालाई त तिमी आफूमा समर्पित गराएर शुद्ध गर्दछौ, तर तिमी, तिम्री पत्नी, छोरी, बुहारी, आदि चाहिं असमर्पित नै रहने हुनाले अशुद्ध रहे वा रहेनन्? तिमी त समर्पित नभएको वस्तुलाई अशुद्ध मान्दछौ भने त्यस्तो अशुद्धबाट जन्मेका तिमीहरू अशुद्ध किन भएनौ? यसकारण तिमीले पनि आफ्नी पत्नी, छोरी, बुहारी आदिलाई अरू मतावलम्बीहरूसँग समर्पित गराउने गर्नु उचित हुन्छ। 'होइन होइन हामी त त्यसो गर्दैनौं' भन्छौ भने तिमी पनि अरूका स्त्री, पुरुष, धन आदि पदार्थलाई समर्पित गर्न–गराउन छोडिदेऊ। हालसम्म जे भयो सो त भैसक्यो, तर अब त आफ्ना मिथ्याप्रपञ्च आदि खराबीलाई छोडदि र ईश्वरोक्त वेदविदित सुन्दर सुमार्गमा लागेर आफ्नो मनुष्यरूपी जन्मलाई सफल तुल्याएर धर्म–अर्थ–काम–मोक्षको चतुष्टय फल प्राप्त गरेर आनन्द भोग।

अनि हेर, यी गोसाईंहरू आफ्नो सम्प्रदायलाई '**पुष्ट मार्ग**' भन्दछन् अर्थात् खानु, पिउनु, पुष्ट हुनु र सबै स्त्रीहरूसँग चाहेजति भोगविलास गर्नुलाई 'पुष्टिमार्ग' भनिन्छ। तर यिनीहरूले दुःखदायी भगन्दर आदि गुप्तरोग लागेर तड्पी–तड्पी मर्नुपर्ने हुन्छ भन्ने कुरा यिनीहरूलाई नै

थाहा हुनुपर्दछ, त्यो यिनीहरूसँगै सोध्नुपर्दछ। साँच्चै भनौं भने त्यो पुष्टिमार्ग नभएर 'कुष्ठिमार्ग' हो। जसरी कोढीको शरीरका सबै धातु पग्ली–पग्ली निस्कन्छन् र विलाप गर्दै शरीर छोड्दछ, त्यस्तै लीला यिनीहरूको देखापर्दछ। यसकारण यसैलाई '**नरकमार्ग**' भन्नु पनि उचित हुनसक्तछ, किनकि दुःखको नाम 'नरक' र सुखको नाम 'स्वर्ग हो।'

यस्तै किसिमले मिथ्याजाल रचेर विचरा सोझा–साझा मानिसलाई यिनीहरूले जालमा फसाएका हुन्। अनि आफैंलाई श्रीकृष्ण मानेर यिनीहरू सबैका स्वामी बन्दछन्। यिनीहरू 'जति दैवी जीव गोलोकबाट यहाँ आएका छन्, तिनको उद्धार गर्नकै निम्ति हामी लीलापुरुषोत्तम जन्मेका हौं। हाम्रो उपदेश नलिएसम्म गोलोकको प्राप्ति हुँदैन। त्यहाँ एउटा श्रीकृष्ण पुरुष र अरू सबै स्त्री छन्' भन्दछन्।

वा! यो तिम्रो मत त खुबै राम्रो रहेछ!!! गोसाईंहरूका सबै चेला गोपिनी बनेछन्। अब विचार त गरौं कि कुनै पुरुषका दुईवटीमात्र पत्नी हुँदा त त्यस पुरुषको दुर्दशा हुन्छ भने एउटा पुरुषका पछि करोडौं स्त्री लागेका छन् भने त्यसको दुःखको कुनै वार–पार होला न? 'श्रीकृष्णमा ठूलो सामर्थ्य छ, सबैलाई प्रसन्न राख्तछन्' भन्छौ भने स्वामिनीजी भनिने श्रीकृष्णजीकी पत्नी पनि उनकी अर्धाङ्गिनी हुनाले श्रीकृष्ण जतिकै सामर्थ्यवती हुँदीहुन्? जस्तै यहाँ स्त्री–पुरुषमा कामचेष्टा समानै अथवा पुरुषमा भन्दा स्त्रीमा अझ बढी नै हुन्छ, त्यस्तै गोलोकमा किन छैन? अनि यसो हो भने स्वामिनीजी को अरू स्त्रीहरूसँग सधैं झै–झगडा भैरहन्छ होला, किनकि सौताको डाह धेरै खराब हुन्छ। अनि त गोलोक स्वर्गको सट्टा नरकजस्तै भैसक्यो होला। अथवा जसरी धेरै स्त्रीगामी पुरुष भगन्दर आदि रोगले पीडित भैरहन्छन्, त्यस्तै गोलोकमा पनि होला। छि! छि!! छि!!! त्यस्तो गोलोकभन्दा त विचरा यो मर्त्यलोक नै असल छ।

हेर, यहाँ गोसाईंजी आफूलाई श्रीकृष्णजी मान्दछन् र धेरै स्त्रीहरूसँग लीला=सहवास आदि गर्नाले भगन्दर तथा प्रमेह आदि रोगबाट पीडित भएर ठूलो दुःख भोग्दछन्। अब भन त, जुन श्रीकृष्णको स्वरूप गोसाईं यहाँ पीडित हुन्छन् भने गोलोकको स्वामी श्रीकृष्ण यिनै रोगबाट पीडित किन नहुँदा हुन् त? अब उनी पीडित हुँदैनन् भने उनका स्वरूप गोसाईंजी किन पीडित हुन्छन् त?

प्रश्न—मर्त्यलोकमा लीलावतार धारण गर्नाले रोग–दोष हुन्छ, गोलोकमा हुँदैन। किनकि त्यहाँ त रोग–दोष छँदैछैन।

उत्तर—‘भोगे रोगभयम्’ भोग भएको ठाउँमा रोग अवश्य हुन्छ। अनि श्रीकृष्णका करोडौं पत्नीहरूबाट सन्तान हुन्छन् वा हुँदैनन्? हुन्छन् भने छोरैछोरा हुन्छन् वा छोरी नै छोरी? अथवा दुबै हुन्छन्? छोरी नै छोरी हुन्छन् भन्छौ भने तिनको विवाह कोसँग हुन्छ होला? किनकि त्यहाँ श्रीकृष्ण बाहेक अरू कुनै लोग्ने मानिस छँदैछैन। अरू पनि छन् भन्छौ भने तिम्रो कुरा काटिन्छ। छोरैछोरा हुन्छन् भन्छौ भने पनि तिनको विवाह कहाँ र कोसँग हुन्छ? भन्ने दोष आइपर्नेछ। अथवा घरमै गडबड गर्दछन् हँ? अथवा अरू कसैका छोरा वा छोरी छन् भन्छौ भने पनि ‘गोलोकमा एउटै लोग्नेमानिस श्रीकृष्ण मात्र छन्’ भन्ने तिम्रै कुरा नष्ट हुनेछ। अनि सन्तानै हुँदैनन् भन्छौ भने श्रीकृष्णमा नपुंसकत्व र स्त्रीहरूमा बाँझीपनाको दोष लाग्नेछ। यो त गोलोक के भयो, दिल्लीका बादशाहकी बीबी=पत्नीहरूको सेना पो रहेछ क्यार?

अर्कोकुरा, गोसाईंहरूले शिष्य र शिष्याको तन–मन–धन आफूमा अर्पण गराउने कुरा पनि ठीक होइन। किनकि तन त विवाहको समयमा स्त्रीको शरीर पतिलाई र पतिको शरीर पत्नीलाई समर्पित भैसकेको हुन्छ। अनि मन पनि अर्कालाई समर्पण हुनसक्तैन, किनकि मनसँगै तनको समर्पणको कुरा सम्भव हुन्छ। अनि मनचाहिं अर्कैलाई अर्पित गर्ने हो भने त्यसो गर्ने व्यक्ति व्यभिचारी भनिनेछन्। अब रह्यो धनको कुरा, त्यसको लीला पनि त्यस्तै हो अर्थात् मनविना केही पनि अर्पण हुनसक्तैन। यी गोसाईंहरूको अभिप्राय ‘चेला कमाऊन् र आफू मोजा गरौं’ भन्ने हो।

वल्लभसम्प्रदायी गोसाईंहरूमा कुनै पनि अझसम्म तैलङ्गी जातिमा छैनन्। कसैले सोझोपनले वा झुक्किएर यिनलाई आफ्नो बेलीबेटी दिएमा त्यो पनि जातिबाट बहिष्कृत भएर भ्रष्ट मानिन्छ। किनकि यी जातिबाट पतित गरिएका हुन् र विद्याहीन भई रात–दिन सधैं प्रमादी भएर रहन्छन्।

कसैले कुनै गोसाईंको आदरपूर्वक स्वागत सत्कार गरेमा त्यो गोसाईं उसको घरमा गएर काठको खेलौना जस्तै चुपचाप बसिरहन्छ, केही पनि बोलचाल गर्दैन। बिचरा मूर्ख नभए त बोल्दो पनि हो। किनकि ‘**मूर्खाणां बलं मौनम्**’ चुपलाग्नु नै मूर्खको बल हो। बोलेदेखि त उसको पोल खुलिहाल्दछ। तर आइमाईतर्फ भने खूब ध्यान दिएर ताक्नेगर्दछ। अनि जसका तर्फ गोसाईंले हेर्दछ, उसको त ठूलो भाग्य भएको ठानिन्छ र उसका पति, भाइ, बन्धु, आमा–बाबु बडो प्रसन्न हुन्छन्। त्यहाँ सबै स्त्रीहरू चरणस्पर्श गर्दछन्। जुनस्त्रीमाथि गोसाईंको

मन लाग्छ वा कृपा हुन्छ, त्यस स्त्रीको औंलालाई गोसाईंले खुट्टाले थिच्दछ। त्यो स्त्री र त्यसका पति आदि आफ्नो धन्यभाग्य गोसाईंको सम्झन्छन्। अनि त्यस स्त्रीका पति आदि सबै ऊसँग ‘तँ गोसाईंजीको चरण सेवामा जा’ भन्दछन्। अनि कतै उसका पति आदि प्रसन्न भएनन् भने त्यहाँ दूती र कुटुनीबाट कार्य सिद्ध गराउँदछन्। साँच्चै भनौं भने, यस्ता काम गर्नेहरू तिनका मन्दिरमा र छेउछाउमा थुप्रै बस्ने गर्दछन्।

अब यिनीहरूको दक्षिणाको लीला बताइन्छ, अर्थात् यसरी माग्दछन्—गोसाइँजीका बुहारी, छोरा, छोरी, मुखिया, बाहरिया, गवैया र ठाकुरलाई भेटी ल्याऊ। यी सातको नाउँमा चाहे जति धन र माल बटुल्दछन्। गोसाईंजीको कुनै सेवकको मर्नेबेला हुँदा गोसाईंजी उसको छातीमा गोडा राख्तछन् र जे–जति हात लाग्दछ त्यसलाई गोसाईंजी आफ्नो पारिहाल्दछन्। के यो काम महाब्राह्मण=चाण्डाल र मुर्दावलीको जस्तै होइन?

कुनै–कुनै चेला विवाहमा गोसाईंजीलाई बोलाएर तीबाटै वर–वधूको पाणिग्रहण गराउँदछन्। कुनैकुनै सेवक केशरियास्नान अर्थात् गोसाईंजीको शरीरमा आइमाईहरूको केशरको बुक्वा लगाएर एउटा ठूलो भाँडो=खड्कौंलो आदिमा पिरका राखेर गोसाईंजीलाई स्त्री–पुरुष मिलेर स्नान गराउँदछन्। तर विशेषरूपमा चाहिं स्त्रीहरूले नै स्नान गराउँदछन्। अनि गोसाईंजी पीताम्बर धारण गरेर र खराउमा टेकेर बाहिर निस्कँदा धोतीचाहिं त्यसै भाँडोमा छोड्दछन्। अनि उनका सेवक त्यस जलको आचमन गर्दछन्। उता गोसाईंजीलाई भने राम्रो मसला हालेको पानको बीडा टक्र्याउँदछन्। गोसाईं त्यसलाई चपाएर केही निल्दछन् र उनको सेवक एउटा चाँदीको कचौरा गोसाईंजीको मुखका अगाडि थाप्छन् र उनी बाँकी पीक त्यसैमा उकेल्दछन्। त्यसको पनि प्रसादी बाँडिन्छ र त्यसलाई ‘**खास प्रसादी**’ भन्दछन्।

विचार अब गरौं कि यिनीहरू कस्ता किसिमका मानिस हुन्? अन्त कतै यस्तो मूर्खता र अनाचार पनि फेला पर्ला र? यिनीहरू धेरैजसो समर्पण लिन्छन्। तिनमा कत्ति त वैष्णवहरूकै हातको खान्छन्, अरूको खाँदैनन्। अरू कत्ति त वैष्णवका हातको पनि खाँदैनन्। दाउरासम्म धुने गर्दछन्, तर पीठो, सखर, चीनी, घिउ आदि नधोई तिनको स्पर्श बिग्रन्छ अर्थात् नधोई छुनाले ती पनि विकृत मानिनुपर्ने हो तर बिचरा के गरून्? यिनलाई धोएमा पदार्थ=मालसमान नै नाशिन्छ।

ती ‘हामी ठाकुरजीको रङ्ग, राग, भोगमा धेरै धन खर्च गर्दछौं’

भन्दछन्, तर रङ्ग, राग, भोग सबै आफैं गर्दछन्। साँच्चै भन्नु हो भने ठूला–ठाला अनर्थ गरिन्छन्। होली=फागुको अवसरमा पिचकारी भरेर स्त्रीका अस्पर्शनीय अवयव अर्थात् गुप्ताङ्गहरूमा हान्दछन् र ब्राह्मणका लागि निषिद्ध दूध, घिउ आदि रस बेच्ने काम पनि गर्दछन्।

प्रश्न—गोसाईंजी रोटी, दाल, कढी, भात, साग र मठरी, लड्डू आदिलाई प्रत्यक्ष हाट–बजारमा बसेर त बेच्चैनन्। ती त आफ्ना नोकर–चाकरलाई लपेसा बाँडिदिन्छन्। अनि ती नोकर–चाकरले नै बेच्तछन्, गोसाईंजीले बेच्चैनन्।

उत्तर—गोसाईंजीले नोकर–चाकरलाई मासिक तलब दिने गरेमा ती किन पो लपेसा लिनेथिए र? गोसाईंजी नोकरीको बदलामा आफ्ना नोकरहरूलाई दाल, भात आदि बेच्दछन्। ती त्यसलाई हाटबजारमा लगेर बेच्दछन्। गोसाईंजीले आफैं बाहिर लगेर बेच्ने गरेका भए अरू ती ब्राह्मण नोकरहरूलाई त रसविक्रयको दोष लाग्नेथिएन र रसविक्रयरूपी पापको भागी केवल गोसाईंजी मात्र हुनेथिए। पहिले त यस पापमा आफैं डूबे, अनि फेरि अरूलाई पनि त्यस पापमा सहभागी बनाए। अनि कतैकतै '**नाथद्वारा**' आदिमा गोसाईंजी आफैं पनि बेच्तछन्। दूध, घिउ आदि रस बेच्ने काम नीच व्यक्तिको हो, उत्तम व्यक्तिले यसो गर्दैनन्। यस्तायस्ताले नै आर्य्यावर्त्त देशको यस्तो अधोगति=दुर्दशा गरेका हुन्।

प्रश्न—स्वामीनारायणको मत कस्तो छ?

उत्तर—'**यादृशी शीतला देवी तदृशो वाहनः खरः**' अपहरण आदि गर्नमा जस्तो विचित्र लीला गोसाईंजीको छ, त्यस्तै स्वामी–नारायणको पनि छ। हेर, अयोध्या नजिकै एउटा गाउँमा 'सहजानन्द' नाम गरेको एउटा व्यक्ति जन्मेको थियो। ऊ ब्रह्मचारी भएर गुजरात, काठियावाड़, कच्छभुज आदि ठाउँमा फिर्दथ्यो। उसले 'यो देश मूर्खहरू र सोझासाझा व्यक्तिहरूले भरिएको छ र यिनलाई आफ्नो जस्तो मतमा झुकायो, त्यसैमा झुक्तछन्' भन्ने कुरा बुझ्यो। त्यहाँ उसले दुई–चारजना शिष्य बनायो। तिनीहरूले सम्मति गरेर 'सहजानन्द नारायणका अवतार र ठूला सिद्ध हुन् तथा भक्तहरूलाई चतुर्भुज मूर्त्ति धारण गरेर साक्षात् दर्शन पनि दिन्छन्' भन्ने प्रचार गरे।

काठियावाड़मा दादाखाचर नाम गरेको एउटा काठी अर्थात् भूमिया वा जमीन्दार थियो। एकपल्ट ऊसँग ती शिष्यहरूले 'तिमी चतुर्भुज नारायणको दर्शन गर्न चाहन्छौ भने हामी सहाजानन्दजीसँग प्रार्थना

गरिदिनेछौं' भने। त्यसले 'ठीकै छ' भन्यो। त्यो सोझो मानिस थियो। एउटा कोठामा सहजानन्दले टाउकोमा मुकुट धारण गरेर शंख, चक्र आफ्ना हातमा मास्तिर लियो र एउटा अर्को मानिस उसका पछाडि उभिएर गदा, पद्म आफ्नो हातमा लिएर सहजानन्दको छेउबाट हात अगाडि निकालेर चतुर्भुजजस्तै बन–ठन भए। दादाखाचरसँग सहजानन्दका चेलाहरूले 'एकपटक आँखा उठाएर हेरेर आँखा चिम्लिहाल्नू र तुरुन्त यता आइहाल्नू। धेरै हेर्यौ भने नारायण रिसाउनेछन्' भने। वास्तवमा त चेलाहरूको मनमा 'यसले हाम्रो कपटको परीक्षा गर्ने हो कि' भन्ने शंका थियो। त्यो सहजानन्द कलावत्तू=बुट्टेदार र झल्मल गर्ने रेशमी वस्त्र धारण गरेर अँध्यारो कोठामा उभिएको थियो। उसका चेलाहरूले लालटेनद्वारा कोठातर्फ एकसाथ उज्यालो पारे। दादाखाचरले हेर्दा चतुर्भुज मूर्त्ति देखियो। अनि तुरुन्तै लालटेनलाई कोल्टो पारिदिए। ती सबै भुइँमा लडेर नमस्कार गरेर अर्कातर्फ आए। त्यसै समय 'तिम्रो ठूलो भाग्य रहेछ कि तिमीले दर्शन पायौ, अब तिमी महाराजका चेला बन' इत्यादि कुरा भने। उसले 'धेरै राम्रो कुरा हो' भन्यो। त्यहाँबाट त्यस्तो कुरा गर्दै अर्को ठाउँमा पुगुञ्जेलमा अर्को वस्त्र धारण गरेर सहजानन्द गद्दीमा बसेको रहेछ। अनि त चेलाहरूले 'हेर, अब अर्कै स्वरूप धारण गरेर यहाँ विराजमान हुनुहुन्छ' भने। त्यो दादाखाचर यिनको जालमा फँस्यो। त्यहींबाट तिनीहरूको मतको जरो गाडिएको हो, किनकि दादाखाचर एउटा ठूलो भूमिया=भूमिपति=जमीन्दार थियो। त्यहीं आफ्नो जरो गाडिहाल्यो। अनि यताउति घुमेर सबैलाई उपदेश गर्न र धेरैलाई साधु पनि बनाउन थाल्यो। कहिलेकाहीं कुनै साधुको कण्ठको नाडीलाई मलेर मूर्च्छित पनि गरिदिन्थ्यो र सबैसँग 'हामीले यसलाई समाधि चढाइदिएका छौं' भन्नेगर्दथ्यो। यस्तै यस्तै धूर्त्तताका साथै काठियावाड़का जनता उसको पेचमा फँस्दैगए। ऊ मरेपछि उसका चेलाहरूले धेरैजसो पाखण्ड फैलाए।

यस प्रसङ्गमा यो दृष्टान्त उचित हुनेछ—कुनै चोर चोरी गर्न लागेको अवस्थामा समातियो। न्यायाधीशले त्यसको ना काट्ने दण्ड दिए। त्यसको नाक काटिंदा, त्यो धूर्त्त नाच्न, गाउन र हाँस्न थाल्यो। मानिसहरूले सोधे—'तँ किन हाँस्तैछस्?' उसले भन्यो—'यस्तो कुरा भन्ने होइन।' मानिसले फेरि सोधे 'यस्तो कुन चाहिं कुरा हो त?' उसले भन्यो—'धेरै ठूलो आश्चर्यको कुरा छ, हामीले यस्तो कहिल्यै

देखेका थिएनौं।' मानिसले भने—भन त, के कुरा हो? उसले भन्यो—'मेरो अगाडि साक्षात् चतुर्भुज नारायण उभिएका छन्।' म नारायणलाई देखेर बडो खुसी भएर नाच्तै, गाउँदै नारायणको साक्षात् दर्शन गर्न पाएकोमा आफ्नो भाग्यलाई धन्यवाद दिइरहेछु।' मानिसले भने—'हामीलाई चाहिँ किन देखिंदैनन्? उसले भन्यो—नाकले छेकिरहेको छ, नाक कटाउँछौ भने देखिन्छन्, नत्र देखिंदैनन्।' तीमध्ये कुनै मूर्खले 'नाक गए जाओस् तर नारायणको दर्शन अवश्य गर्नुपर्दछ' भन्ने इच्छा प्रकट गर्यो। उसले 'मेरो पनि नाक काटिदेऊ, नारायण देखाऊ' भन्यो। उसले उसको नाक काटेर कानमा भन्यो—'अब तँ पनि यसै गर्, नत्र भने मेरो र तेरो पनि उपहास हुनेछ।' उसले पनि सोच्यो 'नाक त अब आउने छैन, अतः यसो भन्नु नै ठीक छ।' अनि त त्यो पनि त्यहाँ उसको जस्तै नाच्न, उफ्रन, गाउन, बजाउन, हाँस्न थाल्यो र 'मलाई पनि नारायणको दर्शन भैरहेछ' भन्न थाल्यो। त्यसो हुँदाहुँदै हजारौं मानिसको एउटा समूह बन्यो र ठूलो होहल्ला मच्चियो तथा आफ्नो सम्प्रदायको नाम '**नारायणदर्शी**' राखे। कुनै मूर्ख राजाले यो कुरा सुनेर तिनीहरूलाई बोलाए। तिनका नजिक राजा पुगेपछि त तिनीहरू धेरै नाच्न, उफ्रिन र हाँस्न थाले। राजाले 'यो के कुरा हो?' भनी सोधे। उनीहरूले 'हामीलाई साक्षात् नारायणको दर्शन भैरहेछ' भने।

राजा—हामीलाई किन देखिंदैन?

नारायणदर्शी—'नाक रहेसम्म देखिंदैन र नाक कटाएपछि नारायणको प्रत्यक्ष दर्शन हुनेछ।'

राजाले यो कुरा त ठीक हो भन्ने विचार गरेर भने—'ज्योतिषीजी, मुहूर्त्त हेर्नुहोस्।' ज्योतिषीजीले उत्तर दिए—'जो आज्ञा अन्नदाता!' दशमीको दिन बिहान आठ बजे नाक कटाउन र नारायणको दर्शन गर्न धेरै राम्रो मुहूर्त्त छ।

अरे पोपजी! तिमीले आफ्ना पोथामा नाक काट्ने-कटाउने मुहूर्त्त पनि लेखिदियौ!!! राजाले आफ्नै इच्छाअनुसार ती हजारौं नकटाहरूका लागि सिदाको व्यवस्था गरिदिए अनि त ती धेरै नै खुसी भएर नाच्न, उफ्रिन र गाउन थाले। यो कुरा राजाका दीवान आदि केही बुद्धिमान् व्यक्तिहरूलाई रुचेन। राजाका चार पुस्ता बूढा एकजना ९० वर्षका दिवान थिए। तिनैको पनाति जो त्यसबखतको दीवान थियो, उसले गएर तिनलाई त्यो सबै कुरा सुनायो। ती बूढाले 'ती सबै धूर्त्त हुन्। तँ मलाई राजा छेउ लिएर हिंड्' भने। उसले लग्यो। बस्नेवेलामा राजाले

बड़ा खुशी भएर ती नाककट्टाहरूको कुरा सुनाए। दीवानले भने—सुन्नुहोस् महाराज! यस्तो हतार गर्नु उचित हुँदैन। परीक्षा नगरी कार्य गरेमा पछुताउनु पर्नेछ।

राजा—के यी हजार व्यक्ति झूटो बोलिरहेका होलान्?

दीवान—झूट बोलून् अथवा सत्य। परीक्षा नगरी सत्य वा झूट कसरी छूट्याउन सकिन्छ र?

राजा—परीक्षा कसरी गर्नु उचित होला?

दीवान—विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणबाट।

राजा—नपढेकाले परीक्षा कसरी गने?

दीवान—विद्वान्हरूको संगतबाट ज्ञानको वृद्धि गरेर।

राजा—विद्वान् नभेट्टिए के गर्ने?

दीवान—पुरुषार्थ गर्ने व्यक्तिलाई कुनै वस्तु दुर्लभ हुँदैन।

राजा—त्यसो भए तपाईं नै भन्नुहोस्, कसो गर्नु उचित होला?

दीवान—म बूढो भैसकें, घरैमा बस्तछु र अब थोरै दिनमात्र बाँचेछु। यसकारण पहिले म परीक्षण गर्दछु। त्यसपछि जसो उचित लाग्ला, त्यसै गर्नुहोला।

राजा—ठीक छ। ज्योतिषीजी, दीवानको लागि मुहूर्त्त हेर।

ज्योतिषी—महाराजको जो आज्ञा। यही शुक्लपञ्चमी १० बजेको मुहूर्त्त राम्रो छ।

पञ्चमी आएपछि आठ बजे ती बूढा दीवानले राजा छेउ गएर राजासँग भने—एक दुई हजार सेना लिए हिंड्नु उचित होला।

राजा—त्यहाँ सेनाको के काम छ र?

दीवान—तपाईंलाई राज्यव्यवस्थाको जानकारी छैन। जसो म भन्दछु, त्यसै गर्नुहोस्।

राजा—ठीक छ त। ल, सेना तैयार गर।

साढे नौ बजे राजा सबैलाई लिएर गए। तिनलाई देखेर ती नारायणदर्शीहरू नाच्न र गाउँन थाले। गएर बसे। जसले यो सम्प्रदाय चलाएको थियो, सर्वप्रथम जसको नाक काटिएको थियो, राजाले तिनको त्यस महन्तलाई बोलाएर भने—'आज हाम्रा दीवानजीलाई नारायणको दर्शन गराऊ।' उसले भन्यो—ठीक छ। दस बजेको समय आएपछि एक मानिसले नाकमुनि एउटा थाली समात्यो। उसले तीखो चक्कू लिएर नाक काटेर थालमा हाल्यो र दीवानजीको नाकबाट रगतको धारा छुट्न थाल्यो। दीवानजीको मुख मलिन भयो। अनि त्यस धूर्त्तले

दीवानजीको कानमा मन्त्रोपदेश=साउती गर्यो कि तपाईं पनि हाँसेर 'मलाई नारायण देखापरिरहेको छ' भन्नुहोस्। अब काट्टिइसकेको नाक त फर्कनेछैन। यसो भन्नुभएन भने तपाईंको ठूलो ठट्टा हुनेछ र सबैले हाँसो गर्नेछन्। यति भनेर ऊ अलग्गियो। दीवानजीले हातमा अंगोछा लिएर नाकलाई छोपे। राजाले दीवानजीसँग सोधे—भन! के नारायण देखिंदोरहेछ वा रहेनछ? दीवानजीले राजाको कानमा 'केही पनि देखिंदैन' भने। यस धूर्त्तले व्यर्थैमा हजारौं मानिसलाई बिगार्यो। राजाले दीवानसँग सोधे—'अब के गर्नु उचित होला?' दीवानले भने—'यिनलाई समातेर कठोर दण्ड दिनुपर्दछ। यिनीहरूलाई जीवनभर बन्दीघरमा राख्नुपर्दछ। अनि यी सबैलाई बिगार्ने यस दुष्टलाई गधामा चढाएर, बडो दुर्दशाका साथ मार्नुपर्दछ।' राजा र दीवानलाई कानमा कुरा गरिरहेका देखेर उनीहरू त्यहाँबाट भाग्ने दाउ हेर्नथाले। तर चारैतर्फबाट सेनाले घेरिरहेको हुनाले भाग्न सकेनन्। राजाले आज्ञा दिए—'सबैलाई समातेर नेल लगाइदेऊ' र यस दुष्टको मुखमा कालोमोसो दलेर गधामा चढाएर यसको गलामा थोत्रा जुत्ताको माला लगाएर सर्वत्र घुमाएर केटाहरूबाट यो माथि छारो, धुलो र खरानी हाल्न लगाऊ।' प्रत्येक चोकमा जुत्ताले कुटाएर, कुकुरहरूबाट टोकाएर, मार्न लगाइयोस्। यस्तो नगरिएमा अरूले पनि फेरि यस्ता कार्य गर्नमा डराउने छैनन्। यसो भएपछि नाक काटिएकाको सम्प्रदाय बन्द भयो।

सबै वेदविरोधी सम्प्रदायहरूको लीला यस्तै छ। यी स्वामी-नारायणका मतावलम्बी धनहरण गर्नेहरू छल, कपटयुक्त काम गर्दछन्। कत्ति त मूर्खहरूलाई भड्काउन मर्नेबखत भन्दछन्—'मुक्तिमा लैजानका निम्ति सहजानन्दजी सेतो घोडामा बसेर आएका छन् र सधैं यस मन्दिरमा एकपल्ट आउने गर्दछन्।'

मेलाको समयमा मन्दिरभित्र पुजारी रहन्छन् र तल्तिर पसल थापेका हुन्छन्। मन्दिरबाट पसलमा जाने एउटा दुलो राख्तछन्। कुनै एउटाले नरिवल चढाउँछ, अनि त्यही नरिवल त्यस प्वालबाट पुजारीले पसलमा फालिदिन्छ। अर्थात् यस्तै किसिमले एउटा नरिवल दिनमा हजारपल्ट बिक्तछ। यसैगरी सबै पदार्थ बेच्दछन्।

जो जुन जातिको छ त्यसबाट त्यस्तै काम गराउँदछन्। जस्तै कुनै हजाम छ भने हजामको, कुमाले छ भने कुमालेकै, शिल्पीबाट शिल्पको व्यापारीबाट व्यापार र शूद्रबाट शूद्र आदिकै काम लिन्छन्।

आफ्ना चेलामाथि एउटा कर लगाएका छन्। लाखौं, करोडौं

रुपैयाँ ठगेर जम्मा पार्दछन् र जम्मा पार्दैजान्छन्। गद्दीमा बस्नेले गृहस्थ=विवाह गर्दछ, आभूषण आदि लगाउँदछ। जहाँकहीं सवारी हुन्छ भने त्यहाँ गोकुलियाहरूकै समान गुसाईंजी, बहुजी आदिका नामबाट भेटी-पूजा लिन्छन्। आफूलाई सत्सङ्गी र अरू मतावलम्बीहरूलाई कुसङ्गी बताउँछन्। आफूबाहेक अर्को जतिसुकै उत्तम, धार्मिक, विद्वान् व्यक्ति किन नहोस् तर उसको मान-सम्मान र सेवा कहिल्यै गर्दैनन्, किनकि अर्को मतमा लाग्नेको सेवा गर्नमा पाप ठान्दछन्। 'उनका साधुले महिलाहरूको मुख हेर्दैनन्' भन्ने प्रचार गर्दछन् तर गोप्यरूपमा नजाने के-के लीला हुँदाहुन्? यस कुराको प्रचार कमै भयो। कतैकतै चाहिं साधुहरूको बारेमा परस्त्रीगमन आदि लीला प्रचारित भए। तिनमा जो ठूला-ठालु हुन्छन् ती मर्दा तिनलाई गुपचुप कुवामा फालेर यस्तो हल्ला फिंजाउँछन्—''अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठमा गए, सहजानन्दजीले आएर लगे, हामीले 'महाराज यिनलाई नलैजानुहोस्, किनकि यी महात्मा यहाँ रहनाले नै राम्रो छ' भनी धेरै प्रार्थना गर्यौं। तर सहजानन्दजीले—'होइन, वैकुण्ठमा यिनको धेरै आवश्यकता छ, यसकारण लैजान्छौं' भने। हामीले आफ्नै आँखाले सहजानन्दजी र विमानलाई देख्यौं तथा मर्नेलाई विमानमा बसाल्यौं। मास्तिर लगे अनि पुष्पवर्षा गर्दैगए।''

कुनै साधु बिरामी भएर बाँच्ने आशा नरहेमा 'म भोलि राती वैकुण्ठ जान्छु' भन्दछ। त्यस रातमा त्यसको प्राण छुटेन र मूर्च्छित भयो भने पनि त्यसलाई कुवामा फालिदिन्छन् भन्ने कुरा सुनिन्छ। किनकि त्यस राती त्यसलाई नफालेमा झूटा ठहर्नेछन् भन्ने कारणले नै यस्तो काम गर्दाहुन्। यस्तै जब गोकुलिया गोसाईं मर्दछ तब त्यसका चेला 'गुसाईंजीले लीलाविस्तार गर्नुभयो' भन्दछन्।

यी गोसाईं र स्वामीनारायणीहरूको उपदेश गर्ने मन्त्र एउटै छ। त्यो हो—'**श्रीकृष्णः शरणं मम।**' यसको यस्तो अर्थ गर्दछन्—'श्रीकृष्ण मेरा शरण हुन् अर्थात् म श्रीकृष्णको शरणागत छु।' तर यसको ठीक अर्थ त 'श्रीकृष्ण मेरो शरणमा प्राप्त अर्थात् मेरा शरणागत होऊन्' यस्तो पनि हुनसक्तछ।

यी सबै जति पनि मत छन् ती विद्याहीन हुनाले उटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना गर्दछन्, किनकि तिनलाई विद्याका नियमको जानकारी नै छैन।

प्रश्न—माध्वमत त राम्रो छ?

उत्तर—जस्ता अन्य मतावलम्बी हुन्, त्यस्तै माध्वमत पनि छ। किनकि यी पनि **'चक्राङ्कित'** हुन्छन्। चक्राङ्कितभन्दा यिनमा यति विशेषता हुन्छ कि रामानुजीय एकपटक चक्राङ्कित हुन्छन् भने माध्व चाहिं प्रतिवर्ष बारम्बार चक्राङ्कित भैरहन्छन्। चक्राङ्कितहरू निधारमा पहेंलो रेखा लगाउँदछन् भने माध्व चाहिं कालो रेखा लगाउँदछन्। एउटा माध्व पण्डितसँग कुनै एउटा महात्माको शास्त्रार्थ भएको थियो—

महात्मा—तिमीले यो कालो रेखा र चाँदला=तिलक किन लगाएका हौ ?

शास्त्री—यसलाई लगाउनाले हामी वैकुण्ठ जानेछौं। अनि श्रीकृष्णको शरीर पनि श्यामवर्णको थियो, यसकारण हामी कालो तिलक लगाउँदछौं।

महात्मा—कालो रेखा र तिलक लगाउनाले वैकुण्ठ पुगिने भए सबै मुखै कालो पार, अनि कहाँ पुग्नेछौ ? के वैकुण्ठको पनि पारि तर्नेछौ ? अनि श्रीकृष्णको सबै शरीर कालो थियो, त्यस्तै तिमी पनि सबै शरीरै कालो पार्नेगर, अनिमात्र श्रीकृष्णजस्तै हुनसक्तछ। यसकारण यो मत पनि अघि भनिएका मतहरूकै सरह हो।

प्रश्न—लिङ्गाङ्कितको मत कस्तो छ ?

उत्तर—जस्तो चक्राङ्कितको छ, त्यस्तै हो। जसरी चक्राङ्कित चक्रले डाम्दछन्, नारायणबाहेक कसैलाई मान्दैनन्; त्यस्तै लिङ्गाङ्कित लिङ्गको आकृतिले डाम्दछन् र महादेवबाहेक अरू कसैलाई मान्दैनन्। यिनमा खास कुरा चाहिं के छ भने लिङ्गाङ्कितहरू ढुङ्गाको एउटा लिङ्गलाई सुन वा चाँदीमा मोरेर गलामा झुण्ड्याइराख्छन्। पानी पिउँदा पनि त्यसलाई देखाएरै पिउँछन्। तिनैहरूको मन्त्र शैवहरूको जस्तो हुन्छ।

ब्राह्मसमाज र प्रार्थनासमाज

प्रश्न—ब्राह्मसमाज र प्रार्थनासमाज त राम्रै छन्, कि छैनन् ?

उत्तर—केही कुरा असल र धेरै कुरा खराब छन्।

प्रश्न—ब्राह्मसमाज र प्रार्थनासमाज त सबैभन्दा राम्रा छन् किनकि यिनका नियम धेरै राम्रा छन्।

उत्तर—सबै रूपमा नियम राम्रा छैनन्, किनकि वेदविद्याहीन व्यक्तिहरूको कल्पना सर्वथा सत्य कसरी हुन सक्तछ र ? ब्राह्मसमाज र प्रार्थनासमाजले केही मानिसलाई ईसाई मतमा लाग्नबाट बचाएको, केही–केही ढुङ्गा आदिका मूर्तिपूजालाई हटाएको तथा अरू जालीग्रन्थको

फन्दाबाट पनि केही बचाएको आदि कुरा राम्रा छन्। तर—

१. यिनमा स्वदेशभक्ति अत्यन्त थोरै छ। धेरैजसो ईसाईहरूका आचरणलाई ग्रहण गरेका छन्। खान–पान, विवाह आदिका नियम पनि बदलेका छन्।

२. आफ्नो देश र पूर्वजहरूको प्रशंसा गर्ने कुरा त टाढै जाओस्, उल्टो भरपूर निन्दा गर्दछन्। व्याख्यान आदिमा ईसाई आदि अंग्रेजहरूको भरपेट प्रशंसा गर्दछन्। ब्रह्मा आदि महर्षिहरूको नाम पनि लिंदैनन्। त्यसको साटो 'अंग्रेजहरूबाहेक सृष्टिमा आजसम्म कुनैपनि विद्वान् भएको छैन, आर्यावर्त्तका मानिस पहिल्यैदेखि मूर्खका मूर्खै हुँदैआए, यिनको उन्नति कहिल्यै भएको थिएन' इत्यादि भन्दछन्।

३. वेदादि सत्यशास्त्रको प्रतिष्ठा त टाढै जाओस्, उल्टो निन्दा गर्नपनि पछि पर्दैनन्। ब्राह्मसमाजको उद्देश्यको पुस्तकमा साधुहरूको संख्यामा 'ईसा', 'मूसा', 'मुहम्मद', 'नानक' र 'चैतन्य' लेखिएका छन्। कुनै ऋषि–महर्षिको नाम पनि छैन। यसबाट 'यिनीहरूले ज–जसको नाम लेखेका छन्, तिनैको मतानुसार नै यिनको मत हो' भन्ने कुरा बुझिन्छ। हेर त, आर्य्यावर्त्त देशमा जन्मे, यसै देशको अन्न–पानी खाए, पिए, अझै पनि खान्छन्, पिउँछन् र आफ्ना आमा–बाबु, बाजे–बराजुका मार्गलाई छोडेर अरू विदेशी मतप्रति बढी ढल्किनु, ब्राह्मसमाज र प्रार्थनासमाजीहरूद्वारा यस देशको संस्कृत–विद्यारहित भएर आफूलाई विद्वान् घोषित गर्नु, अंग्रेजी भाषा पढेर 'मै योग्य विद्वान् हुँ' भन्ने घमण्ड गरेर तुरुन्तै एउटा मत चलाउनतर्फ लाग्ने कुरा मानिसहरूको स्थिर र वृद्धिकारक काम कसरी हुनसक्तछ र ?

४. अंग्रेज, यवन, अन्त्यज आदिसँग पनि खान–पानको फरक यिनीहरूले राखेनन्। यिनीहरूले 'खान–पान र जातिभेद तोड्नालेमात्र हाम्रो र हाम्रो देशको सुधार हुन्छ' भन्ठाने होलान्, तर यस्ता कुराले सुधार त परै जाओस्, उल्टो बिगार नै हुन्छ।

५. **प्रश्न**—जातिभेद ईश्वरकृत वा मनुष्यकृत के हो ?

उत्तर—जातिभेद ईश्वरकृत पनि र मनुष्यकृत पनि छ।

प्रश्न—कुन ईश्वरकृत र कुनचाहिं मनुष्यकृत हो त ?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल–जन्तु आदि जातिहरू परमेश्वरकृत हुन्। जस्तै पशुहरूमा–गाई, घोड़ा, हात्ती आदि जातिहरू, वृक्षहरूमा–पीपल, बर, आँप आदि जातिहरू, पक्षीहरूमा—हाँस, बकुल्ला आदि, काग, जल–जन्तुहरूमा—माछा, गोही आदि जातिभेद

ईश्वरकृत हुन्। त्यस्तै मानिसहरूमा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद छन्। तर मानिसहरूमा ब्राह्मण आदिलाई सामान्य जाति होइन, सामान्य विशेषात्मक जातिमा गनिन्छ। अघि नै वर्णाश्रमव्यवस्था प्रकरणमा लेखिएबमोजिम गुण–कर्म–स्वभावअनुसार नै वर्णव्यवस्था अवश्य मान्नुपर्दछ। यिनमा मनुष्यकृततत्त्व, उनका गुण–कर्म–स्वभावबाट पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णहरूको परीक्षापूर्वक व्यवस्था गर्ने काम राजा र विद्वान्हरूको हो। भोजनभेद पनि ईश्वरकृत मनुष्यकृत छ। जस्तै सिंह मांसाहारी र अर्ना, भैंसी घाँस आदिको आहार लिने हुन्छन्। यो ईश्वरकृत र देश–काल–वस्तुभेदले मनुष्यकृत भोजनभेद हुन्छ।

प्रश्न—हेर, यूरोपियनहरू मुण्डा जुत्ता, कोट, पतलुन लगाउँदछन्। होटलमा सबैसँग सबैका हातको खान्छन्। यसैकारण उनीहरूले आफ्नो उन्नति गर्दैगइरहेछन्।

उत्तर—यो तिम्रो भ्रम हो। किनकि मुसलमान, अन्त्यजहरू सबैका हातको खान्छन् भने उनीहरूको उन्नति किन हुँदैन?

यूरोपियनहरूमा बाल्यावस्थामा विवाह नगर्नु, छोरा–छोरीलाई विद्या–सुशिक्षायुक्त गर्नु–गराउनु, स्वयंवर विवाह हुनु, गलत मानिसहरूको उपदेश नहुनु, ती विद्वान् भएर जोसुकैको पाखण्डमा नफँस्नु, जे–जति गरिन्छ, त्यो सबै परस्पर विचारपूर्वक र सभाबाट निश्चित गरेर गर्नु, आफ्नो स्वजातिको उन्नतिका लागि तन, मन, धन खर्च गर्नु, आलस्यलाई छोडेर उद्योग गर्नेगर्नु आदि कुरा हुन्। हेर, यूरोपियनहरू आफ्नो देशमा बनेका जुत्तालाई कार्यालय=अफिस र अदालतमा लैजान दिन्छन्, यस देशका जुत्तालाई दिँदैनन्। यत्तिबाटै उनीहरू आफ्नो देशमा बनेका जुत्ताको पनि जति मानप्रतिष्ठा गर्दछन्, त्यति अरू देशका मानिसको पनि गर्दैनन् भन्ने कुरा सम्झ। हेर, यूरोपियनहरू यस देशमा आएको सय वर्षभन्दा केही बढी भयो र उनीहरू जस्तो आफ्नो देशमा लगाउँदथे, त्यस्तै मोटा कपडा आदि आजसम्म पनि लगाउँदछन्। तर उनीहरूले आफ्नो देशको चाल–चलनलाई छोडेका छैनन्। यता तिमीहरूमा भने धेरैजसोले उनीहरूको अनुकरण गर्यौ। यसैकारण तिमीहरू निर्बुद्धि र उनीहरू बुद्धिमान् ठहर्दछन्। अनुकरण गर्नु कुनै बुद्धिमान्को काम होइन। उनीहरूमा जो जुन काममा हुन्छन्, त्यसलाई उत्तरदायित्वपूर्वक गर्दछन्। निरन्तर आज्ञानुवर्ती=आज्ञानुसार गर्ने हुन्छन्। आफ्ना देशवासीहरूलाई व्यापार

आदिमा सहायता गर्दछन्। इत्यादि गुणहरू र राम्रा राम्रा कर्महरूका कारण उनीहरूको उन्नति भइ रहेछ। मुण्डा जुत्ता, कोट, पतलुन्, होटलमा खान–पान आदि साधारण र गलत काम गर्नाले बढेका होइनन्। अनि यिनमा जातिभेद पनि छ। हेर, कुनै यूरोपियन जतिसुकै ठूलो अधिकार र पदमा प्रतिष्ठित किन नहोओस्, उसले कुनै अर्को देश वा अन्य मतावलम्बीकी छोरीसँग अथवा यूरोपियनकी छोरीले अर्का देशवासीसँग विवाह गरेमा त्यसैबेला अरूले त्यसको निमन्त्रण, सँगै बसेर खान र विवाह आदि गर्न बन्द गरिदिन्छन्। यो जातिभेद होइन भने के हो त? यति हुँदाहुँदै पनि तिनीहरू तिमी सोझा–साझालाई 'हामी जातिभेद मान्दैनौं' भनी भ्रममा पार्दछन्, तिमीहरू आफ्नो मूर्खताका कारण यस्ता कुरालाई मान्दछौ पनि। यसकारण जे गरे पनि सोच–विचार गरेर मात्र गर्नुपर्दछ, जसमा पुनः पछुताउनु नपरोस्।

हेर, रोगीका लागि नै चिकित्सक र औषधिको आवश्यकता पर्दछ, निरोगीका लागि पर्दैन। विद्यावान् व्यक्ति निरोगी र विद्यारहित व्यक्ति अविद्यारोगले ग्रस्त हो। त्यस रोगलाई छुटाउनकै निम्ति सत्यविद्या र सत्य उपदेश हुन्छ। अविद्याकै कारण तिनलाई 'खान–पिउनमा नै धर्म रहन्छ र जान्छ' भन्ने रोग लागेको छ। कसैलाई खान–पिउनमा अनाचार गर्नलागेको देखेर 'त्यो धर्मभ्रष्ट भयो' भन्दछन् र त्यस्तै सम्झन्छन्। त्यसका कुरा सुन्दैनन्, ऊसँग बस्तैनन् र उसलाई आफ्नो नजिक बस्न पनि दिंदैनन्।

अब भन त, तिम्रो विद्या स्वार्थका निम्ति हो वा परमार्थका लागि हो। परमार्थ त तब हुन्छ जब तिम्रो विद्याबाट ती अज्ञानीलाई फाइदा होओस्। 'ती लिंदैनन्, हामी के गरौं?' भन्छौ भने यो तिम्रो दोष हो, उनीहरूको होइन। किनकि तिमीले आफ्नो आचरण ठीक राखेका भए तिमीसँग प्रेम गरेर ती उपकृत हुनेथिए। यसकारण तिमीले हजारौंको उपकारनाश गरेर आफ्नै सुख–साधन जुटायौ, यो तिमीलाई ठूलो अपराध लाग्यो, किनकि परोपकार गर्नु धर्म, अरूको हानि–नोक्सानी गर्नु अधर्म भनिन्छ। यसकारण विद्वान् व्यक्तिले यथायोग्य व्यवहार गरेर अज्ञानीहरूलाई दुःखसागरबाट तार्नका लागि नौकारूप हुनुपर्दछ। सर्वथा मूर्खहरूकै जस्ता कर्म गर्नुहुँदैन। उनीहरूको र आफ्नो दिन–प्रतिदिन उन्नति हुने किसिमका कर्म गर्नु उचित हुन्छ।

प्रश्न—हामी कुनै पुस्तकलाई ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य मान्दैनौं, किनकि मानिसको बुद्धि निर्भ्रान्त हुँदैन, यसकारण तिनले बनाएका

ग्रन्थ पनि सबै भ्रान्त हुन्छन्। यसकारण हामी सबैबाट सत्यलाई ग्रहण गर्दछौं र असत्यलाई छोडिदिन्छौं। सत्य चाहे वेदमा, बाइबलमा, कुरानमा अथवा अरू कुनै ग्रन्थमा किन नहोओस्? हामीलाई ग्राह्य हुन्छ। असत्य चाहिं कुनै ग्रन्थको पनि ग्राह्य हुँदैन।

उत्तर—जुन कुराबाट तिमी सत्यग्राही हुन चाहान्छौ, त्यसै कुराबाट असत्यग्राही पनि ठहर्दछौ। किनकि कुनै मानिस भ्रान्तिहीन हुनसक्तैन भने तिमी पनि मानिस हुनाले भ्रान्तिसहित छौ। भ्रान्तिसहितका कुरा सर्वांशमा प्रामाणिक हुँदैनन् भने तिम्रा कुराको पनि विश्वास हुनेछैन। अनि तिम्रा कुरामा पनि सर्वथा विश्वास गर्नु उचित हुनेछैन। यस्तो भएपछि विष मिलेको अन्नजस्तै त्याग्न योग्य हुन्छ। फेरि तिम्रै व्याख्याअनुसार पुस्तक बनाएको कारण कसैलाई पनि प्रामाणिक मान्नुहुँदैन। हिन्दीको उखानअनुसार 'चौबेजी छब्बेजी बन्न हिंडेका थिए, दुईवटा गाँठा गुमाएर दुबे पो बन्न पुगेछन्'। जसरी अरू मानिस सर्वज्ञ छैनन्, त्यस्तै तिमी पनि कुनै सर्वज्ञ त होइनौ। कहिलेकाहीं भ्रममा परेर असत्यलाई ग्रहण र सत्यलाई छोड्ने पनि गर्दा हौ? यसकारण हामी अल्पज्ञहरूका लागि सर्वज्ञ परमात्माका वचनको सहायता अवश्य हुनुपर्दछ।

जस्तो वेदको व्याख्या प्रकरणमा लेखिएको छ, त्यस्तै तिमीले अवश्य मान्नुपर्दछ। नत्र भने '**यतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः**' भइनेछ। वेदबाट सबै सत्य प्राप्त हुन्छ र असत्य तिनमा केही छैन। अनि तिनलाई ग्रहण गर्नमा शङ्का गर्नु आफ्नो र अरूको हानि गर्नुमात्र हो। यसकारण आर्यावर्त्तका मानिस तिमीलाई आफ्नो ठान्दैनन् र तिमी आर्य्यावर्त्तको उन्नतिका कारण बन्नपनि सकेनौ, किनकि तिमी त सबै घरका भिखारी पो बन्नपुग्यौ। तिमीले 'हामी यस कुराबाट आफ्नो र अरूको उपकार गर्न सक्नेछौं' भन्ठानेका छौ, तर त्यसो गर्नसक्नेछैनौ। जसरी कसैका आमा-बाबु दुबैले सब संसारका छोरा-छोरीको पालन गर्न खोजेमा तिनले सबैको पालन-पोषण त गर्न असम्भव हुन्छ, तर त्यसो गर्नाले तिनीहरूले आफ्ना सन्तानलाई पनि नष्ट गर्दछन्; त्यस्तै तिमीहरूको पनि गति छ। वेदादि सत्यशास्त्रलाई नमानी के कहिल्यै तिमी आफ्ना कुराको सत्यता र असत्यताको परीक्षा र आर्य्यावर्त्तको उन्नति पनि गर्न सक्तछौ?

जुन देशलाई रोग लागेको छ, त्यसको औषधि तिमीसँग छैन तथा यूरोपियनहरू तिम्रो अपेक्षा गर्दैनन्, यता आर्य्यावर्त्तीयहरू तिमीलाई

अरू मतावलम्बीहरूजस्तै सम्झन्छन्। अझैपनि चेतेर वेदादिको मान्यताद्वारा देशोन्नति गर्नेतर्फ लाग्छौ भने ठीक हुनेछ। जब तिमी 'सबै सत्य ईश्वरबाटै प्रकाशित हुन्छ, भन्ने कुरा भन्दछौ भने ऋषिहरूका आत्मामा ईश्वरबाट प्रकाशित भएका सत्यार्थ वेदलाई किन मान्दैनौ? अँ, यो एउटा कारण त छ कि तिमीहरूले वेद पढेका छैनौ तथा पढ्ने इच्छा पनि गर्दैनौ, अनि तिमीलाई कसरी वेदोक्त ज्ञान हुनसक्ला र?'

६. अर्को कुरा, ईसाई र मुसलमानहरूले मानेजस्तै जगत्को उपादान कारणविना नै जगत्को उत्पत्ति र जीवलाई पनि उत्पन्न मान्दछौ। यस कुराको उत्तर सृष्टि उत्पत्ति र जीव-ईश्वरको व्याख्या प्रकरणमा हेर्नुहोला। कारणविना कार्य उत्पन्न हुनु सर्वथा असम्भव हो र उत्पन्न वस्तुको नाश नहुनु पनि त्यस्तै असम्भव हुन्छ।

७. 'पश्चात्ताप र प्रार्थनाबाट पापहरूको निवारण हुने कुरा मान्नु' पनि तिम्रो एउटा दोष हो। यसैकारण संसारमा धेरैजसो पाप बढिरहेछन्। किनकि पुराणीहरू तीर्थयात्रा आदिबाट, जैनीहरूपनि नवकार मन्त्र, जपादि तीर्थादिबाट, ईसाईहरू ईसाप्रति विश्वास राख्नाले, मुसलमानहरू 'तौबाः' गर्नाले पाप नभोगिकनै काटिने कुरा मान्दछन्। यसबाट पापदेखि भय नरहेर पापतर्फ धेरै प्रवृत्ति बढेको छ। यस कुरामा ब्राह्मसमाजी र प्रार्थनासमाजी पनि पुराणी आदि जस्तै छन्। वेद पढ्ने-पढाउने गरेका भए नभोगिकन पाप-पुण्यको निवृत्ति नहुनाले पापदेखि डराउँने र सदा धर्मतर्फ लाग्नेथिए। भोगविना नै पापको निवृत्ति मानेमा ईश्वर अन्यायकारी ठहरिन्छन्।

८. तिमी जीवको अनन्त उन्नति मान्दछौ भने कहिल्यै त्यसो हुनसक्तैन। किनकि सीमित जीवका गुण, कर्म, स्वभावको फल पनि अवश्य सीमित हुनुपर्दछ।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु हुनाले सीमित कर्मको अनन्त फल दिनेछ।

उत्तर—यसो भएमा परमेश्वर अन्यायी ठहर्नेछ र सत्कर्मको उन्नति पनि कसैले गर्नेछैन, किनकि परमेश्वरले थोरै पनि सत्कर्मको अनन्त फल दिनेछ र जतिसुकै पाप भए पनि पश्चात्ताप वा प्रार्थनाबाट छुट्नेछन्। यस्ता कुराबाट धर्मको हानि र पापकर्मको वृद्धि हुन्छ।

प्रश्न—हामी नैमित्तिकलाई होइन, स्वाभाविक ज्ञानलाई वेदभन्दा पनि ठूलो मान्दछौं, किनकि हामीमा परमेश्वरले दिएको स्वाभाविक ज्ञान नभएको भए वेदलाई पनि कसरी पढ्न-पढाउन, बुझ्न-बुझाउन सकिन्थ्यो? यसकारण हामीहरूको मत धेरै राम्रो छ।

उत्तर—तिम्रो यो कुरा निरर्थक छ। किनकि कसैले दिएको ज्ञान स्वाभाविक हुँदैन। स्वाभाविक त सहजज्ञान हुन्छ र त्यो घट्न–बढ्न सक्तैन। त्यसबाट कसैले पनि उन्नति गर्न सक्तैन। किनकि जङ्गली मानिसहरूमा पनि स्वाभाविक ज्ञान छ तापनि तिनले आफ्नो उन्नति गर्नसकेनन्। अनि नैमित्तिक ज्ञान नै उन्नतिको कारण हो। हेर, तिमी–हामी बाल्यावस्थामा कर्त्तव्य–अर्त्तव्य र धर्म–अधर्म केही पनि ठीक–ठीक जान्दैनथ्यौं। हामीले विद्वान्हरूबाट पढेपछि मात्र कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य र धर्म–अधर्मलाई बुझ्नथाल्यौं। यसकारण स्वाभाविक ज्ञानलाई सर्वोपरि मान्नु ठीक होइन।

९. तपाईंहरूले पूर्वजन्म र परजन्मलाई नमान्ने कुरा ईसाई र मुसलमानहरूबाट लिएको हुनुपर्दछ। यसको पनि उत्तर पुनर्जन्मको व्याख्याबाट बुझ्नुहोला। तर यति चाहिं बुझिराख्नु पर्दछ कि जीव शाश्वत अर्थात् नित्य छ र उसका कर्म पनि प्रवाहरूपले नित्य हुन्छन्। कर्म र कर्मवान्को नित्यसम्बन्ध हुन्छ। के त्यो जीव निकम्मा भएर बसिरहन्थ्यो वा बसिरहने छ? अनि तिम्रो कथनअनुसार परमेश्वर पनि निकम्मा ठहरिन्छन्। पूर्वापरजन्म नमान्नाले परमेश्वरमा कृतहानि र अकृताभ्यागम अनि नैर्घृण्य र वैषम्य दोष पनि लाग्दछन्, किनकि जन्म नभएमा पाप–पुण्यका फलभोगको हानि हुनेछ। किनकि जसरी अर्कालाई सुख:दुख, हानि–लाभ पुर्याइएको हुन्छ, त्यसको त्यस्तै फल शरीरधारण नगरी प्राप्त हुनसक्तैन। अर्कोकुरा, पूर्वजन्मका पाप–पुण्यअनुसार सुख–दुःख नहुने भए परमेश्वर अन्यायकारी र कर्मको फल नभोगिकनै नाश हुनेजस्तै हुनेछ। यसकारण तिमीहरूको यो कुरा पनि ठीक होइन।

१०. अर्को एउटा कुरा यो पनि छ—'ईश्वरबाहेक अरू दिव्यगुणयुक्त पदार्थहरूलाई र विद्वान्हरूलाई नमान्नु देव पनि ठीक होइन।' किनकि परमेश्वर महादेव हो। अनि देव नै नभएमा सबै देवहरूको स्वामी हुनाले 'महादेव' किन भनिन्थ्यो।

११. एउटा अर्को कुरा, अग्निहोत्र आदि परोपकारक कर्मलाई कर्त्तव्य नसम्झिनु उचित होइन।

१२. ऋषि महर्षिहरूका उपकारलाई नमानेर ईसा आदितर्फ ढल्किनु ठीक होइन।

१३. कारणविद्या वेदविना अरू कार्यविद्याहरूको प्रवृत्ति मान्नु सर्वथा असम्भव हो।

१४. विद्या का चिह्न जनै र टुप्पीलाई छोडेर मुसलमान, ईसाईजस्तै बन्नु पनि व्यर्थै हो। जब पतलुन आदि वस्त्र लगाउँदछौ र तक्मा भिर्न पनि चाहान्छौ भने के जनै आदि भारी भएका थिए र?

१५. ब्रह्मादेखि लिएर पछि–पछि आर्य्यावर्त्तमा धेरै विद्वान् भएका छन्। तिनको प्रशंसा नगरेर यूरोपियनकै स्तुतिमा लागिपर्नुलाई पक्षपात र खुशामदबाहेक के भन्नु र?

१६. बीजांकुरजस्तै जड़चेतनको योगबाट जीवको उत्पत्ति मान्नु, उत्पत्ति हुनुअघि जीवतत्त्वलाई नमान्नु र उत्पन्नको नाश हुने कुरा नमान्नु पूर्वापरविरुद्ध कुरा हो। उत्पत्ति हुनुअघि चेतन र जड़वस्तु थिएन भने जीव कहाँबाट आयो? र संयोग कसको भयो? यी दुबैलाई सनातन मान्दछौ भने ठीक छ। तर सृष्टिभन्दा अघि ईश्वरबाहेक अरू कुनै तत्त्वलाई नमान्नु, यो तिम्रो पक्ष व्यर्थ हुनेछ। यसकारण उन्नति चाहान्छौ भने '**आर्यसमाज**' सँग मिलेर यसका उद्देश्यअनुसार आचरण गर्न स्वीकार गर, नत्रभने केही पनि हात पर्नेछैन। किनकि जुन देशका पदार्थबाट आफ्नो शरीर बन्यो, अहिले पनि पालन भइरहेछ र पछि पनि हुनेछ, सबैले मिलेर तन–मन–धनले प्रीतिपूर्वक त्यसको उन्नति गर्नु हाम्रो र तिम्रो कर्त्तव्य हो। यसकारण आर्यावर्त्त देशको उन्नतिको जस्तोकारण "**आर्यसमाज**" छ, त्यस्तो अरू कुनै हुनसक्तैन। यस समाजलाई यथावत् सहायता गर्छौ भने धेरै राम्रो कुरा हो। किनकि समाजको सौभाग्य समुदायबाट बढ्दछ, एउटाबाट बढ्दैन।

प्रश्न—तपाईं सबैको खण्डन नै गरिरहनुहुन्छ, तर आ–आफ्ना धर्ममा सबै ठीक छन्। कसैको खण्डन गर्नु उचित होइन। खण्डन गरेर तपाईं यीभन्दा विशेष के बताउनुहुन्छ? केही बताउनुहुन्छ भने के कोही व्यक्ति तपाईंभन्दा बढी वा तपाईंजस्तै थिएन वा छैन? तपाईंले यस्तो घमण्ड गर्नु उचित होइन।

उत्तर—सबैको धर्म एउटै हुन्छ अथवा अनेक हुन्छन्? अनेक हुन्छन् भन्छौ भने एक –अर्का विरुद्ध हुन्छन् अथवा अविरुद्ध हुन्छन्? विरुद्ध हुन्छन् भन्छौ भने एउटाविना अर्को धर्म हुनसक्तैन अनि अविरुद्ध छन्, भन्छौ भने छुट्टा–छुट्टै हुनु व्यर्थै हो। यसकारण धर्म एउटै छ र अधर्म पनि एउटै छ, अनेक होइन। हामी यही विशेष भन्दछौं कि जसरी सबै सम्प्रदायका उपदेशकलाई कुनै राजाले जम्मा गरेमा एक हजारभन्दा कम हुने छैनन्, तर यिनको मुख्य मूल भाग हेरेमा पुरानी, किरानी, जैनी र कुरानी यी चार मात्र छन्। किनकि यी चारमै सबै

सम्प्रदाय अटाउँछन्। कुनै राजाले तिनीहरूको सभा गराएर कसैले जिज्ञासु भएर पहिले वाममार्गीसँग सोध्नुपर्दछ—'हे महाराज! मैले आजसम्म न त कुनै गुरु न कुनै धर्मलाई ग्रहण गरेको छु। अब भन्नुहोस्, सबै धर्ममध्ये उत्तम धर्म कसको छ, जसलाई मैले ग्रहण गरूँ।'

वाममार्गी—हाम्रो हो।

जिज्ञासु—यी नौसय उनान्सय (९९९) कस्ता छन्?

वाममार्गी—सबै झूठा र नरकगामी हुन्, किनकि '**कौलात् परतरं नहि**' यस वचन को प्रमाण अनुसार हाम्रो धर्मभन्दा उत्तम कुनै धर्म छैन।

जिज्ञासु—तपाईंको धर्म के हो?

वाममार्गी—भगवतीलाई मान्नु, मद्य-मांस आदि पञ्चमकारको सेवन र रुद्रयामल आदि चौंसठ्ठी तन्त्रलाई मान्नु इत्यादि हाम्रो धर्म हो। तिमीलाई मुक्तिको इच्छा छ भने हाम्रो चेला बन।

जिज्ञासु—ल, ठीक छ। तर अरू महात्माहरूको पनि दर्शन गरेर सोधपुछ पनि गरेर आउँछु, अनि जुनमा मेरो श्रद्धा र प्रीति हुनेछ, त्यसैको चेलो बन्नेछु।

वाममार्गी—अरे! किन भ्रान्तिमा परेका छौ? तिनीहरूले तिमीलाई झुक्याएर र भड्काएर आफ्नो जालमा फँसाउनेछन्। कसैको नजिक नजाऊ। हाम्रै शरणागत भैहाल, नत्र पछुताउनुपर्नेछ। हेर, हाम्रो मतमा भोग र मोक्ष दुबै छन्।

जिज्ञासु—ठिकै छ, तर सोधेर त आऊँ?

त्यसपछि शैवनजिक गएर सोद्धा उसले पनि त्यस्तै उत्तर दियो र यति विशेष भन्यो—शिव, रुद्राक्ष, भस्म धारण र लिङ्गार्चनबिना कहिल्यै मुक्ति हुँदैन। अनि ऊ त्यसलाई छोडेर नवीन वेदान्तीछेउ पुग्यो।

जिज्ञासु—भन्नुहोस् त महाराज! तपाईंको धर्म के हो?

वेदान्ती—हामी धर्म, अधर्म केही पनि मान्दैनौं। हामी साक्षात् ब्रह्म हौं। हामीमा धर्म, अधर्म कहाँ छ र? यो सबै जगत् मिथ्या हो। कोही ज्ञानी, शुद्ध,चेतन हुन चाहेमा आफूलाई ब्रह्म मानेर, जीवभावलाई त्यागेर नित्यमुक्त हुनेछ।

जिज्ञासु—तिमी नित्यमुक्त ब्रह्म हौ भने तिमीमा ब्रह्मका गुण, कर्म, स्वभाव किन छैनन्? र शरीरमा किन बाँधिएका छौ?

वेदान्ती—तिमीलाई शरीर देखिन्छन्,यसैकारण तिमी भ्रान्त छौ। हामीलाई ब्रह्म बाहेक केही पनि देखिंदैन।

जिज्ञासु—तिमी देख्ने को हौ? र कसलाई देख्तछौ?

वेदान्ती—देख्ने ब्रह्म र ब्रह्मले ब्रह्मलाई नै देख्तछ।

जिज्ञासु—के दुई ब्रह्म छन्?

वेदान्ती—होइन, आफूले आफैंलाई देख्तछ।

जिज्ञासु—के कोही आफ्नो काँधमा आफैं चढ्न सक्तछ? तिम्रो कुरा केही पनि होइन, मात्र पागलपनका कुरा हुन्।

त्यसपछि हिंडेर ऊ जैनीहरूसमीप पुग्यो र सोध्यो। उनीहरूले पनि त्यस्तै भने। तर यति चाहिं खासगरी भने कि 'जिण धर्मबाहेक सबै धर्म खोटा हुन्। जगत्को कर्त्ता कुनै अनादि ईश्वर छैन। जगत् अनादिकालदेखि जस्ताकोत्यस्तै छ र त्यस्तै रहनेछ। आऊ, तिमी हाम्रा चेला बन। किनकि हामी सम्यक्त्वी अर्थात् सबै किसिमले असल हौं, उत्तम कुराहरूलाई मान्दछौं। जैनमार्गबाहेक सबै मिथ्यात्वी=झूटा हुन्।'

त्यसपछि गएर ईसाईसँग सोध्यो। उसे वाममार्गीजस्तै सबै सवाल-जवाफ गर्यो। यति विशेष बतायो—'सबै मानिस पापी छन्। आफ्नै सामर्थ्यले पाप छुट्तैन। ईसामाथि विश्वास नगरी पवित्र भएर मुक्ति प्राप्त गर्न सकिंदैन। ईसाले सबैको प्रायश्चित्तका लागि आफ्ना प्राण दिएर दया प्रकाशित गरे। तिमी हाम्रै चेला बन।'

यो पनि सुनेर जिज्ञासुले मौलवी साहेबसँग सम्पर्क स्थापित गर्यो। तीसँग पनि यस्तै प्रश्न-उत्तर भए। यति विशेष भने—'लासरिक खुदा, उसका पैगम्बर र कुरानसरिफलाई नमानी कसैले निजात पाउन सक्तैन। यस मजहबलाई नमान्ने दोजखी र काफिर हो, बाजिबुल कत्ल हो।'

यसपछि जिज्ञासु वैष्णवकहाँ गयो। त्यस्तै संवाद भयो। यति विशेष भन्यो—'हाम्रा तिलक छापलाई देखेर यमराज डराउँछन्'। जिज्ञासुले मनमनै सोच्यो—झिंगा, लामखुट्टे, प्रहरी जवान, चोर, डाँकू र शत्रु त डराउँदैनन् भने यमराजका गण किन पो डराउँछन् र?

फेरि अघि बढ्यो। सबै मतावलम्बीहरूले आ-आफैंलाई सच्चा बताए। कुनैले—हाम्रो कबीर सच्चा, अर्कोले—नानक, कसैले—दादू, अरू कुनैले—वल्लभ, कुनैले—सहजानन्द र कसैले—माध्व आदिलाई ठूला र अवतार बताएको सुन्यो।

हजारसँग सोधेर उनीहरूबीच परस्पर एक-अर्काको विरोध देखेर विशेषरूपमा 'यिनमा कुनैपनि गुरु बनाउन योग्य छैन्' भन्ने निश्चय गर्यो। किनकि एउटा झूटो हो भन्ने कुरामा नौसय उनान्सय साक्षी भए।

झूटो पसले या वेश्या अथवा भँडुवा आदिले जसरी आ-आफ्नो वस्तुको प्रशंसा र अरूको निन्दा गर्दछन्, त्यस्तै यी हुन् भन्ने सम्झेर—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ १ ॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥ २ ॥

—मुण्डकोपनिषद् १।२।१२, १३

त्यस सत्यको विज्ञानका निम्ति उसले समित्पाणि अर्थात् हात जोरेर, हातमा केही लिएर वेदजान्ने, ब्रह्मनिष्ठ, परमात्मालाई जान्ने गुरुकहाँ जानुपर्दछ। यी पाखण्डीहरूको जालमा पर्नुहुँदैन॥ १ ॥

यस्ता जिज्ञासु विद्वान्‌समीप जाँदा त्यस शान्तचित्त, जितेन्द्रियले समीप आएको जिज्ञासुलाई यथार्थ ब्रह्मविद्या, परमात्माका गुण, कर्म, स्वभावको उपदेश गर्नुपर्दछ। अनि जुन-जुन साधनबाट त्यो श्रोताले धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष र परमात्मालाई जान्न सकोस्, त्यस्तै शिक्षा गर्ने गर्नुपर्दछ॥ २ ॥

त्यस जिज्ञासुले यस्ता पुरुषका समीप गएर—'महाराज! अब यी सम्प्रदायका झैं-झगडाबाट मेरो मन भ्रान्त भइसक्यो। किनकि म यिनमा कुनै एउटाको चेलो भएमा नौसय उनान्सयको विरोधी हुनुपर्नेछ। नौसय उनान्सय शत्रु र एउटा मित्र हुनेलाई कहिल्यै सुख हुनसक्तैन। यसकारण तपाईं मलाई मैले ग्रहणगर्न योग्य उपदेश गर्नुहोस्' भन्यो।

आप्त विद्वान्—यी सबै मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हुन्। मूर्ख, लाछी र जङ्गली मानिसलाई भ्रान्त पारेर आफ्ना जालमा फँसाएर आ-आफ्ना प्रयोजन सिद्ध गर्दछन्। ती विचरा भ्रान्त व्यक्ति आफ्नो मनुष्य जन्मको फलबाट वञ्चित भएर मनुष्यजन्मलाई व्यर्थैमा गुमाउँछन्। हेर, जुन कुरामा यी हजार एकमत हुन्छन्, त्यो वेदमत ग्राह्य हो। अनि जुनमा परस्पर विरोध हुन्छ, त्यो कल्पित, झूटो, अधर्म, अग्राह्य हो।

जिज्ञासु—यसको परीक्षा कसरी हुनेछ?

आ०वि०—तिमी गएर यी-यी कुरा सोध। सबैको एउटै सम्मति हुनेछ।

अनि त्यस जिज्ञासुले ती हजारको मण्डलीको बीचमा उभिएर भन्यो—सबै सुन! सत्य बोल्नमा धर्म हुन्छ अथवा मिथ्या बोल्नमा? सबैले एकै स्वरमा 'सत्य बोल्नमा धर्म र असत्य बोल्नमा अधर्म हुन्छ' भने। त्यस्तै विद्या पढ्न, ब्रह्मचर्यपालन गर्न, पूर्ण युवावस्थामा विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदिमा धर्म हुन्छ अथवा अविद्याग्रहण, ब्रह्मचर्यपालन नगर्नु, व्यभिचार, कुसङ्ग, आलस्य, असत्य

व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, अर्काको हानि आदि कर्ममा? भनी सोद्धा सबैले एकमत भएर 'विद्या आदिलाई ग्रहण गर्नमा धर्म र अविद्या आदिलाई ग्रहण गर्नमा अधर्म हुन्छ' भने।

तब जिज्ञासुले सबैसँग भन्यो—'तिमीहरू यसैगरी सबैजना एकमत भएर सत्यधर्मको उन्नति र मिथ्यामार्गको हानि किन गर्दैनौ?'

ती सबैले भने—हामीले यसो गर्यौं भने हामीलाई कसले पुछ्ला र? हाम्रा चेला हाम्रो आज्ञामा रहनेछैनन्, हाम्रो जीविका नष्ट हुनेछ। अनि जुन आनन्द हामी भोगिरहेछौं, त्यो सबै खुस्कनेछ। यसकारण हामीलाई सत्य र असत्यबारे जानकारी भएतापनि आ-आफ्ना मतको उपदेश र आग्रह गरिनैरहन्छौं। किनकि '**रोटी खाइए सक्कर से दुनिया ठगिए मक्कर से**' अर्थात् जाल-झेलबाट भएपनि दुनियाँलाई ठगेर आनन्द भोग्न आवश्यक छ। हेर, संसारमा सोझा-साझा मानिसलाई न त कसैले केही दिन्छ न उसको सोधपूछ नै हुन्छ। केही ढोंग=पाखण्डबाजी र धूर्तता गर्नेले नै पदार्थ प्राप्त गर्दछन्।

जिज्ञासु—तिमीहरूले यस्ता पाखण्ड चलाएर अरू मानिसलाई ठग्दा तिमीलाई राजाले दण्ड किन दिंदैनन्?

मतवादी—हामीले राजालाई पनि चेला बनाएका छौं। हामीले पक्का प्रबन्ध गरेका छौं। कोही छुट्ने छैन।

जिज्ञासु—तिमीहरू छलकपटले अरू मतका मानिसलाई ठगेर उनीहरूको हानि गर्दछौ भने परमेश्वरका सामु के उत्तर दिनेछौ? अनि घोर नरकमा पर्नेछौ। थोरै जीवनका निम्ति यति ठूलो अपराध गर्न किन छोड्दैनौ?

मतवादी—जब जस्तो पर्ला, त्यस्तै टर्ला। नरक र परमेश्वरको दण्ड जब हुनेछ, तब हुनेछ, अहिले आनन्द गरिरहेछौं। भक्तजनले हामीलाई प्रसन्नतापूर्वक धनादि पदार्थ दिन्छन्, हामी खोसेर त लिंदैनौं। अनि राजाले दण्ड किन दिने?

जिज्ञासु—जसरी कसैले सानो बालकलाई फकाएर धनादि पदार्थ हर्दछ भने त्यसलाई दण्डित गरिन्छ, त्यस्तै तिमीलाई दण्ड किन न मिल्ने? किनकि—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः॥

—मनुस्मृति २।५३

ज्ञानरहित व्यक्तिलाई बालक र ज्ञान दिनेलाई पिता व वृद्ध भनिन्छ। बुद्धिमान् विद्वान् त राम्रा कुरामा फँस्दैन। तर बालक जस्तै अज्ञानीहरूलाई

ठगेकोमा भने तिमीलाई राजदण्ड अवश्य मिल्नुपर्ने हो।

मतवादी—राजा–प्रजा सबै हाम्रा मतमा छन् भने हामीलाई दण्ड कसले दिने? त्यस्तो व्यवस्था भयो भने यी कुरालाई छोडेर अर्कै व्यवस्था गर्नेछौं।

जिज्ञासु—तिमीले बसी–बसी मस्ती लिनुको सट्टा गृहस्थका छोरा–छोरीलाई विद्याभ्यास गराएर पढाएमा तिम्रो पनि, गृहस्थको पनि कल्याण हुनेछ।

मतवादी—हामीले बाल्यावस्थादेखि मृत्युसम्मका सुखलाई त्यागेर, बाल्यावस्थादेखि युवावस्थासम्म विद्या पढ्नमा परिश्रम गरेर, त्यस पछि पढाउन र उपदेश गर्नमा जन्मभर परिश्रम गर्नाले हाम्रो के विशेष प्रयोजन सिद्ध हुनेछ र? हामीलाई त यत्तिकै लाखौं रुपैयाँ प्राप्त हुन्छ, मजा गरिरहेछौं, त्यसलाई किन छोड्ने?

जिज्ञासु—यसको परिणाम त नराम्रो हुन्छ नि। हेर, तिमीलाई ठूला–ठूला रोग लाग्दछन्, छिटै मर्दछौ, बुद्धिमान्हरूमा तिम्रो निन्दा हुन्छ, फेरि पनि किन बुझ्दैनौ?

मतवादी—ए बन्धु!

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्।
यस्य गृहे टका नास्ति हा! टकां टकटकायते॥ १॥
आना अंशकला: प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम्॥ २॥

तिमी अल्लारे छौ, संसारका कुरा बुझ्दैनौ। धनविना धर्म, कर्म वा परमपद प्राप्त हुँदैन। जसका घरमा धन हुँदैन ऊ हे पैसा! हे पैसा! गर्दै उत्तम पदार्थहरूलाई ट्वाल्ट्वाल्ती हेरिरहन्छ कि हाय! मसँग पनि धन भएको भए म पनि यस उत्तम पदार्थको भोग गर्ने थिएँ॥ १॥ किनकि सबैजना जुन सोह्र कलायुक्त अदृश्य भगवान्को कथन गर्दछन् त्यो त देखिंदैन, तर सोह्र आना र पैसा, कौडीरूपी अंश, कलायुक्त रूपैयाँ नै साक्षात् भगवान् हो। यसकारण सबै काम रूपैयाँबाटै सिद्ध हुनेहुँदा सबैजना रूपैयाँकै खोजीमा लागिरहन्छन्॥ २॥

जिज्ञासु—ठीक छ। तिम्रो भित्री मनसाय प्रष्ट भयो। तिमीले खडा गरेको यो सबै पाखण्ड तिम्रो आफ्नै निजी सुखका लागि रहेछ। तर यसमा जगत्को नाश हुन्छ। किनकि सत्योपदेशबाट संसारलाई फाइदा हुने भए जस्तै असत्योपदेशले नोक्सानी हुन्छ। तिम्रो मुख्य प्रयोजन धन नै हो भने नोकरी र व्यापार आदि कर्म गरेर धन–संग्रह

किन गर्दैनौ?

मतवादी—त्यसमा परिश्रम धेरै गर्नुपर्दछ र नोक्सानी पनि हुनसक्तछ। यता हाम्रो यस लीलामा भने सदा–सर्वदा फाइदै–फाइदा भैरहन्छ, हानि–नोक्सानी कहिल्यै हुँदैन। हेर, तुलसीदल हालेर, चरणामृत दिएर, कण्ठी बाँधेर चेलो बनाएपछि जन्मभर पशुसरह हुन्छ, अनि आफूले चाहेबमोजिम चलायो, चल्नसक्तछ।

जिज्ञासु—यिनीहरू तिमीलाई धेरैजसो धन किन दिन्छन्?

मतवादी—धर्म, स्वर्ग र मुक्तिका लागि।

जिज्ञासु—तिमी आफैं मुक्त होइनौ र मुक्तिको स्वरूप र साधन पनि जान्दैनौ भने तिम्रो सेवा गर्नेलाई के मिल्ला र?

मतवादी—यस लोकमा पाइन्छ र? पाइँदैन। तर मरेपछि परलोकमा प्राप्त हुन्छ। यिनीहरू हामीलाई जे जति दिन्छन्, अथवा सेवा गर्दछन्, यिनीहरूलाई त्यो सबै परलोकमा प्राप्त भैहाल्दछ।

जिज्ञासु—यिनीहरूले दिएको त पाउँछन् वा पाउँदैनन्। तिमीहरू लिनेलाई चाहिं के मिल्नेछ? नरक अथवा अरू केही?

मतवादी—हामी भजन गर्नेगर्दछौं। यसको सुख हामीले पाउँनेछौं।

जिज्ञासु—तिम्रो भजन त धनका लागि नै हो। त्यो सबै धन यहीं छुट्नेछ र यहाँ जुन मांसपिण्डलाई पालिरहेछौ त्यो पनि भस्म भएर यहीं रहनेछ। तिमीले परमेश्वरको भजन गर्ने गरेका भए तिम्रो आत्मा पनि पवित्र हुने थियो।

मतवादी—के हामी अशुद्ध छौं त?

जिज्ञासु—भित्रबाट साह्रै फोहोरी छौ।

मतवादी—तिमीले कसरी जान्यौ?

जिज्ञासु—तिम्रा चाल–चलन–व्यवहारबाट।

मतवादी—महात्माहरूका व्यवहार हात्तीका दाँत जस्तै हुन्छन्। जसरी हात्तीका दाँत खाने र देखाउने भिन्नाभिन्नै हुन्छन्, त्यस्तै हामी भित्रबाट पवित्र छौं र बाहिरबाट लीलामात्र गर्दछौं।

जिज्ञासु—तिमी भित्रबाट शुद्ध भएका भए तिम्रा बाहिरी काम पनि शुद्ध हुन्थे। अत: भित्र पनि मैला छौ।

मतवादी—हामी जस्तासुकै भए पनि हाम्रा चेला त ठिकै छन्।

जिज्ञासु—जस्ता तिमी गुरु छौ, त्यस्तै तिम्रा चेला पनि होलान्।

मतवादी—एकमत कहिल्यै हुनै सक्तैन, किनकि मानिसका गुण–कर्म–स्वभाव भिन्नभिन्नै हुन्छन्।

जिज्ञासु—बाल्यावस्थामा एकनास शिक्षा, सत्यभाषण आदि धर्मको ग्रहण र मिथ्याभाषण आदि अधर्मको त्याग गरेमा एकमत अवश्य हुनेछ। अनि दुईमत अर्थात् धर्मात्मा र अधर्मात्मा सधैं रहन्छन्, ती रहून्। तर धर्मात्मा बढी र अधर्मी कम हुनाले संसारमा सुख बढ्दछ तथा अधर्मी धेरै हुनाले भने दुःख बढ्दछ। सबै विद्वान्हरूले एकनास उपदेश गरेमा एकमत हुनमा कति पनि ढिलो हुने थिएन।

मतवादी—हिजोआज कलियुग छ। सत्ययुगका कुरा न खोज।

जिज्ञासु—कलियुग नाम कालको हो। काल निष्क्रिय हुनाले कुनै धर्म वा अधर्म गर्नमा साधक-बाधक हुँदैन। तर तिमीहरू नै कलियुगका मूर्त्ति बनेका छौ। मानिस नै सत्ययुग वा कलियुगरूप नभए संसारमा कोही पनि धर्मात्मा वा अधर्मात्मा हुँदैनन्। यी सबै संगतका गुण-दोष हुन्, स्वाभाविक होइनन्।

यति भनेर जिज्ञासु 'आप्त' पुरुषका समीप गयो। तीसँग भन्यो—महाराज! तपाईं मेरो उद्धार गर्नुभयो। नत्र म पनि कसैको जालमा फँसेर नष्ट-भ्रष्ट हुनेथिएँ। अब म पनि यी पाखण्डीहरूको खण्डन र वेदोक्त सत्यमतको मण्डन गर्नेछु।

आप्त—सबै मानिसलाई सत्यको मण्डन र असत्यको खण्डन पढेर, सुनाएर सत्योपदेशद्वारा उपकार पुर्याउनु नै सबै मानिसको खासगरी विद्वान् र सन्यासीहरूको काम हो।

प्रश्न—ब्रह्मचारी-संन्यासी त ठीक छन् होइन?

उत्तर—यी आश्रम त ठीक हुन्, तर हिजो आज यिनमा पनि धेरैजसो गडबडी छ। धेरैले नाम त ब्रह्मचारी राख्तछन् र झूट-मूट जटा बढाएर सिद्ध बन्दछन् र जप-पुरश्चरण आदिमा फँसिरहन्छन्। जुन मुख्य कारणले ब्रह्मचारी नाम हुन्छ त्यो विद्या पढ्ने नाम पनि लिंदैनन्। ती ब्रह्म अर्थात् वेदपढ्नमा अलिकति पनि परिश्रम नगर्नेहरूको 'ब्रह्मचारी' नाम बाख्राको गलाको स्तनजस्तै निरर्थक हुन्छ। अनि त्यस्तै विद्याहीन, दण्ड-कमण्डलु बोकेर भिक्षा माँग्दै डुल्ने, वेदमार्गको केही पनि उन्नति नगर्ने, सानै उमेरमा संन्यास लिएर घुम्ने तथा विद्याभ्यास नगर्ने 'संन्यासी' नामधारी पनि त्यस्तै हुन्। यस्ता ब्रह्मचारी र सन्यासी यताउति जल-स्थल-पाषाण आदि मूर्त्तिहरूको दर्शन-पूजा गर्दै फिर्दछन्, विद्या जानेर पनि चुप रहन्छन्, टन्न खाएर-पिएर एकान्त ठाउँमा पल्टिरहन्छन्, ईर्ष्या-द्वेषमा फँसेर निन्दा कुचेष्टा गरेर निर्वाह गर्दछन्, रङ्गाएका काषाय वस्त्र धारण र दण्डग्रहणमात्रबाट आफूलाई कृतकृत्य

सम्झन्छन् र सर्वोत्कृष्ट जानेर पनि उत्तम काम गर्दैनन्। यस्ता संन्यासी पनि संसारमा व्यर्थै बस्तछन्। अनि सब जगत्को हित साधनमा लाग्नेहरू भने ठीक छन्।

प्रश्न—गिरी, पुरी, भारती आदि गुसाईंहरू त ठीक होलान्? किनकि मण्डली बनाएर यताउति घुम्दछन्। सयौं साधुहरूलाई आनन्द गराउँदछन् र सर्वत्र अद्वैतमतको उपदेश गर्दछन्। अनि केही पढाउने पनि गर्दछन्। यसकारण ती त ठिकै होलान्?

उत्तर—यी सबै दसनाम पछि कल्पना गरिएका हुन्, सनातन होइनन्। तिनका मण्डली भोजनका लागि मात्र हुन्छन्, धेरैजसो साधु भोजनकै निम्ति मण्डलीमा बस्तछन्। दम्भी=घमण्डी पनि छन्, किनकि एउटालाई महन्त बनाएर सायंकालमा तिनमा मुख्य महन्त गद्दीमा बस्तछ। सबै ब्राह्मण र साधु उभिएर हातमा फूल लिएर—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्० ॥

इत्यादि श्लोक पढेर 'हर-हर' बोलेर तीमाथि पुष्पवर्षा गरेर साष्टाङ्ग नमस्कार गर्दछन्। यसो नगर्नेले त्यहाँ त्यहाँ बस्न पनि कठिन हुन्छ। यो दम्भ दुनियाँलाई देखाउन र जगत्मा प्रतिष्ठा भएर माल मिलोस् भन्ने ध्येयले गर्दछन्। धेरै मठधारी गृहस्थ भएर पनि संन्यासको अभिमान गर्दछन्, कर्म केही गर्दैनन्। संन्यासीका काम-कर्त्तव्य पाँचौं समुल्लासमा लेखिएबमोजिम हुनुपर्दछ। त्यसो नगर्नेहरू भने व्यर्थै समयमात्र खेर फाल्दछन्। कसैले राम्रो उपदेश गर्यो छ भने यिनीहरू त्यसका पनि विरोधी हुन्छन्। यिनीहरू धेरैजसो रुद्राक्षधारण गर्दछन् र कुनै-कुनै शैव सम्प्रदायको घमण्ड गर्दछन्। अनि कुनै बेला शास्त्रार्थ गर्नुपरेमा आफ्नो मत अर्थात् शङ्कराचार्योक्त मतको स्थापना र चक्राङ्कित आदिको खण्डनतर्फ लाग्दछन्। वेदमार्गको उन्नति र समस्त पाखण्डमार्गको खण्डनतर्फ लाग्दैनन्। यी संन्यासीहरू 'हामीलाई खण्डन-मण्डनसँग के प्रयोजन छ र? हामी त महात्मा हौं' भन्ठान्दछन्। यस्ता व्यक्ति पनि संसारमा भाररूप नै हुन्।

यस्तो हुनाले नै वेदमार्ग विरोधी वाममार्ग आदि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढे र अझै बढिरहेछन्। अनि यी वेदमार्गी आर्यहरूको नाश हुँदैगइरहेछ, तापनि यिनका आँखा उघ्रँदैनन्। कहाँबाट आँखा खुलून् र? उनका मनमा परोपकार-बुद्धि र कर्त्तव्यकर्म गर्नमा उत्साह भए न हो? तर यिनीहरू त आफ्नै प्रतिष्ठा, खान-पानका

अगाडि अरू केही पनि बढी आवश्यक ठान्दैनन् र संसारको निन्दादेखि डराउँदछन्। अनि **लोकैषण**=लोकमा प्रतिष्ठा, **वित्तैषणा**=धन बढाउन तर्फ लागेर विषयभोग र **पुत्रैषणा**=सन्तानजस्तै शिष्यहरूप्रति मोहित हुनु, यी तीन एषणा=इच्छालाई त्याग्नु उचित हुन्छ। जबसम्म यी एषणा नै छुट्टैनन् भने कसरी संन्यास हुनसक्तछ ? अर्थात् **पक्षपातरहित भएर वेदमार्गको उपदेशद्वारा जगत्को कल्याण गर्नमा रातदिन लागिरहनु संन्यासीहरूको मुख्य काम हो।** आ–आफ्ना अधिकार र कर्त्तव्यलाई पूर्ण गर्दैनन् भने संन्यास आदि नाम राख्नु व्यर्थै हुन्छ। नत्र भने व्यवहार र स्वार्थका कार्यमा जसरी गृहस्थ परिश्रम गर्दछन्, तीभन्दा बढी परिश्रम परोपकार गर्नमा संन्यासीले पनि तत्पर रहनुपर्दछ। अनिमात्र सबै आश्रम उन्नतितर्फ लाग्दछन्।

हेर, तिम्रा अगाडि पाखण्डमत बढ्दै गइरहेछन्। ईसाई, मुसलमान पनि बनिरहेछन्। तिमी भने आफ्नो घरको रक्षा र अरूलाई मिलाउन अलिकति पनि केही गर्न सक्तैनौ ? चाहे न सक्ने त हो, चाहँदै नचाहिकन कसरी सक्ने ? जबसम्म वर्त्तमान र भविष्यमा संन्यासी उन्नतिशील हुँदैनन्, तबसम्म आर्य्यावर्त्त र अरू देशका मानिसहरूको उन्नति हुँदैन। उन्नतिका कारण= वेदादि सत्यशास्त्रको पठन–पाठन, ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमको यथावत् अनुष्ठान, सत्य उपदेश आदि भएमा मात्र देशको उन्नति हुन्छ।

अझै पनि चेत ! धेरैजसो पाखण्डका कुरा तिमीहरूलाई सच्चाजस्ता लाग्दछन्। जस्तै कुनै दुकानदारी गर्ने साधु पुत्र आदि दिने सिद्धका कुरा गर्दछ र त्यसका समीप धेरैजसो महिलाहरू पुग्दछन्। हात जोरेर पुत्र माग्दछन्। अनि बाबाजी सबैलाई पुत्र हुने आशीर्वाद दिन्छ। तिनमा जस–जसको छोरा जन्मिन्छ, तिनीहरू बाबाजीका आसिकले यसो भएको भन्ठान्दछन्। तिनीहरूसँग 'सुँगुर, कुकुर, गधा र कुखुरा आदिका बालबच्चा कुन बाबाजीका आसिकले जन्मिन्छन्' भनी सोध्नुपर्दछ। अनि केही पनि उत्तर दिन सक्नेछैनन्। कसैले 'म बच्चालाई बचाइराख्न सक्तछु' भन्छ भने ऊ आफैं किन मर्दछ त ?

धेरै धूर्त्तहरूले रचेका मायाबाट ठूला–ठूला बुद्धिमान् पनि धोका खान्छन्। जस्तै—धनसारीका ठग। यिनीहरू पाँच–सातजना मिलेर टाढा–टाढाका ठाउँमा पुग्दछन्। शरीर तथा जीउडालमा राम्रोलाई सिद्ध बनाउँदछन्। धनवान् भएका गाउँ वा सहरको नजिकको वनमा त्यस कथित सिद्धलाई बसाउँदछन्। उसका साथी बस्तीमा गएर अनजान

बनेर जो कोहीसँग 'यता कतै तिमीले यस्ता महात्मा देखेका छौ ?' भनी सोद्धछन्। यो सुनेर त्यो गाउँले—'ती महात्मा को र कस्ता छन् ?' भनी सोद्धछ।

साधक भन्दछन्—बडो सिद्ध पुरुष हुन् ती। मनका कुरा बताइदिन्छन्। मुखबाट जे भन्दछन्, त्यही हुन्छ। ठूला योगिराज हुन्। उनको दर्शनका लागि हामी घरबार छोडेर खोज्दै फिरिरहेछौं। मैले कसैबाट ती महात्मा यतै आएका छन् भन्ने सुनेको थिएँ, आदि।

गृहस्थ भन्दछन्—'तिमीले ती महात्मालाई भेट्टायौ भने मलाई पनि भन ल। म पनि दर्शन गरेर मनका कुरा सोध्नेछु।' यसैगरी दिनभरी गाउँसहरमा घुमेर सबैसँग त्यसै सिद्धका कुरा गरेर रात्रिमा सिद्ध–साधक सबै जम्मा भएर खान्छन्–पिउँछन्, सुत्छन्। बिहान फेरि त्यसैगरी गएर दुईतीन दिनसम्म यस्तै प्रचार गरेर ती चारै साधक प्रत्येक एक–एक धनवान् व्यक्तिकहाँ गएर 'ती महात्माजीको पत्तो लाग्यो। तिमीलाई दर्शन गर्नुछ भने हिंड' भन्दछन्। ती हिंड्न तैयार भएपछि ती त्यस धनवान्सँग 'तिमी के सोध्न चाहान्छौ ? भन त' भन्दछन्। कोही पुत्रको इच्छा गर्दछ, कोही धनको, कोही रोग निको हुने कुरा सोध्न चाहन्छ भने कोहो शत्रुलाई जित्न चाहन्छ। तिनलाई ती साधक लैजान्छन्। सिद्ध–साधकले मिलेर अघिदेखि नै गरेको सल्लाहअनुसार गर्दछन्। जस्तै—धन चाहनेलाई दायाँतर्फ, पुत्र चाहनेलाई अगाडि, रोग निको पार्न चाहनेलाई देब्रेतर्फ र शत्रुमाथि विजय चाहनेलाई पछाडिबाट लगेर त्यहाँ बसेकाहरूको बीचमा बसाल्दछन्। नमस्कार गर्ने बेलामा त्यो सिद्ध आफ्नो सिद्धिको चमत्कार देखाउने सानका साथ बडो उच्च स्वरमा 'हामीसँग के यहाँ छोरा राखिएका छन् र ? छोराको इच्छाले यहाँ आइस् ?' भन्दछ। त्यस्तै धन चाहनेसँग—'यहाँ के थैली राखिएका छन्, जो धनको इच्छाले आइस् ? फकीरसँग कहाँ धन रहन्छ र ?' रोगीसँग—'हामी के चिकित्सक हौं र ? तँ रोग छुटाउन यहाँ आइस् ? हामी वैद्य होइनौं, अतः तेरो रोग छुटाउन सक्तैनौं, कुनै वैद्यकहाँ जा' आदि भन्दछ। तर त्यसको बाबु रोगी छ भने त्यसको साधक औंठो, आमा रोगी भए चोर औंलो, दाजुभाइ रोगी भए माझी औंलो, पत्नी रोगी भए साहिंली औंलो र छोरी रोगी भए कान्छी औंलाको संकेत गर्दछ। त्यसलाई देखेर त्यो 'सिद्ध तेरो बाबु रोगी छ अथवा तेरी आमा, तेरा दाजुभाइ, तेरी पत्नी र तेरी छोरी रोगी छ, भनिदिन्छ। अनि त ती चारै गाउँले बडो मोहित हुन्छन्। साधकहरू तीसँग—'हेर, हामीले

भनेकै जस्ता रहेछन् वा रहेनछन्?' भन्दछन्।

गृहस्थ भन्दछन्—हो, तिमीले भनेकै जस्ता रहेछन्। तिमीले हाम्रो ठूलो उपकार गर्यौ र हाम्रो पनि भाग्योदय रहेछ र यस्ता महात्मा भेट्टिए र यिनको दर्शन गरेर हामी कृतार्थ भयौं।

साधक भन्दछ—सुन, यी महात्मा मनोगामी छन्। यहाँ धेरै दिन बस्तैनन्। यिनको केही आसिक लिनुछ भने आ–आफ्नो सामर्थ्यअनुसार तन–मन–धनले यिनको सेवा गर। किनकि सेवा गरेरै मेवा प्राप्त हुन्छ। कसैमाथि प्रसन्न भए भने नजाने के वर दिने हुन्? सन्तहरूको गति अपार हुन्छ। गृहस्थ यस्ता चिल्लोघसाइका कुरा सुनेर बड़ा खुसीसाथ तिनको प्रशंसा गर्दै घरतर्फ लाग्दछन् र पाखण्ड खुल्ला भन्ने डरले ती साधक पनि तीसँगै त्यहाँबाट हिंड्दछन्। ती धनवान्को कुनै मित्र, बन्धु–बान्धव भेटियो भने त्योसँग प्रशंसा गर्दछन्। यसैगरी साधकसँग जाने सबैको वृत्तान्त सिद्धले भनिदिन्छ। सहर वा गाउँमा 'फलाना ठाउँमा एकजना धेरै ठूला सिद्ध आएका छन्। उनको दर्शन गर्न जाऔं' भन्ने हल्ला फिंजिएपछि मानिस हुलकाहुल त्यहाँ पुगेर धेरै जनाले 'आफ्ना मनको वृत्तान्त' सोध्न थालेपछि व्यवस्था बिग्रनाले सिद्ध चुप लागेर मौन धारण गर्दछ र 'हामीलाई धेरै दुःख नदेओ' भन्दछ। अनि तुरुन्तै साधक पनि 'तिमीहरूले यिनलाई धेरै सतायौ भने यी यहाँबाट जानेछन्' भन्न थाल्दछन्। अनि कुनै धनाढ्यले साधकलाई छुट्टै बोलाएर 'हाम्रा मनको कुरा भनाउन सक्तछौ भने हामी सत्य मानौं' भन्दा साधक 'के कुरा हो?' भनी सोद्धछ। धनवान् उसलाई भन्दछ। अनि त्यसलाई त्यसै तरिकाले संकेतपूर्वक लगेर बसाल्दछ। त्यसलाई बुझेर सिद्ध तुरुन्तै भनिहाल्दछ। अनि त मेला लगाएका सबैले भन्दछन् कि अहा! धेरै ठूला सिद्ध पुरुष रहेछन्। कसैले मिठाई, कसैले पैसा, कसैले रूपैयाँ, कसैले असर्फी, कसैले कपडा र कसैले सिदा आदि सामान भेटी–चढाउँदछन्। अनि मान्यता रहेसम्म खूब लुट्दछन् र कोही–कोही एक दुई जना धन भैकनका अन्धालाई पुत्र हुने आशीर्वाद वा खरानी उठाएर दिन्छ र तीसँग हजार रुपैयाँ लिएर 'तेरो भक्ति सच्चा रहेछ भने छोरो जन्मिनेछ' भन्दछ। यस्ता धेरै ठग हुन्छन्। यस्ताको परीक्षा विद्वान्ले नै गर्नसक्तछन्, अरूले सक्तैनन्।

यसकारण वेदादि विद्या पढ्नु र सत्संग गर्नु आवश्यक हुन्छ। जसबाट कसैले उसलाई ठगाइमा फँसाउन नसकोस् र अरूलाई पनि बचाउन सकोस्। किनकि विद्या नै मानिसका सच्चा आँखा हुन्। विद्या–

शिक्षाविना ज्ञान हुँदैन। बाल्यावस्था देखि नै शिक्षा प्राप्त गर्ने व्यक्ति नै मनुष्य र विद्वान् हुन्छन्। कुसंगतमा परेका व्यक्ति भने दुष्ट, पापी, महामूर्ख भएर ठूला–ठूला दुःख पाउँछन्। यसैकारण जस्तो जानेकोछ, त्यस्तै मान्नु नै ज्ञानविशेष भनिन्छ।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्त्ति गुञ्जाः॥

यो कुनै कविको (वृद्धचाणक्य ११।१२) श्लोक हो। जो जसको गुणको बारेमा जान्दैन। त्यो निरन्तर त्यसको निन्दा गर्दछ। जस्तै जङ्गली भील गजमुक्तलाई छोडेर रातीगेडीको माला लगाउँदछ। त्यस्तै विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक, सत्पुरुषको संगत गर्ने, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील व्यक्ति नै धर्म, अर्थ, काम, मोक्षलाई प्राप्त गरेर यस जन्म र परजन्ममा सदा आनन्दित रहन्छ।

यो आर्यावर्त्त निवासीहरूका बारेमा संक्षेपमा लेखियो। यसपछि आर्य राजाहरूको संक्षिप्त इतिहास प्राप्त भएअनुसार सबै सज्जनहरूको जानकारिका लागि प्रकाशित गरिन्छ।

अब श्रीमान् महाराज 'युधिष्ठिर' देखि महाराज 'यशपाल' सम्मका आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशको इतिहास लेखिन्छ। श्रीमान् महाराज 'स्वायंभुवमनुजी' देखि महाराजा 'युधिष्ठिर' सम्मको इतिहास महाभारत आदिमा लेखिएकै छ। यसबाट त्यसपछिको केही इतिहासको स्थिति सबै सज्जनवृन्दलाई अवगत हुनेछ। यद्यपि यो विषय विद्यार्थी सम्मिलित श्रीनाथद्वाराबाट निस्कने र राजपूताना देश मेवाडराज उदयपुर चित्तौडगढमा सबैलाई विदित पाक्षिक पत्र **'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका'** र **'मोहनचन्द्रिका'** बाट हामीले अनुवाद गरेको हो। यसैगरी हाम्रा आर्यसज्जनहरूले इतिहास र विद्याका पुस्तकहरूको खोज गरेर प्रकाशित गरेमा देशलाई ठूलो फाइदा हुनेछ।

त्यस पत्रका सम्पादकले संवत् १७८२ साल वि० (वि० सं० सत्र सय बयासी) मा लेखिएको एउटा प्राचीन पुस्तक आफ्ना एकजना मित्रबाट प्राप्त गरेर आफ्ना संवत् १९३९ शुक्लपक्ष १९–२० किरण अर्थात् दुई पाक्षिक पत्रमा छापेका छन्। यसलाई निम्न अनुसार जान्नुपर्दछ—

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली

श्रीमन्महाराज 'यशपाल' सम्म इन्द्रप्रस्थमा आर्यहरूले राज्य गरे। यिनमा श्रीमन्महाराजा 'युधिष्ठिर' देखि महाराजा 'यशपाल' सम्म वर्ष

४१५७, महिना ९, दिन १४ मा अनुमानित वंश अर्थात् पुस्ता १२४ (एक सय चौबीस) राजा भएका छन्। यिनको व्यहोरा—

राजा	**पुस्ता**	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजा युधिष्ठिर आदिको वंश अनुमानत: पुस्ता ३०, वर्ष १७७०, महीना ११, दिन १०। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५
२. राजा परीक्षित	६०	०	०
३. राजा जनमेजय	८४	७	२३
४. राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५. द्वितीयराम	८८	२	८
६. छत्रमल	८१	११	२७
७. चित्ररथ	७५	३	२४
८. दुष्टशैल्य	७५	१०	१४
९. राजा उग्रसेन	७८	७	२१
१०. राजा शूरसेन	७८	७	२१
११. भुवनपति	६९	५	५
१२. रणजीत	६५	१०	४
१३. ऋक्षक	६४	७	४
१४. सुखदेव	६२	०	२४
१५. नरहरिदेव	५१	१०	[illegible]
१६. सुचिरथ	४२	११	२
१७. शूरसेन (दोस्रा)	५८	१०	८
१८. पवर्तसेन	५५	८	१०
१९. मेधावी	५२	१०	१०
२०. सोनचीर	५०	८	२१
२१. भीमदेव	४७	९	२०
२२. नृहरिदेव	४५	११	२३
२३. पूर्णमल	४४	८	७
२४. करदवी	४४	१०	८
२५. अलंमिक	५०	११	८
२६. उदयपाल	३८	९	०

२७. दुवनमल	४०	१०	२६
२८. दमात	३२	०	०
२९. भीमपाल	५८	५	८
३०. क्षेमक	४८	११	२१

राजा क्षेमकका प्रधान विश्रवाले क्षेमकराजालाई मारेर राज्य गरे। यिनको वंश चौध पुस्ताक, पाँच सय वर्ष, तीन महीना र सत्र दिन सम्म चल्यो। यिनको विस्तार—

आर्याराजा	**वर्ष**	**मीहना**	**दिन**
१. विश्रवा	१७	३	२९
२. पुरसेनी	४२	८	२१
३. वीरसेनी	५२	१०	७
४. अनङ्गशायी	४७	८	२३
५. हरिजित	३५	९	१७
६. परमसेनी	४४	२	२३
७. सुखपाताल	३०	२	२१
८. कद्रुत	४२	९	२४
९. सज्ज	३२	२	१४
१०. अमरचूड	२७	३	१६
११. अमीपाल	२२	११	२५
१२. दशरथ	२५	४	१२
१३. वीरसाल	३१	८	११
१४. वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेनालाई मुखिया वीरमहाले मारेर राज्य गरे। सोह्र पुस्ता, चारसय पैंतालिस वर्ष, पांच महीना र तीन दिन यिनको वंश चल्यो। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. राजावीरमहा	३५	१०	८
२. अजितसिंह	२७	७	१९
३. सर्वदत्त	२८	७	१०
४. भुवनपति	१५	४	१०
५. वीरसेन	२१	२	१३
६. महीपाल	४०	८	७
७. शत्रुशाल	२६	४	३

८. संघराज	१७	२	१०
९. तेजपाल	२८	११	१०
१०. माणिकचन्द	३७	७	२१
११. कामसेनी	४२	५	१०
१२. शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३० जीवन लोक	२८	९	१७
१४. हरिराव	२६	१०	२९
१५. वीरसेन (द्रोस्रा)	३५	२	२०
१६. आदित्यकेतु	२३	११	१३

मगध देशका राजा आदित्यकेतुलाई 'धन्धर' नामक प्रयागका राजाले मारेर राज्य गरे। नौ पुस्ता, तीनसय चौहत्तर वर्ष, एघार महीना र छब्बीस दिन यिनको वंश चल्यो। यिनको विवरण—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. राजा धन्धर	४२	७	२४
२. महर्षि	४१	२	२९
३. सनरच्ची	५०	१०	१९
४. महायुद्ध	२०	३	८
५. दुरनाथ	२८	५	२५
६. जीवनराज	४५	२	५
७. रुद्रसेन	४७	४	२८
८. आरीलक	५२	१०	८
९. राजपाल	३६	०	०

राजा राजपाललाई सामन्त महान्पालले मारेर राज्य गरे। पुस्ता एक, वर्ष चौध, महीना शून्य र दिन शून्य। यिनको विस्तार छैन।

राजा महान्पालको राज्यमाथि 'अवन्तिका' (उज्जैन) बाट राजा विक्रमादित्यले लड़ाईं गरेर राजा महान्पाललाई मारेर राज्य गरे। पुस्ता एक, वर्ष तिरान्नब्बे, महीना शून्य, दिन शून्य। यिनको विस्तार छैन।

शालिवाहनका उमराव समुद्रपाल योगी पैठणकाले राजा विक्रमादित्यलाई मारेर राज्य गरे। सोह्र पुस्ता, तीन समय बहत्तर वर्ष, चार महीना र सत्ताईस दिन। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महिना**	**दिन**
१. समुद्रपाल	५४	२	२०
२. चन्द्रपाल	३६	५	४

३. सहायपाल	११	४	११
४. देवपाल	२७	१	२८
५. नरसिंहपाल	१८	०	२०
६. सामपाल	२७	१	१७
७. रघुपाल	२२	३	२५
८. गोविन्दपाल	२७	१	१७
९. अमृतपाल	३६	१०	१३
१०. बलीपाल	१२	५	२७
११. महीपाल	१३	८	४
१२. हरीपाल	१४	८	४
१३. सीसपाल	११	१०	१३

(कुनै इतिहासमा भीमपाल पनि लेखिएको छ)

१४. मदनपाल	१७	१०	१९
१५. कर्मपाल	१६	२	२
१६. विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपालले पश्चिम दिशाका राजा मलुखचन्द बोहरा माथि चढाई गरेर लडाईँ गरे। यस युद्धमा मलुखचन्दले विक्रमपाललाई मारेर इन्द्रप्रस्थको राज्य गरे दश पुस्ता, एकसय एकन्नब्बे वर्ष, एक महीना र सोह्र दिन यिनको वंश चल्यो। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महिना**	**दिन**
१. मलुखचन्द	५४	२	१०
२. विक्रमचन्द	१२	७	१२
३. अमीनचन्द	१०	०	५

(कतै यिनको नाम मानकचन्द पनि लेखिएको छ।)

४. रामचन्द	१३	११	८
५. हरीचन्द	१४	९	२४
६. कल्याणचन्द	१०	५	४
७. भीमचन्द	१६	२	९
८. लोवचन्द	२६	३	२२
९. गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१०. रानी पद्मावती	१	०	०

(पद्मावती गोविन्दचन्दकी रानी थिइन्।)

रानी पद्मावतीको छोरा नभएकोले यिनी मरेपछि सबै मुत्सद्दीहरूले

सल्लाह गरेर हरिप्रेम वैरागीलाई गद्दीमा बसालेर मुत्सद्दीहरूले राज्य गर्नथाले। चार पुस्ता, पचास वर्ष र एक्काईस दिन यो राज्य चल्यो। हरिप्रेमको वंशविस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. हरिप्रेम	७	५	१६
२. गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३. गोपालप्रेम	१५	७	२८
४. महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोडेर वनमा तपश्चर्या गर्न गए। यो कुरा थाहा पाएर बंगालका राजा आधीसेनले इन्द्रप्रस्थमा आएर आफैं राज्य गर्न थाले। पुस्ता बाह्र, वर्ष एकसय एकाउन्न, महीना एघार, दिन हुई। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. राजा आधीसेन	१८	५	२१
२. विलावसेन	१२	४	२
३. केशवसेन	१५	७	१२
४. माधवसेन	१२	४	२
५. मयूरसेन	२०	२१	२७
६. भीमसेन	५	१०	९
७. कल्याणसेन	४	८	२१
८. हरीसेन	१२	०	२५
९. क्षेमसेन	८	११	१५
१० नारायणसेन	२	२	२९
११. लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२. दामोदरसेन	११	५	१९

राजा दामोदरसेनले आफ्ना उमरावलाई धेरै दुःख दिएकाले तिनका उमराव दीपसिंहले सेना बनाएर राजासँग लडाइँ गरे। त्यस युद्धमा राजालाई मारेर दीपसिंहले आफैं राज्य गर्न थाले। पुस्ता छ, वर्ष एकसय सात, महीना छ र दिन बाईस। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. दीपसिंह	१७	१	२६
२. राजसिंह	१४	५	०
३. रणसिंह	९	८	११

४. नरसिंह	४५	०	१५
५. हरिसिंह	१३	२	२९
६. जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंहले केही खास कारणले आफ्नो सबै सेना उत्तरतर्फ पठाएका थिए। यो कुरा थाहापाएर वैराटका राजा पृथ्वीराज चह्वाणले जीवनसिंहमाथि हमला गरेर युद्धमा जीवनसिंहलाई मारेर इन्द्रप्रस्थको राज्य गरे। पुस्ता पाँच, वर्ष छयासी, महीना शून्य, दिन बीस। यिनको विस्तार—

आर्यराजा	**वर्ष**	**महीना**	**दिन**
१. पृथ्वीराज	१२	२	१९
२. अभयपाल	१४	५	१७
३. दुर्जनपाल	११	४	१४
४. उदयपाल	११	७	३
५. यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपालमाथि सुलतान शहाबुद्दीन गौरीगढ गजनीबाट हमला गरेर आयो र राजा यशपाललाई प्रयागको किल्लामा संवत् १२४९ सालमा समातेर कैदी बनायो। पछि इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्लीको राज्य सुल्तान शहाबुद्दीनले आफैं गर्न थाल्यो। सुल्तान शहाबुद्दीन लगायतका मुसलमानहरूको शासन त्रिपन्न पुस्ता, सातसय पैंतालीस वर्ष, एक महीना र सत्र दिनसम्म चल्यो। यिनको विस्तृत विवरण इतिहासका धेरै पुस्तकहरूमा उपलब्ध हुनाले यहाँ नलेखेको हो।

यसपछि बौद्धजैनमत विषयमा लेखिने छ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आर्य्यावर्त्तीयमतखण्डन-मण्डनविषय एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

अनुभूमिका (२)

आर्यावर्त्तका मानिसहरूमा सत्य र असत्यको यथावत् निर्णय गराउने वेदविद्या छुट्नाले अविद्या फैलिएर मतमतान्तर खडा हुनु नै जैन आदिका विद्याविरुद्ध मत प्रचारको कारण बनेको हो। किनकि वाल्मीकीय र महाभारत आदिमा जैनीहरूको नाममात्र पनि छैन। उता जैनीहरूका ग्रन्थमा वाल्मीकीय र महाभारतमा कथित 'राम, कृष्ण' आदिको गाथा विस्तारपूर्वक उपलब्ध हुन्छ। यसबाट 'यो मत यिनको पछि चलेको हो' भन्ने बुझिन्छ। किनकि जैनीहरूका अनुसार यिनीहरूको मत धेरै प्राचीन भएको भए तिनको कथा वाल्मीकीय रामायण आदि ग्रन्थमा अवश्य हुन्थ्यो। यसकारण जैनमत यी ग्रन्थभन्दा पछि चलेको हो।

कसैले 'जैनीहरूका ग्रन्थहरूका कथालाई नै आधार बनाएर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बनेका हुन्' भन्छ बने त्योसँग 'वाल्मीकीय आदिग्रन्थमा तिम्रा ग्रन्थका नाम पनि किन छैन? र तिम्रा ग्रन्थमा किन यी ग्रन्थका नाम छन्? के छोराले बाबु जन्मेको देख्नसक्तछ?' भनी सोध्नुपर्दछ। यसबाट जैन–बौद्धमत शैव, शाक्त आदि मतपछि चलेको हो भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

अब यस बाह्रौं समुल्लासमा जैनीहरूका मतको वारेमा लेखिएका कुरामा उनका ग्रन्थहरूको ठेगाना समेत लेखिएको छ। यसमा जैनीहरूले नराम्रो मान्नु उचित होइन, किनकि यिनको वारेमा मैले लेखेका कुरा विरोध वा हानिको लागि नभई सत्य र असत्यको निर्णयका निमित्त हो। यो लेख हेर्ने अवसर जैनी, बौद्ध वा अरूलाई प्राप्त हुँदा सबैलाई सत्य र असत्यको निर्णयमा विचार गर्ने र लेख्ने समेत अवसर प्राप्त हुनेछ र बोध पनि हुनेछ। वादीप्रतिवादी भएर प्रीतिपूर्वक छलफल र लेखपढ नगरिएसम्म सत्य र असत्यको निर्णय हुनसक्तैन।

विद्वान्हरूमा सत्य र असत्यको निश्चय नहुँदा अविद्वान्हरूले महाअन्धकारमा परेर धेरै दु:ख उठाउनुपर्दछ। यसकारण सत्यको विजय र असत्यको नाशका लागि मित्रतापूर्वक वाद अर्थात् छलफल र लेखपढ गर्नु हामी मनुष्यजातिको मुख्य काम हो। यसो न भएमा मानिसको उन्नति कहिल्यै हुनेछैन।

अनि यो बौद्ध–जैनमतको विषय यी बाहेक अरू मतावलम्बी–हरूका लागि अपूर्व लाभ र बोध गराउने हुनेछ। किनकि यिनीहरू आफ्ना पुस्तक अरू कुनै मतावलम्बीलाई हेर्न, पढ्न वा लेख्न दिंदैनन्।

ठूलो परिश्रमले मेरो र खासगरी आर्यसमाज मुम्बईका मन्त्री सेठ सेवकलाल कृष्णदासको पुरुषार्थवाट ग्रन्थ प्राप्त भएका छन्। काशीको 'जैन प्रभाकर' यन्त्रालयमा ग्रन्थ छापिनाले र मुम्बईमा 'प्रकरणरत्नाकर' ग्रन्थ छापिनाले पनि सबैलाई जैनीहरूको मत बुझ्न सजिको भएको छ।

आफ्नो मतको पुस्तक आफैं हेर्नु र अरूलाई नदेखाउनु पनि कुनै विद्वान्को काम हो र? यसैबाट यी ग्रन्थ बनाउनेहरूलाई 'यी ग्रन्थमा असम्भव कुरा छन्' भन्ने शंका पहिल्यै थियो भन्ने बुझिन्छ। अरू मतावलम्बीले हेरे भने खण्डन गर्नेछन्, अनि आफ्ना मतावलम्बीले अरुका ग्रन्थ हेरे भने यस मत प्रति श्रद्धा रहनेछैन भन्ने कारणले नै यसो गरेका हुन्। जे होस्! तर धेरै मानिस आफ्ना दोष चाहिं नहेर्ने, अरूका दोष देख्नमा भने धेरै उत्सुकतापूर्वक सदा लागेका हुन्छन्। यो न्यायको कुरा होइन। किनकि पहिले आफ्ना दोष हेरेर निकालेर अनि अरूका दोष तर्फ ध्यान दिएर हटाउनुपर्दछ। अब यी बौद्ध–जैनीका मतको विषय सबै सज्जन सामु राख्तछु। जस्तो छ त्यस्तै विचार गर्नुहोला।

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु।

अथ द्वादश–समुल्लासः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाक–बौद्ध–जैनमतखण्डन–मण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

वेद, ईश्वर र यज्ञ आदि उत्तमकर्मलाई पनि नमान्ने एउटा कुनै बृहस्पति नामक पुरुष थियो। हेर, तिनको मत—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

मनुष्य आदि कुनैपनि प्राणी मृत्युबाट अप्राप्य छैन अर्थात् सबैले मर्नै पर्छ। यसकारण शरीरमा जीव रहेसम्म सुखपूर्वक बाँच्नुपर्दछ। कसैले 'अधर्माचरणबाट कष्ट हुन्छ, धर्म छोडेमा पुनर्जन्मा ठूलो कष्ट भोग्नुपर्दछ' भनेमा 'चारवाक' यस्तो उत्तर दिन्छ—**वाः सज्जनमित्र!** जुन शरीरद्वारा खाने–पिउने आदि भोग गरेको हो त्यो त मरेपछि भस्म भैहाल्दछ, त्यो फेरि संसारमा आउने छैन, यसकारण जसरी भएपनि आनन्दपूर्वक बस्नुपर्दछ, सुख भोग्नुपर्दछ। संसारमा नीतिपूर्वक हिंड, ऐश्वर्य बढाऊ र त्यसबाट इच्छानुसार भोग गर। जे छ यही लोक छ परलोक भन्ने केही होइन।

हेर! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु यी चार भूतको परिणामबाट यो शरीर बनेको छ। यसमा यिनैको योगले चैतन्य उत्पन्न हुन्छ। मादक द्रव्य खाने–पिउने गर्नाले मद=नशा उत्पन्न भएजस्तै जीव शरीरसँग उत्पन्न भएर शरीरको नाशसँगै स्वयं पनि नष्ट हुन्छ। अनि पाप–पुण्यको फल कसले पाऊँछ र?

तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा,
देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्॥

यस शरीरमा चारै भूतको संयोगबाट जीवात्मा उत्पन्न भएर तिनको वियोगसँगै नष्ट हुन्छ, किनकि मरेपछि कुनैपनि जीव प्रत्यक्ष हुँदैन। प्रत्यक्ष नभई अनुमान आदि हुनै नसक्ने हुँदा हामी एउटा प्रत्यक्षलाई मात्र मान्दछौं। मुख्य प्रत्यक्षका सामु अनुमान आदि गौण हुनाले तिनको ग्रहण गर्दैनौं। सुन्दर स्त्रीको आलिङ्गनबाट आनन्द लिनु पुरुषार्थको फल हो।

उत्तर—यी पृथ्वी आदि भूत जड हुन्। तीबाट कहिल्यै चेतनको उत्पत्ति हुनसक्तैन। अहिले आमा–बाबुका संयोगबाट शरीरको उत्पत्ति भएजस्तै आदिसृष्टिमा कर्त्ता परमेश्वरविना मनुष्य आदि शरीरका आकृति बन्नैसक्तैनन्। मद=नशाजस्तै चेतनको उत्पत्ति र विनाश हुँदैन, किनकि नशा चेतनलाई हुन्छ, जड़लाई हुँदैन। पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट हुन्छन्, तर कुनै पदार्थको अभाव हुँदैन। यस्तै अदृश्य हुनाले जीवको पनि अभाव मान्नुहुँदैन। जीवात्मा सदेह हुँदा ऊ प्रकट रूपमा रहन्छ। जीवले शरीरलाई छोडेपछि यो मृत शरीर पहिले जस्तै चेतनयुक्त हुनसक्तैन। यहीकुरा बृहदारण्यकमा भनिएको छ—

नाहं मोहं ब्रवीमि अनुच्छित्तिधर्मायमात्मेति॥

—बृ० उ० ४।५।१४

याज्ञवल्क्य भन्दछन्, हे मैत्रेयि! म मोहले कुरा गर्दिन तर आत्मा अविनाशी छ जसको सम्पर्कबाट शरीर चेष्टा गर्दछ। जीव शरीरबाट छुट्टिएपछि शरीरमा केही पनि ज्ञान रहँदैन। आत्मा देहभन्दा छुट्टै नभएको भए त्यसको संयोगबाट चेतनता र वियोगबाट जड़ता हुने थिएन। जीवको संयोग र वियोगबाट शरीर चेतन र जड़ हुने हुनाले जीव शरीरभन्दा पृथक् छ। आँखाले सबैलाई देख्ने तर आफूलाई देख्न नसक्ने भए जस्तै प्रत्यक्ष गर्नेले आफूलाई ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष गर्न सक्तैन। आफ्ना आँखाबाट सबै घट, पट आदि पदार्थ देखेजस्तै आँखालाई आफ्नो ज्ञानबाट देख्तछ। द्रष्टा द्रष्टा नै रहन्छ, कहिल्यै दृश्य हुनसक्तैन। आधार न भई आधेय, कारण न भई कार्य, अवयवी न भई अवयव र कर्त्ता न भई कर्म रहन नसक्ने जस्तै कर्त्ता न भई प्रत्यक्ष कसरी हुनसक्तछ र?

सुन्दर स्त्रीसँग समागम गर्नुलाई नै पुरुषार्थको फल मान्दछौ भने क्षणिक सुख र त्यसबाट दुःख पनि हुन्छ, त्यो पनि पुरुषार्थकै फल हुनेछ। यसो हो भने स्वर्गकै हानि हुनाले दुःख भोग्नुपर्नेछ। दुःख छुटाउन र सुख बढाउन प्रयत्न गर्नुपर्दछ भन्छौ भने मुक्तिसुखको हानि हुन्छ, यसकारण त्यो पुरुषार्थको फल होइन।

चारवाक—दुःख मिसिएको सुखको त्याग गर्नेहरू मूर्ख हुन्। चामल चाहनेले धानबाट चामल लिएर भुस–ढुटोलाई त्यागेजस्तै संसारमा बुद्धिमान्ले सुखलाई ग्रहण गर्नु र दुःखलाई त्याग्नुपर्दछ। किनकि यसै लोकमा उपलब्ध सुखलाई छोडेर अनुपस्थित स्वर्गको सुखको इच्छा गरेर परलोकका निम्ति धूर्तहरूले बताएका वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कर्म, उपासना र ज्ञानकाण्डको अनुष्ठान गर्नेहरू अज्ञानी हुन्। जब

परलोक छँदैछैन भने त्यसको आशा गर्नु मूर्खताको काम हो। किनकि—

> **अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।**
> **बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥**

चारवाकमतप्रचारक बृहस्पतिको भनाइमा अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड र भस्म लगाउने काम बुद्धि र पुरुषार्थ नभएकाहरूले आफ्नो जीविका बनाएका छन्। वास्तवमा काँडा बिक्नु आदिबाट उत्पन्न हुने दुःखको नाम नरक, लोक सिद्ध राजा परमेश्वर र शरीरको नाश हुनु नै मोक्ष हो, अरू केही पनि होइन।

उत्तर—विषयरूपी सुखमात्रलाई पुरुषार्थको फल मानेर विषयदुःखनिवारणमात्रमा कृतकृत्यता र स्वर्ग मान्नु मूर्खता हो। अग्निहोत्र आदि यज्ञहरूद्वारा वायु, वृष्टि, जलको शुद्धिद्वारा आरोग्यता र त्यसबाट धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको सिद्धि हुन्छ। त्यसलाई नसम्झेर वेद, ईश्वर र वेदोक्त धर्मको निन्दा गर्नु धूर्तहरूको काम हो।

त्रिदण्ड र भस्मधारणको खण्डन भने ठीक छ। यदि काँडा बिझ्नाले हुने जस्ता दुःखकै नाम नरक हो भने त्योभन्दा भढी महारोग आदि नरक किन होइन?

यद्यपि राजालाई ऐश्वर्यवान् र प्रजापानमा समर्थ हुनाले श्रेष्ठ मानेमा ठिकै छ तर अन्यायकारी, पापी राजा भएमा त्यसलाई पनि परमेश्वर जस्तै मान्दछौ भने तिमी जस्तो मूर्ख कोहीपनि होइन। शरीर छुट्नुको नाम नै मोक्ष हो भने गधा, कुकुर आदि र तिमीमा के फरक रह्यो त? आकार–अनुहारमात्र फरक रहनेछ। चारवाक—

> **अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।**
> **केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः॥ १॥**
> **न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।**
> **नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥ २॥**
> **पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।**
> **स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥ ३॥**
> **मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।**
> **गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥ ४॥**
> **स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।**
> **प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते॥ ५॥**
> **यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**
> **भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागनं कुतः॥ ६॥**

> **यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।**
> **कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः॥ ७॥**
> **ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।**
> **मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्॥ ८॥**
> **त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।**
> **जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥ ९॥**
> **अश्वस्या हि शिश्नन्तु पत्नीग्राहं प्रकीर्तितम्।**
> **भण्डैस्तद्वपरं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम्॥ १०॥**
> **मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥ ११॥**

चारवाक, आभाणक, बौद्ध र जैन पनि जगत्को उत्पत्ति स्वाभाविक मान्दछन्। जुन–जुन स्वाभाविक गुण छन् ती–तीसँग द्रव्य संयुक्त भएर सबै पदार्थ बन्दछन्। जगत्को कर्त्ता कोही छैन॥ १॥

यी मध्ये चारवाकको यो मत हो र यिनमा पनि बौद्ध, जैन परलोक र जीवात्मालाई मान्दछन्, चारवाक भने त्यो पनि मान्दैनन्। बाँकी यी तिनैको मत कुनै–कुनै कुरा बाहेक एकनासै छ। न कुनै स्वर्ग, न नरक, न परलोकमा जाने कुनै आत्मा छ र वर्णाश्रमको क्रिया पनि फलदायक होइन॥ २॥

यज्ञमा पशुलाई मारेर होम गर्नाले त्यो पशु स्वर्ग जाँदो हो भने यजमान आफ्ना पिता आदिलाई मारेर होम गरेर स्वर्ग किन पठाउँदैन?॥ ३॥

श्राद्ध र तर्पणबाट मरेका जीव तृप्त हुन्छन् भने परदेश जाने व्यक्ति मार्गमा आफ्नो निर्वाह निम्ति अन्न, वस्त्र, धन आदि पदार्थ किन लैजान्छन्? किनकि मृतकका नामबाट अर्पण गरिएको पदार्थ स्वर्गमा पुगेजस्तै परदेश जानेहरूका निम्ति पनि त्यस्ताका सम्बन्धीहरूले पनि घरैमा उनका नामबाट अर्पण गरेर अर्को ठाउँ=बटुवाभएको टाउँमा पुर्‍याए भैहाल्दछ नि। यो त पुग्दैन भने त्यो स्वर्गमा कसरी पुग्नसक्तछ?॥ ४॥

मर्त्यलोकमा दान गर्नाले स्वर्गवासी तृप्त हुन्छन् भने घरको भुइँतल्लामा दान गर्नाले माथिल्लो तल्लामा बस्ने व्यक्ति किन तृप्त हुँदैनन्?॥ ५॥

यसकारण बाँचुञ्जेल सुखपूर्वक बाँच्नुपर्दछ। कुनै पदार्थ घरमा छैनभने ऋण लिएर आनन्द मनाउनुपर्दछ। ऋण फर्काउनुपर्ने छैन किनकि जुन शरीरमा जीवले खाएको–पिएको छ ती दुबैको फेरि आगमन

हुनेछैन अनि कोसँग कसले मांग्ने छ र कसले दिनेछ ? ॥ ६ ॥

मर्दा बखत जीव शरीरबाट निस्केर परलोक जान्छ भन्ने कुरा मिथ्या हो, किनकि यसो हुनेभए त्यो जीव घर-परिवारको मोहमा आबद्ध भएर फेरि घरैमा किन फर्कदैन ? ॥ ७ ॥

यसकारण यो सबै ब्राह्मणहरूले आफ्नो जीविकाको उपाय मिलाएका हुन्। दशगात्र आदि मृतकक्रिया पनि तिनकै जीविकाको लीला हो ॥ ८ ॥

वेद बनाउनेहरू भाँड, धूर्त र निशाचर अर्थात् राक्षस यी तीन हुन्। 'जर्फरी' 'तुर्फरी' इत्यादि पण्डितहरूका धूर्ततायुक्त वचन हुन ॥ ९ ॥

धूर्तहरूको रचना त हेर! घोडाको लिङ्गलाई स्त्रीले समात्नु अरे! उसको समागम यजमानकी पत्नीसँग गराउनु अरे! कन्यासँग हाँसो-ठट्टा आदि गर्ने आदि कुरा लेख्ने धूर्तबाहक अरू हुनसक्तैन ॥ १० ॥

अनि मासु खाने विधान रहेको वेदभाग राक्षसले बनाएको हो ॥ ११ ॥

उत्तर—चेतन परमेश्वरले निर्माण नगरी जड पदार्थ स्वयं परस्पर स्वभावैले नियमपूर्वक मिलेर उत्पन्न हुनसक्तैनन्। यसकारण सृष्टिको कर्ता अवश्य हुनुपर्दछ। स्वभावैले उत्पन्न हुने भए अर्का सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी र नक्षत्र आदि लोक आफैं किन बन्दैनन् ? ॥ १ ॥

सुख भोगलाई स्वर्ग र दुःख भोगलाई नरक भनिन्छ। जीवात्मा नभए सुख-दुःखको भोक्ता को हुनसक्ने छ ? जसरी यसबखत सुख-दुःखको भोक्ता जीव छ, त्यस्तै परजन्ममा पनि हुन्छ। के वर्णाश्रममा रहनेहरूका सत्यभाषण, परोपकार आदि क्रिया पनि निष्फल हुनेछन् ? होइन, यस्तो कहिल्यै हुँदैन ॥ २ ॥

पशुलाई मारेर होम गर्ने कुरा वेदादि सत्यशास्त्रमा कतै पनि लेखिएको छैन र मृतकको श्राद्ध, तर्पण पनि कपोलकल्पित हो। भागवतादि पुराणीहरूको यो मत वेदादिसत्यशास्त्रको विरुद्ध हुनाले यी कुराको खण्डन अखण्डनीय छ अर्थात् उक्त कुरा खण्डन गर्न योग्य नै हुन् ॥ ३-५ ॥

भएको वस्तुको अभाव कहिल्यै हुँदैन। विद्यमान जीवको अभाव हुनैसक्तैन। देह भस्म हुन्छ, जीव हुँदैन। जीव त अर्को शरीरमा जान्छ। यसकारण कसैले ऋण आदि गरेर अर्काका पदार्थबाट यस लोकमा भोगेर फर्काउँदैनन् भने ती निश्चित रूपमा पापी भएर अर्कोजन्ममा दुःखरूपी नरक भोग्दछन् भन्ने कुरामा केही पनि शंकै छैन ॥ ६ ॥

जीव शरीरबाट निस्केर अर्को ठाउँ र शरीर प्राप्त गर्दछ तथा उसलाई पूर्वजन्म र कुटुम्ब आदिको केही पनी ज्ञान रहँदैन। यसकारण फेरि कुटुम्बमा फर्कनसक्तैन ॥ ७ ॥

हँ, प्रेतकर्म ब्राह्मणहरूले आफ्नो जीविकाको निम्ति बनाएका हुन्, तर वेदोक्त नहुनाले यो कुरा खण्डनीय हो ॥ ८ ॥

अब भन त ! चारवाक आदिले वेदादि सत्यशास्त्रलाई देखे-सुनेका भए वा पढेका भए वेदको निन्दा कहिल्यै गर्ने थिएनन् र कहिल्यै वेदलाई भाँड, धूर्त तथा निशाचर जस्ता व्यक्तिले बनाएको भन्ने थिएनन्। हँ, महीधर आदि टीकाकार भाँड, धूर्त र निशाचर जस्तै भए। तिनकै धूर्तता हो, वेदको होइन। तर चारवाक, आभाणक, बौद्ध र जैनीहरूप्रति दुःख छ कि यिनीहरूले चार वेदका मूल संहितालाई पनि कहिल्यै सुनेनन्, हेरेनन् र कुनै विद्वान्बाट पढेनन्। यसैकारण बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट भएर वेदको ऊटपटांग निन्दा गर्नथाले। दुष्ट वाममार्गीहरूको प्रमाणरहित, कपोलकल्पित, भ्रष्ट टीकाहरूलाई हेरेर वेदका विरोधी भएर अविद्यारूपी अथाह समुद्रमा परे ॥ ९ ॥

स्त्रीलाई घोडाको लिङ्ग समात्न लगाएर ऊसँग समागम गराउनु र यजमानकी छोरीसँग हाँसो-ठट्टा गर्न वाममार्गीहरूबाहेक अरू मानिसको काम होइन भन्ने कुरा विचारणीय छ। यी महापापी वाममार्गीबाहेक भ्रष्ट, वेदार्थ विपरीत र अशुद्ध कुरा कसले गर्ने थियो र ? धेरै दुःख त यी चारवाक आदि प्रति छ कि विचारै नगरी वेदको निन्दा गर्नथाले। अलिकति त आफ्नो बुद्धिबाट काम लिएका भए हुन्थ्यो। के गरौं, ती विचरामा सत्यासत्यको विचार गरेर सत्यको मण्डन र असत्यको खण्डन गर्न पुग्ने विद्या नै थिएन ॥ १० ॥

अनि मासू खाने भन्ने कुरा पनि ती वाममार्गी टीकाकार कै लीला हो, यसकारण तिनलाई नै राक्षस भन्नु उचित हो। तर वेदमा कतै पनि मांसभक्षण नलेखिएको हनाले मिथ्या कुराको पाप ती टीकाकारहरूलाई र वेदलाई नजानी, नसुनी मनमाना निन्दागर्नेहरूलाई अवश्य लाग्नेछ। सत्य त के हो भने जजसले वेदको विरोध गरे, गर्दैछन् र गर्नेछन्, ती अवश्य अविद्यारूपी अन्धकारमा परेर सुखको सट्टा जति दारुण दुःख पाउने छन्, त्यति नै कम हुने छ। यसकारण मानवमात्रले वेदानुकूल चल्नु समुचित हुन्छ ॥ ११ ॥

वाममार्गीहरूले कपोलकल्पना गरेर वेदका नामबाट आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्न अर्थात् इच्छानुसार मद्यपान, मांसभक्षण र परस्त्रीगमन आदि

दुष्टकर्म गर्नका निम्ति वेदमा कलङ्क लगाए। यिनै कुरालाई देखेर चारवाक, बौद्ध तथा जैनहरूले वेदको निन्दा गर्नथाले र एउटा छुट्टै वेदरुविद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चलाए। चारवाक आदिले वेदको मूल अर्थ विचारेका भए झूठा टीकालाई हेरेर सत्य वेदोक्त मतबाट किन वञ्चित हुने थिए र? के गरौं? '**विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**' नष्ट–भ्रष्ट हुने समय आए पछि मानिसको बुद्धि उल्टो हुन्छ।

अब चारवाक अदिमा जुन भिन्नता छ त्यो लेखिन्छ। यो चारवाक आदि धेरै कुराहरूमा एउटै छन्, तर चारवाक शरीरको उत्पत्तिसँगै जीवको उत्पत्ति र शरीरको नाशसँगै जीवको पति नाश मान्दछ। पुनर्जन्म र परलोकलाई पनि मान्दैन। एउटा प्रत्यक्ष प्रमाण बाहेक अनुमान आदि प्रमाणहरूलाई पनि मान्दैन। चारवाक शब्दको अर्थ 'बोल्नमा प्रगल्भ' र विशेष अर्थ 'वैतण्डिक' हुन्छ। अनि बौद्ध, जैन प्रत्यक्ष आदि चार प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक र मुक्तिलाई पनि मान्दछन्। चारवाकदेखि बौद्ध र जैनीहरूको भिन्नता यति नै हो, तर नास्तिकता, वेद, ईश्वरको निन्दा, अरूको मतप्रति द्वेष, छ यतना र जगत्‌को कर्त्ता कोही छैन आदि कुरामा सबै एकमत छन्। यो चारवाकको मत संक्षेपमा देखाइयो। अब बौद्धमतको विषयमा संक्षेपमा लेखिन्छ—

कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात्।
अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनात्॥ १॥

कार्यकारणभाव अर्थात् कार्यलाई देखेर कारण र कारणलाई देखेर कार्य आदिको साक्षात्कार प्रत्यक्षबाट शेषमा अनुमान हुन्छ। यो न भई प्राणीहरूका सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ण हुनसक्तैनन्, इत्यादि लक्षणद्वारा अनुमानलाई बढी मानेर चारवाकभन्दा भिन्न शाखा बौद्धहरूको भएको हो। बौद्ध चार प्रकारका छन्—

पहिला '**माध्यमिक**', दोस्रा '**योगाचार**', तेस्रा '**सौत्रान्तिक**' र चौथा '**वैभाषिक**'।'**बुद्ध्या निवर्त्तते स बौद्धः**' बुद्धिद्वारा सिद्ध अर्थात् जुन जुन कुरा आफ्नो बुद्धिमा आउँछ, त्यस–त्यसलाई मान्ने र जुन जुन बुद्धिमा आउँदैन त्यस–त्यसलाई नमान्नेलाई '**बौद्ध**' भनिएको छ।

यिनमा पहिला '**माध्यमिक**' सर्वशून्य मान्दछन्। अर्थात् जति पनि पदार्थ छन्, ती सबै शून्य अर्थात् आदिमा थिएनन्, अन्तमा रहँदैनन्, मध्यमा प्रतीतहुने पनि प्रतीति समयमा मात्र छ, पछि शून्य हुनेछ। जस्तै उत्पन्न हुनु अघि घैंटो थिएन, प्रध्वंस=नाश पछि रहनेछैन र

घटज्ञान समयमा भासित हुन्छ तथा अर्को पदार्थमा ज्ञान जानाले घटज्ञान रहँदैन। यसकारण शून्य नै एउटा तत्व छ।

दोस्रा '**योगाचार**' बाह्यशून्यलाई मान्दछन् अर्थात् पदार्थ भित्र ज्ञानमा भासित हुन्छन्, बाहिर हुँदैनन्। जस्तै घटज्ञान आत्मामा छ, अनि त मानिस 'यो घैंटो हो' भन्दछ, भित्र ज्ञान नभए यसो भन्नसक्तैन भन्ने योगाचारको मत हो।

तेस्रा '**सौत्रान्तिक**' बाहिर अर्थको अनुमान मान्दछन् किनकि कुनै पदार्थ सांगोपांग प्रत्यक्ष हुँदैन तर एकदेश प्रत्यक्ष हुनाले बाँकी भागमा अनुमान गरिन्छ। सौक्रान्तिकको यस्तो मत छ।

चौथा '**वैभाषिक**' को विचार पदार्थ बाहिर प्रत्यक्ष हुन्छ भित्र हुँदैन भन्ने छ। जस्तै '**अयं नीलो घटः**' यस प्रतीतिमा नीलयुक्त घैंटोको आकृति बाहिर प्रतीत हुन्छ, भन्ने मत 'वैभाषिक' को छ।

यिनीहरूका प्रवर्तक आचार्य 'बुद्ध' एउटै भएतापनि शिष्यहरूको बुद्धिभेदले चार प्रकारका शाखा भएका हुन्। जस्तै सूर्य्यास्त हुँदा जादाँ पुरुषले परस्त्रीगमन, चोरले चोरी र विद्वान्‌ले सत्यभाषण आदि श्रेष्ठकर्म गर्ने समय भएको सोच्दै सोही अनुसार गर्दछन्, एउटै समय भए तापनि आ–आफ्नो बुद्धि अनुसार भिन्न–भिन्नै चेष्टा गर्दछन्, त्यस्तै यिनीहरूका चार शाखा भएका हुन्।

अब यी चारैमा '**माध्यमिक**' सबैलाई क्षणिक मान्दछन्, अर्थात् क्षण–क्षणमा बुद्धिको परिणाम हुनाले पूर्वक्षणमा ज्ञात वस्तु अर्को क्षणमा त्यस्तै रहँदैन। यसकारण सबैलाई क्षणिक मान्नुपर्दछ भन्ने माध्यमिकको मान्यता छ।

दोस्रा '**योगाचार**' का अनुसार प्राप्तिमा कोही पनि सन्तुष्ट नरहने हुँदा प्रवृत्ति जति सबै दुःखरूप छ। एउटा प्राप्त हुँदा अर्कोको इच्छा रहिनै रहन्छ।

तेस्रा '**सौत्रान्तिक**' को मतमा सबै पदार्थ आ–आफ्ना लक्षणद्वारा लक्षित हुन्छन्। गाईका चिन्हले गाईको र घोड़ाका चिन्हले घोड़ाको ज्ञान भएजस्तै लक्ष्यमा लक्षण सबै रहन्छन्।

चौथा '**वैभाषिक**' शून्यलाई नै एउटा पदार्थ मान्दछन्। पहिला माध्यमिकले सबैलाई शून्य मानेजस्तै वैभाषिको पनि पक्ष छ। इत्यादि बौद्धहरूमा धेरैजसो विवाद पक्ष छन्। यसरी यिनीहरू चार प्रकारको भावना मान्दछन्।

उत्तर—सबै शून्य हो भने शून्यलाई जान्ने शून्य हुनसक्तैन र सबै

शून्य हूँदा शून्यले शून्यलाई जान्नसक्तैन। यसकारण शून्यको ज्ञाता र ज्ञेय दुई पदार्थ सिद्ध हुन्छन्। अति बाह्य शून्यत्व मान्ने योगाचारको भित्र पर्वत हुनुपदर्छ। पर्वत भित्र छ भनेमा त्यसको हृदयमा पर्वतजस्तो अवकाश कहाँ छ? यसकारण बाहिर पर्वत छ र पर्वतज्ञान आत्मामा रहन्छ।

सौत्रान्तिक कुनै पदार्थलाई प्रत्यक्ष मान्दैन भने ऊ आफू स्वयं र उसको कुरा पनि प्रत्यक्ष नभई अनुमेय हुनुपर्दछ। प्रत्यक्ष नभए '**अयं घटः**', 'यो घैंटो हो' यस्तो प्रयोग पनि हुनुहुँदैन तर '**अयं घटैकदेशः** 'यो घैंटोको एउटा ठाउँ हो'भन्दा घैंटोको बोध हुनेछैन, किनकि एउटा ठाउँ को नाम 'घैंटो' नभई समुदायको नाम 'घैंटो' हो। 'यो धैंटो हो' यो प्रत्यक्ष छ, अनुमेय होइन किनकि सबै अवयवहरूमा अवयवी एउटा छ। त्यो प्रत्यक्ष हुनाले घैंटोका सबै अवयव पनि प्रत्यक्ष हुन्छन् अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष हुन्छ।

चौथा '**वैभाषिक**' ले बाह्य पदार्थहरूलाई प्रत्यक्ष मान्नुपनि ठीक होइन। किनकि ज्ञाता र ज्ञान भएमा नै प्रत्यक्ष हुन्छ, अर्थात् आत्मामा सबैको प्रत्यक्ष हुन्छ। यद्यपि प्रत्यक्षको विषय बाहिर हुन्छ तर तदाकार ज्ञान आत्मलाई हुन्छ। त्यस्तै क्षणिक पदार्थ र त्यसको ज्ञान क्षणिक भए '**प्रत्यभिज्ञा**' अर्थात् 'मैले त्यो कुरा गरेको थिएँ' यस्तो स्मरण नहुनुपर्ने हो तर अघि देखे-सुनेकाको स्मरण हुन्छ, यसकारण क्षणिकवाद पनि ठीक होइन। सबै दुःखमात्र भएर केही पनि सुख हुँदै नभए सुखको अपेक्षा बिना दुःख सिद्ध हुनसक्तैन। रात्रिको अपेक्षाले दिन र दिनको अपेक्षाले रात्रि भएजस्तै सबै दुःख मान्नु उचित होइन। स्वलक्षण नै माने पनि नेत्ररूपको लक्षण हो र रूप लक्ष्य हो जस्तै घैंटोको रूप। घैंटोको रूपको लक्षण लक्ष्य चक्षुभन्दा भिन्नै हुन्छ र गन्ध पृथ्वीभन्दा अभिन्न छ। यसैगरी भिन्नाऽभिन्न लक्ष्यलक्षण मान्नुपर्दछ। शून्यको उत्तर अघि दिइसकिएको छ, अर्थात् शून्यलाई जान्ने शून्यभन्दा भिन्नै हुन्छ।

सर्वस्व संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थङ्करसंम्मतम्॥

बौद्धले मानेकै तीर्थङ्करलाई जैनीले पनि मान्ने हुँदा यी दुबै एउटै हुन्। अनि पूर्वोक्त भावनाचतुष्टय अर्थात् चार भावनाबाट सकल वासनाहरूको निवृत्तिद्वारा शून्यरूप निर्वाण, अर्थात् मुक्ति मान्दछन्। अफ्ना शिष्यलाई योग र आचारको उपदेश गर्दछन्। गुरुको वचनको प्रमाण मान्नुपर्दछ भन्दछन्। अनादि बुद्धिमा वासना हुनाले बुद्धि नै अनेक आकारमा भासित हुन्छ र चित्तचैत्तात्मक स्कन्ध पाँच किसिमको

मान्दछन्—

रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः॥

तिनमा पहिले-इन्द्रियहरूबाट रूप आदि विषयको ग्रहण गरिने '**रूपस्कन्ध**', दोस्रो-आलय-विज्ञान प्रवत्तिलाई जान्नुरूपी व्यवहार '**विज्ञानस्कन्ध**', तेस्रो-रूपस्कन्ध र विज्ञानस्कन्धबाट उत्पन्न भएको सुख, दुःख आदि प्रतीतिरूप व्यवहार 'वेदनास्कन्ध', चौथो—गौ आदि संज्ञाको सम्बन्ध नाभीसँग मान्नुरूपी 'संज्ञास्कन्ध' र पाँचौं—वेदनास्कन्धबाट राग-द्वेष क्लेश, भोक-तिर्खा आदि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म र अधर्मरूप व्यवहार '**संस्कारस्कन्ध**' मान्दछन्। सब संसारमा दुःखरूप दुःखको घर दुःखको साधनरूप भावना गरेर संसारबाट छुट्नु, चारवाकभन्दा बढी मुक्ति र अनुमान तथा जीवलाई नमान्नु नै बौद्धहरूको मत हो।

देशना लोकनाथनां सत्त्वाशयवशानुगाः।
भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल॥ १॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा।
भिन्ना हि देशनाऽभिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा॥ २॥

द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्धा मन्यन्ते—

अर्थानुपापाद्य बहुशो द्वादशायतनानि वै।
परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः॥ ३॥
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः॥ ४॥

अर्थात् ज्ञानी, विरक्त, जीवन्मुक्त, लोकहरूका नाथ बुद्ध आदि तीर्थंकरका पदार्थका स्वरूपलाई जान्ने, भिन्न-भिन्न पदार्थहरूको उपदेशक, धेरैजसो भेद र धेरैजसो उपायद्वारा बताइएका कुरा मान्नुपर्दछ॥ १॥ बडो गम्भीर र प्रसिद्ध भेदबाट कतै-कतै गुप्त र प्रकटताले अघि भनिएका शून्यलक्षणयुक्त भिन्न-भिन्न गुरुका उपदेशलाई मान्नुपर्दछ॥ २॥ द्वादशायतन पूजाले नै मोक्ष प्राप्त हुन्छ। त्यस पूजाको लागि धेरैजसो द्रव्यादि पदार्थरूलाई प्राप्त गरेर द्वादशायतन, अर्थात् बाह्र किसिमका स्थानविशेष बनाएर सबै प्रकारले पूजा गर्नपर्दछ, अरूको पूजा गर्नाले के प्रयोजन?॥ ३॥ यिनीहरूको द्वादशायतन पूजा यो हो—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, अर्थात् कान, छाला, आँखा, जिब्रो र नाक, पाँच कर्मेन्द्रिय, अर्थात् वाणी, हात, गोडा, गुह्य र उपस्थ, यी दश इन्द्रियहरू र मन, बुद्धि, यिनैको सत्कार, अर्थात् यिनलाई आनन्दमा लगाइराख्नु

इत्यादि बौद्धको मत हो।

उत्तर—सब संसार दुःखरूप भएको भए कुनै जीवको प्रवृत्ति नहुनुपर्दछ। संसारमा जीवहरूको प्रवृत्ति प्रत्यक्ष देखिन्छ, यसकारण सब संसार दुःखरूप हुनसक्दैन। तर यसमा सुख–दुःख दुबै छन्। अनि बौद्धहरू यस्तै सिद्धान्त मान्दछन् भने खान–पान आदि गर्न तथा पथ्य र औषधि आदि सेवन गरेर शरीरको रक्षा गर्नमा लागेर सुख किन मान्दछन्? 'हामी प्रवृत्त त हुन्छौं तर यसलाई दुःख नै मान्दछौं' भन्दछन् भने यो कथन सम्भव हुनसक्तैन, किनकि जीव सुख सम्झेर लाग्ने र दुःख सम्झेर हट्नेगर्दछ। संसारमा धर्मकर्म, विद्या, सत्संग आदि श्रेष्ठ व्यवहार सबै सुखकारक छन्। यिनलाई बौद्ध बाहेक कुनै पनि विद्वान्ले दुःखको लिंग=चिह्न मान्नसक्तैन। पाँच स्कन्ध पनि पूर्ण अपूर्ण छन्, किनकि यस्ता यस्ता स्कन्धको विचार गर्न थालेमा एक एकका अनेक भेद हुनसक्तछन्। जुन तीर्थंकरलाई उपदेशक र लोकनाथ मान्ने र नाथहरूको पनि नाथ अनादि परमात्मालाई नमान्ने कुरामा पनि ती तीथङ्करले कोबाट उपदेश पाए? भन्ने शङ्का हुन्छ। 'आफैं प्राप्त भयो' भनेमा यस्तो कथन सम्भव हुँदैन, किनकि कारण नभई कार्य हुनसक्दैन। अथवा उनैको कथन अनुसार यस्तै हुँदो हो भने अब पनि तिनीहरूमा पढ्ने–पढाउने, सुन्ने–सुनाउने र ज्ञानीहरूको सत्संग नगरी ज्ञानी किन हुँदैनन्? जब हुँदैनन् भने यस्तो कथन सर्वथा निर्मूल र युक्तिशून्य तथा मानिसले बर्बराउनु जस्तै हो।

शून्यरूप नै अद्वैत उपदेश बौद्धहरूको हो भने विद्यमान वस्तु कहिल्यै शून्यरूप हुनसक्तैन। हँ, सूक्ष्म कारणरूप त हुन्छ। यसकारण यो कथन पनि भ्रमपूर्ण छ। द्रव्यको उपार्जनबाटै पूर्वोक्त द्वादशायतन–पूजालाई मोक्षको साधन मान्दछन् भने दश प्राण र एघारौं जीवात्माको पूजा किन गर्दैनन्? इन्द्रिय र अन्तःकरणको पूजा पनि मोक्षप्रदायक हो भने यी बौद्धहरू र विषयी व्यक्तिहरूमा के फरक रह्यो त? तीबाट यी बौद्ध पनि बच्न सकेनन् भने त्यहाँ मुक्ति पनि कहाँ रह्यो त? जहाँ यस्ता कुरा छन्, त्याहाँ मुक्तिको के काम?

यिनीहरूले आफ्नो अविद्याको कत्ति उन्नति गरेक रहेछन्, जसको सादृश्य यिनै बाहेक अरूमा घटित हुनसक्दैन। निश्चित कुरा के देखिन्छ भने यिनीहरूलाई वेद, ईश्वरको विरोधको यही फल मिलेको हो। पहिले त सब संसारको दुःखरूपी भावना गरे, अनि बीचमा द्वादशायतन पूजा लगाए। के यिनीहरूको द्वादशायतनपूजा संसारका पदार्थहरूभन्दा

बाहिरको हो, जो मुक्ति दिने बन्न सकोस्? कसैले आँखा चिम्लेर कुनै रत्न खोज्न चाहेमा वा खोजेमा के कहिल्यै प्राप्त हुन सक्तछ? वेद, ईश्वरलाई नमान्नाले यिनीहरूको पनि यस्तै लीला भैरहेछ। अझै पनि सुख चाहेमा वेद–ईश्वरको आश्रय लिएर आफ्नो जन्म सफल पार्नुपर्दछ।

विवेकविलास ग्रन्थमा बौद्धहरूको यस किसिमको मत बताइएको छ—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम्।
आर्य्यसत्त्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्॥ १॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ २॥
दुःखसंसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च॥ ३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु॥ ४॥
रागादीनां गणोयं स्यात् समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात् समुदयः पुनः॥ ५॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते॥ ६॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा।
चतुः प्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः॥ ७॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्ष ग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः॥ ८॥
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः॥ ९॥
रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता॥ १०॥
कृत्तिः कमण्डलुमैड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।
संघो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः॥ ११॥

—विवेकविलास ८।२६५–२७५

बौद्धहरूका सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव, जगत् क्षणभंगुर, आर्यपुरुष र आर्यास्त्री तथा तत्त्वहरूको आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि, यी **'चार तत्त्व'** बौद्धहरूमा मन्तव्य पदार्थ हुन्॥ १॥, यस विश्वलाई दुःखको घर ठान्नुपर्दछ, त्यसपछि समुदाय अर्थात् उत्पत्ति हुन्छ, अनि मार्ग गरी

यिनको व्याख्या क्रमपूर्वक सुन ॥ २ ॥, संसारमा दु:ख नै छ। अघि भनिएका पाँच स्कन्धलाई जान्नुपर्दछ ॥ ३ ॥, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, उनका शब्दादि पाँच विषय र मन, बुद्धि=अन्त:करण, यी बाह्य धर्मका स्थान हुन् ॥ ४ ॥, मानिसको हृदयमा उत्पन्न हुने रागद्वेषको समूहनै **'समुदय'** हो। अनि आत्मा, आत्माका सम्बन्धी र स्वभाव नै 'आख्या' हो। यिनैबाट फेरि समुदय हुन्छ ॥ ५ ॥ सब संस्कार क्षणिक हुन्, वासना स्थिर हुनु नै बौद्धहरूको **'मार्ग'** हो। र त्यही शून्य तत्त्व शून्यरूप हुनु **'मोक्ष'** हो ॥ ६ ॥, प्रत्यक्ष र अनुमान यी दुई मात्र प्रमाण मान्दछन्। यिनमा चार किसिमका भेद छन्—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार र माध्यमिक ॥ ७ ॥, यिनमा वैभाषिक ज्ञानमा भएको अर्थलाई विद्यमान मान्दछन्। किनकि ज्ञानमा नभएको वस्तु हुने कुरालाई सिद्ध पुरुषले मान्नसक्तैन। अनि सौत्रान्तिक भित्रलाई प्रत्यक्ष पदार्थ मान्दछ, बाहिर मान्दैन ॥ ८ ॥, योगाचार आकारसहित विज्ञानयुक्त बुद्धिलाई मान्दछ र माध्यमिक आफूमा पदार्थहरूको ज्ञानमात्र मान्दछ, ऊ पदार्थहरूलाई मान्दैन ॥ ९ ॥ रागादि ज्ञानको प्रवाहको वासनाको नाशबाट उत्पन्न भएको मुक्ति चारै बौद्धहरूको लागि मान्य छ ॥ १० ॥, मृग आदिको छाला, कमण्डलु, टाउको खौरनु, बोक्राको वस्त्र, पूर्वाह्न अर्थात् नौ बज्नु अघि भोजन, एक्लै नबस्नु, राता लुगा लगाउनु यो बौद्धका साधुहरूको भेष हो ॥ ११ ॥

उत्तर—सुगत बुद्धनै बौद्धहरूका देव हुन् भने उनको गुरुको थियो? विश्व क्षणभंगुर हुन्छ भने निकै बेरदेखि हेरेकी पदार्थलाई यो त्यही हो भन्ने स्मरण नहुनु पर्दथ्यो। क्षणभंगुर भए त त्यो पदार्थ नै रहँदैन, अनि स्मरण केको रहने छ र? क्षणिकवाद नै बौद्धहरूको मार्ग हो भने यिनको मोक्ष पनि क्षणभंगुर होला? ज्ञानयुक्त अर्थ द्रव्य हो भने जड़द्रव्यमा पनि ज्ञात हुनुपर्दछ। अनि त्यो हिंडडुल आदि क्रिया केमा गर्दछ? जुन बाहिर देखिन्छ त्यो मिथ्या कसरी हुनसक्तछ? बुद्धि साकार भए त्यो देखिने हुनुपर्दछ। केवल ज्ञान नै हृदयमा आत्मस्थ हुने भए बाह्य पदार्थहरूलाई केवल ज्ञानरूप नै मानिएमा ज्ञेय पदार्थ बेगर ज्ञान हुनसक्तैन। वासनाच्छेद नै मुक्ति हो भने सुषुप्तिमा पनि मुक्ति मान्नुपर्दछ। यसो मान्नु विद्याविरुद्ध हुनाले यो कुरा तिरस्करणीय छ। इत्यादि बौद्ध मतावलम्बीहरूका कुरा संक्षेपमा प्रदर्शित गरिएका छन्। अब यिनको कस्तो विद्या र कस्तो मत छ? भन्ने कुरा बुद्धिमान् विचारशील व्यक्तिले अवलोकन गरेर जान्नेछन्। यस कुरालाई जैनीहरू

पनि मान्दछन्।

यस पछि जैनमतको वर्णन छ—

प्रकरणरत्नाकर भाग एक, नयचक्रसारमा निम्नलिखित कुरा लेखिएका छन्—

बौद्धहरू समय-समयमा नवीनपन सहित १. आकाश, २. काल, ३. जीव, ४. पुद्गल यी चार द्रव्य मान्दछन् र जैनीहरू धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय र काल यी छ द्रव्यलाई मान्दछन्। यिनमा काललाई अस्तिकाय मान्दैनन्, तर काल वस्तुत: द्रव्य नभएर उपचारले द्रव्य हो। तिनमा धर्मस्तिकाय—गतिपरिणामीपनबाट परिणामलाई प्राप्त भएको जीव र पुद्गल यसको गति को समीपबाट स्तम्भन गर्ने हेतु नै **'धर्मास्तिकाय'** हो। त्यो असंख्य प्रदेश परिमाण र लोकमा व्यापक छ; (प्र०र०पृ० १७७)। द्रोस्रो अधर्मास्तिकाय—स्थिरताले परिणामी भएका जीव र पुद्गलको स्थितिको आश्रयको हेतु **'अधर्मास्तिकाय'** हो। यो पनि असंख्य प्रदेश परिमाण र लोकमा व्यापक छ। तेस्रो आकाशास्तिकाय—सबै द्रव्यको आधार, अवगाहन, प्रवेश, निर्गम आदि क्रिया गर्ने जीव तथा पुद्गलहरूको अवगाहनको हेतु र सर्वव्यापी 'आकाशास्तिकाय' छ। चौथो पुद्गलास्तिकाय—कारणरूप सूक्ष्म, नित्य एकरस, वर्ण, गन्ध, लिङ्ग, स्पर्श, कार्यको लिङ्ग, पूर्णगर्ने र गल्ने स्वभाव भएको **'पुद्गलास्तिकाय'** हुन्छ। पाँचौं जीवास्तिकाय—चेतनालक्षण, ज्ञानदर्शनमा उपयुक्त अनन्त पर्यायहरूद्वारा परिणामी हुने कर्त्ता भोक्ता **'जीवास्तिकाय'** हो। र छैठौं काल—पूर्वोक्त पाँच अस्तिकायको परत्व, अपरत्व, नवीनता, प्राचीनता आदि चिह्नरूप प्रसिद्ध वर्तमानरूप पर्याययुक्त 'काल' भनिन्छ।

समीक्षक—बौद्धहरूले मानेका प्रति समयमा नवीन-नवीन हुने चार द्रव्य 'झूठा' हुन्, किनकि आकाश, काल, जीव र परमाणु यी कहिल्यै नयाँ वा पुराना हुनैसक्तैनन्। यी अनादि र कारणरूपले अविनाशी हुनाले यिनमा नयाँपन र पुरानापन कसरी घटित हुनसक्तछ?

अनि धर्माऽधर्म द्रव्य नभएर गुण हुनाले जैनीहरूको मान्यता पनि ठीक होइन। यी दुवै (धर्म-अधर्म) जीवास्तिकायमैपर्दछन्। यसकारण आकाश, परमाणु, जीव र काल मानेका भए ठिकै हुन्थ्यो। वास्तवमा त वैशेषिकमा बताइएका नौ द्रव्य नै ठीक हुन्, किनकि पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व, काल, दिशा, आत्मा र मन यी नौ छुट्टाछुट्टै पदार्थ निश्चित छन्।

एउटा जीवलाई चेतन मानेर ईश्वरलाई नमान्नु, यो बौद्ध–जैनीको मिथ्या पक्षपातको कुरा हो।

जैनीहरूले मानेको सप्तभंगी र स्याद्वाद यो हो—'**सन् घटः**' यसलाई प्रथमभंग बताउँछन्। किनकि घैंटो छ अर्थात् घैंटो आफ्नो विद्यमानतायुक्त छ। यसबाट अभावको विरोध भएको छ। दोस्रोभंग—**असन् घटः** घैंटो छैन। पहिलो घैंटोको भावभन्दा यस घैंटोको असद्भावबाट दूसोर भंग हो। तेस्रोभंग—'**सन्नसन् घटः**' अर्थात् यो घट तो हो तर पट होइन, किनकि ती दुबै देखि पृथक् भयो। चौथो भंग—'**घटोऽघटः**' जस्तै '**अघटः पटः**' दोस्रो पटको अभावको अपेक्षा आफैंमा हुनाले घट अघट भनिन्छ। उसका एकै साथ घट र अघट यी दुई संज्ञा वा नाम हुन्छन्। पाँचौं भंग—घटलाई पट भन्नु बेठीक अर्थात् त्यसमा घटपन वक्तव्य र पटपन अवक्तव्य हुन्छ। छैठौं भंग—जुन घट होइन त्यो भन्न योग्य पनि होइन अनि जुन त्यो घट छ त्यो भन्न योग्य पनि हुन्छ। अनि सातौं भंग—जुन भन्न योग्य छ तर त्यो होइन र भन्न योग्य पनि घट छैन। यो सप्तभंग भनिन्छ। यसैगरी—

स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भंगः ॥ १ ॥
स्यान्नास्ति जीवो द्वितीयो भंगः ॥ २ ॥
स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥
स्यादस्ति नास्तिरूपो जीवश्चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥
स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पञ्चमो भंगः ॥ ५ ॥
स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥
स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भंगः ॥ ७ ॥

अर्थात् 'जीव छ' यसोभन्दा जीवका विरोधी जड़ पदार्थहरूको जीवमा अभावरूप 'पहिलो भंग' भनिन्छ। 'जीव जडमा छैन' यसो पनि भनिन्छ, यो दोस्रो भंग भनिन्छ। 'जीव भन्न योग्य होइन' यो तेस्रो भंग हो। 'जीवले शरीर धारण गर्दा प्रसिद्ध र शरीरदेखि छुट्टिंदा अप्रसिद्ध रहन्छ' यसो भन्नु चौथो भंग भनिन्छ। 'जीव छ तर भन्न योग्य होइन' यस्तो कथनलाई पाँचौं भंग भनिन्छ। 'प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा बताउन नमिल्ने हुँदा जीव चक्षु प्रत्यक्ष छैन' यस्तो व्यवहारलाई छैठौं भंग भनिन्छ। 'एउटा समयमा जीव अनुमानद्वारा हुनु र अदृश्यपनमा नहुनु तथा एकनास नरहनु तर क्षण–क्षणमा परिणामी हुनु, अस्ति–नास्ति नहुनु तथा नास्ति अस्ति व्यवहार पनि नहुनु' सातौं भंग भनिन्छ।

यसैगरी नित्यत्व सप्तभंगी र अनित्यत्व सप्तभंगी, सामान्य धर्म,

विशेष धर्म, गुण र पर्य्यायको प्रत्येक वस्तुमा सप्तभंगी हुन्छ। त्यस्तै द्रव्य, गुण, स्वभाव र पर्याय अनन्त हुनाले सप्तभंगी पनि अनन्त हुन्छ। यस्तो जैनीहरूको स्याद्वाद र सप्तभंगी न्याय भनिन्छ।

समीक्षक—यो कथन एक अन्योन्याभावमा साधर्म्य र वैधर्म्यमा चरितार्थ हुनसक्तछ। यस सजिलो प्रकरणलाई छोडेर कठिन जाल रचना अज्ञानीहरूलाई फसाउन मात्र हुनसक्तछ। हेर, जीवको अजीवमा र अजीवको जीवमा अभाव रहन्छ नै। जस्तै जीव र जड़ विद्यमान रहँदा साधर्म्य, चेतन र जड़ हुँदा वैधर्म्य अर्थात् जीवमा चेतनत्व अस्ति=छ, र जड़त्व नास्ति=छैन। यस्तै जड़मा जड़त्व छ, चेतनत्व छैन। यसबाट गुण, कर्म, स्वभाव जस्तै समान धर्म र विरुद्ध धर्मको विचारले यिनको सब सप्तभंगी र स्याद्वाद सहजै बुझ्न सकिन्छ। अनि यति फरक हुनाले भिन्नभाव पनि हुन्छ।

अब यसपछि जैनमतको विषयमा मात्र लेखिन्छ—

चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥ १ ॥
हेयं हि कर्तृरागादि तत् कार्यमविवेकिनः।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥ २ ॥

जैनीहरू '**चित्**' र '**अचित्**' अर्थात् चेतन र जड़ यी दुई मात्र परतत्त्व मान्दछन्। ती दुवैको विवेचनलाई '**विवेक**' भनिन्छ। ग्रहणयोग्यलाई ग्रहण गर्ने र त्याग गर्न योग्यलाई त्यागनेलाई '**विवेकी**' भनिन्छ ॥ १ ॥ जगत्को कर्त्ता र राग आदि तथा ईश्वरले जगत् बनाएको हो भन्ने अविवेकी मतको त्याग र योगद्वारा लक्षित परमज्योतिस्वरूप जीवलाई ग्रहण गर्नु उत्तम कुरा हो ॥ २ ॥ अर्थात् जैनीहरू जीव बाहेक अर्को चेतनतत्त्व ईश्वरलाई मान्दैनन्। 'कुनै पनि अनादिसिद्ध ईश्वर छैन' यस्तो बौद्ध–जैनहरू मान्दछन्।

यसबारेमा राजा शिवप्रसादजी 'इतिहास तिमिरनाशक' ग्रन्थमा लेख्तछन्—'यिनका दुई नाम छन् एउटा जैन र अर्को बौद्ध। यी पर्यायवाची शब्द हुन्। तर बौद्धहरूमा वाममार्गी मद्यमांसहारी बौद्ध छन्। तीसँग जैनीहरूको विरोध छ। तर महावीर र गौतम गणधरको नाम बौद्धहरूले 'बुद्ध' राखे र जैनीहरूले 'गणधर' र 'जिनवर' राखे। यसमा जैनमत परम्पराकै राजा शिव प्रसादजी ले आफ्नो '**इतिहास–तिमिरनाशक**' ग्रन्थको तेस्रो खण्डमा लेखेका छन्—कुल लगभग एक हजार वर्ष अघि भएका स्वामी शंकराचार्यभन्दा अघि सम्पूर्ण

भारतवर्षमा बौद्ध अथवा जैन धर्म फैलिएको थियो। यसमा टिप्पणी— 'बौद्ध भन्नाले हाम्रो आशय महावीरका गणधर गौतम स्वामीको समयदेखि शंकरस्वामीको समयसम्म सम्पूर्ण भारतवर्षमा फैलिएको वेद विरोधी मत हो। यसलाई अशोक र हालका राजाले माने। जैन कुनै तरिकाले पनि यसभन्दा बाहिर निस्कन सक्तैनन्। 'जिन' जसबाट जैन बन्यो र 'बुद्ध' जसबाट बौद्ध बन्यो, यी दुबै पर्यायवाची शब्द हुन्। कोशमा दुवैको एउटै अर्थ लेखिएको छ र गौतमलाई दुवै मान्दछन्। नत्र भने दीपवंश आदि पुराना बौद्ध ग्रन्थमा शाक्यमुनि गौतमबुद्ध लाई धेरैजसो महावीर नामबाट उल्लिखित गरिएको छ। वास्तवमा उसको समयमा उनीहरूको एउटै मत रहेको हुँदो हो। हामीले जैन नलेखेर गौतमका मतावलम्बीहरूलाई बौद्ध लेख्नुको प्रयोजन उनलाई अरू देशवासीले बौद्ध नामबाटै उल्लेख गरेका छन् भन्ने मात्र हो। यस्तै अमरकोशमा पनि लेखेका छ—

सर्वज्ञःसुगतो बुद्धा धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः॥ १॥
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीधनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः॥ २॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धः शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥ ३॥

—अमरकोश कां० १। वर्ग २। श्लोक ८–१०

अब हेर, बुद्ध र जिन, बौद्ध र जैन एउटैका नाम हुन् वा होइनन्? के अमरसिंह पनि बुद्ध–जिनलाई एउटै लेख्नमा झुक्किएको हो त? अविद्वान् जैन न त आफ्नो बारेमा जान्दछन्, न अर्काको, केवल जिद्दी गरेर बरबराउने गर्दछन्। तर जैनमा पनि विद्वान्हरू भने बुद्ध र जिन तथा बौद्ध र जैन पर्यायवाची हुन् भन्ने कुरा सब जान्दछन्। यसमा केही शंका छैन।

जैनहरू 'जीव नै परमेश्वर हुन्छ' भन्दछन् र आफ्ना तीर्थकरहरूलाई नै केवली मुक्ति प्राप्त र परमेश्वर मान्दछन्। उनीहरूको मतमा अनादि परमेश्वर कोही छैन। नास्तिकहरूका देवताका सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन्, केवली, तीर्थकृत, जिन यी छ नाम छन्। 'आदिदेव' को स्वरूप चन्द्रसूरिले 'आप्तनिश्चयालंकार' ग्रन्थमा लेखेको छ—

सर्वज्ञो वीतरागादि दोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥ १॥

त्यस्तै तौताततिहरूले पनि लेखेका छन्—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंङ्गं वा योऽनुमापयेत्॥ २॥
न चाऽऽगमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबोधकः।
न च तत्रार्थवादनां तात्पर्यमपि कल्पयते॥ ३॥
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते।
न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः॥ ४॥

रागादि दोषरहित, तिनै लोकमा पूजनीय, पदार्थहरूको यथावत् वक्ता, सर्वज्ञ अर्हन् देव नै परमेश्वर हो॥ १॥, यस समयमा हामीलाई परमेश्वर देखिदैन, अतः कुनै सर्वज्ञ, अनादि परमेश्वर प्रत्यक्ष छैन। ईश्वरमा प्रत्यक्ष प्रमाण नभएपछि अनुमान पनि घटित हुनसक्तैन, किनकि एकदेश प्रत्यक्ष नभई अनुमान हुनसक्तैन॥ २॥, प्रत्यक्ष, अनुमान नभएपछि शब्दप्रमाण पनि नित्य, अनादि, सर्वज्ञ परमात्माको बोधक हुनसक्तैन। तिनै प्रमाण नभए पछि अर्थबाद अर्थात् स्तुति–निन्दा, परकृति अर्थात् अर्काको चरित्रको वर्णन र पुराकल्प अर्थात् इतिहासको तात्पर्य पनि घटित हुनसक्तैन॥ ३॥, र अन्यार्थप्रधान अर्थात् बहुव्रीहि समासजस्तै परोक्ष परमात्माको सिद्धिको विधान पनि हुनसक्तैन। अनि ईश्वरका उपदेष्टाहरूबाट नसुनिकन अनुवाद पनि कसरी हुन सक्तछ?॥ ४॥

यसको प्रत्याख्यान अर्थात् खण्डन—अनादि ईश्वर नभएको भए '**अर्हन्**' देवका आमा–बाबु आदिको शरीरको ढाँचा कसले बनायो? वा बनाउँथ्यो? संयोगकर्त्ता न भई सर्वावयव–सम्पन्न यथोचित कार्य गर्नमा उपयुक्त शरीर बन्नैसक्तैन। अनि जुन पदार्थबाट शरीर बनेको छ, तो पदार्थ जड़ हुनाले आफैं यस्तो उत्तम रचनायुक्त शरीररूप बन्न सक्तैनन्, किनकि तिनमा यथायोग्य बन्ने ज्ञान हुँदैन। अर्को कुरा, रागादि दोषसहित भएर पछि दोषरहित हुने कहिल्यै ईश्वर हुनसक्तैन, किनकि जुन निमित्तले ऊ रागादिबाट मुक्त हुन्छ, त्यो मुक्ति हो। त्यो निमित्त छुट्नाले त्यसको कार्य=मुक्ति पनि अनित्य हुनेछ। जो अल्प र अल्पज्ञ छ, त्यो सर्वव्यापक र सर्वज्ञ कहिल्यै हुनसक्तैन। किनकि जीवको स्वरूप एकदेशी र परिमित गुण, कर्म, स्वभावयुक्त हुन्छ। त्यो सबै विद्यामा सबै किसिमले यथार्थवक्ता हुनसक्तैन। यसकारण तिम्रा तीर्थङ्कर कहिल्यै परमेश्वर हुनसक्तैनन्॥ १॥

के यी प्रत्यक्ष पदार्थलाई मात्र मान्दछौं, अप्रत्यक्षलाई मान्दैनौ? जसरी कानबाट रूप र आँखबाट शब्द को ग्रहण हुनसक्तैन, त्यस्तै

अनादि परमात्मालाई देख्ने साधन शुद्ध अन्त:करण, विद्या र योगाभ्यास–बाट पवित्र भएको आत्मा परमात्मालाई प्रत्यक्ष देख्तछ। नपढिकन विद्याका प्रयोजनहरूको प्राप्ति नभएजस्तै योगाभ्यास र विज्ञान न भई परमात्मा पनि देखिंदैन। पृथ्वीका रूपादि गुणलाई नै देखेर, जानेर गुणहरू देखि अव्यवहित=अविच्छिन्न सम्बन्धबाटै पृथ्वी प्रत्यक्ष हुन्छ, त्यस्तै यस सृष्टिमा परमात्माका रचनाविशेष लिंग=चिह्नलाई देखेर परमात्मा प्रत्यक्ष हुन्छ, अनि पाप आचरण गर्ने इच्छा भएको वेलामा उत्पन्न हुने भय, शंका, लज्जा अन्तर्यामी परमात्माको तर्फबाट हो। यसबाट पनि परमात्मा प्रत्यक्ष हुन्छ। अनि अनुमान हुनमा के सन्देह हुनसक्तछ र?॥ २ ॥

अनि प्रत्यक्ष तथा अनुमान हुनाले आगम=शब्द प्रमाण पनि नित्य, अनादि, सर्वज्ञ ईश्वरको बोधक हुन्छ। यसकारण ईश्वरमा शब्द प्रमाण पनि सिद्ध हुन्छ। तीन किसिमकै प्रमाणहरूबाट जीवले ईश्वरलाई जान्न सक्तछ भने अर्थवाद अर्थात् परमेश्वरका गुणहरूको प्रशंसा गर्ने कुरा पनि यथार्थरूपमा घटित हुन्छ। किनकि नित्य पदार्थका गुण, कर्म, स्वभाव पनि नित्य हुन्छन्, उनको प्रशंसा गर्नमा कुनै पनि प्रतिबन्धक हुँदैन॥ ३ ॥

मानिसमा कर्त्ताबेगर कुनै पनि कार्य नहुने जस्तै कर्त्ता नभई यो यति ठूलो कार्य हुनु सर्वथा असम्भव छ। यसकारण कुनै मूर्खलाई पनि ईश्वरको सत्तामा सन्देह हुनसक्तैन। परमात्माका उपदेश गर्नेहरूबाट सुनेपछि त्यसको अनुवाद गर्न पनि सजिलो हुन्छ॥ ४॥ यसबाट जैनहरूद्वारा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूबाट ईश्वरको खण्डन आदि व्यवहार अनुचित छ।

प्रश्न—

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते॥ १॥
अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते।
प्रकल्प्येत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः॥ २॥
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता।
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते॥ ३॥
असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्।
सर्वज्ञ भवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्तं न जानते।
सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद्यदि पश्येम सम्प्रति।

उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयम्।
उपदेशोऽपि बुद्धस्य धर्माधर्मादिगोचरः
अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञं यदि नामवत्॥

बीचमा सर्वज्ञ भएको अनादि शास्त्रको अर्थ हुनसक्तैन किनकि गरिएको असत्यवचनबाट त्यसको प्रतिपादन कसरी हुनसक्तछ र?॥ १॥ अनि परमेश्वरकै वचनबाट परमेश्वर सिद्ध हुन्छ भने अनादि ईश्वरबाट अनादि शास्त्रको सिद्धि र अनादि शास्त्रबाट अनादि ईश्वरको सिद्धि, यसमा अन्योऽन्याश्रय दोष लाग्दछ॥ २॥ किनकि सर्वज्ञको कथनबाट त्यो वेदवाक्य सत्य र त्यसै वेदवचनबाट ईश्वरको सिद्धि गर्दछौ, यो कसरी सिद्ध हुनसक्तछ? त्यस शास्त्र र परमेश्वरको सिद्धिका लागि कुनै तेस्रो प्रमाण चाहिन्छ। यसो मान्दैनौ भने अनवस्था दोष आइलाग्नेछ॥ ३॥

उत्तर—हामीहरू परमेश्वर र परमेश्वरका गुण, कर्म, स्वभावलाई अनादि मान्दछौं। अनादि नित्य पदार्थहरूमा अन्योऽन्याश्रय दोष लाग्नसक्तैन। जसरी कार्यबाट कारणको ज्ञान र कारणबाट कार्यको बोध हुन्छ, कार्यमा कारणको स्वभाव र कारणमा कार्यको स्वभाव नित्य छ, त्यस्तै परमेश्वर र परमेश्वरका अनन्त विद्या आदि गुण नित्य हुनाले ईश्वरप्रणीत वेदमा अनवस्था दोष लाग्दैन॥ १–३॥

अनि तिमीले तीर्थंकरहरूलाई परमेश्वर मान्ने कुरा कहिल्यै घटित हुनसक्तैन। किनकि आमा–बाबु नभई उनीहरूको शरीर नै हुँदैन भने तो तपश्चर्या र मुक्ति कसरी प्राप्त गर्नसक्तछन्? त्यस्तै संयोगको आदि अवश्य हुन्छ, किनकि वियोग न भई संयोग हुनैसक्तैन। यसकारण अनादि सृष्टिकर्त्ता परमात्मालाई मान।

हेर, कोही जतिसुकै सिद्ध भए पनि शरीर आदिको रचनालाई पूर्णताले जान्नसक्तैन। सिद्ध जीव सुषुप्ति अवस्थामा पुग्दा त्यसलाई केही पनि भान रहँदैन। जब जीव दु:ख प्राप्त गर्दछ, तब त्यसको ज्ञान पनि कम हुन्छ। यस्तो परिच्छिन्न सामर्थ्य भएको एकदेशमा रहने कुनै सिद्ध तीर्थङ्कर आदि साधारण जीवलाई भ्रान्तिबुद्धियुक्त जैनीहरू बाहेक अरू कोही पनि ईश्वर मान्न सक्तैन। अनि तिमी 'ती तीर्थङ्कर आफ्ना आमा–बाबुबाट जन्मे' भन्छौ भने ती आमा–बाबु कोबाट जन्मे? अनि उनका आमा–बाबु कोबाट र उनका पनि आमाबाबु कोबाट उत्पन्न भए? इत्यादि अनवस्था दोष आइलाग्नेछ।

आस्तिक र नास्तिकको संवाद

यसपछि **'प्रकरणरत्नाकर'** को दोस्रो भागबाट आस्तिक नास्तिकको संवादको प्रश्नोत्तर यहाँ लेखिन्छ। यसलाई ठूला-ठूला जैनीहरूले आफ्नो सम्मतिका साथ मानेका छन् र मुम्बईमा छपाएका छन्।

नास्तिक—ईश्वरको इच्छाबाट केही पनि हुँदैन। जे जति हुन्छ, त्यो कर्मबाट हुन्छ।

आस्तिक—सबै कुरा कर्मबाटै हुन्छ भने कर्म कोबाट हुन्छ? कर्म जीव आदिबाट हुन्छ भन्छौ भने जुन कान आदि साधनबाट जीव कर्म गर्दछ ती साधन कोबाट भए? अनादिकाल र स्वभावैले हुन्छन् भन्छौ भने अनादिको छुट्ने कुरा असम्भव हुने हुनाले तिम्रो मतमा मुक्तिको अभाव हुनेछ। यी सबै प्रागभाव जस्तै अनादि छन् भन्छौ भने यत्नै नगरी सबैका कर्म निवृत्त हुनेछन्। ईश्वर फल दिने नभएको भए जीव आफ्नै इच्छाले पापको फल दुःख कहिल्यै भोग्ने थिएन र छैन पनि। चोर आदिले चोरीको फल दण्ड आफ्नै इच्छाले नभोगेर राज्यव्यवस्थाको कारण भोग्नु परेजस्तै परमेश्वरले भोगाउनाले जीव पाप र पुण्यका फल भोग्दछन्। नत्र भने कर्मसंकर हुनेछन् अर्थात् कुन कर्म कसको हो? भनी छुट्याउने कोही नहुदा जुनसुकै जीवसँग जुनसुकै कर्मको सम्बन्ध हुनेछ र एउटाका कर्मको फल अर्काले नै भोग्नु पर्नेछ।

नास्तिक—ईश्वर अक्रिय छ। किनकि कर्म गर्ने भए कर्मका फल पनि भोग्नुपर्दथ्यो। यसकारण हामीले केवल प्राप्त भएका मुक्तिलाई अक्रिय मानेजस्तै तिमी पनि मान।

आस्तिक—ईश्वर अक्रिय होइन, सक्रिय छ। ऊ चेतन छ भने कर्त्ता किन होइन? अनि कर्त्ता हो भने ऊ क्रियाबाट कहिल्यै अलग्गिनै सक्तैन। तिम्रा कृत्रिम बनावटी ईश्वरलाई जीवबाट मानेजस्तो कुनैपनि विद्वान्ले ईश्वरलाई मान्नसक्तैन। किनकि निमित्तबाट ईश्वर बन्ने भए ऊ अनित्य र पराधीन हुनेछ। किनकि ईश्वर बन्नु अघि जीव थियो, पछि कुनै निमित्तद्वारा ईश्वर बन्यो भने फेरि पनि जीव हुनेछ। आफ्नो जीवत्व स्वभावलाई कहिल्यै छोड्नसक्तैन। किनकि जीव अनन्तकाल देखि छ र अनन्तकालसम्म रहनेछ। यसकारण यस अनादि स्वतःसिद्ध ईश्वरलाई मान्नु उचित हुन्छ।

हेर, जसरी वर्त्तमान समयमा जीव पाप पुण्य गर्दछ, सुख-दुःख

भोग्दछ, ईश्वर कहिल्यै त्यस्तो हुँदैन। ईश्वर क्रियावान् नभए यस जगत्लाई कसरी बनाउनसक्तथ्यो? जस्तै, कर्मलाई प्रागभाव जस्तै अनादि सान्त मान्दछौ भने कर्म समवाय-सम्बन्धले रहने छैन। समवाय सम्बन्धले नरहने संयोगज भएर अनित्य हुन्छ। मुक्तिमा क्रिया नै मान्दैनौ भने ती मुक्त जीव ज्ञानयुक्त हुन्छन् वा हुँदैनन्? हुन्छन् भन्छौ भने अन्तःक्रियायुक्त भए। हुँदैनन् भन्छौ भने के मुक्तिमा ढुङ्गा जस्तै जड़ हुन्छन्, एकै ठाउँमा पल्टिरहन्छन् र केही पनि चेष्टा गर्दैनन्? त्यसो हो भने त त्यो मुक्ति नभएर त्यो त अन्धकार र बन्धन पो भयो त।

नास्तिक—ईश्वर व्यापक छैन। व्यापक भएको भए सबै वस्तु चेतन किन हुँदैनन्। र ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र आदिको उत्तम-मध्यम-निकृष्ट अवस्था किन भयो? किनकि सबैमा ईश्वर एकनासै व्यापक छ भने सानो-ठूलो नहुनुपर्ने हो।

आस्तिक—व्याप्य र व्यापक एक हुँदैनन्। तर व्याप्य एकदेशी र व्यापक सर्वदेशी हुन्छ। जस्तै आकाश सबैमा व्याप्त छ र भूगोल, घटपट आदि सबै व्याप्य एकदेशी छन्। जसरी पृथ्वी र आकाश एउटै होइनन् त्यस्तै ईश्वर र जगत् एउटै होइनन्। जसरी सबै घट-पट आदिमा आकाश व्यापक छ र घट-पट आदिमा आकाश व्यापक छ र घट-पट आदि आकाश हुँदैनन् अर्थात् घटपट आदिमा आकाश व्याप्त भएता पनि घट-पट आकाशजस्तै अदृश्य, अस्पर्श हुनसक्तैनन्। त्यस्तै चेतन परमेश्वर सबैमा व्यापक छ तर सबै चेतन हुँदैन। जसरी आकाश सबैमा बराबर छ, पृथ्वी आदिका अवयव बराबर छैनन् त्यस्तै परमेश्वरको बराबर कोही छैन। जसरी विद्वान् अविद्वान् र धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर हुँदैनन्, त्यस्तै विद्या आदि सद्गुण र सत्यभाषण आदि कर्म, सुशीलता आदि स्वभाव धेर थोर हुनाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र र अन्त्यज साना-ठूला मानिन्छन्। वर्णहरूको व्याख्या चतुर्थ समुल्लासमा लेखिए अनुसार नै हेर्नु र बुझ्नुपर्दछ।

नास्तिक—ईश्वरको रचनाबाट सृष्टि हुने भए आमा-बाबु आदिको के काम?

आस्तिक—ईश्वर ऐश्वरी सृष्टिको कर्त्ता हो, जैवी सृष्टिको कर्त्ता होइन। जीवका कर्त्तव्य कर्मलाई ईश्वर गर्दैन, जीव नै गर्दछ। जसरी वृक्ष, फल, ओषधि, अन्न आदि ईश्वरले उत्पन्न गरेको छ, ती पदार्थलाई लिएर मानिसले कुट्ने, पिंध्ने, रोटी आदि बनाउने र खाने न गरेमा के ईश्वर उसको सट्टा यी काम पनि कहिल्यै गर्नेछ? अनि उक्त काम

नगरेमा जीवको जीवन पनि चल्न सक्नेछैन। यसकारण आदिसृष्टिमा जीवका शरीर र ढाँचा बनाउनु ईश्वराधीन, पछि तीबाट पुत्र आदिको उत्पत्ति गर्नु जीवको कर्त्तव्य कर्म हो।

नास्तिक—परमात्मा शाश्वत, अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप छ भने जगत्का प्रपञ्च र दुःखमा किन पर्यो ? आनन्दलाई छोडेर दुःखलाई ग्रहण गर्ने काम कुनै साधारण मानिस पनि गर्दैन, अनि ईश्वरले किन गर्यो ?

आस्तिक—परमात्मा कुनै प्रपञ्च र दुःखमा पर्दैन, आफ्नो आनन्दलाई पनि छोड्दैन। किनकि जो एक देशीहुन्छ त्यही प्रपञ्च र दुःखमा पर्नसक्छ, सर्वदेशी पर्नसक्तैन। अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्माले जगत्लाई नबनाएमा अरू कसले बनाउनसक्नेछ ? जगत् बनाउने सामर्थ्य जीवमा छैन र जड्मा आफैं बन्ने सामर्थ्य पनि हुँदै हुँदैन। यसबाट परमात्मा नै जगत्लाई बनाउँदछ र सधैं आनन्दमा रहन्छ भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। जसरी परमात्मा परमाणुहरूबाट सृष्टि गर्दछ, त्यस्तै आमा–बाबुरूपी निमित्तकारणबाट पनि उत्पत्तिको प्रबन्धको नियम उसैले बनाएको छ।

नास्तिक—ईश्वर मुक्तिरूप सुखलाई छोडेर जगत्को सृष्टि, स्थिति र प्रलय गर्ने झञ्झटमा किन पर्यो ?

आस्तिक—ईश्वर सदामुक्त हुनाले सनातन परमात्मा तिम्रा साधनहरूबाट सिद्ध भएका तीर्थकर जस्तै एकदेशी, बन्धपूर्वक मुक्तियुक्त होइन। त्यो अनन्तस्वरूप गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा यस पृथ्वीलेकति मात्र जगत्लाई बनाउने, धारण गर्ने र प्रलयगर्ने भएर पनि बन्धनमा पर्दैन किनकि बन्ध र मोक्ष सापेक्षताले हुन्छ। जस्तै मुक्तिको अपेक्षाले बन्धन र बन्धनको अपेक्षाले मुक्ति हुन्छ। जो कहिल्यै बद्ध थिएन त्यो मुक्त कसरी हुनसक्तछ ? अनि एकदेशी जीवनै सदा बद्ध र मुक्त हुने गर्दछन्। अनन्त, सर्वदेशी, सर्वव्यापक ईश्वर तिम्रा तीर्थंकर जस्तै बन्धन वा नैमित्तिक मुक्तिको चक्रमा कहिल्यै पर्दैन। यस कारण त्यो परमात्मा सदामुक्त भनिन्छ।

नास्तिक—भाङ्ग पिउनेले त्यसको मदलाई आफैं भोगेजस्तै जीव कर्मका फललाई यत्तिकै भोग्नसक्तछन्। यसमा ईश्वर केही काम छैन।

आस्तिक—जसरी राजा नभई डाकू, लम्पट, चोर आदि दुष्ट मानिस स्वयं फाँसी वा कारागारमा जाँदैनन् र जान पनि चाहँदैनन्, तर राजाको न्यायव्यवस्था अनुसार जबर्जस्ती समातिएर राजा त्यसलाई

यथोचित दण्ड दिन्छ, त्यस्तै जीवलाई पनि ईश्वर आफ्नो न्यायव्यवस्थाबाट आ–आफ्ना कर्मानुसार यथायोग्य दण्ड दिन्छ। किनकि कुनै पनि जीव आफ्ना दुष्टकर्मका फल भोग्न चाहँदैन। यसकारण परमात्मा न्यायाधीश अवश्य हुनुपर्दछ।

नास्तिक—जगत्मा एउटै ईश्वर छैन, तर जति मुक्त जीव छन्, ती सबै ईश्वर हुन्।

आस्तिक—यो सर्वथा व्यर्थ कुरा हो। किनकि पहिले बद्ध भएर मुक्त भएको फेरि बन्धनमा अवश्य पर्नेछ, किनकि ती स्वाभाविकरूपमा सदैव मुक्त होइनन्। जसरी तिम्रा चौबीस तीर्थंकर पहिले वद्ध थिए, पछि मुक्त भए र फेरी बन्धनमा अवश्य पर्नेछन्। अनि धेरैजसो ईश्वर छन् भने जीव अनेक हुनाले लड्दै–भिड्दै फिरेजस्तै ईश्वर पनि लड्ने–भिड्ने गर्नेछन्।

नास्तिक—ए मूर्ख! जगत्को कर्त्ता कोही पनि छैन, जगत् त स्वयंसिद्ध छ।

आस्तिक—यो जैनहरूको कति ठूलो भूल हो! के जगत्मा कर्त्ता नभई कुनै कर्म र कर्म नभई कुनै कार्य भएको देखिन्छ ? यो कुरा त 'गहुँको खेतमा स्वयंसिद्ध आफै गहुँ पिंधिएर रोटी बनेर जैनीहरूको पेटमा पुग्छ' भनेजस्तै भयो। कपास, धागो, कपड़ा, कुर्ता, पटुका, धोती, पगड़ी आदि आफैं बनेर कहिल्यै आउँदैनन्। यस्तो हुँदैन भने कर्त्ता ईश्वर नभई यो विविध जगत् र नाना–किसिमको रचना–विशेष कसरी बन्नसक्तछ ? आफ्नो जिद्दीले जगत्लाई स्वयं सिद्ध मान्दछौ भने उपरोक्त वस्त्र आदिलाई कर्त्ता बिनानै प्रत्यक्ष रूपमा स्वयंसिद्ध गरेर देखाऊ। यस्तो सिद्ध गर्न सक्तैनौ भने तिम्रा प्रमाणशून्य कुरालाई कुन बुद्धिमान्ले मान्नेछ र ?

नास्तिक—ईश्वर विरक्त छ वा मोहित छ ? विरक्त छ भने जगत्को प्रपञ्चमा किन पर्यो ? अनि मोहित छ भने जगत् बनाउनमा समर्थ हुनसक्तैन।

आस्तिक—परमेश्वरमा वैराग्य वा मोह कहिल्यै घटित हुनसक्तैन। किनकि सर्वव्यापकले कसलाई छोड्ने र कसलाई ग्रहण गर्ने ? ईश्वरभन्दा उत्तम अथवा उसलाई प्राप्त नभएको कुनै पदार्थ छैन। यसकारण कुनैमा मोह पनि हुँदैन। वैराग्य र मोह हुने कुरा जीवमा घटित हुन्छ, ईश्वरमा हुँदैन।

नास्तिक—ईश्वरलाई जगत्को कर्त्ता र जीवहरूका कर्महरूको

फल दिने मान्दछौ भने ईश्वर प्रपञ्ची भएर दुःखी हुनेछ।

आस्तिक—आखिर अनेक किसिमका कर्म गर्ने र प्राणिहरूलाई फल दिने धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् व्यक्ति त कर्महरूमा फस्तन, प्रपञ्ची हुँदैन भने अनन्त सामर्थ्यवान् परमेश्वर कसरी प्रपञ्ची र दुःखी हुनेछ? हँ, तिमी आफ्नो अज्ञानका कारण परमेश्वरलाई पनि आफू र आफ्ना तीर्थङ्करहरू जस्तै ठान्दछौ, यो तिमीहरूको अविद्याको लीला हो। अविद्या आदि दोषहरूबाट छुट्टिन चाहन्छौ भने वेदादि सत्यशास्त्रहरूको आश्रय ग्रहण गर। किन भ्रममा परेर ठक्कर खाइरहन्छौ?

अब जैनीहरू जगत्‌लाई जस्तो मान्दछन्, त्यो यिनकै सूत्रहरूका अनुसार देखाइन्छ र संक्षेपमा मूल अंशको अर्थ गरे पछि सत्य र झूठोको समीक्षा गरेर देखाइन्छ—

मूल— सामि अणाई अणन्ते, चउगइ संसारघोरकान्तारे।
मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवाग वसउ भमइ जीवो॥

—प्रकरण रत्नाकर, भाग २। षष्ठीशतक ६०। सूत्र २॥

यो '**प्रकरण रत्नाकर**' नामक ग्रन्थको '**सम्यक्त्वप्रकाश**' प्रकरणमा गौतम महावीरको संवाद हो। छोटकरीमा यसको उपयोगी अर्थ यो हो—यो संसार अनादि, अनन्त छ। यसको न त कहिल्यै उत्पत्ति भएको थियो न विनाश नै हुन्छ, अर्थात् जगत्‌लाई कसैले बनाएको होइन। त्यसै आस्तिक नास्तिकको संवादमा—'हे मूर्ख! जगत्‌को कर्त्ता कोही छैन, न त कहिल्यै बन्यो र न कहिल्यै नाश नै हुनेछ' भनिएको छ।

समीक्षक—संयोगबाट उत्पन्न भएको वस्तु अनादि र अनन्त कहिल्यै हुनसक्तैन। उत्पत्ति र विनाश न भई कहिल्यै रहँदैन। जगत्‌मा उत्पन्न हुने सबै पदार्थ संयोगज, उत्पत्ति र विनाशयुक्त देखिन्छन् भने जगत् उत्पन्न र विनाश किन हुँदैन? यसकारण तिम्रा तीर्थकरलाई सम्यक् बोध थिएन। उनलाई सम्यक् ज्ञान भएको भए यस्ता असम्भव कुरा किन लेख्ने थिए र? जस्ता तिम्रा गुरु, त्यस्तै तिमी पनि छौ। तिम्रा कुरा सुन्नेलाई पदार्थको ज्ञान कहिल्यै हुनैसक्तैन। जुन पदार्थ संयुक्त देखिन्छ त्यसको उत्पत्ति र विनाश किन मान्दैनौ? तात्पर्य के भने यिनका आचार्य वा जैनीहरूलाई भूगोल, खगोलविद्या पनि आउँदैनथियो र यिनमा यो विद्या अहिले पनि छैन। नत्र भने निम्नलिखित यस्ता असम्भव कुरा किन मान्थे र भन्दथे?

हेर, यस सृष्टिमा पृथ्वीकाय अर्थात् पृथ्वी पनि जीवको शरीर हो

र जलकाय आदि जीव पनि मान्दछन्। यसलाई कोही पनि मान्नसक्तैन। हेर, यिनका अरू पनि मिथ्या कुरा! जुन तीर्थकरहरूलाई जैनीहरू सम्यग्ज्ञानी र परमेश्वर मान्दछन् उनका मिथ्या कुराका यी नमूना हुन्—रत्नसार भाग १ को पृष्ठ १४५, यस ग्रन्थलाई जैनीहरू मान्दछन् र यसलाई ईस्वी सन् १८७९ अप्रैल २८ तारीखमा बनारसको जैन प्रभाकर प्रेसमा नानकचन्द जतीले छपाएर प्रसिद्ध गरेका हुन्। त्यसको पूर्वोक्त पृष्ठ १४५ मा कालको व्याख्या यसरी गरिएको छ—

अर्थात् समयकै नाम सूक्ष्मकाल हो र असंख्यात समयलाई आवलि भनिन्छ। एक करोड़ सतसट्ठी लाख सत्तरी हजार दुई सयत सोह्र 'आवलि' को एउटा 'मुहूर्त्त' हुन्छ। त्यस्तै तीस मुहूर्त्तको एक दिवस, त्यस्तै पन्ध्र दिवसको एक 'पक्ष', त्यस्तै दुई पक्षको एक 'महीना', त्यस्तै बाह्र महीनाको एक 'वर्ष' हुन्छ। सत्तरी लाख करोड़, छपन्न हजार करोड़ वर्ष को एक 'पूर्व' हुन्छ। यस्ता असंख्यात पूर्वको एक '**पल्योपम**' काल भनिन्छ।

असंख्यात यसलाई भन्दछन्—एउटा चार कोसको र त्यतिनै गहिरो कुवा खनेर त्यसमा जुगलिया मानिसका शरीर निम्नलिखित रौंका टुक्राहरू भर्नुपर्दछ। अर्थात् हिजोआजका मानिसका रौंभन्दा जुगुलिया मानिसका रौं चार हजार छयान्नब्बे भाग सूक्ष्म हुन्छ। तात्पर्य के भने जुगुलिया मानिसका ४०९६ रौंलाई जम्मा पारेमा यसबखतका मानिसको एउटा रौं बराबर हुन्छ। यस्ता जुगुलिया मानिसका एउटा रौंका एक अंगुल सातपटक आठ आठ टुक्रा पार्नाले २०,९७,१५२ (बीस लाख सन्तानव्वे हजार एक सय बाउन्न) टुक्रा हुन्छन्। यस्ता टुक्राले पूर्वोक्त कुवालाई भर्नुपर्दछ। त्यसबाट सय वर्षको फरकमा एउटा-एउटा टुक्रो झिक्नुपर्दछ। सबै टुक्रा निस्किएर त्यो कुवा खाली हुँदा पनि त्यो संख्यात काल हो। अनि ती मध्ये एउटा-एउटा टुक्राका असंख्यात टुक्रा पारेर ती टुक्राले त्यसै कुवालाई यत्ति कोचेर भर्नुपर्दछ कि त्यसको माथिबाट चक्रवर्ती राजा को सेना उत्रेर जाओस्, फेरिपनि न थिचियोस्। ती टुक्रा मध्ये सय वर्षको फरकमा एउटा टुक्रो झिक्नुपर्दछ। जुन बेला त्यो कुवा खाली हुन्छ, तब त्यसमा असंख्यात 'पूर्व' हुन्छन्, अनि एक-एक '**पल्योपम**' काल हुन्छन। त्यो 'पल्योपम' काल कुवा को दृष्टान्तबाट जान्नुपर्दछ।

दश करोड़ौं करोड़ पल्योपम काल बित्दा एक 'सागरोपम' काल हुन्छ। दश करोड़ौं करोड़ सागरोपम काल बित्दा एक 'उत्सर्पणी' काल हुन्छ। अनि एक '**उत्सर्पणी**' र एक '**अवसर्पणी**' काल बित्दा एक

'**कालचक्र**' हुन्छ। अनन्त कालचक्र बित्दा एक '**पद्गल परावृत्त**' हुन्छ।

अब अनन्तकाल कसलाई भनिन्छ? सिद्धान्त पुस्तकहरूमा नयाँ दृष्टान्तहरूद्वारा बताइएको कालको संख्याको उपरान्त '**अनन्तकाल**' भनिन्छ। त्यस्तै अनन्त पुद्‌गलपरावृत्त काल जीवलाई घुम्दै बितिसकेका छन्, इत्यादि।

समीक्षक—सुन, गणितविद्या जान्नेहरू हो! जैनीहरूका ग्रन्थको कालगणना गर्न सक्छौ कि सक्तैनौ? र तिमीहरू यसलाई सत्य मान्न सक्छौ कि सक्तैनौ? हेर, यी तीर्थकरहरूले यस्तै गणितविद्या पढेका थिए। यिनको मतमा अविद्याको कुनै वारपारै न भएका यस्ता-यस्ता त गुरु र शिष्य छन्।

अरू पनि यिनीहरूको बहुलठ्ठीपन हेर—

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १३३ देखि केही बूटाबोल अर्थात् जैनीहरूका सिद्धान्त ग्रन्थ, जुन उनका तीर्थंकर, अर्थात् ऋषभदेव देखि महावीर सम्म चौबीस तीर्थंकर भएका छन्, तिनका वचनहरूको सारसंग्रह छ। त्यसै रत्नसार भाग १ पृष्ठ १४८ मा लेखिएको छ—

'पृथ्वीकायका जीव, माटो, ढुंगा आदिलाई पृथ्वीका भेद सम्झनुपर्दछ। तिनमा बस्ने जीवहरूका शरीरको परिमाण एक अंगुलको असंख्यात सम्झनुपर्दछ, अर्थात् अतीव सूक्ष्म हुन्छन्। तिनको आयुमान अर्थात् ती बढ़ीभन्दा बढ़ी बाईस हजार वर्ष सम्म बाँच्तछन्।'

रत्नसार भाग १, पृष्ठ १४९—'वनस्पतिको एउटा शरीरमा अनन्त जीव हुन्छन्। कन्दमूल प्रमुख र अनन्तकाय प्रमुख वनस्पति साधारण वनस्पति भनिन्छन्, उनलाई साधारण वनस्पतिका जीव भन्नुपर्दछ। तिनको आयुमान '**अनन्तमुहूर्त्त**' हुन्छ। तर यहाँ यसको पूर्वोक्त मुहूर्त्त सम्झनुपर्दछ।

अनि एउटा शरीरमा एउटा इन्द्रिय अर्थात् यिनमा भएको स्पर्श इन्द्रियमा एउटा जीव बस्तछ, उसलाई प्रत्येक वनस्पति भनिन्छ। उसको शरीरको परिमाण एक हजार योजन हुन्छ। अर्थात् पौराणिकहरूको योजन चार कोसको हुन्छ तर जैनीहरूको एक योजन १०,००० (दश हजार) कोशको हुन्छ, दश हजार कोशलाई एक कोश मानेमा यस्ता चार हजार कोशको शरीर हुन्छ। त्यसको आयुमान बढ़ीभन्दा बढ़ी दश हजार वर्षको हुन्छ।

अब दुई इन्द्रियवाला जीव—शंख, कौड़ी, जुम्रा आदिको एउटा शरीर र एउटा मुख भएका यिनको देहमान बढ़ीभन्दा बढ़ी अड्‌चालीस

कोशको स्थूल शरीर हुन्छ तथा तिनको आयुमान बढ़ीभन्दा बढ़ी बाह्र वर्षको हुन्छ।

समीक्षक—यहाँ धेरै नै बिर्सियो, किनकि यति ठूलो शरीरको आयु बढ़ी लिएको थियो। अनि अड्‌चालीस कोशको ठूलो जुम्रा जैनीकै शरीरमा बढ़ी हुँदा हुन् र उनैले देखेका पनि होलान्। यति ठूला जुम्रा हेर्ने भाग्य अरू कसैको कहाँ छ र?

अरू हेर यिनीहरूको अन्धाधुन्ध! **रत्नसार भाग १ पृ० १५०**—बिच्छी, बगाई, बसारी र झिंगा एक योजनको शरीर भएका हुन्छन्। यिनको आयुमान बढ़ीभन्दा बढ़ी छ महीनाको हुन्छ।

समीक्षक—हेर भाइ! चार-चार कोसको बिच्छीलाई अरू कसैले देखेको छैन होला। जैनीहरूको मतमा आठ मील सम्मको शरीर भएका बिच्छी र झिंगा हुन्छन्। यस्ता बिच्छी र झिंगा उनैका घरमा बस्ताहुन्? र उनैले देखेका होलान्, संसारमा जैनी बाहेक अरू कसैले पनि देखा छैन होला? कुनै बेला यस्ता बिच्छीले कुनै जैनीलाई टोकेमा त्यसको के हालत हुँदो हो?

जलचर माछा आदिका शरीरको परिमाण एक हजार योजन अर्थात् दश हजार कोशको एक योजनको हिसाबले एक करोड़ कोशको शरीर हुन्छ र एक करोड़ पूर्व वर्षको यिनको आयु हुन्छ। त्यस्ता ठूला जलचर जैनीहरू बाहेक अरू कसैले देखेका छैनन् होला। अनि चतुष्पात्—चार खुट्टा भएका हात्ती आदिको देहमान दुई कोश देखि नौ कोश सम्म र आयुमान चौरासी हजार वर्षको हुन्छ, इत्यादि। यस्ता-यस्ता ठूला शरीर भएका जीव पनि जैनीहरूले नै देखेका होलान् र मान्दछन्। अरू कुनै बुद्धिमान्ले यस्तो मान्नसक्तैन।

रत्नसार भाग १, पृ० १५१—'जलचर गर्भज जीवहरूको देहमान उत्कृष्ट एक हजार योजन अर्थात् एक करोड़ कोशको र आयुमान एक करोड़ 'पूर्व वर्ष' को हुन्छ।

समीक्षक—यति ठूला शरीर र आयु भएका जीवहरूलाई पनि यिनैका आचार्यहरूले सपनामा देखेका होलान्। के यो कहिल्यै सम्भव हुन नसक्ने महाझूठ कुरा होइन?

अब भूमिको परिमाण हेर, रत्नसार भाग १ पृष्ठ १५२—यस तिर्यक् लोकमा असंख्यात द्वीप र असंख्यात समुद्र छन्। यी असंख्यातको प्रमाण अर्थात् अढाई '**सागरोपम**' कालमा जति समय हुन्छ त्यति द्वीप तथा समुद्र हुन्छन् भन्ने जान्नुपर्दछ। अब यस पृथ्वीमा एउटा '**जम्बूद्वीप**'

पहिला सबै द्वीपहरूको बीचमा छ। यसको परिमाण एक लाख योजन अर्थात् एक अरब कोश छ र यसको चारैतिर लवण समुद्र छ। त्यसको परिमाण दुई लाख योजन अर्थात् दुई अरब कोशको छ। यस जम्बुद्वीपको चारैतिर रहेको 'धातकीखण्ड' नामक द्वीपको परिमाण चार लाख योजन अर्थात् चार अरब कोश छ। त्यसको पछाडि आठ लाख योजन अर्थात् आठ अरब कोश परिमाण भएको 'पुष्करावर्त्त' द्वीप छ। त्यस द्वीपको भित्र खाली छ। त्यस द्वीपको आधामा मानिस बस्छन् र त्यस पछि असंख्यात द्वीप, समुद्र छन्। तिनमा तिर्थग् योनिका जीव रहन्छन्।

रत्नसार भाग १, पृष्ठ १५३—जम्बुद्वीपमा एउटा हिमवन्त, एउटा ऐरण्यवन्त, एउटा हरिवर्ष, एउटा रम्यक, एउटा देवकुरू र एउटा उत्तरकुरू यी छ क्षेत्र छन्।

समीक्षक—ल सुन, भूगोलविद्यालाई जान्ने भाइहरू! भूगोलको परिमाण नाप्नमा तिमीले गल्ती गर्यौ अथवा जैनीहरूले? जैनीहरूले बिर्सिएका हुन् भने तिमी उनलाई सम्झाऊ। अनि तिमी नै बिर्सिएका हौ भने उनीहरूबाट सम्झ। अलिकति विचार गरेर हेरेमा जैनीहरूका आचार्य र शिष्यहरूले भूगोल, खगोल र गणितविद्या अलिकति पनि पढ़ेका थिएनन् भन्ने निश्चय हुन्छ। पढ़ेका भए महा असम्भव गफ किन हाँक्ने थिए र?

यस्ता अविद्वान् व्यक्ति जगत्लाई अकर्तृक=नबनाइएको भन्छन् र ईश्वरलाई मान्दैनन् भने यसमा के आश्चर्य छ र? यस्तै झूठा कुरा भएको कारणले नै जैनीहरू आफ्ना पुस्तक अरू मतावलम्बी कुनै विद्वान्लाई दिंदैनन्। किनकि यिनीहरूका प्रामाणिक तीर्थंकरहरूबाट बनाइएका सिद्धान्त ग्रन्थ मानिएका पुस्तकहरूमा यस्तै अविद्यायुक्त कुरा भरिपूर्ण छन्। यसकारण हेर्नै दिंदैनन्। दिएमा पोल खुल्नेछ। यी बाहेक अलिकति पनि बुद्धि भएको कुनै मानिस भए त्यसले यस गफाध्यायलाई सत्य मान्न सक्तैन। जैनीहरूले जगत्लाई अनादि मान्नका लागि यो सबै प्रपञ्च खड़ा गरेका हुन्, तर यो नितान्त झूटो हो।

हँ, जगत्को कारण अनादि छ, किनकि ती परमाणु आदि तत्त्वस्वरूप अकर्तृक छन्। तर तिनमा नियमपूर्वक बन्ने वा बिग्रने सामर्थ्य केही पनि छैन। किनकि कुनै एउटा परमाणुको नाम द्रव्य हो र ती स्वभावैले छुट्टा छुट्टै रूप भएका र जड़ हुन् भने ती आफैं यथायोग्य बन्न सक्तैनन्। यसकारण यसलाई बनाउने चेतन अवश्य छ र त्यो बनाउने ज्ञानस्वरूप छ।

हेर, पृथवी, सूर्य आदि सबै लोकलाई नियममा राख्नु अनन्त, अनादि, चेतन परमात्माको काम हो। संयोग रचना विशेष देखिने स्थूल जगत् कहिल्यै अनादि हुनसक्तैन। कार्य जगत्लाई नित्य मान्दछौ भने त्यसको कुनै कारण हुनेछैन, तर त्यही कार्य कारण रूप हुने छ। यसो भनेमा आफ्नो कार्य र कारण आफैं हुनाले अन्योऽन्याश्रय र आत्माश्रय दोष आइलाग्नेछ। जस्तै आफ्नो कांधमा आफैं चढ्ने कुरा र आफ्नो बाबु—छोरा आफैं हुनसक्तैन, त्यस्तै तिम्रो कुरा असम्भव छ। यसकारण जगत्को कर्त्ता अवश्य नै मान्नुपर्दछ।

प्रश्न—ईश्वरलाई जगत्को कर्त्ता मान्दछौ भने ईश्वरको कर्त्ता को हो त?

उत्तर—कर्त्ताको कर्त्ता र कारणको कारण कोही पनि हुनसक्तैन। किनकि पहिले कर्त्ता र कारण हुनाले नै कार्य हुन्छ। संयोग-वियोगरहित, प्रथम संयोग-वियोगको कारणको कर्त्ता वा कारण कुनै किसिमले हुनसक्तैन। यसको विशेष व्याख्या 'आठौं समुल्लास' मा सृष्टिको व्याख्या प्रकरणमा लेखेको छ, त्यहीं हेर्नुपर्दछ।

यी जैनीहरूलाई स्थूल कुराको पनि यथावत् ज्ञान छैन भने परमसूक्ष्म सृष्टिविद्याको बोध कसरी हुन सक्तछ र? यसकारण जैनीहरू सृष्टिलाई अनादि, अनन्त मान्दछन्, द्रव्य पर्यायलाई पनि अनादि अनन्त मान्दछन् र प्रतिगुण प्रतिदेशमा पर्याय र प्रतिवस्तुमा पनि अनन्त पर्याय मान्दछन्, यो प्रकरण रत्नाकरको प्रथम भागमा लेखेको छ। यो कुरा पनि कहिल्यै घटित हुन सक्तछ, परमेश्वर सामु सक्तैन। किनकि एक-एक द्रव्यमा आ-आफ्ना एक-एक कार्य गर्ने सामर्थ्यलाई अविभाग पर्यायहरूबाट अनन्त—सामर्थ्य मान्नु केवल अविद्याको कुरा हो। एउटा परमाणु द्रव्यको सीमा हो भने त्यसमा अनन्त विभाग रूप पर्याय कसरी रहन सक्तछन्? यस्तै एक-एक द्रव्यमा अनन्त गुण र एक गुण प्रदेशमा अविभाग रूप अनन्त पर्यायहरूलाई पनि अनन्त मान्नु बालकपनको कुरा हो। किनकि जसको अधिकरणको अन्त छ, त्यसमा रहनेहरूको अन्त किन हुँदैन? यस्तै लम्बा-चौड़ा मिथ्याकुरा जैनीहरूका ग्रन्थमा लेखेका छन्।

अब जीव र अजीव यी दुई पदार्थबारे जैनीहरूको विचार छ—

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।
सत्कर्म पुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥

यो **'जिनदत्तसूरि'** को वचन हो र प्रकरण रत्नाकर भाग १ नयचक्रसारमा पनि यही लेखेको छ कि—'चेतनालक्षण जीव र

चेतनारहित अजीव अर्थात् जड़ हो। सत्कर्मरूप पुद्गल पुण्य र पापकर्मरूप पुद्गल पाप गराउँदछन्।'

समीक्षक—जीव र जड़को लक्षण त ठीक छ, तर जड़रूप पुद्गल कहिल्यै पाप-पुण्यरूप हुन सक्तैनन्। किनकि पाप-पुण्य गर्ने स्वभाव चेतनमा हुन्छ। हेर, यो जति पनि जड़ पदार्थ छन्, ती सबै पाप-पुण्यरहित छन्। जीवलाई अनादि मान्दछौ, यो त ठीक कुरा हो तर त्यसै अल्प र अल्पज्ञ जीवलाई मुक्तिदशामा सर्वज्ञ मान्नु झूट हो, किनकि अल्प र अल्पज्ञको सामर्थ्य पनि सर्वदा ससीम रहन्छ।

जैनीहरू जगत्, जीव, जीवका कर्म र बन्धलाई अनादि मान्दछन्। यहाँ पनि जैनीहरूका तीर्थकर झुक्किएका हुन्। किनकि संयुक्त जगत्को कार्यकारण प्रवाहले कार्य, जीवका कर्म र बन्ध पनि प्रवाहले अनादि छन्, स्वरूपले अनादि हुनसक्तैनन्। जब यस्तो अनादि मान्दछौ भने कर्म र बन्धको छुट्ने कुरा किन मान्दछौ? किनकि अनादि पदार्थ त कहिल्यै छुट्न सक्तैन। अनादि पनि नाश हुन्छ भन्छौ भने तिम्रा सबै अनादि पदार्थहरूको नाश हुने कुरा आउने छ। अनि यसो हुँदा सबै कर्म नष्ट हुने कुरा मान्नुपर्छ। अनि अनादिलाई नित्य मान्छौ भने कर्म र बन्धन पनि नित्य हुने छ जब सबै कर्मको नाशको प्रसंग उत्पन्न हुनेछ र जब अनादिलाई नित्य मान्नेछौं भने कर्म र बन्ध पनि नित्य हुनेछ। अनि सबै कर्म छुट्नाले मुक्ति हुने कुरा मान्दछौ भने सबै कर्म छुट्नुरूप मुक्तिको निमित्त भयो। त्यसो हुँदा नैमित्तिकी मुक्ति हुनेछ भने त्यो सधैं रहन सक्तैन। अनि कर्म कर्त्ताको नित्य सम्बन्ध हुनाले कर्म पनि कहिल्यै छुट्नु सक्तैनन्। अनि तिमीले आफ्नो मुक्ति र तीर्थकरहरूको मुक्तिलाई नित्य मानेका छौ, यसो हुनसक्तैन।

प्रश्न—धान आदि अन्नको बोक्रो उतार्नाले वा अग्निको संयोगले त्यो बिउ फेरि न उम्रने भए जस्तै मुक्तिमा गएको जीव फेरि जन्म-मरणरूप संसारमा आउँदैन।

उत्तर—जीव र कर्मको सम्बन्ध बोक्रो र बिउको जस्तो होइन। यिनको त समवाय सम्बन्ध छ। यसैकारण अनादिकाल देखि जीव र त्यसमा कर्म तथा कर्तृत्व शक्तिको सम्बन्ध छ। उसमा कर्म गर्ने शक्तिको अभाव मानेमा सबै जीव ढुङ्गा सरह हुनेछन् र मुक्तिलाई भोग्ने सामर्थ्य पनि रहने छैन। अनादिकालको कर्मबन्धन छुटेर जीव मुक्त हुन्छ भने तिम्रो नित्य मुक्तिबाट पनि छुटेर बन्धनमा पर्नेछ। किनकि कर्मरूप मुक्तिका साधनहरूबाट पनि छुटेर जीव मुक्त हुने कुरा माने जस्तै नित्य

मुक्तिबाट पनि छुटेर बन्धनमा पर्नेछ। साधनहरूबाट सिद्ध भएको पदार्थ कहिल्यै नित्य हुनसक्तैन। अनि साधन सिद्ध नभई मुक्ति मान्दछौ भने कर्मविना नै बन्धन प्राप्त हुनसक्नेछ। जसरी वस्त्रमा मैलो लाग्दछ र धुनाले छुट्तछ, फेरि मैलो लाग्दछ त्यस्तै मिथ्यात्व आदि हेतुहरूबाट राग द्वेष आदिको आश्रयले जीवलाई कर्मरूप फल लाग्दछ। अनि सम्यक् ज्ञान दर्शन चरित्रबाट निर्मल हुन्छ र मैलो लाग्दछ र धुनाले छुट्तछ, फेरि मैलो लाग्दछ त्यस्तै मिथ्यात्व आदि हेतुहरूबाट रागद्वेष आदिको आश्रयले जीवलाई कर्मरूप फल लाग्दछ। अनि सम्यक् ज्ञान दर्शन चरित्रबाट निर्मल हुन्छ र मैलो लाग्नका कारणहरूबाट मैलो लाग्ने कुरा मान्दछौ भने मुक्त जीव संसारी हुने र संसारी जीव मुक्त हुने कुरा अवश्य मान्नुपर्नेछ। किनकि निमित्तहरूबाट मलिनता छुटे जस्तै निमित्तहरूबाट मलिनता लाग्दछ। यसकारण जीवको मुक्ति र बन्धन प्रवाहरूपले अनादि मान, अनादि अनन्तताले होइन।

प्रश्न—जीव कहिल्यै मलरहित होइन, मल सहित हुन्छ।

उत्तर—जीव कहिल्यै निर्मल थिएन भने कहिल्यै निर्मल थिएन भने कहिल्यै निर्मल हुन पनि सक्तैन। जसरी सफा कपड़ामा पछिबाट लागेको मैलोलाई धोएर छुटाइन्छ त्यसको स्वाभाविक सेतो वर्णलाई छुटाउन सकिदैन र कपड़ामा मैलो फेरि पनि लाग्दछ, यस्तै मुक्तिमा पनि हुन्छ।

प्रश्न—जीव पूर्वोपार्जित कर्मबाटै शरीर धारण गर्दछ, ईश्वरलाई मान्नैपर्दैन।

उत्तर—केवल कर्म नै शरीर धारणमा कारण भएर, ईश्वर कारण नभए त्यो जीव धेरैजसो दुःख हुने किसिमका खराब जन्म कहिल्यै धारण गर्ने थिएन र सधैं असल असल जन्म धारण गर्ने गर्दथ्यो। कर्म प्रतिबन्धक छन् भन्छौ भने पनि चोर आफैं आएर खोरमा थुनिंदैन, आफैं फँसी पनि खाँदैन, तर राजाको व्यवस्थाले दण्ड भोग्दछ, अर्थात् राजा दण्ड दिन्छ। यस्तै किसिमले जीवलाई शरीर धारण गराउने र उसका कर्मानुसार फल दिने परमेश्वरलाई तिमी पनि मान।

प्रश्न—मद अर्थात् नशा जस्तै कर्मफल स्वयं प्राप्त हुन्छ। फल दिन अर्काको आवश्यकतै छैन।

उत्तर—यस्तो हुने भए मद्यपान गर्ने बानी बसेकोलाई कम नशा र बानी बसी नसकेकोलाई धेर नशा चढ़े जस्तै सधैं धैरै पापपुण्य गर्नेहरूलाई कम र कहिलेकाहीं अलि-अलि पाप-पुण्य गर्नेहरूलाई बढ़ी फल मिल्नु पर्ने हुन्छ र साना कर्म गर्नेलाई ठूला फल मिल्नु पर्ने हुन्छ।

प्रश्न—जसको जस्तो स्वभाव हुन्छ, त्यसलाई त्यस्तै फल हुने गर्दछ।

उत्तर—स्वभावैले भएको कुरा छुट्न वा मिल्न सम्भव हुँदैन। हँ, शुद्ध सफा वस्त्रमा निमित्तले मैलो लागे जस्तै त्यसलाई छुटाउने निमित्तहरूबाट छुट्तछ पनि, यसो मान्नु उचित हुन्छ।

प्रश्न—संयोग न भई कर्मको परिणाम हुँदैन। जस्तै दूध र अमिलोकोसंयोग न भई दही बन्दैन। यसै गरी जीव र कर्मका योगबाट कर्मको परिणाम हुन्छ।

उत्तर—दूध र अमिलोलाई मिसाउने तेस्रो भएजस्तै जीवहरूलाई कर्मका फलसँग मिलाउने तेस्रो ईश्वर हुनुपर्दछ, किनकि जड़ पदार्थ आफैं नियमपूर्वक संयुक्त हुँदैनन्=मिल्दैनन्। अनि जीव पनि अल्पज्ञ हुनाले स्वयं आफ्ना कर्मफललाई प्राप्त गर्न सक्तैनन्। यसबाट ईश्वर स्थापित सृष्टि क्रम बेगर कर्मफलको व्यवस्था हुनसक्तैन।

प्रश्न—जो कर्मबाट मुक्त हुन्छ त्यही ईश्वर भनिन्छ।

उत्तर—अनादि कालदेखि जीवसँग कम लागेका छन्, भने जीव तीबाट कहिल्यै मुक्त हुनसक्नेछैनन्।

प्रश्न—कर्मको बन्ध सादि छ।

उत्तर—कर्मको बन्ध सादि छ भने कर्मको योग अनादि हुँदैन र संयोगको आदिसमयमा जीव निष्कर्म हुनेछ। अनि निष्कर्मलाई कर्म आइ लाग्यो भने मुक्तहरूलाई पनि लाग्नेछ। अर्को कुरा, कर्म र कर्ताको समवाय अर्थात् नित्य सम्बन्ध हुन्छ। त्यो सम्बन्ध कहिल्यै छुट्तैन। यसकारण नवौं समुल्लासमा लेखिए अनुसार नै मान्नु ठीक हुन्छ।

जीवले आफ्नो ज्ञान र सामर्थ्यलाई जतिसुकै बढाए पनि त्यसमा परिमित ज्ञान र ससीम सामर्थ्य रहनेछ। कहिल्यै ईश्वरजस्तो हुन सक्तैन। हँ, जति सामर्थ्य बढ़ाउनु उचित हुन्छ, त्यति योगद्वारा बढाउन सक्तछ।

अनि जैनीहरूमा आर्हतहरू देहको परिमाणबाट जीवको पनि परिमाण मान्दछन्। तीसँग 'यसो हुने हो भने हात्तीको जीव कमिलामा र कमिलाको जीव हात्तीमा कसरी समाहित हुन् सक्तछ?' भनी सोध्नुपर्दछ। यो पनि एउटा मूर्खताको कुरा हो। किनकि जीव एउटा परमाणुमा पनि रहन सक्ने एउटा सूक्ष्म पदार्थ हो। तर त्यसका शक्तिहरू शरीरमा प्राण बिजुली र नाड़ी आदिसँग संयुक्त भैरहन्छन्। तीबाट सबै शरीरको यथास्थिति बुझ्दछ। असल संगतबाट असल र खराब संगतबाट खराब हुन्छ।

अब जैनीहरू यस प्रकारको धर्म मान्दछन्—

मूल— रे जीव भव दुहाइं इक्कं चिय हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं पणमंतो सुह कय्ये सुह कय्ये मूढ मुसिओसि॥

—प्रकरण रत्नाकर भाग २। षष्ठी शतक ६०। सूत्राङ्क ३॥

संक्षेपमा अर्थ—रे जीव! एउटै जिनमत श्रीवीतरागभाषित धर्म संसार सम्बन्धी जन्म, मरण आदि दुःखहरूको हरणकर्त्ता हो। यसै गरी जैन मतकाले सुदेव र सुगुरुलाई पनि जान्नुपर्दछ। आफ्नो कल्याणको निम्ति वीतराग ऋषभदेव देखि महावीरसम्म वीतराग देव बाहेक अरू हरि, हर, ब्रह्म आदिको पूजा गर्ने सबै जीव वा मनुष्य ठगिएका छन्।

यसको भावार्थ हो—जैनमतका सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्मलाई छोडेर अरू कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्मको सेवन गर्नाले केही पनि कल्याण हुँदैन।

समीक्षक—अब विद्वान्हरूले 'यिनका धर्मका पुस्तक कस्ता निन्दायुक्त छन्' भन्ने कुरा विचार गर्नुपर्दछ।

मूल— अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो।
धन्नाणं कयच्छाणं निरन्तरं वसइ हिययम्मि॥

—प्रकरणरत्नाकर भाग २। षष्टी ६०। सू० १॥

अरिहन् देवेन्द्रकृत पूजादिकनका योग अर्को कुनै उत्तम पदार्थ छैन। यस्तो देवहरूको देव शोभायमान अरिहन्त देव ज्ञान क्रियावान्, शास्त्रहरूको उपदेष्टा, शुद्ध कषाय मलरहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित धर्म नै दुर्गतिमा पर्ने प्राणिहरूको उद्धार गर्दछ र अरू हरि हर आदिको धर्मले संसारबाट उद्धार गर्दैन। तत्सम्बन्धी पञ्च अरिहन्तादिक परमेष्ठीलाई नमस्कार। यी चार पदार्थ धन्य हुन् अर्थात् श्रेष्ठ छन्। अर्थात् दया, क्षमा, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन र चारित्र यो जैनहरूको धर्म हो।

समीक्षक—मनुष्यमात्र माथि दया छैन भने त्यो न त दया हो, न क्षमा हो। ज्ञानको सट्टा अज्ञान, दर्श न अन्धेर र चारित्रको सट्टा भोकभोकै मर्नु कुन चाहीं राम्रो कुरा हो त?

जैनमतको धर्मको प्रशंसा—

मूल— जइ न कुणसि तव चरणं,
न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणम्।
ता इत्तियं सक्किसि जं देवो इक्क अरिहन्तो॥

—प्रकरण०भा०२। षष्ठी ६०। सू० २॥

हे मनुष्य! तिमीले तप चारित्र गर्न सक्तैनौ, सूत्र पढ्न सक्तैनौ, प्रकरण आदिको विचार गर्न सक्तैनौ र सुपात्र आदिलाई दान दिन सक्तैनौ भने पनि तिमीले एउटा अरिहन्त नै हाम्रा आराधनाका योग्य सुगुरु, सुधर्म जैनमतमा श्रद्धा राख्नु सर्वोत्तम कुरा र उद्धारको कारण हो।

समीक्षक—हुन त दया र क्षमा राम्रो कुरा हो तर पक्षपातमा फस्नाले दया अदया र क्षमा अक्षमा हुनपुग्दछ। यसको प्रयोजन कुनै जीवलाई दु:ख नदिनु हो। यो कुरा सर्वथा सम्भव हुनसक्तैन। किनकि दुष्टलाई दण्ड दिनु पनि दया अन्तर्गत नैपर्दछ। एउटा दुष्टलाई दण्ड नदिइएमा हजारौं मानिसले दु:ख पाउनेछन्। यसकारण त्यो दया अदया र क्षमा अक्षमा हुनेछ।

सबै प्राणीहरूको दु:खको नाश र सुख प्राप्तिको उपाय गर्नु दया भनिन्छ भन्ने कुरा त ठीक छ। केवल पानी छानेर पिउनु र क्षुद्र जन्तुहरूलाई बचाउनु नै दया भनिदैन तर यस किसीमको दया जैनीहरूको भनाइ मात्र हो किनकि ती त्यस्तो व्यवहार त गर्दैनन्। कुनै पनि मतावलम्बी मानिस आदि प्रति दया गरेर अन्न–पान आदिले उसको सत्कार गर्नु तथा अरू मतका विद्वान्हरूको सम्मान र सेवा गर्नु के दया होइन?

यिनको दया सच्चा भएको भए 'विवेकसार' को पृष्ठ २२१ मा हेर के लेखेको छ—

'पहिलो 'परमती=अरू मतावलम्बीको स्तुति' अर्थात् जैनमत बाहेक अरू मत मान्नेको गुण कीर्तन कहिल्यै गर्नुहुन्न। दोस्रो—'नमस्कार' अर्थात् अरू मतावलम्बीको वन्दना गर्नुहुँदैन। तेस्रो—'आलापन' अर्थात् अरू मत मान्नेसँग थोरै बोल्नुपर्दछ। चौथो—'संलपन' अर्थात् अन्य मतको व्यक्ति सँग बार–बार बोल्नु हुँदैन। पाँचौं—'अन्नवस्त्रादि दान' अर्थात् अर्को विचारको मानिसलाई अन्न वस्त्र आदि वा खाने पिउने वस्तु पनि दिनु हुँदैन र छैठौं—'गन्धपुष्पादि दान' अर्थात् अरू मतावलम्बीका प्रतिमा पूजाको निम्ति गन्ध पुष्प आदि पनि दिनु हुँदैन। यी छ यतना अर्थात् यी छ किसिमका कर्म जैनहरूले कहिल्यै गर्नुहुँदैन।'

समीक्षक—अरू मतावलम्बी मानिसमाथि यी जैनीहरूको कति अदया, कुदृष्टि र द्वेष रहेछ भन्ने कुरा बुद्धिमान्हरूले विचारणीय छ। अरू मतका मानिस प्रति यति अदया हुनाले जैनीहरूलाई दयाहीन भन्न सम्भव हुन्छ, किनकि आफ्ना घरका मानिसकै सेवा गर्नु विशेष धर्म भनिंदैन। उनका मतालम्बी व्यक्ति उनीहरूका घरैका जस्ता हुन्।

यसकारण उनैको सेवा गर्दछन्, अरू मतावलम्बीहरूको गर्दैनन्। अनि कुन बुद्धिमान्ले उनीहरूलाई बुद्धिमान् भन्नसक्तछ?

विवेकसार—पृष्ठ १०८ मा लेखेको छ—'मथुराका राजाको नमुची नामक दीवानलाई जैन यतिहरूले आफ्नो विरोधी ठानेर मारे र आलोयणा=प्रायश्चित्त गरेर शुद्ध भए।'

समीक्षक—के यो पनि दया र क्षमाको नाशक कर्म होइन? अरू मतावलम्बी प्रति प्राणै लिने सम्मको वैरबुद्धि राख्नछन् भने यिनलाई दयालुको सट्टा हिंस्रक भन्नु नै सार्थक हुन्छ।

अब सम्यक्त्व दर्शनादिको लक्षण 'आर्हत प्रवचन संग्रह, परमागमनसार' मा बताइएको छ—'सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान र चारित्र' यी चार मोक्षमार्गका साधन हुन्। यिनको व्याख्या योगदेवले गरेको छ—जुन रूपबाट जीवादि द्रव्य अवस्थित छन्, त्यसै रूपबाट जिन प्रतिपादित ग्रन्थानुसार विपरीत अभिनिवेशादि रहित श्रद्धा अर्थात् जिनमत प्रति प्रीति नै 'सम्यक् श्रद्धान' र 'सम्यक् दर्शन' हो—

रुचिर्जिनोतक्तत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते।

जिनोक्त तत्त्वमा सम्यक् श्रद्धा राख्नुपर्दछ अर्थात् अरू कतै श्रद्धा राख्नु हुँदैन।

यथावस्थिततत्त्ववानां संक्षेपाद् विस्तरेण वा।
यो बोधस्तमत्राहु: सम्यग्ज्ञानं मनीषिण:।

जीवादि तत्त्व जुन किसिमका छन्, तिनको संक्षेप वा विस्तारपूर्वक हुने बोधलाई नै बुद्धिमान्हरू 'सम्यक् ज्ञान' भन्दछन्।

सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।
कीर्त्तितं तदहिंसादितव्रभेदेन पञ्चधा॥
अहिंसासूनृतास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रह:॥

सबै किसिमले अरू निन्दनीय मतसँगको सम्बन्धलाई त्याग्नु 'चारित्र' भनिन्छ र अहिंसा आदि भेदले 'व्रत' पाँच किसिमको छ। पहिलो—'अहिंसा' कुनै प्राणिलाई नमार्नु, दोस्रो—'सूनृता' प्रियवाणी बोल्नु, तेस्रो—'अस्तेय' चोरी नगर्नु, चौथो—'ब्रह्मचर्य' उपस्थ इन्द्रियको संयम र पाँचौं—'अपरिग्रह' सबै वस्तु त्याग गर्नु।

समीक्षक—यिनमा धेरै जसो असल कुरा छन्। अर्थात् अहिंसा र चोरी आदि निन्दनीय कर्मको त्याग राम्रो कुरा हो, तर अरू मतको निन्दा गर्ने आदि दोषकाकारण यी सबै असल कुरा पनि दूषित भएका

छन्। जस्तै पहिलो सूत्रमा 'अरू हरि हर आदिको धर्म संसारबाट उद्धार गर्ने होइन भनिएको छ। जुन मतावलम्बीका ग्रन्थ हेर्नालेनै पूर्ण विद्या र धार्मिकता पाइन्छ त्यसैलाई खराब भन्नु के सानोतिनो निन्दा हो? अनि आफ्ना भने अघि लेखिए अनुसारका महा असम्भव कुरा भन्ने तीर्थंकरहरूको स्तुति गर्नु केवल जिद्दीका कुरा हुन्। कुनै जैनीले केही चारित्र गर्न नसके पनि, पढ्न नसके पनि, दान दिने सामर्थ्य नभए पनि 'जैनमत सच्चा हो' यति भन्नाले मात्र के ऊ उत्तम हुन्छ? र अरू मतावलम्बी श्रेष्ठ पनि अश्रेष्ठ हुनेछन्? यस्ता कुरा गर्ने मानिसलाई भ्रान्त र बालबुद्धि न भने के भनौं र?

यसमा यिनका आचार्य्य पूर्ण विद्वान् नभएर स्वार्थी थिए भन्ने कुरा विदित हुन्छ। किनकि सबैको निन्दा नगरेका भए यस्ता झूठा कुरामा कोही पनि फस्नेथिएन र उनीहरूको स्वार्थपूर्ण प्रयोजन सिद्ध हुनेथिएन। हेर, अरूले 'जैनीहरूको मत डुबाउने र वेदमत सबैको उद्धार गर्ने, हरि हर आदि देव सुदेव र यिनका ऋषभदेव आदि सबै कुदेव हुन्' भनेमा के तिनीहरूलाई त्यस्तै नराम्रो लाग्दैन होला? यिनका आचार्य र उनका मतावलम्बीहरूका अरू भूल पनि हेर—

मूल— जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउँ।
आणा भंगे पाँवं ता जिणमय दुक्करं धम्मम्॥

—प्रकरण० भाग २। षष्ठी० ६०। सू० ११॥

उन्मार्ग उत्सूत्रका लेख देखाउनाले हुने जिनवर अर्थात् वीतराग तीर्थंकरहरूको आज्ञाको उल्लंघन नै दु:खको हेतु पाप हो। जिनेश्वरले बताएका सम्यक्त्व आदि धर्मको ग्रहण गर्न धेरै कठिन हुनाले जिन आज्ञा को भंग नहुने किसिमको व्यवहार गर्नुपर्दछ।

समीक्षक—आफ्नै मुखबाट आफ्नो प्रशंसा र आफ्नै धर्मलाई ठूलो भन्नु तथा अरूको निन्दा गर्नु मूर्खताको कुरा हो। किनकि त्यसैको प्रशंसा ठीक हुन्छ उसको प्रशंसा अरू विद्वान्ले गरून्। आफ्नो मुखबाट आफ्नो प्रशंसा त चोर पनि गर्दछन्। त के ती प्रशंसनीय हुन सक्तछन्? यस्तै किसिमका यिनका कुरा हुन्।

मूल— बहुगुण विज्झा निलओ उस्सुत्तभासी तहावि मुत्तवो।
जह वर मणिजुत्तो विहु विग्धकरो विसहरो लोए॥

—प्रकरण० भा० २, षष्ठी० ६०। सू० १८॥

विषधर सर्पमा रहेको मणि त्याग्न योग्य भएजस्तै जैनमतमा नभएको जतिसुकै ठूलो धार्मिक पण्डित भए पनि त्यसलाई जैनीहरूले

त्याग्नै उचित हुन्छ।

समीक्षक—हेर, कत्रो, भूलको कुरा हो यो? यिनका चेला अर आचार्य विद्वान् भएका भए विद्वान्हरूसँग प्रेम गर्ने थिए। यिनका तीर्थंकर समेत अविद्वान् हुन् भने विद्वान्हरूको सम्मान किन पो गर्नेछन् र? फोहर मल वा धुलोमा रहेको सुनलाई के कसैले त्याग्दछ? यसबाट जैनीहरू बाहेक त्यस्ता पक्षपाती, जिद्दी, दुराग्रही, विद्याहीन अरू को होलान् र? भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

मूल— अइसय पाविय पावा धम्मिअ पव्वेसु तोवि पावरया।
न चलन्ति सुद्ध धम्मा, धन्ना किविपाव पव्वेसु॥

—प्रकरण०भा० २। षष्ठी० ६०। सू० २९॥

अन्य दर्शनों कुलिंगी हुन्छन् अर्थात् जैनमत विरोधीको दर्शन पनि जैनीहरूले गर्नुहुँदैन।

समीक्षक—यो कति लाछीपनको कुरा हो? भन्ने कुरा बुद्धिमान्हरूले विचार गर्नुपर्ने हो। सत्य त के हो भने जसको मत सत्य छ, त्यसलाई कसैको डर हुँदैन। यिनका आचार्यलाई 'हाम्रो मत पोलपाल=खोक्रो छ, अरूलाई सूनायौं भने खण्डन हुनेछ' भन्ने कुरा थाहा थियो। यसकारण 'सबैको निन्दा गर र मूर्खहरूलाई फँसाऊ' भन्ने नीति बनाएका हुन्।

मूल— नामंपि तस्स असुहं, जेण निदिठाइ मिच्छ पव्वाइ।
जेसिं अणुसंगाउ, धम्मीणवि होइपाव मइ॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी० ६०। सू० २७॥

जैन धर्मभन्दा विरुद्ध सबै धर्म मानिसलाई पापी बनाउँदछन्। यसकारण अरू कसैको धर्मलाई नमानेर जैन धर्मलाई नै मान्न राम्रो हुन्छ।

समीक्षक—यसबाट 'जैनमार्ग सबैसँग वैर-विरोध, निन्दा-ईर्ष्या आदि दुष्ट कर्मरूप गहिरो समुद्रमा डुबाउने खालको हो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। जसरी जैनीहरू सबैको निन्दा गर्दछन्, अरू कुनै पनि मतावलम्बी त्यस्तो महानिन्दक र अधर्मी नहोला। के सबैको एकोहोरो निन्दा र आफ्नो अति प्रशंसा गर्नु शठ धूर्त मानिसहरूको काम होइन? विवेकीहरू जुनसुकै मतावलम्बी भए पनि तिनमा असललाई असल र खराबलाई खराब भन्दछन्।

मूल— हा हा गुरुअ अकज्झं सामी न हु अच्छि कस्स पुक्करिमो।
कह जिण वयण कह सुगुरु सावया कह इय अकज्झं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ३५॥

सर्वज्ञभाषित जिनवचन, जैनका सुगुरु र जैन धर्म कहाँ ? उनका विरुद्ध अन्य मार्गका उपदेशक कुगुरु कहाँ ? अर्थात् हाम्रा सुगुरु, सुदेव, सुधर्म र अरूका कुदेव, कुगुरु, कुधर्म हुन्।

समीक्षक—यो कुरा बयर बेच्ने कुप्रीको जस्तै हो। जसरी ऊ आफ्ना अमिला बयरलाई गुलिया र अरूका गुलिया-मीठा बयरलाई अमिला र निकम्मा बताउँछे, यस्ते जैनीहरूका कुरा छन्। यिनीहरू आफ्नो मतभन्दा भिन्न मतावलम्बीहरूको सेवामा ठूलो अकार्य अर्थात् पाप सम्झन्छन्।

मूल— सप्पो इक्क मरणं कुगुरु अणंताइ देह मरणाइ।
तो वरिसप्पं गहियुं मा कुगुरुसेवनं भद्दम्॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ३७॥

अघि लेखिए अनुसार सर्पमा मणिको पनि त्याग गर्नु उचित भए जस्तै अरू मार्गीहरू—मा श्रेष्ठ धार्मिक व्यक्तिहरूको पनि त्याग गरिदिनुपर्दछ। अब अरू मतावलम्बीहरूको त्यसभन्दा पनि बढ़ी निन्दा गर्दछन्—जैनमतमा नभएका सबै कुगुरु अर्थात् ती सर्पभन्दा पनि खराब छन्। कहिल्यै तिनको दर्शन, सेवा, संगत गर्नुहुँदैन। किनकि सर्पको संगतले एक पल्ट मरिन्छ तर अन्यमार्गी कुगुरुहरूको संगतबाट अनेक पल्ट जन्म-मरणमा पर्नुपर्दछ। यसकारण हे भद्र! अन्य मार्गीहरूका कुगुरुहरूको नजिक उभिनु पनि ठीक छैन। किनकि तिमीले अन्यमार्गीहरूको अलिकति पनि सेवा गर्यौ भने दुःखमा पर्नेछौ।

समीक्षक—हेर, जैनीरू जत्तिका कठोर भ्रान्त, द्वेषी, निन्दक, भूलमा परेका अरू मतावलम्बी कोही पनि नहोला। यिनीहरूले मनमा 'हामीले अरूको निन्दा र आफ्नो प्रशंसा न गरेमा हाम्रो सेवा र प्रतिष्ठा हुनैछैन' भन्ने विचार गरेका छन्। तर यो उनीहरूको दुर्भाग्यको कुरा हो। किनकि उत्तम विद्वान्हरूको संगत सेवा नगरेसम्म यिनलाई यथार्थ ज्ञान र सत्यधर्मको प्राप्ति कुरालाई ग्रहण गर्नु उचित छ र यो उनीहरूका लागि ठूलो कल्याणको कुरा हो।

मूल— किं भणिमो किं करिमो ताण हयासाण धिट्ठ दुट्ठाणं।
जे दंसिऊण लिंगं खिवन्ति न रयम्मि मुद्ध जणं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ४०॥

कल्याणको आशा नष्ट भैसकेको, धृष्ट, खराब काम गर्नमा अतिचतुर, दुष्ट र दोषयुक्तसँग भन्नु र गर्नु के छ र ? किनकि त्यस्ताको उपकार गरेमा उल्टो उपकार गर्नेकै नाश गर्दछ। कसैले अन्धो सिंह माथि दया गरेर त्यसलाई खोल्न गएमा त्यस सिंहले खोल्नेलाई नै खाए जस्तै

कुगुरु अर्थात् अन्यमार्गीहरूको उपकार गर्नु भनेको आफ्नै नाश गर्नु हो। अर्थात् ती अन्यमतावलम्बी देखि सधैं टाढै बस्नुपर्दछ।

समीक्षक—जैनहरूले सोचे जस्तै अरू मतावलम्बीहरूले पनि सोच्ने हो भने जैनीहरूको कति दुर्दशा होला ? अनि कैसेल कुनै किसिमले पनि उनीहरूको उपकार नगरेमा उनीहरूका धेरै काम बिग्रिएर कति दुःख पाउँदा हुन् ? जैनीहरू अरूका लागि त्यस्तै किन सोच्दैनन्।

मूल— जह जह तुट्टइ धम्मो जह जह दुट्ठाण होइ अइ उदडं।
समद्दिट्ठि जियाणं तह तह उल्लसइ समत्तं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ४२॥

दर्शनभ्रष्ट निह्नव, पासच्छा, उसन्ना, कुसीलिया आदि र अरू दर्शनलाई मान्ने त्रिदण्डी, परिव्राजक तथा विप्र आदि दुष्टहरूको जति जति धेरै बल, सत्कार, पूजा आदि हुँदैजान्छ त्यति त्यति नै सम्यग्दृष्टि जीवहरूको सम्यक्त्व विशेष प्रकाशित हुन्छ, यो ठूलो आश्चर्य हो।

समीक्षक—ल हेर, यी जैनीभन्दा बढ़ी ईर्ष्या, द्वेष र वैरबुद्धियुक्त अरू कोही होला त ? हँ, अरूको मतमा पनि ईर्ष्या द्वेष छ तर जैनीहरूमा भएजति कुनैमा पनि छैन। द्वेष नै पापको मूल भएकाले जैनीहरू पापाचारी किन होइनन् ?

मूल— संगोवि जाण अहिउ, तेसि धम्माइ जे पकुव्वन्ति।
मुत्तूण चोरसंगं करन्ति ते चोरियं पावा॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ७५॥

यसको मुख्य प्रयोजन यति मात्र हो—मूढ व्यक्ति चोरको संगतबाट नाक काटिने आदि दण्ड देखि न डरे जस्तै जैनमत बाहेकका चोरधर्ममा स्थित व्यक्ति आफ्नो अकल्याण देखि डर्दैनन्।

समीक्षक—मानिस प्रायः आफू जस्तै अरूलाई सम्झने गर्दछ। जैनको मत साहुकारको मत र अरू सबैको मत चोरमत हो भन्ने कुरा के कहिल्यै सत्य हुनसक्तछ ? मानिसमा अति अज्ञान र कुसँगबाट बुद्धि भ्रष्ट भएसम्म अरूसँग अति ईर्ष्या, द्वेष, दुष्टता आदिलाई छोड्दैन। जैनमत जस्तो अरूको द्वे गर्ने अरू कुनै मत छैन।

मूल— जच्छ पसुमहिस लरका पव्वं होमन्ति पाव नवमीए।
पूअन्ति तंपि सड्ढा हा हीला वीयरायस्स॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ७६॥

अघिल्ला सूत्रमा मिथ्यात्वी अर्थात् जैन मार्ग भिन्न सबै मिथ्यात्वी र आफू सम्यक्त्वी, अर्थात् जैनहरू सबै पुण्यात्मा र अरू सबै पापी हुन्

भनिएको छ। यसकारण मिथ्यात्वीको धर्मको स्थापना गर्ने पापी हुन्छ।

समीक्षक—अरूका ठाउँमा चामुण्डा, कालिका, ज्वाला प्रमुखका आगाड़ि पापनवमी अर्थात् दुर्गानवमी तिथि आदि सबै खराब भएजस्तै के तिम्रा महाकष्टदायक पजूसण अर्थात् पर्यूषण आदि व्रत खराब होइनन्? यहाँ वाममार्गीहरूको खण्डन त ठीक छ तर शासनदेवी र मरुतदेवी आदिलाई मान्नेहरूको पनि खण्डन गरेको भए राम्रो हुन्थ्यो। 'हाम्री देवी हिंस्रक होइन' भन्दछन् भने यिनको कथन झूटो हो। किनकि शासनदेवीले एउटा पुरुषको र अर्को बोकाको आँखा निकालेकी थिई। अनि त्यो राक्षसी र दुर्गा, कालिकाकै संगिनी, बहिनी किन होइन। अनि आफ्ना पच्चखाण आदि व्रतहरूलाई अति श्रेष्ठ र नवमी आदिलाई दुष्ट भन्नु मूर्खताको कुरा हो, किनकि अरूका उपवासको चाहिं निन्दा र आफ्ना उपवासको स्तुति गर्नु मूर्खताकै कुरा हो। हँ, सत्यभाषण आदि व्रत धारण गर्न सबैको लागि उत्तम हुन्छ। जैनीहरू र अरू कसैको पनि उपवास सत्य होइन।

मूल— वेसाण वदियाणय माहण डुंबाण जरकसिरकाणं।
भत्ता भरकट्ठाणं, वियाणं जन्ति दूरेणं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ८२॥

यसको मुख्य प्रयोजन यो हो—वेश्या, चारण, भाट आदि व्यक्तिहरू, ब्राह्मण, यक्ष, गणेश आदि, मिथ्यादृष्टि देवी आदि देवताहरूको भक्त र यिनलाई मान्नेहरू सबै डुब्ने र डुबाउने हुन्। किनकि ती तिनीसँग ती सबै वस्तु माँग्दछन् र वीतराग पुरुष देखि टाढै बस्तछन्।

समीक्षक—अन्य मार्गीहरूका देवताहरूलाई झूटा भन्नु र आफ्ना देवताहरूलाई सच्चा भन्नु केवल पक्षपातको कुरा हो। अनि अरू वाममार्गीहरूका देवी आदिको निषेध गर्दछन् तर यिनको 'श्राद्धदिनकृत्य' को पृष्ठ ४६ मा लेखेको छ—'रात्रिमा भोजन गरेको कारण एउटा पुरुषलाई 'शासनदेवी' ले थप्पड़ मारी। उसको एउटा आँखा निकाली। त्यसको सट्टा बोकाको आँखा झिकेर त्यस मानिसलाई लगाइदिई।' यस देवीलाई हिंसक किन मान्दैनौ? रत्नसार भाग १ पृष्ठ ६७ मा हेर के लेखेको छ—'मरूत देवी ढुङ्गाको मूर्त्ति भएर बटुवाहरूको सहायता गर्दथी।' यसलाई पनि त्यस्तै किन मान्दैनौ?

मूल— किं सोपि जणणि जाओ, जाणो जणणी किं गओ विद्धिं।
जइ मिच्छरओ जाओ, गुणेसु तह मच्छरं वहइ॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ८१॥

जैनमत विरोधी मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्म मान्नेहरू किन जन्मे? जन्मिहाले पनि किन बढ़े? अर्थात् शीघ्र नष्ट भएका भए राम्रै हुन्थ्यो।

समीक्षक—यिनका वीतरागले भनेको दया-धर्म त हेर। अरू मतावलम्बीहरूलाई बाँच्न दिन पनि चाहँदैनन्। यिनको दया-धर्म भनाइएको मात्र हो। जेजति छ त्यो पनि क्षुद्र जीव र पशुका लागि छ। जैन भिन्न मानसिका लागि यिनमा दया-धर्म छैन।

मूल— सुद्धे मग्गे जाया सुहेण गच्छत्ति सुद्ध मग्गंमि।
जे पुण अमग्गजाया मग्गे गच्छत्ति ते चुय्यं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ८३॥

यसको मुख्य प्रयोजन हो—कोही जैन कुलमा जन्मेर मुक्त भएमा केही आश्चर्य छैन, तर जैन भिन्न कुलमा जन्मेका मिथ्यात्वी अन्यमार्गीले मुक्ति प्राप्त गरेमा ठूलो आश्चर्यको कुरा हुन्छ। यसको फलितार्थ के भने जैनीहरू नै मुक्ति प्राप्त गर्दछन्, अरू गर्दैनन्। जैनमतलाई ग्रहण नगर्नेहरू नरकगामी हुन्।

समीक्षक—के जैनमतमा कुनै दुष्ट वा नरकगामी हुँदैन? जैनी सबै मुक्तिमा जान्छन् र अरू कोही जाँदैन? के यो उन्मत्तपनको कुरा होइन? मूर्ख व्यक्ति बाहेक यस्ता कुरालाई कसले मान्न सक्तछ र?

मूल— तिच्छयराणं पूआ, संमत्त गुणाण कारिणी भणिया।
सविय मिच्छत्तयरी, जिण समये देसिया पूआ॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ९०॥

संक्षिप्त अर्थ—एउटै जिनमूर्त्तिहरूको पूजा सार हो र यस बाहेक अरूका मूर्त्तिहरूको पूजा असार हो। जिनमार्गको आज्ञा पालन गर्ने तत्त्वज्ञानी हो र नगर्ने तत्त्वज्ञानी होइन।

समीक्षक—अहा! के भन्नु र! के तिम्रा मूर्त्ति चाहिं वैष्णव आदिकै जस्ता ढुङ्गा आदि जड़पदार्थका होइनन् र? वैष्णव आदिको मूर्तिपूजा व्यर्थै भए जस्तै तिम्रो मूर्तिपूजा पनि व्यर्थै हो। तिमी आफूलाई तत्त्वज्ञानी र अरूलाई अज्ञानी बताउँछौ भने यसबाट 'तिम्रो मतमा तत्त्वज्ञान छैन' भन्ने कुरा बुझिन्छ।

मूल— जिण आणाए धम्मो आणारहि आण फुडं अहमुत्ति।
इय मुणि ऊणय तत्तं जिण आणाए कुणहु धम्मं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ९२॥

सं० अर्थ—दया-क्षमादिरूप जिनदेवको आज्ञा नै धर्म हो र त्यस बाहेक अरू सबै आज्ञा अधर्म हुन्।

समीक्षक—यो कतिसम्म अन्यायको कुरा हो ? के जैनमत बाहेक कतै कुनै पनि व्यक्ति सत्यवादी धर्मात्मा छैन ? के त्यस धार्मिक व्यक्तिलाई पनि मान्नु हुँदैन ? हँ, जैन मतावलम्बीहरू का मुख चाहिं छालाको नभएर अरू कुनै वस्तुको भएको र अरूका मुखमात्र छालाका भएको भए यो कुरा घटित हुन पनि सक्दो हो। यस्ता किसिमले आफ्नै मतका ग्रन्थ, वचन, साधु आदिको यस्तो प्रशंसा गरेको छ जसबाट जैनीहरू भाटहरूका दाज्यू नै बनेका छन्।

मूल— बन्नेमि नारायाउवि जेसि दुरकइ सम्भरं ताणम्।
भव्वाण जणइ हरिहर रिंद्धि समिद्धी वि उद्धोसं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ९५॥

सं० अर्थ—यसको मुख्य तात्पर्य यो हो—हरि हर आदि देवहरूको विभूति नरकको हेतु हो। त्यसलाई देख्नाले जैनीहरूका रौं ठाडा–ठाडा हुन्छन्। राजाको आज्ञा भङ्ग गर्नाले मानिसले दु:ख पाउने भए जस्तै जिनेन्द्रको आज्ञा भङ्ग गर्नाले जन्म–मरण–दु:ख किन पाउने छैन र?

समीक्षक—जैनीहरूका आचार्य आदिको मानसी वृत्ति अर्थात् बाहिरी कपट र ढोङ्गको लीला त हेर। अब त यिनीहरूको भित्री मनसाय पनि खुल्यो। यिनीहरू हरि हर आदि र उनका उपासकहरूको ऐश्वर्य र उन्नतिलाई देख्न पनि सक्तैनन्। अरूको उन्नति किन भयो ? भन्ने कारणले यिनका रौं ठडिन्छन्। धेरै जसो 'यिनको सबै ऐश्वर्य हामीलाई प्राप्त होओस् र यी दरिद्र भए राम्रो हुन्थ्यो' भन्ने यिनीहरूको चाहना हुँदो हो। अनि जैनीहरू राज्यशासनको चापलूसी गर्ने झूठा र डरछेरुवा हुनाले यिनीहरू राजाज्ञाको दृष्टान्त दिन्छन। के राजा का झूठा कुरा पनि मान्नु उचित हुन्छ ? जैनीहरूभन्दा बढी ईर्ष्या–द्वेषी अरू कोही पनि नहोला।

मूल– जो देइ सुद्ध धर्म्म सो परमप्पा नयम्मि न हु अन्नो।
किं कप्पद्रदुम्म सरिसो इयर तरूत होइ कइयावि॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १०१॥

सं० अर्थ—जैन धर्मका विरोधी व्यक्ति मूर्ख हुन्। अनि जिनेन्द्रभाषित धर्मको उपदेश गर्ने साधु वा गृहस्थ या ग्रन्थकर्ता तीर्थङ्कर जस्तै हुन्। ती जस्ता कोही पनि हुँदैन।

समीक्षक—किन हुँदैन ? जैनीहरूमा अल्लारेपना नभएको भए यस्तो कुरा किन मान्ने थिए र ? वेश्याहरूले आफू बाहेक अरू कसैको स्तुति नगरे जस्तै जैनीहरूको यो कुरा देखापर्दछ।

मूल— मूलं जिणिदं देवो तव्वयणं गुरुजणं महासयाणं।
सेसं पावट्ठाणं परमप्पाणं च वज्जेमि॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १०३॥

सं० अर्थ०—जैनीहरूले जिनेन्द्रदेव, तदुक्त सिद्धान्त र जिनमतका उपदेष्टाहरूको त्याग गर्नु उचित होइन।

समीक्षक—यो जैनीहरूको हठ, पक्षपात र अविद्याको फल होइन भने के हो त ? तर जैनीहरूका थोरै केही कुरा बाहेक अरू सबै त्याग्न योग्य छन्। अलिकति पनि बुद्धि भएको व्यक्तिले जैनीहरूका देव, सिद्धान्तग्रन्थ र उपदेष्टाहरूलाई देखे–सुनेमा र विचारेमा त्यसले जैन विचारधारालाई तुरन्तै त्याग्ने छ।

मूल— वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसिं न उल्लसइ सम्मं।
अहकह दिणमणि तेयं उलुआणं हरइ अन्धत्तं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १०८॥

सं० अर्थ०—जिन वचनको अनुकूल चल्ने व्यक्ति पूजनीय र विरुद्ध चल्ने अपूज्य हुन्। अर्थात् जैन गुरुहरूलाई मान्नुपर्दछ र अन्यमार्गीहरूलाई मान्नु हुँदैन।

समीक्षक—जैनीहरूले अरू अज्ञानीहरूलाई चेला बनाएर पशुजस्तै नबाँधेका भए उनका जालबाट छुटेर आफ्नो मुक्तिको साधन गरेर जन्म सफल पार्ने थिए। भन त, कसैले तिमीलाई कुमार्गी, कुगुरु, मिथ्यात्वी र कूपदेष्टा भनेमा तिमीलाई कति दु:ख लाग्नेछ ? त्यस्तै तिमी आफैं अरूका लागि दु:खदायक भएका हुनाले नै तिम्रा मतमा धेरै जसो सारहीन कुरा भरिपूर्ण छन्।

मूल— जे रज्जधानईणं कारणभूय हवंति वावारा।
ते विहु अइपावजुया धन्ना छड्डुं तिभवभिया॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० ११९॥

सं० अर्थ०—मृत्युपर्यन्त दु:ख उठाउनु परे पनि जैनीहरूले कृषि–व्यापार आदि कर्म गर्नु हुँदैन किनकि यी नरकमा लैजाने कर्म हुन्।

समीक्षक—अब यी जैनीसँग कसैले सोध्नुपर्दछ—तिमी व्यापार आदि कर्म किन गर्दछौ ? किन यी काम गर्न छोड्दैनौ ? अनि छोडिहाल्यौ भने तिम्रा शरीरको पालन–पोषण पनि हुन सक्नेछैन। अनि तिम्रो भनाइ मानेर सबैले यी काम गर्न छोडेमा के वस्तु खाएर बाँच्नेछौ ? यस्तो अत्याचारको उपदेश गर्नु सर्वथा व्यर्थ हो। विचार के गरून् र! विद्या–स्तसंगविना नै मनमा जे आयो त्यै बोले।

मूल— तइया हमाण अहमा कारणरहिया अनाण गव्वेण।
जे जंपंत्ति उस्सुत्तं तेसिं द्विद्विच्छ पंडिच्चं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १२१॥

सं० अर्थ०—जैनागमको विरुद्ध शास्त्रहरूलाई मान्ने अधमाऽधम हुन्। कुनै स्वार्थ वा प्रयोजन सिद्ध हुने भए तापनि जैनमतको विरुद्ध बोल्नु वा मान्नु हुँदैन। कुनै प्रयोजन सिद्ध हुने भए पनि अरू मतको त्याग गरिदिनुपर्दछ।

समीक्षक—तिम्रा मूलपुरुष देखि लिएर जति पनि आजसम्म भए वा हुनेछन्, तीसबै अन्यमतलाई गाली गर्नु बाहेक न त अरू कुनै कुरा गर्दथे, न गर्ने नै छन्। जैनीहरू जहाँ–जहाँ आफ्नो प्रयोजन सिद्ध हुन लागेको देख्तछन्, त्याहाँ–त्याहाँ चेलाहरूका पनि चेला बन्दछन्। अनि यस्ता यस्ता लम्बा–चौड़ा मिथ्या गफ हाँक्नमा अलिकति पनि लाज लाग्दैन। यो ठूलो दु:खको कुरा हो।

मूल— जं वीरजिणस्म जिओ मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ।
सागर कोडाकोडिं हिंडई अइभीमभवरण्णे॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १२२॥

सं० अर्थ०—'जैन साधुहरूमा धर्म छ, हामीमा र अरूमा पनि धर्म छ' भन्ने व्यक्ति करोड़ौं करोड़ वर्ष सम्म नरकमा रहेर फेरि पनि नीच जन्म पाउँछ।

समीक्षक—बा: रे वा! विद्याका शत्रु हो! तिमीले 'हाम्रा झूठा कुराको कसैले खण्डन नगरोस्' भन्ने सोचेर नै भयंकर झूठा कुरा लेखका हौ, तर त्यसो हुन असम्भव छ। तिमीलाई कहाँ सम्म सम्झाऔं? तिमीले त झूठ, निन्दा र अरू मतसँग वैरविरोध मा नै कम्मर कसेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्नु नै मोहनभोग सरह ठानेका छौ।

मूल— दूरे करणं दूर सहम्मणं तह पभावणा दूरे।
जिणधम्म सद्दहाणं पि तिरकदुरकाइ निट्ठवइ।

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १२७॥

सं० अर्थ—कुनै मानिसबाट जैन धर्मको केही पनि अनुष्ठान हुन नसकेपनि उसले 'जैनधर्म नै सच्चा हो, अरू कुनै होइन' यति श्रद्धामात्र राखे पनि त्यो व्यक्ति दु:खबाट तर्दछ।

समीक्षक—मूर्खहरूलाई आ्नो मतको जालमा फसाउन योभन्दा बढ़ी अर्को कुरा कुन चाहिं होला र? किनकि 'केही पनि कर्म गर्नै नपर्ने र मुक्ति प्राप्त हुने' यस्तो अशोभनीय मत कुन होला र!

मूल— कइया होही दिवसो जइया सुगुरुण पायमूलम्मि।
उत्सुत्त लेसविसलव रहिओ निसुणेसु जिणाधर्म्म॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १२८॥

सं० अर्थ—'जिनागम अर्थात् जैनका शास्त्रहरूलाई सुन्नेछु, उत्सुत्र अर्थात् अन्य मतका ग्रन्थहरूलाई कहिल्यै सुन्नेछैन' भन्ने इच्छा गर्ने मानिस यति इच्छाबाट मात्र दु:ख सागर तर्दछ।

समीक्षक—यो कुरा पनि मूर्ख मानिसलाई फसाउनका लागि हो। किनकि उपर्युक्त यस इच्छाबाट यहाँका दु:खसागरबाट पनि कोही तर्दैन। अनि पूर्वजन्मका पनि संचित पापहरूको दु:खरूपी फल नभोगी छुट्नसक्तैन। यस्ता यस्ता झूठा अर्थात् विद्याविरुद्ध कुरा नलेखेका भए मानिसले वेदादि शास्त्रलाई देखे सुनेर सत्य र असत्यलाई जाने–बुझेर यिनका अविद्यारूपी पोकल=खोक्रा=सारहीन ग्रन्थहरूलाई छोड्ने थिए। तर यी अविद्वान्हरूलाई यति कसेर बाँधेका छन् कि यस जालबाट कुनै एकाध बुद्धिमान् सत्संगीले छुट्नु चाहेमा छुट्न सम्भव होला तर अरू जडबुद्धि मानिस छुट्न त अति कठिन छ।

मूल— जह्मा जेणहिं भणियं सुय ववहारं विंसोहियं तस्स।
जाइय विसुद्ध बोही जिणआणा राहगत्ताओ॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १३८॥

सं० अर्थ—जिनाचार्यले बताएका सूत्र, निरुक्ति, वृत्ति, भाष्य र चूर्णि यी पाँचलाई मान्ने व्यक्ति नै शुभ–व्यवहार र दु:सह व्यवहार गर्नाले चारित्रयुक्त भएर सुख प्राप्त गर्दछन्। अरू मतका ग्रन्थ हेर्नाले यसो हुँदैन

समीक्षक—के अत्यन्त भोक–भोकै मर्नु आदि कष्ट सहनुलाई नै 'चारित्र' भनिन्छ? भोकाएर र तिर्खाले तड्पिएर मर्नु आदि नै चारित्र हो भने धेरैजचसो अकालले–वा अन्न आदि नमिल्नाले भोकै मर्ने व्यक्ति शुद्ध भएर शुभफल प्राप्त गर्ने हुनुपर्दछन्। वास्तवमा न त यी शुद्ध हुन्छन्, न तिमी। उल्टो पित्त आदिको प्रकोपले रोगी भएर सुखको सट्टा दु:ख प्राप्त गर्दछन्। धर्म त न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण आदि हो र असत्यभाषण, अन्यायाचरण आदि 'पाप' हो। अनि परोपकारका निम्ति सबैसँग प्रीतिपूर्वक व्यवहार गर्नु 'शुभ चारित्र' भनिन्छ। जैन मतावलम्बीहरूको भोक–भोकै बस्नु आदि धर्म होइन। यी सूत्रहरूलाई मन्नाले थोरै सत्य र बढ़ी झूठलाई प्राप्त भएर दु:खसागरमा डुब्दछन्।

मूल— जइ जाणिसि जिण नाहो लोयायारा विपरए भूओ।
ता तं तं मन्नंतो कह मन्नसि लोअ आयारं॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १४८॥

संक्षेपमा अर्थ—उत्तम प्रारब्धवान् मानिस नै जिन धर्मलाई ग्रहण गर्दछन् अर्थात् जिन धर्मलाई ग्रहण नगर्ने व्यक्तिहरूको प्रारब्ध नष्ट भएको हुन्छ।

समीक्षक—के यो ठूलो भ्रम र मिथ्या कुरा होइन? के अरू मतमा श्रेष्ठ प्रारब्ध भएको र जैनमतमा प्रारब्ध नष्ट भएको कोही पनि छैन? अनि 'साधर्मी अर्थात् जैनधर्मावलम्बीले परस्परमै क्लेश गर्नु हुन्न, प्रेमपूर्वक व्यवहार गर्नुपर्दछ' (प्रकरण० भा० २। गाथा १४७) भन्ने कुराबाट पनि 'जैनीहरू अरूसँग कलह गर्नमा खराब कुरा मान्दारहनेछन्' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यिनको यो कुरा पनि उपयुक्त होइन। किनकि सज्जन व्यक्ति त सज्जनहरूसँग प्रेम गर्दछन् भने दुष्टहरूलाई शिक्षा दिएर सुशिक्षित बनाउँदछन्। जैनमतमा लेखेको 'ब्राह्मण, त्रिदण्डी, परिव्राजकाचार्य अर्थात् संन्यासी र तापस आदि अर्थात् वैरागी आदि सबै जैनमतका शत्रु हुन्' (प्रकरण रत्नाकरमाथि गुणरत्नाकरको टीका) भन्ने कुराबाट पनि 'जैनीहरू सबैलाई शत्रुभावले हेर्दछन् र निन्दा गर्दछन् भने यी जैनीहरूको दया र क्षमारूप धर्म कहाँ रह्यो त?' भन्ने कुरा विचारणीय हुन्छ। किनकि अरू सबैमाथि द्वेषभाव राख्ता दया, क्षमा को नाश हुन्छ र यो जत्तिको अरू कुनै हिंसारूप दोष छैन। जैनीहरूजस्ता द्वेषका साक्षात् मूर्त्ति अरू थोरै होलान्। कसैले ऋषभदेव देखि महावीरसम्म २४ तीर्थङ्करहरूलाई रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी बताएमा, जैनमत मान्नेहरूलाई सन्निपातज्वरग्रस्त प्रेममा तथा उनको धर्मलाई नरक र विषसमान सम्झेमा जैनीहरूलाई कति नराम्रो लाग्नेछ? यसकारण जैनीहरू निन्दा र अरूको मत प्रतिको द्वेषरूपी नरकमा डूबेर महाक्लेश भोगिरहेछन्। तिनीहरूले यस्ता कुरालाई छोडिदिएमा धेरै राम्रो हुनेछ।

मूल— एगो अगुरु एगो विसावगी चेइ आणि विवहाणि।
तच्छय जं जिणदव्वं परुप्परं तं न विच्चन्ति॥

—प्रकरण० भा० २। षष्ठी०। सू० १५०॥

सं० अर्थ—सबै श्रावकहरूको देवगुरुधर्म एउटै छ। चैत्य वन्दन अर्थात् जिन प्रतिविम्ब, मूर्त्तिदेव र जिन द्रव्यको रक्षा तथा मूर्त्तिको पूजा गर्नु धर्म हो।

समीक्षक—अब हेर जतिपनि मूर्त्ति पूजाको झगड़ा चलेको छ त्यो सबै जैनीहरूका घरबाट चलेको हो र पाखण्डको मूल पनि जैनमत हो।

'**श्राद्धदिनकृत्य**' पृष्ठ १ मा मूर्त्तिपूजाका प्रमाण—

नवकारेण विवोहो॥ १॥, अनुसरणं सावउ॥ २॥
वयाइं इमे ॥ ३॥, जोगो॥ ४॥, चिय वन्दणगो॥ ५॥
यच्चरखाणं तु विहि पुब्बं॥ ६॥ इत्यादि।

श्रावकहरूले पहिलो द्वारमा नवकारको जप गरेर जानुपर्दछ॥ १॥, नवकार जपे पछि दोस्रोमा 'मा श्रावक हुँ' भन्ने सम्झनुपर्दछ॥ २॥, तेस्रोमा हाम्रा अनुव्रतादिक कति छन् भन्ने सोच्नुपर्दछ॥ ३॥, चौथो द्वारमा चारवर्गमा अग्रगामी मोक्ष हो, उसको कारण ज्ञान आदि नै योग हो, उसका सबै अतीचार निर्मल गर्नाले छ आव्यक कारण पनि उपचारबाट योग भनिन्छ, त्यो योग बताइने छ॥ ४॥, पाँचौ चैत्यवन्दन अर्थात् मूर्त्तिलाई नमस्कार द्रव्यभाव पूजा हो र यसबारे पनि बताइने छ॥ ५॥ छैठौं प्रत्याख्यानद्वारा नवकारसी प्रमुख विधिपूर्वक बताउनेछु इत्यादि॥ ६॥ अनि यसै ग्रन्थमा पछि पछि धेरै जसो विधि लेखिएका छन्। अर्थात् साँझको भोजन समयमा जिन–बिम्ब अर्थात् तीर्थङ्करहरूको मूर्त्तिको पूजा गर्नु र द्वारको पूजा गर्नुपर्दछ र 'जलचन्दन पुष्प धूप दीपनैः' इत्यादिद्वारा गन्ध आदि चढाउनुपर्दछ। रत्नासर भाग १ को बाह्रौं पृष्ठमा मूर्त्तिपूजाको फल 'पुजारीलाई राजा वा प्रजा कसैले पनि रोक्नसक्तैन' भनिएको छ।

समीक्षक—यी सबै कुरा कपोलकल्पित हुन्। किनकि धेरैजसो जैनपुजारीहरूलाई राजा आदिले रोक्तछन्।

रत्नसार भाग १ पृष्ठ ३ मा यसो लेखेको छ—'मूर्त्तिपूजाबाट रोगपीड़ा र महादोष छुट्तछन्। कुनै एउटा व्यक्तिले पाँच कौड़ीको फूल चढायो। त्यसले १८ देशको राज्य पायो। त्यसको नाम कुमारपाल थियो' इत्यादि।

समीक्षक—यसो हो भने सबै जैनी अमर हुने थिए, तर हुँदैनन्। यसबाट 'यो त यिनीहरूको केवल मूर्खहरूलाई झुक्याउने कुरा मात्र हो, अरू यसमा केही पनि तत्त्व छैन' भन्ने बुझिन्छ। यिनको पूजा गर्ने श्लोक 'विवेकसार' पृष्ठ ५२ मा—

जलचन्दन धूपनैरथदीपाक्षतकैर्निवेद्यवस्त्रैः।
उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजामहे॥

'हामी जल–चन्दन, अक्षता, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र र अतिश्रेष्ठ उपचारहरूद्वारा जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थङ्करहरूको पूजा गरौं।' यसैकारण हामीले मूर्त्तिपूजा जैनीहरूबाट चलेको हो भनेका हौं।

विवेकसार—पृष्ठ २१ मा भनिएको छ—जिन मन्दिरमा मोह पस्दैन र जिन मन्दिर भवसागरबाट पार उतार्दछ। **विवेकसार** कै पृष्ठ ५१–५२ मा लेखेको छ—मूर्त्तिबाट मुक्ति हुन्छ र जिन मन्दिरमा जानाले सद्गुण आउँदछन्। जल–चन्दन आदिले तीर्थङ्करहरूको पूजा गर्ने व्यक्ति नरकबाट छुटेर स्वर्ग पुग्दछ। **विवेकसार** पृष्ठ ५५ मा यसो भनिएको छ—जिन मन्दिरमा ऋषभदेव आदिको मूर्त्तिलाई पूज्नाले धर्म, अर्थ, काम र मोक्षको सिद्धि हुन्छ। **विवेकसार** पृष्ठ ६१ जिन मूर्त्तिहरूको पूजा गरेमा सब जगत्का क्लेश छुट्तछन्।

समीक्षक—यिनका अविद्यायुक्त असम्भव कुरा त हेर! यस्तै किसिमले पाप आदि खराब कर्म छुट्ने, मोह नआउने, भवसागरबाट पार उत्रने, सद्गुण भित्रिने, नरकबाट छुटेर स्वर्ग पुगिने, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त हुने र सबै क्लेश छुट्ने भए सबै जैनीहरू सुखी भएर उनीहरूलाई सबै पदार्थहरूको सिद्धि किन प्राप्त हुँदैन?

यसै **विवेकसार** को पृष्ठ ३ मा लेखेको कि मूर्त्तिपूजाको स्थापना गर्नेहरूले आफ्नो र आफ्नो कुटुम्बको जीविका चलाएका हुन्। **विवेकसार** पृष्ठ २२५ मा 'शिव, विष्णु आदिका मूर्त्तिहरूको पूजा गर्नु धेरै खराब काम र नरकका साधन हुन् भने के जैनीका मूर्त्ति पनि त्यस्तै होइनन्?' हाम्रा मूर्त्ति त्यागी, शान्त र शुभमुद्रायुक्त छन्, त्यसैले असल हुन् र शिव आदिका मूर्त्ति त्यस्ता नहुनाले खराब हुन् भन्छन् भने यो सँग 'तिम्रा मूर्त्ति त लाखौं रुपैयाँको मन्दिरमा रहन्छन् र चन्दन, केशर आदि चढाइन्छ भने ती त्यागी कसरी भए? अनि शिव आदिका मूर्त्ति त छहारीविना नै पनि रहन्छन्' ती त्यागी किन होइनन्? शान्त भन्छौ भने जडपदार्थ सबै शान्त हुन्छन् भन्नुपर्दछ। वास्तवमा सबै मतको मूर्त्तिपूजा व्यर्थ हो।

प्रश्न—हाम्रा मूर्त्ति वस्त्र, आभूषण आदि धारण नगर्ने हुनाले ठीक हुन्।

उत्तर—सबैको अगाडि नांगा मूर्त्ति रहनु र राख्नु पशु जस्तै लीला हो।

प्रश्न—स्त्रीको चित्र या मूर्त्तिलाई देख्नाले कामोत्पत्ति भए जस्तै साधु र योगीहरूको मूर्त्तिको दर्शनबाट शुभ गुण प्राप्त हुन्छन्।

उत्तर—ढुङ्गाका मूर्त्तिलाई देख्नाले शुभ परिणाम हुन्छ भन्ने कुरा मान्दछौ भने उसका जडत्व आदि गुण पनि तिमीमा आइलाग्ने छन्। जडबुद्धि भएपछि सर्वथा नष्ट हुने छौ। अर्कोकुरा, अरू उत्तम विद्वान्हरूको संगत, सेवा छुट्नाले मूर्खता पनि बढ्नेछ। अनि एघारौं समुल्लासमा लेखिएका मूर्त्तिपूजा सम्बन्धी दोष ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिको पूजा गर्ने सबैलाई लाग्दछन्। यसकारण जैनीहरूले मूर्त्तिपूजाको कुरामा झूटो हल्ला मचाए जस्तै यिनका मन्त्रहरूमा पनि धेरै जसो असम्भव कुरा लेखिएको छ। रत्नसार भाग १ पृष्ठ १ मा यिनको यो मन्त्र छ—

नमो अरिहन्ताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सब्बसाहूणं एसो पञ्च नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो मंगलाचरणं च सब्बेसिं पढमं हवइ मंगलम्॥ १॥

यस मन्त्रको ठूलो माहात्म्य बताइएको छ र यो सबै जैनीहरूको गुरुमन्त्र हो। तन्त्र पुराण, भाट आदिका कथालाई पनि पराजित गर्ने किसिमको यसको माहात्म्य लेखिएको छ। **श्राद्धदिनकृत्य** पृष्ठ ३—

नमुक्कारं तउ पढे॥ ९॥ जउ कव्वं। मंताणमंतो परमो इमुत्ति। धेयाणधेयं परमं इमुत्ति। तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं। संसारसत्ताण–दुहाहयाणं॥ १०॥ ताणं अन्नं नो अत्थि जीवाणं भवसायरे। बुड्डुं ताणं इमं मूर्त्तं। नमुक्कारं सुपोययम्॥ ११॥ कव्वं अणेगजम्मंतर–संचिआणं। दुहाणं सारीरि अयाणुसाणं। कत्तोय भव्वाण भविज्जनासो। न जावपत्तो नवकारमन्तो॥ १२॥

यो मन्त्र पवित्र र परममन्त्र हो। त्यो ध्यानको योग्यमा परम ध्येय हो। तत्त्वहरूमा परम तत्त्व हो। दुःखबाट पीड़ित संसारी जीवहरूको लागि नवकारमन्त्र समुद्रको पार उतार्ने ढुङ्गा जस्तै हो॥ १०॥ यो नवकारमन्त्र ढुङ्गा जस्तै हो। यसलाई छोड्नेहरू भवसागरमा डुब्दछन् र यसलाई ग्रहण गर्नेहरू दुःखबाट पार उत्रन्छन्। यस मन्त्र बाहेक जीवलाई दुःखदेखि परै राख्ने, सबै पापको नाशक, मुक्तिकारक अरू कोही छैन॥ ११॥ अनेक भवान्तरमा उत्पन्न भएको शरीर र मन सम्बन्धी दुःखबाट भव्य जीवहरूलाई भवसागरबाट तार्ने यही मन्त्र हो। नवकार मन्त्र नपाएसम्म जीव भवसागरबाट तर्नसक्तैन॥ १२॥ यो अर्थ सूत्रमा भनिएको छ। अग्नि प्रमुख अष्ट महाभयमा एउटा नवकार मन्त्र बाहेक अरू कोही सहायक हुँदैन। महारत्न वैडूर्य नामक मणि ग्रहण गरे झैं वा शत्रुभयमा अमोघशस्त्र ग्रहण गरे झैं श्रुतकेवलीलाई ग्रहण गर्नुपर्दछ र नवकार मन्त्र सबै द्वादशांगीको रहस्य हो।

यस मन्त्रको अर्थ यो हो—(**नमो अरिहन्ताण**) सबै तीर्थङ्करहरूलाई नमस्कार। (**नमो सिद्धाणं**) जैनमतका सबै सिद्धहरूलाई नमस्कार। (**नमो आयरियाणं**) जैनमतका सबै आचार्यहरूलाई नमस्कार। (**नमो उवज्झायाणं**) जैनमतका सबै उपाध्याय=शिक्षकहरूलाई नमस्कार। (**नमो लोए सव्वसाहूणं**) यस लोकमा भए भरका सबै जैनमतका साधुहरूलाई नमस्कार छ। मन्त्रमा '**जैन**' पद नभएतापनि जैनीहरूका अनेक ग्रन्थमा जैनमत बाहेक अरू कसैलाई नमस्कार छ। मन्त्रमा '**जैन**' पद नभएतापनि जैनीहरूका अनेक ग्रन्थमा जैनमत बाहेक अरू कसैलाई नमस्कार पनि गर्न नहुने उल्लेखका कारण यो अर्थ ठीक छ।

तत्त्वविवेक—पृष्ठ १६९ काठ, ढुङ्गालाई देव सम्झेर पूजा गर्ने मानिस राम्रा फल प्राप्त गर्दछ।

समीक्षक—यसो हो भने सबैले दर्शन गरेर सुखरूप फल किन प्राप्त गर्दैनन्?

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १०—'पार्श्वनाथको मूर्त्तिको दर्शन गर्नाले पाप नष्ट हुन्छन्। **कल्पभाष्य** पृष्ठ ५१ मा लेखेको छ—सवालाख मन्दिरहरूको जीर्णोद्धार गरियो।' इत्यादि मूर्त्ति पूजाविषयक यिनीहरूको धेरै लेख प्राप्त हुन्छ। यसैबाट मूर्तिपूजाको मूलकारण जैनमत हो भन्ने कुरा बुझिन्छ।

अब यी जैनीहरूका साधुका लीला त हेरौं—

विवेकसार, पृष्ठ २२८—'जैनमतको एउटा साधुले कोशा वेश्यासँग संभोग गरेर पछि त्यागी भई स्वर्ग गयो।' पृष्ठ १०१, १०६, १०७—'अर्णकमुनि चरित्रभ्रष्ट भएर वर्षौं सम्म दत्त साहुको घरमा विषयभोग गरेर पछि देवलोक गयो। श्रीकृष्णको पुत्र ढंढण मुनिलाई स्यालले उठाएर लग्यो, पछि ऊ देवता भयो।' पृष्ठ १५६—'जैनमतको साधु लिङ्गधारी अर्थात् भेषधारीमात्र भएपनि श्रावकहरूले त्यसको सत्कार गर्नुपर्दछ। शुद्धचरित्र भएको भएपनि, अशुद्ध चरित्रको भए पनि सबै साधु पूजनीय हुन्छन्।' पृष्ठ १६८—'जैनमतको साधु चरित्रहीन भएपनि अरू मतका साधुभन्दा श्रेष्ठ हुन्छ।' पृष्ठ १७१—'श्रावकहरूले जैनमतका साधुलाई चरित्रहीन, भ्रष्टाचारी देखेपनि उनको सेवा गर्नुपर्दछ।' पृष्ठ २१६—'एउटा चोरले पाँच मुट्ठी आफ्ना रौं उखेलेर चारित्र ग्रहण गर्यो, ठूलो कष्ट सह्यो र पश्चात्ताप गर्यो। छैठौं महीनामा ज्ञानमात्र पाएर सिद्ध भयो।'

समीक्षक—अब यिनका साधु र गृहस्थका लीला त हेर। यिनको मतमा धेरै कुकर्म गर्ने साधुको पनि सद्गति भयो। अनि **विवेकसार** पृष्ठ १०६ मा 'श्रीकृष्ण तेस्रो नरकमा गयो' भनिएको छ। पृष्ठ १४५ मा 'धन्वन्तरि नरकमा गयो।' पृष्ठ ४८—जोगी, जंगम, काजी, मुल्ला आदि कतिका व्यक्ति तप, कष्ट गरेर पनि अज्ञानका कारण कुगति पाउँछन्। **रत्नसार** भाग १ पृष्ठ १७१ मा लेखिएको छ—नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विपृष्ठ वासुदेव, स्वयंभू वासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव, सिंहपुरुष वासुदेव, पुरुषपुण्डरीक वासुदेव, दत्तवासुदेव, लक्षमण वासुदेव र श्रीकृष्ण वासुदेव यी सबै एघारौं, बाह्रौं, चौधौं, पन्ध्रौं, अठारौं, बीसौं र बाईसौं तीर्थङ्करका समयमा नरक गए।' 'अनि नौ प्रतिवासुदेव=विष्णुका प्रतिद्वन्द्वी=विष्णुबाट मारिएका या मार्न लगाइएका अर्थात् अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव, तारक प्रतिवासुदेव, मोदक प्रतिवासुदेव, यी पनि सबै नरक गए।' अनि कल्पभाष्यमा लेखेको छ—'ऋषभदेव देखि महावीरसम्म सबै २४ तीर्थङ्करले मोक्ष प्राप्त गरे।'

समीक्षक—कुनै पनि बुद्धिमान् व्यक्तिले विचारणीय कुरा के छ भने यिनका सबै जैनमतावलम्बी साधु, गृहस्थ र तीर्थंकरले धेरैजसो वेश्यागामी, परस्त्रीगामी, चोर आदि भएर पनि स्वर्ग र मुक्ति प्राप्त गरे रे। अनि श्रीकृष्ण आदि महान् धार्मिक महात्मा सबै नरक गए रे। यो कति गलत कुरा हो? वास्तवमा विचार गरेर हेर्ने हो भने कुनै पनि सत्पुरुषले जैनीहरूको संगत गर्नु वा उनलाई हेर्नु पनि गलत हो। किनकि यिनको संगत गर्नेका हृदयमा यस्तै झूठा-मूठा कुरा स्थित हुनेछन्। किनकि यी महाजिद्दी, दुराग्रही मानिसको संगतबाट बुराइ=खराब कुरा बाहेक केही पनि हात पर्नेछैन। हँ, जैनीहरूमा जो कोही उत्तम व्यक्ति छ भने त्यो यस असार जैनमतमा कहिल्यै रहनेछैन, त्यस्तासँग सत्संग आदि गर्नमा केही पनि दोष छैन।

विवेकसार पृष्ठ ५५ मा 'गङ्गा आदि तीर्थ र काशी आदि क्षेत्रको सेवन गर्नाले केही पनि परमार्थ सिद्ध हुँदैन' भनिएको छ भने रत्नसार भाग १ पृष्ठ २९ मा आफ्ना 'गिरनार पालीटाणा र आबू आदि तीर्थ र क्षेत्र मुक्तिसम्म पनि दिने हुन्' भन्ने कुरा लेखेको छ।

समीक्षक—यहाँ विचारणीय कुरा के छ भने शैव, वैष्णव आदिका तीर्थ र क्षेत्र, जल स्थल जडरूप भएजस्तै जैनीहरूका पनि हुन्। यिनमा एउटाको निन्दा र अर्कोको स्तुति गर्नु मूर्खताको काम हो।

जैनहरूको मुक्तिको वर्णन

रत्नसार भाग १ पृष्ठ २३—महावीर तीर्थकर गौतमजीसँग भन्दछन् कि ऊर्ध्वलोकमा एउटा सिद्धशिला भन्ने ठाउँ छ। त्यो स्वर्गपुरीभन्दा माथि पैंतालीस लाख योजन लामो र त्यतिनै खोक्रो तथा आठ योजन मोटो छ। मोतीको सेतो हार वा गाईको दूधभन्दा पनि उज्यालो छ। सुनजस्तै प्रकाशमान र स्फटिकभन्दा पनि निर्मल छ। त्यो सिद्धशिला चौधौं लोकको टुप्पोमा छ र त्यस सिद्धशिलामाथि शिवपुरधाम र त्यसमा पनि मुक्तपुरुष भित्र रहन्छन्। त्यहाँ जन्म-मरण आदि कुनै दोष हुँदैन र त्यहाँ सबै आनन्द मनाइरहन्छन्। फेरि जन्म-मरणमा पर्दैनन्, सबै कर्म देखि छुट्तछन्। यो जैनीहरूको मुक्ति हो।

समीक्षक—विचारणीय कुरा के छ भने अरू मतमा पुराणीहरूको वैकुण्ठ, कैलाश, गोलोक, श्रीपुर आदि, ईसाईहरूको चौथो आकाशमा, मुसलमानहरूको सातौं आकाशमा मुक्तिको ठाउँ बताएजस्तै जैनीहरूको सिद्धशिला र शिवपुर पनि हो। किनकि भूगोलमा हामीभन्दा तल बस्नेहरूको अपेक्षाले जैनीहरूले अग्लो मानेको ठाउँ तल्लो ठहर्दछ। अग्लो-होचो व्यवस्थित पदार्थ होइन। आर्यावर्त्तमा बस्ने जैनीहरूले माथिल्लो मानेको ठाउँलाई नै अमेरिकावासी तल्लो मान्दछन् र आर्य्यावर्त्तवासीले तल्लो मानेकोलाई अमेरिकावासी माथिल्लो मान्दछन्। त्यो शिला पैंतालीस लाखको दोब्बर नब्बे लाख योजन नै भएको भए पनि ती मुक्त र बन्धनमै छन्। किनकि त्यस शिला वा शिवपुरबाट बाहिर निक्लनाले तिनको मुक्ति छुट्तो हो। अनि सधैं त्यसमा रहने इच्छाको प्रीति र त्यसबाट बाहिर जाने अनिच्छारूपी अप्रीति पनि रहँदो हो? अटकाव, प्रीति र अप्रीति एको ठाउँलाई कसरी मुक्ति भन्न सकिन्छ र? मुक्ति त नवौं समुल्लासमा बताए अनुसार नै मान्नु उचित हुन्छ। अनि यो जैनीहरूको मुक्ति पनि एक किसिमको बन्धन हो। मुक्तिको बारेमा यी जैनी पनि भ्रममा परेका छन्। यो कुरा सत्य हो कि वेदको यथार्थ अर्थबोध बेगर मुक्तिको स्वरूपलाई कहिल्यै जान्न सकिंदैन।

अब यिनका अरूपनि केही असम्भव कुरा सुन—

विवेकसार, पृष्ठ ७८—'महावीरको जन्म समयमा उनलाई १ करोड साठी लाख कलशद्वारा स्नान गराइयो।' पृष्ठ १३६—'दशार्ण राजा महावीरको दर्शन गर्न गयो। त्यहाँ उसले केही घमण्ड गर्यो। उसको घमण्डको निवारणका लागि १६,७७,७२,१६,००० इन्द्रका स्वरूप

र १३,३७,०५,७२,८०,००,००,००० इन्द्राणी त्यहाँ आएगा थिए। यो देखेर राजा आश्चर्यचकित भयो।'

समीक्षक—अब विचार गर्नुपर्दछ कि यतिका इन्द्र र इन्द्राणीलाई उभिनका निम्ति यस्ता-यस्ता कतिका भूमण्डल चाहिने छन्?

श्राद्धदानकृत्य, आत्मनिन्दाभावना पृष्ठ ३१ मा लेखेको छ—'कुवा, पोखरी र ताल बनाउनु, बनाउन लगाउनु हुँदैन।'

समीक्षक—सबै मानिस जैनमतमा लागेर कसैले पनि कुवा, पोखरी, ताल आदि न बनाएमा वा बनाउन नलगाएमा सबैजना पानी कहाँबाट पिउनेछन्?

प्रश्न—पोखरी आदि बनाउँदा त्यसमा जीवपर्दछन्, मर्दछन्। त्यसबाट बनाउन लगाउनेलाई पाप लाग्दछ। यसकारण हामी जैनीहरू यस कामलाई गर्दैनौं।

उत्तर—तिम्रो बुद्धि नष्ट किन भयो हँ? किनकि क्षुद्र जीव मर्नाले पाप सम्झनेजस्तै ठूला-ठूला गाई आदि पशु र मनुष्य आदि प्राणीहरूले पानी पिउने आदिबाट हुने ठूलो पुण्यलाई किन सम्झँदैनौ?

तत्त्वविवेक, पृष्ठ १९६—'एउटा नगरीमा नन्दमणिकार नामक साहुजीले पोखरी बनाउन लगायो। त्यसबाट धर्मभ्रष्ट भएर उसलाई सोह्र महारोग भए। मरेपछि त्यसै पोखरीमा भ्यागुता बन्यो। महावीरको दर्शनबाट उसलाी जातिस्मरण भयो।' महावीर भन्दछन्—'म आएको कुरा सुनेर ऊ पूर्वजन्मको धर्माचार्य जानेर वन्दनात गर्न आउन थाल्यो। बाटोमा श्रेणिकका घोडाको टापले किचिएर मरेर शुभध्यानको योगबाट दर्दुरांक नामक महर्द्धिक देवता भयो। अवधि ज्ञानबाट म यहाँ आएको जानेर वन्दनापूर्वक ऋद्धि देखाएर गयो।'

समीक्षक—यस्ता विद्याविरुद्ध असम्भव मिथ्या कुरा भन्ने महावीरलाई सर्वोत्तम मान्नु महाभ्रान्तिको कुरा हो।

श्राद्धदिनकृत्य—पृष्ठ ३६ मा 'मृतक वस्त्र साधुले लिनू' भन्ने लेखेको छ।

समीक्षक—हेर, यिनका साधु पनि महाब्राह्मण जस्तै भए। मुर्दाका लुगा त साधुले लिने, तर त्यस मुर्दाका आभूषण=गहना कसले लिने नि? बहुमूल्य हुनाले घरमै राख्दा हौ, अनि आफू चाहिं के भयौ त?

रत्नसार—भाग १ पृष्ठ १०५—'अन्नलाई भुट्ने, कुट्ने, पिध्ने, पकाउने आदि गर्नाले पाप लाग्दछ।'

समीक्षक—अब यिनको विद्याहीनता त हेर। आखिर यी काम न

गरिएमा मनुष्य आदि प्राणी कसरी बाँच्नेछन्? अनि जैनीहरू पनि त पीड़ित भएर मर्ने नै छन्।

रत्नसार, भाग १ पृष्ठ १०४—'बगैंचा लगाउँनाले मालीलाई एक लाख पाप लाग्दछ।'

समीक्षक—मालीलाई एक लाख पाप लाग्दछ भने पत्र, फल, फूल र छाया आदिबाट अनेकौं जीव आनन्दित हुने हुँदा करोड़ौं गुना पुण्य पनि हुन्छ नै। यस कुरा प्रति केही ध्यान दिएनन्। यो कत्ति अन्धेरको कुरा हो?

तत्त्वविवेक—पृष्ठ २०२—'एक दिन लब्धि साधु झक्किएर वेश्याको घरमा पुग्यो र धर्मपूर्वक भिक्षा माँग्यो। वेश्याले 'यहाँ धर्मको होइन अर्थको काम छ' भनी। अनि त्यस लब्धि साधुले त्यसको घरमा साँढे बाह्र लाख अशर्फीको वर्षा गरिदियो।

समीक्षक—बुद्धि नष्ट भएको मानिस बाहेक यस कुरालाई अरू कसले सत्य मान्नेछ र?

रत्नसार—भाग १, पृष्ठ ६७ मा लेखेको छ—'एउटा ढुङ्गाको मूर्त्ति घोडामा चढेको छ। त्यसको स्मरण जहाँ गरे पनि उपस्थित भएर रक्षा गर्दछ।'

समीक्षक—भन त जैनी जी! हिजोआज तिमीकहाँ चोरी, डाका आदि र शत्रुबाट भय त भैहाल्दछ। अनि तिमी त्यसकै स्मरण गरेर आ्नो रक्षा किन गराउँदैनौ? जताततै प्रहरी आदि राजकीय ठाउँमा मरि–मरि किन भट्किरहन्छौ?

अब यिनका साधुका लक्षण—

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसङ्गा जैनसाधवः॥ १॥
लुञ्चिता पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा: दिगम्बरः।
ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः॥ २॥
भुङ्क्ते न केवली न स्त्रीमोक्षमेति दिगम्बरः।
प्राहुरेषमयं भेदो महान् श्वेताम्बैरः सह॥ ३॥

जिन दत्तसूरिले यी श्लोकबाट जैनसाधुहरूका लक्षणार्थ बताएका छन्। सहजोहरण=चामर राख्नु, भिक्षा माँगेर खानु, टाउकोका कपाल लुछेर सक्नु, सेतो वस्त्र धारण गर्नु, क्षमायुक्त हुनु, कसैको संगत नगर्नु, यस्ता लक्षणयुक्त 'जिती' भनिने जैनीहरूका श्वेताम्बर हुन्छन्। अर्का दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण नगर्ने, टाउकोका कपाल लुछेर सक्ने,

पिच्छिका=उनका रौंको एउटा कुच्चो च्यापि राख्ने, कसैले भिक्षा दिएमा हातैमा थापेर खाने, यी दोस्रा किसिमका दिगम्बर साधु हुन्छन्। अनि भिक्षा दिने गृहस्थले भोजन गरिसकेपछि भोजन गर्ने जिनर्षि अर्थात् तेस्रा किसिमका साधु हुन्छन्। दिगम्बरको श्वेताम्बरसँगको फरक यत्ति छ कि दिगम्बरहरू स्त्रीको संसर्ग गर्दैनन् भने श्वेताम्र चाहिं गर्दछन्। इत्यादि कुराबाट मोक्ष प्राप्त गर्दछन्। यो यिनका साधुहरूको भेद हो। यसैले जैनीहरूको कपाल लुछाइ सर्वत्र प्रसिद्ध छ र पाँच मुट्ठी लुछ्ने आदि पनि बताइएको छ। विवेकसार भा० पृष्ठ २१६ मा लेखेको छ—'पाँच मुट्ठी लुछेर चारित्र ग्रहण गर्यो। अर्थात् टाउकोका पाँच मुट्ठी कपाल उखेलेर साधु भयो। कल्पसूत्रभाष्य पृष्ठ १०८—'कपाल लुछ्नुपर्दछ, गाईका रौं जस्तै राख्नुपर्दछ।'

समीक्षक—अब भन त जैनीहरू, तिमीहरूको दया धर्म कता गयो? आफ्नै हातले लुछे पनि, उसको गुरु वा अरू कसैले लुछिदिए पनि के यो हिंसा होइन? त्यस लुझाउने विचरा जीवलाई कति ठूलो कष्ट हुँदो हो? जीवलाई कष्ट दिनु नै हिंसा भनिन्छ।

विवेकसार पृष्ठ ७–८ संवत् १६३३ सालमा श्वेताम्बरहरूबाट 'ढूँढिया' र 'ढूँढियाहरूबाट तेह्रपन्थी आदि ढोंगी निकलेगा हुन्। ढूँढियाहरू ढुङ्गा आदिका मूर्त्तिलाई मान्दैनन् र उनीहरू भोजन र स्नानको समय बाहेक सधैं मुखमा पट्टी बाँधेका हुन्छन्। अनि 'जती' आदि पनि पुस्तक बाँच्ताबखत बाहेक अरू समयमा मुखतमा पट्टी बाँध्दैनन्।

प्रश्न—मुखमा पट्टी अवश्य बाँध्नुपर्दछ, किनकि 'वायुकाय' अर्थात् वायुमा रहने सूक्ष्म शरीरधारी जीव मुखको बाफको गर्मीले मर्दछन् र त्यसको पाप मुखमा पट्टी नबाँध्नेलाई लाग्दछ। यसै कारण हामीहरू मुखमा पट्टी बाँध्नुलाई ठीक ठान्दछौं।

उत्तर—यो कुरा विद्या र प्रत्यक्ष आदि प्रमाण आदि अनुसार अनुपयुक्त छ, किनकि जीव अजर अमर हुनाले मुखको बाफले कहिल्यै मर्न सक्तैनन्। यिनलाई तिमी पनि अजर जीव अजर अमर मान्दछौं।

प्रश्न—जीव त मर्दैनन् तर मुखको तातो बाफले तिनलाई कष्ट हुन्छ, त्यस कष्ट दिनेलाई पाप लाग्दछ। यसैकारण मुखमा पट्टी बाँध्नु राम्रो हो।

उत्तर—तिम्रो यो कुरा पनि सर्वथा असम्भव हो। किनकि पीड़ा नदिई कुनै पनि जीवको कत्ति पनि निर्वाह हुनसक्तैन। तिम्रो मतमा मुखको बाफबाट जीवलाई कष्ट हुन्छ भने हिंड्डुल, बस–उठ् गर्दा,

हात उठाउँदा र आँखा झिम्क्याउने आदि गर्दा पनि अवश्य कष्ट हुँदो हो। यसकारण तिमी पनि जीवहरूलाई पीडा पुर्याउनबाट अलग्गिन सक्तैनौ।

प्रश्न—हँ, सकभर जीवको रक्षा गर्नुपर्दछ। अनि हामीले बचाउने नसकेको ठाउँमा त हामी अशक्त छौं, किनकि वायु आदि सबै पदार्थमा जीव भरिएका छन्। हामीले मुखमा पट्टी नबाँधेको भए धेरै जीव मर्ने थिए, कपड़ा बाधनाले थोरै मर्दछन्।

उत्तर—कपडा बाँध्नाले जीवलाई झन् बढ़ी दुःख पुग्ने हुँदा तिम्रो यो कथन पनि युक्तिशून्य छ। कसैले मुखमा कपड़ा बाँध्दा उसको मुखको वायु रोकिएर तल या छेउ र मौन समयमा नाकबाट जम्मा भएर तेजी ाक साथ निस्कन्छन् त्यसबाट तिम्रै मत अनुसार बढ़ी गर्मी भएर जैनहरूलाई विशेष पीड़ा हुँदो हो। हेर, कुनै घर वा कोठाका सबै ढोका-झ्याल बन्द गरिएमा वा पर्दा हालिएमा त्यसमा विशेष उष्णता वा गर्मी हुने र खुल्ला राख्नाले त्यति नहुने जस्तै मुखमा कपड़ा बाँध्नाले उष्मता बढ़ी र खुल्ला राख्दा कम हुनाले तिमी आफ्नै मतानुसार जीवहरूलाई बढ़ी दुःखदायकत हौ। अनि मुख बन्द गरिंदा वायु रोकिएर जम्मा भएर नाकका प्वालबाट वेगका साथ निस्कदा जीवलाई बढ़ी धक्का र पीड़ा पुर्याउँद छौं।

हेर, कुनै मानिसले मुखले आगो फुकेमा र अर्कोले ढुङ्ग्रीले फुकेमा मुखको वायु फैलिनाले कम बल र ढुङ्ग्रीको वायु जम्मा हुनाले बढ़ी बल आगोमा लाग्दछ। त्यस्तै मुखमा पट्टी बाँधेर वायुलाई रोक्नाले नाकबाट बढ़ी वेगका साथ निस्कर जीवलाई बढ़ी दुःख दिन्छ। यसरी मुखमा पट्टी बाँध्नेहरूभन्दा नबाँध्नेहरू धर्मात्मा हुन्। अनि मुखमा पट्‌टी बाँध्नाले अक्षरहरूको यथायोग्य स्थान, प्रयत्नका साथ उच्चारण पनि हुँदैन। अनुनासिक रहित अक्षरलाई अनुनासिक सहित बोल्नाले तिमीलाई दोष लाग्दछ।

अर्को कुरा, शरीर मित्र दुर्गन्ध भरिएको हुन्छ। शरीरबाट जति पनि वायु निस्कन्छ त्यो प्रत्यक्ष नै दुर्गन्धयुक्त हुन्छ। त्यसलाई रोक्नाले दुर्गन्ध पनि धेरै बढ्ने हुँदा मुखमा पट्टी बाँध्नाले दुर्गन्ध पनि धेरै बढ्दछ। बन्द शौचालय बढ़ी दुर्गन्धित र खुल्ला कम दुर्गन्धित भए जस्तै मुखमा पट्टी बाँध्नाले, दाँत नमाइनाले, मुख नधुनाले, न नुहाउनाले र लुगा नधुनाले तिम्रा शरीरबाट बढ़ी दुर्गन्ध उत्पन्न भएर संसारमा धेरै रोग बढेर तिम्रा शरीरले जीवलाई कष्ट पुर्याए जत्तिकै बढ़ी पाप तिमीलाई

लाग्दछ। मेला आदिमा बढी दुर्गन्ध हुनाले विसूचिका=हैजा आदि धेरै किसिमका रोग उत्पन्न भएर जीवलाई दुःखदायक हुन्छन् र थोरै दुर्गन्ध हुनाले रोग पनि थोरै भएर जीवलाई धेरै दुःख पुग्दैन। यसरी तिमी बढी दुर्गन्ध बढ़ाउनमा बढ़ी अपराधी र मुखमा पट्टी नबाँध्ने, दाँत माझ्ने, मुख धुने, स्नान गर्ने स्थान, वस्त्र आदिलाई शुद्ध राख्नेहरू तिमीभन्दा धेरै ठीक छन्।

अन्त्यजका दुर्गन्धको सम्पर्क देखि छुट्टै बस्नेहरू धेरै ठीक भए जस्तै र अन्त्यजका दुर्गन्धको सम्पर्कबाट बुद्धि निर्मल नहुने भए जस्तै तिम्रो र तिम्रा संगीहरूको बुद्धि बढ्दैन। बढ़ी रोग र कम बुद्धि निर्मल नहुने भए जस्तै तिम्रो र तिम्रा संगीहरूको बुद्धि बढ्दैन। बढ़ी रोग र कम बुद्धि हुँदा धर्माऽनुष्ठानमा बाधा पुग्ने भए जस्तै तिम्रो र तिम्रा संगीहरूको व्यवहार पनि दुर्गन्धयुक्त हुँदो हो।

प्रश्न—बन्द कोठा वा घरमा बालेको आगोको ज्वालाले बाहिर निस्केर बाहिरका जीवलाई दुःख पुर्याउन नसकेजस्तै हामी मुखमा पट्टी बाँधेर वायुलाई रोकेर बाहिरका जीवलाई थोरै दुःख पुग्न दिन्छौं। मुखमा पट्टी बाँध्नाले बाहिरको वायुका जीवलाई पीड़ा पुग्दैन अनि अगाडि आगो बाल्दा त्यसलाई कोल्टो पार्नाले कम लाग्दछ र वायुका जीव शरीरधारी हुनाले उनलाई पीडा अवश्य पुग्दछ।

उत्तर—यो तिम्रो अल्लारेपनको कुरा हो। पहिलो कुरा त हेर, कतै प्वाल र भित्रको वायुको सम्पर्क बाहिरको वायुसँग नभएमा त्यहाँ आगो बल्नैसक्तैन। यस कुरालाई प्रत्यक्ष हेर्न चाहेमा कुनै फानूस=एउटा खास किसिमको पानसमा दियो बालेर सबै प्वाल बन्द गरेर हेर—दियो तत्काल निभ्ने छ। पृथ्वीमा बस्ने मनुष्य आदि प्राणी बाहिरको वायुको सम्पर्क बिना बाँच्न नसक्ने भएजस्तै आगो पनि बल्न सक्तैन। एक तर्फबाट आगोको वेगलाई रोकिएमा अर्कातर्फ अझ बढी वेगका साथ निस्कनेछ। अनि हातले चेक्नाले मुखमा कम आँच लाग्दछ तर त्यो आँच हातमा लागिरहेको हुन्छ। यसकारण तिम्रो कुरा ठीक होइन।

प्रश्न—यो सबैले जानेकै कुरा हो कि कुनै ठूलाबडा मानिससँग साना व्यक्तिले कानमा वा नजिकिएर कुरा गर्दा मुखबाट थूक उडेर वा दुर्गन्ध उसलाई नलागोस् भन्नका निम्ति मुखमा पल्ला=पर्दा वा हाथ लगाउँदछ। अनि पुस्तक बाँच्ता त थूक अवश्य निस्केर पुस्तकमा परेर जुठो भएर अवश्य बिग्रन्छ। यसकारण मुखमा पट्टी बाँध्नु राम्रो हो।

उत्तर—यसबाट ‘जीवको रक्षाका लागि मुखमा पट्टी बाँध्नु व्यर्थ

हो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। अनि कुनै ठूला–ठालुसँग कुरा गर्दा भने त्यस गुप्त कुरालाई अरू कसैले सुन्न नपाओस् भन्ने कारणले मुखमा हात वा पल्ला=पर्दा राख्तछ। किनकि कसैले प्रसिद्ध=खुल्ला कुरा गर्दा कोही पनि मुखमा हात वा पल्ला राख्तैन। यसबाट 'यो कुरा गुप्त कुराको लागि गरिन्छ' भन्ने बुझिन्छ। दाँत माझ्ने आदि नगर्नाले तिम्रा मुख आदि अवयवबाट अत्यन्त दुर्गन्ध निस्कन्छ। अनि तिमी कसैको नजिक वा कोही तिम्रो नजिक बस्ता दुर्गन्ध बाहेक अरू के चाहिं आउँदो हो र? इत्यादि। मुखनिर हात वा पल्ला राख्ने प्रयोजन अरू धेरै छन्। जस्तै धेरै मानिस अगाड़ि गोप्य कुरा गर्दा हात वा पल्ला नगरेमा अरू तर्फ वायु फैलिनाले कुरा पनि फैलिने छ। ती दुबैले एकान्त ठाउँमा कुरा गर्दा त्याहाँ तेस्रो कोही कुरा सुन्ने नभएको कारणले नै हात वा पल्ला राख्तैनन्। ठूला–बड़ा माथि थूक नपरोस भनेर चाहिं यसो गरिने हो भने के साना व्यक्ति माथि चाहिं थूक पर्न दिनुपर्दछ? अनि थूकबाट त बच्न पनि सकिंदैन। किनकि हामीले टाढा रहेर कुरा गरे पनि हाम्रो तर्फबाट अर्को व्यक्ति बसेको तर्फ हावा चलिरहेको छ भने त्यस वायुसँग थूकसूक्ष्म भएर त्यसका त्रसरेणु त्यसमाथि अवश्य पर्नेछन्, त्यसको दोषगणना गर्नु अविद्या वा मूर्खताको कुरा हो। अर्को कुरा, मुखको गर्मीले जीव मर्ने वा उनलाई कष्ट पुग्ने भए वैशाख वा जेठ महीनामा सूर्यको पनि ती जीव मर्न सक्तैनन् भने मुखको थोरै गर्मीले मर्ने त कुरै भएन। यसकारण तिम्रो यो सिद्धान्त झूटो हो। अनि तिम्रा तीर्थंकर पनि पूर्ण विद्वान् भएका भए यस्ता व्यर्थ कुरा गर्दैथिएनन्। हेर, जुन जीवको व्यवहार सबै अवयवहरूसँग विद्यमान हुन्छ त्यसैले दुःख, कष्ट वा पीडा हुन्छ। यसमा प्रमाण—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः ॥

—यो सांख्यशास्त्रको सूत्र (५।२७) हो।

पाँचै इन्द्रियहरूको सम्बन्ध पाँचै विषयहरूसँग भएपछि मात्र जीवलाई सुख वा दुःखको प्राप्ति हुन्छ। जस्तै बहिरोलाई गाली गर्नाले, अन्धाको अगाडिबाट रूप वा सर्प, बाघ आदि भयदायक जीव हिंड्नाले, छाला मरेकोले छुनाले, पिनास रोग लागेकालाई गन्धाको र जिब्रो लाटिएकोलाई रसको केही पनि थाहा वा जानकारी अथवा प्रतीति हुन सक्तैन, यसैगरी ती जीवहरूको पनि व्यवस्था हुन्छ।

हेर, मानिसको जीव सुषुप्ति दशमा रहँदा उसलाई सुख वा दुःखको केही पनि प्राप्ति हुँदैन किनकि ऊ शरीर भित्र त छ तर बाहिरी

अवयवहरूसँग त्यसबखत उसको सम्बन्ध नरहनाले सुख–दुःखको प्राप्ति गर्न सक्तैन। अनि वैद्य वा हिजोआजका डॉक्टरले नशालु चीज खुवाएर वा सुँघाएर रोगी व्यक्तिका शरीरका अवयवलाई काट्ता वा चीर्दा त्यसबखत जसरी त्यसलाई केही पनि दुःखको प्रतीति हुँदैन त्यस्तै वायुका अथवा अरू स्थावर शरीर भएका जीवहरूलाई सुख वा दुःख कहिल्यै प्राप्त हुन सक्तैन। मूर्च्छित प्राणीलाई सुख दुःखको प्राप्ति नभए जस्तै ती वायुकाय आदिका जीव पनि अत्यन्त मूर्च्छित हुनाले ती सुख दुःख प्राप्त गर्न सक्तैनन्। त्यसो हुँदा यिनलाई पीडा वा कष्टबाट कुरा कसरी सिद्ध हुनसक्तछ? तिनलाई सुख दुःख प्राप्त हुने कुरा प्रत्यक्ष नै असिद्ध छ भने यहाँ अनुमान आदि कसरी घटित हुनसक्छन् र?

प्रश्न—ती जीव हुन् भने तिनलाई सुख दुःख किन नहुँदो हो र?

उत्तर—सुन सोझा बन्धुहरू! तिमी सुषुप्ति=निदाएको अवस्थामा हुँदा तिमीलाई सुख दुःख किन प्राप्त हुँदैनन्? सुख दुःखको प्राप्तिको हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध हो। अहिल्यै हामीले यो कुरा भनिसक्यौं कि नशा सुँघाएर डॉक्टरहरू अङ्गहरूलाई चीरने, च्यात्ने वा काट्ने गर्दछन्। तिनीहरूलाई दुःख प्रतीत नभए जस्तै अति मूर्च्छित जीवहरूलाई सुख दुःख कसरी प्राप्त हुनेछन् र? किनकि त्यहाँ प्राप्ति हुने कुनै साधन छैन।

प्रश्न—हेर, निलोति=हरिया साग–पात र कन्दमूललाई हामी खाँदैनौं। किनकि निलोतिमा धेरै र कन्दमूलमा त अनन्त जीव छन्। हामीले तो वस्तु खाएमा ती जीवलाई मार्नाले र दुःख दिनाले हामीहरू पापी हुनेछौं।

उत्तर—यो तिम्रो ठूलो अविद्याको कुरा हो। हरियो साग खानाले जीव मर्ने वा उनलाई पीडा पुग्ने कुरा तिमीलाई प्रत्यक्ष देखिदैन भने तिमी यो कुरा कसरी मान्दछौ? देखिन्छ भने हामीलाई पनि देखाऊ। तिमी कहिल्यै प्रत्यक्ष देख्न वा हामीलाई देखाउन सक्नेछैनौ। प्रत्यक्ष नभएपछि अनुमान, उपमान र शब्द प्रमाण घटित हुन सक्तैनन्। अनि हामीले माथि दिएको उत्तर यस कुराको पनि उत्तर हो, किनकि अत्यन्त अन्धकार, महासुषुप्ति र महानशामा जीवहरूलाई सुख दुःख प्राप्त हुने कुरा मान्नु यस्ता युक्ति बनाउने र विद्याविरुद्ध उपदेश गर्ने तिम्रा तीर्थंकरहरूको पनि भूल प्रतीत हुन्छ। जब घरको अन्त=छेउटुङ्गो छ भने त्यसमा बस्ने अनन्त कसरी हुन सक्तछन्? हामी कन्दमूलको

अन्त देख्छौं भने त्यसमा बस्ने जीवको अन्त किन छैन ? यसकारण यो तिम्रो ठूलो भ्रमको कुरा हो।

प्रश्न—हेर, तिमीहरू पानी नतताई काँचो पानी पिउँछौ, त्यो ठूलो पाप गर्दछौ। जसरी हामी तातो पानी पिउँछौं त्यस्तै तिमीहरू पनि पिउने गर।

उत्तर—तिम्रो यो कुरा पनि भ्रमजालकै हो। किनकि तिमीले पानी तताउँदा पानीका सबै जीव मर्दाहुन् र उनको शरीर पानीमै मिसिएर त्यो पानी सूपको अर्क जस्तै हुँदो हो। अनि त सम्झ तिमी ती जीवका शरीरको 'तेजाब' नै पिउँछौ। यसकारण तिमी ठूला पापी हौ भने चिसो पानी पिउनेहरू त्यसता होइनन्, किनकि चिसो पानी पिउनेहरू त्यस्ता होइनन्, किनकि चिसो पानी पिउँनाने पेटमा गएर केही गर्मी पाएपछि ती जीव श्वासँग बाहिर निस्कनेछन्। वास्तवमा त पूर्वोक्त रीतिले जलकाय जीवलाई सुख दुःख प्राप्त हुनसक्तैन्, अतः यसमा कसैलाई पनि पाप लाग्दैन।

प्रश्न—जाठराग्निबाट गर्मी पाएर जीव बाहिर निस्केजस्तै पानी तताउँदा गर्मी पाएर किन निस्कनेछैनन् र ?

उत्तर—हँ, निस्कन त निस्कन्थे तर तिमी मुखको वायुको गर्मीले त जीव मर्दछन् भन्ने मान्दछौ भने पानी तताउँनाले तिम्रो विचार अनुसार जीव मर्नेछन् ? अथवा बढ़ी कष्ट पाएर निस्कनेछन् ? अनि उनका शरीर त्यस पानीमा घुलमिल भएर यसबाट तिमी बडी पापी हुनेछौ वा छैनौ ?

प्रश्न—हामी न त आफ्नै हातले पानी तताउँछौं न कुनै गृहस्थलाई पानी तताउने आज्ञा दिन्छौं। यसकारण हामीलाई पाप लाग्दैन।

उत्तर—तिमीले तातो पानी नै लिने, पिउने नगरेका भए गृहस्थले किन पो तताउने थिए र ? यसकारण त्यस पापका भागी तिमी नै हौ, अझ बढी पापी हौ किनकि तिमीले कुनै एउटा गृहस्थलाई पानी तताउन भनेका भए एकै ठाउँमा तात्थ्यो। तर गृहस्थहरू 'नजाने साधुजी कसका घरमा आउनेछन्' भन्ने भ्रममा रहने हुनाले प्रत्येक गृहस्थ आ–आफ्ना घरमा पानी तताएर राख्छन्। यस पापका भागी मुख्य रूपमा तिमी नै हौ।

अर्को कुरा, काठ र आगो बल्ने बाल्ने गर्नाले पनि माथि लेखे अनुसार भान्छा, खेती र व्यापार आदिमा बढी पापी र नरकगामी हुन्छौ। अनि तिमी पानी तताउनका मुख्य कारण हुनाले र तातो पानी

पिउने तथा चिसो नपिउने उपदेश गर्नाले पनि तिमी नै मुख्य पापका भागी हौ, साथै तिम्रो उपदेशलाई मानेर यस्ता काम कुरा गर्नेहरू पनि पापी हुन्।

अब 'तिमी ठूलो अविद्यामा छौ वा छैनौ' भन्ने कुरा त बुझ। किनकि साना साना जीव माथि दया गर्नु तथा मतावलम्बीहरूको भने निन्दा र अनुपकार गर्नु के सानो पाप हो ? तिम्रा तीर्थंकरको मत सच्चा भए सृष्टिमा यत्तिको वर्षा, नदीहरूको प्रवाह र यतिको पानी ईश्वरले किन उत्पन्न गरेको छ त ? अनि सूर्यलाई पनि उत्पन्न नगरेको भए हुन्थ्यो, किनकि तिम्रो मत अनुसार यिनमा पनि करोडौं करोड जीव मर्दाहुन् नै। तिमीले ईश्वर मानेका ती विद्यमान छँदा उनीहरूले दया गरेर सूर्यको ताप र बादललाई किन बन्द गरेनन् त ?

अनि पूर्वोक्त प्रकारले विद्यमान प्राणी बाहेक कन्दमूल आदि पदार्थमा रहने जीवलाई दुःख सुखको प्राप्ति हुँदैन। सर्वथा सबै जीवमाथि दया गर्नु पनि दुःखको कारण बन्दछ। किनकि तिम्रो मतानुसार नै सबै जीवित भएमा चोर, डाकूलाई कसैले दण्ड दिने छैन, अनि कति ठूलो पाप बढ्नेछ ? यसकारण दुष्टहरूलाई यथावत् दण्ड दिन र श्रेष्ठ व्यक्तिहरूको पालन गर्नमा दया हुन्छ तथा यसको विपरीत गर्नमा दया, क्षमारूप धर्मको नाश हुन्छ। कतिका जैनीहरू पसल थाप्छन्, त्यस्ता व्यवहारमा ती झूटो बोल्दछन्, अर्काको धन हात पार्दछन् र दीन–हीनलाई छल्ने–ढाँट्ने आदि कुकर्म गर्दछन्, तिनको निवारणका लागि उपदेश किन गर्दैनौ ? मुखमा पट्टी बाँध्ने आदि ढोंग=पाखण्डमा किन रहन्छौ ?

तिमी चेला चेली बनाउँदा कपाल लुछ्ने र धेरै दिन सम्म भोक–भोकै रहन र राख्नमा अरूको र आफ्नो आत्मालाई कष्ट दिएर र कष्ट उठाएर अरूलाई किन दुःख दिन्छौ र आत्महत्या अर्थात् आत्मालाई दुःख दिएर हिंसक किन बन्दछौ ? हात्ती, घोडा, गोरू, ऊँट आदिमा चढ्न र मानिसहरूबाट ज्यालादारी गराउँनमा जैनीहरू किन पाप ठान्दैनन् ? तिम्रा चेला उटपटांग कुरालाई सत्य सिद्ध गर्न सक्तैनन् भने तिम्रा तीर्थंकर पनि सत्य सिद्ध गर्न सक्तैनन्। तिमीले कथा बाँच्ता मार्गमा श्रोताहरू र तिम्रो मतानुसार जीव अवश्य मर्दाहुन्। यसकारण तिमी यस पापका मुख्यकारण किन हुन्छौ ? ती जल, स्थल, वायुका स्थावर शरीरयुक्त अत्यन्त मूर्च्छित जीवहरूलाई कहिल्यै दुःख वा सुख पुग्न वा पुर्याउन सकिन्न भन्ने कुरा यति थोरै कथनबाटै धेरै बुझ्नुपर्दछ।

अब जैनीहरूका अरू केही असम्भव कथा लेखिन्छन्। सुन्न र ध्यानमा राख्न योग्य कुरा के छ भने आफ्नो हातले साँढे तीन हातको धनुष हुन्छ, कालको संख्या भने अघि लेखिए अनुसार बुझ्नुपर्दछ।

रत्नसार, भाग १ पृष्ठ १६६–१६७ मा लेखेको छ—

'**१. ऋषभदेवको** शरीर ५०० (पाँच सय) धनुष् लामो र ८४००००० (चौरासी लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **२. अजितनाथको** ४५० (चार सय पचास) धनुष् जति लामो शरीर र ७२००००० (बहत्तर लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **३. संभवनाथको** ४०० (चार सय) धनुष् परिमाणको शरीर र ६०००००० (साठी लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **४. अभिनन्दनको** ३५० (तीन सय पचास) धनुष बराबरको शरीर र ५०००००० (पचास लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **५. सुमतिनाथको** ३०० (तीन सय) धनुष् परिमाणको शरीर र ४०००००० (चालीस लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **६. पद्मप्रभको** १४० (एक सय चालीस) धनुष् जत्तिको शरीर र ३०००००० (तीस लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **७. पार्श्वनाथको** २०० (दुई सय) धनुष् बराबरको शरीर र २०००००० (बीस लाख) 'पूर्व' वर्ष को आयु, **८. चन्द्रप्रभको** १५० (एक सय पचास) धनुष्को शरीर १०००००० (दश लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **९. सुविधिनाथको** १०० (एक सय) धनुष्को शरीर र २००००० (दुई लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **१०. शीतलनाथको** ९० (नव्वे) धनुष्को शरीर र १००००० (एक लाख) 'पूर्व' वर्षको आयु, **११. श्रेयांसनाथको** ८० (अस्सी) धनुष्को शरीर र ८४००००० (चौरासी लाख) वर्षको आयु, **१२. वासुपूज्यस्वामीको** ७० (सत्तरी) धनुष्को शरीर र ७२००००० (बहत्तर लाख) वर्षको आयु, **१३. विमलनाथको** ६० (साठी) धनुष्को शरीर ६०००००० (साठी लाख) वर्षको आयु, **१४. अनन्तनाथको** ५० (पचास) धनुष्को शरीर र ३०००००० (तीस लाख) वर्षको आयु, **१५. धर्मनाथको** ४५ (पैंतालीस) धनुष्को शरीर र १०००००० (दश लाख) वर्षको आयु, **१६. शान्तिनाथको** ४० (चालीस) धनुको शरीर र १००००० (एक लाख) वर्षको आयु, **१७. कुन्थुनाथको** ३५ (पैंतीस) धनुष्को शरीर र ९५००० (पंचान्नव्वे हजार) वर्षको आयु, **१८. अमरनाथको** ३० (तीस) धनुष्को शरीर र ८४००० (चौरासी हजार) वर्षको आयु, **१९. मल्लीनाथको** २५ (पच्चीस) धनुष्को शरीर र ५५००० (पचपन्न हजार) वर्षको आयु, **२०. मुनिसुवृतको** २० (बीस) धनुष्को शरीर र ३०००० (तीस

हजार) वर्षको आयु, **२१. नमिनाथको** १४ (चौध) शरीर र १०००० (दश हजार) वर्षको आयु, **२२. नेमिनाथको** १० (दश) धनुष्को शरीर र १००० (एक हजार) वर्षको आयु, **२३. पार्श्वनाथको** ९ (नौ) हातको शरीर र १०० (एक सय) वर्षको आयु तथा **२४. महावीर** स्वामीको ७ (सात) हातको शरीर र ७२ (बहत्तर) वर्षको आयु थियो।'

यी चौबीस तीर्थंकर जैनीहरूको मत चलाउने आचार्य र गुरु हुन्। यिनैलाई जैनीहरू परमेश्वर मान्दछन् र यी सबैले मोक्ष प्राप्त गरे भन्ठान्दछन्। यस प्रसंगमा 'यति ठूला शरीर र यतिको आयु मनुष्य शरीरको हुन के कहिल्यै सम्भव छ?' भन्ने कुरा बुद्धिमान्हरूले विचार गर्नुपर्दछ। यस भूगोलमा यस्ता थोरै मानिस बस्न सक्तछन्। यिनै जैनीहरूका गफलाई लिएर पुराणीहरूले लेखेका एकलाख, दश हजार र एक हजार वर्षको आयु पनि असम्भव कुरा हो भने जैनीहरूको कथन तु[illegible]सरी सत्य हुन सक्तछ र?

[illegible] अरू पनि हेर—कल्पभाष्य, पृष्ठ ४—'नागकेतले गाउँ बराबरको एउटा ढुङ्गोंलाई औंलामा राख्यो।' पृष्ठ ३५—'महावीरले औंठाले पृथ्वीलाई थिच्दा शेषनाग काँप्यो।' पृष्ठ ४६—'महावीरलाई सर्पले टोक्यो, रगतको सट्टा दूध निस्कियो र त्यो सर्प आठौं स्वर्गमा गयो।' पृष्ठ ४७—'महावीरका गोडामा खीर पकाउँदा गोडो डढेन।' पृष्ठ १६—'सानो भाँडोमा ऊँटलाई बोलाए।' रत्नसार भाग १ पृष्ठ १४—'शरीरको मैल हटाउनु र कन्याउनु हुँदैन।' विवेकसार भाग १ पृष्ठ १५—जैनीहरूका एक दमसार साधुले क्रोधित भएर उद्वेगजनक सूत्र पेर एउटा शहरमा आगो लगाइ दियो र ऊ महावीर तीर्थंकरको अतिप्रिय थियो।' पृष्ठ १२७—'राजाको आज्ञा अवश्य मान्नुपर्दछ।' पृष्ठ २२७—'एउटी कोशा वेश्याले थालमा सरस्यूँको थुप्रो लगाएर त्यसमाथि फूलले छोपिएको सियो ठड्याएर त्यसमाथि राम्ररी नाचेकी थिई, तर सियो गोडामा बिजेन र सरस्यूँको थुपरो पनि छरिएन!' तत्त्वविवेक पृष्ठ २२८—'यसै कोशा वेश्यासँग एउटा स्थूल मुनिले बाह्र वर्षसम्म भोग गर्यो र पछि दीक्षा लिएर सद्गति पायो तथा कोशा वेश्याले पनि जैन धर्मको पालन गरेर सद्गति प्राप्त गरी।' विवेकसार भाग १ पृष्ठ १८५—'एउटा सिद्धको गलामा लगाउने कन्थाले एउटा वैश्यलाई नित्य ५०० अशर्फी दिने गर्दथ्यो।' पृष्ठ २२८—'बलवान् व्यक्तिको आज्ञा, देवको आज्ञा, घोर वनमा कष्टपूर्वक निर्वाह, गुरुको आज्ञा आमा, बाबु, कुलगुरु, ज्ञातीय

व्यक्ति र धर्मोपदेष्टा यी छ को आदेशबाट हुने धर्मको कमीले धर्मको हानि हुँदैन।'

समीक्षक—अब यिनका मिथ्या कुरा हेर—एउटा मानिस गाउँको बराबरको ढुङ्गोलाई औंलामा के कहिल्यै राख्नसक्तछ?॥ १ ॥, अनि पृथ्वीको माथि औंठाले थिच्नाले के कहिल्यै पृथ्वी थिचिन सक्तछ? तथा पृथ्वीलाई थाम्न शेषनाग नै छैन भने को काम्ने छ र?॥ २ ॥, के सर्पले शरीरमा टोक्नाले दूध निस्कने कुरा कसैले देखेको छ? यो इन्द्रजाल बाहेक अरू केही होइन। उसलाई टोक्ने सर्प त स्वर्गमा गयो अनि महात्मा श्रीकृष्ण आदि तेस्रो नरकमा गए भन्ने कुरा कति मिथ्या हो त?॥ ३ ॥, महावीरको गोडामा खीर पाक्यो भने उसका गोडा किन डढेनन्?॥ ४ ॥, के कहिल्यै सानो भाँडामा ऊँट अटाउन सक्तछ?॥ ५ ॥, जो शरीरको मैल हटाउँदैनन् अनि त ती कन्याउँदा हुन् र दुर्गन्धरूप महानरक भोग्दाहुन्॥ ६ ॥, जुन साधुले शहरलाई डढायो त्यसको दया र क्षमा कता गयो? महावीरको संगतबाट पनि उसको आत्मा पवित्र भएन भने अब महावीर मरेपछि उसको आश्रयबाट जैनीहरू कहिल्यै पवित्र हुने छैनन्॥ ७ ॥, राजाको आज्ञा मान्नुपर्दछ। तर जैनीहरू बनिया=वैश्य वा खास व्यापारीवर्गका छन्। यसकारण राजा देखि डरेर यसो लेखे होलान्॥ ८ ॥, कशा वेश्याको शरीर जतिसुकै हलुको भएपनि उसले सरस्यूँको थुप्रोमाथि सियो ठड्याएर नाच्ने, सियो नबिझ्ने र सरस्यूँ नछरिने कुरा अत्यन्त झूठा होइनन् भने के हो त?॥ ९ ॥, कसैले कुनै अवस्थामा पनि जेसुकै भएपनि धर्म छोड्नु हुँदैन॥ १० ॥, कन्था त कपडाको हुन्छ, त्यसले दिनहुँ ५०० अशर्फी कसरी दिन सक्तछ?॥ ११ ॥

यिनका यस्ता यस्ता असम्भव कथा लेख्दै गएमा जैनीहरूका खोक्रा पोथा जस्तै यो ग्रन्थ पनि धेरै बढ्ने छ, यसकारण बढी लेख्दैनौं। अर्थात् यी जैनीहरूका थोरै कुरा बाहेक बाँकी सबै मिथ्याजाल भरिभराउ छ। हेर—

दो ससि दो रवि पढमे। दुगुणा लवणंमि धायईसंडे।
बारस ससि बारस रवि। तप्पमि इं निदिठ ससि रविणो॥
तिगुणा पुब्विल्लजुया। अणंतराणंतरं मिखित्तमि।
कालो ए बयाला। बिसत्तरी पुस्कर द्वंमि॥

—प्रक० भा० ४, संग्रहणी सूत्र ७७, ७८॥

एक लाख योजन अर्थात् चार लाख केशको 'जम्बूद्वीप' पहिलो

द्वीप हो यसमा दुईवटा चन्द्रमा र दुईवटा सूर्य छन्। अनि त्यस्तै लवण समुद्रमा त्यसको दोब्बर अर्थात् चारवटा चन्द्रमा र चारवटा सूर्य छन्। तथा धातकी खण्डमा बाह्रवटा चन्द्र र बाह्रवटा सूर्य छन्। यिनलाई तिगुना गर्दा छत्तीस हुन्छन्। तीसँग जम्बूद्वीपका दुईवटा र लवण समुद्रका चारवटा मिलेर कालोदधि समुद्रमा जम्मा बयालीस चन्द्रमा र बयालीस सूर्य छन्। यसै गरी अगाडि अगाडिका द्वीप र समुद्रमा पूर्वोक्त बयालीसलाई तीनगुना गरेमा १२६ (एक सय छब्बीस) हुन्छन्। तिनमा धातकी खण्डका १२ (बाह्र), लवण समुद्रका ४ (चार) र जम्बूद्वीपका दुई–दुई गरी हिसाब गर्दा १४४ (एक सय चवालीस) चन्द्रमा र यति नै सूर्य पुष्करद्वीपमा छन्। यो पनि आधा मनुष्यक्षेत्र को गणना हो। तर जहाँसम्म मानिस बस्तैनन् त्यहाँ धेरै जसो सूर्य र धेरै चन्द्रमा छन्। अनि पछाडिको आधा पुष्करद्वीपमा धेरै चन्द्रमा र सूर्य छन्। ती स्थिर छन्। पूर्वोक्त १४४ लाई तीनगुना गर्दा ४३२ (चार सय बत्तीस) र तिनमा पूर्वोक्त जम्बूद्वीपका दुई चन्द्रमा, दुई सूर्य, लवण समुद्रका चार–चार, धातकी खण्डका बाह्र–बाह्र र कालोधिका ४२ (बयालीस) मिलाएर गणना गर्दा पुष्कर समुद्रमा ४९२ चन्द्रमा र ४९२ सूर्य छन्। यी सबै कुरा श्री जिनभद्रगणीक्षमाश्रमणले ठूलो 'संघयणी', 'योतीसकरण्डक पयन्ना', चन्द्रपन्नति तथा सूरपन्नति आदि प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थमा यस्तै किसिमले बताएका छन्।

समीक्षक—अब हेर त भूगोल र खगोललाई जान्नेहरू हो। यस एउटा भूगोलमा एउटा किसिमले ४९२ (चार सय बयानब्बे) र अर्को किसिमले असंख्य चन्द्र र सूर्य जैनीहरू मान्दछन्। यो तपाईंहरूको ठूलो भाग्य हो कि तपाईंहरू वेदमतानुयायी 'सूर्यसिद्धान्त' आदि ज्योतिष ग्रन्थहरूको अध्ययनबाट ठीक–ठीक भूगोल खगोल विद्यालाई जान्नो हुनुभयो। कतै जैनीहरूका महा अन्धेरमतमा रहनु भएका भए जन्मभर अन्धेरमै रहनुपर्दथ्यो। जस्ता कि जैनीहरू हिजोआज सम्म छन्। यी अविद्वान्=मूर्खहरूले पृथ्वीलाई सूर्य आदिभन्दा पनि ठूलो मान्ने हुनाले यिनीहरूलाई एउटा सूर्य र चन्द्रले काम चल्दैन। यति ठूला पृथ्वीसम्म चन्द्रसूर्य तीस घडीमा कसरी आइपुग्न सक्लान् र?' भन्ने शंका भएछ र यही यिनीहरूको ठूलो भ्रम हो।

दो ससि दो रवि पंती एगंतरिया छसठि संखाया
मेरुं पयाहिणंता माणुसखित्ते परिअडंति॥

—प्रकरण०, भा० ४, संग्रहणीसूत्र ७९॥

सं० अर्थ—मनुष्यलोकमा चन्द्रमा र सूर्यको पंक्तिको संख्या भनिन्छ। दुई चन्द्रमा र दुई सूर्यको पंक्ति=श्रेणी छ। ती एक–एक लाख योजन अर्थात् चार लाख कोशको फरकमा चल्दछन्। जस्तै सूर्यको पंक्तिको अन्तरमा एक पंक्ति चन्द्रको छ, यसैगरी चन्द्रमाको पंक्तिको अन्तरमा सूर्यको पंक्ति छ। यस्तै किसिमले चार पंक्ति छन्। ती एक–एक चन्द्रपंक्तिमा ६६ चन्द्रमा र एक–एक सूर्यपंक्तिमा ६६ सूर्य छन्। ती चारै पंक्ति जम्बुद्वीपको मेरु पर्वतको प्रदक्षिणा गर्दै मनुष्यक्षेत्रमा परिभ्रमण गर्दछन् अर्थात् जम्बूद्वीपको मेरुबाट एउटा सूर्य दक्षिण दिशामा हिंड्दाबखत अर्को सूर्य उत्तर दिशामा फिर्दछ। त्यस्तै लवण समुद्रको एक–एक दिशामा दुई–दुई सूर्य चल्ने फिर्ने गर्दछन्, धातकी खण्डका छ, कालोदधिका २१, पुष्करार्द्धका ३६ गरी जम्मा ६६ सूर्य दक्षिण दिशा र ६६ सूर्य उत्तर दिशामा आ–आफ्ना क्रमले फिर्दछन्। अनि यी दिशाका सबै सूर्य मिलाएमा १३२ सूर्य र यस्तै ६६–६६ चन्द्रमा दुबै दिशाका पंक्तिहरू मिलाइएमा १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोकमा चल्ने फिर्ने गर्दछन्। यसै किसिमले चन्द्रमासँगै नक्षत्र आदिको पनि धेरैजसो पंक्तिहरू भएको कुरा बुझ्नुपर्दछ।

समीक्षक—अब हेर भाइ! यस भूगोलमा १३२ सूर्य र १३२ चन्द्रमा जैनीहरूका घरमा तापिंदा हुन्। त्यसो हुँदो हो त ती कसरी बाँच्छन्? अनि रात्रिमा पनि शीतका कारण जैनीहरू कठ्याँग्रिदा हुन्। यस्ता असम्भव कुरामा भूगोल, खगोललाई नजान्नेहरू नै फस्तछन्। अरू फस्तैनन्। एउटै सूर्य यस भूगोललाई जस्तै अरू अनेक भूगोललाई प्रकाशित गर्दछ भने यस सानो भूगोलको बारेमा के भन्नु र? अनि पृथ्वी नघुमेर सूर्य चाहिं पृथ्वीको चारैतिर घुम्ने भए अनेकौं वर्ष को एक दिन र रात हुने थिए। अनि हिमालयवाहेक अरू कुनै सुमेरु छैन। त्यो सुमेरु यस सूर्यको अगाडि कुनै घैंटोंको अगाडि रायोको गेडो जति पनि छैन। यी कुरालाई जैनीहरू जैनमतमा रहेसम्म बुझ्न सक्तैनन् र सदा अँध्यारैमा रहनेछन्।

समत्तचरणसहिया सव्वं लोगं फुसे निखसेसं।
सत्तय च उदसभाए पंचय सुपदेसविरईए॥

—प्रकरण० भा० ४, संग्रहणीसूत्र १३५॥

सं० अर्थ—सम्यक् चारित्र सहितका केवली केवल समुद्घात अवस्थाद्वारा सबै चौध राज्यलोकलाई आफ्नै आत्मप्रदेश बनाएर फिर्नेछन्।

समीक्षक—जैनीहरू १४ (चौध) राज्य मान्दछन्। ती मध्ये चौंधोंको टुप्पोमा सर्वार्थसिद्धि विमानको ध्वजामाथि केही टाढा सिद्धशिला तथा दिव्य आकाशलाई 'शिवपुर' बताउँछन्। केवली अर्थात् केवल ज्ञान सर्वज्ञता र पूर्ण पवित्रता प्राप्त भएका व्यक्ति त्यस लोकमा जाने कुरा भन्दछन् र आफ्नो आत्मप्रदेशबाट सर्वज्ञ रहन्छन्। जसको प्रदेश हुन्छ, त्यो विभु होइन। जो विभु होइन त्यो सर्वज्ञ केवल ज्ञानी कहिल्यै हुनसक्तैन। किनकि जसको आत्मा एकदेश हुन्छ, त्यहीं आउने–जाने, बद्ध–मुक्त, ज्ञानी–अज्ञानी आदि हुन्छ। सर्वव्यापी सर्वज्ञ त्यस्तो कहिल्यै हुनसक्तैन। जीवरूप अल्प, अल्पज्ञ भएर स्थित जैनीहरूका तीर्थंकर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ कहिल्यै हुनसक्तैनन्। तर सर्वज्ञता आदि गुण यथावत् घटित हुने अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पवित्र, ज्ञानस्वरूप परमात्मालाई जैनीहरू मान्दैनन्।

गब्भनर तिपलियाऊ। तिगाउ उक्कोस ते जहन्नेणं।
मुच्छिम दुहावि अन्तमुहु। अंगुल असंख भागतणू॥

—प्रक० र० भा० ४, संग्रहणीसूत्र २४१॥

सं० अर्थ—यहाँ दुई किसिमका मानिस छन्—पहिला गर्भज र अर्का गर्भविना नै उत्पन्न भएका। तिनमा उत्कृष्ट गर्भज मनुष्यको आयु तीन पाल्योपम हुन्छ भन्ने बुझ्नुपर्दछ र शरीर चाहिं तीन कोशको हुन्छ।

समीक्षक—तीन पाल्योपम आयु र तीन कोशको शरीर भएका मानिस त यस भूगोलमा अत्यन्त थोरै मात्र अटाउन सक्नेछन्। अनि अघि लेखिए, अनुसार तीन पाल्योपमको समय जति बाँच्ने भए तिनका सन्तान पनि त्यति नै बाँच्ने र तीन–तीन कोशका शरीर भएका हुनुपर्दछ। यस्ता मानिस बम्बई वा कलकत्ता जस्ता शहरमा दुई–चार जनाभन्दा बढ़ी बस्न सक्तैनन्। यसो हो भने जैनीहरूले एउटै शहरमा लाखौं मानिस बस्ने कुरा लेखेका छन्, अनि त ती बस्ने शहर पनि लाखौं कोशको हुनुपर्दछ। सम्पूर्ण भूगोलमा त्यस्तो एउटा शहर पनि हुनसक्तैन।

पणयाल लरकजोयण। विरकंभा सिद्धिसिल फलिह विमला।
तदुवरि गजोयणंते लोगंतो तच्छ सिद्धठिई॥

—प्रक० भा० ४, संग्रहणीसूत्र २५८॥

सं० अर्थ—सर्वार्थ सिद्धि विमानको ध्वजाभन्दा १२ (बाह्र) योजन मास्तिर सिद्धशिला छ, त्यसको घेरो, लम्बाइ र मोटोपनमा ४५ (पैंतालीस) लाख योजनको परिमाण छ। त्यो सबै धवलार्जुन=धेरै सेतो, सुवर्णमय, स्फटिक जस्तै निर्मल सिद्धशिलाको सिद्धभूमि हो। यसलाई कोही

कोही 'ईषत्', 'प्राग्भरा' पनि भन्दछन्। यो सर्वार्थ सिद्धशिला विमानभन्दा १२ (बाह्र) योजन अलोक पनि छ। यस परमार्थ=वास्तविकतालाई वहुश्रुत=विद्वान् 'केवली' मात्र जान्दछ। यो सर्वार्थ सिद्धशिला मध्यम भागमा ८ (आठ) योजन स्थूल छ। त्यहाँबाट चार दिशा र चार उपदिशामा घट्ता–घट्ता झिंगाको पखेटा जस्तै पातलो, उत्तानो छाता को आकार जस्तै सिद्धशिला स्थापित छ। त्यस शिलाभन्दा मास्तिर १ (एक) योजनको फरकमा 'लोकान्त' छ। त्यहाँ सिद्धहरूको स्थित छ।

समीक्षक—अब विचारणीय कुरा के भने जैनीहरूको मुक्तिको ठाउँ सर्वार्थसिद्धि विमानको ध्वजाभन्दा मास्तिर ४५ (पैंतालीस) लाख योजनको शिला जतिसुकै राम्रो र निर्मल भए पनि त्यसमा बस्ने मुक्त जीव एक किसिमले बद्ध नै हुन्। किनकि त्यस शिलाबाट बाहिर निस्कदा मुक्तिको सुख छुट्ता हुन्। अनि भित्र बस्नेहरूलाई हावा पनि लाग्दैन होला। यो त अविद्वान्हरूलाई फसाउँन गरिएको काल्पनिक भ्रमजाल मात्र हो।

जोयण सहस्स महियं। एगिंदियदेह मुक्कोसं॥
विति चउरिंदिस सरीयं। वारम जोयणं तिकोस चउकोसं।
जोयण सहसपणिं दिय। उहे वुच्छंत विसेसंतु॥

—प्रकरण०, भा० ४, संग्रहणीसूत्र २६६–२६७॥

सं० अर्थ—सामान्य ढंगले एक इन्द्रिय हुनेको शरीर एक हजार योजनको शरीर भएकोलाई उत्कृष्ट ठान्नुपर्दछ, त्यस्तै दुई इन्द्रिय भएका शङ्ख आदिको शरीर १२ (बाह्र) योजनको बुझ्नुपर्दछ, त्यस्तै कीरा, फट्याङ्ग्रा आदि तीन इन्द्रिय भएकाको शरीर ३ (तीन) कोशको, चार इन्द्रिय भएका भौंरा आदिको शरीर ४ (चार) कोशको र पाँच इन्द्रिय भएकाहरूको शरीर एक हजार योजन अर्थात् चार हजार कोशको हुन्छ भन्ने कुरा जान्नुपर्दछ।

समीक्षक—चार–चार हजार कोश परिमाणको शरीर भएका भए भूगोलमा त थोरै मात्र मानिस, प्राणी अटाउनेछन् अर्थात् सयौं मानिसले मात्र भूगोल ठसाठस भरिने छ। कसैलाई हिंड्डुल गर्ने ठाउँ पनि रहने छैन। अनि ती जैनीहरू बस्ने ठाउँ र बाटो त सोधौं। अनि यिनीहरूले लेखेकोलाई यी आफ्नै घरमा राखून्। तर चार हजार कोशका शरीरधारीको निवास गर्न कम से कम ३२ (बत्तीस) हजार कोशको घर त चाहिने नै छ। जैनीहरूको भएभरको धन सिध्याएर पनि यस्तो एउटा घर बन्नसक्तैन। यति ठूला आठ हजार कोशका छाना छाउन लट्ठा=निदाल

आदि कहाँबाट ल्याउनेछन्? त्यसमा थाम राखेमा ऊ भित्र पस्न पनि सक्नेछैन। यसकारण यी सबै मिथ्या कुरा हुन्।

ते थूला पल्ले विहु संखिज्जाचे वहुंति सव्वेवि।
ते इक्किक्क असंखे। सुहुमे खम्मे पकप्पेह॥

—प्रक०, भा० ४, लघुक्षेत्रसमास प्रकरण, सू० ४॥

सं० अर्थ—अघि बताए अनुसार एक अंगुलका रौं का टुक्रा सबै मिलाएर जम्मा बीस लाख सन्ताउन्न हजार एक सय बाउन्न (२०,५७,१५२) हुन्छन् अनि बढीभन्दा बढी (३३०, ७६२१०४, २४६५६२५, ४२१९९६०, ९७५३६००,०००००००) तेंतीस करोडौं करोड, सात लाख बैसट्ठी हजार एक सय चार करोडौं करोड, चौबीस लाख पैंसट्ठी हजार छ सय पच्चीस करोडौं करोड, बयालीस लाख उन्नाईस हजार नौ सय साठी करोडौं करो, सन्तानव्वे लाख त्रिपन्न हजार छ सय करोडौं करोड यति बाटुलो घन योजन 'पल्योपम' मा सबै स्थूल रौंका टुक्राको संख्या हुन्छ। यो पनि संख्यातकाल हो। पूर्वोक्त एउटा रौंका टुक्राका असंख्यात टुक्राको कल्पना मनबाट गर्दा असंख्यात सूक्ष्म रौंका अणु हुनेछन्।

समीक्षक—यिनको गणनाको तरीका त हेर। एक अंगुल परिमाणको रौंका कति टुक्रा पारे? के यो कहिल्यै कुनै गुणना अन्तर्गत पर्न सक्तछ? अनि त्यसपछि मनबाट असंख्य टुक्राको कल्पना गर्दछन्। यसबाट 'अघिल्ला टुक्रा चाहिं हातैले गरे होलान्' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। हाथबाट टुक्रा हुन नसकेपछि मनबाट गरे। के कहिल्यै एक अंगुल रौंका असंख्यात टुक्रा हुनसक्तछन्?

जम्बुद्वीपपमाणं गुलजोयणलरक वट्टविरकंभी।
लवणाइ यासेसा। बलयाभा दुगुण दुगुणाय॥

—प्रकरण, भा० ४, लघुक्षुक्षेत्रसमा०, सू० १२॥

सं० अर्थ—पहिलो जम्बूद्वीपको परिमाण लाख योजन छ र त्यो खोक्रो छ। बाँकी लवणादि सात समुद्र, सातद्वीप जम्बूद्वीपको परिमाणभन्दा दोब्बर–दोब्बर छन्। यस एउटा पृथ्वीमा अघि लेखिए अनुसार जम्बूद्वीप आदि सातद्वीप र समुद्र छन्।

समीक्षक—जम्बूद्वीपभन्दा अर्को द्वीप दुईलाख योजन, तेस्रो चारलाख योजन, चौथो आठलाख योजन, पाँचौं सोह्र लाख योजन, छैठौं बत्तीस लाख योजन र सातौं द्वीप चौंसट्ठी लाख योजन तथा त्यति नै परिमाण वा तीभन्दा बढी परिमाणका समुद्र हुँदा यस पन्ध्र हजार

कोशको परिधि भएको पृथ्वीमा ती सबै कसरी अटाउँन सक्तछन् ? यसकारण यो मिथ्या कुरा मात्र हो।

कुरु नइ चुलसी सहसा। छच्चेवन्तरनइउ पइ विजयं।
दो दो महा नईउ। चउदस सहसाउ पत्तेयं॥

—प्रकरणरत्नाकर, भा० ४, लघुक्षेत्रसमा० सू० ६३॥

सं० अर्थ—कुरुक्षेत्रमा ८४ (चौरासी) हजार नदी छन्।

समीक्षक—कुरुक्षेत्र त धेरै सानो ठाउँ हो। त्यसलाई नहेरी एउटा सरासर झूटो कुरा लेख्नमा यिनीहरूलाई लाज पनि लागेन।

जामुत्तराउ ताउ। इरोग सिंहासणाउ अइपुब्बं।
चउसुवि तासु नियासण, दिसि भवजिण मज्जणं होई॥

—प्रकरणरत्नाकर, भा० ४, लक्षुक्षेत्रसमा०, सू० ११९॥

सं० अर्थ—त्यस शिलाको दक्षिण र उत्तर दिशामा एउटा-एउटा विशेष सिंहासन छ भन्ने बुझ्नुपर्दछ। ती शिलाहरूको दक्षिण दिशामा अतिपाण्डुकम्बला र उत्तर दिशामा अतिरक्तकम्बला शिला नाम छ। ती सिंहासनमा तीर्थंकर बस्तछन्।

समीक्षक—यिनका तीर्थंकरहरूका जन्मोत्सव आदि मनाउने शिलालाई त हेर! यस्तै मुक्तिको सिद्धशिला छ। यस्ता धेरैजसो गोलमाल, भ्रमपूर्ण कुरा छन्। कहाँ सम्म लेखौं ? तर पानी छानेर पिउने, सूक्ष्म जीवहरूमाथि नाम मात्र भएपनि दया गर्ने र रात्रिमा भोजन नगर्ने, यी तीन कुरा भने जैनीहरूमा राम्रा छन्। यिनीहरूको बाँकी सम्पूर्ण कथन असम्भवदोष ग्रस्त छ।

यो थोरै दृष्टान्त मात्र लेखेको हो। यति लेखबाटै बुद्धिमान्हरू धेरै जसो कुरा बुझ्ने नै छन्। यिनका सबै असम्भव कुरा लेख्न थालेमा एकजनाले आफ्नो उमेरभरमा पढ्न पनि नसक्ने जति पुस्तक हुनेछन्। यसकारण एउटा भाडामा पाकिरहेका चामल मध्ये एउटालाई हेरेर 'सबै पाकेका छन् वा काँचै छन्' भन्ने थाहा भएजस्तै यस थोरै लेखबाट सज्जनहरू धेरै कुरा बुझ्नेछन्। बुद्धिमानहरूको समक्ष धेरै लेख्न आवश्यक हुँदैन। किनकि दिग्दर्शन जस्तै सम्पूर्ण आशयलाई बुद्धिमान् व्यक्तिले बुझिहाल्दछन्। यस पछि ईसाईहरूको मतको बारेमा लेखिनेछ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचार्वाकबौद्धजैनमत-खण्डनमण्डनविषये द्वादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥१२॥

अनुभूमिका (३)

यो बाइबलको मत ईसाईहरूको मात्र नभई यसबाट यहूदी आदि पनि गृहीत हुन्छन्। यस तेह्रौं समुल्लासमा ईसाई मतको विषयमा लेख्नुको अभिप्राय 'हिजोआज बायबलको मतमा ईसाई मुख्य भईरहेछन् र यहूदी आदि गौण छन्' भन्ने हो। मुख्यलाई ग्रहण गर्नाले गौणको ग्रहण हुने हुनाले यसबाट यहूदीहरूको पनि ग्रहण सम्झनुपर्दछ।

ईसाई र यहूदी आदि सबैलाई मान्य बायबलबाट नै यिनीहरूको बारेमा यहाँ लेखिएको छ। यिनीहरू यसै पुस्तकलाई आफ्नो धर्मको मूलकारण मान्दछन्। यस पुस्तकका धेरै भाषान्तर यिनका मतमा रहेका ठूला-ठूला पादरीहरूले गरेका छन्। ती मध्ये देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर हेर्दा मेरो मनमा बायबलको बारेमा धेरै शंका उठे। ती मध्ये केही थोरै यस १३ (तेह्रौं) समुल्लासमा सबैको विचारार्थ लेखिएका छन्।

यो लेख कसैलाई दुःख दिन वा कसैको हानि गर्न अथवा मिथ्या दोष लगाउनका लागि नभई केवल सत्यको वृद्धि र असत्यको ह्रासका लागि हो। पछि लेखिने कुराबाट 'यो पुस्तक कस्तो छ र यिनको मत पनि कस्तो छ ?' भन्ने वास्तविक अभिप्राय सबैले बुझ्ने नै छन्। सम्पूर्ण मानवमात्रलाई देख्न, सुन्न, लेख्न आदि सरल होस् र सबै पक्षी-प्रतिपक्षी भएर विचार गरेर ईसाईमतको जाँच-परख गर्न सकुन भन्ने प्रयोजन यस लेखको हो। यसबाट एउटा प्रयोजन यो सिद्ध हुनेछ कि मानिसहरूको धर्मविषयक ज्ञान बढेर यथायोग्य सत्य र असत्य मत तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य कर्म सम्बन्धी विषयको ज्ञान भएर सत्य र कर्त्तव्यकर्मलाई स्वीकार तथा असत्य र अकर्त्तव्यकर्मलाई परित्याग गर्न सजिलो हुनेछ।

सबै मानिसले सबै मत सम्बन्धी पुस्तकहरूलाई हेरेर बुझेर केही सहमति वा असहमति दिनु वा लेख्नु अथवा अर्काले दिएको सहमति आदिलाई सुन्नु उचित हुन्छ। किनकि पढेर पण्डित हुने भए जस्तै सुनेर बहुश्रुत बनाइन्छ। श्रोताले अर्कालाई सम्झाउन नसकेतापनि आफू त बुझ्दछ। पक्षपातरूपी वाहनमा चढेर हेर्नेले न त आफ्ना न अरूका नै गुण-दोषको पत्तो पाउन सक्तछ। मनुष्यको आत्मामा सत्य र असत्यको यथायोग्य निर्णय गर्ने सामर्थ्य हुन्छ। आफूले पढेको वा सुनेको जतिको

निश्चय गर्न सक्तछ। एक किसिमका मतावलम्बीहरूले अर्का मतावलम्बीहरूलाई जान्ने र अरूले चाहि नजान्ने भएमा यथावत् संवाद हुन सक्तैन, तर अज्ञानी भने भ्रमरूपी कुनै भंडखारोमापर्दछन्। यसो नहोस् भन्ने ध्येयले नाम चलेका सबै मतको बारेमा यस ग्रन्थमा अलि अलि लेखिएको छ। यसबाटै बाँकी कुराहरूका बारेमा 'ती सच्चा हुन् वा झूठा?' भन्ने कुराको अनुमान गर्न सकिनेछ। सबै सर्वमान्य सत्य कुरा त सबैमा एकनासै छन्। झगडा चाहिं झूठा कुरामा हुन्छन्। अथवा एउटा सच्चा र अर्को झूटो भएपनि केही थोरै विवाद चल्दछ। वादी-प्रतिवादीले सत्य र असत्यको निश्चय गर्ने उद्देश्य राखेर वाद-प्रतिवाद गरेमा तथ्य र सत्यको निश्चय अवश्य हुनेछ।

अब म यस तेह्रौं समुल्लासमा ईसाई मतको बारेमा केही थोरै लेखेर सबैको सम्मुख प्रस्तुत गर्दछु। यो मत कस्तो छ? विचार गर्नुहोस्।

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु।

अथ त्रयोदश-समुल्लासः

अथ कृश्चीनाख्यमतविषयं व्याख्यास्यामः

यसपछि अब ईसाईहरूको मतको विषयमा लेखिन्छ। यसबाट सबैले 'यिनको मत निर्दोष र यिनको पुस्तक बाइबल ईश्वरकृत हो वा होइन?' भन्ने कुरा बुझ्नेछन्। सर्वप्रथम बाइबलको तौरेतको विषय लेखिन्छ—

१. आदिमा परमेश्वरले आकाश र पृथ्वी सृष्टि गर्नुभयो।

पृथ्वी आकारविनाको र शुन्य थियो। अथाह समुद्रमाथि अंधकार थियो, औ परमेश्वरको आत्मा पानीमाथि घुमिरहन्थ्यो।

—तौरेत उत्पत्ति पुस्तक, पर्व १। आयत १, २॥

समीक्षक—आरम्भ कसलाई भन्दछौ?

ईसाई—सृष्टिको प्रथम उत्पत्तिलाई।

समीक्षक—के यही सृष्टि पहिलोपल्ट भएको हो? यस अघि कहिल्यै भएको थिएन?

ईसाई—पहिले पनि भएको थियो वा थिएन भन्ने कुरा हामीलाई थाहा छैन। ईश्वर नै जानून्।

समीक्षक—जान्दैनौ भने सन्देहको निवारण गर्न नसक्ने यस पुस्तकमाथि किन विश्वास गर्यौ? अनि यसैलाई पत्याएर जनतालाई उपदेश गरेर यस सन्देहले भरिपूर्ण मतमा किन फसाउँछौ? सन्देहरहित सबै शंकाको निवारण गर्ने वेदमतलाई किन स्वीकार गर्दैनौ? जब तिमी ईश्वरको सृष्टिको अवस्थालाई नै जान्दैनौ भने ईश्वरलाई कसरी जान्दा हौ? आकाश केलाई मान्दछौ?

ईसाई—पोलो=खाली र मास्तिरलाई।

समीक्षक—पोलो=खालीको उत्पत्ति कसरी भयो? किनकि यो त विभु=व्यापक पदार्थ र अतिसूक्ष्म तथा तल-माथि एकनास छ। आकाशको सृष्टि गर्नु अघि पोलो र अवकाश=खाली ठाउँ थियो वा थिएन? थिएन भने ईश्वर, जगत्को कारण र जीव कहाँ बस्थे। अवकाश नभइ कुनै पदार्थ स्थित हुनसक्तैन। यसकारण तिम्रो बाइबलको कथन उचित होइन। ईश्वर आकार बिनाको, उसको ज्ञान, कर्म आकाररहित

निश्चय गर्न सक्तछ। एक किसिमका मतावलम्बीहरूले अर्का मतावलम्बीहरूलाई जान्ने र अरूले चाहि नजान्ने भएमा यथावत् संवाद हुन सक्तैन, तर अज्ञानी भने भ्रमरूपी कुनै भंडखारोमापर्दछन्। यसो नहोस् भन्ने ध्येयले नाम चलेका सबै मतको बारेमा यस ग्रन्थमा अलि अलि लेखिएको छ। यसबाटै बाँकी कुराहरूका बारेमा 'ती सच्चा हुन् वा झूठा?' भन्ने कुराको अनुमान गर्न सकिनेछ। सबै सर्वमान्य सत्य कुरा त सबैमा एकनासै छन्। झगडा चाहिं झूठा कुरामा हुन्छन्। अथवा एउटा सच्चा र अर्को झूटो भएपनि केही थोरै विवाद चल्दछ। वादी–प्रतिवादीले सत्य र असत्यको निश्चय गर्ने उद्देश्य राखेर वाद–प्रतिवाद गरेमा तथ्य र सत्यको निश्चय अवश्य हुनेछ।

अब म यस तेह्रौं समुल्लासमा ईसाई मतको बारेमा केही थोरै लेखेर सबैको सम्मुख प्रस्तुत गर्दछु। यो मत कस्तो छ? विचार गर्नुहोस्।

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु।

अथ त्रयोदश–समुल्लासः

अथ कृश्चीनाख्यमतविषयं व्याख्यास्यामः

यसपछि अब ईसाईहरूको मतको विषयमा लेखिन्छ। यसबाट सबैले 'यिनको मत निर्दोष र यिनको पुस्तक बाइबल ईश्वरकृत हो वा होइन?' भन्ने कुरा बुझ्नेछन्। सर्वप्रथम बाइबलको तौरेतको विषय लेखिन्छ—

१. आदिमा परमेश्वरले आकाश र पृथ्वी सृष्टि गर्नुभयो।

पृथ्वी आकारविनाको र शुन्य थियो। अथाह समुद्रमाथि अंधकार थियो, औ परमेश्वरको आत्मा पानीमाथि घुमिरहन्थ्यो।

—तौरेत उत्पत्ति पुस्तक, पर्व १। आयत १, २॥

समीक्षक—आरम्भ कसलाई भन्दछौ?

ईसाई—सृष्टिको प्रथम उत्पत्तिलाई।

समीक्षक—के यही सृष्टि पहिलोपल्ट भएको हो? यस अघि कहिल्यै भएको थिएन?

ईसाई—पहिले पनि भएको थियो वा थिएन भन्ने कुरा हामीलाई थाहा छैन। ईश्वर नै जानून्।

समीक्षक—जान्दैनौ भने सन्देहको निवारण गर्न नसक्ने यस पुस्तकमाथि किन विश्वास गर्यौ? अनि यसैलाई पत्याएर जनतालाई उपदेश गरेर यस सन्देहले भरिपूर्ण मतमा किन फसाउँछौ? सन्देहरहित सबै शंकाको निवारण गर्ने वेदमतलाई किन स्वीकार गर्दैनौ? जब तिमी ईश्वरको सृष्टिको अवस्थालाई नै जान्दैनौ भने ईश्वरलाई कसरी जान्दा हौ? आकाश केलाई मान्दछौ?

ईसाई—पोलो=खाली र मास्तिरलाई।

समीक्षक—पोलो=खालीको उत्पत्ति कसरी भयो? किनकि यो त विभु=व्यापक पदार्थ र अतिसूक्ष्म तथा तल–माथि एकनास छ। आकाशको सृष्टि गर्नु अघि पोलो र अवकाश=खाली ठाउँ थियो वा थिएन? थिएन भने ईश्वर, जगत्को कारण र जीव कहाँ बस्थे। अवकाश नभइ कुनै पदार्थ स्थित हुनसक्तैन। यसकारण तिम्रो बाइबलको कथन उचित होइन। ईश्वर आकार बिनाको, उसको ज्ञान, कर्म आकाररहित

हुन्छ अथवा आकार सहितको छ ?

ईसाई—आकारयुक्त हुन्छ।

समीक्षक—त्यसोभए यहाँ ईश्वरले बनाएको पृथ्वीलाई किन 'बेडौल=आकार बिनाको थियो' भन्ने कुरा लेखिएको छ त ?

ईसाई—बेडौल=आकार बिनाको अर्थ 'अग्लो-होचो थियो, बराबर=समथर थिएन' भन्ने हो।

समीक्षक—अनि कसले समथर पार्यो त ? अनि के अझै अग्लो-होचो छैन ? यसकारण ईश्वरको कार्य डोलडाल नमिलेको हुनसक्तैन, किनकि ईश्वर सर्वज्ञ छ, उसको काममा भूल-चूक कहिल्यै हुनसक्तैन। उता बाइबलमा ईश्वरको सृष्टिलाई बेडौल लेखिएको हुनाले यो पुस्तक ईश्वरकृत हुनसक्तैन। ईश्वरको आत्मा कस्तो पदार्थ हो ?

ईसाई—चेतन।

समीक्षक—त्यो साकार छ वा निराकार ? तथा व्यापक छ वा एकदेशी ?

ईसाई—निराकार, चेतन र व्यापक छ, तर खासगरी कुनै एउटा 'सनाई' पर्वत, चौथो आकाश आदि ठाउँहरूमा रहन्छ।

समीक्षक—निराकार छ भने उसलाई कसले देख्यो ? अनि व्यापक वस्तु पानीमा डुल्ने कुरा हुन सक्तैन। ईश्वरको आत्मा पानीमा डुल्दथ्यो भने त्यसबखत ईश्वरचाहिं कहाँ थियो त ? यसबाट 'ईश्वरको शरीर अरू कुनै ठाउँमा अवस्थित हुँदो हो' अथवा 'आफ्ना केही आत्माको एक टुक्रालाई पानीमा डुलाएको होला' भन्नेकुरा सिद्ध हुन्छ। यसो हो भने ऊ विभु र सर्वज्ञ कहिल्यै हुनसक्तैन। विभु होइन भने जगत्‌को रचना, धारण, पालन र जीवका कर्मको व्यवस्था अथवा प्रलय कहिल्यै गर्न सक्तैन, किनकि एकदेशी स्वरूप भएको पदार्थका गुण, कर्म, स्वभाव पनि एकदेशी हुन्छन्। यसो हो भने ऊ ईश्वर हुनसक्तैन किनकि ईश्वर त सर्वव्यापक, अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्त आदि लक्षणयुक्त वेदमा बताइएको छ। त्यसैलाई मानेमा तिम्रो पनि कल्याण हुनेछ, नत्र कल्याण हुनसक्तैन॥ १॥

२. परमेश्वरले भन्नुभयो—"**उज्यालो होस्**" तब उज्यालो भइहाल्यो। अनि परमेश्वरले उज्यालोलाई हेर्नुभयो, त्यो असल थियो॥

—तौरेत उत्पत्ति० पर्व० १। आ० ३,४

समीक्षक—के जडरूप उज्यालोले ईश्वरको कुरा सुन्यो र मान्यो ?

सुन्यो भने अझ पनि सूर्य तथा दियो आदि आगोको उज्यालोले हाम्रा-तिम्रा कुरा किन सुन्दैन ? उज्यालो त जड़ हुन्छ, त्यसले कहिल्यै कसैको कुरा सुन्न सक्तैन। के ईश्वरले उज्यालोलाई देखेपछि मात्र 'उज्यालो राम्रो छ' भन्ने कुरा जान्यो ? पहिले जान्दैनथ्यो ? जान्ने हुँदो हो त किन देखेपछि राम्रो बताउँथ्यो ? जान्दैनथ्यो भने त्यो ईश्वर नै होइन। यसैकारण तिम्रो बाइबल ईश्वरोक्त होइन र त्यसमा बताइएको ईश्वर पनि सर्वज्ञ होइन॥ २॥

३. अनि परमेश्वरले भन्नुभयो "पानीका बीचमा एक अन्तर होस् र त्यसले पानीलाई दुई भाग गरोस्"॥ परमेश्वरले अन्तर बनाएर अन्तरमुनिका पानी र अन्तरमाथिका पानीलाई अलग-अलग गर्नुभयो। तब त्यस्तै भइहाल्यो॥ परमेश्वरले यस अन्तरलाई आकाश तथा स्वर्ग भन्नुभयो। र साँझ बिहान—दोस्रो दिन भयो॥

—तौरेत उत्पत्ति पुस्तक, पर्व १। आ० ६-८॥

समीक्षक—के आकाश र पानीले पनि ईश्वरका कुरा माने ? अनि पानीको बीचमा आकाश थिएन भने पानी कहाँ रहन्थ्यो त ? पहिलो आयतमा आकाश बनाएको थियो भने फेरि आकाश बनाउनु व्यर्थै हुन्छ। अनि आकाश नै स्वर्ग हो भने त्यो त सर्वव्यापक हुनाले सर्वत्र स्वर्ग हुनुपर्यो, फेरि मास्तिर स्वर्ग छ भन्नु व्यर्थै हुन्छ। जब सूर्य्य उत्पन्न भएकै थिएन भने दिन र रात कहाँबाट भए ? यस्तै असम्भव कुरा अरू आयतमा पनि भरिपूर्ण छन्॥ ३॥

४. फेरि परमेश्वरले भन्नुभयो, "मानिसलाई आफ्नै स्वरूपमा, हाम्रै प्रतिरूपमा बनाऔं॥ यसैकारण परमेश्वरले मानिसलाई आफ्नै स्वरूपमा सृष्टि गर्नुभयो। परमेश्वरकै स्वरूपमा उहाँले तिनलाई सृष्टि गर्नुभयो। नर र नारी नै गरी उहाँले तिनीहरूलाई सृष्टि गर्नुभयो॥ अनि परमेश्वरले तिनीहरूलाई आशीष दिनुभयो"॥

—तौरेत उत्पत्तिपुस्तक, पर्व १। आय० २६-२८॥

समीक्षक—यदि मानिसलाई ईश्वरले आफ्नो स्वरूपमा बनाएको भए ईश्वरको स्वरूप त पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त छ, ऊजस्तै मानिस किन भएन ? त्यस्तो भएन, यसकारण उसको स्वरूपमा बनेको होइन। अनि मानिसलाई उत्पन्न गर्दा ईश्वरले आफ्नो स्वरूपलाई नै उत्पन्न हुने बनायो। अनि ऊ अनित्य किन होइन ? अनि मानिसलाई कहाँबाट उत्पन्न गर्यो ?

ईसाई—माटोबाट बनायो।

समीक्षक—माटो कहाँबाट बनायो ?

ईसाई—आफ्नो कुदरत अर्थात् सामर्थ्यबाट।

समीक्षक—ईश्वरको सामर्थ्य अनादि छ कि नवीन छ ?

ईसाई—अनादि छ।

समीक्षक—अनादि छ भने जगत्को कारण सनातन=अनादि भयो। अनि अभावबाट भाव किन मान्दछौ ?

ईसाई—सृष्टिभन्दा अघि ईश्वरबाहेक कुनै वस्तु थिएन।

समीक्षक—थिएन भने यो जगत् कहाँबाट बन्यो ? अनि ईश्वरको सामर्थ्य द्रव्य हो कि गुण हो ? द्रव्य हो भने त्यो ईश्वरभन्दा भिन्नै अर्को पदार्थ थियो। अनि गुण हो भने गुणबाट द्रव्य कहिल्यै बन्न सक्तैन। जस्तै रूपबाट अग्नि र रसबाट जल बन्न सक्तैन। अनि ईश्वरबाट जगत् बनेको भए ईश्वरको जस्तै गुण–कर्म–स्वभावयुक्त हुनेथियो। यो जगत् ईश्वरको गुण–कर्म–स्वभाव जस्तै नहुनाले 'जगत् ईश्वरबाट होइन, जगत्का कारण अर्थात् परमाणु आदि नामक जडबाट बनेको हो' भन्ने निश्चय हुन्छ। जगतको उत्पत्ति वेदादि शास्त्रमा जस्तो बताइएको छ र जसबाट ईश्वरले जगत्लाई बनाउँदछ त्यसैलाई मान। आदमको भित्रीस्वरूप जीव र बाहिरी मानिस जस्तै छ भने ईश्वरको स्वरूप त्यस्तो किन होइन ? किनकि जब आदम ईश्वर जस्तै बन्यो भने अवश्य पनि ईश्वर आदम जस्तै हुनुपर्दछ॥ ४॥

५. परमप्रभु परमेश्वरले भूमिको माटाबाट मानिस बनाउनुभयो, र तिनको नाकमा जीवनको सास फुकिदिनुभयो, र मानिस जीवित प्राणी भयो॥ अनि परमेश्वरले पूर्वतिर अदनमा एउटा बगैंचा लगाउनुभयो, र उहाँले बनाउनुभएको मानिसलाई त्यहीं राख्नुभयो॥ बगैंचाको बीचमा जीवनको रूख असल र खराबको ज्ञान दिने रूख पनि भूमिबाट उमार्नुभयो॥ —तौरेत उत्पत्ति पुस्तक, पर्व २। आ० ७–९॥

समीक्षक—ईश्वरले अदनमा बारी बनाएर त्यसमा मानिससाई राख्ता 'यसलाई फेरि यहाँबाट निकाल्नुपर्नेछ' भन्ने कुरा के ईश्वर जान्दैनथ्यो ? अनि ईश्वरले मानिसलाई माटोबाट बनाएको हो भने त्यो ईश्वरको स्वरूप भएन, यदि ईश्वरकै स्वरूप हो भने ईश्वर पनि माटोबाटै बनेको हुँदो हो ? त्यस मानिसको नाकमा ईश्वरले श्वास फुक्यो भने त्यो श्वास ईश्वरकै स्वरूप थियो वा अरू कुनै ? अरू कुनै स्वरूप थियो भने मानिस ईश्वरको स्वरूपमा बनेको भएन। एउटै हो भने मानिस र ईश्वर एकनासै भएर एकनासै हुन् भने मानिसजस्तै जन्म–मरण, बृद्धि–

क्षय, भोक–तिर्खा आदि दोष ईश्वरमा आइपर्दछन्। अनि त त्यो कसरी ईश्वर हुनसक्तछ र ? यसकारण यो तौरेतको कुरा ठीक प्रतीत हुँदैन र यो पुस्तक पनि ईश्वरकृत होइन॥ ५॥

६. यसैकारण परमप्रभु परमेश्वरले आदमलाई मस्त निद्रामा पार्नुभयो, र तिनी निदाएको बेलामा तिनका करङ्गहरूमध्येका एउटा निकालेर त्यस ठाउँमा मासु भरिदिनुभयो॥ जुन करङ्ग परमप्रभु परमेश्वरले मानिसबाट निकाल्नुभएको थियो त्यसबाट एउटी स्त्री बनाएर मानिसकहाँ ल्याउनुभयो॥

—तौरेत, उत्पत्ति पुस्तक, पर्व २। आ० २१,२२॥

समीक्षक—ईश्वरले आदमलाई माटोबाट बनाएको भए त्यसकी स्त्रीलाई चाहिं माटोबाटै किन नबनाएको त ? अनि स्त्रीलाई हाडबाट बनाएको भए आदमलाई पनि हाडबाटै किन नबनाएको ? जसरी नरबाट नारी नाम भयो त्यस्तै नारीबाट नर नाम हुनुपर्दछ र उनमा परस्पर प्रेम पनि रहनुपर्दछ। स्त्रीसंग पुरुषले प्रेम गरेजस्तै पुरुषसँग स्त्रीले पनि प्रेम गर्नुपर्दछ। हेर, विद्वान्हरू ! यसबाट ईश्वरको कस्तो पदार्थ–विद्या अर्थात् 'फिलासफी' झल्किन्छ ? आदमको एउटा करङ्ग निकालेर स्त्री बनाएको भए सबै मानिसको एउटा करङ्ग कम किन हुँदैन ? अनि स्त्रीको शरीरमा एउटा मात्र करङ्ग हुनुपर्दथ्यो, किनकि त्यो त एउटा करङ्गबाट बनेकी हो। जुन सामग्रीबाट सब जगत् बनायो, के त्यसै सामग्रीबाटै स्त्रीको शरीर बन्न सक्तैनथ्यो ? यसकारण यो बाइबलको सृष्टिक्रम सृष्टिविद्याको विरुद्ध छ॥ ६॥

७. परमप्रभु परमेश्वरले बनाउनुभएका वनपशुहरूमध्ये साँप धूर्त थियो। त्यसले स्त्रीलाई भन्यो, "के परमेश्वरले तिमीहरूलाई बगैंचाको कुनै रूखको फल नखानू भनी भन्नुभएको छ ?"॥ स्त्रीले साँपलाई भनिन्, 'बगैंचाका रूखहरूका फल हामी खान सक्छौं'॥ तर बगैंचाको बीचमा भएको रूखको फलको विषयमा परमेश्वरले भन्नुभएको छ, "त्यो चाहिं नखानू र नछुनू, नत्र तिमीहरू मर्छौं"॥ साँपले स्त्रीलाई भन्यो, "तिमीहरू कदापि मर्दैनौ॥ किनकि परमेश्वर जान्नुहुन्छ कि जुन दिन तिमीहरू त्यो खान्छौ, त्यही दिन तिमीहरूका आँखा खुल्नेछन्, र असल खराबको ज्ञान पाएर तिमीहरू पनि परमेश्वरजस्तै हुनेछौ"॥ अनि जब स्त्रीले त्यस रूखको फल खानलाई मीठो र हेर्नमा रहरलाग्दो, औ कसैलाई बुद्धिमान् बन्नलाई सो रूखको चाह गर्नुपर्ने रहेछ भनी थाहा पाइन्, तब तिनले त्यस रूखको फल टिपेर खाइन्, र आफ्ना

पतिलाई पनि दिइन् र तिनले पनि खाए॥ अनि दुबैका आँखा खुले, र 'नाङ्गै पो रहेछौं' भनी तिनीहरूले थाहा पाए। अनि निभाराका पातहरू गाँसेर आफ्ना निम्ति तिनीहरूले वस्त्र बनाए॥

तब परमेश्वरले साँपलाई भन्नुभयो, ''तैंले यसो गरेको हुनाले तँ सबै पाल्तु पशुहरू र सबै वनपशुहरूभन्दा ज्यादा श्रापित हुनेछस्। पेटको बलले तँ हिड्नेछस् र तेरो जीवनभरि तँ माटो खानेछस्॥ तेरो र स्त्रीको बीचमा, र तेरो सन्तान र स्त्रीको सन्तानको बीचमा म दुश्मनी हालिदिनेछु। त्यसले तेरो शिर कुच्याउनेछ, र तैंले त्यसको कुर्कुच्चो डस्नेछस्''॥ स्त्रीलाई उहाँले भन्नुभयो, 'तेरो दु:ख र सुत्केरी–वेदना म ज्यादै गरी बढाइदिनेछु। दु:खसंग तैंले बालक जन्माउनेछस् ता पनि तेरो इच्छा पतितर्फ नै हुनेछ, र त्यसले तँलाई अधीनमा राख्नेछ'॥ त्यसपछि आदमलाई उहाँले भन्नुभयो ''तैंले तेरी स्वास्नीको कुरा सुनेर मैले नखानू भनेको रूखको फल खाएको हुनाले भूमि तेरो कारण श्रापित भएको छ। तेरो जीवनभरी दु:खसँग त्यसको उब्जनी तैंले खानेछस्॥ त्यसले तेरा निम्ति काँढा र सिउँडीहरू उमार्नेछ, र तैंले खेतको सागपात खानेछस्''॥

—तौरेत उत्पत्तिको पुस्तक पर्व ३। आ० १–७, १४–१८॥

समीक्षक—ईसाईहरूको ईश्वर सर्वज्ञ भएको भए यस धूर्त सर्प अर्थात् शैतानलाई किन बनाउँथ्यो र? अनि बनाइहाल्यो भने त्यसको अपराधी पनि त्यही ईश्वर हो। किनकि त्यसले उसलाई दुष्ट नबनाएको भए त्यसले दुष्टता किन पो गर्नेथियो र? अनि ऊ पूर्वजन्मलाई मान्दैन भने उसले त्यसलाई अपराधविना नै पापी किन बनायो? अनि साँच्चै भनौं भने त्यो सर्प होइन, मानिस थियो। किनकि ऊ मानिस नभएको भए मानवी भाषा कसरी बोल्न सक्तथ्यो र? अनि आफू झूटो र अरुलाई झूटो कुरामा चलाउनेलाई 'शैतान' मान्नुपर्दछ। सो यहाँ शैतान बताइएको सत्यवादी थियो, उसले त्यस स्त्रीलाई झुक्याएन, सत्य र तथ्य कुरा बतायो। अनि ईश्वरले भने आदम र हव्वासँग 'त्यसलाई खानाले मर्नेछौ' भन्ने झूट बोल्यो। त्यो रूख ज्ञानदाता र अमर पार्ने थियो भने त्यसको फल खान किन निषेध गरेको? अनि खान मनाही गर्यो भने त्यो ईश्वर झूटो र झुक्याउने ठहर भयो। किनकि त्यस रूखका फल त अज्ञान र मृत्युकारक नभएर मनुष्यहरूलाई ज्ञान र सुखकारक थिए। अनि ईश्वरले फल खान मनाही गर्यो भने त्यस रूखको उत्पत्ति किन गरेको थियो? आफ्नै निम्ति गरेको भए के ऊ आफू अज्ञानी र मृत्युधर्मा

थियो? अनि अरूका लागि बनाएको भए फल खानमा केही पनि अपराध भएन। अर्को कुरा, हिजोआज कुनै पनि रूख ज्ञानकारक र मृत्युनिवारक देखापर्दैन, के ईश्वरले त्यसको बीउ पनि नष्ट गरिदियो? यस्ता कामकुरा गर्नाले मानिस त छली–कपटी हुन्छ भने ईश्वर हुँदैन र? अनि उसले तिनैलाई अपराधविना नै श्राप दिनाले पनि त्यो ईश्वर अन्यायकारी समेत भयो किनकि ईश्वरले नै झूट बोलेको र उनीहरूलाई झुक्याएको हुनाले यो श्राप त ईश्वरलाई नै हुनुपर्दथ्यो। यो 'फिलासफी' त हेर! के कष्ट पीड़ाविना नै गर्भधारण, बालकको जन्म आदि हुनसक्तथ्यो र? अनि परिश्रम नै नगरी कसैले आफ्नो जीविका चलाउन सक्तछ र? के पहिले काँढा आदिका रूख थिएनन् र? अनि ईश्वरले सबै मनुष्यलाई साग–पात खान उचित बताएपछि बाइबलमै मासु खाने विधान लेखिएछु के झूटो भएन त? त्यो सच्चा हो भने यो झूटो हो। अनि आदमको केही पनि अपराध सिद्ध हुँदैन भने ईसाईहरू सबै मानिसलाई आदमको अपराधका कारण सन्तान हुनाले अपराधी किन बनाउँछन् त? के यस्तो पुस्तक र यस्तो ईश्वर कहिल्यै बुद्धिमान्हरूले मान्नयोग्य हुनसक्छ?॥७॥

८. तब परमप्रभु परमेश्वरले भन्नुभयो, ''मानिस हामीजस्तै असल र खराबको ज्ञान जान्ने भएको छ। अब त्यसले जीवनको रूखको फल पनि टिपेर खाला र सधैंभरि जीवित रहला''॥ यसैकारण उहाँले मानिसलाई धपाइदिनुभयो, र जीवनको रूखतर्फको बाटो पहरा गर्नलाई उहाँले अदनको बगैंचाको पूर्वपट्टि करुबहरू=स्वर्गदूतहरू र चारैतिर घुमिरहने ज्वालामय तरवार राखिदिनुभयो॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३। आ० २२,२४॥

समीक्षक—आखिर ईश्वरलाई 'मानिस ज्ञानमा म तुल्य भयो' भन्ने ईर्ष्या र भ्रम किन भयो? के यो गलत कुरा भएको थियो र? यो शंका नै किन आइपर्यो र? किनकि ईश्वरको तुल्य त कहिल्यै कोही हुनसक्तैन। तर यस लेखबाट 'ऊ ईश्वर होइन, खास किसिमको मनुष्य थियो' भन्ने कुरा पनि सिद्ध हुन्छ। बाइबलमा जहाँकतै ईश्वरको कुरा आउँछ, त्यहाँ मानिसजस्तै लेखिएको हुन्छ। अब हेर, आदम=मानिसको ज्ञानको वृद्धि हुँदा ईश्वर कति दु:खी भयो, अनि फेरि अमरवृक्षको फल खाँदा कति ईर्ष्या गर्यो? अर्को कुरा, मानिसलाई बगैंचामा राख्ता 'यसलाई फेरि निकाल्नुपर्नेछ' भन्ने भविष्यत्को ज्ञान ईश्वरलाई थिएन, यसकारण ईसाईहरूको ईश्वर सर्वज्ञ थिएन। अनि ज्वालामय तरवारको

पहरा राख्ने काम पनि मनुष्यकै काम हो, ईश्वरको होइन। हामीलाई आश्चर्य लाग्छ कि यस्तो प्रकारको गुणवालालाई ईसाईहरू किन ईश्वर मान्दछन्? किनकि यी कुरा त मानिसका स्वभावमा घट्न सक्दछन्, ईश्वरमा होइन॥ ८॥

९. केही समय बितेपछि कबिनले परमप्रभुकहाँ भूमिको उब्जनीबाट केही ल्याए॥ हाबिलले पनि आफ्ना भेडाका बगालबाट पहिले जन्मेका पाठाहरू र तिनका उत्तम भाग ल्याए। परमप्रभुले हाबिल र तिनको भेटी ग्रहण गर्नुभयो॥ तर कइन र तिनको भेटी ग्रहण गर्नुभएन। यसैले कइन ज्यादै रिसाए, र तिनको मुख अँध्यारो भयो॥ तब परमप्रभुले कइनलाई भन्नुभयो, "तँ किन रिसाउँछस्? तेरो मुख किन अँध्यारो छ?"॥ —तौरेत उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ४। आ० ३-६॥

समीक्षक—ईश्वर मांसाहारी नभएको भए भेडाको भेटी र हाबिलको सत्कार तथा कइन र उसको भेटीको तिरस्कार किन गर्थ्यो र? अनि यस्तो झगड़ा गराउने र हाबिलको मृत्युको कारण पनि ईश्वर नै भयो। जसरी मनुष्य परस्पर एकअर्कासँग कुराकानी गर्दछन्, त्यस्तै ईसाईहरूको ईश्वरका कुरा छन्। बगैंचामा आउने, जाने, त्यसलाई बनाउने पनि मनुष्यकै काम हो। यसबाट 'यो बाइबल ईश्वरले बनाएको नभएर मनुष्यले नै बनाएको हो' भन्ने कुरा बुझिन्छ॥ ९॥

१०. तब परम प्रभुले कइनलाई सोध्नुभयो, "तेरो भाइ हाबिल कहाँ छ?" तिनले भने, "मलाई थाहा छैन। के म मेरो भाइको गोठालो हुँ र?॥ अनि उहाँले भन्नुभयो, 'यो तैंले के गरिस्? तेरो भाइको रगतले भूमिबाट मलाई पुकारिरहेछ॥ तँ अब त्यस भूमिबाट श्रापित भइस्॥ —तौरेत उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ४। आ० ९-११॥

समीक्षक—कइनसँग नसोधिकन के ईश्वर हाबिलको हाल जान्दैनथ्यो? र रगतको शब्द भूमिबाट के कहिल्यै कसैलाई पुकार्न-सक्तछ? यी सब कुरा अविद्वान्हरूका हुन्, अतः यो पुस्तक न त ईश्वरले, न विद्वान् मनुष्यले नै बनाएको हुनसक्तछ॥ १०॥

११. मतुसेलह जन्मेपछि हनोक तीनसय वर्षसम्म परमेश्वरको साथसाथ हिंड्दैरहे। —तौरेत उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ५। आ० २२॥

समीक्षक—ल हेर, ईसाईहरूको ईश्वर मनुष्य नभएको भए हनोकसँगसँगै किन हिंड्थ्यो त? यसकारण वेदोक्त निराकार व्यापक ईश्वरलाई नै ईसाईहरूले मानेमा उनको कल्याण हुनेछ॥ ११॥

१२. जब मानिसहरू पृथ्वीमा बढ्दै गए, तिनीहरूका छोरीहरू

जन्मे॥ तब परमेश्वरका छोराहरूले मानिसका छोरीहरूलाई सुन्दरी देखे। औ आफ्ना आफ्ना रुचिका पत्नीहरू ल्याए॥ त्यसबेला पृथ्वीमा नपीलहरू=बड़े बड़े कदका मानिसहरू वा दैत्य-दानवहरू थिए। त्यसपछि पनि परमेश्वरका छोराहरू मानिसका छोरीहरूकहाँ जानलागे। तिनीहरू (परमेश्वरका छोरा र मानिसका छोरीबाट जन्मेका बालक) नै उहिलेका शूरवीर र नाम चलेका मानिस हुन्॥ पृथ्वीमा मानिसहरूको दुष्टता बढी भएको र तिनीहरूको हृदयको विचारको जुनसुकै पनि भावना निरन्तर खराबै मात्र भएको परमप्रभुले देख्नुभयो॥ औेर पृथ्वीमा मानिसलाई बनाउनु भएकोमा परमप्रभुले अफसोस गर्नुभयो, र उहाँ मनमा साह्रै दुःखित हुनुभयो॥ तब परमप्रभुले भन्नुभयो, "मैले सृष्टि गरेको मानिसलाई पृथ्वीबाट म मेटिदिनेछु—के मानिस, के घस्रने जन्तु, के आकाशका पक्षी, सबैलाई—किनभने ती बनाएकोमा मलाई अफसोस लाग्यो।" —तौ० उ० पु० पर्व, ६। आ० १,२,४-७॥

समीक्षक—ईसाईहरूसँग सोध्नुपर्दछ कि ईश्वरका छोरा को हुन्? र ईश्वरका पत्नी, सासू, ससुरा, साला र सम्बन्धी को हुन्? किनकि अब त आदम=मानिसका छोरीहरूसँग विवाह हुनाले ईश्वर उनको सम्बन्धी (सम्धी) भयो र तीबाट जन्मनेहरू छोरा, नाती भए। के यस्तो कुरा ईश्वर र ईश्वरका पुस्तकको हुनसक्तछ? तर ती जङ्गली मनुष्यहरूले यो पुस्तक बनाएको हो भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। जो सर्वज्ञ छैन, भविष्यको कुरा जान्दैन त्यो ईश्वर हुँदैहोइन, त्यो त जीव हो। सृष्टि गर्दा, 'पछि मनुष्य दुष्ट हुनेछन्' भन्ने कुरा के जान्दैनथ्यो। अनि पछुताउनु, अतिशोक आदि हुनु, भूलचूकले काम गरेर पछि पश्चात्ताप गर्नु आदि कुरा ईसाईहरूकै ईश्वरमा नै घटित हुन सक्तछ, यस्ता कुरा वेदोक्त ईश्वरमा घटित हुन सक्तैन। अनि यसबाट 'ईसाईहरूको ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी पनि थिएन' भन्ने कुरा पनि सिद्ध हुन सक्तछ, नत्र भने शान्ति र विज्ञानद्वारा अतिशोकादि भन्दा पृथक् हुन सक्तथ्यो। अनि के पशुपक्षी पनि दुष्ट भए? यदि त्यो ईश्वर सर्वज्ञ भएको भए यस्तो विषादी किन हुन्थ्यो? यसकारण न त यो ईश्वर, न यो ईश्वरकृत पुस्तक नै हुनसक्तछ। जस्तो वेदोक्त परमेश्वर सबै पाप, क्लेश, दुःख, शोकादिरहित, 'सच्चिदानन्दस्वरूप' छ, त्यसैलाई ईसाईहरूले मानेका भए वा अझै पनि मानेमा आफ्नो मनुष्यजन्मलाई सफल तुल्याउन सक्ने थिए॥ १२॥

१३. "जहाजको लम्बाई तीनसय हात, चौडाई पचास हात र

उचाइ तीस हात होस्॥ तँ, तेरा छोराहरू, तेरी स्वास्नी र तेरा बुहारीहरू तेरोसाथ जहाजमा आउनेछन्॥ सबै जीवित प्राणीमध्ये हरेक जातका दुई–दुई गरी जहाजमा लिनू, र तिनीहरू पनि तँसँग बाँचिरहून्। तिनीहरू भाले र पोथी हुनुपर्छ। पक्षीहरूमध्ये तिनीहरूका जात–जातअनुसार, जमीनमा घस्रने (वा हिंड्ने) सबै जन्तुहरू तिनीहरूका जात जात अनुसार, सबै थरीका दुई–दुईवटा–तिनीहरू जीवित रहनलाई तँ कहाँ आउनेछन्॥ अनि हरेक किसिमका आहार पनि तैंले आफ्ना साथमा जम्मा गरेर राख्नू। ती तेरा र तिनीहरूका निम्ति आहार हुनेछन्''॥ अनि नूहले त्यसै गरे—परमेश्वरले तिनलाई आज्ञा गरेबमोजिम तिनले सबै गरे॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ६। आ० १५,१८–२२॥

समीक्षक—यस्ता विद्या विरुद्ध, असम्भव कुरा भन्नेलाई के कुनै विद्वान्ले ईश्वर मान्नसक्तछ? किनकि यति ठूलो, लामो, फराक र अग्लो जहाज (नाउ) मा मत्ता–ढोई, ऊँट–ऊँटनी आदि करोडौं जन्तु र उनका र उनका सबै कुटुम्बका पनि सबै खाने–पिउने सामान समेत अट्न सक्तछन्? यसैकारण यो मनुष्यकृत पुस्तक हो। यो कुरा लेख्ने व्यक्ति त विद्वान् पनि थिएन॥ १३॥

१४. अनि नूहले परमप्रभुका निम्ति एउटा वेदी बनाएर हरेक शुद्ध पशु र शुद्ध पक्षीमध्येबाट लिई होमबलि चढ़ाए॥ त्यसको मीठो वासना लिनुभएपछि परमप्रभुले आफ्नो मनमा भन्नुभयो, ''अब म फेरि मानिसको खातिर पृथ्वीलाई श्राप दिनेछैन, किनकि मानिसका हृदयको विचार बालकदेखि नै खराब हुन्छ, औ अहिले मैले गरेजस्तै सबै प्राणीलाई फेरि यसरी सर्वनाश म गर्नेछैन॥''

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ८। आ० २०,२१॥

समीक्षक—वेदी बनाउने, होम गर्ने कुराको लेखबाट 'यी कुरा वेदबाट बाइबलमा गएका हुन्' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। के परमेश्वरको नाक पनि छ? जसबाट वासना लियो? कहिले सराप्ने र कहिले पछुताउने यो ईसाईहरूको ईश्वर के मनुष्य जस्तै अल्पज्ञ भएन र? कहिले 'सराप दिने छैन' भन्दछ। पहिले दिएको थियो र पछि पनि दिनेछ। पहिले सबैलाई मार्यो र अब 'कहिल्यै मार्नेछैन' भन्दछ!!! यी कुरा ईश्वरका नभई अल्लारेपनका कुरा हुन्, न त कुनै विद्वान्का नै हुन्, किनकि विद्वानका पनि कुरा र प्रतिज्ञा स्थिर हुन्छन्॥ १४॥

१५. त्यसपछि परमेश्वरले नूह र तिनका छोराहरूलाई आशिष दिएर भन्नुभयो... ॥ जीवित–जीवात् सबै तिमीहरूका आहारका निम्ति

हुनेछन्। मैले हरिया वनस्पति तिमीहरूलाई दिएझैं सबैथोक म तिमीहरूलाई दिन्छु॥ तर मासु त्यसको प्राण समेत, अर्थात् रगतसमेत नखाओ॥

समीक्षक—एउटालाई प्राणकष्ट दिएर अरूलाई आनन्द गराउनाले के ईसाईहरूको ईश्वर दयाहीन होइन र? एउटा छोरालाई मार्न लगाएर अर्कोलाई खुवाउने आमा–बाबु महापापी हुँदैनन् र? यस्तै यो कुरा हो। किनकि ईश्वरका लागि सबै प्राणी सन्तान जस्तै हुन्। यसो नहुँदा यिनको ईश्वर कसाईजस्तै काम गर्दछ। तथा सबै मनुष्यलाई हिंस्रक पनि यसैले बनाएको हो। यसकारण ईसाईहरूको ईश्वर निर्दयी हुनाले पापी किन होइन?॥ १५॥

१६. त्यसबेला सम्पूर्ण पृथ्वीमा एउटै बोली र एउटै भाषा थियो॥ तब तिनीहरूले भने, ''लौ, हामी आफ्ना निम्ति एउटा सहर र टुप्पा स्वर्गैसम्म पुगेको एउटा धरहरा बनाएर आफ्नो नाम राखौं, नत्रता हामीलाई पृथ्वीभरि जताततै छरिनु पर्नेछ॥ मानिसको सन्तानले बनाइरहेको सहर र घरहरा हेर्नलाई परम प्रभु तल ओर्लनुभयो॥ अनि परमप्रभुले भन्नु भयो, ''ती सबैको एउटै भाषा भएको एउटै जाति छ। औ तिनीहरूले गर्न थालेको कामको यो ता सुरुमात्र हो। तिनीहरूले जे गर्ने विचार गर्दैछन्, तिनीहरूबाट अब केही कुरा रोकिनेछैन॥ लौ, तल ओर्लेर गई तिनीहरूको भाषा खलबल पारिदिऔं, तिनीहरूले एकाअर्काको बोली नबुझून्''॥ तब परमप्रभुले त्यहींबाट तिनीहरूलाई पुरै पृथ्वीभरि तितर–बितर पारिदिनुभयो, र तिनीहरूले त्यो सहर बनाउन छोड़िदिए॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ११। आ० १,४–८॥

समीक्षक—सम्पूर्ण पृथ्वीमा एउटै भाषा र बोली हुँदा सबै मनुष्यलाई परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुन्थ्योहोला। तर के गर्ने? ईसाईहरूको यस ईर्ष्यालु ईश्वरले सबैको भाषा खलबल पारेर सबैको सत्यानाश गरिदियो। उसले यो ठूलो अपराध गर्यो। के यो शैतानको भन्दा पनि खराब काम होइन? अनि यसबाट ''ईसाईहरूको ईश्वर 'सनाई पहाड़' आदिमा बस्तथ्यो, र जीवहरूको उन्नति पनि चाहँदैनथ्यो'' भन्ने कुरा पनि ज्ञात हुन्छ। यो एउटा अविद्वान्=मूर्खको कुरा नभएर ईश्वरको कुरा र यो ईश्वरोक्त पुस्तक कसरी हुनसक्तछ?॥ १६॥

१७. तिनी मिश्रमा पस्नै लाग्दा तिनले आफ्नी स्वास्नी साराईलाई भने, ''हेर, तिमी हेर्नमा सुन्दरी छौ भन्ने मलाई थाहा छ॥ औ मिश्रीहरूले तिमीलाई देख्दा 'यो ता त्यसकी स्वास्नी रहिछ' भन्नेछन्। औ मलाई

मारेर तिमीलाई चाहिं जीवित राख्नेछन्॥ 'म तिनकी बहिनी हुँ' भनी तिमीले भनिदेऊ, र तिम्रा कारण मलाई भलो हुनेछ, र तिम्रै कारण मेरो ज्यान जोगिनेछ''॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १२। आ० ११-१३॥

समीक्षक—अब हेर, जुन अब्राह्मम ईसाई र मुसलमानहरूको ठूलो पैगम्बर बताइन्छ र उसका कर्म भने मिथ्याभाषण आदि खराबै देखिन्छन्। जसका यस्ता पैगम्बर छन् भने तिनलाई विद्या वा कल्याणको मार्ग कसरी पो मिल्न सक्तछ र?॥ १७॥

१८. अनि परमेश्वरले अब्राहामलाई भन्नुभयो, ''तैंले चाहिं मेरो करार पालन गर्नुपर्छ—तँ र तँपछिका तेरा सन्तानहरूले तिनका पुस्तौं सम्म मेरो र तेरो, औ तँ पछिका तेरा सन्तानहरूका बीचमा भएको करारको तिमीहरूले पालन गर्नुपर्ने छ। मेरो करार यही हो—तिमीहरूमध्येका हरेक पुरुष जातिको खतना हुनुपर्छ॥ तिमीहरूका आफ्ना खलडीमा खतना हुनुपर्छ। मेरो र तिमीहरूको बीचमा करारको चिह्न यही हुनेछ॥ तिमीहरूमा हरेक पुरुष आठ दिनको हुनेबित्तिकै त्यसको खतना गरियोस्, अर्थात् तिमीहरूका पुस्तौंसम्म हरेक पुरुष जाति, चाहे घरमा जन्मेको होस् अथवा जो तिमीहरूका सन्तान होइन, तर कुनै विदेशीबाट दाम हालेर किनेको होस्॥ जो जो तेरो घरमा जन्मेको होस् वा दाम हालेर किनेको होस् जसको शरीरमा खलडीको खतना भएको छैन, त्यसको खतना हुनैपर्छ। यसरी मेरो करार तिमीहरूका शरीरमा पछि सम्म हुनेछ॥ खतना नगरिएको जुनसुकै पुरुष जाति जसको शरीरमा खलडीको खतना भएको छैन, त्यो मानिस आफ्नो जातिबाट बहिष्कार गरिनेछ। त्यसले मेरो करार भङ्ग गरेको हुन्छ''। —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १७। आ० ९-१४॥

समीक्षक—अब ईश्वरको उल्टो आज्ञा त हेर! खतना गर्ने कुरा ईश्वरले चाहेको भए आदि सृष्टिमा उसले त्यस छालालाई बनाउने नै थिएन अनि बनाइएको छ भने आँखा माथिको छालाको रक्षा गरिए जस्तै त्यो छाला पनि रक्षार्थ नै हो। किनकि त्यो गुप्तस्थान अत्यन्त कोमल हुन्छ। त्यसमाथि छाला नभए एउटा कमिलाले टोक्नाले र अलिकति पनि चोटपटक लाग्नाले धेरै दुःख हुनेछ र पिसाबपछि केही मूत्रांश कपडामा नलागोस् इत्यादि कुराका लागि पनि त्यो छाला रहनु उपयुक्त हुन्छ। यसलाई काट्नु गलत हो। अनि ईसाईहरू यस आज्ञालाई किन मान्दैनन्? यो आज्ञा सदाका लागि हो। यसो नगर्नाले

व्यवस्थाको पुस्तकको एक बिन्दु पनि झूटो छैन भनिएको ईसाको साक्षी पनि मिथ्या भयो। ईसाईहरू यस कुराको केही पनि सोच-विचार गर्दैनन्॥ १८॥

१९. तिनीसित कुरा गरिसक्नुभएपछि परमेश्वर अब्राहामकहाँबाट जानुभयो॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १७। आ० २२॥

समीक्षक—यसबाट 'ईश्वर मनुष्य वा पक्षीजस्तै थियो, जो कि मास्तिरबाट तल्तिर र तल्तिरबाट मास्तिर आउने-जाने गर्दथ्यो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यो त कुनै इन्द्रजाली व्यक्ति जस्तै प्रतीत हुन्छ॥ १९॥

२०. दिउँसोको गर्मीमा उम्रेको फलाँटका रूखहरूनेरको आफ्नो पालको ढोकामा बसिरहँदा परमप्रभुले अब्राहामलाई दर्शन दिनुभयो॥ तिनले आफ्ना आँखा उठाएर हेरे। औ आफ्ना सामने तीनजना मानिसहरू उभिरहेका देखे। उहाँहरूलाई देखेर तिनी पालको ढोकाबाट भेट गर्नलाई कुदेर गए, र भुईंसम्म निहुँरेर दण्डवत् गरी भने—''हे मेरा स्वामी, ममाथि तपाईंहरूको निगाह हुन्छ भने कृपागरी आफ्नो दासकहाँबाट त्यसै नजानुहोस्॥ म केही पानी ल्याउनेछु, र तपाईंहरू आफ्ना पाउ धुनुहोस्, तब यही रूखमुनि आराम गर्नुहोस्॥ म गएर केही रोटी ल्याउनेछु, र खाएर तपाईंहरू थकाइ मार्नुहोस्। थकाइ मारिसकेपछि जानुहोस्, किनभने यसैको निम्ति तपाईहरू आफ्नो दासकहाँ आउनुभएको होला।'' उहाँहरूले भन्नुभयो, ''जाऊ, तिमीले भने अनुसार गर।'' तब अब्राहाम झट्टै पालमा साराकहाँ गएर भने, ''तुरुन्तै तीनमाना मसिनो पीठो तयार गरी मुछेर रोटी बनाऊ।'' अब्राहाम आफैं चाहिं बथानतिर कुदेर गए, र एउटा कलिलो र असल बाछो छानेर आफ्नो नोकरलाई दिए, र त्यसले तुरुन्तै त्यो पकायो॥ तब तिनले दही, दूध र त्यो पकाएको बाछाको मासु लगेर उहाँहरूको सामु टक्र्याए। औ उहाँहरूले खाइनसकुञ्जेल तिनी उहाँहरूकै नजिक उभिरहे॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १८। आ० १-८॥

समीक्षक—ल हेर सज्जन वृन्द! जसको ईश्वर बाछाको मासु खान्छ, त्यसका उपासक गाई, बाछा आदि पशुहरूलाई किन पो छोड्थे र? जसलाई केही पनि दया छैन र मासु खानमा आतुर रहन्छ त्यो हिंस्रक मनुष्य नभएर के कहिल्यै ईश्वर हुनसक्तछ? अनि ईश्वरसँग दुईजना मनुष्य नजाने को थिए? यसबाट जङ्गली मनुष्यहरूको एउटा मंडली थियो भन्ने बुझिन्छ। जो उनको मुख्य व्यक्ति थियो त्यसको नाम बाइबलमा ईश्वर राखे होलान्। यिनै कुराबाट बुद्धिमान् व्यक्ति

यिनको पुस्तकलाई ईश्वरकृत मान्न सक्तैनन् र न यस्तालाई ईश्वर नै सम्झन्छन् ॥ २० ॥

२१. अनि परमप्रभुले अब्राहामलाई भन्नुभयो, ''बूढी भएर पनि मैले छोराछोरी पाउने भनेर सारा किन हाँसी ? परमप्रभुको निम्ति कुनै कुरो औधी कठिन छ र ?''—तौ० उ० पु० पर्व १८ । आ० १३–१४ ॥

समीक्षक—अब ईसाईहरूका ईश्वरका कस्ता–कस्ता लीला त हेर। जुन ईश्वर केटाकेटी वा आइमाई जस्तै चिढिने र व्यङ्ग्य हान्ने गर्दछ !!! ॥ २१ ॥

२२. तब परमप्रभुले आकाशबाट सदोम र गमोरामाथि आगो र गन्धक वर्षाउनुभयो ॥ उहाँले ती सहरहरू र जम्मै बेंसी र सहरहरूका सबै बासिन्दाहरू र जमिनमा उम्रेका सबैथोक सर्वनाश पारिदिनुभयो ॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १९ । आ० २४,२५ ॥

समीक्षक—अब बाइबलमा ईश्वरको यो लीला पनि हेर, जसलाई बालक आदि माथि पनि केही दया पलाएन। के ती सबै नै अपराधी थिए र सबैलाई भूमिलाई नै उल्टाएर थिचेर सर्वनाम पारी मार्यो ? यो कुरा न्याय, दया र विवेकको विपरीत हो। जसको ईश्वर यस्तो काम गर्दछ भने त्यसका उपासकहरू किन पो नगरून् र ? ॥ २२ ॥

२३. 'यसैले अब हामी आफ्ना बाबुलाई मद्य खुवाएर तिनीसित सुतौं, र आफ्ना पिताबाट सन्तान खडा गरौं ॥' औ त्यसै रात तिनीहरूले आफ्ना पितालाई मद्य खुवाए र जेठी चाहिं आफ्ना पिताकहाँ गएर सुती ॥ आज राति पनि तिनलाई मद्य खुवाऔं र तँ गएर उहाँसित सुत् ॥ यसरी लूतका दुबै छोरीहरू आफ्नो पिताबाट गर्भवती भए॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व १९ । आ० ३२–३४,३६ ॥

समीक्षक—ल हेर, जुन मद्यपानको नशामा बाबु–छोरी पनि व्यभिचार गर्नबाट बच्न सक्तैनन्, यस्तो दुष्ट मद्यलाई पिउने ईसाईहरूको खराबीको के वारपार छ र ? यसकारण सज्जन व्यक्तिहरूले मद्य पिउने नामलिनु पनि हुँदैन ॥ २३ ॥

२४. आफूले भन्नुभए अनुसार सारालाई परम प्रभुले कृपा गर्नुभयो, र आफ्नो प्रतिज्ञाबमोजिम गर्नुभयो ॥ औ सारा गर्भवती भइन् ॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २१ । आ० १,२ ॥

समीक्षक—विचारणीय कुरा के छ भने सारासँग भेटेर गर्भवती हुने यो काम कसरी भयो ? परमेश्वर र साराबाहेक गर्भस्थापनको अरू कोही तेस्रो कारण देखिन्छ र ? सारा परमेश्वरको कृपाबाटै गर्भवती

भई भन्ने नै विदित हुन्छ !!! ॥ २४ ॥

२५. अब्राहामले बिहानै उठेर रोटी, पानीको एउटा मसक हागारको काँधमा राखिदिए, र बालकलाई पनि त्यसकै साथ लगाएर बिदा गरिदिए ॥ उसले त्यस बालकलाई एउटा पोथ्रामा छोडेर, आफैं चाहिं उतापट्टि एक काँडको दूरीसम्ममा बसी, औ त्यो त्यहाँ बसेर डाँको छोडी छोडी रुन लागी ॥ परमेश्वरले बालकको स्वर सुन्नुभयो ॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २१ । आ० १४–१७ ॥

समीक्षक—ल, अब ईसाईहरूका ईश्वरको लीला त हेर ! पहिले त साराको पक्षपात गरेर हागारलाई त्यहाँबाट निकाल्न लगायो, अरि फेरि डाँको छोडी–छोडी रोई त हागार, तर शब्द भने बालकको सुन्यो। यो कस्तो अद्भुत कुरा हो ? वास्तवमा ईश्वरलाई 'यो बालक नै रोइरहेछ' भन्ने भान भयो होला। यो यस्तो ईश्वर र ईश्वरको पुस्तकको कुरा के कहिल्यै हुन सक्तछ र ? यस पुस्तकमा साधारण मनुष्यका थोरै कुरा सत्य र त्यसबाहेक सबै असार भरिपूर्ण छ ॥ २५ ॥

२६. त्यसपछि परमेश्वरले अब्राहामलाई ठूलो जाँच गर्नुभयो, र तिनलाई भन्नुभयो, ''हे अब्राहाम !... ॥ तेरो छोरो, अर्थात् तैंले माया गरेको तेरो एउटै छोरो इसहाकलाई लिएर त्यसलाई होमबलि गर्'' ॥ औ आफ्नो इसहाकलाई बाँधेर वेदीमा दाउरामाथि राखे ॥ तब अब्राहामले आफ्नो छोरालाई बलि गर्न छुरी उठाए ॥ तब परम प्रभुका दूतले स्वर्गबाट तिनलाई हकारेर भने, ''ए अब्राहाम !... ॥... तेरो हात त्यस केटामाथि नउठा, त्यसलाई केही नगर्। किनभने अब मैले थाह पाएँ तँ परमेश्वरसँग डराउँदो रहेछस्'' ॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २२ । आ० १,२,९–१२ ॥

समीक्षक—यो बाइबलको ईश्वर अल्पज्ञ हो, सर्वज्ञ होइन भन्नेकुरा स्पष्टै भयो। अनि अब्राहाम पनि एउटा सोझो मानिस थियो, नत्र यस्तो चेष्टा किन गर्थ्यो र ? अनि बाइबलको ईश्वर सर्वज्ञ भएको भए उसको भविष्यत् श्रद्धालाई पनि सर्वज्ञताबाटै जान्नेथियो। यसबाट ईसाईहरूको ईश्वर सर्वज्ञ होइन भन्ने कुरा निश्चित हुन्छ ॥ २६ ॥

२७. ...हाम्रा चिहानमध्ये सबैभन्दा असल चाहि छानेर लाश गाड्नुहोस् ॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २३ । आ० ६ ॥

समीक्षक—लाशलाई गाड्नाले संसारको ठूलो हानि हुन्छ, किनकि त्यो सड़ी वायुलाई दुर्गन्धमय पारेर रोग फैलाउँछ।

प्रश्न—हेर, जोसँग प्रीति हुन्छ, त्यसलाई डढाउनु राम्रो कुरा

होइन, अनि गाड्नु भनेको उसलाई सुताउनु जस्तै हो, यसकारण गाड्नु उचित हुन्छ।

उत्तर—मृतकसँग प्रीति गर्दछौ भने आफ्नै घरमा किन राख्दैनौ ? र गाड्दछौ पनि किन ? जुन जीवात्मासँग प्रीति थियो, त्यो त निस्केर गयो अब दुर्गन्धमय माटोसँग के प्रीति ? अनि फेरि पनि प्रीति गर्दछौ भने भूमिमा किन गाड्दछौ ? किनकि कसैले कसैसँग 'तिमीलाई भुइँमा गाड्दछौं' भनेमा त्यो सुनेर सुन्ने व्यक्ति कहिल्यै प्रसन्न हुँदैन। उसका मुख, आँखा र शरीरमा धुलो ढुङ्गा, ईंटा, चूना, हाल्नु, छातीमाथि ढुङ्गा राख्नु कुन चाहिं प्रीतिको काम हो ? अनि बाकसमा हालेर गाड्नाले घेरै दुर्गन्ध भएर पृथ्वीबाट निस्केर वायुलाई बिगारेर दारुण रोग उत्पन्न गर्दछ। अर्को कुरा, एउटा मुर्दाका निम्ति कमसेकम छ हात लम्बाइ र चार हात चौडाइको भूमि चाहिन्छ। यसै हिसाबले सय, हजार, लाख वा करोडौं मानिसका लागि कति जग्गा व्यर्थैमा रोकिन्छ ? न त त्यो खेत, बगैंचा र न बस्न लायक नै रहन्छ। यसकारण मुर्दालाई गाड्नु सबैभन्दा खराब गलत काम हो। पानीमा हाल्नु गाड्नुभन्दा केही कम खराब हुन्छ, किनकि त्यसलाई जलजन्तुले त्यसैबखत चिर–फार गरेर खाइहाल्छन्, तर जो केही हाड वा मल पानीमा रहन्छ, त्यो कुहिएर जगत्लाई दुःखदायक हुन्छ। जङ्गलमा छोड्नु सोभन्दा पनि केही कम खराब हो, किनकि त्यसलाई मांसाहारी पशुपक्षीले लुछेर खानेछन्, तर पनि त्यसका हाड़, हाड़को बोसो र मल सडेर जति दुर्गन्ध गर्छ, त्यति जगतको अनुपकार हुनेछ। अनि मुर्दालाई डढाउनु सर्वोत्तम उपाय हो, किनकि त्यसका सबै पदार्थ अणु भएर वायुमा उड्छन्।

प्रश्न—डढाउँदा पनि दुर्गन्ध हुन्छ।

उत्तर—तरिका नमिलाई डढाएमा केही दुर्गन्ध हुन्छ, तर गाड्ने आदि भन्दा धेरै कम हुन्छ। अनि वेदमा बताएअनुसार अर्थात् मुर्दाको वेदी तीन हात गहिरो, साढे तीन हात फराकिलो, पाँचहात लामो, पिंधमा डेढ बित्ता अर्थात् माथि फराक तल साँगुरोपारी खनेर, शरीरको तौल बराबरको घिउ, त्यसमा एक सेर घिउमा एक रत्तीका हिसाबले कस्तूरी, मासाको हिसाबले केसर हालेर कमसेकम आधामन श्रीखण्ड र बढीमा आफूले सकेसम्मको, अगर, तगर, कपूर आदि तथा पलाश आदिका दाउरा वेदीमा लगाएर, त्यसमाथि मुर्दालाई राखेर फेरि चारैतर्फ मास्तिर वेदीको मुखभन्दा एक–एक बित्तासम्म भरेर उक्त घिउको आहुति दिएर डढाएमा केही पनि दुर्गन्ध हुनेछैन। तर यसैको नाम

अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ हो। अनि कोही दरिद्र भएपनि कमसेकम बीस सेर घिउ चितामा हाल्नैपर्छ। भिक्षा माँगेर वा स्वजातीयहरूले दिएर अथवा राजाले दिएर भए पनि माथि बताएअनुसार दाह गर्नुपर्दछ। अनि केही गरेर पनि घ्यू आदि मिल्न नसके पनि गाड्नु आदिभन्दा त केवल दाउराले मात्र लाशलाई डढाउनु उत्तम हुन्छ, किनकि एक विश्वा जग्गामा अथवा एउटा वेदीमा लाखौं, करोड़ौं लाश ढढ्न सक्तछन्। जग्गा पनि गाड्दा जत्तिको बढी बिग्रँदैन र गाडेको चिहान देख्ता डर पनि लाग्दछ। यसकारण गाड्नु आदि सर्वथा निषिद्ध छ॥ २७॥

२८. ''मेरा मालिकका परमप्रभु परमेश्वर धन्यका हुनुहुन्छ, जसले मेरा मालिक प्रतिको अटुट प्रेम र विश्वस्तता त्याग्नुभएको छैन। परमप्रभुले नै मलाई बाटोमा डोर्‍याएर मेरा मालिकका कुटुम्बको घरमा ल्याइदिनुभयो''।

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २४। आ० २७॥

समीक्षक—के त्यो अब्राहामको मात्र ईश्वर थियो ? अनि जसरी हिजोआज मार्गदर्शकहरू अगाडि अगाडि हिंडेर बाटो देखाउँछन्, त्यस्तै ईश्वरले पनि गर्यो भने हिजोआज बाटो किन देखाउँदैन ? अनि मनुष्यहरूसँग कुरा किन गर्दैन ? यसकारण यस्ता कुरा ईश्वर वा ईश्वरको पुस्तकका कहिल्यै हुनसक्तैनन्, यस्ता कुरा त जङ्गली मनुष्यका हुन्॥ २८॥

२९. इस्माएलका छोराहरूका नाम यिनै हुन्–इस्माएलको जेठो छोरो नबायोत, केदार, अबदेल, मिब्साम, मिस्मा, दुमा, मस्सा॥ हदद, तेमा, यतुर, नपिश र केदमा॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २५। आ० १३–१५॥

समीक्षक—यो इस्माएल अब्राहामबाट उसकी हागार दासीको छोरो भएको थियो॥

३०. ''तेरा बाबुलाई मनपर्ने स्वादिष्ट तरकारी म बनाइदिनेछु॥ अनि तँ त्यो तेरा बाबुकहाँ लैजा, र तिनले त्यो खाएर आफ्नो मृत्युअघि तँलाई आशिष दिऊन्''॥ तब घरमा भएको आफ्नो जेठो छोरो एसाबका असल लुगाहरू झिकेर रिबेकाले ल्याइन्, र कान्छो छोरो याकुबलाई लगाइदिइन्॥ औ बाख्राका पाठाका छालाहरू तिनका हात र घाँटीका रौं नभएका भागमा लगाइदिइन्॥ याकुबले आफ्ना पितालाई भने, ''म तपाईंको छोरो एसाब हुँ। तपाईंले अह्राउनुभएबमोजिम मैले गरेको छु। अब उठेर बस्नुहोस्, र मैले ल्याएको सिकारको मासु खानुहोस्,

र मलाई आशिष दिनुहोस्''।

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २७। आ० ९,१०,१५,१६,१९ ॥

समीक्षक—ल हेर! यस्ता झूट, कपटबाट आशीर्वाद लिएर पछि सिद्ध र पैगम्बर=ईश्वरका दूत बन्दछन्। के यो आश्चर्यको कुरा होइन? अनि यस्ता त ईसाईहरूका अगुवा=प्रवर्तक वा प्रदर्शक भएका छन् भने यिनको मतको गडबडीमा के कमी हुँदोहो र?॥ ३०॥

३१. तब याकूब बिहान सबेरै उठे, र आफूले सिरान बनाएको त्यो ढुङ्गा लिएर खाँबोजस्तै गरी खडा गरेर त्यसको टुप्पामा तेल खन्याए॥ औ तिनले त्यस ठाउँको नाम बेतेल=परमेश्वरको घर राखे॥ औ मैले खाँबो बनाएको यो ढुङ्गा चाहिं परमेश्वरको घर हुनेछ॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व २८। आ० १८,१९,२२॥

समीक्षक—ल, अब जङ्गलीहरूका काम हेर त! यिनीहरूले ढुङ्गालाई पुजे र पुज्न लगाए र यसलाई मुसलमानहरू 'बेतेल मुकद्दस' भन्दछन्। के यो ढुङ्गो नै ईश्वरको घर हो? र त्यस ढुङ्गामा मात्र ईश्वर बस्तथ्यो? वा! रे वा! के भन्नु, ईसाईहरू हो! महाबुत्परस्त=ठूला मूर्त्तिपूजक त तिमीहरू नै हौ॥ ३१॥

३२. तब परमेश्वरले राहेललाई याद गर्नुभयो र तिनको बिन्ती सुनेर तिनको गर्भ भरिदिनुभयो॥ तिनी गर्भवती भएर एउटा छोरो जन्माइन्, र भनिन् ''परमेश्वरले ममाथि परेको निन्दा हटाइदिनुभयो''।

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३०। आ० २२,२३॥

समीक्षक—वा! ईसाईहरूको ईश्वर! कत्ति ठूलो डाक्टर बनेछस्? स्त्रीहरूको गर्भ भर्नका लागि कुन शस्त्र र औषधि थियो? जसले गर्भ भरियो? यी सब अन्धाधुन्धका कुरा हुन्॥ ३२॥

३३. तर आरामी लाबानकहाँ राति सपनामा परमेश्वर देखापर्नुभयो, र उनलाई भन्नुभयो, ''होस गर्, तैंले याकुबलाई असल कि खराब केही कुरा नभन्''॥ ''औ अब तिम्रा बाबुको घरमा जान तिमीले ज्यादै इच्छा गरेको हुनाले तिमी हिंडेका छौ, तर मेरा देवताहरू चाहिं किन चोऱ्यौ?''

—तौरेत उत्पत्ति० पर्व ३१। आ० २४,३०॥

समीक्षक—यो हामी एउटा नमुना लेख्यौंछौ। बाइबलमा 'हजारौं मानिसलाई सपनामा आयो, कुराकानी गर्यो, विपनामा साक्षात् मिल्यो, खायो, पियो, आयो, गयो' आदि लेखेको छ, तर नजाने अब त्यो छ कि छैन? किनकि अब कसैलाई न त सपनामा न विपनामा ईश्वर मिल्दछ। अनि यो पनि विदित भयो कि यी जङ्गलीहरू ढुङ्गा आदि

मूर्त्तिहरूलाई देव मानेर पुज्दथे, तर ईसाईहरूको ईश्वर पनि ढुङ्गालाई नै देव मान्दछ, नत्र भने देवहरूलाई चोर्ने कुरा कसरी घटित हुनसक्तछ?॥ ३३॥

३४. तब याकुब आफ्नो बाटो लागे, और परमेश्वरका दूतहरूले तीसँग भेट गरे॥ याकुबले तिनीहरूलाई देखेर भने, ''यो त परमेश्वरको फौज हो''॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३२। आ० १,२॥

समीक्षक—अब 'त ईसाईहरूको ईश्वर मनुष्य नै हो' भन्ने कुरामा केही पनि सन्देह रहेन। किनकि ऊ सेना पनि राख्तछ। सेना छ भने शस्त्र पनि हुँदाहुन्। अनि जहाँ तहाँ चढाई गरेर लडाइँ पनि गर्दो हो। नत्र भने सेना राख्ने प्रयोजन के छ त?॥ ३४॥

३५. अनि याकुब चाहिं एक्लै रहे। औ एकजना व्यक्ति उज्यालो नहोउञ्जेल तीसित कुस्ती लड्नुभयो॥ उहाँले याकुबलाई जित्न नसकेको देखेर याकूबको जाङ्को खोपिल्टो भाग छुनुभयो, र उहाँसित कुस्ती लड्दालड्दै याकुबको जाङ्को गेडी फुस्क्यो॥ तब उहाँले भन्नुभयो, ''उज्यालो हुन लाग्यो। मलाई जान देऊ।'' तर याकुबले भने, ''मलाई आशीर्वाद नदिउञ्जेल म तपाईंलाई जान दिन्न''॥ अनि उहाँले तिनलाई भन्नुभयो, ''तिम्रो नाम के हो?'' तिनले भने, ''याकूब।'' उहाँले भन्नुभयो, ''अब उप्रान्त तिम्रो नाम याकुब होइन, तर इस्राएल=परमेश्वरसँग लडन्त गर्ने हुनेछ, किनभने तिमीले परमेश्वर र मानिसहरूसँग लडन्त गर्यौ, अनि विजयी भयौ''॥ तब याकुबले उहाँलाई सोधे, ''बिन्ती छ, मलाई भन्नुहोस्, तपाईंको नाम के हो?'' तर उहाँले भन्नुभयो ''मेरो नाम तिमी किन सोध्छौ?'' अनि उहाँले तिनलाई आशीर्वाद दिनुभयो॥ यसैकारण याकुबले त्यस ठाउँको नाम पनिएल=परमेश्वरको दर्शन राखे, किनकि 'परमेश्वरका सम्मुखै परेतापनि मेरो ज्यान बाँच्यो' भनी तिनले भने॥ तिनको जाङ्ले गर्दा तिनी खोच्याई–खोच्याई हिंडेर पनीएल नाघिसक्दा सूर्योदय भयो॥ उहाँले तिनको फिलाको खोपिल्टामा जाङ्को नसो छोइदिनुभएको हुनाले आजसम्म ईस्राएलीहरू फिलाको जाङ्को नसो खाँदैनन्॥—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३२। आ० २४–३२॥

समीक्षक—ईसाईहरूको ईश्वर अखाडमल्ल=अखडाको पहेलवान छ र त सारा र सहेलमाथि छोरा हुने कृपा गर्यो। यो पनि आखिर ईश्वर हुनसक्तछ? अरू लीला हेर! एकजना नाम सोध्छ भने अर्को नाम पनि बताउँदैन! अनि ईश्वरले उसको तिघ्राको गेडी (नाडी)

फुस्काइदियो र ऊ बाँचिरह्यो, तर ऊ डाक्टर भएको भए उसको तिघ्राको गेडी ठीक पनि गरिदिंदो हो ? अनि यस्तो ईश्वरको भक्ति गर्नाले त याकुबले खोच्याइरहेजस्तै अरू पनि खोच्याइरहँदा। ईश्वरलाई प्रत्यक्ष देख्यो र कुस्ती लड्यो भने यो कुरा शरीर नभइ कसरी हुनसक्तछ र ? यी केवल अल्लारेपनका कुरा हुन्॥ ३५॥

३६. ईश्वरको मुख देखे॥

—तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३३। आ० १०॥

समीक्षक—ईश्वरको मुख छ भने अरू पनि सबै अवयव=अङ्ग-प्रत्यङ्ग होलान् र ऊ जन्म-मरणयुक्त पनि होला॥ ३६॥

३७. तर यहुदाको जेठो छोरो एर परमप्रभुको दृष्टिमा दुष्ट थियो, र परमप्रभुले त्यसको प्राण लिनुभयो॥ तब यहुदाले ओनानलाई भने, "तेरी भाउजूकहाँ जा, र देवरले गर्नुपर्ने कर्त्तव्य गर्, र तेरा दाजूका निम्ति सन्तान उत्पन्न गर्॥ तर सन्तान आफ्नो नहुने देखेर ओनानले भाउजूकहाँ जाँदा वीर्य चाहिं भुइँमा पतन गर्थ्यो॥ त्यसले गरेको यो काम परमप्रभुको दृष्टिमा खराब ठहरियो, र उहाँले त्यसको पनि प्राण लिनुभयो"॥ —तौरेत, उत्पत्तिको पुस्तक, पर्व ३८। आ० ७-१०॥

समीक्षक—ल हेर! यी मनुष्यका काम हुन् कि ईश्वरका ? जब ऊसँग नियोग भयो भने उसलाई किन मार्यो ? उसको बुद्धिलाई चाहिं किन शुद्ध गरेन ? अनि यसबाट वेदोक्त नियोग पहिले सर्वत्र चल्दथ्यो, नियोगका कुरा सबै देशमा चल्दथे' भन्ने पनि निश्चय भयो॥ ३७॥

तौरेत प्रस्थानको पुस्तक

३८. जब मोसा ठूला भएर आफ्ना भाइबन्धुहरूमध्ये एउटा हिब्रूलाई एउटा मिश्रीले हिर्काइरहेका देखे॥ तब तिनले यताउता हेरे, र कोही पनि नदेख्दा त्यस मिश्रीलाई मारेर बालुवामा पुरिदिए॥ भोलिपल्ट त्यहाँ जाँदा दुईजना हिब्रूहरू आपसमा कुटपीट गरिरहेका तिनले देखे, तिनले अन्याय गर्नेलाई चाहिं भने, "तिमी आफ्नै मान्छेलाई किन हिर्काउँछौ ?"॥ त्यसले भन्यो, "कसले तिमीलाई हाम्रो मालिक र न्यायकर्ता तुल्यायो ? त्यस मिश्रीलाई मारेजस्तै मलाई पनि मार्न चाहन्छौ ?" तब मोसा डराएर भागे॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व २। आ० ११-१५॥

समीक्षक—बाइबलका मुख्य सिद्धकर्त्ता, मतका आचार्य मोसाका कुरा त हेर! जसको चरित्र क्रोधादि गुणयुक्त, मनुष्यको हत्या गर्ने र

चोर जस्तै राजदण्डदेखि बच्ने अर्थात् जब ऊ कुरा लुकाउँथ्यो भने झूट पनि अवश्य बोल्दो हो, यस्तालाई पनि जुन ईश्वर मिल्यो, ऊ पैगम्बर भयो, उसले यहुदी मत चलायो, त्यो पनि मोसा जस्तै भयो। यसकारण मोसा आदिदेखि लिएर जति पनि ईसाईहरूका मूलपुरुष भएका छन्, ती सबै विद्यावस्थामा नभएर जङ्गली अवस्थामा थिए, इत्यादि॥ ३८॥

३९. जब हेर्नलाई तिनी त्यतातिर लागेका परमप्रभुले देख्नुभयो, तब परमेश्वरले पोथ्राको बीचबाट "मोसा, ए मोसा" भनेर तिनलाई बोलाउनुभयो। अनि तिनले भने "हजुर"॥ तब उहाँले भन्नुभयो, "यता नजिक नआइज। तेरो खुट्टाबाट जुत्ता फुकाल्, किनभने तँ उभिएको यो ठाउँ पवित्र भूमि हो"॥ —तौ० प्र० पु०, पर्व ३। आ० ४,५॥

समीक्षक—मनुष्यलाई मारेर बालुवामा पुरिदिने व्यक्तिसँग यिनका ईश्वरको मित्रता हुन्छ र उसलाई यिनीहरू पैगम्बर मान्दछन्। अनि हेर! तिम्रा ईश्वरले मोसासँग 'पवित्र ठाउँमा जुत्ता लैजानु हुँदैन' भनेको छ, अनि तिमी ईसाईहरू यस आज्ञाको विपरीत किन गर्दछौ ?

प्रश्न—हामी जुत्ताको सट्टा टोपी उतार्दछौं।

उत्तर—यो तिमीहरूले अर्को अपराध गर्यौ। किनकि टोपी उतार्न न त ईश्वरले भन्यो, न तिम्रो पुस्तकमा नै लेखेको छ। उतार्नुपर्नेलाई उतार्दैनौ, उतार्न नहुनेलाई उतार्दछौ, यो दुबै किसिमको व्यवहार तिम्रो पुस्तकको विरुद्ध हो।

प्रश्न—हाम्रो युरोप देशमा जाडो बढी लाग्छ, यसकारण हामीहरू जुत्ता फुकाल्दैनौं।

उत्तर—के टाउकामा चाहिं जाडो लाग्दैन ? अनि यही कुरा हो भने जब तिमीहरू आफ्नो युरोप देशमा जान्छौ, तब त्यसै गर्नू। तर हाम्रा घर वा ओछ्यानतिर आउँदा त जुत्ता फुकाल्ने गर। अनि फुकाल्दैनौ भने तिमीले आफ्नो बाइबल पुस्तकको विरुद्ध चलेको हुन्छ, तिमीहरूले यसो गर्नु उचित होइन॥ ३९॥

४०. तब परमप्रभुले तिनलाई भन्नुभयो, "तेरो हातमा के छ ?" तिनले भने, "लट्ठी"॥ उहाँले भन्नुभयो, "त्यो भुइँमा फाल्।" औ तिनले त्यो भुइँमा फालिदिए, र त्यो एउटा सर्प भयो र मोसा त्यसदेखि डराएर भागे॥ तब परमेश्वरले मोसालाई भन्नुभयो, "तेरो हात लम्काएर त्यसको पुच्छरमा समात्। अनि तिनले हात लम्काएर च्याप्पै समाते, र त्यो तिनको हातमा लट्ठी नै भइहाल्यो।" तब परमप्रभुले तिनलाई अझै यसो भन्नुभयो, "तेरो हात खोकिलामा हाल्।" तिनले आफ्नो हात

खोकिलामा हाले, र जब खोकिलाबाट फेरि निकाले, तब त्यो आफ्नो शरीरको अरू मासुजस्तै भइहाल्यो ॥ तँ नील नदीको पानी लिएर सुक्खा जमिनमा खन्याइदे। तैंले नील नदीबाट लिएको त्यो पानी सुक्खा जमीनमा रगत हुनेछ ॥ —तौ० प्र० पु०, पर्व ४। आ० २-४,६,७,९ ॥

समीक्षक—ल हेर, कस्ता जादुगरका खेल छन्! खेलाडी ईश्वर, उसको सेवक मोसा र यी कुरालाई मान्नेहरू कस्ता छन्? के हिजोआज जादुगरहरू योभन्दा कम करामात देखाउँछन्? यो ईश्वर के हो, यो त ठूलो खेलाडी पो रहेछ। यो कुरालाई विद्वान्हरू कसरी मान्लान्? अनि प्रत्येक पल्ट 'म परमेश्वर हुँ' र 'अब्राहाम, इजहाक र याकुबको ईश्वर हुँ' इत्यादि प्रत्येकसँग आफ्नै मुखबाट आफ्नो प्रशंसा गर्दै डुल्दछ। यो उत्तम व्यक्तिको कुरा नभएर दम्भी मानिसकै कुरा हुनसक्तछ ॥ ४० ॥

४१. निस्तारको बलिको निम्ति पाठो मार ॥ हिसपको झुप्पा भाँडाको रगतमा चोपेर चौकोसको माथिल्लो भाग र दुबैतिरका खाबामा छ्याप्नू, औ तिमीहरूमध्ये कोही पनि बिहानसम्म घरको ढोका बाहिर ननिस्कनू ॥ किनकि परमप्रभु मिश्रीहरूलाई प्रहार गर्न देशभित्रबाट भएर जानुहुनेछ। जब उहाँले चौकोसको माथिल्लो भाग र दुबैतिरका खाबामा रगत देख्नुहुनेछ, तब परमप्रभुले त्यस ढोकालाई छोडेर, निस्तार गरी, विनाश पार्नेलाई तिमीहरूका घरमा तिमीहरूलाई मार्न भनी पस्न दिनुहुन्न ॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व १२। आ० २१-२३ ॥

समीक्षक—यो टुनामुना गर्ने जस्तोपनि कहिल्यै सर्वज्ञ ईश्वर हुनसक्तछ? रगत छ्यापेको देखेमा मात्र इस्राएल कुलको घरलाई, नत्र नमान्ने कामकुरा क्षुद्र बुद्धि भएका मनुष्यको जस्तै हो। यसबाट 'यी कुरा कुनै जङ्गली मनुष्यले लेखेका हुन्' भन्ने कुरा विदित हुन्छ ॥ ४१ ॥

४२. मध्यरातमा सिंहासनमा बस्ने फेरी वहाँको जेठा छोरादेखि लिएर कैदखानामा हुने कैदीको जेठो छोरो र सबै गाईवस्तुहरूका पहिले जन्मेका समेतलाई गरी मिश्रमा सबै पहिले जन्मेकालाई परमप्रभुले मार्नुभयो ॥ तब फिरउन, तिनका सबै भारदारहरू, र सारा मिश्रीहरू राति नै उठे। औ मिश्रमा ठूलो रुवाबासी भयो, किनकि त्यहाँ एकजना पनि नमरेको कुनै घर थिएन ॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व १२। आ० २८,३० ॥

समीक्षक—अहा! धेरै राम्रो!! आधी रातमा डाँकूजस्तै निर्दयी भएर ईसाईहरूको ईश्वरले लाला-बाला, बूढा र पशुलाईसम्म अपराधविना नै मार्यो र अलिकति पनि दया पलाएन। अनि मिश्रमा ठूलो रुवाबासी

मच्चिइरह्यो, तापनि ईसाईहरूका ईश्वरको चित्तबाट निष्ठुरता गएन? यस्तो काम ईश्वरको त के कुरा, कुनै साधारण मनुष्यले गर्ने काम पनि होइन। यो आश्चर्य चाहिं होइन, किनकि लेखेको छ—"**मांसाहारिणः कुतो दया।**" ईसाईहरूको ईश्वर मांसाहारी छ भने उसलाई दया गर्ने काम कुरासँग के प्रयोजन छ र? ॥ ४२ ॥

४३. परमप्रभु नै तिमीहरूका निम्ति लड्नुहुनेछ ॥ इस्राएलीहरूलाई अगि बढ्ने आज्ञा दे ॥ तँ चाहिं आफ्नो लौरो उठाएर आफ्नो हात समुद्रतिर पसारेर त्यसलाई दुई भाग गर्। इस्राएलीहरू समुद्रको बीचबाट ओबानो जमिनमा हिंडेर जानेछन् ॥

—तौरेत, प्रस्थान पुस्तक, पर्व १४। आ० १४-१६ ॥

समीक्षक—क्या हो हँ, पहिले त ईश्वर भेडाको पछिपछि गोठालोजस्तै इस्राएल कुलको पछिपछि डुल्ने गर्दथ्यो, अब नजाने कहाँ अन्तर्धान भयो? नत्र भने समुद्रको बीचबाट चारैतर्फ रेलगाडीको बाटो बनाइदिएको भए सब संसारको उपकार हुन्थ्यो र डुङ्गा आदि बनाउने श्रम गर्नुपर्ने थिएन। तर के गर्ने? ईसाईहरूको ईश्वर नजाने कहाँ लुकिरहेछ? इत्यादि धेरैजसो असम्भव लीला मोसासँगै बाइबलको ईश्वरले गरेको छ। तर के चाहिं प्रष्ट भयो भने जस्तो ईसाईहरूको ईश्वर छ, त्यस्तै उसका सेवक र त्यस्तै उसले बनाएको पुस्तक पनि छ। यस्तो पुस्तक र यस्तो ईश्वर हामीहरूदेखि टाढै रहेको बेस छ ॥ ४३ ॥

४४. किनकि म परमप्रभु तेरा परमेश्वर डाह गर्ने परमेश्वर हुँ, पितापुर्खाले गरेको अधर्मको दण्ड मेरो अवहेलना गर्ने र तिनीहरूका सन्तानहरू, तिनीहरूका तेस्रो र चौथो पुस्तासम्म दिनेछु ॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व २०। आ० ५ ॥

समीक्षक—पिता पुर्खाको अपराधमा चारपुस्तासम्म दण्ड दिन राम्रो ठान्नु आखिर कुन घरको न्याय हो? के असल पिताका खराब र खराबका असल सन्तान हुँदैनन्? यसो हो भने चौथो पुस्तासम्म दण्ड कसरी दिन सक्ला? अनि पाँचौं पुस्तापछि दुष्ट भएमा उसलाई दण्ड दिन सक्नेछैन? कसैलाई अपराधविना नै दण्ड दिनु अन्यायकारीको कामकुरा हो ॥ ४४ ॥

४५. विश्राम-दिन पवित्र मान्नुपर्छ भनी याद राख् ॥ छ दिनसम्म तँ परिश्रम गर् ॥ तर सातौं दिन चाहिं तेरा परमप्रभु परमेश्वरको निम्ति विस्रामको दिन हो ॥ परमप्रभुले विश्रामको दिनलाई आशीष दिनुभयो ॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व २०। आ० ८-११ ॥

समीक्षक—के एउटा आइतवारमात्रै पवित्र र अरू छ दिन चाहिं अपवित्र हुन् ? अनि के परमेश्वरले छ दिनसम्म ठूलो परिश्रम गर्‍यो र त्यसबाट थाकेर सातौं दिन चाहिं सुत्यो ? अनि आइतवारलाई आशीर्वाद दियो भने सोमवार आदि अरू छ दिनलाई चाहिं के दियो त ? अर्थात् सराप दियो होला। यस्तो काम विद्वान् मनुष्यको त हुनसक्तैन भने ईश्वरको काम यस्तो कसरी हुनसक्तछ र ? आखिर आइतवारमा के गुण थियो र सोमवार आदिले के दोष गरेका थिए, जुन कारणले एउटालाई पवित्र बताएर वर दियो र अरूलाई त्यत्तिकै अपवित्र बनाइदियो ॥ ४५ ॥

४६. ''तैंले छिमेकीको विरुद्धमा झूटो साक्षी नदिनू ॥ तैंले आफ्नो छिमेकीको घरको लालच नगर्नू। तैंले आफ्नो छिमेकीकी स्वास्नीको लालच नगर्नू, तेरो छिमेकीका कमारा, कमारी, गोरु, गधा वा त्यसका कुनै पनि चिजको लालच नगर्नू।''

—तौ० प्र० पु०, पर्व २०। आ० १६,१७॥

समीक्षक—वा! अनि त ईसाईहरू परदेशीहरूका वस्तुमाथि तिर्खाले छट्पटाएको व्यक्ति पानीमा र भोको व्यक्ति अन्नमा लागिपरेजस्तै लागिपर्दछन् त ? यो केवल स्वार्थसागर र पक्षपातको कुरा भएजस्तै ईसाईहरूको ईश्वर पनि अवश्य त्यस्तै हुँदो हो। कसैले 'हामी मनुष्यमात्रलाई छिमेकी मान्दछौं' भनेमा, मनुष्यबाहेक अरूका चाहिं स्त्री र दास–दासी भएका हुन्छन् र, तिनलाई गैर–छिमेकी मान्छ? यसकारण यी कुरा ईश्वरका होइनन्, स्वार्थी मनुष्यका हुन् ॥ ४६ ॥

४७. कसैले कुनै मानिसलाई मर्नेगरी हिर्कायो भने त्यसलाई पनि मार्नैपर्छ ॥ तर यदि कुनै मानिस ढुकेर बसेको थिएन तर त्यो अर्को मानिसलाई परमेश्वरले त्यसको हातमा सुम्पनुभएको हो भने त्यो भाग्नलाई म एउटा स्थान तेरो निम्ति तोकिदिनेछु ॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व २१। आ० १२,१३॥

समीक्षक—यो ईश्वरको न्याय सच्चा हो भने—मोसाले एउटा मानिसलाई मारेर बालुवामा पुरेर भागेको थियो—उसलाई यो दण्ड किन दिइएन ? अनि 'ईश्वरले मोसालाई मार्ने काम अह्राएको थियो' भन्छौ भने ईश्वर पक्षपाती भयो, किनकि त्यस मोसाको राजाबाट न्याय किन हुन दिएन ? ॥ ४७ ॥

४८. र तिनीहरूले परमप्रभुको निम्ति होमबलि र गोरुहरूको मेलबलि चढ़ाए॥ तब मोसाले आधा रगत लिएर भाँडामा हाले, र

आधा रगत चाहिं वेदीमा छर्के ॥ तब मोसाले रगत लिएर मानिसहरूमाथि छर्के, र भने, ''हेर, यो त्यो करारको रगत हो, जो परमप्रभुले आफ्नो व्यवस्थाका सबै वचन अनुसार तिमीहरूसित बाँध्नुभएकोछ''॥ अनि परमप्रभुले मोसालाई भन्नुभयो, ''पर्वतमाथि आएर त्यहाँ मेरासामु बस्। तैंले तिनीहरूलाई सिकाउनलाई मैले लेखेका आज्ञा र व्यवस्थाका ढुङ्गाका पाटीहरू तँलाई दिनेछु।''

—तौ० प्र० पु०, पर्व २४। आ० ५,६,८,१२॥

समीक्षक—अब हेर ! यी सबै जङ्गलीहरूका कुरा हुन् वा होइनन् ? अनि परमेश्वर गोरुको बलि लिन्छ र वेदीमा रगत छर्कनुपर्छ भने यो कस्तो जंगलीपन र असभ्यताको कुरा हो ? जब ईसाईहरूको खुदा=ईश्वर पनि गोरुको बलि लिन्छ भने उसका भक्त गोरु, गाईको बलिदानको प्रसादबाट पेट किन नभरून् ? अनि जगत्को हानि किन नगरून् ? यस्ता–यस्ता खराब कुरा बाइबलमा भरिभराउ छन्। यसैका कुसंस्कारबाट वेदमा पनि यस्ता झूटा दोष लगाउन चाहन्छन्, तर वेदमा यस्ता कुराको नामै पनि छैन। अनि यो पनि निश्चय भयो कि ईसाईहरूको ईश्वर एउटा पर्वते मनुष्य थियो, पहाडमा बस्तथ्यो। त्यो खुदा=ईश्वर मसी, कलम, कागज बनाउन जान्दैनथ्यो र उसलाई प्राप्त पनि हुँदैनथ्यो, अनि त ढुङ्गाका पाटीमा लेखी–लेखी दिने गर्दथ्यो। अनि यिनै जङ्गलीहरूको अगाडि ईश्वर बनेको थियो ॥ ४८ ॥

४९. उहाँले भन्नुभयो, ''तैंले मेरो अनुहार हेर्न सक्तैनस्, किनकि मेरो अनुहार हेरेर मानिस जीवित रहनसक्तैन''॥ फेरि परमप्रभुले भन्नुभयो, ''हेर, मेरा छेउमा एउटा ठाउँ छ, औ तँ त्यस चटानमा खडा हो ॥ मेरो महिमा त्यहाँबाट भएर जाँदा तँलाई म त्यस चट्टानको दरारमा राख्नेछु, र म त्यहाँबाट भएर नजाउन्जेल तँलाई मेरै हातले छोपिराख्नेछु ॥ त्यसपछि म मेरो हात उठाउँनेछु, र तैंले मेरो पछिको भाग देख्नेछस्, तर मेरो अनुहार चाहिं देखिनेछैन''॥

—तौ० प्र० पु०, पर्व ३३। आ० २०–२३॥

समीक्षक—अब हेर ! ईसाईहरूको ईश्वर केवल मानिस सरह नै शरीरधारी भएर पनि मोसासँग कस्तो प्रपञ्च रचेर आफू आफैं ईश्वर बन्यो ? पछाडिको भाग देखिने र अनुहार चाहिं नदेखिने भए हातले उसलाई छोपेको पनि नहुँदो हो। खुदाले आफ्नो हातले मोसालाई छोप्ता उसले उसको हातको रूप पनि देखेन होला ? ॥ ४९ ॥

५०. भेट हुने पालभित्रबाट परमप्रभुले मोसालाई बोलाएर भन्नुभयो, ''इस्राएलीहरूलाई भन्, 'तिमीहरूमध्ये कुनै पनि मानिसले परमप्रभुको निम्ति बलि चढाउँदा तिनीहरूको पशुबलि गाई–गोरुका बथान अथवा भेडा–बाख्राका बगालबाट चढाओस्' ॥

—तौरेत लेवी व्यवस्थाको पुस्तक, पर्व १। आ० १,२॥

समीक्षक—अब विचार गरौं। गाई गोरु आदिको भेटी लिने ईसाईहरूको ईश्वर आफ्नो निम्ति बलि दिने उपदेश गर्दछ भने ऊ गाई गोरु आदि पशुका रगत–मासुको भोको हो कि होइन? यसैकारण ऊ कहिल्यै अहिंस्रक र ईश्वरको कोटिमा गनिन सक्तैन तर ऊ त मांसाहारी प्रपञ्ची मानिसजस्तै हो॥५०॥

५१. त्यसले त्यस साँढेलाई परमप्रभुको सामने मारोस्। हारुनका छोराहरू, अर्थात् पुजारीहरूले चाहिं रगत नजिक लगेर भेट हुने पालको ढोकाको सामनेको वेदीमा वरिपरि छर्कून्॥ त्यसपछि त्यसले होमबलिको छाला काढेर त्यसलाई टुक्रा टुक्रा गरी काटोस्॥ पुजारी हारुनका छोराहरूले वेदीमा आगो हालेर दाउराहरू काइदासँग आगोमाथि राखून्॥ हारुनका छोराहरू अर्थात् पुजारीहरूले वेदीमाथिको आगोमा राखेका दाउरामाथि ती टुक्राहरू, टाउको र बोसो काइदासँग राखून्॥ ती जम्मैलाई पुजारीले परमप्रभुको निम्ति मीठो बास्ना, आगोद्वारा तयार गरेको बलि अर्थात् होमबलि गरी वेदीमा जलाओस्॥

—तौ० ले० व्य० पु०, पर्व १। आ० ५–९॥

समीक्षक—अलिकति विचार त गरौं कि साँढेलाई परमेश्वरकै अगाडि मार्दछन्, ऊ मार्न लगाउँछ र रगतलाई चारैतिर छर्कन्छन्, आगोमा होम्दछन्, ईश्वर त्यसको बास्ना लिन्छ भने यो सबै के कसाईको घरको भन्दा केही कम लीला हो त? यसैबाट न त बाइबल ईश्वरकृत हो, न त्यो जङ्गली मानिसजस्तै लीलाधारी व्यक्ति ईश्वर नै हुनसक्तछ भन्ने बुझिन्छ॥५१॥

५२. परमप्रभुले मोसालाई भन्नुभयो॥ कुनै अभिषेक भएको पुजारीले पाप गरेर मानिसहरूमा दोष ल्यायो भने त्यसले गरेको त्यस पापको निम्ति एउटा निष्खोट साँढे परमप्रभुमा पापबलि चढाओस्॥ बाछाको टाउकोमा आफ्नो हात राखी बाछालाई परमप्रभुका सामने मारोस्॥

—तौ० ले० व्य० पु०, पर्व ४। आ० १,३,४॥

समीक्षक—ल, अब पाप छुटाउने प्रायश्चित्त त हेर! पाप आफू

गर्ने, गाई आदि उत्तम पशुहरूको हत्या गर्ने र परमेश्वर त्यसो गराउने! धन्य छौ ईसाईहरू हो! जो यस्ता कामकुरा गर्ने गराउनेलाई पनि ईश्वर मानेर आफ्नो मुक्ति आदिको आशा गर्दछन्!!!॥५२॥

५३. कुनै शासकले पाप गरेको छ... ॥...भने, त्यसले एउटा निष्खोट बोका आफ्ना भेटीका निम्ति ल्याओस्॥ त्यसलाई परमप्रभुको सामने मारोस्। यो चाहिं पापबलि हो॥

—तौ० ले० व्य० पु०, पर्व ४। आ० २२–२४॥

समीक्षक—वा जी वा! यसै हो भने यिनका शासक अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप गर्नबाट किन पो डराउँदाहुन् र? आफू त चाहेजति पाप गर्ने, अनि प्रायश्चित्तको सट्टा गाई, बाछा, बोका आदिको प्राण लिने!! अनि त ईसाईहरू कुनै पशु वा पक्षीका प्राण लिनमा केही पनि सङ्कोच गर्दैनन्। सुन, ईसाईहरू हो! अब त यस जङ्गली मतलाई त्यागेर सुसभ्य धर्ममय वेदमतलाई स्वीकार गर, जसबाट तिम्रो कल्याण हुनेछ॥५३॥

५४. पाठी ल्याउने त्यसको औकात पुग्दैन भने, त्यसले आफूले गरेको त्यस पापको निम्ति दुईवटा ढुकुर कि परेवाका दुईवटा बच्चा परमप्रभुकहाँ ल्याओस्॥ र त्यसको टाउको घाँटीमा समातेर निमठोस्, तर त्यसलाई चुँड्याइ नहालोस्॥ त्यसले गरेको पापको निम्ति यसरी प्रायश्चित्त गरोस्, तब त्यसलाई क्षमा हुनेछ॥ तर दुईवटा ढुकुर कि परेवाका दुईवटा बच्चा ल्याउने पनि त्यसको औकात पुग्दैन भने, एपाको दशांस मसिनो पीठो ल्याओस्, (त्यसमा तेल नहालोस्)॥ र त्यो (पाप) त्यसलाई क्षमा हुनेछ॥

—तौ० ले० व्य० पु०, पर्व ५। आ० ७,८,१०,११,१३॥

समीक्षक—अब सुन, ईसाईहरूमा पाप गर्नबाट न त कुनै धनवान् डराउँदो हो, न गरिब नै। किनकि यिनका ईश्वरले पापहरूको प्रायश्चित गर्न सजिलो गरिदिएका छन्। एउटा यो कुरा ईसाईहरूको बाइबलमा ठूलो अद्भुत छ कि कष्ट नउठाइकनै पापबाटै पाप छुट्तछन् अरे। किनकि पहिले त पाप गरे, फेरि अरू जीवहरूको हिंसा गरे, अनि खुब आनन्दपूर्वक मासु खाए तथा पाप पनि छुट्यो। आखिर परेवाका बच्चाको घाँटी निमोठ्ता ऊ धेरैबेरसम्म तड्पिंदो हो, तापनि ईसाईहरूमा दया पलाउँदैन। कसरी दया पलाओस्? यिनका ईश्वरको उपदेश नै हिंसा गर्ने छ। अनि सबै पापको यस्तो प्रायश्चित्त छ भने ईसाको विश्वासबाट पाप छुट्तछ भन्ने ठूलो आडम्बर किन गर्दछन्?

बाछा, भेडा, पाठा, परेवा र पीठोसम्म लिने नियम बनाउने यस ईश्वरलाई धन्य छ। अद्भुत कुरा त के छ भने परेवाको गर्दन निमोठ्न लगाएर लिन्थ्यो अर्थात् आफूले गर्दन चुडाल्ने परिश्रम गर्न नपरोस्। यी सबै कुरालाई देख्दाले के बुझिन्छ भने जङ्गलीहरूमा एउटा कुनै चलाख व्यक्ति थियो, ऊ पहाडमा गएर बस्न थाल्यो र आफूलाई उसले ईश्वर घोषित र प्रचारित गर्‍यो, जङ्गलीहरू अज्ञानी थिए, उनीहरूले उसैलाई ईश्वर स्वीकार गरे। आफ्ना युक्तिहरूद्वारा ऊ पहाडमाथि नै खानका लागि पशु, पक्षी र अन्न आदि मँगाउने र मजा गर्ने गर्दथ्यो। उसका दूत फरिश्ते काम गर्ने गर्दथे। सज्जनहरूले विचार गर्नुपर्ने कुरा के छ भने, कहाँ बाइबलमा बाछा, भेडा, पाठा, परेवा र 'असल' पीठो खाने ईश्वर र कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् र न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर ?॥५४॥

५५. जुन पुजारीले कुनै मानिसले ल्याएको होमबलि चढाउँछ, त्यो होमबलिको छाला त्यही पजिरीको होस्॥ चुल्हामा पकाएको, र ताई–ताप्के र तावामा बनाएका सबै अन्नबलि ती चढाउने पुजारीको होस्॥ —तौ० ले० व्य० पु०, पर्व ७। आ० ८,९॥

समीक्षक—यहाँ देवीका भोपा=स्तुतिगायन र मन्दिरका पुजारीहरूको पोपलीला विचित्र छ भन्ने कुरा त हामीलाई थाहा थियो, तर ईसाईहरूको ईश्वर र उनका पुजारीहरूको पोपलीला योभन्दा हजारगुना बढ़ी रहेछ। किनकि छालाको दाम र भोजनका पदार्थ खान नै आउँछन् भने ईसाईहरूका पूजारीहरूले खूब मजा उडाए होलान्? र अझै उडाउँदा हुन्। आखिर कुनै मनुष्यबाट आफ्नो एउटा छोरालाई मार्न लगाउने र अर्को छोरालाई त्यसको मासु खुवाउने कुरा कहिल्यै हुनसक्तछ? त्यस्तै सबै मनुष्य र सबै पशु, पक्षी आदि जीवजन्तु ईश्वरका सन्तान सरह हुन्। परमेश्वरले यस्तो काम कहिल्यै गर्नसक्तैन। यसैकारण यो बाइबल ईश्वरकृत, यसमा लेखेको 'ईश्वर' ईश्वर र यसलाई मान्नेहरू धर्मज्ञ कहिल्यै हुनसक्तैनन्। सबै यस्तै कुरा लेवी व्यवस्था आदि पुस्तकहरूमा भरिपूर्ण छन्, कतिसम्म लेखौं र?॥५५॥

गन्तीको पुस्तक

५६. अनि थुतेको तरवार हातमा लिएर बाटोमा उभिरहेका परमप्रभुका दूतलाई त्यस गधाले देख्यो, र गधा बाटोदेखि तर्केर खेततिर लाग्यो। गधालाई बाटोतिर फर्काउन बिलामले पिटे॥ तब परमप्रभुले

गधाको मुख खोलिदिनु भयो, र त्यसले बिलामलाई भन्यो, ''मैले तपाईंलाई के गरेको छु, र तपाईंले मलाई तीनपल्ट पिट्नुभयो?''॥

—तौ० ग० पु०, पर्व २२। आ० २३,२८॥

समीक्षक—पहिले त ईश्वरका दूतले गधालाईसम्म देख्तथे। हिजोआज भने बिशप पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यलाई पनि खुदा वा उसका दूत देखापर्दैनन्। हिजोआज परमेश्वर र उसका दूत छन् कि छैनन्? छन् भने के गहिरो निन्द्रामा सुतेका छन्? अथवा रोगी भए? अथवा अरू कुनै भूगोलमा गए? अथवा अरू कुनै कामधन्धामा लागे? या अब ईसाईहरू देखि रिसाए? अथवा मरिसके? के भयो भन्ने पत्तै छैन। अनुमान त यस्तो छ कि अहिले छैनन्, देखिंदैनन् भने उहिले पनि थिएनन् र देखिंदैनथे। तर यी त केवल मनमाना गफ उडाइएका हुन्॥५६॥

५७. यसैकारण सबै नाबालिगहरूमध्ये केटाजत्तिलाई र पुरुषको सम्पर्कमा आएका स्त्रीहरूलाई मार॥ तर सबै कन्येकेटीहरूलाई चाहिं तिमीहरूले आफ्ना निम्ति जिउँदै राख॥

—तौ० ग० पु०, पर्व ३१। आ० १७,१८॥

समीक्षक—वा! स्त्री, बालक, वृद्ध र पशुको हत्या गर्नबाट पनि अलग नरहने मोसा पैगम्बर र तिम्रो ईश्वर धन्य छ!!! अनि यसबाट मोसा विषयी थियो भन्ने कुरा पनि प्रष्ट हुन्छ। किनकि विषयी नभएको भए अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषसँग समागम नगरेका कन्येकेटीहरूलाई आफ्ना निम्ति किन मगाउँदथ्यो र? अथवा उनीहरूलाई यस्तो निर्दयी र विषयीपनको आज्ञा किन दिन्थ्यो र?॥५७॥

समुएलको दोस्रो पुस्तक

५८. त्यही रात परमप्रभुको यो वचन नातानकहाँ आयो॥ ''गएर मेरो दास दाउदलाई भन्, परमप्रभु भन्नुहुन्छ, ''मेरा निम्ति तैंले नै एउटा घर बनाउनेछस्?॥ इस्राएललाई मिश्रदेशबाट ल्याएदेखि यता आजका दिनसम्म म कहिल्यै कुनै घरमा बसेको छैन। तर पाल र बासस्थानमा म बस्तै आएको छु।''

—तौ० समुएलको दोस्रो पुस्तक, पर्व ७। आ० ४–६॥

समीक्षक—अब त ईसाईहरूको ईश्वर मनुष्य जस्तै देहधारी हो, होइन भन्ने कुरामा कुनै सन्देह रहेन। अनि ऊ 'मैले धेरै परिश्रम गरें, यताउति फिरें, अब दाउदले घर बनाइदिएमा त्यसमा बस्नेथिएँ' भनी

घुक्र्याउँछ। यस्तो ईश्वर र यस्तो पुस्तकलाई मान्नमा ईसाईहरूलाई लाज किन लाग्दैन ? तर के गरून् ? बिचराहरू फँसिहाले। अब यसबाट निस्कन ठूलो पुरुषार्थ गर्नु उचित छ॥५८॥

राजाहरूको दोस्रो पुस्तक

५९. पाँचौं महिनाको सातौं दिनमा, अर्थात् बावेलका राजा नबुकदनेसरको राज्य उन्नाइसौं वर्षमा नबुकदनेसर राजाका अङ्गरक्षकहरूका कप्तान नबु-जरदान यरुसलेममा आए॥ र तिनले परमप्रभुको भवन र राजमहलमा आगो लगाइदिए। सहरका सबै घरहरू, हरेक ठूला घर जसले भस्म भए॥ कल्दी फौज र अङ्गरक्षकहरूका कप्तानले यरूसलेमको वरिपरिको पर्खाल भत्काइदिए॥

—तौ० राजाहरूको दोस्रो पुस्तक, पर्व २५। आ० ८-१०॥

समीक्षक—के गर्ने ? ईसाईहरूका ईश्वरले त आफ्नो आरामका लागि दाउद आदिबाट घर बनाउन लगाएको थियो। त्यसमा आराम गर्दो हो। तर नबुजरदानले ईश्वरको घरलाई नष्ट-भ्रष्ट गरिदियो, भत्काइदियो र ईश्वर वा उसका दूतहरूको सेनाले केही पनि गर्न सकेन। पहिले त यिनको ईश्वर ठूला-ठूला युद्ध गर्दथ्यो र जित्ने गर्दथ्यो तर अब आफ्नै घर भत्काइएको हेरिरह्यो। नजाने किन चुपचाप बसिरहेको होला ? उसका दूत नजाने कता भागे ? यस्तो समयमा कोही पनि काम लागेनन् र ईश्वरको पराक्रम पनि नजाने कता उड्यो ? यो कुरा साँचो हो भने पहिले लेखेका जीतका कुरा सबै झूटा भए। के ऊ मिश्रका केटाकेटीलाई मार्नमा नै शूरवीर भएको थियो ? अब शूरवीरहरूका सामु भने चुप लागेर बस्यो ? यो त ईसाईहरूका ईश्वरले आफ्नो निन्दा र अप्रतिष्ठा पो गरायो। यस पुस्तकमा यस्तै हजारौं निकम्मा कथा भरिपूर्ण छन्॥५९॥

इतिहासको पहिलो पुस्तक

(जबुरको दोस्रो भाग, कालको समाचारको पहिलो पुस्तक)

६०. यसकारण परमप्रभुले इस्राएलभरि नै एउटा विपत्ति पठाउनुभयो, र इस्राएलका सत्तरी हजार मानिसहरू मरे॥

—इतिहासको पहिलो पुस्तक, पर्व २१। आ० १५॥

समीक्षक—ल हेर, इस्राएलका ईसाईहरूका ईश्वरको लीला!

जुन इस्राएल कुललाई घेरैजसो वरदान दिएको थियो र जसको पालनपोषणका लागि रातदिन फिर्ने गर्दथ्यो, अब तुरुन्तै क्रोधित भएर विपत्ति पठाएर सत्तरी हजार मानिसहरूलाई मार्यो। कुनै कविले लेखेको निम्न कुरा साँचो हो कि—

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥

एक क्षणमा प्रसन्न र अर्को क्षणमा अप्रसन्न अर्थात् क्षण क्षणमा प्रसन्न-अप्रसन्न हुने व्यक्तिको प्रसन्नता पनि भयदायक हुन्छ। त्यस्तै लीला ईसाईहरूका ईश्वरको छ॥६०॥

अय्यूबको पुस्तक

६१. फेरि एकदिन स्वर्गीयजनहरू परमप्रभुको सामने उपस्थित हुँदा सैतान पनि तिनीहरूसँगै थियो॥ परमप्रभुले त्यसलाई सोध्नुभयो, ''तँ के गर्दै थिइस् ?'' (तँ कहाँबाट आइस् ?)। त्यसले भन्यो, ''पृथ्वीमा चारैतिर घुमफिर गर्दै आएको हुँ''॥ तब परमप्रभुले सैतानसँग सोध्नुभयो, ''के तैंले मेरो दास अय्युबलाई याद गरिस् ? परमेश्वरसँगको डर राख्ने र दुष्ट कामबाट अलग रहने पृथ्वीमा त्यो जस्तो निर्दोष र सोझो जीवन व्यतीत गर्ने मानिस तैंले कोही पाउनेछैनस्। तैंले मलाई विनाकारण त्यसलाई नाश गर्नलाई उक्साइस्''॥ शैतानले परमप्रभुलाई जवाफ दियो, ''चामको साटो चाम। आफ्नो ज्यान बचाउन मानिसले आफ्नो भएका सबै कुरा दिंदैन र ?॥ आफ्नो हात पसारेर तिनको शरीरमा चोट पुर्याउनुभए तिनले तपाईको मुखकै सामने तपाईलाई सराप्नेछन्''॥ तब परमप्रभुले सैतानलाई भन्नुभयो, ''त्यो तेरो हातमा छ। त्यसको ज्यान चाहिं छोडिदे''॥ तब सैतान परमप्रभुको सामनेबाट निस्किहाल्यो। त्यसले अय्युबको टाउकादेखि पैतालासम्म खटिरा उब्जाइदियो॥

—जबुर, अय्युबको पुस्तक, पर्व २। आ० १-७॥

समीक्षक—ल, अब ईसाईहरूका ईश्वरको समर्थ्य त हेर! उसैका सामुन्ने उसका भक्तहरूलाई सैतान दु:ख दिन्छ र न त ऊ सैतानलाई दण्ड दिन न आफ्ना भक्तहरूलाई बचाउन नै सक्तछ। अनि उसका दूतहरूमध्ये पनि कुनैले त्यस सैतानको सामना गर्नसक्तैन। एउटा सैतानले सबैलाई भयभीत पारिराखेको छ। अनि ईसाईहरूको ईश्वर पनि सर्वज्ञ रहेनछ। सर्वज्ञ भएको भए अय्युबको परीक्षा सैतानबाट किन गराउँथ्यो र ?॥६१॥

उपदेशको पुस्तक

६२. बुद्धि र ज्ञानसित म परिचित भएँ॥ यसैले बुद्धि र ज्ञान, पागलपना र मूर्खता जान्न मैले मन लगाएँ। औ यो पनि बतासलाई खेदेको जस्तो मात्र रहेछ भनी मैले जानें॥ किनभने धेरै विरक्ति हुन्छ, औ मानिसले जति धेरै जान्यो, त्यति नै धेरै दु:ख पाउँछ॥

—जबूर, उपदेशको पुस्तक, पर्व १। आ० १६–१८॥

समीक्षक—अब हेर, बुद्धि र ज्ञान पर्यायवाची हुन्, तिनलाई छुट्टाछुट्टै दुईटा मान्दछन्। अनि बुद्धि–वृद्धिमा शोक र दु:ख मान्ने कुरा अविद्वान्‌बाहेक कसले लेख्न सक्तछ र? यसकारण यो बाइबल ईश्वरले बनाएको भन्ने त के कुरा, कुनै विद्वान्‌ले बनाएको पनि होइन॥ ६२॥

तौरेत–जबुरको बारेमा यो थोरै लेखियो। यसपछि **मत्तीरचित इञ्जिल** आदिको विषयमा लेखिन्छ। यसलाई ईसाईहरू धेरै प्रामाणिक मान्दछन्। जसको इञ्जील नाम राखिएको छ, त्यसको अलिकति परीक्षा—यो कस्तो छ भन्ने कुरा लेखिन्छ।

मत्तीको सुसमाचार (इञ्जिल)

६३. येसु ख्रीष्टको जन्म यसरी भयो—उहाँकी आमा मरियमको मगनी युसुफसँग भएको थियो। तर उनीहरूको सहवास हुनुभन्दा अघिबाटै मरियम पवित्र आत्माद्वारा गर्भवती भएकी थिइन्॥ हेर, सपनामा परमप्रभुका एकजना दूतले उनलाई यसो भनेर दर्शन दिए, ''हे युसुफ, दाउदको छोरो, तिम्री पत्नी मरियमलाई तिमीकहाँ ल्याउनलाई नडराऊ, किनभने जो तिम्रो गर्भमा हुनुहुन्छ, उहाँ पवित्र आत्माबाट कै हुनुहुन्छ''॥

—इं० मत्ती० पर्व १। आ० १८,२०॥

समीक्षक—प्रत्यक्षादि प्रमाण र सृष्टिक्रमको विरुद्ध यी कुरालाई कुनै पनि विद्वान्‌ले मान्न सक्तैन। यी कुरालाई मान्नु सभ्य विद्वान्‌हरूको काम नभएर मूर्ख जङ्गली मनुष्यहरूको काम हो। परमेश्वरको नियमलाई पनि के कसैले तोड्न सक्छ? यदि परमेश्वर पनि आफैं नियमलाईं उलट–पलट गर्दछ भने उसको आज्ञालाई कसैले मान्नेछैन र ऊ पनि सर्वज्ञ र निर्भ्रम रहने छैन। यसरी जुन–जुन कन्या केटीको गर्भ रहनेछ ती सबैले यसो भन्न सक्नेछन् कि यसमा गर्भ ईश्वरको तर्फबाट रहेको हो भनेर। अनि झूटमूट नै ''परमेश्वरको दूतले मलाई स्वप्नमा 'यो गर्भ परमात्माको तर्फबाट हो' भनेको छ'' भन्नेछन्। जसरी यो असम्भव

प्रपञ्च रचेको छ, त्यस्तै सूर्यबाट कुन्ती गर्भवती भएको असम्भव कुरा पनि पुराणहरूमा लेखिएको छ। धन भैकनका अन्धा व्यक्ति यस्ता यस्ता कुरालाई मानेर भ्रमजालमा पर्दछन्। यो कुरा यसो भएको हुँदो हो कि मरियम कुनै पुरुषसँगको समागमबाट गर्भवती भएकी हुँदी हो। उसले अथवा अरू कुनैले 'यसमा गर्भ ईश्वरको तर्फबाट छ' भन्ने यस्तो असम्भव कुरा फिंजायो होला॥ ६३॥

६४. तब दुष्टात्माबाट परीक्षा हुनलाई येशु आत्माद्वारा उजाड स्थानमा लगिनुभयो॥ अनि चालीस दिन र चालीस रात उपवास बसिसकेपछि उहाँ भोकाउनुभयो॥ औ परीक्षा गर्नेले उहाँकहाँ आएर भन्यो, ''यदि तपाईं परमेश्वरका पुत्र हुनुहुञ्छ भने, यी ढुङ्गाहरू रोटी होऊन् भनी आज्ञा दिनुहोस्''॥ —इं०, मत्ती पर्व ४। आ० १–३॥

समीक्षक—यसबाट 'ईसाईहरूको ईश्वर सर्वज्ञ होइन' भन्ने कुरा स्पष्ट हुन्छ। किनकि सर्वज्ञ भएको भए उसको परीक्षा दुष्टात्माबाट किन गराउँथ्यो र? आफैं जानिहाल्थ्यो नि!! आखिर कुनै ईसाईलाई हिजोआज चालीस रात चालीस दिन भोकै राखेमा के कहिल्यै बाँच्न सक्ला? यसबाट न त ऊ ईश्वरको छोरो थियो न उसमा केही करामत अर्थात् सिद्धि थियो भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। नत्रभने दुष्टात्माको अगाडि ढुङ्गाका रोटी किन बनाइदिएन र आफू भोकभोकै किन रह्यो त? वास्तवमा सिद्धान्त त यो हो कि परमेश्वरले जो ढुङ्गा बनाएका छन्, त्यसलाई कसैले पनि रोटी बनाउन सक्तैन। ईश्वरले पनि पूर्वकृत=पहिले बनाएको नियमलाई उल्टाउन सक्तैन। किनकि परमेश्वर त सर्वज्ञ छ र उसका सबै काम भुलचुकरहित छन्॥ ६४॥

६५. उहाँले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, ''मेरो पछि लाग, र म तिमीहरूलाई मानिसहरूका जलाहारी (मछुवा) तुल्याउनेछु।'' तब उत्तिखेरै जालहरू छोड़ेर तिनीहरू उहाँको पछि लागे॥

—इं०, मत्ती० पर्व ४। आ० १९,२०॥

समीक्षक—विदित हुन्छ कि तौरेतमा दस आज्ञामा लेखेको ''आफ्ना बाबु र आमाको सेवा र आदर गर् र तेरो आयु लामो होस्'' भन्ने कुरा नमानेकै पापका कारण अर्थात् ईसाले आफ्ना बाबु–आमाको सेवा गर्‍यी र अरूलाई पनि आमा–बाबुको सेवा गर्नबाट छुटायो, यसै अपराधका कारण ऊ चिरंजीवी रहन सकेन। अनि यसबाट यो पनि विदित हुन्छ कि ईसाले जालमा माछा फँसाएजस्तै मानिसहरूलाई आफ्नो मतमा फँसाएर आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्नका निम्ति

मानिसहरूलाई फसाउनका लागि एउटा मत चलाएको हो। जब ईसा नै यस्तो थियो भने हिजो आजका पादरीहरू मानिसहरूलाई आफ्नो जालमा फँसाउँछन् त कुन आश्चर्य भयो? किनकि ठूला–ठूला र धेरै माछाहरूलाई जालमा फँसाउनेको प्रतिष्ठा र जीविका राम्रो भएजस्तै धेरैलाई आफ्नो मतमा फँसाउनेको प्रतिष्ठा र जीविका राम्रो हुन्छ। यसैकारण यिनीहरू वेद र शास्त्र नपढेका–नसुनेका सोझा–साझा मानिसहरूलाई आफ्नो जालमा फँसाएर उनका बाबुआमा कुटुम्ब आदिबाट अलग्याइदिन्छन्। यसकारण सबै विद्वान् आर्यहरूले, आफू यिनको भ्रमजालदेखि बचेर अरू आफ्ना सोझा बन्धुहरूलाई बचाउन तत्पर रहनु उचित हुन्छ॥ ६५॥

६६. अनि येसु तिनीहरूका सभाघरहरूमा सिकाउँदै र राज्यको सुसमाचार प्रचार गर्दै, र मानिसहरूमा भएका हरेक किसिमका रोग र शारीरिक कमजोरी निको पार्दै, सारा गालीलभरि घुम्नुभयो॥ सबै बिरामीहरू, रोग र नानाप्रकारका पीडाले गाँजिएकाहरूले, भूत लागेकाहरू, र छारेरोग लागेकाहरू, पक्षवात भएकाहरूलाई तिनीहरूले उहाँकहाँ ल्याए, र उहाँले तिनीहरूलाई निको पार्नुभयो॥

—इं०, मत्ती० पर्व ४। आ० २३,२४॥

समीक्षक—हिजोआज पोपलीला रच्नेहरूका, मन्त्र, पुरश्चरण, आशीर्वाद, यन्त्र–बुटी बाँध्ने, खरानी फुक्ने आदिबाट भूत निकाल्ने, रोग छुटाउने आदि कुरा साँचा भए त्यो इञ्जिलको कुरा पनि साँचो हुँदो हो। यसकारण यी सबै कुरा सीधासादा मानिसलाई भ्रममा फसाउनका लागि मात्र हुन्। ईसाईहरू ईसाका यस्ता कुरालाई मान्दछन् भने यहाँका देवीका स्तुतिगायकहरूका कुरालाई किन मान्दैनन्? किनकि ती कुरा यिनैका जस्ता हुन्॥ ६६॥

६७. धन्य आत्मामा दरिद्र हुनेहरू, किनभने स्वर्गको राज्य तिनीहरूकै हो॥ किनभने म तिमीहरूलाई साँचो भन्दछु, जबसम्म स्वर्ग र पृथ्वी बितिजाँदैन, तबसम्म सबै कुरा पूरा नहोउञ्जेल कुनै किसिमले व्यवस्थाबाट एउटामात्र वा एउटा बिन्दु बितिजाने छैन॥ यसैकारण जसले यी सानाभन्दा पनि साना आज्ञाहरूमध्ये एउटा भङ्ग गर्ला र मानिसहरूलाई त्यस्तै गर्न सिकाउँला, स्वर्गको राज्यमा त्यो सबैभन्दा सानो कहलाइनेछ॥ —इं० मत्ती० प० ५। आ० ३,१८,१९॥

समीक्षक—स्वर्ग एउटा छ भने राजा पनि एउटै हुनुपर्दछ। यसकारण जति दरिद्र छन् ती सबै स्वर्ग जानेछन् भने स्वर्गमा राज्यको

अधिकार कसको हुनेछ? अर्थात् परस्पर लडाइँ–भिडाइँ, झैंझगडा गर्नेछन् र राज्यव्यवस्था चौपट हुनेछ। अनि दीन वा दरिद्र भन्नाले कंगाल अर्थ लिन्छौ भने कुरा ठीक हुनेछैन। निरभिमानी अर्थ लिन्छौ भने पनि ठीक हुनेछैन। किनकि दीन (दरिद्र) र निरभिमानको एकार्थ हुँदैन, तर जो मनमा दीन हुन्छ, त्यसलाई सन्तोष कहिल्यै हुँदैन। यसकारण यो कुरा ठीक होइन। 'आकाश र पृथ्वी बितेर गएपछि व्यवस्था पनि बितेर जाने' यस्तो अनित्य व्यवस्था मनुष्यहरूको हुन्छ, सर्वज्ञ ईश्वरको हुँदैन। अनि 'यी आज्ञालाई नमान्ने चाहिं स्वर्गमा सबैभन्दा सानो गनिनेछ' भन्ने कुरा त प्रलोभन र भयमात्र देखाएको हो॥ ६७॥

६८. हाम्रो दिनभरिको भोजन आज हामीलाई दिनुहोस्॥ आफ्नो निम्ति पृथ्मीमा धन–सम्पत्ति नथुपार॥

—इं० मत्ती० पर्व ७। आ० ११,१९॥

समीक्षक—यसबाट 'ईसाको जन्म समयमा मानिसहरू जङ्गली र दरिद्र थिए तथा ईसा पनि त्यस्तै दरिद्र थियो' भन्ने बुझिन्छ। यसैकारण त दिनभरिको भोजनको प्राप्तिका लागि ईश्वरसँग प्रार्थना गर्दछ र गर्न सिकाउँछ। यसै हो भने, ईसाईहरू धनसञ्चय किन गर्दछन्? उनीहरूले ईसाको वचन विरुद्ध नचलेर सबै दान–पुण्य गरेर दरिद्र हुनुपर्ने हो॥ ६८॥

६९. मलाई प्रभु, प्रभु भन्ने सबै स्वर्गको राज्यमा पस्न पाउनेछैन॥

—इं० मत्ती० प० ७। आ० २१॥

समीक्षक—अब विचार गरौं, ठूला–ठूला पादरी विसप साहेब र कृश्चियनहरू ईसाको वचनलाई सत्य सम्झन्छन् भने ईसालाई प्रभु अर्थात् ईश्वर कहिल्यै भन्नु नहुने हो। यसकुरालाई मान्दैनन् भने पापबाट कहिल्यै बच्नसक्नेछैनन्॥ ६९॥

७०. त्यो दिन धेरैले मलाई भन्नेछन्॥ अनि म तिनीहरूलाई खुल्लमखुल्ला भन्नेछु, "मैले तिमीहरूलाई कहिल्यै चिनेकै छैन॥ ए अधम काम गर्नेहरू हो, मबाट टाढा जाओ"॥

—इं० मत्ती० प० ७। आ० २२,२३॥

समीक्षक—हेर, जङ्गली मानिसहरूलाई विश्वास दिलाउनका लागि ईसा स्वर्गमा न्यायाधीश बन्न चाहन्थ्यो। यो त केवल सोझा मानिसहरूलाई प्रलोभन दिने कुरा हो॥ ७०॥

७१. औ एउटा कोरीले उहाँकहाँ आएर यसो भनी प्रणाम गर्‍यो, "हे प्रभु, तपाईंको इच्छा भए मलाई शुद्ध गर्न सक्नुहुन्छ"॥ उहाँले यसो भन्दै हात पसारेर त्यसलाई छुनुभयो, "म इच्छा गर्छु, तिमी शुद्ध

भइजाऊ''। औ तुरुन्तै त्यसको कोर शुद्ध भइगयो॥

—इं० मत्ती० प० ८। आ० २,३॥

समीक्षक—यी सबै सोझा मानिसलाई फँसाउने कुरा हुन्। किनकि ईसाईहरू यी विद्या, सृष्टिक्रम विरुद्ध कुरालाई सत्य मान्दछन् भने पुराण र महाभारत आदिमा लेखिएका शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदिका कथालाई किन मिथ्या बताउँछन्? जस्तै—अनेक दैत्यहरूको मरेको सेनालाई ब्युँताइदिए। बृहस्पतिका पुत्र कचलाई टुक्रा–टुक्रा पारेर जनावर र माछा आदिलाई खुवाए, फेरि पनि शुक्राचार्यले ब्युँताइदिए। पछि कचलाई मारेर शुक्राचार्यलाई खुवाए, फेरि पनि कचलाई पेटमै ब्युँताएर बाहिर निकाले। आफू मरेर उनलाई चाहिं कचले ब्युँताए। तक्षकबाट मनुष्यसहित वृक्ष भस्म भएपछि कश्यप ऋषिले वृक्ष र मनुष्यलाई फेरि जीवित तुल्याए। धन्वन्तरिले लाखौं मुर्दालाई ब्युँताए। लाखौं कोरी आदि रोगीलाई स्वस्थ पारे। लाखौं अन्धा र बहिरालाई आँखा र कान दिए, आदि कुरा झूटा हुन् भने ईसाको कुरा झूटो किन होइन? अनि अरूका कुरालाई झूटा र आफ्ना कुरालाई चाहिं साँचा बताउने व्यक्ति हठी किन होइन? यसकारण ईसाईहरूका कुरा केवल हठका र अल्लारे केटाहरूका जस्तै हुन्॥ ६१॥

७२. तब भूतहरूले ग्रस्त पारेका दुईजनाले चिहानबाट निस्केर उहाँलाई भेट गरे, जो यति डरलाग्दा थिए कि कोही पनि त्यहाँबाट ओहोर–दोहोर गर्न सक्तैनथे॥ औ तिनीहरू यसो भन्दै चिच्याए, ''हे परमेश्वरका पुत्र, हाम्रो तिमीसँग के सरोकार? के तपाईं बेला नपुग्दै हामीलाई सताउन यहाँ आउनुभएको हो?''॥ औ भूतहरूले उहाँलाई यसो भनेर बिन्ति गरे, ''यदि तपाईंले हामीलाई निकाल्नुहुन्छ भने, हामीलाई सुँगुरको बगालमा पठाइदिनुहोस्''॥ अनि उहाँले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, ''जाओ।'' तब तिनीहरू निस्केर सुँगुरहरूमा पसे। अब हेर, सुँगुरको जम्मै बगाल बेगसित भीरतिरबाट समुद्रमा दगुरे, र पानीमा नष्ट भए॥ —इञ्जील, मत्ती, प० ८। आ० २८,२९,३१,३२॥

समीक्षक—यहाँ अलिकति विचार गरौं भने यी सबै कुरा झूटा हुन्। किनकि मरेको मनुष्य चिहानबाट कहिल्यै निस्कन सक्तैन। ती न त कतै जान्छन्, न कुराकानी नै गर्दछन्। यी सबै अज्ञानीहरूका कुरा हुन्। महाजङ्गलीहरू नै यस्ता कुरामा विश्वास गर्दछन्। अनि ती सुँगुरहरूको हत्या गरायो। सुँगुरका मालिकको नोक्सानी गरेको पाप ईसालाई लाग्यो होला। अनि ईसाईहरू ईसालाई पाप क्षमा गर्ने र पवित्र

गर्ने मान्दछन् भने ती भूतहरूलाई किन पवित्र गर्न सकेन? अनि सुँगुरमालिकहरूको नोक्सानीको पूर्ति किन गरेन? हिजोआजका सुशिक्षित ईसाई अंग्रेजहरू के यी गफहरूलाई पनि मान्छन् होला र? मान्दछन् भने ती पनि भ्रमजालमै परेका छन्॥ ७२॥

७३. औ, मानिसहरूले खाटमा पल्टिरहेको एक जना पक्षवात भएको बिरामीलाई उहाँकहाँ ल्याए। येशुले तिनीहरूको विश्वास देखेर पक्षवातीलाई भन्नुभयो, ''हे पुत्र, साहस गर। तिम्रा पाप तिमीलाई क्षमा भयो''॥ ''म धर्मीलाई होइन, तर पापीहरूलाई बोलाउन आएँ''॥

—इं० मत्ती० प० ९। आ० २,१३॥

समीक्षक—यो कुरा पनि अघि लेखेजस्तै असम्भव छ। अनि पाप क्षमा गर्ने कुरा पनि मात्र सोझा साझा मानिसहरूलाई प्रलोभन दिएर फँसाउँन हो। एउटाले पिएको मद्य=जाँड, रक्सी आदि या भाँङ् अथवा खाएको अफीमको नशा अर्कोलाई लाग्न नसके जस्तै कसैले गरेको पाप अरू कसैको नजिक जाँदैन। त्यो त जसले गर्दछ, त्यसैले भोग्दछ। यही ईश्वरको न्याय हो। एउटाले गरेको पाप पुण्य अर्कालाई प्राप्त हुने, अथवा न्यायाधीशले आफैं लिने, या कर्त्तालाई नै यथायोग्य फल ईश्वरले नदिने भए, ईश्वर अन्यायकारी हुनेछ। हेर, ईसा वा अरू कोही होइन, धर्म नै कल्याणकारी हो। अनि धर्मात्माहरूका लागि ईसा आदिको केही आवश्यकता पनि छैन। अनि पापीहरूका लागि पनि कसैको आवश्यकता छैन, किनकि कसैको पाप छुट्न सक्तैन॥ ७३॥

७४. अनि उहाँले (येसुले आफ्ना बाह्र चेलाहरूलाई बोलाएर अशुद्ध आत्माहरू निकाल्ने र हरेक किसिमका रोग र बिमारहरू निको पार्ने अधिकार तिनीहरूलाई दिनुभयो॥ बोल्ने तिमीहरू हुनेछैनौ, तर तिनीहरूका पिताका आत्मा तिमीहरूमा भएर बोल्नुहुनेछ॥ म पृथ्वीमा मेल गराउन आएको हुँ भनी नसम्झ। मेल गराउनालाई ता होइन, तर तरवार चलाउनालाई म आएको हुँ॥ किनकि म मानिसलाई उसको बाबुको विरुद्धमा, र छोरीलाई उसकी आमाको विरुद्धमा, र बुहारीलाई उसकी सासूको विरुद्धमा अलग गराउन आएँ। मानिसका शत्रु ता उसको आफ्ना परिवार भित्रकैहरू हुनेछन्॥

—इं० मत्ती० प० १०। आ० १,२०,३४,३५,३६॥

समीक्षक—यी तिनै शिष्य हुन्, जसमध्ये एउटाले तीस रूपैयाँको लोभमा ईसालाई पक्राउमा पार्नेछ, अरू भने बदलेर छुट्टाछुट्टै भाग्नेछन्। भूत आउने वा निस्कने या निकाल्ने, औषधि वा पथ्यविना नै रोग–

व्याधि निको हुने आदि कुरा विद्याविरुद्ध मात्र नभइ सृष्टिक्रमअनुसार असम्भव पनि हुन्। यसकारण यस्ता–यस्ता कुरा मान्नु अज्ञानीहरूको काम हो। जीव बोल्ने होइन र ईश्वर बोल्ने हो भने जीव चाहिं के काम गर्दछन् त? अनि सत्यभाषण वा मिथ्याभाषणको फल सुख वा दुःखलाई ईश्वर नै भोग्दो हो, यो पनि एउटा मिथ्या कुरा हो। अनि जसरी ईसा फुट हाल्न र लडाउँन–भिडाउँन आएको थियो, मानिसहरूमा त्यही कलह आज चलिरहेछ। यो कति ठूलो गलत कुरा हो कि फूट हाल्नाले मानिसहरूलाई ठूलो दुःख हुन्छ र ईसाईहरूले यसैलाई गुरुमन्त्र सम्झेजस्तो छ। किनकि एक–अर्काको फुटलाई ईसा नै ठीक सम्झन्थ्यो भने यिनीहरू (ईसाई) किन नमान्दा हुन् र? घरका व्यक्तिहरूलाई घरैका व्यक्तिहरूको शत्रु बनाउने काम ईसाकै हुँदो हो, यो श्रेष्ठ पुरुषको काम त होइन॥ ७४॥

७५. येसुले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, ''तिमीहरूसित कतिवटा रोटी छन्?'' तिनीहरूले भने, ''सातवटा र अलिकता ससाना माछाहरू''॥ अनि उहाँले भीडलाई भुइँमा बस्ने आज्ञा गर्नुभयो॥ र उहाँले ती सात रोटी र माछाहरू लिएर धन्यवाद चढाएपछि भाँचेर चेलाहरूलाई दिनुभयो, र चेलाहरूले भीडहरूलाई दिए॥ अनि तिनीहरू सबैले खाएर तृप्त भए, र उब्रेका टुक्राहरू तिनीहरूले सात टोकरी भरी उठाए॥ औ खानेहरू, स्त्रीहरू र केटाकेटीहरूबाहेक, चार हजार पुरुषहरू थिए॥

—इं० मत्ती० प० १५। आ० ३४–३८॥

समीक्षक—ल हेर! के यो हिजोआजका झूटा सिद्ध र मन्त्रजाली आदिको जस्तै छलको कुरा होइन? ती रोटीमा अरू रोटी कहाँबाट आयो? यदि ईसामा यस्तै सिद्धि भएको भए आफू भोकाएर डुम्रीको फल खान किन यताउति भौंतारिने गर्दथ्यो? आफ्नो निम्ति माटो, पानी र ढुङ्गा आदिबाटै मोहनभोग, हलुवा, रोटी आदि किन बनाएन? यी सबै कुरा केटाकेटीका खेलवाडका हुन्। जसरी कतिपथ साधु, वैरागीहरू यस्तै छलका कुरा गरेर सीधासादा मानिसहरूलाई ठग्ने गर्दछन्, त्यस्तै यी पनि हुन्॥ ७५॥

७६. र त्यसबेला उसले हरेक मानिसलाई त्यसको कर्मअनुसार प्रतिफल दिनेछ॥

—इं०, मत्ती० प० १६। आ० २७॥

समीक्षक—कर्मानुसार फल दिइनेछ भने ईसाईहरूले पाप क्षमा हुने उपदेश गर्नु गलत हो, अनि त्यो (पाप क्षमा) साँचो हो भने यो (कर्मानुसार फलको) कुरा झूटो ठहर्नेछ। अनि कसैले 'क्षमा गर्न

योग्य क्षमा गरिन्छन् र क्षमा गर्न योग्य छैनन् भने क्षमा गरिंदैनन्' भन्छ भने पनि यो कुरा ठीक हुनेछैन। किनकि सबै कर्मको यथायोग्य फल दिनाले नै न्याय र पूर्ण दया हुन्छ॥ ७६॥

७७. ''ए अल्पविश्वासी र अटेरी मानिस हो!॥ म तिमीहरूलाई साँच्चै भन्दछु, कि तिमीहरूमा एउटा रायोको गेडाजति विश्वास भएदेखि यस डाँडालाई 'यहाँबाट हटिजा' भन्यौ भने त्यो हटिजानेछ, र तिमीहरूलाई केही असम्भव हुनेछैन''॥

—इं० मत्ती० प० १७। आ० १७,२०॥

समीक्षक—ईसाईहरू 'हाम्रो मतमा आओ, पाप क्षमा गराओ, मुक्ति पाओ' आदि जुन उपदेश गर्दै फिर्दछन् त्यो सबै मिथ्या कुरा हो। किनकि ईसामा पाप छुटाउने विश्वास जमाउने र पवित्र गर्ने सामर्थ्य भएको भए आफ्ना शिष्यका आत्माहरूलाई निष्पाप विश्वासी पवित्र किन गर्दैन? अब ईसासँगसँगै डुल्नेहरूलाई नै शुद्ध, विश्वासी र कल्याणकारी बनाउन सकेन भने ऊ मरेपछि त न जाने कहाँ छ? अब कसैलाई पनि पवित्र गर्न सक्नेछैन। ईसाका चेलाहरू रायोको गेडाजत्ति पनि विश्वासरहित थिए, र उनीहरूले यो इञ्जिल पुस्तक बनाएका हुन् भने यसको प्रमाण हुनसक्तैन। किनकि कल्याण चाहने मनुष्यहरूले अविश्वासी, अपवित्र–आत्मा भएका, अधर्मी मनुष्यको लेखमाथि विश्वास गर्दैनन्। अनि यसैबाट 'ईसाको यो वचन साँचो हो भने कुनै ईसाईमा एउटा रायोको गेडो जत्तिको पनि विश्वास अर्थात् ईमान छैन' भन्ने पनि सिद्ध हुनसक्तछ। अनि कसैले 'हामीमा पूरै वा थोरै विश्वास छ' भन्छ भने ऊसँग 'तिमी यस पहाडलाई बाटोबाट हटाइदेऊ' भन्नुपर्दछ। उसले हटाउनाले हट्तछ भने पनि पूर्ण विश्वास नभएर एउटा रायोको गेडोजत्तिको विश्वास भएको ठहर्दछ। अनि हटाउन नसकेमा ईमान वा धर्मको एक थोपो विश्वास पनि ईसाईहरूमा छैन भन्ने बुझ्नुपर्दछ। अनि कसैले यस प्रसङ्गमा अभिमान आदि दोषहरूको नाम पहाड हो भन्दछ भने पनि ठीक होइन। किनकि यसो हो भने मुर्दा, अन्धा, कोढी, भूतग्रस्त आदिलाई ठीक गर्नु पनि अल्छी, विषयी र भ्रान्तहरूलाई बोध गरेर सचेत कुशल गरेको हुनेछ। अनि यसो माने पनि ठीक हुनेछैन किनकि यसो भएको भए आफ्ना शिष्यहरूलाई यस्तो किन गर्न सक्तैन? यसकारण असम्भव कुरा भन्नु ईसाको अज्ञानको द्योतक हो। आखिर ईसामा केही पनि विद्या भएको भए यस्ता उटपटांग जङ्गलीपनका कुरा किन पो भन्ने थियो र? तैपनि '**यत्र देशे द्रुमो**

नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते' कुनै पनि वृक्ष नभएको ठाउँमा अरिणको वृक्ष नै सबैभन्दा ठूलो र राम्रो मानिएजस्तै महाजङ्गली देशमा ईसा भएको कुरा ठीक थियो। तर हिजोआज ईसाको के गणना हुनसक्तछ र?॥७७॥

७८. म तिमीहरूलाई साँचो भन्दछु, तिमीहरू बदलिएर साना बालकहरू जस्ता भएनौ भने कुनै रीतिले स्वर्गको राज्यमा पस्नेछैनौ॥

—इं० मत्ती० प० १८। आ० ३॥

समीक्षक—आफ्नै इच्छाले मन बदल्नु स्वर्गको कारण र नबदल्नु नरकको कारण हो भने कसैको पापपुण्यलाई कसैले कहिल्यै लिनसक्तैन भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। अनि बालकजस्तै हुनुपर्ने कुराको लेखबाट 'ईसाका धेरैजसो कुरा विद्या र सृष्टिक्रमका विरुद्ध थिए भन्ने समेत बुझिन्छ र उसको मनमा यो पनि शंका थियो कि उसका कुरालाई बालकले जस्तै सबैले मानिहालून्, कसैले केही पनि सोधपुछ केही नगरून्, आँखा चिम्लेर जस्ताकोतस्तै स्वीकार गरून्। धेरैजसो ईसाईहरूको चेष्टा बालबुद्धिजस्तै पनि देखिन्छ। नत्रभने यस्ता युक्ति र विद्याका विपरीत कुरा किन मान्दथे र? अनि ईसा आफैं विद्याहीन, बालकजस्तै बुद्धि भएको नभएको भए अरूलाई किन बालकजस्तै बन्ने उपदेश दिन्थ्यो र? भन्ने कुरा पनि सिद्ध हुन्छ। किनकि जो जस्तो हुन्छ, ऊ अर्कालाई पनि आफूजस्तै बनाउन चाहन्छ॥७८॥

७९. म तिमीहरूलाई साँच्चै भन्दछु, धनी मानिस स्वर्गको राज्यमा कठिनसित पस्नेछ॥ अनि फेरि म तिमीहरूलाई भन्दछु, धनी मानिसलाई परमेश्वरको राज्यभित्र पस्नुभन्दा बरु ऊँटलाई सियोको नाथ्रीबाट छिर्न सजिलो हुनेछ॥ —इं० मत्ती० प० १९। आ० २३,२४॥

समीक्षक—यसबाट ईसा दरिद्र थियो भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। धनवान् व्यक्ति उसको मानप्रतिष्ठा नगर्दा हुन्, यसैले यसो लेखेको होला। तर यो कुरा सत्य होइन। असल काम गर्नेले राम्रो र खराब काम गर्नेले नराम्रो फल पाउँछ। अनि यसबाट 'ईसा ईश्वरको राज्यलाई सर्वत्र नभएर कुनै एउटा देश वा ठाउँमा मान्दथ्यो' भन्ने कुरा पनि सिद्ध हुन्छ। यसो हो भने त्यो ईश्वर नै होइन। अनि ईश्वर हो भने उसको राज्य सर्वत्र छ। फेरि उसमा प्रवेश गर्ने वा नगर्ने कुरा भन्नु अविद्याको कुरा मात्र हो। अनि यसबाट यो कुरा पनि सोच्नुपर्ने हुन्छ कि जतिपनि ईसाई धनाढ्य छन्, के ती सबै नरकमा नै जानेछन्? अनि दरिद्र जति सबै स्वर्गमा जानेछन्? ईसामसीले अलिकति त विचार गरेको भए

हुन्थ्यो कि धनाढ्य व्यक्तिहरूसँग जति सामग्री हुन्छ त्यति दरिद्रसँग हुँदैन। धनाढ्यहरूले विवेकपूर्वक धर्ममार्गमा खर्च गरेमा ती धनाढ्य उत्तम गति प्राप्त गर्न सक्तछन् भने दरिद्र चाहिं नीच गतिमै पहिरहने अवस्था आउँन सक्तछ॥७९॥

८०. येसुले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, 'म तिमीहरूलाई साँच्चै भन्दछु, तिमीहरू, जो मेरोपछि लागेका छौ, नयाँ सृष्टिमा जब मानिसको पुत्र आफ्ना महिमाको सिंहासनमा बस्नेछ, तब तिमीहरू पनि इस्राएलका बाह्र कुलमाथि इन्साफ गर्दै बाह्रै सिंहासनमा बस्नेछौ॥ औ जस-जसले मेरो नाउँको निम्ति घर, दाजू-भाइ, कि दिदी-बहिनी, अथवा बाबु-आमा, कि छोरा-छोरीहरू, कि जग्गा-जमिनहरू छोड्छ, त्यसले सयगुणा पाउनेछ, र अनन्त जीवनको अधिकार गर्नेछ'॥

—इं० मत्ती० प० १९। आ० २८,२९॥

समीक्षक—ल हेर, येसुको भित्री सोच मरेपछि पनि मानिस मेरो जालबाट निस्कन नपाऊन् भन्ने रहेछ। अनि जसले तीस रूपैयाँको लोभले आफ्ना गुरुलाई पक्राउमा पारेर मार्न लगायो, त्यस्ता पापी पनि उसँग सिंहासनमा बस्नेछन्। अनि इस्राएलका कुलको न्याय नगरी पक्षपात गरेर उनीहरूका सब गुनाह अपराध माफ र अरू कुलको भने न्याय गरिनेछ। अनुमान छ कि यसैकारण ईसाईहरू ईसाईहरूको धेरै पक्षपात गरेर कुनै गोराले कुनै कालालाई मारेकै भएपनि प्रायः पक्षपात गरेर निरपराधी बताएर छोड्ने गर्दछन्। ईसाको स्वर्गको न्याय पनि यस्तै हुँदो हो। अनि यसबाट ठूलो दोष आइपर्दछ। किनकि एउटा सृष्टिको आदिमा मर्यो र अर्को कयामतको राततिर मर्यो भने एउटा आदिदेखि अन्त्यसम्म 'नजाने कहिले न्याय हुनेछ'? भन्ने आशामै परिरह्यो भने अर्काको न्याय त्यसैबखत भैहाल्यो। यो कति ठूलो अन्याय हो? जो नरकमा जानेछ, त्यो अनन्तकालसम्म नरक भोग्नेछ भने स्वर्गमा जानेले चाहिं सदा स्वर्ग भोग्नेछ। यो पनि ठूलो अन्याय हो, किनकि अन्त्ययुक्त साधन र कर्महरूको फल अन्त्ययुक्त नै हुनुपर्दछ। अर्को कुरा, दुईवटा जीवका पाप वा पुण्य समान कहिल्यै हुनसक्तैन। यसकारण तारतम्यले धेर-थोर सुख-दुःखयुक्त अनेक स्वर्ग र नरक भएमात्र कर्मानुसार सुख-दुःख भोग्न सक्तछन्। तर ईसाईहरूका पुस्तकमा कतै व्यवस्था छैन। यसकारण न त कहिल्यै यो पुस्तक ईश्वरकृत र न ईसा ईश्वरको पुत्र नै हुनसक्तछ। यो ठूलो अनर्थको कुरा हो कि कसैका पनि सयसय आमाबाबु कहिल्यै हुन सक्तैनन्, तर एउटाको

एउटी आमा र एउटै बाबु हुन्छ। (अनि आमा बाबुलाई छोड्नाले सयगुणा अर्थात् सय-सय आमाबाबु कसरी प्राप्त गर्न सक्तछ?) मुसलमानहरूले 'बहिस्त=स्वर्गमा बहत्तर स्त्री पाइन्छन्' भन्ने लेखेकोछ, यो पनि त्यहींबाट लिएको होला भन्ने अनुमान छ॥ ८०॥

८१. बिहान सहरतिर फर्कनुहुँदा उहाँ भोकाउनुभयो॥ औ बाटोको किनारमा नेभाराको एउटा रूख देखेर त्यहाँ आउनुभयो। तर त्यसमा पातबाहेक अरू केही पाउनुभएन। तब उहाँले त्यसलाई भन्नुभयो, "अब उप्रान्त तँबाट कहिल्यै पनि फल नफलोस्" औ त्यो नेभाराको रूख तुरुन्तै ओइलायो॥ —इं० मत्ती० प० २१। आ० १८,१९॥

समीक्षक—सबै ईसाई पादरीहरू 'ऊ (येसु) बडो शान्त, क्षमान्वित र क्रोधादि दोषरहित थियो' भन्दछन्, तर यो कुरा देख्ता 'येसु त बडो क्रोधी र ऋतुको ज्ञान नभएको रहेछ र जङ्गली मानिसको स्वभावअनुसार पो व्यवहार गर्दथ्यो' भन्ने ज्ञान हुन्छ। आखिर जुन वृक्ष जड पदार्थ हो, त्यसको के अपराध थियो र त्यसलाई सराप्यो र त्यो सुक्यो? उसको श्रापले त सुकेको होइन, तर कुनै त्यस्तो सुकाउने औषधि हाल्नाले सुकेको भए आश्चर्य छैन॥ ८१॥

८२. तर ती सङ्कटका दिनको तुरुन्त पछि सूर्य अँध्यारो हुनेछ, र जूनले आफ्नो चमक दिनेछैन, र ताराहरू आकाशबाट खस्नेछन्, तथा स्वर्गका शक्तिहरू डगमगाउनेछन्॥ —इं० मत्ती० प० २४। आ० २९॥

समीक्षक—वा! जी ईसा! तारा खस्नेछन् भन्ने कुरा तिमीले कुन विद्याद्वारा जान्यौ? अनि स्वर्गका ती कुन शक्ति हुन्, जो डगमगाउनेछ? ईसाले कहिल्यै अलिकति पनि विद्या पढेको भए 'यी तारा त सबै भूगोल हुन्, कसरी खस्नेछन् र?' भन्ने कुरा अवश्य जान्दो थियो। यसबाट 'ईसा सिकर्मीको कुलमा जन्मेको थियो' भन्ने बुझिन्छ। सधैं काठ चिर्ने, ताछ्ने, काट्ने र जोड्ने काम गर्नेगर्दो हो। जब 'म पनि यस जङ्गली देशको पैगम्बर हुनसक्नेछु' भन्ने तरङ्ग उठ्यो, अनि कुरा गर्न थाल्यो। उसको मुखबाट कतिपय कुरा असल पनि निस्किए भने धेरैजसो चाहिं खराब कुरा थिए। त्यहाँका मनुष्य जङ्गली थिए, उसका कुरा माने। युरोप देश आजकै जस्तो उन्नतियुक्त त्यसबखत भएको भए यसको (येसुको) केही पनि सिद्धपना चल्ने थिएन। अब केही विद्याको उन्नति भएपछि पनि व्यवहारको जटिलता र हठका कारण यस पोल मतलाई छोड्दैनन् र सर्वथा सत्य वेदमार्गतर्फ लाग्दैनन्, यही यिनीहरूमा कमी छ॥ ८२॥

८३. स्वर्ग र पृथ्वी बितेर जानेछ, तर मेरो वचन चाहिं बितेर जानेछैन। —इं० मत्ती० प० २४। आ० ३५॥

समीक्षक—यो पनि अविद्या र मूर्खताकै कुरा हो। आखिर, आकाश बितेर कहाँ जानेछ? आकाश अतिसूक्ष्म हुनाले आँखाले देखिंदैन भने यो हल्लिएको कसले देख्नसक्तछ। अनि आफ्नै मुखले आफ्नै प्रशंसा गर्नु असल मनुष्यको काम होइन॥ ८३॥

८४. त्यसपछि उनले देब्रे हातपट्टिकाहरूलाई भन्नेछन्, "ए श्रापित हो, मबाट टाढा भई सैतान र त्यसका दूतहरूका लागि तयार गरिएको अनन्त आगोमा जाओ"॥ —इं० मत्ती० प० २५। आ० ४१॥

समीक्षक—आफ्ना शिष्यलाई स्वर्ग र अरूलाई अनन्त आगोमा खसाल्नु यो कति ठूलो पक्षपातको कुरा हो? तर अनन्त आकाश नै नरहने कुरा लेखेकोछ भने अनन्त आगो, नरक, बहिस्त कहाँ रहनेछन्? ईश्वरले शैतान र उसका दूत नबनाएको भए यत्तिको नरकको तयारी किन गर्नुपर्थ्यो र? अनि एउटा सैतान नै ईश्वरको भयले भयभीत भएन भने यो ईश्वर नै के हो र? किनकि उसैको दूत भएर विरोधी भयो, अनि पहिले नै ईश्वरले उसलाई समातेर खोरमा हाल्न सकेन, मार्न सकेन भने उसको ईश्वरता नै के भयो र? जसले येसुलाई पनि चालीस दिन दु:ख दियो, येसुले पनि उसको केही बिगार्न सकेन भने ईश्वरको पुत्र हुनु व्यर्थै भयो। यसकारण न त येसु ईश्वरको पुत्र र न बाइबलको 'ईश्वर' ईश्वर नै हुनसक्तछ॥ ८४॥

८५. तब बाह्रमध्ये एकजना यहुदा इस्करयोती भन्ने चाहिं मुख्य पुजारीहरूकहाँ गयो॥ र उसले भन्यो, तपाईहरू मलाई के दिनुहुन्छ? म उहाँलाई तपाईहरूका हातमा सुम्पिदिनेछु। औ तिनीहरूले त्यसलाई चाँदीका तीस टुक्रा दिने बन्दोबस्त मिलाए॥

—इं० मत्ती प० २६। आ० १४,१५॥

समीक्षक—ल हेर, येसुको सबै चमत्कार र ईश्वरता यहाँ नाङ्गियो। किनकि उसको प्रधान शिष्य नै पनि उसको साक्षात् संगतबाट पवित्रात्मा भएन भने, ऊ अरूलाई सो पनि मरेपछि पवित्रात्मा बनाउन सक्नेछ त? अनि कतिपय ऊप्रति विश्वास राख्नेहरू उसको विश्वासमा कति ठगिंदा हुन्? किनकि जसले साक्षात् सम्बन्धमा शिष्यको केही कल्याण गरेन, त्यसले मरेपछि कसैको कल्याण गर्न सक्नेछ त?॥ ८५॥

८६. अब तिनीहरूले खाइरहेको बेलामा येसुले रोटी लिएर आशीर्वाद दिई भाँच्नुभयो, र चेलाहरूलाई दिएर भन्नुभयो, 'लेओ,

खाओ, यो मेरो शरीर हो'॥ तब कचौरा पनि लिएर धन्यवाद दिंदै उहाँले तिनीहरूलाई यसो भनेर दिनुभयो, 'तिमीहरू सबैले यसबाट पिओ॥ किनभने यो नयाँ करारको मेरो रगत हो'॥

—इं० मत्ती० प० २६। २६–२८॥

समीक्षक—आखिर के यस्ता कुरालाई पनि कसैले पनि सभ्य बताउने छ त? अविद्वान्, जङ्गली मनुष्यबाहेक कसैले पनि शिष्यहरूसँग खानेकुरालाई आफ्नो मासु र पिउने पदार्थलाई आफ्नो रगत कहिल्यै भन्नसक्तैन। अनि यसै कुरालाई हिजोआजका ईसाईहरू 'प्रभुभोजन' भन्दछन्। अर्थात् खाने–पिउने कुरामा ईसाको मासु र रगतको भावना गरेर खाने–पिउने गर्दछन्, यो कति खराब कुरा हो? जसले आफ्ना गुरुको मासु–रगतलाई पनि खाने–पिउने भावनाबाट त्यागेनन् भने, अरूलाई कसरी छोड्न सक्तछन् र?॥ ८६॥

८७. औ आफूसित पत्रुस र जब्दीका दुई छोराहरूलाई लिएर शोकित र अति खिन्न हुनलाग्नुभयो॥ तब उहाँले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, मेरो प्राण मरणान्त अति शोकित भएको छ॥ तब उहाँ अलि अगाडि गएर घोप्टो पर्नुभयो, र यसो भनेर प्रार्थना गर्नुभयो, 'हे मेरा पिता, हुनसक्छ भने, यो कचौरा मबाट हटिजाओस्'॥

—इं० मत्ती० प० २६। आ० ३७–३९॥

समीक्षक—ल हेर, ऊ केवल मनुष्य नभएर ईश्वरको पुत्र, त्रिकालदर्शी र विद्वान् भएको भए यस्तो अयोग्य चेष्टा गर्नेथिएन। यसबाट ईसाले अथवा उसका चेलाले 'ऊ ईश्वरको पुत्र, भूत–भविष्यत्को वेत्ता र पाप क्षमाकर्त्ता हो' भन्ने झूटो प्रपञ्च बनाएका हुन् भन्ने कुरा स्पष्ट बुझिन्छ। यसबाट 'ऊ त केवल साधारण सोझो अल्लारे अविद्वान् व्यक्ति थियो, न त ऊ विद्वान्, न योगी, न सिद्ध थियो' भन्ने कुरा सम्झनुपर्दछ॥ ८७॥

८८. उहाँ बोल्दैहुनुहुन्थ्यो, हेर, बाह्रमध्येको एकजना अर्थात् यहुदा, र त्यसको साथमा मुख्य पुजारीहरू र जनताका बूढा प्रधानहरूको एउटा ठूलो भीड तरवार र लाठा लिएर आयो॥ उहाँलाई पक्राइदिनेले एउटा यस्तो इसारा तिनीहरूलाई दिएको थियो, कि जसलाई म म्वाइँ खाउँला, तिनै हुन्, तिनैलाई समात॥ त्यसले झट्टै येसुकहाँ आएर भन्यो, 'हे गुरु सलाम'। र उहाँलाई म्वाइँ खायो॥ तब तिनीहरूले नजिक आएर येसुमाथि हात हाले, र उहाँलाई पक्रे॥ तब सबै चेलाहरू उहाँलाई छोडेर भागे॥ आखिरमा दुई जना अगि सरेर आए॥ र भने, 'यस

मानिसले म परमेश्वरको मन्दिर भत्काउन र तीन दिनमा बनाउन सक्छु' भन्थ्यो॥ तब प्रधान पुजारीहरूले जुरुक्क उठेर उहाँलाई भने, 'के तँ केही जवाफ दिंदैनस्? यी गवाहीहरूले तेरो विरुद्धमा दिएको गवाही के हो?'॥ तर येसु चूप रहनुभयो, औ प्रधान पुजारीले उहाँलाई भने, 'म जीवित परमेश्वरको नाममा तँलाई भन्दछु, हामीलाई भन्, तँ परमेश्वरको पुत्र ख्रीष्ट होस् कि होइनस्?' येसुले तिनलाई भन्नुभयो, 'तपाईले नै भनिहाल्नुभयो'॥ तब प्रधान पुजारीले आफ्ना लुगा यसो भनेर च्याते, 'यसले ता ईश्वर–निन्दा गरिरहेछ, बस्, हामीलाई अब अरू साक्षीको के दर्कार पर्यो र? हेर, अब तिमीहरूले नै ईश्वर–निन्दा सुनिहाल्यौ॥ तिमीहरूको के राय छ?' तिनीहरूले जवाफ दिएर भने, 'यो प्राणदण्डको योग्य छ'॥ तब तिनीहरूले उहाँको मुखमा थुकेर उहाँलाई मुक्का लगाए, औ कसै कसैले यसो भन्दै झापड़ले हिर्काए॥ हे ख्रीष्ट, लौ अगमवाणीद्वारा भन्, तँलाई हिर्काउने को हो?॥ पत्रुस चाहिं बाहिर चोकमा बसिरहेका थिए। औ एउटी नोकर्नीले तिनीकहाँ आएर यसो भनी, 'तिमी पनि गालीलका येसुसितै थियौ?' तर तिनले उनीहरू सबैका सामु इन्कार गरेर भने, 'तँ के भन्छेस्, म जान्दिनँ'॥ औ तिनी बाहिर दलानमा निस्केपछि अर्कीले तिनलाई देखी, र त्यहाँ भएकाहरूलाई भनी, 'यी मानिस पनि येसु नासरीसितै थिए'॥ औ फेरि तिनले शपथ खाएर इन्कार गरे, 'म ती मानिसलाई चिन्दिनँ'॥ तब तिनले धिक्कार्दै यसो भनेर शपथ खानलागे, 'म ती मानिसलाई चिन्दै चिन्दिनँ'॥

—इञ्जील, मत्ती० प० २६। आ० ४७–५०,५६,६१–७२,७४॥

समीक्षक—ल हेर, उसमा आफ्ना चेलालाई दृढ विश्वासी बनाउन र प्राणै गएपनि ती चेलाले आफ्ना गुरुलाई लोभले पक्राउमा नपार्ने, इन्कार नगर्ने, झूट नबोल्ने र झूटो शपथ नखाने बनाउन सक्ने जति पनि सामर्थ्य वा प्रताप थिएन। अनि येसु केही करामती=चमत्कारी पनि थिएन। जस्तै तौरेतमा लेखेको छ, 'लूतको घरमा पाहुनालाई मार्न धेरैजसो चढेर आए। त्यहाँ प्रभुका दुई दूत थिए। उनीहरूले उनैलाई अन्धा तुल्याइदिए'। हुन त त्यो कुरा पनि असम्भव हो, तर ईसामा त यति सामर्थ्य पनि थिएन। अनि हिजोआज ईसाईहरूले उसको नाममा कति ठूलो पाखण्ड चलाएका छन्। आखिर, यस्तो दुर्दशाले मर्नुभन्दा त शत्रुसमक्ष डटेर अथवा समाधि चढाएर, अरू कुनै किसीमले प्राण छोडेको भए बरु उचित हुन्थ्यो। तर विद्या नभइ त्यस्तो बुद्धि कहाँबाट

आउँथ्यो र ?॥८८॥

त्यो ईसा भन्न चाहिं यसो पनि भन्दछ—

८९. तिमी के ठान्दछौ, के म आफ्ना पितालाई बिन्ती गर्न सक्तिनँ, र के उहाँले मलाई बाह्र पल्टनभन्दा बढी स्वर्गदूतहरू अहिले जुटाइदिनुहुन्न र ?॥ —इं० मत्ती० प० २६। आ० ५३॥

समीक्षक—डर पनि देखाउँदैछ, आफ्नो र आफ्नो पिताको प्रशंसा पनि गर्दैछ, तर गर्न भने केही सक्तैन। आश्चर्यको कुरा त हेर, मुख्य पुजारीले 'यिनीहरू तेरो विरुद्ध साक्षी बकिरहेछन्, यसको उत्तर दे' भन्दा येसु चूप रह्यो। यो पनि येसुले ठीक गरेन। किनकि सत्य र तथ्य कुरा त्यहाँ अवश्य भनेको भए ठिकै हुन्थ्यो। बरु, यस्ता धेरैजसो आफ्नै घमण्डका कुरा गर्नु उचित थिएन। अनि येसुमाथि झुटा दोष लगाएर मार्नेहरूले पनि अनुचित गरेका हुन्। किनकि येसुको बारेमा जस्तो उनीहरूले गरे, त्यस किसिमको अपराध येसुको थिएन। तर उनीहरू पनि त जङ्गली थिए। न्यायको कुरालाई के बुझ्थे र? यदि येसुले झूट–मूट नै आफूलाई ईश्वरपुत्र न बताएको भए र पूजारीहरूले ऊसँग यस्तो गलत व्यवहार नगरेको भए, दुबैका लागि असल हुन्थ्यो। तर यति विद्या, धर्मात्मा र न्यायशीलता कहाँबाट ल्याउने र ?॥८९॥

९०. अब येसु बडाहाकिमका सामु उभिनुभयो र बडाहाकिमले उहाँलाई यसो भनेर सोधे, 'के तिमी यहूदीहरूका राजा हौ ?' येसुले भन्नुभयो, 'तपाई नै भन्नुहुन्छ'॥ अनि जब मुख्य पुजारीहरू र बूढा-प्रधानहरूले उहाँमाथि दोष लगाए, तब उहाँले केही जवाफ दिनुभएन॥ तब पिलातसले जहाँलाई भने, 'तिम्रो विरुद्धमा तिनीहरूले कति धेरै कुराहरूको गवाही दिंदैछन्, के तिमी सुन्दैनौ ?' तर उहाँले तिनलाई एक बातको पनि जवाफ दिनुभएन, यहाँसम्म कि बडाहाकिम साह्रै छक्क परे॥ पिलातसले तिनीहरूलाई भने, 'तब ख्रीष्ट भन्ने येसुलाई चाहिं म के गरूँ त ?' तिनीहरू सबैले भने, 'त्यो ता क्रूसमा टाँगियोस्'॥ येसुलाई कोर्रा लगाएर क्रुसमा टाँग्नलाई जिम्मा लगाइदिए॥ तब बडाहाकिमका सिपाहीहरूले येसुलाई महलमा लगेर जम्मै पल्टन भेला गराए॥ औ तिनीहरूले उहाँको वस्त्र फुकालेर उहाँलाई लालवस्त्र लगाइदिए॥ औ तिनीहरूले काँढाको मुकुट बनाएर उहाँको शिरमा लगाइदिए, र उहाँको दाहिने हातमा निगालो राखिदिए, र उहाँका सामु घुँडा टेकेर उहाँलाई यसोभन्दै गिज्याए, हे यहुदीहरूका राजा, सलाम॥ तब तिनीहरूले उहाँलाई थुकेपछि त्यो निगालो लिएर उहाँका शिरमा

हिर्काए। औ जब तिनीहरूले गिज्याइसके, तब त्यो वस्त्र फुकालिदिए, र उहाँको आफ्नै पोसाक पहिराएर उहाँलाई क्रुसमा टाँग्न लगे॥ औ जब तिनीहरू गलगथा भन्ने ठाउँमा आइपुगे, जसलाई खप्परे ठाउँ भन्दछन्॥ तब तिनीहरूले उहाँलाई पित्त मिसाएको दाखमद्य पिउन दिए, तर उहाँले चाखेर त्यो पिउन मन गर्नुभएन॥ औ तिनीहरूले उहाँलाई क्रुसमा टाँगे॥ औ उहाँको दोषपत्र तिनीहरूले उहाँको शिरदेखि मास्तिर टाँसिदिए॥ उहाँसँगै दुइजना डाँकूहरू क्रुसमा टाँगिएका थिए, एउटा उहाँको दाहिने हात पट्टि र अर्को देब्रेपट्टि॥ औ त्यहाँबाट आउने–जानेहरूले आफ्ना–आफ्ना शिर हल्लाएर उहाँलाई निन्दा गरे॥ र भने, 'ए मन्दिर भत्काउने, आफैंलाई बचा, औ तँ परमेश्वरको पुत्र होस् भने क्रुसबाट ओर्लेर आइज'॥ त्यसैगरी मुख्य पुजारीहरूले पनि, शास्त्रीहरू र बूढाप्रधानहरूले सँगसँगै गिल्ला गरेर भने॥ यसले अरूलाई ता बचायो, आफूलाई चाहिं बचाउन सक्तैन। यो इस्राएलको राजा हो भने अब क्रुसबाट तल ओर्ली आओस्, र हामी यसलाई विश्वास गरौंला॥ त्यसले परमेश्वरमाथि विश्वास राख्तछ, यदि उहाँले यसलाई चाहनुहुन्छ भने, उहाँले यसलाई अहिले छुट्कारा दिऊन्, किनकि यसले 'म परमेश्वरको पुत्र हुँ' भनी भन्थ्यो॥ अनि उहाँसँग क्रुसमा सँगै टाँगिने ती डाँकूहरूले पनि उहाँलाई यही किसिमका वचन लगाए॥ अब मध्य दिनदेखि तेस्रो पहरसम्म देशमा जतातत‍ै अन्धकार भयो॥ औ तेस्रो पहरतिर येसु यसो भनेर ठूलो स्वरले कराउनुभयो, ''एली, एली, लामा सबखथनी ?'' अर्थात्, हे मेरा परमेश्वर, हे मेरा परमेश्वर, तपाईले मलाई किन त्याग्नुभयो ?॥ त्यहाँ उभिएकाहरूमध्ये कुनैले यो सुनेर भने, 'यस मानिसले एलियालाई बोलाउँदैछ'। औ तिनीहरू मध्ये एकजनाले झट्टै दगुरेर गई एउटा स्पञ्ज लिई सिर्काले त्यो भरेर निगालोमा राखी उहाँलाई पिउन दियो॥ तब येसु फेरि ठूलो स्वरले कराउनुभयो र प्राण त्याग्नुभयो॥ —इञ्जिल, मत्ती० प० २७। आ० ११–१४,२२,२६–३१,३३–३५,३७–४८,५०॥

समीक्षक—ती दुष्टहरूले येसुसँग सर्वथा गलत काम गरे। तर येसुको पनि दोष छ। किनकि न त कोही ईश्वरको पुत्र, र न ऊ कसैको बाबु हो। किनकि ऊ कसैको बाबु भए, कसैको ससुरो, सालो, सम्बन्धी आदि पनि हुनुपर्ने छ। अनि मुख्य पुजारीले सोद्धा जे सत्य थियो, त्यही उत्तर दिनुपर्दथ्यो। अनि पहिले गरेका भनिएका आश्चर्य कर्म साँचा भएका भए अहिले पनि क्रुसबाट ओर्लेर सबैलाई आफ्नो

शिष्य बनाउनेथियो भन्ने कुरा चाहिं ठीक हो। अनि ऊ ईश्वरको पुत्र भएको भए ईश्वरले पनि उसलाई बचाउनेथियो। अनि ऊ त्रिकालदर्शी भएको भए सिर्कामा पित्त मिसाइएकोमा किन चिच्याएर छोड्थ्यो र? उसलाई त अघिदेखि नै थाहा हुँदोहो पित्त मिसाइएको छ भनेर। अनि ऊ करामती भए किन कराई–कराई प्राण त्याग्थ्यो र? यसबाट 'जतिसुकै चतुर्याइँ गरेपनि अन्त्यमा 'सत्य' सत्यै र 'झूट' झूटै हुन्छ' भन्ने कुरा बुझ्नुपर्दछ। यसबाट 'त्यसबखतका जङ्गली मनुष्यहरूमा येसु केही ठीक थियो' भन्ने पनि सिद्धभयो। तर ऊ न त करामती, न ईश्वरको पुत्र र न विद्वान् नै थियो। किनकि यस्तो भएको भए ऊ त्यस्तो दु:ख किन पो भोग्थ्यो र?॥ ९० ॥

९१. अनि हेर, ठूलो भुइँचालो गयो, किनकि परमप्रभुको एउटा दूत स्वर्गबाट तल ओर्लेर, र आएर ढुङ्गो गुडाएर त्यसमाथि बसे॥ उहाँ यहाँ हुनुहुन्न, किनकि उहाँले भन्नुभएबमोजिम उहाँको पुनरुत्थान भएको छ॥ उहाँका चेलाहरूलाई खबर दिनलाई दगुरे॥ अनि हेर, येसुले तिनीहरूलाई भेटेर भन्नुभयो, 'कल्याण'। औ तिनीहरूले नजिक आएर उहाँको पाउ पक्रेर उहाँलाई दण्डवत् गरे॥ तब येसुले तिनीहरूलाई भन्नुभयो, 'नडराओ, जाओ, मेरा भाइहरूलाई गालीलमा जानलाई भनिदेओ, र त्यहाँ तिनीहरूले मलाई देख्नेछन्'॥ तर एघारै चेलाहरू गालीलमा येसुले तिनीहरूलाई खटाउनुभएको डाँडामा गए॥ औ तिनीहरूले उहाँलाई देखेर दण्डवत् गरे, तर कसैले त शङ्का गरे॥ अनि तिनीहरूकहाँ आएर येसु तिनीहरूसित यसो भन्दै बोल्नुभयो, 'स्वर्ग र पृथ्वीमा सारा अधिकार मलाई दिएको छ'॥ 'र हेर, म सधैं, अँ, जगत्को अन्तसम्म तिमीहरूका साथमा छँदैछु'॥

—इं० मत्ती० प० २८। आ० २,६,८–१०,१६–१८,२०॥

समीक्षक—सृष्टिक्रम र विद्याविरुद्ध हुनाले यो कुरा पनि मान्न योग्य होइन। पहिले त ईश्वरसँग दूतहरू हुनु, तिनलाई जतातते पठाउनु माथिबाट ओर्लनु, इत्यादि के ईश्वरलाई तहसीलदारी र कलेक्टरी जस्तै बनाइदियौ? के त्यसै शरीरद्वारा स्वर्ग गयो र ब्यूँतियो? किनकि ती स्त्रीहरूले उनका गोडा समातेर प्रणाम गरे भने के त्यही शरीर थियो? अनि त्यो तीन दिनसम्म किन कुहिएन? अनि आफ्नै मुखबाट सबैको अधिकारी बन्नु केवल दम्भको कुरा हो। शिष्यहरूसँग भेट्ने र तीसँग सबै कुरा गर्ने कुरा असम्भव छ। किनकि यी सबै कुरा साँचा भए हिजोआज पनि कोही किन ब्युँतिदैनन्? अनि त्यसै शरीरबाट

स्वर्ग किन जाँदैनन्?॥ ९१ ॥

यो मत्तीरचित इञ्जिलको विषयको केही विवेचन भयो। अब मार्क (मर्कूस) रचित इंजिलको विषयमा लेखिन्छ—

मर्कूसको सुसमाचार (मार्करचित इञ्जिल)

९२. के यिनी सिकर्मी होइनन्?—इं० मर्कूस० प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—वास्तवमा युसुफ सिकर्मी थियो, यसकारण येसु पनि सिकर्मी थियो। कैयौं वर्षसम्म सिकर्मीकै काम गर्दथ्यो। पछि पैगम्बर बन्दा–बन्दा ईश्वरको पुत्र नै बन्नपुग्यो र जङ्गलीहरूले बनाए पनि। अनि त ठूलो कालीगढी चलायो। कुट–काट, फुट–फाट गर्नु नै उसको काम हो॥ ९२॥

लूकाको सुसमाचार (लूकरचित इञ्जिल)

९३. येसुले तिनलाई भन्नुभयो, 'तिमी मलाई किन उत्तम भन्दछौ? केवल एक अर्थात् परमेश्वरबाहेक कोही उत्तम छैन'॥

—इं० लूका० प० १८। आ० १९॥

समीक्षक—जब येसु नै एक अद्वितीय ईश्वर बताउँछ भने ईसाईहरूले पवित्रात्मा, पिता र पुत्र यी तीन कहाँबाट बनाए?॥ ९३॥

९४. उहाँलाई हेरोदकहाँ पठाइदिए॥ अब येसुलाई देखेर हेरोद बडा खुशी भए, किनकि तिनले उहाँका विषयमा सुनेका हुनाले धेरै दिनदेखि उहाँलाई हेर्ने इच्छा गरेका थिए, र उहाँबाट केही आश्चर्यजनक काम पनि हेर्ने आशा गर्थे॥ तिनले उहाँलाई धेरै प्रश्न गरे, तर उहाँले तिनलाई केही जवाफ दिनुभएन॥—इं० लूका० प० २३। आ० ७–९।

समीक्षक—यो कुरा मत्तीरचितमा छैन। यसकारण यी साक्षी भाँडिए। किनकि साक्षी त एकनासै हुनुपर्दछन्। अनि ईसा चतुर र करामती भएको भए हेरोदलाई उत्तर दिनेथियो र करामत पनि देखाउँदथ्यो। यसबाट 'ईसामा विद्या र करामत केही पनि थिएन' भन्ने कुरा बुझिन्छ॥ ९४॥

यूहन्नाको सुसमाचार

९५. आदिमा वचन थियो, औ वचन परमेश्वरसँग थियो, औ वचन परमेश्वर नै थियो॥ उहाँ आदिमा परमेश्वरसँग हुनुहुन्थ्यो॥ सबैथोक उहाँबाट हुनआए, औ हुनआएको कुनै एकथोक पनि उहाँविना

हुनआएन॥ उहाँमा जीवन थियो र त्यो जीवन मानिसहरूको ज्योति थियो॥ —इं० यूहन्ना० प० १। आ० १-४॥

समीक्षक—आदिमा वक्ताविना वचन हुनसक्तैन। अनि वचन ईश्वरसँगै थियो भने यसो भन्नु व्यर्थै हो। अनि कहिल्यै वचन ईश्वर हुनसक्तैन। किनकि त्यो आदिमा ईश्वरसँग थियो भने पहिले वचन वा ईश्वर थियो भन्ने कुरा घटित हुनसक्तैन। सृष्टिको कारण नभइ वचनद्वारा सृष्टि कहिल्यै हुनसक्तैन। अनि वचन नभइ पनि चुपचाप रहेर कर्त्ताले सृष्टि गर्नसक्तछ। जीवन केमा वा के थियो ? यस वचनबाट जीवलाई अनादि मान्छौ र जीव अनादि हुन् भने आदमको नाकको प्वालमा सासफुक्ने कुरा झूटो भयो। अनि के जीवन मनुष्यहरूकै ज्योति थियो, पशु आदिको होइन ?॥ ९५॥

९६. अनि बेलुकीको भोजन हुँदा सिमोनको छोरो यहुदा इस्करयोतीको हृदयमा अघिबाट नै दुष्टात्माले उहाँलाई धोका दिने विचार हालिसकेको थियो॥ —इं० युहन्ना, प० १३। आ० २॥

समीक्षक—यो कुरा सत्य होइन। किनकि इसाईहरूसँग कसैले सोध्नुपर्दछ—सैतान=दुष्टात्माले सबैलाई भड्काउँछ भने सैतानलाई कसले भड्काउँछ ? सैतान आफैं नै भड्किन्छ भन्छौ भने मनुष्य पनि त आफैं नै भड्किन वा झुक्किन अथवा भ्रममा पर्न सक्तछन्, अनि शैतानको के काम ? अनि फेरि, सैतानलाई बनाउने र भड्काउने परमेश्वर हो भने सैतानको पनि सैतान उही ईसाईहरूको ईश्वर ठहर्दछ। उसको माध्यमले परमेश्वरले नै सबैलाई भड्काएको हो। आखिर यस्ता काम ईश्वरका हुनसक्तछन् त ? सत्य त के हो भने ईसाईहरूको यो पुस्तक र यसलाई बनाउने ईश्वरको छोरो ईसा सैतान भए होलान्, तर न त यो ईश्वरकृत पुस्तक हो, न यसमा बताइएको 'ईश्वर' ईश्वर हो र न ईसा ईश्वरको पुत्र नै हुनसक्तछ॥ ९६॥

९७. तिमीहरूको हृदय विचलित नहोस्, तिमीहरू परमेश्वरलाई विश्वास गर्दछौ, मलाई पनि विश्वास गर॥ मेरा पिताको घरमा धेरै बस्ने ठाउँहरू छन्। त्यसो नभए, म तिमीहरूलाई भन्नेथिएँ, किनकि म तिमीहरूका निम्ति ठाउँ तयार पार्न जान्छु॥ औ यदि मैले गएर तिमीहरूका निम्ति ठाउँ तयार पारें भने म फेरि आउँछु, र तिमीहरूलाई मकहाँ लैजानेछु, जहाँ म छु त्यहाँ तिमीहरू पनि हुनेछौ॥ येसुले तिनलाई भन्नुभयो, 'बाटो, सत्य, र जीवन मैं हुँ, मबाहेक अरू कोहीद्वारा पिताकहाँ जानसक्तैन॥ तिमीहरूले मलाई चिनेका भए, मेरा पितालाई

पनि चिन्ने थियौ'॥ —इं० युहन्ना० प० १४। आ० १-३,६,७॥

समीक्षक—ल हेर, येसुका यी वचन के पोपलीलाभन्दा कम छन् त ? यस्तो प्रपञ्च नरचेको भए, उसको मतमा को फँस्थ्यो र ? के येसुले आफ्ना पितालाई ठेक्कामा लिएको छ ? अनि यदि ऊ (ईश्वर) येसुको वशीभूत छ भने पराधीन हुनाले त्यो ईश्वर नै होइन। किनकि ईश्वर कसैको सिफारिसलाई सुन्दैन। अनि के येसुभन्दा अघि कसैले पनि ईश्वरलाई प्राप्त गरेको थिएन ? यस्तो स्थान आदिको प्रलोभन दिने, अनि आफ्ना मुखबाट आफैं मार्ग, सत्य र जीवन बन्ने व्यक्ति सबै किसिमले दम्भी भनिन्छ। यसकारण यो कुरा कहिल्यै सत्य हुनसक्तैन॥ ९७॥

९८. साँचो-साँचो म तिमीहरूलाई भन्दछु, जसले मलाई विश्वास गर्दछ, त्यसले मैले गरेका काम पनि गर्नेछ, औ तीभन्दा ठूला काम पनि गर्नेछ॥ —इं० युहन्ना० प० १४। आ० १२॥

समीक्षक—अब हेर, येसुमाथि पूर्ण विश्वास राख्ने ईसाईहरू त्यसै मुर्दालाई ब्युँताउने आदि काम किन गर्नसक्तैनन् ? अनि विश्वासबाट पनि आश्चर्यजनक काम गर्न सक्तैनन् भने, येसुले पनि आश्चर्यजनक कर्म गरेको थिएन भन्ने कुरा निश्चित बुझ्नुपर्दछ। किनकि येसुले नै 'ममाथि विश्वास गरेमा तिमी पनि आश्चर्यजनक कर्म गर्नेछौ' भनेको हो। फेरि पनि कुनै ईसाई कुनै एउटा पनि त्यस्तो काम गर्न सक्तैन भने येसुलाई मुर्दा ब्युँताउने आदि काम गर्ने मान्ने कुन चाहिंको अन्त:करणरूपी आँखा फुटेका छन् र ?॥ ९८॥

९९. एकमात्र सत्य परमेश्वर छ॥

—इं०, युहन्ना० प० १७। आ० ३॥

समीक्षक—ईश्वर एकमात्र अर्थात् अद्वैत छ भने ईसाईहरूले तीन (पिता, पुत्र, पवित्र) बताउनु सर्वथा मिथ्या हो॥ ९९॥

यस्तै किसिमले इञ्जिलमा झूटा कुरा भरिपूर्ण छन्॥

यूहन्नालाई भएको प्रकाश

अब युहन्नाका अद्भुत कुरा सुन—

१००. शिरमा सुनका मुकुटहरू थिए॥ औ त्यस सिंहासनका सामने आगोका सातवटा बत्तीहरू बलिरहेका थिए, जो परमेश्वरका सातआत्मा हुन्॥ औ त्यस सिंहासनको अगाडि बिल्लोरजस्तै ऐनाको समुद्र भएझैं थियो। अगाडि र पछाडि जम्मै आँखै-आँखा भएका

चारवटा जीवित जीवातहरू सिंहासनको बीचमा र वरिपरि थिए॥

—यूहन्ना, प्रकाश, प० ४। आ० ४-६॥

समीक्षक—ल हेर, ईसाईहरूको स्वर्ग एउटा कुनै सहरजस्तै छ। अनि यिनको ईश्वर पनि बत्तीजस्तै आगो हो, र सुनका मुकुट आदि आभूषण धारण गर्नु र अगाडि-पछाडि आँखा हुने कुरा असम्भव छ। यी कुरालाई कसले मान्नसक्तछ? अनि त्यहाँ सिंह आदि चार पशु पनि लेखेका छन्॥ १००॥

१०१. अनि सिंहासनमा विराजमान हुनुहुनेको दाहिने बाहुलीमा भित्र र बाहिरपट्टि लेखिएको एउटा पुस्तक मैले देखें, त्यसमा सातवटा छापले छाप लाएको थियो॥ 'त्यो पुस्तक खोल्न, र त्यसका छापहरू फुकाल्नसक्ने को छ?'॥ औ स्वर्गमा, अथवा पृथ्वीमा, अथवा पृथ्वीमुनि त्यस पुस्तकको छाप खोल्ने अथवा त्यसमा हेर्नसक्ने कोही थिएन॥ औ कोही पनि यो पुस्तक खोल्न अथवा हेर्न योग्य नपाइएका हुनाले म खुबै रोएँ॥ —यूहन्ना, प्रकाश० प० ५। आ० १-४॥

समीक्षक—ल, अब ईसाईहरूको स्वर्गमा सिंहासनहरू र मनुष्यहरूको ठाटवाट त हेर! अनि पुस्तक छाप लगाएर बन्द गरिएको र त्यसलाई खोल्ने आदि कर्म गर्ने स्वर्ग र पृथ्वीमा कोही पनि पाइएन। युहन्ना रुन्छ, र पछि एउटा बूढो व्यक्तिले बताउँछ कि उही येसु खोल्नेछ। यसको प्रयोजन के भने जसको विवाह, त्यसैको गीत। हेर, सबै माहात्म्य येसुमाथि नै सिद्ध गरिन्छ। तर यी सबै कुरा कथनमात्र हुन्॥ १०१॥

१०२. औ मैले त्यो सिंहासन र ती चार जीवित जीवातहरू, मारिएको एउटा थुमाजस्तैलाई धर्मगुरुहरूका बीचमा उभिरहेका देखें, उसका सीङ, र सात आँखा थिए, जो सारा पृथ्वीमा पठाइएका परमेश्वरका सात आत्माहरू हुन्॥

—यूहन्ना, प्रकाश० प० ५। आ० ६॥

समीक्षक—ल, अब यस युहन्नाको सपनाको मनोव्यापार हेर! त्यस स्वर्गको बीचमा सबै ईसाई, चार पशु तथा येसु पनि छ, अरू कोही छैन। यो पनि ठूलो आश्चर्यको कुरा भयो कि यहाँ येसुका दुई आँखा थिए र सींङ्को नाम पनि थिएन, अनि स्वर्गमा पुगेर सात सींङ् र सात आँखायुक्त भयो। अनि ती सातै ईश्वरका आत्मा येसुका सींङ् र आँखा बनेका थिए। आ! यस्ता कुरालाई ईसाईहरूले किन माने? आखिर केही त बुद्धि लगाएका भए हुन्थ्यो॥ १०२॥

१०३. औ जब उहाँले त्यो पुस्तक लिनुभयो, तब ती चारवटा जीवित जीवात र चौबीसै धर्मगुरुहरू, ती थुमाका सामने घोप्टो परे, प्रत्येकसित वीणा र धूपले भरिएका सुनका पात्रहरू थिए, जो भक्तजनहरूका प्रार्थना हुन्॥ —युहन्ना, प्रकाश० प० ५। आ० ८॥

समीक्षक—येसु स्वर्गमा नहुँदा यी विचरा धूप, दीप, नैवेद्य, आरती आदि पूजा कसको गर्दाहुन्? अनि यहाँ त प्रोटेस्टेण्ट (Protestant) ईसाईहरू बुतपरस्ती=मूर्त्तिपूजाको त खण्डन गर्दछन्, उता यिनको स्वर्ग भने बुतपरस्तीको घर बनेको छ॥ १०३॥

१०४. अनि जब थुमाले ती सातमध्ये एउटा छाप खोल्नुभयो, तब मैले हेरें, र ती चारमध्येका एउटा जीवित जीवातले गर्जनको आवाजजस्तै, 'आऊर हेर' भनेको मैले सुनें र, सेतो घोडा र त्यसमाथि बस्नेले एउटा धनु लिएको मैले देखें, र तिनलाई एउटा मुकुट पनि दिइयो, औ तिनी विजय गर्दै र विजय गर्नलाई निस्के॥ औ जब उहाँले दोस्रो छाप खोल्नुभयो॥ औ अर्को एउटा उज्ज्वल रातो घोडा निस्केर आयो, र एउटाले अर्कोलाई काटमार गराई पृथ्वीबाट शान्तिहरण गर्ने अख्तियार त्यस घोडामाथि चढ्नेलाई दिइयो॥ औ अब उहाँले तेस्रो छाप खोल्नुभयो, र एउटा कालो घोडा देखें॥ औ जब उहाँले चौथो छाप खोल्नुभयो, र पहेंलो घोडा देखें र त्यसमाथि चढ्नेको नाम चाहिं 'मृत्यु' थियो, इत्यादि॥ —युहन्ना, प्रकाश० ६। आ० १-५,७,८॥

समीक्षक—'यो पुराणहरूभन्दा पनि बढी मिथ्या लीला हो वा होइन?' भन्ने कुरा त सोचौं। आखिर पुस्तकका बन्धनको छापभित्र घोडा र घोडसवार कसरी बस्न सकेहोलान्? यो सपनामा जस्तै बर्बराउनुलाई पनि सत्य मान्नेहरूमा जति अविद्या बताए पनि थोरै हुन्छ॥ १०४॥

१०५. औ तिनीहरू यसो भनेर ठूलो स्वरले कराए, 'हे प्रभु! हे पवित्र र सत्य! अझै कतिसम्म तपाईले पृथ्वीमा रहनेहरूलाई इन्साफ गरेर हाम्रो रगतको बदला लिनुहुन्न?'॥ औ तिनीहरू हरेकलाई एउटा-एउटा सेतो लुगा दिइयो, र तिनीहरूका सहकर्मी र भाइहरू पनि तिनीहरूजस्तै गरी मारिएर पूरा नहोउञ्जेल, केही बेर पर्खिरहून् भनेर तिनीहरूलाई भनियो॥ —युहन्ना, प्रकाश० प० ६। आ० १०,११॥

समीक्षक—ईसाई बन्नेहरूले दगुरेर समर्पित भएर यसरी न्याय गराउनका निम्ति रोइरहनुपर्नेछ। वेदमार्गलाई स्वीकार गर्नेको न्याय हुनमा भने कत्ति पनि ढिलो हुने छैन। ईसाईहरूसँग हिजोआज के

ईश्वरको अदालत बन्द छ ? अनि न्यायको काम हुँदैन भने न्यायाधीश के निकम्मा बसेका छन् ? भनी सोधेमा केही पनि ठीक ठीक उत्तर दिन सक्नेछैनन्। अनि यिनका ईश्वरलाई पनि बहकाइन्छ र यिनको ईश्वर पनि झुक्किन्छ, बहकाउमा पर्दछ, किनकि यिनले भन्नासाथ तुरुन्तै यिनका शत्रुसँग बदला लिन थाल्दछ। अनि धूर्त स्वभावका हुन्छन्, किनकि मरेपछि आफ्नो शत्रुताको बदला लिने गर्दछन्। अनि यिनमा पटक्कै शान्ति छैन। जहाँ शान्ति छैन त्यहाँ दु:खको के वारपार होला र ?॥ १०५ ॥

१०६. औ नेभाराको रूखलाई बतासले हल्लाउँदा नपाकेको फल झरेझैं आकाशका ताराहरू पृथ्वीमाथि खसे॥ औ स्वर्ग (आकाश) चाहिं पुस्तकको मुठा बेरिएझैं हटेर गयो॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० ६। आ० १३,१४॥

समीक्षक—ल हेर ! विद्या नभएर त भविष्यद्‌वक्ता युहन्नाले यस्ता उटपटांग कथा भनेको हो। आखिर, तारा त सबै भूगोल नै हुन्, ती एउटा पृथ्वीमाथि कसरी खस्न सक्तछन् ? अनि सूर्य आदिको आकर्षणले तिनलाई यताउति किन आउन–जान दिनेछ र ? अनि के आकाशलाई गुन्द्री सम्झन्छ ? यो आकाश साकार पदार्थ होइन, जसलाई कसैले बेर्न वा जम्मा गर्न सकोस्। यसकारण युहन्ना आदि सबै जङ्गली मनुष्य थिए। उनलाई यी कुराको के जानकारी थियो र ?॥ १०६ ॥

१०७. औ छाप लागेकाहरूको संख्या सम्बन्धमा इस्राएलीहरूको हरेक कुलबाट गरी एकलाख चवालीस हजारलाई छाप लागेको मैले सुनें॥ यहूदाको कुलबाट बाह्र हजारलाई छाप लगाइयो॥

—यूहन्ना, प्रकाश, प० ७। आ० ४,५॥

समीक्षक—बाइबलमा लेखिएको ईश्वर इस्राएल आदि कुलहरूकै स्वामी हो कि सबै संसारको हो ? नत्रभने तिनै जङ्गलीहरूको साथ किन दिनेथियो र ? अनि उनैको सहायता गर्ने र अरूको नाम निशान पनि नलिने हुनाले त्यो ईश्वर होइन। अनि इस्राएल कुल आदिका मानिसहरूलाई छाप लगाउनु भनेको अल्पज्ञता वा युहन्नाको मिथ्या कल्पना हो॥ १०७॥

१०८. यसकारण तिनीहरू परमेश्वरको सिंहासनको सामने छन्, र रात–दिन उहाँको मन्दिरमा उहाँको सेवा गर्छन्॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० ७। आ० १५॥

समीक्षक—के यो महाबुत्परस्ती होइन ? उनको ईश्वर देहधारी

मनुष्यजस्तै एकदेशी होइन ? अनि ईसाईहरूको ईश्वर रात्रिमा सुत्दैन पनि, यदि सुत्दो हो त रात्रिमा पूजा कप्तरी गर्दाहुन् ? तथा उसको निन्द्रा पनि खलबलिंदो हो ? अनि दिन–रात ब्युँझिरहन्छ भने विक्षिप्त वा अतिरोगी हुँदो हो ?॥ १०८॥

१०९. अनि अर्को एकजना दूत आएर वेदीमाथि सुनको धूपौरो लिएर खडा भए। तिनलाई धेरै धूपहरू दिइएका थिए॥ औ धूपको धुवाँ पवित्र जनहरूको प्रार्थनाका साथसाथ दूतको हातबाट परमेश्वरको सामने उडेर गयो॥ औ दूतले धूपौरो लिएर त्यसमा वेदीको आगोले भरिदिए, र पृथ्वीमाथि फ्याँकिदिए। अनि त्यहाँ गर्जनहरू, आवाजहरू, बिजुलीहरू र भूकम्पहरू भए॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० ८। आ० ३–५॥

समीक्षक—ल हेर, वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य र तुरहीका शब्द स्वर्गसम्म हुँदारहेछन्। ईसाईहरूको स्वर्ग वैरागीहरूको मन्दिरभन्दा के कम रहेछ त ? बरु केही बढी नै धूमधाम भएको प्रतीत हुन्छ॥ १०९॥

११०. औ पहिलो दूतले तुरही फूके, र त्यहाँ रगतसँग मिसिएको असिना र आगो आइलाग्यो, र ती पृथ्वीमा फालिए, और पृथ्वीको तेस्रो भाग डढाइहाल्यो।

—युहन्ना, प्रकाश, प० ८। आ० ७॥

समीक्षक—वा ! ईसाईहरूका भविष्यद्वक्ता ! ईश्वर, ईश्वरका दूत, तुरहीको शब्द र प्रलयको लीला केवल केटाकेटी खेलजस्तै प्रतीत हुन्छ॥ ११०॥

१११. अनि पाँचौं दूतले तुरही फूके, र स्वर्गवाट पृथ्वीमा एउटा तारा खसेको देखें, र तिनलाई अगाध खाँदको खाल्टोको साँचो दिइएको थियो॥ औ तिनले अगाध खाँदको खाल्टो खोले र त्यस खाल्टाबाट ठूलो अगेनाको जस्तो धुवाँ आयो॥ औ धुवाँबाट पृथ्वीमा सलहहरू निस्के, र पृथ्वीमा बिच्छीहरूलाई शक्ति भएझैं तिनीहरूलाई पनि शक्ति दिइयो॥ औ निधारमा परमेश्वरका छाप नलागेका मानिसहरूलाई हानि गर्नू भनेर तिनीहरूलाई भनियो॥ ...उनीहरूलाई पाँच महिनासम्म पीडा दिनू॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० ९। आ० १–५॥

समीक्षक—के तुरहीको शब्द सुनेर तारा तिनै दूतमाथि र त्यसै स्वर्गमा खसे होलान् ? यहाँ त खसेनन्। अरे ! के खाल्टो र सलह पनि ईश्वरले प्रलयका लागि पालेको हुँदो हो ? अनि छापलाई देखेर सलहले पढ्न पनि सक्ताहुन् कि तिनले छाप भएकाहरूलाई चाहिं नटोक्ने ? यो कुरा त 'तिमी ईसाई भएनौ भने तिमीलाई सलहले टोक्नेछन्' भन्ने डर

देखाएर सोझा मनुष्यहरूलाई ईसाई बनाउने धोकापूर्ण षड्यन्त्र हो। तर यस्ता कुरा विद्याहीन देशमा चल्न सक्ताहुन्, आर्यावर्त्तमा चल्दैनन्। के त्यो प्रलयको कुरा हुनसक्तछ?॥ १११ ॥

११२. औ ती घोडचढी फौजको संख्या बीस करोड थियो॥

—यूहन्ना, प्रकाश, प० ९। आ० १६॥

समीक्षक—आखिर यतिका घोडा स्वर्गमा कहाँ टिक्थे, कहाँ चर्दथे, कहाँ बस्तथे र कति लिदी हुँदो हो। अनि त्यसको दुर्गन्ध पनि स्वर्गमा कति भयो होला? भैगयो, यस्तो स्वर्ग, यस्तो ईश्वर र यस्तो मतका लागि हामी सबै आर्यहरूले तिलाञ्जलि दिएका छौं। सर्वशक्तिमान्को कृपाले ईसाईहरूका टाउकोबाट पनि यस्तो बखेडा समाप्त भए धेरै राम्रो हुनेथियो॥ ११२॥

११३. अनि मैले बादल ओढेको अर्को एउटा बलवान् दूतलाई स्वर्गबाट ओर्लेको देखें। तिनको शिरमा इन्द्रेनी थियो र तिनको मुख सूर्यजस्तो र खुट्टाहरू आगाका खाँबाहरूजस्ता थिए॥ औ तिनले आफ्नो दाहिने खुट्टा समुद्रमा र देब्रे खुट्टा पृथ्वीमा राखे॥

—युहन्ना, प्रकाश प० १०। आ० १,२॥

समीक्षक—पुराणहरू वा भाटहरूका कथाभन्दा पनि बढे चढेका यी दूतका कथा त हेर! यिनलाई के कहिल्यै कुनै बुद्धिमान्ले मान्न सक्ला त?॥११३॥

११४. अनि नाप्ने डण्डाजस्तो एउटा निगालो मलाई दिइयो, र एउटाले भन्यो, 'उठ, र परमेश्वरको मन्दिर, वेदी र त्यसमा पूजकहरूलाई नाप'॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० ११। आ० १॥

समीक्षक—यहाँको त कुरै छाडौं, तर ईसाईहरूका त स्वर्गमा पनि मन्दिर बनाइन्छन् र नापिन्छन्। ठीक पनि हो, जस्तो उनीहरूको स्वर्ग त्यस्तै कुरा पनि छन्। यसैकारण यहाँ प्रभुभोजनमा येसुका शरीरावयव=मासु, रगतको भावना गरेर खाने–पिउने गर्दछन् र चर्चमा पनि क्रुस आदिको आकार बनाउनु आदि पनि त बुत्परस्ती=मूर्तिपूजा हो नि॥ ११४॥

११५. अनि स्वर्गमा परमेश्वरको मन्दिर खोलियो। औ उहाँको मन्दिरमा करारको सन्दुक देखियो॥

—यूहन्ना, प्रकाश, प० ११। आ० १९॥

समीक्षक—स्वर्गमा जुन मन्दिर छ, त्यो हरबखत बन्द रहन्छ होला। कहिलेकाहीं खोलिन्छ होला। के परमेश्वरको पनि कुनै मन्दिर

हुनसक्तछ? वेदोक्त सर्वव्यापक परमात्माको त कुनै पनि मन्दिर हुनसक्तैन। तर ईसाईहरूको परमेश्वर त स्वर्गमा भए पनि भूमिमा भए पनि आकारवाला छ। अनि जस्तो लीला यहाँ टं टं पूं पूं गर्नेहरूको हुन्छ, तयस्तै ईसाईहरूको स्वर्गमा पनि हुन्छ। अनि नियमको सन्दुकलाई कहिलेकाहीं ईसाईहरू हेर्दाहुन्! त्यसबाट नजाने के प्रयोजन सिद्ध गर्दाहुन्? वास्तवमा त यी सबै कुरा मानिसहरूलाई झुक्याउन र भ्रमित पार्नका लागि हुन्॥ ११५॥

११६. अनि स्वर्गमा एउटा ठूलो आश्चर्य देखियो, अर्थात् सूर्य पहिरेकी, चन्द्र खुट्टामुनि र शिरमा बाह्रवटा ताराको मुकुट लाएकी स्त्री देखियो॥ त्यो गर्भवती थिई, र सुत्केरी हुने अवस्थाको पीडामा (प्रसव–वेदनाले) कराउँदी रहिछ॥ औ स्वर्गमा अर्को एउटा आश्चर्य देखियो, र हेर, सातवटा शिर, दसवटा सीङ् र शिरमा सातवटा राजमुकुट भएको एउटा ठूलो रातो अजीङ्गरजस्तो पशु थियो॥ औ त्यसको पुच्छरले स्वर्ग (आकाश) को तेस्रो भागका ताराहरूलाई तान्दोरहेछ र तिनीहरूलाई पृथ्वीमा फाल्दोरहेछ॥ —युहन्ना, प्रका, प० १२। आ० १–४॥

समीक्षक—लम्बा–चौड़ा गफ त हेर! यिनका स्वर्गमा पनि बिचरी स्त्री चिच्याउँछे। न त कसैले उसको दुःख सुन्दछ, न मेटाउन सक्तछ। अनि, आकाशको तेस्रो भागका तारालाई पृथ्वीमा फाल्नसक्ने त्यस अजीङ्गरको पुच्छर कति ठूलो थियो? हेर आश्चर्य, पृथ्वी त सानो छ र तारा पनि ठूला–ठूला लोक हुन्। यस पृथ्वीमा एउटा पनि अटाउन सक्तैन। तर यहाँ के चाहिं अनुमान लगाउनु उचित हुन्छ भने यी ताराको तेस्रो भाग यो कुरा लेख्नेको घरमा खसेहोलान्। अनि सबै ताराको तेस्रो भागलाई बेरेर पृथ्मीमा खसाल्ने पुच्छर भएको त्यो अजीङ्गर पनि त्यसैको घरमा बस्दो हो॥ ११६॥

११७. अनि स्वर्गमा लडाइँ भयो। माइकल र तिनका दूतहरू त्यस अजीङ्गरजस्तै पशुसँग लडाइँ गर्न गए, र अजीङ्गरजस्तै पशु र त्यसका दूतहरूले युद्ध गरे॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० १२। आ० ७॥

समीक्षक—ईसाईहरूको स्वर्गमा जो कोही जाँदो हो भने त्यो पनि लडाइँमा दुःख पाउँदो हो। यहींबाट यस्तो स्वर्गको आशा छोडेर हात जोरेर बसिराख, किनकि शान्तिभङ्ग र उपद्रव मच्चिरहने त्यस्तो स्वर्ग त ईसाईहरूकै लायक छ॥ ११७॥

११८. अनि त्यो अजीङ्गरजस्तै पशु तल फ्याँकियो त्यो वृद्ध साँप, दियाबल र सैतान भनिने, सारा संसारलाई ठग्ने... ॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १२। आ० ९॥

समीक्षक—त्यो सैतान स्वर्गमा छँदा उसले के संसारलाई ठग्ने गर्दैनथ्यो? अनि उसलाई किन जन्मभर खोरमा हालिएन वा किन मारिएन? उसलाई किन पृथ्वीमा फ्याँकियो? अनि सैतानले सारा संसारलाई भ्रमित पार्छ भने सैतानलाई भ्रमित पार्ने चाहिं को हो? यदि सैतान आफैं भ्रमित भयो भने भ्रमित हुनेहरू सैतानविना पनि आफैं भ्रमित हुनेछन्, अनि उसलाई भ्रमित पार्ने परमेश्वर हो भने त्यो ईश्वर नै ठहर्दैन। वास्तवमा ईसाईहरूको ईश्वर पनि सैतानदेखि डराउँदथ्यो भन्ने बुझिन्छ किनकि ऊ सैतानभन्दा प्रबल थियो भने त त्यस ईश्वरले उसलाई अपराध गर्दाबखत नै दण्ड किन दिएन? जगत्मा सैतानको जति राज्य छ, त्यसको हजारौं भाग पनि ईसाईहरूको एक राज्य छैन। यसैकारण त ईसाईहरूको ईश्वर उसलाई हटाउन नसक्दो हो। यसबाट यो सिद्ध भयो कि जसरी हिजोआजका ईसाई राज्याधिकारी डाँकू, चोर आदिलाई शीघ्र दण्ड दिन्छन्, ईसाईहरूको ईश्वर त्यत्तिको पनि छैन। यसो हुँदाहुँदै वैदिक मतलाई छोडेर खोक्रो ईसाई मतलाई स्वीकार गर्ने निर्बुद्धि मनुष्य को चाहिं होला र?॥ ११८॥

११९. पृथ्वी र समुद्र मा बस्नेहरू लाई धिक्कार छ, किनभने सैतान तिमीहरूकहाँ तल गएको छ॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १२। आ० १२॥

समीक्षक—के त्यो ईश्वर उहीं (स्वर्ग) को मात्र स्वामी र रक्षक हो? पृथ्वीका मनुष्य आदि प्राणिहरूको रक्षक र स्वामी होइन? यदि भूमिक पनि राजा हो भने सैतानलाई किन मार्न सकेन? ईश्वर हेरिरहन्छ र सैतान झुक्याउँदै, ठग्दै हिंड्दछ। फेरि पनि त्यसलाई रोक्दैन। यस्तो प्रतीत भैरहेछ कि एउटा असल ईश्वर र एउटा समर्थ दुष्ट अर्को ईश्वर भईरहेछ॥ ११९॥

१२०. औं त्यसलाई बयालीस महीनासम्म काम (युद्ध) गर्ने अख्तियार मिल्यो॥ औ त्यसले परमेश्वरको विरुद्धमा निन्दा गर्न, उहाँको नाम र उहाँको वासस्थान, र स्वर्गमा बस्नेहरूसमेत सबैको निन्दा गर्नलाई मुख खोल्यो॥ औ त्यसलाई पवित्रजनहरूसँग लडाइँ गर्न र तिनीहरूलाई जित्न, र सबै कुल, मानिसहरू, भाषाहरू र जातिहरूमाथि अधिकार जमाउन अख्तियार दिइयो॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १३। आ० ५-७॥

समीक्षक—पृथ्वीमा बस्नेहरूलाई झुक्याउन, ठग्न सैतान र पशु

आदिलाई पठाउने तथा पवित्रजनहरूसँग युद्ध गराउने काम डाँकूहरूको सरदारकै जस्तो हो वा होइन? यस्तो काम ईश्वर वा ईश्वरका भक्तहरूको हुन सक्तैन॥ १२०॥

१२१. अनि मैले देखें, र हेर, सियोन डाँडामा थुमा खडा हुनुहुन्थ्यो, र उहाँका साथमा उहाँको नाम र उहाँका पिताको नाम निधारमा लेखिएका एक लाख चवालीस हजार जना थिए॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १४। आ० १॥

समीक्षक—ल हेर, जहाँ येसुको बाबु बस्दथ्यो, त्यसै सियोन डाँडामा उसको छोरो पनि बस्दथ्यो। तर एक लाख चवालीस हजारको गणना कसरी भयो? एक लाख चवालीस हजार नै स्वर्गका वासी भए। बाँकी करोडौं ईसाईहरूको निधारमा छाप लागेन? के यी सबै नरकमा गए? ईसाईहरूले सियोन डाँडामा गएर 'येसुको उक्त बाबु र उनको सेना त्यहाँ छ वा छैन?' भन्ने कुरा हेर्नुपर्ने हो। त्यहाँ छन् भने यो लेख ठीक हो, नत्र भने झूटो हो। यदि कतैबाट त्यहाँ आएको हो भने कहाँबाट आयो? 'स्वर्गबाट आयो' भन्दछौ भने यति ठूलो सेना र आफू पनि माथितिर र तलतिर उडेर आउने-जाने गर्ने ती के पक्षी हुन्? अर्को कुरा, ऊ आउने-जाने गर्दछ भने त त्यो एउटा जिल्लाको न्यायाधीश सरह भयो। अनि ऊ एउटा, दुईवटा वा तीनवटा छ भने पनि कुरा मिल्दैन किनकि कमसेकम एक एक भूगोलमा एक एक ईश्वर त हुनैपर्यो, किनकि अनेक ब्रह्माण्डको न्याय गर्न र सर्वत्र एकसाथ घुम्नमा एउटा, दुईबटा वा तीनवटा मात्र त कहिल्यै समर्थ हुनसक्तैनन्॥ १२१॥

१२२. आत्मा भन्नुहुन्छ, तिनीहरूले आफ्ना आफ्ना परिश्रमबाट आराम पाउनेछन्, किनकि तिनीहरूका काम तिनीहरूका पछि लाग्नेछन्॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १४। आ० १३॥

समीक्षक—ल हेर, ईसाईहरूको ईश्वर त भन्दछ कि उनका कर्म उनैसँग रहनेछन्, अर्थात् सबैलाई कर्मानुसार फल दिइनेछ। यिनीहरू चाहिं भन्दछन् कि येसुले पापलाई लिनेछ र पाप क्षमा पनि गरिदिनेछ। यहाँ बुद्धिमान्हरूले विचार गर्नुपर्दछ कि ईश्वरको वचन सच्चा हो कि ईसाईहरूको साँचो हो? एउटै (परस्पर विरुद्ध) कुरामा दुबै त साँचो हुनसक्तैनन्। यिनमा एउटा अवश्य झूटो होला। चाहे ईसाईहरूको ईश्वर झूटो होस्, अथवा ईसाईहरू झूटा होऊन्, हामीलाई के प्रयोजन र?॥ १२२॥

१२३. ...र त्यसलाई परमेश्वरको क्रोधको ठूलो कोलमा

फ्याँकिदिए॥ औ कोल शहरबाहिर कुल्चियो, र कोलबाट रगत घोडाहरूका लगाम सम्मै, र सय कोस सम्मै पुग्नेगरी बगेर निस्क्यो॥

—यूहन्ना, प्रकाश, प० १४। आ० १९,२०॥

समीक्षक—ल हेर, यिनका गफ पुराणहरूभन्दा पनि बढचढ छन् वा छैनन्? ईसाईहरूको ईश्वर क्रोध गर्दाबखत धेरै दुःखित हुने गर्दो हो। अनि उसका क्रोधका कोल (कुण्ड) भरिपूर्ण छन् भने के उसको क्रोध पानी हो? अथवा अरू कुनै द्रवित पदार्थ हो, जसबाट कुण्ड भरिएका छन्? अनि सय कोससम्म रगत बग्नु असम्भव छ किनकि रगत हावा लाग्दा तुरुन्तै जम्दछ, अनि कसरी बग्नसक्तछ? यसकारण यस्ता कुरा मिथ्या हुन्छन्॥ १२३॥

१२४. ...र स्वर्गमा साक्षीको मण्डपको मन्दिर उघारियो॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० १५। आ० ५॥

समीक्षक—ईसाईहरूको ईश्वर सर्वज्ञ भएको भए साक्षीहरूको के काम? किनकि ऊ त आफैं सबै कुरा जान्दो हो। यसबाट सर्वथा यही निश्चय हुन्छ कि यिनको ईश्वर सर्वज्ञ नभएर मानिससरह नै अल्पज्ञ हो। त्यसले के ईश्वरताका काम गर्नसक्तछ? सक्तैन, सक्तैन, सक्तै-सक्तैन। अनि यसै प्रकरणमा दूतहरूका ठूला-ठूला असम्भव कुरा लेखिएका छन्, तिनलाई कसैले पनि सत्यमात्र सक्तैन। कति लेखौं? यस प्रकरणमा सर्वथा यस्तै कुरा भरिपूर्ण छन्॥ १२४॥

१२५. ...र परमेश्वरले त्यसका अधर्म सम्झनुभएको छ॥ त्यसले जे दिएकी थिई, त्यही त्यसलाई दिउन्। त्यसको कामबमोजिम दोब्बर गरेर दिउन्॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० १८। आ० ५,६॥

समीक्षक—हेर, ईसाईहरूको ईश्वर प्रत्यक्ष रूपमा अन्यायकारी छ। किनकि जसले जस्तो वा जति कर्म गरेको छ त्यसलाई त्यस्तै र त्यति नै फल दिनुलाई नै न्याय भनिन्छ। त्योभन्दा धेर वा थोर दिनु अन्याय हो। अनि फेरि, अन्यायकारीको उपासना गर्नेहरू अन्यायकारी किन नहोऊन्?॥ १२५॥

१२६. ...किनभने थुमाको विवाहको दिन आएको छ, र उहाँकी दुलही आफैं तैयार हुँदैछिन्॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० १९। आ० ७॥

समीक्षक—ल सुन, ईसाईहरूका स्वर्गमा विवाह पनि हुन्छन्! किनकि येसुको विवाह ईश्वरले उहीं गर्‍यो। सोध्नुपर्ने के भने उसका सासू, ससुरा, साला आदि को थिए? बालबच्चा कति भए? अनि वीर्यको नाश हुनाले बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि पनि घट्नाले

अबसम्म त येसुले त्यहाँ शरीर त्याग गरिसक्यो होला! किनकि संयोगजन्य पदार्थको वियोग अवश्य हुन्छ। अहिलेसम्म ईसाईहरूले उसको विश्वासमा धोका खाएर थाहा छैन कहिलेसम्म धोका खाइरहने हुन्?॥ १२६॥

१२७. औ तिनले त्यस अजीङ्गर जस्तो जनावर, त्यो पुरानो सर्प, जो दिया बल र सैतान पनि हो, त्यसलाई पक्रेर एक हजार वर्षसम्म बाँधे॥ हजार वर्ष भुक्तान नहोउञ्जेल त्यसले जात-जातिलाई फेरि नठगोस् भनेर तिनले त्यसलाई अगाध खाँदमा फालिदिए। औ त्यसलाई बन्द गरेर त्यसमाथि छाप लगाए॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० २०। आ० २,३॥

समीक्षक—हेर, बल्ल बल्ल त सैतान समातियो अनि एक हजार वर्षका लागि थुनियो। फेरि पनि छुट्नेछ, अनि के फेरि पनि ठग्नेछैन? यस्तो दुष्टलाई त खोर मै राख्नुपर्थ्यो अथवा नमारी छोड्नु हुँदैनथ्यो। तर यो सैतान हुने कुरा ईसाईहरूको भ्रममात्र हो। वास्तवमा त केही पनि होइन। केवल मनुष्यहरूलाई डर देखाएर आफ्नो जालमा फँसाउने उपाय रचेको हो॥ जस्तै कुनै धूर्त्तले केही सोझा मानिससँग 'ल हिंड्, तिमीलाई देवताको दर्शन गराउँछु' भन्यो। कुनै एकान्त ठाउँमा लगेर एउटा मानिसलाई चतुर्भुज बनाएर राख्यो। त्यस मानिसलाई झाडीमा उभ्याएर 'आँखा चिम्ल, मैले भनेपछि आँखा उघार्नू र फेरि मैले भन्नेबित्तिकै फेरि चिम्लिहाल्नू, आँखा चिम्लेनौ भने अन्धो हुनेछौ' भन्यो। ऊ अगाडि आएपछि भन्यो, 'हेर', अनि फेरि छिट्टै भन्यो, 'चिम्ल'। अनि फेरि झाडीमा लुकेपछि भन्यो, 'हेर'। 'देख्यौ', नारायणलाई? सबैले दर्शन गरे। जस्तो लीला यी मजहबी=सम्प्रदायी-हरूको हो, त्यस्तै यी मतावलम्बीहरूको पनि हो कि जो हाम्रो मजहबलाई मान्दैन, त्यो सैतानद्वारा भ्रमित पारिएको छ। यसकारण यिनीहरूको मायामा कसैले फँस्नुहुँदैन॥ १२७॥

१२८. ...उहाँका सामनेबाट पृथ्वी र आकाश भागे र तिनीहरूका निम्ति कतै ठाउँ पाइएन॥ मैले ठूला र साना सबै मरेकाहरू सिंहासनको सामने उभिरहेका देखें। औ पुस्तकहरू खोलिएका थिए। औ अर्को एउटा पुस्तक पनि खोलियो, जो जीवनको पुस्तक हो। औ तिनीहरूले जे जे गरेका थिए, ती पुस्तकहरूमा तिनीहरूका काम लेखिएबमोजिम ती मरेकाहरूको इन्साफ भएको थियो॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० २०। आ० ११,१२॥

समीक्षक—यो हेर अल्लारेपनको कुरा! आखिर पृथ्वी र आकाश

कसरी भाग्न सक्तछन्? अनि जसका सामनेबाट भागे ती केमा टिक्तछन्? अनि उसको सिंहासन र ऊ केमा टिकेर रहे? अनि मुर्दालाई परमेश्वरसामु उभ्याउँदा परमेश्वर पनि उभिएको वा बसेको हुँदो हो? के ईश्वरको व्यवहार पनि यहाँका अदालत र पसलहरूका जस्तै पुस्तकमा लेखिएबमोजिम हुन्छ? अनि सबै जीवहरूको हाल ईश्वरले लेख्यो अथवा उसका एजेन्टहरूले लेखे? यस्ता-यस्ता कुराबाट ईसाई आदि मतावलम्बीहरूले अनीश्वरलाई ईश्वर र ईश्वरलाई अनीश्वर बनाएका छन्॥ १२८॥

१२९. ...तीमध्ये एउटाले मसँग यसो भनेर कुरा गरे, 'यता आऊ, म तिमीलाई ती दुलही अर्थात् थुमाकी पत्नी देखाइदिनेछु'॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० २१। आ० ९॥

समीक्षक—वाः रे! ईसाले स्वर्गमा दुलही अर्थात् पत्नी खुबैकी भेट्टायो। मजा लिंदो हो। जुन-जुन ईसाई त्यहाँ जाँदाहुन्, तिनले पनि पत्नी फेला पार्दा हुन् र बालबच्चा हुँदाहुन् अनि धेरै धुँइचो हुनाले रोगोत्पत्ति भएर मर्दाहुन् पनि। यस्तो स्वर्गलाई त टाढैबाट नमस्कार गर्नु उचित हुनेछ॥ १२९॥

१३०. ...तिनले त्यस टाँगोले (त्यस सहरलाई) नाप्दा साढे सातसय कोसको रहेछ, लमाइ, चौडाइ र उचाइ बराबर रहेछ॥ अनि तिनले त्यसको पर्खाल नापे; मानिस, अर्थात् दूतको नाप बमोजिम एकसय चवालीस हातको रहेछ॥ त्यो पर्खाल स्फटिकको बनेको थियो र सहर चाहिं कञ्चन ऐनाजस्तै निख्खुर सुनको थियो। पर्खालका जगहरू अनेक किसिमका बहुमूल्य पत्थरहरूले सिंगारिएका थिए। पहिलो जग स्फटिकको, दोस्रो नीरको, तेस्रो लालको, चौथो पन्नाको॥ पाँचौं गोमेहको, छैटौं सारडियसमणिको, सातौं पीतमणिको, आठौं पिरोजाको, नवौं पुष्पराजको, दसौं लहसुनेको, एघारौं धूमकान्तको, बाह्रौं मर्तिसमणिको थियो॥ ती बाह्र ढोका चाहिं बाह्र मोतीका थिए। प्रत्येक ढोका एक-एक मोतीको थियो। त्यस सहरको सडक छर्लङ्गै देखिने ऐनाजस्तो निख्खुर सुनको थियो॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० २१। आ० १६-२१॥

समीक्षक—ल सुन, ईसाईहरूका स्वर्गको वर्णन! यदि ईसाई मर्दै जान्छन् र त्यहाँ (त्यस स्वर्गमा) जन्मदै जान्छन् भने यति ठूलो सहरमा पनि कसरी अटाउन सक्लान् र? किनकि त्यहाँबाट मानिस भित्रिने क्रम चलिरहन्छ र कोही पनि त्यसबाट निस्कँदैन। अनि यो 'बहुमूल्य

रत्नहरूबाट बनेको सहर हो, र सबै सुनै-सुनको हो' आदि कुरा पनि सोझा-साझा मनुष्यहरूलाई भ्रमित पारेर फँसाउने लीला मात्र हो। आखिर, त्यस सहरको लम्बाइ, चौडाइ त लेखेअनुसार हुन पनि सक्ला, तर उचाइ साढे सातसय कोश कसरी हुनसक्तछ? यो त सर्वथा मिथ्या कपोल कल्पनाको कुरा हो। अनि यति ठूला मोती कहाँबाट आए होलान्? यो लेख लेख्नेको घरको घैंटोबाट निस्केहोलान् कि? यी गफ त पुराणका बाबु रहेछन्॥ १३०॥

१३१. कुनै अशुद्ध कुरा, घृणित काम गर्ने, र झूट बोल्ने कुनै किसिमले पनि त्यसभित्र पस्नेछैन...॥

—युहन्ना, प्रकाश, प० २१। आ० २७॥

समीक्षक—यसो हो भने ईसाईहरू किन 'पापीहरू पनि ईसाई हुनाले स्वर्गमा जान सक्तछन्' भन्दछन्? यो ठीक कुरा होइन। यदि यसै हो भने सपनाका मिथ्या कुरा भन्ने युहन्नाले कहिल्यै स्वर्गमा प्रवेश गर्न सकेन होला। अनि येसु स्वर्गमा गएन होला। किनकि एक्लै पापी त स्वर्गमा पुग्नसक्तैन भने अनेक पापीहरूको पापको भारले थिचिएको व्यक्ति कसरी स्वर्गबासी हुनसक्तछ?॥ १३१॥

१३२. त्यहाँ फेरि श्रापित कुरा हुनेछैन। परमेश्वरको र थुमाको सिंहासन त्यसभित्र हुनेछ, र उहाँका दासहरूले उहाँको सेवा गर्नेछन्॥ औ तिनीहरूले उहाँको मुहार देख्नेछन् र उहाँको नाम तिनीहरूका निधारमा हुनेछ॥ औ त्यहाँ फेरि रात हुनेछैन र तिनीहरूलाई न ता बत्तीको उज्यालोको, न सूर्यको उज्यालोको खाँचो हुनेछ, किनकि परमप्रभु परमेश्वरले नै तिनीहरूलाई उज्यालो दिनुहुनेछ, र तिनीहरूले सदा सर्वदा राज्य गर्नेछन्॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० २२। आ० ३-५॥

समीक्षक—ल हेर, ईसाईहरूको स्वर्गबास यही हो। ईश्वर र ईसा के सधैं सिंहासनमा बसिरहनेछन्? उनका दास सधैं उनको मुख हेरिरहनेछन्? अब यो त भन कि तिम्रो ईश्वरको मुख युरोपियनहरूको जस्तो गोरो, वा अफ्रीकीहरूको जस्तो कालो, या अरू देशबासीहरूको जस्तो छ? यो तिम्रो स्वर्ग पनि बन्धन नै हो किनकि जहाँ सानो-ठूलोको भेद छ र एउटै सहरमा मात्रै बसिरहनु पर्दछ भने त्यहाँ दुःख किन नहुँदो हो?

१३३. हेर, म चाँडै आउँछु, र हरेक मानिसलाई आफ्नो आफ्नो काम अनुसार दिने इनाम मसँग छ॥ —युहन्ना, प्रकाश, प० २२। आ० १२॥

समीक्षक—कर्मानुसार फल पाउँछन् भन्ने कुरा नै वास्तविक हो

भने कहिल्यै पाप क्षमा हुँदैनन्। अनि पाप क्षमा हुन्छन् भने इञ्जिलका कुरा झूटा हुन्। यदि कसैले 'क्षमा हुने कुरा पनि इञ्जिलमा छ' भन्छ भने पूर्वापरविरुद्ध अर्थात् 'हल्फदरोगी' हुनाले झूटा हुन्। यिनलाई मान्न छोडिदेऊ।

अब कहाँसम्म लेखौं ? यिनको बाइबलमा लाखौं कुरा खण्डनीय छन्। यो त ईसाईहरूको बाइबल पुस्तकको अलिकति चिह्नमात्र देखाइएको हो। यतिबाटै बुद्धिमान्हरूले धैरै बुझ्नेछन्। केही कुराबाहेक अरू सबै झूट भरिपूर्ण छ। जसरी झूटको संगतले सत्य पनि शुद्ध रहँदैन, त्यस्तै बाइबल पुस्तक पनि माननीय हुन सक्तैन। वास्तवमा सत्य त वेदलाई स्वीकार गरेर प्राप्त हुन सक्तछ॥ १२३॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते कृश्चीनमतविषये
त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ २१॥

अनुभूमिका (४)

मुसलमानहरूको मतको बारेमा लेखिएको यो चौधौं समुल्लास अरू कुनै ग्रन्थको अभिप्रायको आधारमा नभइ केवल कुरानको (वास्तवमा यो शब्द 'कुरआन' हो, तर बोलचालमा कुरान बोलिने हुनाले यस्तै लेखिएको छ।) अभिप्रायले लेखिएको छ। किनकि मुसलमानहरू कुरानमाथि नै पूर्ण विश्वास गर्दछन्। फिरका (समूहविशेष) को कारणले कुनै शब्द, अर्थ आदि विषयमा फरक कुरा भएतापनि कुरानका बारेमा सबै एकमत् छन्। अरबीभाषामा रहेको कुरानको अर्थ मौलवीहरूले उर्दूमा लेखेका छन्। त्यस अर्थको देवनागरी अक्षर एवम् आर्यभाषान्तर गराएर, अनि अरबीका ठूला–ठूला विद्वान्बाट शुद्ध गराएर लेखिएको छ। यस अर्थलाई बेठीक बताउनेले पहिले मौलवीसाहेबहरूका तर्जुमाहरूको (भाषिक व्यवस्थापन) खण्डन गर्नुपर्दछ, अनि मात्र यस विषयमा लेख्नुपर्दछ। किनकि यो लेख केवल मनुष्यहरूको उन्नति र सत्य–असत्यको निर्णयका लागि हो। सबै मतका विषयको अलि–अलि ज्ञान भएमा यसबाट मनुष्यलाई परस्पर विचार गर्ने अवसर प्राप्त हुनेछ। र एक–अर्काका दोषहरूको खण्डन तथा गुणहरूको ग्रहण गर्नेछन्।

यस मतमाथि वा अरू कुनै मतमाथि झूटो खराब वा असल आक्षेप गर्ने कुनै प्रयोजन छैन। तर भलोलाई भलो र कुभलोलाई कुभलो नै सबैले बुझून्। कसैले कसैमाथि झूट चलाउन नसकोस् र सत्यलाई रोक्न पनि नसकोस्। अनि सत्य र असत्य कुरा प्रकाशित गरेपछि त्यसलाई मान्नु वा नमान्नु उसको आफ्नो इच्छा हो। कसैमाथि जबर्जस्ती कुनै कुरा थोपर्ने होइन। अनि आफ्ना वा अरूका दोषलाई दोष र गुणलाई गुण सम्झेर गुणको ग्रहण र दोषको त्याग गर्नु र हठी व्यक्तिका हठ–दुराग्रहलाई कम गर्नु–गराउनु नै सज्जनहरूको रीति हो। किनकि पक्षपातबाट जगत्मा के–के अनर्थ भएनन् र हुँदैनन्? सत्य त के हो भने यस अनिश्चित क्षणभङ्गुर जीवनमा अरूको हानि गरेर आफू भने लाभबाट वञ्चित रहनु र अरूलाई पनि वञ्चित राख्नु मानवता भन्दा बाहिरको कुरा हो।

यसमा यदि केही विरुद्ध कुरा लेखिनगएको भए सज्जनहरूले

त्यो बताइदिनुहुनेछ। त्यसपछि जे जस्तो उचित होला, त्यस्तै मानिनेछ। किनकि यो लेख हठ–दुराग्रह, ईर्ष्या–द्वेष, वाद–विवाद र विरोध बढाउनका लागि न भई यिनलाई घटाउनका निम्ति हो। किनकि एक अर्काको हानि–नोक्सानीदेखि टाढै रहेर परस्पर फाइदा पुर्‍याउनु हाम्रो मुख्य काम हो।

अब यो चौधौं समुल्लासमा मुसलमानहरूको मतको विषय सबै सज्जनहरूसामु निवेदन गर्दछु। विचार गरेर इष्टको ग्रहण र अनिष्टको परित्याग गर्नुहोला।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।
इत्यनुभूमिका॥

अथ चतुर्दश–समुल्लासः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

यसपछि मुसलमानहरूको विषयमा लेखिन्छ—

१. क्षमावान्, दयालु अल्लाहको नामबाट आरम्भ॥

—मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमानहरू यस कुरानलाई खुदाले भनेको बताउँछन्। तर यस वचनबाट 'यसलाई बनाउने कोही अरू नै हो' भन्ने बुझिन्छ। किनकि परमेश्वरले बनाएको भए 'आरम्भ साथ नाम अल्लाहको' नभनेर 'आरम्भ मनुष्यको उपदेशका लागि' भन्ने थियो। मनुष्यलाई 'तिमीहरू यसो भन' भनी शिक्षा दिएको हो भने पनि यो कुरा ठीक ठहर्दैन, किनकि यसबाट पापको आरम्भ पनि खुदा कै नामबाट भएर उसको नाम पनि दूषित हुनेछ। यदि ऊ क्षमा र दया गर्ने हो भने उसले आफ्नो सृष्टिमा मनुष्यको सुखका लागि अरू प्राणिहरूलाई मारेर, दारुण दुःख दिलाएर, मार्न लगाएर मासु खाने आज्ञा किन दियो? के ती प्राणी अनपराधी र परमेश्वरले नै बनाएका होइनन्? अनि 'परमेश्वरको नाममा असल कामकुराहरूको आरम्भ, खराबको होइन' पनि भन्नुपर्दथ्यो। तर यस कथनमा गोलमाल देखिन्छ। नत्र के चोरी, जाली, मिथ्याभाषण आदि अधर्मको पनि आरम्भ परमेश्वरकै नाममा गर्ने त? हेर, यसैकारण कसाइ आदि मुसलमान गाई आदिको घाँटी रेट्ता वा काट्ता पनि 'विस्मिल्लाह' यस वचनलाई पढ्दछन्। यसको यही पूर्वोक्त नै अर्थ हो भने मुसलमानहरू गलत कामकुराको आरम्भ पनि परमेश्वरकै नाममा गर्दछन्। अनि यसो हुँदा मुसलमानहरूको 'खुदा' दयालु पनि रहँदैन, किनकि ती पशुहरूमाथि उसको दया रहेन। अनि मुसलमानहरू यसको अर्थ जान्दैनन् भने यो वचन प्रकट हुनुनै व्यर्थ ठहर्दछ। मुसलमानहरू यसको अर्कै अर्थ लगाउँछन् भने त्यो सोझो वा शुद्ध अर्थ के हो त? इत्यादि॥ १॥

२. सबै स्तुति परमेश्वरको लागि हो, जो सब संसारको परवरदिगार अर्थात् पालनकर्ता हो। क्षमावान्, दयालु हो॥

—मं० १। सि० १। सूरतुल्फातिहा। आयत १,२॥

त्यो बताइदिनुहुनेछ। त्यसपछि जे जस्तो उचित होला, त्यस्तै मानिनेछ। किनकि यो लेख हठ–दुराग्रह, ईर्ष्या–द्वेष, वाद–विवाद र विरोध बढाउनका लागि न भई यिनलाई घटाउनका निम्ति हो। किनकि एक अर्काको हानि–नोक्सानीदेखि टाढै रहेर परस्पर फाइदा पुर्‍याउनु हाम्रो मुख्य काम हो।

अब यो चौधौं समुल्लासमा मुसलमानहरूको मतको विषय सबै सज्जनहरूसामु निवेदन गर्दछु। विचार गरेर इष्टको ग्रहण र अनिष्टको परित्याग गर्नुहोला।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।
इत्यनुभूमिका॥

अथ चतुर्दश–समुल्लासः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

यसपछि मुसलमानहरूको विषयमा लेखिन्छ—

१. क्षमावान्, दयालु अल्लाहको नामबाट आरम्भ॥

—मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमानहरू यस कुरानलाई खुदाले भनेको बताउँछन्। तर यस वचनबाट 'यसलाई बनाउने कोही अरू नै हो' भन्ने बुझिन्छ। किनकि परमेश्वरले बनाएको भए 'आरम्भ साथ नाम अल्लाहको' नभनेर 'आरम्भ मनुष्यको उपदेशका लागि' भन्ने थियो। मनुष्यलाई 'तिमीहरू यसो भन' भनी शिक्षा दिएको हो भने पनि यो कुरा ठीक ठहर्दैन, किनकि यसबाट पापको आरम्भ पनि खुदा कै नामबाट भएर उसको नाम पनि दूषित हुनेछ। यदि ऊ क्षमा र दया गर्ने हो भने उसले आफ्नो सृष्टिमा मनुष्यको सुखका लागि अरू प्राणिहरूलाई मारेर, दारुण दुःख दिलाएर, मार्न लगाएर मासु खाने आज्ञा किन दियो? के ती प्राणी अनपराधी र परमेश्वरले नै बनाएका होइनन्? अनि 'परमेश्वरको नाममा असल कामकुराहरूको आरम्भ, खराबको होइन' पनि भन्नुपर्दथ्यो। तर यस कथनमा गोलमाल देखिन्छ। नत्र के चोरी, जाली, मिथ्याभाषण आदि अधर्मको पनि आरम्भ परमेश्वरकै नाममा गर्ने त? हेर, यसैकारण कसाइ आदि मुसलमान गाई आदिको घाँटी रेट्ता वा काट्ता पनि 'विस्मिल्लाह' यस वचनलाई पढ्दछन्। यसको यही पूर्वोक्त नै अर्थ हो भने मुसलमानहरू गलत कामकुराको आरम्भ पनि परमेश्वरकै नाममा गर्दछन्। अनि यसो हुँदा मुसलमानहरूको 'खुदा' दयालु पनि रहँदैन, किनकि ती पशुहरूमाथि उसको दया रहेन। अनि मुसलमानहरू यसको अर्थ जान्दैनन् भने यो वचन प्रकट हुनुनै व्यर्थ ठहर्दछ। मुसलमानहरू यसको अर्कै अर्थ लगाउँछन् भने त्यो सोझो वा शुद्ध अर्थ के हो त? इत्यादि॥ १॥

२. सबै स्तुति परमेश्वरको लागि हो, जो सब संसारको परवरदिगार अर्थात् पालनकर्ता हो। क्षमावान्, दयालु हो॥

—मं० १। सि० १। सूरतुल्फातिहा। आयत १,२॥

समीक्षक—कुरानको खुदा संसारको पालन गर्ने भएको भए तथा सबैमाथि क्षमा र दया गर्ने भए अरू मतावलम्बी तथा पशुआदिलाई पनि मुसलमानका हातबाट मार्न लगाउने आज्ञा दिने थिएन। अनि क्षमा गर्ने हो भने के पापीहरूलाई पनि क्षमा गर्नेछ! अनि त्यस्तै हो भने पछि लेखिने 'कुरान र पैगम्बरलाई न मान्ने काफिर हुन्, काफिरहरूलाई कत्ल=हत्या गरिदेओ' किन भन्दथ्यो? यसकारण कुरान ईश्वरकृत जस्तो लाग्दैन॥ २॥

३. न्यायको दिनको मालिक॥ हामी तिम्रै भक्ति गर्दछौं र तिमीबाटै सहायता चाहान्दछौं॥ देखाऊ हामीलाई सोझो बाटो॥

—मं० १। सि० १। सू० १। आ० ३–५॥

समीक्षक—के खुदा नित्य न्याय गर्दैन? कुनै एक दिन न्याय गर्दछ? यसबाट त अन्धेर नै रहेछ भन्ने बुझिन्छ। उसैको भक्तिगर्नु र ऊबाटै सहायता चाहनु त ठिकै छ, तर के खराब कामकुराको लागि पनि सहायता खोज्ने त? अनि सोझो बाटो एउटै मुसलमानहरूकै छ अथवा अरूको पनि छ? सोझो बाटोलाई मुसलमानहरू किन ग्रहण गर्दैनन्? के खराबीतर्फको सोझो बाटो त चाहँदैनन्? यदि सबैको भलो एउटै हो भने मुसलमानहरूमा नै पनि कुनै विशेषता रहेन। अनि अरूको भलो गर्नु पर्ने कुरा मान्दैनन् भने ती पक्षपाती हुन्॥ ३॥

४. तिनीहरूको बाटो देखाऊ जोमाथि तिमीले दया (निआमत) गर्‍यौ। अनि उनीहरूको बाटो न देखाऊ, जोमाथि तिमीले गजब अर्थात् अत्यन्त क्रोधको दृष्टि गर्‍यौ र गुमराह=बाटो बिराएका=पथभ्रष्टहरूको बाटो हामीलाई नदेखाऊ॥ —मं० १। सि० १ सू० १। आ० ६,७॥

समीक्षक—जब मुसलमानहरू पूर्वजन्म र पूर्वकृत पाप पुण्यलाई मान्दैनन् भने कुनै माथि निआमत अर्थात् फजल वा अनुग्रह या दया गर्ने र कुनैमाथि नगर्ने हुँदा खुदा पक्षपाती ठहर्नेछ। किनकि पाप–पुण्य बिना नै सुख–दुःख दिनु त केवल अन्यायको कुरा हो। अनि कारणै बिना कसैमाथि दया र कसैमाथि क्रोधदृष्टि गर्नु पनि स्वभाव भन्दा बाहिरको कुरा हो। किनकि असल खराब कर्म बिना ऊ दया अथवा क्रोध गर्नसक्तैन। अनि उनका पापपुण्य नै अघिदेखि संचित छैनन् भने कसैमाथि दया र कसैमाथि क्रोधगर्ने कुरा हुनैसक्तैन। अनि यस सूरतको टिप्पणीमा 'यो सूरः अल्लाह साहेबले मनुष्यहरूका मुखबाट भन्न लगाए कि सधैं यसै गरी भन्ने गर' भनिएको छ। यही कुरा हो भने

'अलिफ, बे' आदि अक्षर पनि खुदाले नै पढाएको होला! अनि 'होइन' भन्छौ भने अक्षरज्ञान बिना यस सूरः लाई कसरी पढन सके? के कण्ठबाटै बोल्न लगायो र बोल्दै गए? यसो हो भने सबै कुरान नै कण्ठबाटै पढाएको होला। यसबाट 'जुन पुस्तकमा पक्षपातका कुरा पाइन्छन्, त्यो पुस्तक ईश्वरकृत हुनसक्तैन' भन्ने कुरा बुझ्नुपर्दछ। जस्तै कि अरबी भाषामा उतार्नाले अरबवासीहरूलाई यो पढ्न सजिलो, अरू भाषाभाषीहरूलाई असजिलो हुन्छ। यसैबाट खुदामा पक्षपात आईपर्दछ। अनि जसरी परमेश्वरले सृष्टिका सबै देशवासी मनुष्यहरूमाथि न्यायदृष्टि पूर्वक सबै देशका भाषाहरूभन्दा विलक्षण, सबै देशवासीहरूका लागि एकसमान परिश्रमबाट बुझिने संस्कृत भाषामा वेदको प्रकाश गरेको छ, त्यस्तै गरेको भए केही पनि दोष लाग्ने थिएन॥ ४॥

५. यस पुस्तकमा सन्देह छैन, यो पापकर्मदेखि बच्नेहरूलाई बाटो देखाउँछ॥ जो ईमान (विश्वास) ल्याउँछन् गैब (परोक्ष) सँगै, र नमाज पढ्दछन् र हामीले दिएको वस्तुबाट खर्च गर्दछन्॥ अनि ती जो त्यस किताबमाथि ईमान ल्याउँछन्=विश्वास गर्दछन्, जो तिमीतर्फ राख्तछन् वा तिमीभन्दा पहिले उतारिएको छ र कयामतमाथि विश्वास राख्तछन्॥ यिनीहरू आफ्ना मालिकको शिक्षामा टिकेका छन् र यिनीहरूनै छुटकारा=मुक्ति पाउनेवाला हुन्॥ जो काफिर भए तीमाथि तिमीले डराउनु वा नडराउनु निश्चय नै समान छ, ती ईमान ल्याउने=विश्वास गर्ने छैनन्॥ अल्लाहले उनका दिलमा, कानमा छाप ठोकेको र उनका आँखामा पर्दा हालेको छ र उनका लागि ठूलो अजाब (पापको सट्टामा मिल्ने दुःख) छ॥

—मं० १। सि० १ सू० २। आ० २–७॥

समीक्षक—आफ्नै मुखबाट आफ्नो किताबको प्रशंसा गर्नु के खुदाको दम्भको कुरा होइन? परहेजगार अर्थात् धार्मिक व्यक्तिहरू त स्वतः सच्चा मार्गमा छन्, हुन्छन्, रहन्छन्। अनि झूटो मार्गमा रहेकाहरूलाई यो कुरान बाटो नै देखाउन सक्तैन, अनि यो के कामको रह्यो त?॥ १॥ के पाप–पुण्य र पुरुषार्थ बिना नै खुदा आफ्नै ढुकुटीबाट खर्च गर्नका लागि दिन्छ? दिन्छ भने सबैलाई किन दिंदैन? अनि यी मुसलमानहरू परिश्रम किन गर्दछन्?॥ २॥ अनि बाइबल, इञ्जील आदि माथि विश्वास गर्नु उचित हो भने मुसलमानहरू इञ्जील प्रति कुरान जस्तै ईमान किन ल्याउँदैनन्? अनि त्यस्तै ईमान ल्याउँछन्=

विश्वास गर्दछन् भने कुरान हुनुपर्ने जरुरत नै के रह्यो र? 'कुरानमा बढी कुरा छन्' भन्छौ भने खुदाले ती कुरा अघिल्लो किताबमा लेख्न बिर्सियो होला। अनि त्यस्तो कुनै कुरा बिर्सिएको छैन भने कुरान बनाउनु निष्प्रयोजन ठहर्दछ। अनि हामी देख्तछौं कि बाइबल र कुरानका कुरा कुनै–कुनै मात्र अमिल्दा हुँदाहुन्, नत्र सबै मिल्दछन्। अनि वेद जस्तै एउटै पुस्तक किन नबनाएको? के कयामत=कर्मको लेखाजोखाको दिन माथि नै विश्वास राख्नुपर्दछ? अरूमाथि हुँदैन!॥ ३ ॥ के ईसाई र मुसलमान नै खुदाको शिक्षामा छन्? उनीहरूमा कुनै पनि पापी छैन? जो ईसाई र मुसलमान अधर्मी छन् के तिनले पनि छुटकारा पाउँछन् र अरू धर्मात्माले पनि पाउँदैनन्? यसो हो भने यो ठूलो अन्याय र अन्धेरको कुरा होइन र? अनि मुसलमानी मत नमान्नेलाई नै काफिर बताउनु के एकतर्फी जिद्दी=दुराग्रह होइन?॥ ५॥ परमेश्वरले नै उनीहरूको अन्तःकरण र कानमा छाप लगाएको हो र त्यसै कारणले ती पाप गर्दछन् भने यसमा उनीहरूको केही पनि दोष छैन। यो दोष त खुदा कै हो, अनि तीमाथि सुख–दुःख वा पाप–पुण्य हुनसक्तैन। अनि उनीहरूलाई सजा–जजा=दण्ड–सजाय र पाप पुण्यको फल किन लगाउँछ? किनकि उनीहरूले स्वतन्त्रतापूर्वक पाप वा पुण्य गरेकै छैन॥ ६ ॥॥ ५ ॥

६. उनीहरूको दिलमा रोग छ, अल्लाहले उनीहरूको रोग बढाएको छ॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०॥

समीक्षक—आखिर अपराध बिनानै खुदाले उनीहरूको रोग बढायो, दया लागेन। ती विचराहरूलाई ठूलो दुःख भयो होला। के यो शैतान भन्दा पनि बढी शैतानपनाको काम होइन? कसैको मनमाथि छाप लगाउनु, कसैको रोग बढाउनु, यो खुदाको काम हुनसक्तैन। किनकि रोग त आफ्ना पापका कारण बढ्ने गर्दछ॥ ६ ॥

७. जसले तिमीहरूका लागि पृथ्वी बिछ्यौना र आकाशको छाना बनायो॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० २२॥

समीक्षक—आकाश पनि के कसैको छानु हुनसक्तछ? यो अविद्याको कुरा हो। आकाश लाई छानाजस्तै मान्नु हाँसोको कुरा हो। यदि कुनै किसिमको पृथ्वीलाई उनीहरू आकाश मान्दछन् भने यो उनीहरूको घरको कुरा हो॥ ७॥

८. हामीले आफ्ना पैगम्बरमाथि उतारेको त्यस वस्तु प्रति तिमी सन्देहमा छौ भने ऊ जस्तै एउटा अनुहार ल्याऊ र तिमी सच्चा हौ भने

आफ्ना साक्षीहरूलाई अल्लाह बिना नै पुकार॥ तिमी गर्दैनौ र कहिल्यै गर्नेछैनौ भने त्यस आगो देखि डराऊ जसको इन्धन मनुष्य र ढुङ्गा हुन्, अनि जुन आगो काफिरहरूका लागि तैयार गरिएको छ॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० २३, २४॥

समीक्षक—आखिर यो पनि कुनै कुरा हो कि उसको जस्तो कुनै अनुहार नै बन्दैन? के बादशाह अकबरका पालामा मौलवी फैजीले नुकता बिनाको कुरान बनाएको थिएन? त्यो कुन चाहिं दोजख=नरकको आगो हो? के यस आगो (भौतिक आगो) देखि डर्नु पर्दैन? इन्धन यसको पनि जेसुकै कुरा यसमा फर्छ त्यो सबै हो। कुरानमा 'काफिरहरूका लागि दोजखको आगो तैयार गरिएकोछ भन्ने लेखेजस्तै पुराणहरूमा म्लेच्छका लागि घोर नरक बनेकोछ भन्ने कुरा लेखेकोछ। अब भन, कसको कुरालाई सच्चा मानौं? आ–आफ्ना वचन अनुसार दुबै स्वर्गगामी र एक अर्काका मतानुसार दुबै नरकगामी ठहर्दछन्। यसकारण यी सबैको झगडा झूटो हो। तर सबै मतमा धार्मिक जति सबैले सुख र पापीजति सबैले दुःख पाउनेछन्'॥ ८॥

९. अनि ईमान ल्याउने र सत्कर्म गर्नेहरूलाई आनन्दको सन्देश देऊ कि उनका निम्ति मुन्तिर नहरहरू बग्ने बहिश्त=स्वर्ग छन्। तीबाट मीठो मीठो भोजन दिइंदा 'यी त्यही वस्तु हुन्, जुन अघि हामी यसबाट दिइएका थियौं' भन्नेछन्। र उनकालागि पवित्र पत्नीहरू सधैं त्यहाँ रहन्छन्॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० २५॥

समीक्षक—ल हेर! यो कुरानको बहिश्त यस संसारभन्दा कुन चाहिं उत्तम ठाउँ रहेछ त? किनकि जुन पदार्थ संसारमा छन्, ती नै मुसलमानहरूको स्वर्गमा छन्, अनि यति चाहिं खास कुरा छ कि यहाँ पुरुष जन्मने, मर्ने र आउने–जाने गरे जस्तै स्वर्गमा हुँदैन। तर यहाँ का स्त्रीहरू सधैं रहँदैनन् र त्यहाँ चाहिं बीवीहरु अर्थात् उत्तम स्त्रीहरू सदाकाल रहन्छन् भने कयामतको रात न आएसम्म ती बिचरीहरूका दिन कसरी बित्दा हुन्? हँ, उनीहरू माथि खुदाको कृपा हुँदोहो र खुदाकै आश्रयले समय बिताउँदाहुन् भने ठिकै छ। किनकि यो मुसलमानहरूको स्वर्ग गोकुलिया गुसाइँहरूको गोलोक र मन्दिर जस्तै प्रतीत हुन्छ किनकि त्यहाँ स्त्रीहरूको मान बढी हुन्छ, पुरुषको हुँदैन। त्यस्तै खुदाको घरमा स्त्रीहरूको मान बढी र ती माथि खुदाको प्रेम धेरै छ, ती पुरुषहरूमाथि छैन। किनकि खुदाले बीवीहरू=स्त्रीहरूलाई बहिश्तमा सधैं राख्यो, पुरुषलाई राखेन। ती बीवीहरु खुदाको मर्जी

बेगर स्वर्गमा कसरी टिक्न सक्थे र? यो कुरा यस्तै हो भने त खुदा स्त्रीहरूमा फस्तो हो!॥ ९ ॥

१०. आदमलाई सबै नाम सिकाए। अनि फरिश्ताहरू=देवदूतहरूको अगाडि राखेर भने–तिमी सच्चा हौ भने मलाई यिनका नाम बताऊ॥ भने, हे आदम! उनलाई उनका नाम बताइदेऊ। उसले बताइदिएपछि खुदाले फरिश्तासँग भने–के मैले तिमीहरूसँग 'निश्चय नै म पृथ्वी र आकाशका लुकेका वस्तुहरूलाई र प्रकट, लुकेका कर्मलाई जान्दछु' भनेको थिइन र?॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३१.३३॥

समीक्षक—आखिर यस्ता फरिश्तालाई धोका दिएर आफ्नो प्रशंसा गर्नु खुदाको काम हुनसक्तछ? त्यो त एउटा दम्भको कुरा हो। यो कुरालाई कुनै विद्वान् ले मान्न सक्तैन र यस्तो अभिमान पनि गर्दैन। के यस्तै कुराबाट नै खुदा आफ्नो सिद्धपना सिद्ध गर्न चाहान्छ? हँ, जंगलीहरूमा कसैले जस्तोसुकै पाखण्ड चलाए पनि चल्नसक्तछ, सभ्य व्यक्तिहरूमा चल्नसक्तैन॥ १०॥

११. हामीले फरिश्ताहरूसँग 'बाबा आदमलाई दण्डवत् गर' भनेर हेर्दा सबैले दण्डवत् गरे, तर शैतानले मानेन र अभिमान गर्‍यो, किनकि ऊपनि एउटा काफिर थियो॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३४॥

समीक्षक—यसबाट 'खुदा सर्वज्ञ होइन, अर्थात् भूत, भविष्यत् र वर्त्तमानका सबै कुरा जान्दैन' भन्ने कुरा बुझिन्छ। जान्ने भएको भए शैतानलाई किन उत्पन्न गर्‍यो त? अनि खुदामा केही तेज पनि छैन। किनकि शैतानले खुदाको हुक्म नै मानेन र खुदाले उसलाई केही पनि गर्न सकेन। अनि हेर, एउटा शैतान काफिरले खुदालाई आछु–आछु पारिदियो भने मुसलमानहरूको भनाइमा तीबाहेक करोडौं काफिर भएको ठाउँमा मुसलमानहरूको खुदा र मुसलमानहरूको के दैय्या चल्न सक्छ र? कहिले काहीं खुदा पनि कसैको रोग बढाइदिन्छ, कसैलाई गुमराह=पथ्रष्ट गरिदिन्छ। खुदाले यी कुरा शैतानबाट सिकेको होला र शैतानले खुदाबाट। किनकि शैतानको उस्ताद=गुरु खुदा बाहेक अरू कोही हुनसक्तैन॥ ११॥

१२. हामीले भन्यौं कि ए आदम! तँ र तेरी जोई बहिश्तमा रहेर आनन्दमा खेच्छापूर्वक जाओ, खाओ तर त्यस वृक्षको नजीक नजाओ, नत्र पापी हुनेछौ॥ शैंतानले उनलाई डरायो र उनलाई बहिश्त=स्वर्गको आनन्दबाट वंचित तुल्याइदियो। तब हामीले भन्यौं, उत्र, तिमीहरूमा

कुनै परस्पर शत्रु छ। तिमीहरूको ठेगाना पृथ्वी हो र एक समय सम्म लाभ छ॥ आदमले आफ्ना मालिकका केही कुरा सिकेर पृथ्वीमा आयो॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३५–३७॥

समीक्षक—ल अब खुदाको अल्पज्ञता त हेर भर्खरै त स्वर्गमा बस्ने आशीर्वाद दियो र फेरि केही वेर मैं 'निस्क' भन्यो। भविष्यत्का कुरालाई जान्ने भएको भए बस्नै किन दिन्थ्यो र? अनि भड्काउने, भ्रममा पार्ने शैतानलाई दण्ड दिन असमर्थ पनि देखापर्दछ। अनि त्यो वृक्ष कसका निम्ति उत्पन्न गरेको थियो? के आफ्नै निम्ति वा अरूका लागि? आफ्नै लागि उत्पन्न गरेको भए उसलाई के आवश्यकता थियो? अनि अरूका लागि थियो ने किन रोप्यो? यसकारण यस्ता कुरा खुदाका वा उसले बनाएको पुस्तकमा हुन सक्तैनन्। आदम साहेबले खुदाबाट कति कुरा सिकेर आये? अनि आदम साहेब पृथ्वीमा आउँदा कुन तरीकाले आए? के त्यो बहिश्त पहाडमाथि छ वा आकाशमा छ? त्यसबाट कसरी उत्रेर आए? अथवा पक्षीजस्तै उडेर आए? अथवा माथिबाट ढुङ्गो खसेजस्तै खसे?

यस प्रसंगमा आदम साहेब माटोबाट बनाइए भने त यिनका स्वर्गमा पनि माटो हुँदो हो भन्ने कुरा बुझिन्छ। अनि वहाँ अरू पनि जे जति छन् ती सबै फरिश्ते आदि पनि हुँदा हुन्, किनकि माटोको शरीरबेगर इन्द्रियभोग हुनसक्तैन। अनि पार्थिव शरीर छ भने मृत्यु पनि अवश्य हुनुपर्दछ। मृत्यु हुन्छ भने ती त्यहाँबाट कहाँ जान्छन्? अनि मृत्यु हुँदैन भने उनीहरूको जन्म पनि भएको होइन। जन्म भएमा मृत्यु अवश्य हुन्छ। यसो हो भने बहिश्तमा सदैव स्त्रीहरू रहन्छन् भनी लेखेको कुरा झूटो ठहर्दछ किनकि उनीहरूको पनि मृत्यु अवश्य हुनेछ। यसो हो भने बहिश्तमा जानेहरूको पनि मृत्यु अवश्य हुनेछ॥ १२॥

१३. त्यस दिन देखि डर मान कि जब कोही जीव प्रति केही विश्वास राख्नेछैन। न उसको सिफारिस स्वीकार गरिनेछ, न ऊसँग बदला लिइने छ र न ती सहायता पाउनेछन्॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ४८॥

समीक्षक—के वर्तमान दिनहरूमा चाहिं डर मान्नु पर्दैन? गलत काम गर्नमा सबैं दिन डर मान्नुपर्दछ। जब सिफारिस मानिने छैन भने पैगम्बरको साक्षी वा सिफारिसबाट खुदा स्वर्ग दिनेछ भन्ने कुरा कसरी सत्य हुन सक्नेछ? के खुदा बहिश्तमा बस्नेहरूकै मात्र सहायक हो,

दोजखमा बस्नेहरूको सहायक होइन? यसो हो भने खुदा पक्षपाती हो॥ १३॥

१४. हामीले मूसालाई किताब र मौजिजे (विचित्र शक्ति) दियौं॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५३॥

समीक्षक—मूसालाई किताब दिएको भए कुरान हुनु निरर्थक छ अनि उसलाई आश्चर्य शक्ति दिएको कुरा बाइबल र कुरानमा पनि लेखेको छ, तर यो मान्न योग्य कुरा होइन। किनकि त्यसो भएको भए अहिले पनि हुन्थ्यो, अहिले त्यसो हुँदैन भने पहिले पनि त्यसो भएको थिएन। जसरी स्वार्थी व्यक्तिहरू हिजोआज पनि अविद्वान्हरूका सामु विद्वान् बन्ने गर्दछन् त्यस्तै त्यसबखत पनि कपट गरेको हुँदो हो। किनकि खुदा र उसका सेवक अहिले पनि विद्यमान् छन्, अनि यस बखत खुदा आश्चर्य शक्ति किन दिंदैन? अनि किन आश्चर्य गर्नसक्तैनन्? मूसालाई किताब दिएको थियो भने फेरि कुरान दिन के आवश्यक थियो? किनकि असल–खराब काम कुरा गर्न नगर्ने उपदेश सर्वत्र एकनासै हो भने भिन्न–भिन्न पुस्तक बनाउनाले पुनरुक्त दोष हुन्छ। के मूसाजी आदिलाई दिइएको पुस्तकहरूमा खुदाले केही बिर्सिएको थियो?॥ १४॥

१५. अनि भन कि क्षमा मांग्दछौं, हामी तिम्रा र बढी भलो गर्नेहरूका पाप क्षमा गर्नेछौं॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५८॥

समीक्षक—खुदाको यो उपदेश सबैलाई पापी बनाउने किसिमको हो कि होइन? किनकि मनुष्यहरूलाई पाप क्षमा हुने आश्रय मिलेपछि पापदेखि कोही पनि डर्दैन। यसकारण यसो भन्ने खुदा र यो खुदाले बनाएको पुस्तक हुनसक्तैन। किनकि ऊ त न्यायकारी छ, अन्याय कहिल्यै गर्दैन। उता पाप क्षमा गर्दा त ऊ अन्यायकारी हुन्छ र अपराध अनुसार दण्ड दिंदा नै ऊ न्यायकारी हुनसक्तछ॥ १५॥

१६. मूसाले आफ्नो जातिका लागि पानी माग्दा हामीले भन्यौं कि आफ्नो लौरो ढुङ्गामा हान्। त्यसबाट बाह्रवटा पानीका मूल फुटे॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६०॥

समीक्षक—अब हेर! यी असम्भव जस्ता कुरा के अरू लाग्ने कोही भन्ने सक्छ? एउटा ढुङ्गामा लौराले हान्नाले बाहिर पानीको मूल फुटाउन सर्वथा असम्भव छ। हँ, त्यस ढुङ्गाको भित्रबाट खोक्रो पारेर त्यसमा पानी भरेर बाहिर प्वाल पारेमा यसरी पानी आउन सम्भव छ, अन्यथा छैन॥ १६॥

१७. हामीले उनलाई भन्यौं कि तिमी निन्दित बाँदर भईजाओ॥ जो उनका अगाडि र पछाडि थिए उनलाई यो एउटा डर देखाएको थियो, र इमान्दारहरूलाई शिक्षा॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६५,६६॥

समीक्षक—खुदाले निन्दित बाँदर हुने कुरा केवल डर देखाउनका निम्ति भनेको थियो भने उसको कथन मिथ्या भयो, अथवा छल गर्‍यो। यस्ता कुरा गर्ने र यस्ता कुरा भएको खुदा हुनसक्तैन र यो पुस्तक पनि खुदाले बनाएको हुनसक्तैन॥ १७॥

१८. यसरी खुदा मुर्दाहरूलाई ब्यूताउँछ, र तिमीलाई आफ्ना चिन्ह दिन्छ कि तिमी चिन॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ७३॥

समीक्षक—के मुर्दाहरूलाई खुदा ब्यूताउँथ्यो? त्यसो भए अब किन ब्यूँताउँदैन? के कयामतको रातसम्म कब्र=चिहान मै रहिरहेछन्? हिजो आज दौडाहा छ कि? के यति नै ईश्वरका चिह्न हुन्? पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि चिह्न होइनन्? संसारमा प्रत्यक्ष देखिने विविध रचना विशेष के थोरै चिह्न हुन्?॥ १८॥

१९. ती सधैं बहिश्त अर्थात् बैकुण्ठमा बस्दछन्॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८२॥

समीक्षक—कुनै पनि जीवमा अनन्त पाप–पुण्य गर्ने सामर्थ्य हुँदैन, यसैले सधैं स्वर्ग वा नरकमा बस्न सक्तैनन्। अनि खुदाले यसो गरेमा ऊ अन्यायकारी र अविद्वान् हुनेछ। कयामतको रातमा न्याय हुनेछ भने मनुष्यहरूका पाप–पुण्य बराबर हुनु उचित हुन्छ। जुन अनन्त छैन त्यसको फल अनन्त कसरी हुनसक्तछ? अनि सात आठ हजार वर्ष भन्दा पनि यता नै सृष्टि भएको बताउँछन्। यस अघि के खुदा निकम्मा भएर बसेको थियो? अनि के कयामत पछि पनि निकम्मा नै रहने छ? यी सबै लडकपनका कुरा हुन्, किनकि परमेश्वरका काम सदा विद्यमान रहन्छन् र जसका जति पाप–पुण्य छन्, त्यसलाई त्यतिनै फल दिन्छ। यसकारण कुरानको यो कुरा साँचो होइन॥ १९॥

२०. जब हामीले प्रतिज्ञा गरायौं–आफ्ना परस्परको रगत न बगाउन् र कुनै आफ्ना परस्परकालाई घरबाट न निकाल्नु। अनि प्रतिज्ञा गर्‍यौ तिमीले, यसका तिमी नै साक्षी हौ॥ अनि तिमीहरू तिनै हौ कि आफ्ना परस्परकाहरूलाई मार्दछौ, तिमीहरूमध्ये केही एउटा फिरका (सम्प्रदायी) लाई उनका घरबाट निकाल्दछौ॥
—मं० १। सि० १ सू० २। आ० ८४,८५॥

समीक्षक—आखिर प्रतिज्ञा गराउनु र गर्नु अल्पज्ञहरूका काम हुन् वा परमेश्वरका ? परमेश्वर सर्वज्ञ छ ने संसारी मनुष्य सरह यस्तो व्यर्थ काम कुरा किन गर्दछ र ? आखिर यो कुन चाहिं असल कुरा हो कि आफ्नै परस्परमा रगत न बगाउनु, आफ्ना मतावलम्बीहरूलाई घरबाट न निकाल्नु अर्थात् के अरू मतावलम्बीहरूको रगत बगाउनु र उनीहरूलाई घरबाट निकालिदिनु पर्दछ ? यो मिथ्या मूर्खता र पक्षपातको कुरा हो । 'यी प्रतिज्ञाको विरुद्ध गर्नेछन्' भन्ने कुरा के परमेश्वर पहिलेदेखि नै जान्दैनथियो ? यसबाट मुसलमानहरूको खुदामा पनि धेरैजसो ईसाईहरूकै सादृश्य रहेछ भन्ने कुरा बुझिन्छ । अनि यो कुरान स्वतन्त्र हुनसक्तैन, किनकि यसमा भएका केही थोरै कुरा बाहेक सबै कुरा बाइबलकै छन् ॥ २० ॥

२१. यी ती व्यक्ति हुन् कि जसले आखरत (अन्तिम अवस्था ?) को सट्टा यहाँको जिन्दगी मोल लिए । तीबाट पाप कहिल्यै हलुको गरिने छैन र उनलाई सहायता दिइने छैन ॥

—मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८६ ॥

समीक्षक—आखिर यस्ता ईर्ष्या–द्वेषका कुरा कहिल्यै ईश्वरको तर्फबाट हुन सक्तछन् ? जुन व्यक्तिहरूका पाप हलुका पारिनेछन् वा जसलाई सहायता पुर्‍याइने छ, ती को हुन् ? यदि ती पापी हुन् र पापको दण्ड नदिई हलुका पारिनेछन् भने अन्याय हुनेछ । यदि दण्ड–सजाय दिएर हलुका पारिनेछन् भने जसको बयान यस आयतमा छ, ती पनि दण्ड–सजाय पाएर हलुका हुनसक्तछन् । अनि दण्ड दिएर पनि हलुका पारिने छैनन् भने अन्याय हुनेछ । यदि पापहरूबाट हलुका पारिनेहरू भन्नाले प्रयोजन धर्मात्माहरूको हो भने उनको पाप त आफैं हलुका छन्, खुदाले के गर्नुपर्छ र ? यसकारण यो लेख विद्वान्को होइन र वास्तवमा धर्मात्माहरूलाई सुख र अधर्मीहरूलाई दुःख उनका कर्मानुसार सदैव दिनुपर्दछ ॥ २१ ॥

२२. निश्चय नै हामीले मुसालाई किताब दियौं र त्यसपछि हामीले पैगम्बरलाई ल्यायौं र मरियमका पुत्र ईसालाई प्रकट मौजिजे अर्थात् दैवीशक्ति र सामर्थ्य दियौं, ऊसँग रूहुल्कुद्सको* ॥ १ ॥

तिमीकहाँ तिम्रो मनले नचाहेको वस्तुका साथ पैगम्बर आउँदा फेरि तिमीले अभिमान गर्‍यौ । एउटा मतलाई झूटो बनायौ र एउटालाई नाश गर्दछौ ॥ —मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८७ ॥

* रूहलकुद्स जबरईललाई भन्दछन्, जो कि हरदम मसाहसँगैं बस्तथ्यो ।

समीक्षक—कुरानमा मूसालाई किताब दिएको हो भन्ने साक्षी छ भने मुसलमानहरूले त्यसलाई मान्नु आवश्यक भयो । अनि त्यस पुस्तकमा भए भरका दोष पनि मुसलमानहरूको मतमा आइपरे । अनि मौजिजे अर्थात् दैवीशक्तिका कुरा भने सबै झूठा हुन् । सोझा–साझा मानिसलाई झुक्याउन र भड्काउनका लागि झूठा कुरा चलाएका हुन् । किनकि सृष्टिक्रम र विद्या भन्दा विरुद्धका सबै कुरा झूठा हुने गर्दछन् । यदि त्यसबखत मौजिजे थिए भने यसबखत किन छैनन् ? यस बखत छैनन् भने त्यसबखत पनि थिएनन् भन्ने कुरामा केही पनि सन्देह छैन ॥ २२ ॥

२३. र यस अघि काफिरहरू (मुस्लिम मतलाई नमान्ने) माथि विजय चाहान्थे, जो केही चिनेको थियो जब उनीहरूकहाँ ऊ आयो तुरुन्तै काफिर भए । काफिरहरूलाई अल्लाहको धिक्कार छ ॥

—मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८८ ॥

समीक्षक—जसरी तिमीहरू अरू मतावलम्बीहरूलाई काफिर बताउँछौ, त्यस्तै के ती तिमीलाई काफिर भन्दैनन् ? अनि उनका मतको ईश्वरको तर्फबाट धिक्कार दिन्छन् । अनि भन कुन सच्चा र कुन चाहिं झूटो त ? विचार गरेर हेर्दा त सबै मतावलम्बीहरूमा झूट फेला पर्दछ । अनि जो सत्य हो, त्यो त सबैमा एकनासै छ । यी सबै झगडा मूर्खताका हुन् ॥ २३ ॥

२४. आनन्दको सन्देश ईमान्दारहरूलाई ॥ अल्लाह, फरिश्ताहरू, पैगम्बरहरू, जिबरईल (Gabriel) र मीकाईल (Michael) को जो शत्रु छ अल्लाह पनि यस्ता काफिरहरूको शत्रु हो ॥

—मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ९७,९८ ॥

समीक्षक—जब मुसलमानहरू 'खुदा लाशरीक=असम्बद्ध छ' भन्छन् भने अनि यो फौज नै फौज कहाँबाट शरीक=सम्बद्ध गरे ? जो अरूको शत्रु छ, के त्यो खुदाको पनि शत्रु हो ? यसो हो भने ठीक होइन । किनकि ईश्वर कसैको शत्रु हुनसक्तैन ॥ २४ ॥

२५. र अल्लाह जसलाई चाहान्छ, आफ्नो दयाका साथ खास बनाउँछ ॥ —मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १०५ ॥

समीक्षक—जुन मुख्य र दया गर्न योग्य हुँदैन, के त्यसलाई पनि खास=मुख्य बनाउँछ र त्यसमाथि दया गर्दछ ? यसो हो भने त खुदा बडो गडबड गर्दछ । किनकि त्यसो भए असल काम कसले गर्नेछ र ? तथा खराब काम कसले छोड्नेछ र ? किनकि सबै खुदाको प्रसन्नताको

भर पर्दछन्। यसबाट सबैको अनास्था भएर कर्मोच्छदको प्रसङ्ग आउने छ॥ २५॥

२६. यसो नहोओस् कि काफिरहरू ईर्ष्या गरेर तिमीलाई ईमान=विश्वासबाट डगाइदिऊन्, किनकि ती मध्ये ईमान गर्नेहरूका धेरैजसो मित्र छन्॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०९॥

समीक्षक—अब हेर! तिम्रो ईमान=विश्वासलाई काफिरहरूले न डगाइ दिऊन भनेर खुदा नै उनीहरूलाई सचेत पार्दछ। के ऊ सर्वज्ञ छैन? यस्ता कुरा खुदाका हुनसक्तैनन्॥ २६॥

२७. तिमी जतातर्फ मुख गर्दछौ उतै अल्लाहको मुख छ॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११५॥

समीक्षक—यो कुरा सच्चा हो भने मुसलमानहरू 'किबला' तर्फ मुख किन फर्काउँछन् त? 'हामीलाई किबला' तर्फ मुख फर्काउने हुक्म छ भन्छन् भने चाहेजता मुख गर्ने पनि त हुक्म छ नि। के एउटा कुरा सच्चा र अर्को झूटो होला? अनि अल्लाहको मुख छ भने सवैतर्फ हुनै सक्तैन। किनकि एउटा मुख एकतर्फ रहनेछ, सबैतर्फ कसरी रहन सक्ने छ र? यसकारण यो मिल्ने कुरा होइन॥ २७॥

२८. जो आकाश र भूमिको उत्पादक हो। तब ऊ केही गर्न चाहान्छ, उसले केही गर्नु पर्ने होइन तर उसलाई भन्दछ कि 'भईजा' अनि बस, भई हाल्दछ॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११७॥

समीक्षक—आखिर खुदाले हुक्म दियो कि भई जाओस् भने हुक्म कसले सुन्यो र कसलाई सुनायो? अनि को बन्यो? कुन कारणबाट बन्यो वा बनायो? जब यसो लेख्छन् कि सृष्टिभन्दा पूर्व खुदा बाहेक कुनै पनि अर्को वस्तु थिएन भने यो संसार कहाँबाट आयो? कारणविना कुनै पनि कार्य हुँदैन, अनि यति ठूलो जगत् कारणविना नै कहाँबाट भयो? यो कुरा केवल अल्लारेपनको हो।

पूर्वपक्षी—होइन, होइन, खुदाको इच्छाबाट।

उत्तरपक्षी—के तिम्रो इच्छाबाट एउटा झिंगाको खुट्टो पनि बन्नसक्तछ र खुदाको इच्छाबाट यो सब जगत् बन्यो भन्दछौ?

पूर्वपक्षी—खुदा सर्वशक्तिमान् हुनाले जे चाह्यो त्यही गर्नसक्तछ।

उत्तरपक्षी—सर्वशक्तिमान्को अर्थ के हो?

पूर्वपक्षी—जे चाह्यो त्यो गर्न सक्ने।

उत्तरपक्षी—के खुदाले अर्को खुदा पनि बनाउन सक्तछ? आफू आफैं मर्न पनि सक्तछ? मूर्ख, रोगी र अज्ञानी पनि बन्नसक्तछ?

पूर्वपक्षी—यस्तो कहिल्यै बन्नसक्तैन।

उत्तरपक्षी—यसकारण परमेश्वर आफ्ना र अरूका गुण, कर्म, स्वभावको विरुद्ध केही पनि गर्नसक्तैन। जसरी संसारमा कुनै वस्तु बन्न बनाउनमा तीन पदार्थ पहिल्यै आवश्यक हुन्छन्–पहिलो–बनाउनेवाला जस्तै कुमाले, दोस्रो घैंटो बनाइने माटो र तेस्रो उसको साधन जसबाट घैंटो बनाइन्छ। जसरी कुमाले, माटो र साधनबाट घैंटो बन्दछ र बन्ने घैंटो भन्दा अघि कुमाले, माटो र साधन विद्यमान हुन्छन्, त्यस्तै जगत् बन्नुभन्दा पूर्व परमेश्वर, जगत्को कारण प्रकृति र उनका गुण, कर्म, स्वभाव अनादि छन्। यसकारण यो कुरानको कुरा सर्वथा असम्भव छ॥ २८॥

२९. जब हामीले मानिसहरूका लागि काबाको पवित्रठाउँ सुख दिने बनायौं, तिमी नमाजका लागि इबराहीमको ठाउँमा पुग॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० १२५॥

समीक्षक—के काबा भन्दा पहिले खुदाले कुनै पनि पवित्र ठाउँ बनाएको थिएन? थियो भने काबा बनाउने केही पनि जरूरत थिएन। बनाएको थिएन भने विचरा पहिले जन्मेकाहरूलाई के पवित्र ठाउँ बेगर नै राखेको थियो? पहिले खुदालाई पवित्र ठाउँ बनाउने स्मरण भएन होला॥ २९॥

३०. आफूलाई मूर्ख बनाएको बाहेक त्यो को मानिस होला जो इबराहीमको दीन=धर्मबाट हट्दछ र निश्चय नै हामीले दुनियामा उसैलाई मनपरायौं, र निश्चय नै आखरत=अन्त मा उही नेक=असल हुन्छ॥
—मं० १। सि० १। सू० २। आ० १३०॥

समीक्षक—इबराहीमको दीनलाई नमान्ने सबै नै मूर्ख हुन् भन्ने यो कुरा कसरी सम्भव हुनसक्तछ? इबराहीमलाई नै खुदाले मन पराउनमा के कारण हो? यदि धर्मात्मा हुनाले मनपराएको हो भने धर्मात्मा त अरू पनि धेरै हुन सक्तछन्? धर्मात्मा नभएर पनि मन पराएको हो भने अन्याय भयो। हँ, के चाहिं ठीक हो भने धर्मात्मा नै ईश्वरलाई प्रिय हुन्छ, अधर्मी हुँदैन॥ ३॥

३१. निश्चय नै हामी तेरो मुखलाई आकाशमा फिरिरहेको देख्तछौं, अवश्य हामी तँलाई त्यस किबमा तर्फ फेर्नेछौं कि उसलाई मनपराएस्, बस आफ्नो मुख मस्जिदुल्हराम तर्फ फेर, तिमी जहाँकहीं छौ आफ्नो मुख ऊसकै तर्फ फर्काऊ॥ —मं० १। सि० २। सू० २। आ० १४४॥

समीक्षक—के यो सानो तिनो मूर्ति पूजा हो? होइन ठूलो हो।

पूर्वपक्षी—हामी मुसलमानहरू बुत्परस्त=मूर्तिपूजक होइनौं, हामी त बुत्शिकन अर्थात् मूर्तिलाई तोड्नेहरू (मूर्त्तिभञ्जक) हौं। किनकि हामी 'किबला' लाई खुदा ठान्दैनौं।

उत्तरपक्षी—जसलाई तिमी बुत्परस्त=मूर्तिपूजक ठान्दछौ ती पनि ती मूर्तिलाई ईश्वर ठान्दैनन्, तर उनका अगाडि परमेश्वरको भक्ति गर्दछन्। यदि तिमीहरू बुत=मूर्ति तोड्नेहरू हौ भने त्यस मस्जिद 'किबला' को ठूलो बुत्लाई किन तोडेनौ ?

पूर्वपक्षी—वा: रे वा! हाम्रो त किबलातर्फ मुख फर्काउने कुरानको हुक्म छ र यिनको वेदमा छैन, अनि ती बुत्परस्त किन होइनन् र हामी किन बुत्परस्त हुन्छौं र? किनकि हामीले खुदाको आज्ञा पालन गर्नु आवश्यक छ।

उत्तरपक्षी—जस्तो तिम्रा लागि कुरानमा हुक्म छ, त्यस्तै यिनका लागि पुराणमा आज्ञा छ। जसरी तिमी कुरानलाई खुदाको कलाम=बचन सम्झन्छौ त्यस्तै पुराणी पनि पुराणहरूलाई खुदाका अवतार व्यासजीका वचन सम्झन्छन्। तिमीमा र यिनमा बुत्परस्तीको केही फरक कुरा छैन। अझ तिमी ठूला बुत्परस्त र यी साना तिना हुन्। किनकि कसैले आफ्नो घरमा पसेको बिरालोलाई निकाल्दा निकाल्दै घरमा ऊँट पसेजस्तै मोहम्मद 'साहबले साना बुत्=मूर्तिलाई मुसलमानहरूको मतबाट निकाले तर ठूलो बुत् जुन पहाड जस्तै मक्काको मस्जिद छ त्यो सबै मुसलमानहरूको मतमा प्रविष्ट गराए। के यो सानो बुत्परस्ती हो ? हाँ, हामी वैदिकहरू जस्तै तिमीहरू पनि वैदिक हुन्छौं भने बुत्परस्ती आदि खराब काम कुराबाट बच्न सक्ने छौउ नत्र होइने छइनऊ। तिमीहरूले आफ्नो ठूलो बुत्परस्तीलाई ननिकालेसम्म अरू साना बुत्परस्तहरूको खण्डन गर्न लाज मानेर निवृत्त रहनुपर्दछ। र आफूलाई बुत्पपरस्ती देखि हटेर पवित्र बनाउनु पर्दछ'॥ ३१ ॥

३२. जो अल्लाहरू बाटामा मारिन्छन्, उनका लागि यसो न भन कि यी मृतक हुन्, तर ती जीवित छन्॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५४॥

समीक्षक—आखिर ईश्वरको मार्गमा मर्ने=मार्ने के आवश्यकता छ ? यसो किन भन्दैनौ कि यो कुरा आफ्नो मतलब सिद्ध गर्नका लागि हो ? यो लोभ दिनाले खूब लड्ने-भिडनेछन्, आफ्नो जीत हुने छ। मार्नमा डर्ने डराउने छैनन्, लूटमार गर्नाले ऐश्वर्य प्राप्त हुने छ, अनि विषयानन्द गर्न पाइने छ। इत्यादि आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्नका लागि

यो विपरीत व्यवहारको विधान गरेको हो॥ ३२ ॥

३३. अनि यो किन अल्लाह कठोर दु:ख दिन्छ॥ शैतानको पछि न लाग, निश्चय नै ऊ तिम्रो शत्रु हो॥ यस बाहेक अरू केही छैन किन खराब र निर्लज्जताको आज्ञा दिन्छ, अनि यो किन तिमी भन अल्लाह प्रति कोई जान्दैनन्॥

—मं० १। सि० २। सू० ३। आ० १६५,१६८,१६९॥

समीक्षक—कठोर दु:ख दिने खुदा के पापीहरू माथि दयालु छ ? वा पुण्यात्माहरूमाथि ? अथवा मुसलमानहरू प्रति दयालु र अरू प्रति दयाहीन छ ? यसो हो भने त्यो ईश्वर नै हुनसक्तैन। अनि पक्षपाती छैन भने जो मनुष्य कतै धर्म गर्नेछ उमाथि ईश्वर दयालु र जो अधर्म गर्नेछ उमाथि दण्डदाता हुनेछ। अनि त बीचमा मुहम्मद साहेब र कुरानलाई मान्नुपर्ने आवश्यकता नै रहेन। अनि सबैलाई खराबकाम गराउने मनुष्यमात्रको शत्रु शैतानलाई खुदाले उत्पन्न नै किन गर्‍यो ? के ऊ भविष्यत्को कुरा जान्दैनथियो ? जान्दथियो तर परीक्षाको लागि बनाएको हो भन्छौ भने पनि कुरा मिल्दैन् किनकि परीक्षा लिने कामपनि अल्पज्ञले गर्दछ। सर्वज्ञ त सबै जीवका असल-खराब कर्मलाई सदादेखि ठीक ठीक जान्दछ। अनि शैतान सबैलाई भट्काउँछ भने शैतान लाई कसले भट्कायो ? शैतान आफैं भट्कियो भन्छौ भने अरू पनि अफैं भट्कन सक्दछन्, बीचमा शैतानको के काम ? अनि खुदाले नै शैतानलाई भट्काएको हो भने खुदा शैतानको पनि शैतान् ठहर्नेछ। यस्तो कुरा ईश्वरको हुनसक्तैन। अनि जो कोही भट्कने र भट्काउने गर्दछ, त्यो कुसङ्ग तथा अविद्याका कारण भ्रान्त हुन्छ॥ ३३ ॥

३४. तिमीलाई मुर्दा, रगत सुगुरको मासु र अल्लाह बेगर जसलाई केही पुकारिन्छ त्यो सबै हराम=निषिद्ध छ॥

समीक्षक—यहाँ 'मुर्दा चाहे आफैं मरोस् वा कसैले मार्नाले मरोस्, दुबै बराबर हुन्छ, भन्ने कुरा विचारणीय छ, हँ यिनमा केही फरक पनि छ, तर मृतकपनमा केही फरक छैन। अनि जब एउटा सुँगुरको निषेध गरिएको छ त के मनुष्यको मासु खानु उचित छ त ? परमेश्वरको नाममा शत्रु आदिलाई अत्यन्तै दु:ख दिएर प्राणहत्या गर्नु के राम्रो कुरा हुन सक्तछ ? हँ, ईश्वरले पूर्वजन्मको अपराधविना नै मुसलमानहरूका हातबाट दारूण दु:ख किन दिलायो ? के ती माथि दयालु छैन ? उनलाई पुत्रवत् मान्दैन ? जुन वस्तुबाट बढी उपकार हुन्छ ती गाई आदिलाई मार्ने निषेध नगर्नाले खुदाले हत्या गराएर ऊ जगत्‌को हानिकारक

भएको छ भन्ने जान्नुपर्दछ तथा हिंसारूप पापबाट कलङ्कित पनि हुन्छ। यस्ता कुरा खुदा र खुदाको पुस्तकको कहिल्यै हुनसक्तैनन्'॥ ३४॥

३५. रोजाको रात तिम्रालागि बिधान गरिएको छ कि आफ्ना स्त्रीहरूसँग मन्दनोत्सव गर्नू, ती तिम्रानिम्त पर्दा छन् र तिमी उनका निम्ति पर्दा हौ, अल्लाहले जान्यो कि तिमी चोरी अर्थात् व्यभिचार गर्दछौ, बस अनि अल्लाहले तिमीलाई, क्षमा गर्‍यो, बस उनीसँग मिल र जो अल्लाहले तिम्रालागि लेखिदिएको अर्थात् सन्तान खोज यति सम्म खाऊ, पिऊ कि तिम्रा लागि काला धागाबाट सेता धागा प्रकट होऊन् वा रातबाट जब दिन निस्कन्छ (तब सम्म खाऊ पिऊ)॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १८७॥

समीक्षक—यहाँ यो कुरा बुझिन्छ कि मुसलमानहरूको मत चल्दा वा त्यस अघि कसैले कुनै पौराणिकसँग 'एक महीनासम्म चल्ने चान्द्रायण व्रतको विधि के हो?' भनी सोध्यो होला। उसले चन्द्रको कला घट्ने बढ्ने अनुसार गाँस घटाउने–बढाउने र मध्याह्न दिनमा खाने भनेर लेखिएको त्यस शास्त्रविधिलाई नजानेर 'चन्द्रमाको दर्शन गरेर खानू' भन्यो होला, त्यसलाई यी मुसलमानहरूले यस किसिमको बनाए होलान्। तर व्रतमा स्त्रीसमागमको त्याग हुन्छ। त्यो एउटा कुरा खुदाले बढेर भनिदियो कि तिमी चाहे स्त्रीहरूको सभागम पनि गर्ने गर र रातमा चाहे अनेक पटक खाने गर। आखिर यो व्रत के भयो? दिउसो खाएनन् त राती खाइरहे। दिउसो न खानु र रात्रिमा खाने गर्नु यो सृष्टिक्रमको विपरीत हो॥ ३५॥

३६. अल्लाहको मार्गमा जो तिमीसँग लड्दछन् तीसँग लड़। तिमी उनलाई जहाँ भेट्टाउँछौ मार कतल (हत्या) भन्दा कुफ्र (इस्लाम नमान्नु) खराब हुन्छ॥ यति सम्म तीसँग लड कि कुफ्र नरहोस् र अल्लाहको दीन (धम) रहोस्॥ उनीहरूले तिमीमाथि जति ज्यादती गरे त्यतिनै तिमीउनीसँग गर॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९०,१९३,१९४॥

समीक्षक—कुरानमा यस्ता कुरा नभएका भए मुसलमानहरूले यति ठूलो अपराध जो अरू मतावलम्बीहरूमाथि गरे, त्यो गर्ने थिएनन्। अपराधै नगर्नेहरूलाई मार्नु तीमाथि ठूलो पाप हो। मुसलमान मतलाई ग्रहण नगर्नुलाई कुफ्र भन्दछन् अर्थात् मुसलमानहरू कुफ्र भन्दा कतललाई राम्रो मान्दछन्। अर्थात् जो हाम्रो दीन (धर्म) लाई मान्नेछैन, उसलाई हामी कतल गर्नेछौं। सो त्यसै गर्दै आएका छन्। मजहबको नाममा

लड्दा–लड्दा आफैं आज्य आदिबाट नष्ट भए। र उनको मन अरू मतावलम्बीहरू प्रति अति कठोर रहन्छ। के चोरीको बदला चोरी हो? कि जति अपराध चोर आदिले चोरी गरेर हामी प्रति गर्दछन् के हामीले पनि चोरी गर्ने? यो सर्वथा अन्यायको कुरा हो। कुनै अज्ञानीले हामीलाई गाली दिएमा के हामीले पनि उसलाई गाली नै दिने? यो कुरा न त ईश्वरको, न ईश्वरका भक्त विद्वान् को न ईश्वरोक्त पुस्तकको नै हुनसक्तछ। यो त केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्यको कुरा हो॥ ३६॥

३७. अल्लाह झगडालुलाई मित्र मान्दैन॥ ए मानिस हो! ईमान ल्याएका (विश्वास गरेका) छौ भने इसलाममा प्रवेश गर॥

—मं० १। सि० २। आ० २०५,२०८॥

समीक्षक—झगडा गर्नेलाई खुदा मित्र सम्झदैन भने किन आफैं मुसलमानहरूलाई झगडा गर्ने प्रेरणा गर्नेथियो र? तथा झगडालु मुसलमानहरूसँग मित्रता किन गर्दछ? के खुदा मुसलमानहरूको मतमा मिल्नाले नै खुश हुन्छ? त्यसो भए ऊ मुसलमानहरूकै पक्षपाती हो, सब संसारको ईश्वर होइन। यसबाट यहाँ यो कुरा बुझिन्छ कि न त कुरान ईश्वरकृत हो तथा यसमा बताइएको ईश्वर पनि ईश्वर हुनसक्तैन॥ ३७॥

३८. खुदा चाहेजसलाई अनन्त रिजक (सुख–साधन) दिन्छ॥

—मं० १। सि० २। आ० २१२॥

समीक्षक—के खुदा पाप–पुण्यविना नै त्यक्तिकै रिजक दिन्छ? अनि त असल र खराब कर्म गर्नु एकनासै भयो। किनकि सुख दुःख प्राप्त हुनु त उसको इच्छामा छ। यसकारण मुसलमानहरू धर्मदेखि विमुख भएर यथेष्टाचार=आफुखुसी व्यवहार गर्दछन् र कोही कोही भने कुरानमा भनिएको यस कुरामा विश्वास नगरेर धर्मात्मा पनि हुन्छन्॥ ३८॥

३९. खुदाले आज्ञा दियो। तँ सँग प्रश्न गरिन्छ रजस्वला स्त्रीलाई भन् कि ऊ अपवित्र छ, ऋतुसमयमा छुट्टै बस, जबसम्म ती पवित्र हुँदैनन्, उनका समीप नजाऊ। जब ती नुहाइसक्छन् उनका समीप त्यस ठाउँबाट जाऊ॥ तिम्रा पत्नीहरू तिम्रा लागि खेती हुन्। बस आफ्ना खेतमा जसरी चाहान्छौ जाऊ॥ तिमीलाई अल्लाह लगब=बेकार, व्यर्थ शपथमा समाप्दैन॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २३२,२२३,३२५॥

समीक्षक—रजस्वलाको स्पर्श–सङ्ग नगर्न लेखिएको यो कुरा राम्रो हो। तर स्त्रीहरूलाई खेती जस्तै बताइएको र जस्तो जसरी चाहेपनि जाऊ भनो लेखिएको यो कुरा मनुष्यहरूलाई विषयी बनाउने कारण

हो। खुदा व्यर्थ शपथमा समात्दैन भने सबै झूट बोल्नेछन्, शपथ तोड्नेछन्। यसबाट खूदा झूठको प्रवर्त्तक हुनेछ॥ ३९ ॥

४०. त्यो कुन मनुष्य हो जो अल्लाहलाई उधारो दिन्छ, ल ठीक छ, अल्लाह उसको निम्ति त्यो, वस्तु दोब्बर गरोस्॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २४५॥

यसै आयतको भाष्यमा तफसीरहुसैनोमा लेखेको छ कि—एउटा मनुष्य मुहम्मद साहेबकहाँ आयो। उसले भन्यो कि ए रसूलुल्लाह! खुदा कर्जा किन मांग्दछ? उनले उत्तर दिएकि तिमीलाई बहिस्तमा लैजानका लागि उसले भन्यो–तपाईं जमानी बस्नुहुन्छ भने म दिन्छु। मुहम्मद साहब उसको जमानी बस्नुभयो॥ खुदाको विश्वास भएन, उसको दूतको चाहिं विश्वास लाग्यो।

समीक्षक—आखिर खुदालाई कर्जा, उधारो लिएर के प्रयोजन? जसले सारा संसारलाई बनायो ऊ मनुष्यसँग कर्जा लिन्छ? कहिल्यै लिंदैन। यो त नसोचिकनै भन्न सकिन्छ। के उसको ढुकुटी रितिएको थियो? के त्यो हुण्डी पुर्जी व्यापार आदिमा लागिरहेको हुँदा घाटमा फँस्यो र टाट पल्टियो, अनि अधारो लिन थाल्यो? अनि एकको दुई–दुई (दोब्बर) दिन स्वीकार गर्दछ, के यो साहुकारहरूको काम हो? यस्तो काम त दिवालिया=टाट पल्टेको वा खर्च बढी गर्ने र आय कम हुनेहरूले गर्ने गर्दछन्, ईश्वरले गर्दैन॥ ४० ॥

४१. तीमध्ये कसैले ईमान ल्याए र कोही काफिर भए, अल्लाहले चाहेको भए लड्ने थिएनन्, अल्लाह जे चाहन्छ, गर्दछ॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५३॥

समीक्षक—के जति लडाइँ हुन्छ त्यो ईश्वरको इच्छाबाट हुन्छ? के उसले अधर्म गर्न चाहेमा गर्नसक्तछ? यस्तै कुरा हो भने त्यो खुदा नै होइन। किनकि शान्ति भङ्ग गरेर लडाइँ गराउनु सज्जन मनुष्यको काम होइन। यसबाट यो कुरान ईश्वरले बनाएको होइन र कुनै धार्मिक विद्वान्द्वारा रचिएको पनि होइन भन्ने कुरा बुझिन्छ॥ ४१ ॥

४२. आकाश र पृथ्वीमा छ, जे सब उसैका लागि छ। उसको कुर्सीले आकाश र पृथ्वीलाई समातेको छ॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५५॥

समीक्षक—आकाश र पृथ्वीमा जुन पदार्थ छन्, ती सब जीवहरूका लागि परमात्माले उत्पन्न गरेको हो, आफ्ना निम्ति होइन। किनकि ऊ पूर्णकाम (सबै इच्छा परिपूर्ण भएको) छ, उसलाई कुनै

पदार्थको अपेक्षा छैन। उसको कुर्सी छ भने ऊ एकदेशी भयो। जो एकदेशी हुन्छ, त्यो ईश्वर भनिंदैन। किनकि ईश्वर त ब्यापक छ॥ ४२ ॥

४३. अल्लाह सूर्यलाई पूर्वबाट ल्याउँछ, बस, तँ पश्चिमबाट लिएर आइज। बस, जो काफिर हैरान भएको थियो। निश्चय अल्लाह पापीहरूलाई मार्ग देखाउँदैन॥—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० ३५८॥

समीक्षक—ल हेर, यो अविद्याको कुरा। सूर्य पूर्वबाट पश्चिम र पश्चिमबाट पूर्व कहिल्यै आउने जाने गर्दैन। त्यो त आफ्नो परिधिमा घुमिरहन्छ। यसबाट कुरानको कर्त्तालाई खगोल र भूगोलको विद्या आउँदैनथियो भन्ने कुरा निश्चितरूपमा जानिन्छ। पापीहरूलाई बाटो देखाउँदैन भने पुण्यात्माहरूलाई पनि मुसलमानहरूका खुदाको आवश्यकता छैन। किनकि धर्मात्मा त धर्ममार्गमा नै हुन्छन्। मार्ग त धर्मबाट भट्केका/बिर्सेका मनुष्यहरूलाई बताउनु पर्ने हुन्छ। सो कर्त्तव्य न गर्ने कुरानको कर्त्ताको यो ठूलो भूल हो॥ ४३ ॥

४४. भन्यो–चार जनावरहरू लिएर उनको अनुहार चिनीराख। अनि हरेक पहाडमा तीमध्ये एउटा–एउटा टुक्रा राखिदेऊ! अनि उनलाई बोलाए। दौडेर तिमीकहाँ आउनेछन्॥—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६०॥

समीक्षक—वा: रे वा! ल हेर! मुसलमानहरूको खुदा भानमतीको जस्तो खेल गरिरहे छ! के यस्तै कुरा बाट खुदाको खुदाई (ईश्वरको ईश्वरत्व) हुन्छ? बुद्धिमान्हरू यस्ता खुदालाई तिलाञ्जलि दिएर टाढै रहनेछन्, र मूर्खहरू फस्नेछन्। यसबाट खुदाको प्रशंसाको सट्टा उसको भागमा तिरस्कार नै पर्नेछ॥ ४४ ॥

४५. चाहेजसलाई नीति दिन्छ॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६९॥

समीक्षक—जब जसलाई चाहान्छ त्यसलाई नीति दिन्छ भने जसलाई चाहँदैन उसलाई अनीति दिंदो हो! यो कुरा ईश्वरताको होइन। तर जो पक्षपात छोडेर सबैलाई नीतिको उपदेश गर्दछ, उही ईश्वर र आप्त हुनसक्तछ, अरू होइन॥ ४५ ॥

४६. जो ब्याज खान्छन् ती कब्र (चिहान) बाट उठ्नेछैनन्॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २८४॥

समीक्षक—के ती कब्र मै पल्टिरहनेछन्? अनि पल्टिरहनेछन् भने कहिलेसम्म? यस्ता असम्भव कुरा ईश्वरको पुस्तकमा हुनसक्तैनन्, यस्ता त बालबुद्धिभएकाहरूका कुरा हुनसक्तछन्॥ ४६ ॥

४७. उ जसलाई चाहनेछ, क्षमा गर्नेछ, चाहेजसलाई दण्ड दिनेछ,

किनकि उ सब वस्तुमाथि बलवान् छ॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २८४॥

समीक्षक—क्षमा गर्न योग्यलाई क्षमा न गर्नु र अयोग्यलाई क्षमा गर्नु के गबरगण्ड (मूर्ख) राजाको जस्तै यो कर्म होइन? यदि ईश्वर जसलाई चाहन्छ पापी वा पुण्यात्मा बनाउँदछ भने जीवलाई पाप पुण्य नलाग्नु पर्दछ। जब ईश्वरले उसलाई त्यस्तै बनाएको छ भने जीवलाई सुख दु:ख पनि नहुनु पर्दछ। जस्तै सेनापतिको आज्ञाले कुनै सिपाहीले कसैलाई मार्‍यो वा रक्षा गर्‍यो भने त्यसको फलभागी त्यो सिपाही हुँदैन, त्यस्तै ती (जीव) पनि (फलभागी) होइनन्॥ ४७॥

४८. भन् यो भन्दा राम्रो अरू के परहेजगार (धर्मानुयायी) हरूलाई खबर दिऊ कि अल्लाहको तर्फबाट बहिश्त=स्वर्ग छन्, जहाँ नहरहरू चल्दछन्, अल्लाहको प्रसन्नताले उनैमा सधैं बस्ने शुद्ध बीबीहरू=स्त्रीहरू छन् अल्लाह उनलाई बन्दा=पुरुषहरूका साथमा देख्नेछ॥

—मं० ११। सि० ३। सू० ३। आ० १५॥

समीक्षक—आखिर यो स्वर्ग हो अथवा वेश्यावन? यसलाई ईश्वर भनौं या स्त्रैण=स्त्रीमा लम्पट? यस्ता कुरा भएको पुस्तकलाई के कुनै पनि बुद्धिमान्ले परमेश्वरले बनाएको पुस्तक मान्नसक्तछ? यो पक्षपात किन गर्दछ? जो बीबीहरू बहिस्तमा सधैं रहन्छन् ती यहाँ जन्मेर वहाँ गएका हुन् अथवा त्यहीं जन्मेका हुन्? यदि यहाँ जन्मेर वहाँ गएका हुन् र कयामतको रात भन्दा पहिले नै बीबीहरूलाई वहीं बोलाएको हो भने उनका खाविन्दहरू=मालिक पतिलाई किन बोलाएन? तथा कयामतको रातमा सबैको न्याय हुनेछ भन्ने नियमलाई किन भङ्ग गरेको? त्यहीं जन्मेकी हुन् भने कयामत सम्म ती कसरी निर्वाह गर्दछन्? उनका लागि पुरुष पनि छन् भने यहाँबाट बहिश्तमा जाने मुसलमानहरूलाई खुदा बीबीहरू कहाँबाट दिनेछ? अनि बहिश्तमा सधैं बस्ने बीबीहरू बनाए जस्तै पुरुषहरूलाई पनि त्यहाँ सधैं बस्ने किन बनाएन? यसकारण मुसलमानहरूको खुदा अन्यायकारी बेसमझ=बुद्धि सुद्धि नभएको हो॥ ४८॥

४९. निश्चय इस्लाम अल्लाहको तर्फबाट दीन=धर्म हो॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १९॥

समीक्षक—के अल्लाह मुसलमानहरूकै हो, अरूको होइन? के तेह्रसय वर्ष अघि ईश्वरीय मत छँदैथिएन? यसैबाट यो कुरान ईश्वरले बनाएको त होइन, तर कुनै पक्षपातीले बनाएको हो भन्ने

बुझिन्छ॥ ४९॥

५०. प्रत्येक जीवलाई पूरै दिइनेछ, तथा तीमाथि अन्याय गरिने छैन॥ भन्या अल्लाह! तँ नै संसारको मालिक होस्, चाहे जसलाई दिन्छस्, चाहेजोबाट खोस्तछस्। चाहे जसलाई प्रतिष्ठा र चाहेजसलाई अप्रतिष्ठा दिन्छस्। सबैथोक तेरै हातमा छ, प्रत्येक वस्तुमाथि तैं बलवान् छस्॥ रातलाई दिनमा र दिनलाई रातमा बदल्दछ तथा मृतकलाई जीवितबाट जीवितलाई मृतकबाट निकाल्दछ, र जसलाई चाहान्छ अनन्त अन्न दिन्छ॥ मुसलमानहरूलाई उचित हुन्छ कि मुसलमानहरू बाहेक काफिरहरूलाई मित्र नबनाउन्। जो कोही यसो गर्दछ भने त्यो अल्लाहको तर्फबाट होइन॥ भन जो तिमी अल्लाहलाई चाहन्छौ भने मेरो पक्षमा लाग। अल्लाह तिमीलाई चाहनेछ र तिम्रा पाप क्षमा गर्नेछ। निश्चयनै करूणामय छ॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २४-२७,३०॥

समीक्षक—जब प्रत्येक जीवलाई कर्महरूको पूरा-पूरा फल दिइने छ भने क्षमा गरिने छैन। अनि क्षमा गरिने छ भने पूरा फल दिइने छैन, र अन्याय हुनेछ। जब उत्तम कर्मविना नै राज्य दिने छ भने पनि अन्यायकारी हुने छ॥ आखिर जिवीतबाट मृतक र मृतकबाट जीवित कहिल्यै हुनसक्तछ? किनकि ईश्वरको व्यवस्था अच्छेद्य अभेद्य छ। कहिल्यै अदल-बदल हुनसक्तैन॥ ल अब पक्षपातका कुरा त हेर! जो मुसलमानहरूको मजहबमा छैनन्, उनलाई काफिर ठहराउने। उनमा श्रेष्ठहरूसँग पनि मित्रता नराख्ने, र मुसलमानहरूमा दुष्टहरूसँग पनि मित्रता राख्नका लागि उपदेश गर्नु ईश्वरको ईश्वरताबाट बहिष्कृत हुन्छ॥ यसबाट यो कुरान, कुरानको खुदा र मुसलमानहरू केवल पक्षपात, अविद्याले भरिपूर्णछन्, भन्ने प्रष्टिन्छ। यसैकारण मुसलमानहरू अन्धकारमा छन्॥ अरू हेर मुहम्मद साहेबको लीला कि तिमो मेरी पक्ष गर्नेछौ भने खुदा तिम्रो पक्ष गर्नेछ। अनि जो तिमी पक्षपातरूप पाप गर्नेछौ, त्यसलाई पनि क्षमा गर्नेछ॥ यसबाट मुहम्मद साहेबको अन्त:कारण शुद्ध थिएन भन्ने कुरा सिद्धहुन्छ। यसैकारण आफ्नो मतलब सिद्ध गर्नको लागि मुहम्मद साहेबले कुरान बनाएको वा बनाउन लगाए हो भन्ने कुरा बुझिन्छ॥ ५०॥

५१. जुन बखत फरिश्ताले भने कि ए मर्य्यम। जगत्का स्त्रीहरूभन्दा माथि तँलाई अल्लाहनेले मन पराएको र पवित्र गरेको छ॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४१॥

समीक्षक—आखिर हिजोआज खुदाका फरिश्ता र खुदा कसैसँग

कुरा गर्न आउँदैनन् भने पहिले कसरी आएहोलान्? पहिलेका मनुष्य पुण्यत्मा थिए, अबका छैनन् भन्छौ भने यो कुरा मिथ्या हो। तर जुन समयमा ईसाई र मुसलमानहरूको मत चलेको थियो। त्यसबखत ती देशहरूमा जङ्गली र विद्याहीन मनुष्य बढी थिए। यसैकारण यस्ता विद्याविरूद्ध मत चल्न सके। अब विद्वान् बढी छन्, यसैकारण चल्नसक्तैन। तर जो जो यस्ता पोकल=खोक्रा मजहब=मतछन्, तो पनि अस्ताउदै जान्छन्, बढ्ने त सम्भावनै छैन॥५१॥

५२. उसलाई भन्दछ कि 'हो', बस् भैजान्छ॥ काफिरहरूले धोखा दिए ईश्वर ले धोका दियो, ईश्वर धेरै मकर=छल गर्दछ॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४६,५३॥

समीक्षक—जब मुसलमानहरू खुदा बाहेक अर्को चीजलाई मान्दैनन् भने खुदाले उसलाई भन्यो? तथा उसले भन्नाले को भयो? यसको उत्तर मुसलमानहरू सात जन्ममा पनि दिन सक्ने छैनन्। किनकि उत्पादन कारण वेगर कार्य कहिल्यै हुनसक्तैन। कारण बिना कार्य भयो भन्नु, आफ्ना आमा–बाबु बिना नै मेरो शरीर भयो भने जस्तै हो। जो धोका खान्छ र धोका दिन्छ तथा मकार अर्थात् छल र दम्भ गर्दछ त्यो ईश्वर त कहिल्यै हुनसक्तैन, उत्तम मनुष्य पनि यस्तो काम गर्दैन॥५२॥

५३. के तिमीलाई यो धेरै हुने छैन कि अल्लाह तिमीलाई तीनहजार देवदूत (फरिश्ता) का साथ सहायता गर्नेछ?॥

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १२४॥

समीक्षक—मुसलमानहरूलाई तीनहजार फरिश्ताका साथ सहायता गर्थ्यो भने अब मुसलमानहरूको बादशाही धेरैजसो नष्ट भैसक्यो र अझै हुँदैजाँदैछ, किन सहायता गर्दैन?

यसकारण यो महाअन्यायको कुरा केवल लोभ दिएर मूर्खहरूलाई फसाउनका लागि हो॥५३॥

५४. र काफिरहरू विरूद्ध हाम्रो सहायता गर॥ अल्लाह तिम्रो उत्तम सहायक र कारसाज हो॥ तिमी अल्लाहको मार्ग मारियौ वा मर्‍यौ भने अल्लाहको दया धेरै राम्रो छ॥

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १४६,१४९,१५६॥

समीक्षक—अब हेर मुसलमानहरूको भूल कि जो आफ्नो मतभन्दा भिन्न छन् उनलाई मार्नका लागि खुदाको प्रार्थना गर्दछन्। के परमेश्वर सोझो छ र यिनका कुरा मानिहाल्नेछ?॥ यदि मुसलमानहरूका कारसाज (कम सिद्ध गर्ने) अल्लाहनै हो भने मुसलमानहरूका कार्य

नष्ट किन हुन्छन्? तथा खुदा पनि मुसलमानहरूका साथ मोहले फसेको जस्तो प्रतीत हुन्छ। खुदा यस्तो पक्षपाती छ भने धर्मात्मा पुरुषहरूको उपासनीय कहिल्यै हुनसक्तैन॥५४॥

५५. र अल्लाह तिमीलाई परोक्षज्ञ गर्दैन, तर आफ्ना पैगम्बरहरूबाट चाहेजसलाई मनपराउछ, बस अल्लाह र उसका रसूल (पैगम्बर) का साथ ईमान ल्याऊ॥ —मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १७९॥

समीक्षक—मुसलमानहरू खुदा बाहेक कसैसँग ल्याउँदैनन् र कसैलाई खुदाको साझी मान्दैनन् भने पैगम्बर साहबलाई किन खुदासँग शरौक (सम्मिलित) गरे? अल्लाहले पैगम्बरका साथ इमान ल्याउने कुरा लेख्यो। यसैबाट पैगम्बर पनि शरीक भयो। अनि खुदालाई लाशरीक भन्नु ठीक भएन। यदि यसको अर्थ मुहम्मद साहेब पैगम्बर हुन् भन्ने कुरामा विश्वास गर्नुपर्दछ भन्ने हो भने यो प्रश्न हुन्छ कि मुहम्मद साहब हुनुपर्नेको आवश्यकता छ र? यदि खुदा उनलाई पैगम्बर नबनाई आफ्नो अभीष्ट कार्य गर्नसक्तैन भने अवश्य असमर्थ भयो॥५॥

५६. ए इमान भएकाहरू! सन्तोष गर, परस्पर थामिराख र लडाइमा लागि रहे। तिमी छुटकारा पाउनेछौ। अल्लाह देखि डराऊ॥

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० २००॥

समीक्षक—यो कुरानको खुदा र पैगम्बर दुबै लडाइबाज थिए। लडाइको आज्ञा दिने व्यक्ति शान्तिभङ्ग गर्ने हुन्छ। के नाममात्रको खुदादेखि डर्नाले छुटकारा पाइन्छ अथवा अधर्मयुक्त लडाइ आदि देखि डर्नाले? पहिलो पक्ष ठीक हो भने डर्नु नडर्नु बराबर छ र दोस्रो पक्ष हो भने ठीक छ॥५६॥

५७. यो अल्लाहका हद्द (सीमा) हुन्, जो अल्लाह र उसको रसूलले भनेको मान्नेछ त्यो बहिश्तमा पुग्नेछ, जहाँ नहरहरू चल्दछन्, र यही ठूलो प्रयोजन हो॥ जो अल्लाह र उसको रसूलको आज्ञा भंग गर्नेछ र उसको सीमा भन्दा बाहिर हुनेछ, त्यो सधैं रहने आगोमा डढाइने छ र उसका लागि खराब गर्ने दु:ख छ॥

—मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३,१४॥

समीक्षक—खुदाले नै मुहम्मद साहब पैगम्बरलाई आफ्नो गरेको छ, र स्वयं कुरानमानै लेखेको छ। अनि हेर, खुदा पैगम्बरसँग कसरी फँसेको छ कि जसले बहिश्तमा रसूलको साझा गरेको छ? कुनै एउटा कुरामा पनि मुसलमानहरूको खुदा स्वतन्त्र छैन भने लाशरीक भन्नु व्यर्थै छ। यस्ता यस्ता कुरा ईश्वरोक्त पुस्तकमा हुनसक्तैनन्॥५७॥

५८. र अल्लाह एक त्रसरेणुको बराबर पनि अन्याय गर्दैन, अल्लाहले उसको (जीवको) भलाइलाई दोब्बर गर्नेछ।

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ४० ॥

समीक्षक—खुदाले एक त्रसरेणु पनि अन्याय नगर्ने भए पुण्यको दोव्बर फल किन दिन्थ्यो, तथा मुसलमानहरूको पक्षपात किन गर्दछ? वास्तवमा कर्महरूको दोब्बर वा कम फल दिएमा खुदा अन्यायी हुनेछ॥५८॥

५९. जब त कहाँबाट बाहिर निस्कन्छन्, तेरो भनाइको विपरीत सोच्तछन्, अल्लाह उनको सल्लाहलाई लेख्छ॥ अल्लाहले उनीहरूले कमाएको वस्तुका कारण उनलाई उल्टाए॥ के तिमी अल्लाहबाट गुमराह (पथभ्रष्ट) गरिएकालाई मार्गमा ल्याउन चाहन्छौ? बस, जसलाई अल्लाहले पथभ्रष्ट गर्दछ, उसले कहिल्यै बाटो भेट्टाउने छैन॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८१,८८॥

समीक्षक—अल्लाह कामकुरालाई लेखेर बहीखाता बनाउँदै जान्छ भने सर्वज्ञ होइन। सर्वज्ञ हो भने लेख्ने के काम? अनि मुसलमानहरू 'शैतान नै सबैलाई भ्रममा पार्ने हुनाले दुष्ट भएको हो' हँ, यति फरक छ भन्न सकिन्छ कि खुदा ठूलो शैतान, ऊ सानो शैतान। किनकि यो मुसलमानहरूकै भनाइ हो कि जो भ्रममा पार्दछ, उही शैतान हो। यसै प्रतिज्ञाबाट खुदालाई पनि शैतान बनाए॥५९॥

६०. र आफ्ना हात रोक्दैनन् भने उनलाई जहाँ भेट्टाउँछौ, समात र मारिहाल॥ मुसलमानले मुसलमानलाई मार्नु उचित हुँदैन। यदि कसैले थाहा नपाई मारिहाल्यो भने, बस मुसलमानको एउटा गर्दन छोड्नुपर्दछ (अर्थात् गुलामीबाट आजाद गर्नुपर्दछ)। र उनीहरूको तर्फबाट जो रगत बगाइन्छ, जो सन्धि त्यस जाति (कौम) सँग हुन्छ र तिम्रा लागि दान दिन्छन्, जो दुश्मनको जातिबाट हुन्छन्॥ अनि जसले मुसलमानलाई जानेरै मार्दछ, त्यो सदैवकाल दोजख (नर्क) मा रहनेछ। त्यस प्रति अल्लाहको क्रोध र लानत (धिक्कार) छ॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ९१,९३॥

समीक्षक—ल अब हेर महापक्षपातका कुरा! कोही मुसलमान होइन भने त्यसलाई जहाँ भेट्टाए पनि मारिहाल्नु र मुसलमानलाई चाहिं नमार्नु अरे। झुक्किएर मुसलमानलाई मार्नमा प्रायश्चित्त र अरूलाई मार्नाले बहिश्त (स्वर्ग) मिल्नेछ। यस्ता उपदेशलाई कुवामा हालिदिनुपर्दछ। यस्ता-यस्ता पुस्तक, यस्ता-यस्ता पैगम्बर, यस्ता-

यस्ता खुदा र यस्ता यस्ता मतबाट हानि बाहेक लाभ केही पनि हुँदैन, यस्ता त नहुनु नै राम्रो। अनि बुद्धिमानहरूले यस्ता प्रमादपूर्ण मतबाट छुट्टै रहेर वेदोक्त सबै कुरा मान्नुपर्दछ। किनकि उसमा अलिकति पनि असत्य छैन। अनि मुसलमानलाई मार्नाले दोजख (नरक) पाइन्छ भन्ने कुरामा अरू मतावलम्बीहरू चाहिं मुसलमानलाई मार्नाले स्वर्ग पाइन्छ भन्दछन्, अब भन यी दुबै मतमा कुनलाई मानौं, र कुनलाई छोडौं? तर यस्ता मूर्खहरूद्वारा कल्पित मतहरूलाई छोडेर वेदोक्त मतलाई सबै मनुष्यहरूले स्वीकार गर्नु उचित हुन्छ, जुन मतमा आर्यमार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषहरूको मार्गमा चल्नु र दस्यु अर्थात् दुष्टहरूको मार्गदेखि अलगै बस्नु लेखिएको छ, त्यही सर्वोत्तम मत हो॥६०॥

६१. र शिक्षा प्रकट भएपछि जसले रसूल (पैगम्बर) सँग विरोध गर्‍यो र मुसलमानहरूको विरुद्ध पक्ष लियो, अवश्य हामी उसलाई दोजखमा पठाउनेछौं॥ —मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ११५॥

समीक्षक—ल अब खुदा र रसूलका पक्षपातका कुरा त हेर! मुहम्मद साहेब आदिले सम्झेका थिए कि खुदाका नामबाट हामीले यस्ता कुरा नलेखेमा आफ्नो मजहब (सम्प्रदाय) चल्ने छैन, माल मिल्ने छैन र आनन्दभोग हुनेछैन। यसैबाट 'ती आफ्नो स्वार्थ पूर्ति गर्नमा र अरूका कार्य बिगार्नमा पूर्ण थिए' भन्ने कुरा विदित हुन्छ। यसकारण यी अनाप्त (अप्रामाणिक) थिए। आप्त विद्वान्हरूको समक्ष यिनीहरूका कुराको प्रमाण कहिल्यै हुनसक्तैन॥६१॥

६२. जो अल्लाह, फरिश्ताहरू, किताबहरू, रसूल र कयामतसँग कुफ्र गर्दछ (यिनलाई मान्दैन), त्यो निश्चय नै गुमराह=पथभ्रष्ट हो॥ जुन व्यक्तिहरूले विश्वास गरे, अनि काफिर भए, फेरि फेरिए=बदलिए र कुफ्रतर्फ बढी बढे, अल्लाह उनलाई कहिल्यै क्षमा गर्नेछैन र बाटो देखाउने छैन॥ —मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३५,१३७॥

समीक्षक—के अब पनि खुदा लाशरीक=असम्बद्ध रहन सक्तछ? लाशरीक भन्दै जानु र ऊसँग धेरैजसो शरीक=सम्बद्ध रहेको कुरा मान्दै जानु, के यो परस्पर विरुद्ध कुरा होइन? के तीन पटक क्षमा गरेपछि खुदा क्षमा गर्दैन? तथा तीन पटक कुफ्र गर्दा बाटो देखाउँछ? अथवा चौथो पटक भन्दा उता बाटो देखाउँदैन? यदि सबैले चार चार पटक कुफ्र धेरै बढ्ने छ॥६२॥

६३. निश्चय नै अल्लाह खराब व्यक्तिहरूलाई र काफिरहरूलाई दोजख=नरकमा जम्मा गर्नेछ॥ निश्चय नै खराब व्यक्ति अल्लाहलाई

धोका दिन्छन् र उनलाई ऊ धोका दिन्छ॥ विश्वास भएकाहरू! मुसलमानहरू बाहेक काफिरहरूलाई मित्र न बनाओ॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १४०,१४२,१४४॥

समीक्षक—मुसलमानहरू बहिश्तमा र अरू दोजखमा जान्छन् भन्ने कुराको के प्रमाण छ? वा: जी वा! खराब व्यक्तिहरूबाट धोका खाने र अरूलाई धोका दिने खुदा हामी देखि अलग्गै रहोस्। तर जो धोकाबाज छन् तीसँगै गएर मेल–मिलाप गरोस् र तो ऊ (खुदा) सँग मिलोमतो गरून्, किनकि 'याट्टशी शीतला देवी ताट्टशः खरबाहनः'। जस्तोलाई त्यस्तै मिलेमा नै निर्वाह हुन्छ। जसको खुदा धोकेबाज छ, उसका उपासकहरू धोकेबाज किन न होऊन्? के दुष्ट मुसलमानहरूसँग मित्रता र मुसलमान बाहेक अरू श्रेष्ठसँग शत्रुता गर्नु कसैको निम्ति उचित हुन सक्तछ?॥६३॥

६४. मानिसहरू! निश्चयनै तिमीकहाँ सत्यका साथ खुदाको तर्फबाट पैगम्बर आयो, बस तिमी ती प्रति विश्वास राख॥ अल्लाह माबूद (?) एक्लो छ॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १७०,१७१॥

समीक्षक—पैगम्बरहरू प्रति ईमान=विश्वास राख्न लेखेपछि ईमानमा पैगम्बर खुदाको शरीक अर्थात् साझेदार भयो वा भएन? अल्लाह एकदेशी छ, व्यापक छैन र त उकहाँ पैगम्बर आउने जाने गर्दछन्। यसो हो भने त्यो ईश्वर पनि हुनसक्तैन। कतै सर्वदेशी लेख्छन्, कतै एकदेशी लेख्दछन्। यसबाट 'कुरान एउटाले बनाएको नभएर अनेकौंले बनाएको हो' भन्ने कुरा बुझिन्छ॥६४॥

६५. मुर्दा, रगत, सुँगुरको मासु, जसमा अल्लाह बाहेक केही अरू नै पढियोस्, गला घोट्ने, लाठी मार्ने, माथिबाट खस्ने, सींग मार्ने, र दरिन्दा=हिंसक जन्तुले खाएको तिमीलाई हराम=निषिद्ध गरिएको छ॥ —मं० १। सि० ६। सू० ५। आ० २॥

समीक्षक—के यति नै पदार्थ हराम=निषिद्ध हुन्? के अरू धेरैजसो पशु र तिर्य्यक् जीव कीरा आदि मुसलमानहरूका लागि हलाल=विहित हुनेछन्? यस कारण यो मनुष्यको कल्पना हो, ईश्वरको होइन। यसकारण यसको प्रमाण पनि छैन॥६५॥

६६. र अल्लाहलाई राम्रो उधारो देऊ, अवश्य म तिम्रो खराबी हटाउनेछु, र तिमीलाई बहिश्तहरूमा पठाउनेछु॥

—मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १२॥

समीक्षक—वा:! मुसलमानहरूका खुदाको घरमा केही पनि धन बाँकी रहने होला। बाँकी भएको भए किन पो उधारो माग्दथ्यो र? तथा उनीहरूलाई 'तिमीहरूको खराबी हटाएर तिमीलाई स्वर्ग पठाउने छु' भनेर किन झुक्याउँदथ्यो र यहाँ 'खुदाका नामबाट मोहम्मद साहेबले आफ्नो स्वार्थ पूर्ति गरे' भन्ने कुरा बुझिन्छ॥६६॥

६७. जसलाई चाहन्छ क्षमा गर्दछ, जसलाई चाहन्छ दुःख दिन्छ॥ जे अरू कसैलाई पनि दिएन, त्यो तिमीलाई दियो॥

—मं० २। सि० ६। सू० ५ आ० १८,२१॥

समीक्षक—जसरी शैतान जसलाई चाहन्छ पापी बनाउँदछ, त्यस्तै के मुसलमानहरूको खुदा पनि शैतान को काम गर्दछ? यसो हो भने बहिश्त र दोजखमा खुदा नै जाओस्। किनकि ऊ पापपुण्य गर्ने भयो, जीव भने पराधीन छन्। जसरी सेना सेनापतिको अधीनमा रहेर रक्षा गर्ने र कसैलाई मार्ने गर्दछ, त्यसको भलो–कुभलो सेनापतिको हुन्छ, सेना माथि त्यसको उत्तरदायित्व हुँदैन। (त्यस्तै खुदाको अधीन जीवलाई असल–खराब फल प्राप्त नभई त्यो सबै खुदाले नै भोग्नुपर्ने हुन्छ)॥६७॥

६८. अल्लाहको आज्ञा मान र रसूलको आज्ञा मान॥

—मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९२॥

समीक्षक—हेर, यो खुदा शरीक भएको कुरा हो। अनि खुदालाई 'लाशरीक' मान्नु व्यर्थ छ॥६८॥

६९. जो भईसक्यो त्यसलाई अल्लाहले माफ गऱ्यो र जो कोही फेरि गर्नेछ अल्लाह ऊसँग बदला लिनेछ॥

—मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९५॥

समीक्षक—गरेका पापलाई क्षमा गर्नु भनेको पाप गर्ने आज्ञा दिएर पाप बढाउनु हो। पाप क्षमा गर्ने कुरा जुन पुस्तकमा छ, त्यो न त ईश्वरले न कुनै विद्वानले नै बनाएको हो, बरू त्यो पापवर्द्धक हो। हँ, आगामी पाप छुटाउनका लागि कसैसँग प्रार्थना, र स्वयं पाप छोड्नका लागि पुरुषार्थ तथा पश्चात्ताप गर्नु उचित हुन्छ। तर पापलाई न छोडेर पश्चात्ताप मात्र गरिरहनाले केही पनि हुन सक्तैन॥६९॥

७०. र जो अल्लाह माथि झूटो कुरा लगाउँछ र भन्दछ कि मतर्फ त्यही (पुस्तक) गरियो, तर त्यही त्यस तर्फ गरिएन, र जो भन्दछ कि जसरी अल्लाह उतार्दछ, मपनि उतार्नेछु त्यस मनुष्यभन्दा बढी पापी को छ?॥ —मं० २। सि० ७। सू० ६। आ० ९४॥

समीक्षक—यसबाट मुहम्मद 'साहेबले' म कहाँ खुदाको तर्फबाट आयतहरू आउँछन् भन्दा अरू कुनै अर्कोले पनि मुहम्मद साहेबका जस्तै 'मकहाँ पनि आयत उत्रन्छन्, मलाई पनि पैगम्बर मान' भनी लीला रच्यो होला, यस कुरालाई हटाउन र आफ्नो प्रतिष्ठा बढाउनका लागि मुहम्मद साहबले यो उपाय गरेको होला भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ॥७०॥

७१. अवश्य हामीले तिमीलाई उत्पन्न गर्‍यौं, अनि तिम्रा सूरत=अनुहार बनायौं, अनि फरिश्ताहरूसँग भन्यौं कि आदमलाई सिजदा=प्रणाम गर, बस उनीहरूले सिजदा गरे तर शैतान सिजदा गर्नेहरू मध्येको भएन॥ भन्यौं, जब मैले तँलाई आज्ञा दिएँ, अनि कसले रोक्यो कि तैंले सिजदा गरिनस्? भन्यो, म ऊभन्दा असल छु। तैंले मलाई आगोबाट र उसलाई माटोबाट उत्पन्न गरिस्॥ भने त्यसबाट (बहिश्तबाट) ओर्ली, यो तेरो योग्य होइन कि तँ उसमा अभिमान गरेस्॥ भन्यो, त्यस दिनसम्म छूट दे कि मानिसहरू कब्रहरूबाट उठाइऊन्॥ भने निश्चय तँ छूट दिइएकाहरूमा छस्॥ भन्यो, बस यसको कसम छ कि तैंले मलाई गुमराह=पथभ्रष्ट गरिस्, अवश्य म पनि उनका लागि तेरो सोझो बाटोमा बस्ने छु॥ र प्राय: तँ उनलाई धन्यवाद गर्ने पाउने छैनस्॥ भनें, त्यसबाट दुर्दशाका साथ निक्ली। अवश्य जो कोही तीमध्ये तेरो पक्ष लिनेछ, तिमीहरू सबैले दोजखलाई भन्नेछु॥ —मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ११-१८॥

समीक्षक—अब खुदा र शैतानको झगडालाई ध्यान दिएर सुन। फरिश्ता नोकर जस्तै थियो। उसले पनि खुदालाई टेरे न र खुदाले उसको आत्मालाई पवित्र पनि गर्न सकेन। अनि यस्तो पापी बनाएर गदर=विद्रोह गर्ने विद्रोहीलाई खुदाले छोड्यो। खुदाको यो ठूलो भूल हो। शैतान त सबैलाई भ्रममा पार्ने र खुदा शैतानलाई भ्रममा पार्ने हुनाले 'खुदा त शैतानको पनि शैतान हो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। किनकि शैतान प्रत्यक्ष भन्दछ कि 'तैंले मलाई गुमराह गरिस्'। यसबाट खुदामा पवित्रता पनि छैन भन्ने बुझिन्छ र सबै खराबीहरूलाई चलाउने मूलकारण खुदा भयो। यस्तो खुदा मुसलमानहरूकै हुनसक्तछ, अरू श्रेष्ठ विद्वान्हरूको हुनसक्दैन। अनि रिश्ताहरूसँग मनुष्यजस्तै वार्तालाप गर्नाले मुसलमानहरूको खुदा देहधारी, अल्पज्ञ, न्याय रहित छ। यसैकारण विद्वानहरू इस्लामको मजहबलाई मन पराउँदैनन्॥७१॥

७२. निश्चय तिम्रो मालिक अल्लाह हो, जसले आकाशहरू र पृथ्वीलाई छ दिनमा उत्पन्न गर्‍यो, अनि अर्श=सर्वोच्च स्वर्गमा

करार=विश्राम गर्‍यो॥ दीनतापूर्वक आफ्नो मालिकलाई पुकार॥

—मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ५४,५५॥

समीक्षक—छ दिनमा जगत्लाई बनाउने, अर्श अर्थात् माथिको आकाशमा सिंहासनमा आराम गर्ने पनि के कहिल्यै ईश्वर, सर्वशक्तिमान् र व्यापक हुन सक्छ? यसो नहुनाले त्यसलाई खुदा पनि भन्न सकिंदैन। के तिम्रो खुदा बहिरो छ र? जो पुकार्नाले सुन्छ? यो सबै कुरा ईश्वरकृत होइनन्। यसबाट कुरान ईश्वरकृत हुनसक्तैन। यदि छ दिनमा जगत्लाई बनायो, सातौं दिनमा अर्श=सिंहासनमा आराम गर्यो भने त्यो थाक्यो पनि होला। तथा हालसम्म सुतिरहेको छ वा व्यूँझिएको छ? व्यूँझेको छ बने अब केही काम गर्दछ वा निकम्मा सैर-सपाटा र ऐश-आराम गर्दै डुल्दछ?॥७२॥

७३. पृथ्वीमा झगडा गर्दै नडुल॥

—मं० १। सि० ८। सू० ७। आ० ७४॥

समीक्षक—यो कुरा त राम्रो हो, तर यसको विपरीत अरू ठाउँमा जिहाद (मुसलमान बाहेकलाई मार्नु) गर्न र काफिरहरूलाई मार्न पनि लेखेको छ। अब भन, के यो पूर्वापर विरुद्ध कुरा होइन? यसबाट 'जब मुहम्मद साहेब निर्बल भए होलान्, तब उनले यो उपाय रचे होलान्' भन्ने कुरा विदित हुन्छ। अनि जब सबल भए होलान्, तब झगडा मच्चाए होलान्। यसैकारण यही कुरा परस्पर विरुद्ध हुनाले दुबै सत्य होइनन्॥७३॥

७४. बस एकैपल्ट आफ्नो असा=लाठी खसाल्यो र त्यो प्रत्यक्ष अजगर थियो॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १०७॥

समीक्षक—यो लेखबाट 'यस्ता झूठा कुरालाई खुदा र मुहम्मद साहब पनि मान्दथे' भन्ने कुरा विदित हुन्छ। यसो हो भने यी दुबै विद्वान् थिएनन्। किनकि जसरी आँखाले देख्ने र कानले सुन्ने कुरालाई कसैले उल्ट्याउन सक्दैन। यसै कारण यी इन्द्रजालका कुरा हुन्॥७४॥

७५. बस हामीले त्यो माथि बर्षाको हूरीं, सलह, चिचडी, भ्यागुता र रगत पठायौं॥ बस तीसँग हामीले बदला लियौं र उनलाई खोलामा डुबाइदियो॥ तथा हामीले बनी (सन्तान) इसराईललाई खोलाबाट पार उतार्‍यो॥ निश्चय त्यो दीन=धर्म झूटो हो कि जसमा यी छन्, र उनको कार्य पनि झूटो हो॥

—मं० २। सि० ९। सू० ९। आ० १३३,१३६,१३८,१३९॥

समीक्षक—अब हेर, कुनै पाखण्डीलाई 'हामी तँलाई मार्न सर्प

पठाउने छौं' भनी डराए जस्तै यो पनि कुरा हो। जो यस्तो पक्षपाती छ कि एउटा जातिलाई डुबाउँछ र अर्कोलाई पार उतार्दछ भने त्यो अधर्मी खुदा किन होइन? जो हजारौं करोडौं मानिस रहेका अरू मतहरूलाई झूठा र आफ्नो मतलाई सच्चा बताउँछ त्यो भन्दा ठूलो झूटो मत अरू कुनचाहिं हुन सक्दछ? किनकि कुनै मतमा सबै मानिस खराब वा सबै असल हुन सक्दैनन्। यो एकतर्फी जिद्दी गर्नु महामूर्खहरूको मत हो। तौरेत, जबूरको दीन=मत, जो कि उनीहरूकै थियो, के झूटो भयो? अथवा उनको अरू कुनै मजहब थियो कि जसलाई झूटो बताएको हो? अनि त्यो अरू कुनै मजहब थियो र त्यसको नाम कुरानमा छ भने भन त्यो कुनचाहिं मत थियो त?॥ ७५॥

७६. बस तँ मलाई निःसन्देह देख्न सक्नेछस्, जब उसको मालिकले पहाडतर्फ प्रकाश गर्‍यो, त्यस पहाडलाई परमाणु-परमाणु पार्‍यो, मूसा बेहोश भएर लड्यो॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १४३॥

समीक्षक—देखिन्छ भने त्यो व्यापक हुनसक्दैन। अनि खुदा यस्ता चमत्कार गर्दै फिर्दथ्यो भने यसबखत यस्तो चमत्कार कसैलाई किन देखाउँदैन? सर्वथा विरुद्ध हुनाले यो कुरा मान्न योग्य होइन॥ ७६॥

७७. र आफ्नो मालिकलाई दीनता र डरले, सानो आवाजले बिहान र बेलुकी मनमा याद गर्॥

समीक्षक—कतै कतै कुरानमा लेखेको छ कि ठूलो आवाजले आफ्नो मालिकलाई पुकार्, र कतै कतै भने विस्तार-विस्तार ईश्वरको स्मरण गर् भनेको छ। अब भन, कुन चाहिं कुरा सच्चा र कुन चाहिं झूटो हो त? एक-अर्कासँग बाझिने कुरा प्रमत्तगीत जस्तै हुन्छ। यदि भ्रमले कुनै विरुद्ध कुरा निस्कन्छ, र कसैले त्यसैलाई मान्दछ भने केही चिन्ता छैन॥ ७७॥

७८. तँसँग लुटको वारेमा प्रश्न गर्दछौं। अल्लाह र रसूलका लागि लूटौं भन्। र अल्लाह देखि डर्॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

समीक्षक—लूट मच्चाउने, डाकूका कर्म गर्ने गराउने खुदा तथा पैगम्बर ईमान्दार पनि बन्दछन् भने यो ठूलो आश्चर्यको कुरा हो। अल्लाहको डर पनि बताउँछन् र डकैती आदि खराब काम पनि गर्दै जान्छन्, फेरि पनि 'उत्तम मत हाम्रो हो' भन्नमा पनि लाज लाग्दैन। जिद्दी छोडेर सत्य वेदमतलाई ग्रहण नगर्नु भन्दा पनि ठूलो खराबी अरू कुनै होला?॥ ७८॥

७९. तथा काफिरहरूको जरो काट्यो॥ पछि पछि आउने हजारौं फरिश्ताका साथै म अवश्य तिम्रो सहायता गर्नेछु, अवश्य म काफिरहरूका दिलमा भय पसाउने छु। बस गर्दन माथि हान, तीमध्ये प्रत्येक जोर्नीमा हान॥ —मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७,९,१२॥

समीक्षक—वाः रे वा! कस्ता कस्ता दयाहीन खुदा र पैगम्बर रहेछन्, जो मुसलमानी मत नमान्ने 'काफिर' हरूको जरै काट्न लगाउँछन्। तथा खुदा आज्ञा दिन्छ—'उनको गर्दनमा मार् हान'। तथा हात-खुट्टाका जोर्नीलाई काट्न सहायता र सम्मति दिन्छ। यस्तो खुदा रावण भन्दा के केही कम छ त? यो सबै प्रपञ्च खुदाको नभएर कुरानको कर्त्ताको हो। यदि खुदाकै हो भने यस्तो खुदा हामी भन्दा टाढै रहोस् र हामी ऊ भन्दा टाढै बसौं॥ ७९॥

८०. अल्लाह मुसलमानहरूका साथ छ॥ ए मनुष्यहरू! विश्वास ल्याएकाछौ भने अल्लाहका लागि र रसूलका लागि पुकार्न स्वीकार गर॥ ए मानिसहरू! विश्वास ल्याएकाछौ भने अल्लाह र रसूलको चोरी नगर र आफ्नो नासोको चोरी नगर॥ तथा अल्लाह मकर (छल, कपट, मक्कारी?) गर्दथ्यो र अल्लाह मकर गर्नेहरूमा अधिक छ॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १८,२४,२७,३०॥

समीक्षक—के अल्लाह मुसलमानहरूकौ पक्षपाती छ? यसो हो भने अधर्म गर्दछ। नत्र भने ईश्वर सबै सृष्टि भरिको हो। के नपुकारिकन खुदा सुन्नसक्दैन? बहिरो छ? तथा उसका साथ रसूललाई शरीक गर्नु धैरै खराब कुरा होइन? अल्लाहको कुनचाहिं ढुकुटी रिपूर्ण छ, जसको कसैले चोरी गर्ने छ? के रसूल र आफ्नो अमानतको चोरी बाहेक अरू सबैको चोरौ गर्ने गर्नुपर्दछ? यस्तो उपदेश अविद्वान् र अधर्मीहरूको नै हुनसक्दछ। आखिर जो मकर गर्दछ र मकर गर्नेहरूको साथी छ, त्यो खुदा कपटी, छली र अधर्मी किन होइन? यसकारण यो कुरान खुदाले बनाएको होइन। यो त कुनै कपटी-छलीले बनाएको हुँदो हो, नत्र त यस्ता अन्यथा कुरा किन लेखिएका हुन्थे?॥ ८०॥

८१. तथा तीसँग यति सम्म लड कि फितना अर्थात् काफिरहरूको बल नरहोस् तथा तमाम अल्लाहका लागि दीन होओस्॥ तथा तिमी यो पनि जान कि जुनसुकै वस्तु पनि तिमी जे जति लुट्छौ त्यो निश्चय नै अल्लाहका लागि हो। पाँचौं भाग उसको र रसूलको लागि हो॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९,४१॥

समीक्षक—यस्ता अन्यायपूर्वक लड्ने लडाउने मुसलमानहरूको

खुदा बाहेक शान्तिभङ्ग गर्ने अरू को होला? अब यो मजहब त हेर कि अल्लाह र रसूलको लागि सब जगत्लाई लुट्नु र लुट्न लगाउनु के लुटेराहरूको काम होइन? तथा लूटको मालमा खुदाले हिस्सेदार वन्नु डाकूको सरदार बन्नु नै हो। तथा यस्ता लुटेराहरूको पक्षपाती बनेर खुदा आफ्नो खुदाइमा (ईश्वरत्वमा) ठूलो दाग लगाइरहेछ। ठूलो आश्चर्यको कुरा छ कि यस्तो पुस्तक, यस्तो खुदा र यस्तो पैगम्बर संसारमा यस्तो उपाधि र शान्तिभङ्ग गरेर मनुष्यहरूलाई दुःख दिन कहाँबाट आएको हो? जगत्मा यस्ता यस्ता मत प्रचलित नभएका भए सब जगत् आनन्दमै रहन्थ्यो॥ ८१ ॥

८२. तथा कुनै बखत पनि काफिरहरूलाई देख्ने बित्तिकै फरिश्ताहरूले तिनलाई कब्जा गर्छन्=बन्धक बनाउँछन्, उनको अगाडितर्फ हान्दछन् र उनका पछाडितर्फ हान्दछन् र भन्दछन् जल्ले अजाब=दुःख चाख॥ हामीले उनका पापबाट उनलाई मान्यौं र हामीले फिर—ऊनको कौम=जातिलाई डुबायौं। तथा उनका लागि जे केही तिमी गर्न सक्तछौ त्यसैको तयारी गर॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ५०,५४,६०॥

समीक्षक—किन हँ? हिजोआज रूसले रोम आदि र इङ्गलैण्डले मिश्रको दुर्दशा गरिसक्यो, फरिस्ताहरू कहाँ निंदाए? तथा आफ्ना सेवकहरूका शत्रुहरूको खुदा पहिले मार्ने र डुबाउने गर्दथ्यो, यो कुरा सच्चा हो भने हिजोआज पनि त्यस्तो गरोस्। यस्तो नहुने हुनाले यो कुरा मान्न योग्य होइन। अब हेर यो कत्ति राब आज्ञा छ कि—'जे केही तिमी गर्नसक्दछौ, भिन्न मतावलम्बीहरूका लागि त्यस्तो दुःखदायक कर्म गर'। यस्तो आज्ञा विद्वान् र धार्मिक दयालुको हुनसक्दैन। अनि फेरि लेख्तछन् कि 'खुदा दयालु र न्यायकारी छ'। यस्ता कुराका कारण मुसलमानहरूका खुदाबाट न्याय र दया आदि सद्गुण टाढै बस्तछन्॥ ८२ ॥

८३. ए नबी (पैगम्बर)! अल्लाह तँलाई र उनलाई किफायत छ जसले मुसलमानहरूसँग तेरो पक्ष लिए॥ ए नबी! रगबत अर्थात् मुसलमानहरूमाथि लडाइको चाहना उक्साइदे यदि तिमीहरूमध्ये बीस व्यक्ति लडाइमा टिकिरहने छन् भने दुईसयको पराजय गरून्। ऊ क्षमा गर्नेवाला दयालु हो॥

—मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ६४,६५,६९॥

समीक्षक—आफ्नो पक्ष लिनेले अन्याय नै गरेपनि उसैको पक्ष

लिनु र फाइदा पुर्‍याउनु कुन चाहिं न्याय विद्वत्ता र धर्मको कुरा हो? अनि प्रजामा शान्तिभङ्ग गरेर लडाइ गर्ने गराउने, लूट–मार मच्चाएर खोसेका, हात पारेका पदार्थलाई हलाल बताउने, अनि फेरि त्यसैको नाम क्षमावान् दयालु लेख्ने कुरा खुदाको त के, कुनै सज्जन भलाद्मी व्यक्तिको पनि हुनसक्दैन। यस्ता यस्ता कुराका कारण कुरान कहिल्यै ईश्वरवाक्य हुन सक्दैन॥ ८३ ॥

८४. उसको ठूलो पुण्य छ भने अल्लाहको समीप सदा उसको बीचमा रहनेछन्॥ ए मानिसहरू! विश्वास ल्याएका छौ भने र आफ्ना बाबु, आफ्ना भाइहरू र मित्रलाई विश्वासमाथि कुफ्र गर्दछन् भने तिनलाई न समात॥ अनि अल्लाहले आफूमाथि र आफ्ना रसूलमाथि र मुसलमानहरूमाथि तसल्ली (सान्त्वना) उतान्यो। तथा लश्कर (सेनासमूह?) उतार्‍यो तिमीले उनलाई देखेनौ तथा उनलाई (काफिर हुनेहरूलाई) अजाब=दुःख दियो। र काफिरहरूका लागि यही सजाय हो॥ पछि अल्लाह जसलाई चाहन्छ त्यसमाथि फेरि फेरि आउने छ॥ तथा जो विश्वास ल्याउँदैनन् उनीहरूसँग लडाइ गर॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० २२,२३,२६,२७,२९॥

समीक्षक—आखिर अल्लाह बहिश्तेहरूको समीप बस्तछ भने कसरी सर्वव्यापक हुन सक्तछ? जो सर्वव्यापक होइन, त्यो सृष्टिकर्ता र न्यायाधीश हुनसक्दैन। तथा आफ्ना आमा बाबु दाज्यू–भाई र मित्रलाई छुटाउनु केवल अन्यायको कुरा हो। हँ, ती खराब उपदेश गर्दछन् भने त्यसलाई मान्नु हुँदैन तर उनको सेवा सधैं गर्नुपर्दछ। जो खुदा पहिले मुसलमानहरूप्रति बडो सन्तोषी थियो र उनको सहायताका लागि लश्कर उतार्दथ्यो, त्यो कुरा सत्य हो भने अब यसो किन गर्दैन? अनि पहिले काफिरहरूलाई दण्ड दिन्थ्यो र पुनः त्यस माथि आउँथ्यो भने अब कहाँ गयो? के खुदा लडाइ बिना नै विश्वास बनाउन सक्दैन? यस्ता खुदालाई हाम्रो तर्फबाट सदाका लागि तिलाञ्जलि छ। यो खुदा नभएर एउटा खेलाडी मात्र हो॥ ८४ ॥

८५. र हामी तिम्रा लागि प्रतीक्षा गर्नेछौं यो कि तिमीलाई अल्लाह आफैं अथवा हाम्रा हातबाट अजाब (दुःख) पुर्‍याओस्॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ५२॥

समीक्षक—के मुसलमान नै ईश्वरका पुलिस बनेका छन्? कि आफ्नै हात वा मुसलमानका हातबाट अरू मतावलम्बीहरूलाई समात्न लगाउँदछ? के ईश्वरलाई अरू करोडौं मनुष्य अप्रिय छन्? मुसलमान–

हरूमा चाहिं पापी पनि प्रिय छन् ? यसो हो भने 'अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा' को जस्तै व्यवस्था देखापर्दछ। आश्चर्य त के छ भने बुद्धिमान् मुसलमानहरू पनि यस निर्मूल अयुक्त मतलाई मान्दछन्॥ ८५ ॥

८६. अल्लाहले विश्वास भएका पुरुष र स्त्रीसँग बहिश्तहरूको प्रतिज्ञा गरेको छ, उनका तलबाट उसका बीचमा सधैं रहने नहरहरू चल्दछन्, अदनका बीचमा पवित्र घर र अल्लाहको प्रसन्नता सबैभन्दा ठूलो छ र सबैभन्दा ठूलो मुराद (इच्छानुसार) पाउनु हो॥ बस जो तीसँग ठट्टा गर्दछन्, अल्लाहले तीसँग ठट्टा गर्‍यो॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ७२,७९ ॥

समीक्षक—यो खुदाको नामबाट स्त्री-पुरुषहरूलाई आफ्नो स्वार्थको लागि दिइएको प्रलोभन हो। किनकि यस्तो प्रलोभन नदिएको भए मुहम्मद साहेबको जालमा कोही पनि फस्ने थिएन। यस्तै अरू मतालम्बीहरू पनि गर्ने गर्दछन्॥ मानिसहरू त परस्पर हाँसो-ठट्टा गर्ने नै गर्दछन्, तर खुदाले कसैसँग पनि ठट्टा गर्नु उचित होइन। यो कुरान त एउटा ठूलो खेल मात्र हो॥ ८६ ॥

८७. तर रसूल र जुन व्यक्तिले उसका साथ विश्वास ल्याए, उनीहरूले आफ्ना धनका साथ तथा आफ्ना ज्यानका साथ जिहाद=युद्ध गरे। र यिनैका लागि भलाइ छ। तथा अल्लाहले उनका दिल माथि छाप लगायो, बस ती जान्दैन्॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ८८,९३ ॥

समीक्षक—स्वार्थसिन्धुका कुरा त सुन, कि मुहम्मद साहबका साथ विश्वास ल्याउनेहरू नै भद्र-भलादमी हुन्। अनि विश्वास नल्याउनेहरू खराब हुन्। तर यो त खुदाकै अपराध हो। किनकि ती विचराका दिलमा छाप लगाएर उनलाई भलो काम कुरा गर्नबाट रोक्यो। यो कति ठूलो अन्याय हो ?॥ ८७ ॥

८८. उनीबाट खैरात (दान पुण्य) को रूपमा माल ली, तँ उनलाई पवित्र गर्। अर्थात् बाहिरी र भित्री गोप्य रूपमा तँ उनलाई शुद्ध गर्॥ निश्चय नै मुसलमानहरूबाट उनका ज्यान अल्लाहले मोल लिएका छन् र उनका मालको सट्टामा, उनका लागि बहिश्त छन्, अल्लाहको मार्गको बीचमा लड्नेछन्, बस मार्नेछन् र मर्नेछन्॥

—मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १०३,१११ ॥

समीक्षक—वाः जी वा! मुहम्मद साहेब! तपाईले त गोकुलिया गोसाईहरूकै समानता गर्नु भयो। किनकि उनीहरूको माल लिने र

उनीहरूलाई पवित्र गर्ने कुरा नै त गुसाईहरूमा छ। वाः खुदाजी! तपाईले राम्रो सौदा गर्नुभयो कि मुसलमानकै हातबाट अरू गरीबहरूको प्राण लिनमा नै फाइदा प्रतीत भएछ। र ती अनाथहरूलाई मार्न लगाएर ती निर्दयी मनुष्यहरूलाई स्वर्ग दिनाले दया र न्यायबाट मुसलमानहरूको खुदा हात धुन पुगेछ। तथा आफ्नो खुदाई (ईश्वरत्व) मा दाग लगाएर बुद्धिमान् धार्मिकहरूमा घृणित भयो॥ ८८ ॥

८९. ए मानिस हो! विश्वास ल्याएका छौ भने तिम्रा नजीक रहेका काफिरसँग लड तथा तिम्रा बीचमा दृढता प्राप्त हुनुपर्दछ॥ के यो देख्दैनौ कि ती हर वर्षको एक पटक वा दुईपटक आपतमा पारिन्छन्, फेरि ती तोबाः गर्दैनन् र ती शिक्षामा चल्दैनन्॥

—मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १२३,१२६ ॥

समीक्षक—हेर, यो पनि एक किसिमको विश्वासघातका कुरा मुसलमानहरूलाई सिकाउँदछ कि कोही कसैका छिमेकी होऊन् वा कसैका नोकर होऊन्, अवसर पाउने बित्तिकै लडाइ वा घात गर्नुपर्दछ। यसै कुरानका लेखबाट मुसलमानहरूद्वारा यस्ता धेरै कुरा बनेका छन्। अब त मुसलमानहरूले बुझेर यी कुरानमा बताइएका कुरालाई छोडिदिए राम्रो हुने थियो॥ ८९ ॥

९०. निश्चय तिम्रो परवरदिगार=पालक अल्लाह हो, जसले आकाशहरू र पृथ्वीलाई ६ दिन भित्र उत्पन्न गर्‍यो, अनि स्वर्ग सिंहासनमा विश्राम गर्‍यो, कामको उद्योग गर्दछ॥

—मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३ ॥

समीक्षक—आकाश एउटै र नबनेको अर्थात् अनादि छ। त्यो (आकाश) बनाउने कुरा लेखेकोले त्यो कुरानको कर्त्ता पदार्थविद्यालाई जान्दैनथियो भन्ने निश्चय भयो। के परमेश्वरले ६ दिनसम्म बनाउनुपर्दछ ? त्यसो भए 'भईजा मेरो हुक्मले, र भई गयो' कुरानमा यसो लेखेको छ अनि ६ दिन कहिल्यै कहिल्यै लाग्न सक्तैन। यस कारण ६ दिन लाग्ने कुरा झूटो हो। ऊ (खुदा) व्यापक भएको भए आकाशमाथि किन टिक्तथ्यो ? अर्को कुरा, कामको उद्योग गर्दछ भने तिम्रो खुदा ठीक मनुष्य कै सरह हो। किन कि जो सर्वज्ञ छ, ऊ बसी-बसी के उद्योग गर्नेछ ? यसबाट 'ईश्वरलाई नजान्ने जङ्गली व्यक्तिहरूले यो पुस्तक बनाए होलान्' भन्ने कुरा बुझिन्छ॥ ९० ॥

९१. शिक्षा र दया मुसलमानहरूका लागि॥

—मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ५७॥

समीक्षक—के यो खुदा मुसलमानहरूको मात्र हो, अरूको होइन? अनि मुसलमानहरू माथि मात्र दया गर्ने, अरू मनुष्य माथि दया नगर्ने भए त्यो पक्षपाती हो। यदि ईमान्दारहरूलाई मुसलमान भनिन्छ भने उनका लागि शिक्षाको आवश्यकता नै छैन। अनि मुसलमान बाहेकलाई उपदेश गर्दैन भने खुदाको विद्या नै व्यर्थ छ॥ ९१ ॥

९२. तिम्रो परीक्षा लिन्छ, तिमीहरूमध्ये कर्म गर्नमा को असल छ। जे तिमी भन्दछौ—तिमी मृत्यु पछि अवश्य उठाइनेछौ॥

—मं० ३। सि० १०। सू० ११। आ० ७॥

समीक्षक—कर्मको परीक्षा लिन्छ भने त्यो सर्वज्ञ नै होइन। अनि मृत्यु पछि उठाउँदछ भने तुरन्त कार्यवाही हुन्छ र 'मरेकाहरू न ब्यूँतियून्' भन्ने आफ्नै नियमलाई भङ्ग गर्दछ। यसबाट खुदाको छवि धूमिल हुन्छ॥ ९२ ॥

९३. तथा भनियो, ए पृथ्वी! आफ्नो पानीलाई निल् र ए आकाश! रुकिहाल, र पानी सुक्यो॥ र ए जाति! यो पोथी ऊँट तिम्रा लागि अल्लाहको चिनो हो। उसलाई अल्लाहको पृथ्वीमा छाडिदेऊ र ऊ खाँदै डुलोस्॥ —मं० ३। सि० १२। सू० ११। आ० ४४,६४॥

समीक्षक—कस्तो अल्लारेपनको कुरा हो यो? के पृथ्वी र आकाश कहिल्यै कुरा सुन्न सक्तछन्? वा: रे वा! खुदाको पोथी ऊँट छ भने भाले ऊँट पनि होला? त्यसो भए हात्ती, घोडा, गधा आदि पनि होलान्? तथा खुदाद्वारा पोथी ऊँटबाट खेत जोताउनु के राम्रो कुरा हो? के पोथी ऊँट माथि चढ्दछ पनि? यस्तै कुरा हुन् भने नवाबहरूको जस्तै मनपरी खुदाको घरमा पनि भयो॥ ९३ ॥

९४. र सधैं रहने उसका बीचमा जबसम्म आकाश र पृथ्वी रहनेछन्॥ र जो व्यक्ति सौभाग्यशाली भए बस ती बहिश्तको बीचमा सधैं रहनेछन्, जबसम्म कि आकाश र पृथ्वी रहनेछन्॥

—मं० ३। सि० १२। सू० ११। आ० १०८,१०९॥

समीक्षक—कयामत पछि सबैजना दोजख र बहिश्तमा जानेछन् भने आकाश र पृथ्वी किन रहनेछन्? अनि दोजख र बहिश्तमा रहने अवधि पनि आकाश पृथ्वी रहेसम्म हो भने 'सधैं रहनेछन् बहिश्त वा दोजखमा' यो कुरा झूटो हुनेछ। यस्तो कथन अवद्विान्हरूको हुन्छ, ईश्वर वा विद्वान् को हुँदैन्॥ ९४॥

९५. जब यूसुफले आफ्ना बाबुसँग भन्यो कि—ए मेरा बुबा! मैले एउटा सपना देखें.... ॥ —मं० ३। सि० १२। सू० १२। आ० ४–५७॥

समीक्षक—यस प्रकरणमा बाबु–छोराको सम्वादरूप गफ–कथा भरिपूर्ण छ। यसकारण कुरान ईश्वरले बनाएको नभएर कुनै मानिसले मानिसहरूको इतिहास लेखेको हो॥ ८५ ॥

९६. अल्लाह त्यो हो, जसले आकाशहरूलाई थामविना नै उभ्यायो तिमी उसलाई देख्तछौ फेरि सिंहासनको माथि टिक्यो, सूर्य र चन्द्रलाई आज्ञापालक बनायो। तथा उही हो जसले पृथ्वीलाई ओछ्यायो॥ आकाशबाट पानी ओराल्यो। बस आफ्नै अड्कलका साथ नालाहरू बगे। अल्लाह जसलाई चाहन्छ भोजन दिन्छ, जसलाई चाहन्छ सताउँछ।

—मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २,३,१७,२६॥

समीक्षक—मुसलमानहरूको खुदा अलिकति पनि पदार्थविद्या जान्दैन थियो। जान्ने भएको भए गुरूत्व नहुनाले आकाशलाई थाम लगाउने गफ–कथा केही पनि लेख्नेथिएन। यदि खुदा अर्श=सिंहासनरूप एउटै ठाउँमा बस्दछ भने ऊ सर्वशक्तिमान् र सर्वव्यापक हुनसक्दैंन। अर्को कुरा, खुदाले मेघविद्या जानेको भए 'आकाशबाट पानी उतार्‌यो' भन्ने लेखे पछि 'पृथ्वीबाट पानी माथि चढायो' भन्ने किन लेखेन? यसबाट 'यो कुरान बनाउने व्यक्ति बादलको विद्यालाई पनि जान्दैन थियो' भन्ने कुरा बुझिन्छ। अनि असल–खराब कर्म बिना नै सुख–दुःख दिन्छ भने ऊ पक्षपाती, अन्यायकारी र निरक्षरभट्ट हो॥ ९६ ॥

९७. भन् 'निश्चय अल्लाह जसलाई चाहन्छ, गुमहराह गर्दछ र बाटो देखाउँछ आफूतर्फ त्यस मनुष्यलाई प्रवृत्त गर्दछ'॥

—मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराहमा पार्दछ भने खुदा र शैतानमा के फरक रह्यो? शैतानले अरूलाई गुमराह अर्थात् भ्रममा पार्नाले खराब बताइन्छ भने खुदाले पनि त्यस्तै काम गर्नाले त्यस शैतान भन्दा पनि ठूलो खराब शैतान त्यो खुदा किन होइन? तथा भ्रममा पार्ने पापका कारण ऊ किन दोजखी हुनुपर्दैन?॥ ९७॥

९८. यस्तै किसिमले हामीले यस कुरानलाई अर्बीमा उतार्‌यौं यदि तँ उनको इच्छाको पक्ष लिनेछस्, यसपछि तँ सँग विद्या कहाँबाट आयो॥ बस यस बाहेक होइन कि माथि तेरो पैगाम=समाचार पुर्‌याउनु छ, र हामीमाथि हिसाब लिने कुरा छ॥

—मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७,४०॥

समीक्षक—कुरानलाई कतातर्फबाट उतार्‌यो? के खुदा मास्तिर बस्दछ? यही कुरा हो भने त्यो खुदा एकदेशी हुनाले ईश्वर हुनैसक्तैन।

किन कि ईश्वर त सबै ठाउँमा एकनास व्यापक छ। पैगाम=समाचार पुर्‍याउने काम हल्काराको हो। तथा हल्कारा=सन्देशवाहकको आवश्यकता मनुष्य जस्तै एकदेशीलाई नै हुन्छ। र हिसाब लिने–दिने काम पनि मनुष्य को हो, ईश्वरको होइन। किन कि ऊ त सर्वज्ञ छ। निश्चय हुन्छ कि कुरान कुनै अल्पज्ञ मनुष्यले बनाएको हो॥ ९८॥

९९. र सूर्य चन्द्रलाई सधैं फिर्ने बनायो॥ निश्चय मानिस अवश्य अन्यायी र पापी हो॥ —मं० ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३,३४॥

समीक्षक—के चन्द्र सूर्य सदा घुम्छन् र पृथ्वी चाहिं घुम्दैन? पृथ्वी नघुम्ने भए अनेक वर्षको रात दिन हुने थियो। अर्को कुरा, निश्चय नै मानिस अन्यायी र पापी हो भने कुरानबाट शिक्षा दिनु व्यर्थै छ। किनकि जसको स्वभाव पापै गर्ने छ भने उनमा पुण्यात्मा कहिल्यै हुने छैन। तथा संसारमा पुण्यात्मा र पापात्मा सदा देखिन्छन्। यसकारण यस्ता कुरा ईश्वरकृत पुस्तकका हुन सक्तैनन्॥ ९९॥

१००. बस म उसलाई ठीक गर्दछु, तथा उसको बीच आफ्नाबाट रूह=प्राण फुकिदिउँ, बस उसका लागि प्रमाण गर्दै लडिहाले॥ भन्यो, ए मेरा मालिक! यस कारण कि तैंले मलाई गुमराह गरिस्, उनका लागि पृथ्वीका बीचमा अवश्य जन्नत=स्वर्ग दिनेछु, र गुमराह गर्नेछु। —मं० ३। सि० १४। सू० १५। आ० २९,३९॥

समीक्षक—यदि खुदाले आफ्नो रूह=आत्मालाई आदम साहबमा हालेको भए त ऊ पनि खुदा भयो। अनि ऊ खुदा थिएन भने सिजदा अर्थात नमस्कार आदि भक्ति गर्नमा आफूलाई किन शरिक गर्‍यो? जब शैतानलाई गुमराह गर्ने खुदा नै हो भने ऊ शैतानको पनि शैतान दाज्यु, गुरु किन होइन? किनकि तिमीहरू भ्रमित पार्नेलाई शैतान मान्दछौ भने खुदाले पनि शैतानलाई भ्रमित पार्‍यो। तथा प्रत्यक्ष रूपमा शैतानले भन्यो कि म भ्रमित पार्नेछु, फेरि पनि उसलाई दण्ड दिएर कैद किन गरेन? तथा किन मारेन?॥ १००॥

१०१. र निश्चय हामीले हर समुदायका बीच पैगम्बर पठायौं॥ जब हामी उसलाई चाहन्छौं हामी उसलाई यसो भन्दछौं 'हो', बस भैहाल्दछ॥ —मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ३६,४०॥

समीक्षक—सबै जातिका लागि पैगम्बर पठाइएका छन् भने सबैजना जो कि पैगम्बर कई राय–सल्लाहमा चल्दछन्, ती काफिर किन? के तिम्रा पैगम्बर बाहेक अरू पैगम्बरको मान्यता छैन? यो सर्वथा पक्षपातको कुरा हो। सबै देशमा पैगम्बर पठाएको भए आर्यावर्त्त

मा कुन चाहिं पठाएको छ? यस कारण यो कुरा मान्न योग्य होइन। जब खुदा चाहन्छ र भन्दछ कि 'पृथ्वी भई जाओस्', त्यस जडले कहिल्यै सुन्नसक्तैन। अनि त्यसले खुदाको आज्ञाको पालन कसरी गर्न सक्ने छ? अर्को कुरा, खुदा बाहेक अर्को कुनै वस्तु थिएन भन्दछौ, अनि सुन्यो कसले? तथा भयो को? यी सबै अविद्याका कुरा हुन्। यस्ता कुरालाई केही नजान्ने व्यक्ति मात्र मान्छन्॥ १०१॥

१०२. तथा अल्लाहका लागि केटीहरू निश्चित गरिन्छन्, उसली पवित्रता छ, तथा चाहेजति सबै उनैका लागि हो। अल्लाहको कसम, हामीले पैगम्बरलाई अवश्य पठायौं॥

—मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५७,६३॥

समीक्षक—अल्लाह केटीहरूसँग के गर्दछ? केटी त कुनै मनुष्यलाई पो चाहिन्छन्। किन केटा नियुक्त नगरेर केटीहरू नियुक्त गरिन्छन्? यसको के कारण हो, बताओ?॥ कसम खानु झूठा व्यक्तिहरूको काम हो, खुदाको होइन। किनकि प्राय: संसारमा झूटो व्यक्तिले नै कसम खाने गरेको देखिन्छ। सच्चा व्यक्तिले किन किरिया खाने?॥ १०२॥

१०३. यी ती व्यक्ति हुन् कि जसका दिलमा, कानमा र आँखामा अल्लाहले छाप लगायो, तथा ती व्यक्ति अनभिज्ञ छन्॥ तथा जुन जीवले जे गरेको छ। हर जीवलाई पूरै दिइनेछ। र तीमाथि अन्याय गरिने छैन॥ —मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० १०८,१११॥

समीक्षक—जब खुदाले नै छाप ठोकिदियो भने ती बिचरा अपराधविना नै मारिए। किनकि तिनलाई पराधीन बनायो। यो कत्ति ठूलो अपराध हो? अनि फेरि जसले जति गरेको छ, त्यसलाई त्यति नै दिइने छ, धेर थोर दिइने छैन भन्छन्। आखिर उनीहरूले स्वतन्त्रतापूर्वक पाप गरेकै छैन, तर खुदाले गराउनाले गरेको हो। अनि त उनीहरूको अपराधै भएन, उनलाई फल दिइनु उचित होइन। यसको फल त खुदाले पाउनु पर्दछ। अनि यदि पूरै फल दिइन्छ भने क्षमा कुन कुराको गरिन्छ? अनि क्षमा गरिन्छ भने न्याय रहँदैन। यस्तो गडवड अध्याय कहिल्यै ईश्वरको हुनसक्तैन। यस्तो कुरा त बुद्धिहीन अल्लारे व्यक्तिको हुन्छ॥ १०३॥

१०४. तथा हामीले काफिरहरूलाई घेर्ने ठाउँका लागि दोजख बनायौं॥ र हामीले प्रत्येक मानिसलाई उसको गर्दनको बीच उसको कर्म लेखा लगायौं, र हामी उसका लागि कयामतका दिन एउटा

किताब निकाल्नेछौं, कि त्यसलाई छर्लङ्गै खुलेको देख्नेछ॥ र नूह पछि हामीले कैयौं नसललाई नष्ट गर्‌यौं॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ८,१३,१७॥

समीक्षक—यदि कुरान, पैगम्बर, कुरानमा बताइएको खुदा, सातौं आकाश र नमाज आदिलाई नमान्नेहरू नै काफिर हुन् र उनैका निम्ति दोजख हो भने यो केवल पक्षपातको कुरा ठहर्दछ। किनकि कुरानलाई नै मान्नेहरू सबै असल र अरूलाई मान्नेहरू सबै खराब के कहिल्यै हुन सक्तछन्? प्रत्येकको गर्दनमा कर्म पुस्तक बाँध्ने कुरा ठूलो अल्लारेपनको कुरा हो। हामीलाई त कुनै एउटाको गर्दनमा पनि देखापर्दैन! यदि यसको प्रयोजन कर्मको फल दिने भन्ने हो भने मानिसका दिल, आँखा आदिमा छाप ठोक्नु र पापलाई क्षमा गर्नु आदि यो के खेल मच्चाएको हो? खुदा कयामतको राति किताब निकाल्नेछ भने हिजोआज त्यो किताब कहाँ छ? के सेठ साहुकारहरूको बही-खाता जस्तै गरी लेख्तछ? यहाँ यो कुरा विचारणीय छ कि पूर्वजन्म हुँदैन भने जीवहरूका कर्म नै हुनसक्तैनन्। अनि फेरि के कर्म लेखा लेख्यो? तथा कर्मविना नै लेख्यो भने तीमाथि अन्याय गर्‌यो। किनकि असल-खराब कर्मविना उनलाई दुःख सुख किन दियो? 'खुदाको इच्छा' भन्छौ भने पनि उसले अन्याय गर्‌यो। असल-खराब कर्म नगरीक नै दुःख-सुख रूपी फल धेर वा थोर दिनुलाई नै 'अन्याय' भनिन्छ। अनि त्यसबखत खुदा नै किताब पढ्ने छ अथवा कुनै सरिश्तेदार=कार्य प्रमुखले सुनाउने छ? यदि खुदाले नै दीर्घकाल सम्बन्धी अर्थात् इजरायलका सन्ततिसँग सम्बद्ध जीवहरूलाई अपराधविना नै मार्‌यो भने ऊ अन्यायकारी भयो। जो अन्यायकारी हुन्छ, त्यो खुदा हुनैसक्तैन॥ १०४॥

१०५. तथा हामीले समूदलाई पोथी ऊँटको रूपमा चिनो दियौं॥ र जसलाई पथभ्रष्ट पान सक्छस् पार्॥ जुन दिन हामी सबैजनालाई उनका पेशवा=नेताहरूका साथ बोलाउनेछौं। बस जुन कुनै कर्मको लेखा उसको उसैको दाहिने हातमा दिइयो॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५९,६४,७१॥

समीक्षक—वाः! खुदाका जति पनि आश्चर्यजनक चिह्न छन्, ती मध्ये के एउटा पोथी ऊँट पनि 'खुदा छ' भन्ने कुराको प्रमाण वा परीक्षाको साधक हो? यदि खुदाले पथभ्रष्ट पार्ने आदेश शैतानलाई दिएको हो भने खुदा नै शैतानको सरदार र सबै पाप गराउने वाला ठहर भयो। यस्तालाई खुदा भन्नु अबुझपनाको कुरा मात्र हो। यदि कयामतको

राति अर्थात् प्रलयमा नै न्याय गर्न-गराउन पैगम्बर र उनको उपदेश मान्नेहरूलाई खुदाले बोलाउने छ भने प्रलय नभएसम्म के सबै दौडासुपुर्द (?) रहन्छन्? तथा न्याय नभएसम्म दौडासुपुर्द सबैका लागि दुःख दायक हुन्छ। यसकारण छिट्टै न्याय प्रदान गर्नु नै न्यायाधीशको उत्तम कर्त्तव्य कर्म हो। यो त मनपरी किसिमको न्याय पो भयो त। कुनै न्यायाधीशले पचास वर्ष सम्मका चोर र साहुकार जम्मा नभएसम्म उनीहरूलाई दण्ड वा प्रतिष्ठा प्राप्त हुनेछैन भने जस्तै यो कुरा पनि भयो। किनकि एउटाले पचास वर्षसम्म दौडासुपुर्द=फलको प्रतिक्षामा बन्दी जीवन व्यतीत गर्‌यो अनि एउटा चाहिं आजै समातियो। ती दुबैको न्याय एकै दिन हुन्छ भने यस्तो न्याय उपयोगी हुनसक्तैन। न्यायका लागि त क्षण मात्रको पनि विलम्ब नहुने र आ-आफ्नो कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाइनै रहने किसिमको विधान भएको वेद र मनुस्मुतिलाई हेर। अर्को कुरा, पैगम्बर हरूलाई साक्षी सरह बनाउनाले ईश्वरको सर्वज्ञता कई हानि हुन्छ। के कहिल्यै यस्तो पुस्तक ईश्वरकृत र यस्तो पुस्तकको उपदेश गर्ने ईश्वर हुन सक्तछ? कहिल्यै हुन सक्तैन॥ १०५॥

१०६. उनका लागि सदा रहने बगैंचा छन्, उनको मुन्तिर नहरहरू चल्दछन्, गहना लगाउन दिइनेछन्, तिनमा सुनकै जस्ता बाला हुने छन्, उत्तम रेशमी वस्त्रको पोसाक लगाउने छन् र सुनौला बुट्टा भरिएका जस्ता तकिया उसका सिंहासनमा हुनेछन्, फाइदा लिनका लागि पुण्य र बहिश्त राम्रा छन्॥ —मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३१॥

समीक्षक—वाः जी वा! क्या स्वर्ग रहेछ कुरानको, जहाँ बगैंचा, नहर, गहना, कपडा, तकिया आनन्दका लागि छ। आखिर कुनै बुद्धिमान् ले यहाँ विचार गरेमा यहाँ (यस संसारमा) भन्दा त्यहाँ=मुसलमानहरूको बहिस्तमा अन्याय बाहेक अरू केही पनि बढी छैन। त्यो अन्याय के हो भने उनका कर्म चाहिं अन्त हुने किसिमका र उनको फल चाहिं अनन्त बताइएको छ। अर्को कुरा, कसैले मीठो खाने कुरा पनि सधैं खाने गरेमा केही दिन मैं त्यो वस्तु विष जस्तै लाग्न थाल्दछ। त्यस्तै जब ती सदा सुख भोग्ने छन्, अनि त उनीहरूलाई त्यो सुख नै दुःखरूप हुनेछ। यसकारण महाकल्पसम्म मुक्तिसुख भोगेर पुनर्जन्म पाउने सिद्धान्त नै सत्य सिद्धान्त हो॥ १०६॥

१०७. तथा यी बस्ती हुन् कि जब उनीहरूले अन्याय गरे हामीले उनलाई मार्‌यौं तथा हामीले उनलाई मार्ने प्रतिज्ञा स्थापित गर्‌यौं॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५९॥

समीक्षक—आखिर के समस्त बस्ती नै पापी पनि हुन सक्तछ ? अर्को कुरा, पछि प्रतिज्ञा गर्नाले ईश्वर सर्वज्ञ रहेन। किनकि जब उनीहरूको अन्याय देख्यो तब प्रतिज्ञा गर्‍यो, के पहिले जान्दैनथियो ? यसबाट ऊ दयाहीन पनि ठहर भयो ॥ १०७ ॥

१०८. अनि त्यो जुन केटो थियो, उसका आमा-बाबु ऊ प्रति विश्वास राख्दथे, 'उसले उनलाई समातेर सरकशीमा र कुफ्रमा हाली दिए' भनेर हामी डरायौं ॥ यति सम्म कि सूर्य डुब्ने ठाउँमा पुग्यौं, उसलाई डुबिरहेको हिलोको तालको मध्यमा पायौं ॥ उसले भन्यो ए जुलकरनैन् ! निश्चय नै याजूज, माजूज (जाति विशेष) पृथ्वीमा गडबड गर्नेछन् ॥ —मं० ४। सि० १६। सू० १८। आ० ८०,८६,९४ ॥

समीक्षक—यो खुदाको कत्तिको बेसमझी हो ? शङ्काले नै डरेको छ कि कतै केटाका आमा-बुवा मेरो मार्गबाट पथभ्रष्ट गरेर न उल्टाइदिउन् भनेर। यो कहिल्यै ईश्वरको कुरा हुनसक्तैन। अझ बढी अविद्याको कुरा त हेर कि यस किताबको कर्त्ता सूर्यलाई रात्रिमा एउटा तालमा डुबिरहेको सम्झन्छ। अनि फेरि विहान निस्कन्छ। सूर्य त पृथ्वी भन्दा धेरै ठूलो छ, त्यो नदी, ताल वा समुद्रमा कसरी डुब्न सक्छ ? यसबाट यो कुरा विदित भयो कि कुरान बनाउनेलाई भूगोल-खगोल विद्याको ज्ञान थिएन। ज्ञान भएको भए यस्तो विद्याविरुद्ध कुरा किन लेख्दथ्यो ? अनि यस पुस्तकलाई मान्नेहरूमा पनि विद्या छैन। भएको भए यस्ता मिथ्या कुराले भरिपूर्ण पुस्तकलाई किन मान्दथे र ? अब खुदाको अन्याय हेर ! आफैं पृथ्वीलाई बनाउने राजा न्यायाधीश छ, र याजूज माजूजलाई पृथ्वीमा फसाद पनि गर्न दिन्छ। यो ईश्वरताको विरुद्ध कुरा हो। यसकारण यस्तो पुस्तकलाई जङ्गलीहरूले मान्ने गर्दछन्, विद्वान् ले मान्दैनन् ॥ १०८ ॥

१०९. तथा किताबमा मर्यमलाई सम्झ, जब आफैं पूर्वको घरमा पुगी ॥ बस, तीभन्दा यता पर्दा पर्‍यो, बस हामीले आफ्नो रूह=आत्मालाई अर्थात् फ्ररिस्तालाई पठायौं, बस उसका लागि पुष्ट मानिसको अनुहार बनायो ॥ भन्न थाली, यदि तँ परहेजगार=नियममा बस्ने होस् भने निश्चय म तँसँग रहमानको शरण पर्दछु ॥ यह बहिक होइन कि म तेरो मालिकबाट 'मैले तँलाई पवित्र छोरो दिएर जानका निम्ति पठाइएको हुँ' भन्नथाल्यो ॥ भनी, मेरो लागि छोरो कसरी हुनेछ, कुनै पुरुषले मलाई हात लगाएको छैन, म गलत काम गर्दिन ॥ बस ऊबाट गर्भिणी भई र उसको घरभन्दा टाढा अर्थात् जङ्गलमा पुगी ॥

—मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० १६,२०,२२ ॥

समीक्षक—अब बुद्धिमान् व्यक्तिले विचारणीय कुरा के छ भने सबै फरिश्ते खुदाकै रूह=आत्मा हुन् भने खुदा भन्दा अलग पदार्थ हुनसक्तैनन्। अर्को कुरा त्यस मर्यम कन्या केटी बाट बच्चा जन्मने कुरा पनि अन्याय हो। ऊ कसैको सँगत गर्न चाहन्नथिई, तर खुदाको हुक्मबाट फरिश्ताले उसलाई गर्भवती तुल्यायो। यो न्यायको विरुद्ध कुरा हो। यहाँ अरू पनि असभ्यताका कुरा धेरै लेखेका छन्। त्यो सबै लेख्न उचित लागेन ॥ १०९ ॥

११०. के तैंले देखिनस् कि हामीले शैतानहरूलाई काफिरहरूमाथि पठायौं, उनले पथभ्रष्ट पार्दा उनीहरूलाई पथभ्रष्ट पार्दछन् ॥

—मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८३ ॥

समीक्षक—जब खुदा नै शैतानलाई पथभ्रष्ट पार्न पठाउँदछ भने पथभ्रष्ट हुनेहरूको केही दोष हुनसक्तैन। तथा न उनीहरूलाई, न शैतानहरूलाई नै दण्ड हुनसक्तछ, किनकि यो सबै तो खुदाको हुक्मबाटै हुन्छ। यसको फल खुदालाई नै हुनुपर्दछ। यदि ऊ सच्चा न्यायकारी हो भने त्यसको फल दोजख आफैं भोगोस्। अनि यदि न्यायलाई छोडेर अन्याय गर्दछ भने अन्यायकारी भयो, अन्यायकारीलाई नै 'पापी' भनिन्छ ॥ ११० ॥

१११. र जसले तोबाः गर्‍यो र ईमान ल्यायो, असल कर्म गर्‍यो, अनि बाटो भेट्टायो, त्यस मनुष्यका लागि निश्चय नै क्षमा गर्नेवाला हुँ ॥ —मं० ४। सि० १६। सू० २०। आ० ८२ ॥

समीक्षक—कुरानमा भएको तोबा:बाट पाप क्षमा गर्ने कुरा सबैलाई पापी बनाउने कुरा हो। किनकि यसबाट पापीहरूमा पाप गर्ने साहस धेरै बढ्दछ। यसकारण यो पुस्तक र यस पुस्तकको रचयिता पापीहरूलाई पाप गराउन हौसला बढाउने हुन्, यसकारण यो पुस्तक परमेश्वरकृत र यसमा बताइएको परमेश्वर, परमेश्वर हुनसक्तैन ॥ १११ ॥

११२. र पृथ्वी नहल्लियोस् भनेर हामीले पृथ्वीको बीचमा पहाड राख्यौं ॥

समीक्षक—यदि कुरानलाई बनाउनेले पृथ्वी घुम्ने आदि कुरा जानेको भए 'पहाडलाई राख्नाले पृथ्वी हल्लिदैन' भन्ने कुरा कहिल्यै भन्ने थिएन। शंका भयो होला, पहाड नराखेको भए हल्लिने थियो भनेर। यति हुँदा पनि भुइँचालोमा किन हल्लिन्छ ? ॥ ११२ ॥

११३. र हामीले त्यस स्त्रीलाई शिक्षा दियौं, र उसले आफ्ना गुप्ताङ्गहरूको रक्षा गरी, बस हामीले उसका बीचमा आफ्नो रूहलाई

फुक्यौं ॥ —मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९१ ॥

समीक्षक—यस्ता अश्लील कुरा खुदाको पुस्तकमा खुदाको त के कुरा, अरू सभ्य मनुष्यको पनि हुँदैन। मनुष्यहरूमा त यस्ता कुरा लेख्न राम्रो मानिंदैन भने परमेश्वरका लागि कसरो ठीक हुनसक्तछ। यस्ता-यस्ता कुराबाट कुरान दूषित हुन्छ। यदि त्यसमा असल कुरा भएको भए अत्ति नै प्रशंसा हुने थियो, जस्तै वेदको प्रशंसा हुन्छ ॥ ११३ ॥

११४. के तैंले देखिनस् कि जो कोही आकाशहरू र पृथ्वीमा छन्, सूर्य र चन्द्र तारा र पहाड, वृक्ष र जनावर छन्, तीसबै अल्लाहलाई सिजदा गर्दछन् ॥ उसको बीचमा सुनका वाला र मोती र रेशमी पहिरन पहिराइने छ ॥ र अघि-पछि फिरनेहरूका लागि र उभिइरहनेहरूका लागि मेरो घरलाई पवित्र राख् ॥ अनि आफ्ना मैल हटाउनु पर्दछ र आफ्ना भेटीहरू पूर्ण गर्नुपर्दछ र कदीम=पुरानो घरको चारैतिर फिर्नुपर्दछ ॥ ताकि अल्लाहको नाम याद गरून् ॥

—मं० ४। सि० १७। सू० २२। आ० १८,२३,२६,२९,३४ ॥

समीक्षक—आखिर जुन जडवस्तु हुन्, परमेश्वरलाई जान्न सक्तैनन् भने उनले उसको भक्ति कसरी गर्नसक्छन्? यसकारण यो पुस्तक ईश्वरकृत कहिल्यै हुनसक्तैन, तर कुनै भ्रान्त व्यक्तिले बनाएको प्रतीत हुन्छ। वा:! क्या खूबैको स्वर्ग रहेछ, जहाँ सुन-मोतीका गहना र रेशमी कपडा लगाउन पाइन्छन्। यो बहिश्त यहाँका (यस लोकका) राजाहरूका घरभन्दा बढी जस्तो लाग्दैन। अनि जब परमेश्वरको घर छ भने त्यसै घरमा बस्दो पनि हो, अनि बुत्परस्ती=मूर्तिपूजा किन भएन? तथा अरू बुत्परस्त=मूर्तिपूजकहरूको खण्डन किन गर्दछन्? जब खुदा भेटी लिन्छ, आफ्नो घरको परिक्रमा गर्ने आज्ञा दिन्छ तथा पशुहरूलाई मार्न लगाएर खुवाउँछ भने यो खुदा मन्दिरका देव र भैरव, दुर्गा जस्तै भयो तथा महाबुत्परस्ती चलाउने भयो। किनकि मूर्त्तिहरूभन्दा पनि ठूलो बुत्=मूर्ति मस्जिद हो। यसकारण खुदा र मुसलमान ठूला बुत्परस्त तथा पुराणी र जैनी साना बुत्परस्त हुन् ॥ ११४ ॥

११५. अनि निश्चय तिमी कयामतको दिन उठाइने छौ ॥

—मं० ४। सि० १८। सू० २३। आ० १६ ॥

समीक्षक—कयामतसम्म मुर्दा कबर=चिहानमा रहनेछन् अथवा अरू कुनै ठाउँमा? उनैमा रहन्छन् भने कुहिएका दुर्धगन्धरूप शरीरमा रहेर पुण्यात्मा पनि दु:ख भोग्नेछन्? यो अन्याय हो। तथा दुर्गन्ध बढेर रोगोत्पत्ति गर्नाले खुदा र मुसलमान पापको भागी हुन्छन् ॥ ११५ ॥

११६. उनका वाणी, उनका हात र उनका गोडा तीप्रति त्यस दिनको गवाही=साक्षी हुनेछन्, किनकि तिनै ती वस्तुसँग (काम) गर्दथे ॥ अल्लाह आकाशहरू र पृथ्वीको नूर=ज्योति हो, त्यो नूर=ज्योति त्यस्तो छ जस्तै कि एउटा खोपो होस्, त्यसको मध्यमा दियो होस् र त्यो दियो ऐनाको कन्दील=बार=चिमको बीचमा होस्, मानौं कि त्यो कन्दील तारा चम्केजस्तै छ, सौभाग्यसाली वृक्ष जैतूनको तेलबाट दियो बालिन्छ। त्यो न पूर्वतर्फ छ, न पश्चिमको नजिक छ, उसको तेल रोशन=प्रकाशित होओस्, जो उसको आगो नलागोस्, उज्यालोमाथि उज्यालो छ। अल्लाह जसलाई चाहान्छ त्यसलाई आफ्नो नूरको मार्ग देखाउँछ ॥ —मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २४,३५ ॥

समीक्षक—हात-गोडा आदि जड़ हुनाले कहिल्यै साक्षी बस्न सक्तैनन्। यो कुरा सृष्टिक्रमको विरुद्ध हुनाले मिथ्या हो। के खुदा आगो, बिजुली हो? जस्तो कि दृष्टान्त दिएका छन्। यस्तो दृष्टान्त ईश्वरमा घटित हुनसक्तैन। हँ, कुनै साकार वस्तुमा घटित हुनसक्तछ ॥ ११६ ॥

११७. तथा अल्लाहले सबै जनावरलाई पानीबाट उत्पन्न गर्‍यो, बस कोही तीमध्ये त्यो हो जो आफ्नो पेट घिसारेर हिंड्दछ ॥ र जो कोही अल्लाहको र उसका रसूलको आज्ञापालन गर, अनि त दया गरिने छौ ॥ —मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४५,५२,५४,५६ ॥

समीक्षक—'जुन जनावरका शरीरमा सबै तत्व देखिन्छन् तिनलाई केवल पानीबाट उत्पन्न गरेको' भन्नु कुन चाहिं 'फिलासफी' हो? यो केवल अविद्याको कुरा हो। जब अल्लाहसँग पैगम्बरको आज्ञापालन गर्नुपर्दछ भने खुदा शरीक भयो वा भएन? यसो हो भने कुरानमा खुदालाई किन लाशरीक बताइएको छ र तिमी किन लाशरीक मान्दछौ ॥ ११७ ॥

११८. र जुन दिन आकाश बादलका साथ फट्नेछ तथा फरिश्ताहरू उतारिनेछन् ॥ बस काफिरहरूले भनेको नमान र तीसँग झगडा गर ठूलो झगडा ॥ र अल्लाहले उनका खराबीलाई भलाईसँग बदली गरिदिन्छ ॥ र जसले तोबा: गर्दछ र असल कर्म गर्दछ, बस निश्चय नै अल्लाहको तर्फ आउँदछ ॥

—मं० ४। सि० १९। सू० २५। आ० २५,५२,७०,७१ ॥

समीक्षक—यो कुरा कहिल्यै सत्य हुनसक्तैन कि आकाश बादलका साथै फाट्तछ। यदि आकाश कुनै मूर्त्तिमान् पदार्थ हो भने फाट्न सक्तछ। यो मुसलमानहरूको कुरान शान्तिभङ्ग गरेर गदर=झगडा मच्चाउने खालको हो। यसैकारण धार्मिक विद्वान्हरू यसलाई मान्दैनन्।

के पाप र पुण्यको अदलाबदली हुनु पनि खुवै राम्रो न्याय हो? के यो तिल र मासको जस्तै कुरा हो र? साटासाट् हुने? तोबा: गर्नाले पाप छुट्ने र ईश्वर मिल्ने भए पाप गर्नबाट कोही पनि डर्नेछैन। यसकारण यी सबै कुरा विद्या–विरुद्ध हुन्॥ ११८॥

११९. हामीले मूसाको तर्फ त्यही गर्‍यौं, यो कि राती मेरा बन्दा=भक्तलाई लिई हिंड, निश्चय तिम्रो पीछा गरिनेछ। बस फेरोनले शहरको बीचमा मानिस जम्मा पार्ने मानिस पठाए॥ र त्यो पुरुष जसले मलाई पैदा गर्‍यो, बस उही मार्ग देखाउँछ॥ र ऊ जो मलाई खुवाउँछ पिलाउँछ॥ र म त्यस पुरुषको आशा राख्तछु, कि कयामतको दिनमा मेरो लागि मेरा अपराध क्षमा गरोस्॥

—मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५२,५३,७८,७९,८२॥

समीक्षक—खुदाले मूसातर्फ त्यही पठाएको भए, फेरि दाऊद, ईसा र मुहम्मद साहबतर्फ किताब किन पठाएको हो? किनकि परमेश्वरको कुरा सदा एकैनास र भूल–चूक रहित हुन्छ। अनि त्यस पछि कुरान सम्म पुस्तक पठाउनु अघिल्ला पुस्तकलाई अपूर्ण र भूलयुक्त मानिनेछ। यदि यी तीन पुस्तक सच्चा हुन् भने यो कुरान झूटो ठहर्दछ। चारै पुस्तकमा रहेका परस्पर विरोधी कुराहरू पनि सर्वथा सत्य हुनसक्तैनन्। यदि खुदाले रूह अर्थात् जीवहरू उत्पन्न गरेका छन् भने, ती मर्ने पनि छन् अर्थात् उनको नाश या अभाव पनि कुनै बखत हुने नै छ। यदि सबै मनुष्य आदि प्राणीहरूलाई परमेश्वर नै खुवाउने पियाउने गर्दछ भने कसैलाई पनि रोग नहुनु पर्दछ। तथा सबैलाई एकनास खाना दिनु पर्दछ। राजा र कंगाललाई श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलेजस्तै पक्षपातद्वारा एउटालाई उत्तम भोजन र अर्कोलाई निकृष्ट मिल्नु हुँदैन। परमेश्वर नै खुवाउने–पियाउने र पथ्य गराउने हो भने रोग नै नहुनु पर्दछ। तर मुसलमान आदिलाई पनि रोग लाग्दछन्। यदि रोग छुटाएर निको पार्ने खुदा नै हो भने मुसलमानहरूका शरीरमा रोग रहनु हुँदैन। यदि रोग रहन्छ भने खुदा पूर्ण वैद्य होइन। यदि पूर्ण वैद्य हो भने मुसलमानहरूका शरीरमा रोग किन रहन्छन्? यदि मार्ने र ब्यूँताउने उही हो भने त्यसै खुदालाई पाप पुण्य लाग्दो हो। यदि जन्म जन्मान्तरका कर्मानुसार व्यवस्था गर्दछ भने उसको केही पनि अपराध छैन। यदि ऊ पाप क्षमा गर्दछ र कयामत को रातमा न्याय गर्दछ भने खुदा पाप बढाउने भएर पापयुक्त हुनेछ। यदि क्षमा गर्दैन भने यो कुरानको कुरा झूटो हुनाले बच्नसक्तैन॥ ११९॥

१२०. तर तँ हामी जस्तो होइन, यदि तँ सच्चा भक्तहरूमध्ये होस् भने बस केही निशानी लिएर आइज॥ भन्यो, यो पोथी ऊँट छ। उसका लागि एक पटक पानी पीउनु छ॥

—मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५४,१५५॥

समीक्षक—आखिर ढुङ्गाबाट पोथी ऊँट निस्कने कुरालाई कसैले मान्नसक्तछ! ती जङ्गलीहरू थिए, जसले यस कुरालाई माने। तथा ऊँटको चिनो दिने कुरा केवल जङ्गली व्यवहार हो, ईश्वरकृत होइन। यो किताब ईश्वरकृत भएको भए यसमा यस्ता व्यर्थ कुरा हुने थिएनन्॥ १२०॥

१२१. ए मूसा! कुरा यो हो कि निश्चय म शक्तिशाली अल्लाह हुँ॥ र आफ्नो लौरो फाल्दे, बस त्यसलाई हेर्दा त्यो सर्प जस्तै गरी हल्लिन्थ्यो। ए मूसा! न डराऊ, निश्चय नै मेरो नजिक पैगम्बर डर्दैनन्॥ अल्लाह कुनै माबूद (लाचार?) होइन, तर ऊ ठूलो सिंहासनको मालिक हो॥ ममाथि सरकशी (=टाउको काट्ने काम?) नगर, र म कहाँ मुसलमान भएर आऊ॥

—मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९,१०,२६,३१॥

समीक्षक—अरू पनि हेर, आफ्नो मुखबाट आफैं अल्लाह ठूलो जबर्जस्त बन्दछ। आफ्नो मुखबाट आफ्नै प्रशंसा गर्नु श्रेष्ठ पुरुषहरूको पनि काम होइन भने खुदाको काम कसरी हुनसक्तछ? अनि त इन्द्रजालका तमासा देखाएर जङ्गली मनुष्यहरूलाई वशीभूत पारेर आफैं जङ्गलको खुदा बन्यो। यस्तो कुरा ईश्वरको पुस्तकमा कहिल्यै हुनसक्तैन। यदि ऊठूलो अर्श=सिंहासन अर्थात् सातौं आकाशको मालिक हो भने ऊ एकदेशी हुनाले ईश्वर हुनसक्तैन। यदि सरकशी गर्नु गलत काम हो भने खुदा र मुहम्मद साहबले आफ्नो स्तुतिले किन पुस्तक भरे? 'मुहम्मद साहबले अनेकौंलाई मारे', यसबाट सरकशी भयो वा भएन? यो कुरान पुनरुक्त र पूर्वापर विरुद्ध कुराले भरिपूर्ण छ॥ १२१॥

१२२. र तँ पहाडहरूलाई देख्नेछस्, तँ उनलाई स्थिर सोच्तछस् र ती हिंड्ने बादल जस्तै हिंडिरहेछन्। कारीगरी अल्लाहको हो कि जसले हर वस्तुलाई दृढ गर्‍यो, निश्चय ऊ त्यस वस्तुबारे खबरदार=जानिफकार छ जुन तिमी गर्दछौ॥

—मं० ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८८॥

समीक्षक—बादल जस्तै पहाड हिंड्ने कुरा कुरान बनाउनेहरूकै देशमा हुँदो हो, अन्त हुँदैन। र खुदाको खबरदारी त शैतान विद्रोहीलाई

नसमात्नु र दण्ड नदिनुबाटै विदित हुन्छ कि जसले एउटा विद्रोहीलाई पनि हालसम्म समात्न सकेन र दण्ड दिएन भने यो भन्दा बढी बेखबरी=असावधानी अरू के होला र?॥ १२२॥

१२३. बस उसलाई मूसाले घूस्सा हान्यो, बस उसको आयु पूरा गर्‍यो॥ भन्यो, ए मेरा रब (मालिक), निश्चय मैले आफ्नीलाई सम्झेर अन्याय गरें, बस मलाई क्षमा गर्, बस उसलाई क्षमा गर्‍यो। निश्चय ऊ क्षमा गर्ने दयालु हो॥ र तेरो मालिक जे चाहान्छ र मनपराउँदछ त्यो उत्पन्न गर्दछ॥ —मं० ५। सि० २०। सू० २८। आ० १५,१६,६८॥

समीक्षक—ल अब अरू पनि हेर, मुसलमान र ईसाईहरूको पैगम्बर र खुदालाई कि मूसा पैगम्बर मानिसको हत्या गर्ने गर्दछ र खुदा क्षमा गर्ने गर्दछ। यी दुवै अन्यायकारी हुन् कि होइनन्? के आफ्नो इच्छाबाटै जस्तो चाहान्छ, त्यस्तै उत्पत्ति गर्दछ? के उसले आफ्नै इच्छालेनै एउटालाई राजा र अर्कोलाई कङ्गाल तथा एउटालाई विद्वान् र अर्कोलाई मूर्ख आदि बनाएको हो? यदि यसो हो भने न त कुरान सत्य हुनसक्तछ र अन्यायकारी हुनाले न यो खुदा नै हुनसक्तछ॥ १२३॥

१२४. र हामीले मनुष्यलाई आज्ञा दियौं कि आमा-बाबुसँग। राम्रो गर्नू अनि दुबै तँसँग झगडा गर्दछन् भने तँ त्यस वस्तुलाई मसँग मिला, तँसँग उसको ज्ञानका लागि होइन, बस ती दुबैले भनेको नमान, तँ मेरै तर्फ हो॥ र हामीले नूहलाई उसको कौम=जातितर्फ अवश्य पठायौं, बस तिनकै मध्य पचास वर्ष कम हजार (९५०) वर्ष सम्म रह्यो॥ —मं० ५। सि० २०। सू० २९। आ० ८,१४॥

समीक्षक—आमा-बाबुको सेवा गर्नु त राम्रै हो। कसैले खुदासँग शरीक=मेल गर्न भनेदेखि उनले भनेको नमान्नु पनि ठिकै हो (?)। तर यदि आमा-बाबु मिथ्या भाषण आदि गर्ने आज्ञा दिन्छन् भने के मान्नु पर्दछ? यसकारण यो कुरा आधा ठीक र आधा बेठीक हो। के नूह आदि पैगम्बरहरूलाई नै खुदा संसारमा पठाउँदछ? त्यसो भए अन्य जीवहरूलाई कसले पठाउँछ? यदि सबैलाई उही पठाउँछ भने सबै पैगम्बर किन होइनन्? अनि पहिले मनुष्यहरूको आयु पचास कम हजार वर्ष हुन्थ्यो भने अब त्यति किन हुँदैन? यसकारण यो कुरा ठीक होइन॥ १२४॥

१२५. अल्लाह पहिलो पटक उत्पत्ति गर्दछ, फेरि त्यसलाई दोस्रो पटक गर्नेछ, फेरि त्यसैको तर्फ फर्काइनेछौ॥ र जुन दिन वर्षा अर्थात्

कयामत=प्रलय हुनेछ, पापी निराश हुनेछन्॥ बस जसले ईमान ल्याए र असल काम गरे, बस ती बगैंचाको बीचमा सजाइनेछन्॥ र हामीले एबाब (?) पठाएमा त्यो खेती पहेंलो भएको देखिनेछ॥ यसैगरी अल्लाह तिनको दिलमा छाप राख्तछ, यसैले ती जान्दैनन्॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३०। आ० ११,१२,१५,५१,५९॥

समीक्षक—यदि अल्लाह दुई पटक उत्पत्ति गर्दछ, तेस्रो पटक गर्दैन भने उत्पत्तिको आदि र दोस्रो पटकको अन्तमा नाकाम बसिरहँदो हो? अनि एक तथा दुई पटक उत्पत्ति पछि उसको सामर्थ्य नाकाम र व्यर्थ हुनेछ। यदि न्याय गर्ने दिन पापीहरू निराश हुनेछन् भने राम्रो कुरा हो। तर कतै यसको प्रयोजन 'मुसलमान बाहेक सबै पापी सम्झेर निराश तुल्याइनेछन्' भन्ने त होइन? किनकि कुरानमा धेरै ठाउँमा 'पापीहरू' भन्नाले मुसलमान बाहेकहरू भन्ने प्रयोजन नै छ। यदि बगैंचामा राख्नु र शृङ्गार गर्नु नै मुसलमानहरूको स्वर्ग हो भने यही संसारजस्तै भयो। अनि त्यहाँ मालो र सुनार पनि हुँदाहुन् अथवा खुदा नै माली र सुनार आदिको काम गर्दो हो? यदि कसैलाई गहना कम मिल्यो भने चोरी पनि हुँदो हो? अनि बहिश्त=स्वर्गबाट चोरी गर्नेहरूलाई दोजख=नरकमा जाकिदिंदो हो? यदि यसो हुँदो हो त ''सधैं बहिश्तमा रहनेछन्'' भन्ने कुरा झूटो हुनेछ। यदि किसानहरूको खेतमा पनि खुदाको दृष्टि छ भने यो विद्या खेती गर्ने अनुभवबाटै प्राप्त हुन्छ। अनि यदि 'खुदाले आफ्नो विद्याबाट सबै कुरा जान्यो' भने यस्तो भय दिनु आफ्नो घमण्ड फैलाउनु हो। यदि अल्लाहले जीवहरूका दिलमा छाप ठोकेर पाप गराएको भए त्यस पापको भागी उही (अल्लाह) हुन्छ, जीव हुनसक्तैनन्। जस्तै हार-जीत सेनापतिको हुन्छ, त्यस्तै यी सबै पाप खुदालाई नै प्राप्त होऊन्॥ १२५॥

१२६. यी आयत हिक्मत भएको किताबका हुन्॥ आकाशहरूलाई सुतून=थाम आदि बिना नै उत्पन्न गर्‍यो। तिमी त्यसलाई देख्तछौ। र पृथ्वी नहल्लियोस् भनेर पृथ्वीका बीचमा पहाडलाई राख्यो॥ के तैंले 'अल्लाह दिनको बीचमा रातलाई र रातको बीचमा दिनलाई प्रवेश गराउँदछ' भन्ने कुरा देखिनस्?॥ के 'दर्या=नदीको बीचमा अल्लाहको निआमत=दयाका साथ किश्तीहरू=डुङ्गाहरू चल्दछन्, जसबाट आफ्ना निशानीहरू तिमीलाई देखाउँछौं' भन्ने कुरा देखे नी?

—मं० ५। सि० २१। सू० ३१। आ० २,१०,२९,३१

समीक्षक—वा: जो वा! सर्वथा विद्याविरुद्ध आकाशको उत्पत्ति,

र त्यसमा खम्बा लगाउने शंका, र पृथ्वीलाई स्थिर राख्न पहाड राखेको कुरा बताइएको हिक्मत भएको किताब रे!!! अलिकति विद्यावान् ले पनि कहिल्यै यस्तो न त लेख्तछ, न मान्दछ। अरू पनि हिक्मत हेर कि जहाँ दिन छ त्यहाँ रात छैन तथा जहाँ रात छ त्यहाँ दिन छैन। त्यसलाई एक–अर्कामा प्रवेश गराएको कुरा लेख्तछ। यो ठूलो अविद्वान्हरूको कुरा हो। यसकारण यो कुरान विद्याको पुस्तक हुनसक्तैन। आखिर डुङ्गाहरू मानिस र क्रिया–कौशलबाट चल्दछन् कि खुदाको कृपाबाट? के यो विद्या–विरुद्ध कुरा होइन? ठोस फलाम वा ढुङ्गाको डुङ्गा बनाएर समुद्रमा चलाएमा खुदाको निशानी डुब्नेछ कि छैन? यसकारण यो पुस्तक न त विद्वान्ले, न ईश्वरले बनाएको हुनसक्तछ॥ १२६॥

१२७. आकाशबाट पृथ्वीतर्फको कामको तदबीर=प्रबन्ध गर्दछ। फेरि एक दिनका बीचमा उसैको तर्फ चढ्दछ, जुन वर्षहरू तिमी गन्दछौ ती वर्षले हजार वर्ष उसको अवधि छ। ऊ गैब=परोक्ष र प्रत्यक्षलाई जान्दछ, (ऊ) गालिब=विजयी (र) दयालु (छ)॥ अनि उसलाई पुष्ट गर्‍यो, र उसमा आफ्नो रूह=आत्माबाट (श्वास?) फुक्यो॥ जो तिम्रासाथ निश्चिय गरिएको छ त्यस मृत्युको फरिश्ताले तिमीलाई बन्धक बनाउने (कब्ज?) छ। अनि हामीले चाहेको भए हामी हरएक जीवलाई उसको शिक्षा दिनेथियौं, तर मेरो तर्फबाट यो कुरा सिद्ध भयो कि म दोजख=नरकलाई जिनहरू=भूत, प्रेत आदि र मानिसले एकै ठाउँमा अवश्य भर्नेछु॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३२ आ० ५,६,९,११,१३॥

समीक्षक—अब त मुसलमानहरूको खुदा मनुष्यजस्तै एकदेशी रहेछ भन्ने कुरा पूरै सिद्ध भयो। किनकि व्यापक भएको भए एक ठाउँबाट प्रबन्ध गर्ने र उत्रने–चढ्ने कुरा हुनसक्तैन। यदि खुदा फरिश्तेलाई पठाउँछ भने पनि आफू एकदेशी भयो। आफू आकाशमा झुण्डिएर बसेको छ र फरिश्ताहरूलाई दौडाउँदछ। यदि फरिश्ताहरूले घूंस लिएर कुनै मामला बिगारिदिएमा वा कुनै मुर्दालाई छोडेर गएमा खुदाले के पत्तो पाउन सक्तछ रे? पत्तो त त्यसले पाउन सक्तछ, जो सर्वज्ञ र सर्वव्यापक होओस्, त्यसो त ऊ छँदै छैन, त्यस्तो भएको भए फरिश्ताहरूलाई पठाउने र अनेक व्यक्तिहरूको अनेक प्रकारले परीक्षा लिनुको के प्रयोजन थियो? अनि एक हजार वर्षमा आउने जाने तथा प्रबन्ध गर्ने हुनाले सर्वशक्तिमान् पनि होइन। यदि मृत्युको फरिश्ता हो भने त्यस फरिश्तालाई मार्ने कुन

चाहिं मृत्यु हो त? यदि ऊ नित्य छ भने अमरपनमा खुदाको बराबर शरीक=सम्मिलित भयो। एउटा फरिश्ता एक समयमा दोजखलाई भर्नका लागि जीवहरूलाई शिक्षा दिनसक्तैन। अनि उनलाई पाप नगरिकनै आफ्नै इच्छाले दोजख=नरक भरेर उनलाई दु:ख दिएर तमासा देख्तछ भने त्यो खुदा पापी, अन्यायकारी र दयाहीन छ। यस्ता कुरा जुन पुस्तकमा हुन्छन्, न त त्यो विद्वान्कृत, न ईश्वरकृत हुनसक्तछ। अनि जो दया–न्याय रहित छ, त्यो ईश्वर पनि कहिल्यै हुनसक्तैन्॥ १२७॥

१२८. भन कि यदि तिमी मृत्यु वा कतलदेखि भाग्दछौ भने त्यस भाग्नुले तिमीलाई कहिल्यै फाइदा पुर्‍याउने छैन॥ ए पैगम्बरका पत्नीहरू! तिमीमध्ये कोही प्रत्यक्ष निर्लज्जतापूर्वक आएमा उसका लागि अजाब=दु:ख दोब्बर गरिनेछ तथा यो कुरा अल्लाहका लागि सहल सजिलो छ॥ —मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६,३०॥

समीक्षक—मुहम्मद साहेबले यो यसकारण लेखे–लेखाएको होला कि लडाइमा कोही न भागोस्, हाम्रो जीत होओस्, मर्नबाट पनि न डरोस् ऐश्वर्य बढोस्, मजहब बढाऔं भनेर। अनि यदि बीबी=पत्नी निर्लज्ज भएर न आऊन्, त के पैगम्बर साहेब चाहिं निर्लज्ज भएर आऊन्? बीबीहरू माथि अजाब=कष्ट हुने र पैगम्बर साहेबमाथि अजाब नहुने यो कुन घरको न्याय हो?॥ १२८॥

१२९. तथा आफ्ना घरमा अट्किराख, अल्लाह र रसूलको आज्ञा पालन गर, यस बाहेक होइन॥ जैदले ऊसँग आफ्नो इच्छा (हाजत) पूर्ण (अदा) गरिसकेपछि हामीले तँसँग उसको विवाह गरिदियौं, जसबाट ईमान हुनेहरूमा उनका धर्मपुत्र (लेपालक) का पत्नीहरूको कमी नहोओस् र तीबाट इच्छा पूर्ण गरून् र यो खुदाले दिएको आज्ञा हो॥ त्यस वस्तुको बीचमा नवी=देवदूतलाई केही कमी छैन॥ मुहम्मद कुनै मर्दको बाबु होइन॥ र ईमान भएकी त्यो स्त्री हलाल=पवित्र हुन्छे, जो मिहर (=?)विना आफ्नो सम्झेर नबीको लागि देओस्॥ तीमध्ये चाहेजसलाई तँ छूट देऊ, र चाहेजसलाई आफ्नो तर्फ ठाउँ देऊ, तँलाई पाप लाग्नेछैन॥ ए मानिसहरू! ईमान ल्याएका छौ भने पैगम्बरको घरमा प्रवेश नगर॥ —मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३, ३७, ३८, ४०, ५०, ५१, ५३॥

समीक्षक—स्त्री चाहिं घरमा कैद भए सरह रहनुपर्ने र पुरुष चाहिं खुल्ला हिंड्ने कुरा ठूलो अन्याय हो। के स्त्रीहरूको चित्त शुद्धवायु, शुद्ध देशमा भ्रमण गर्न र सृष्टिको अनेक पदार्थ हेर्न चाहँदैन

होला? यसै अपराधका कारण मुसलमानहरूका छोरा खासगरी सयलानी=छाडा घुम्ने र विषयी हुन्छन्॥ अल्लाह र रसूलको एउटै अविरुद्ध आज्ञा छ? अथवा छुट्टा छुट्टै विरुद्ध छ? यदि एउटै छ भने 'दुबैको आज्ञा पालन गर' भन्नु व्यर्थै छ। अनि भिन्नाभिन्नै विरुद्ध छ भने एउटा सच्चा र अर्को झूटो छ। एउटा खुदा, अर्को शैतान ठहर्नेछ। तथा शरीक पनि हुनेछ वा:! कुरानको खुदा, पैगम्बर र कुरान!!! जसमा अरूको कार्य नष्ट गरेर आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्ने लक्ष्य र इच्छा हुन्छ, त्यसले यस्तो लीला अवश्य रच्तछ॥ यसबाट 'मुहम्मद साहेब अत्यन्त विषयी थिए' भन्ने पनि सिद्ध भयो। नत्र भने छोरा (लेपालक) की पत्नीलाई आफ्नी पत्नी किन बनाउँदथे र? अनि फेरि खुदा पनि यस्ता कामकुरा गर्नेको पक्षपाती भयो र अन्यायलाई न्याय ठहर गर्‍यो। मानिसहरूमा कोही जङ्गली छ भने पनि त्यसले आफ्ना छोराकी पत्नीलाई त्याग्दछ-ग्रहण गर्दैन। अनि त्यो नवीलाई विषयासक्तिको लीला गर्नमा केही पनि रोकटोक वा लाज शरम नहुनु कति ठूलो अन्यायको कुरा हो? यदि नबी कसैको बाबु थिएन भने जैद (लेपालक) कसको छोरो थियो र किन (उसको छोरी भनेर) लेखेको? यस कुराबाट त 'जब छोराको पत्नीलाई पनि घरमा राख्नबाट पैगम्बर साहेब चूकेनन् भने अरूलाई कसरी बाँकी राख्ता हुन् र' भन्ने कुरा प्रष्ट हुन्छ। यस्तो चतुराइ गर्नाले गलत काम कुराबाट हुने निन्दा कहिल्यै छुट्नसक्तैन॥ कुनै पराई स्त्रीले पनि नबी देखि प्रसन्न भएर निकाह (विवाहको पद्धति विशेष) गर्न चाहेमा के त्यो पनि हलाल हुन्छ? अनि नबीले चाहिं जुनसुकै स्त्रीलाई स्वेच्छाले त्याग्न पाउने र मुहम्मद साहेबका स्तीहरूले भने पैगम्बर अपराधी भए पनि कहिल्यै त्याग्न नसक्ने? यो त महाअर्धमको कुरा हो॥ जसरी पैगम्बरका घरहरूमा अरू कोही पनि व्यभिचार दृष्टिले प्रवेश गर्नुहुँदैन भने त्यस्तै पैगम्बर साहेबले पनि कसैको घरमा प्रवेश गर्नुहुँदैन। के नबी चाहिं जोसुकैको घरमा स्वेच्छापूर्वक निश्शंक=बेरोकटोक प्रवेश गर्ने र माननीय पनि हुने? आखिर यस कुरानलाई ईश्वरकृत र मुहम्मद साहेबलाई पैगम्बर र कुरानोक्त ईश्वरलाई परमेश्वर मान्न सक्ने यस्तो हृदयको अन्धो (ज्ञानरूपी आँखा नभएको) को होला? ठूलो आश्चर्यको कुरा त के छ भने यस्ता युक्तिशून्य, धर्मविरुद्ध कुराले परिपूर्ण यस मतलाई अरबदेश निवासी आदि मानिसहरूले माने॥ १२९॥

१३०. रसूलले निकाह गरेकी उसकी बीबीहरूसँग पछि कहिल्यै

तिमीले निकाह गर्नु र रसूललाई दुःख दिनु तिम्रा लागि उचित होइन, निश्चय नै अल्लाहको समीप यो ठूलो पाप हो॥ जो मानिस अल्लाहलाई र उसका रसूललाई दुःख दिन्छन् निश्चय नै तिनलाई अल्लाहले धिक्कारेको छ॥ अनि जो मानिस मुसलमान र मुसलमान स्त्रीहरूलाई उनीहरूले खराब नगरिकनै दुःख दिन्छन्, निश्चयनै उनीहरूले बाँहतान अर्थात् झूट र प्रत्यक्ष पाप बोकेका छन्॥ जहाँ फेलापर्छन् त्यहीं धिक्कार्नुपर्दछ, बन्धक बनाउनुपर्दछ, कत्ल गर्नुपर्दछ र खूब मारपीट गर्नुपर्दछ॥ हे हाम्रा मालिक परमेश्वर! उनलाई दोब्बर अजाब=ठूलो दुःख दिए र धिक्कारभन्दा बढी धिक्कार गर्।

—मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५३,५७,५८,६१,६८॥

समीक्षक—वा:! के खुदा आफ्नो खुदाई=ईश्वरत्वलाई धर्मपूर्वक देखाइरहेछ? जस्तै रसूललाई दुःख दिन निषेध गर्नु त ठीक छ, तर त्यस्तै अरूलाई दुःख दिनबाट पनि रसूललाई रोक्नु उचित हुन्थ्यो, अनि किन नरोकेको? के कसैले दुःख दिएर अल्लाह पनि दुःखी हुन्छ? यदि यसो हो भने त्यो ईश्वर हुनैसक्तैन॥ के अल्लाह र रसूललाई दुःख दिने कुराको निषेध गर्नाले 'अल्लाह र रसूलचाहिं चाहेजसलाई दुःख दिऊन्' भन्ने कुरा सिद्ध हुँदैन? अरू सबैलाई चाहिं दुःख दिनुपर्दछ? जसरी मुसलमानहरू र मुसलमानकी स्त्रीहरूलाई दुःख दिनु गलत हो, त्यस्तै यी बाहेकका अरू मानिसहरूलाई दुःख दिनु पनि अवश्य गलत हो। जसले यो कुरा मान्दैन भने उसको पनि यो पक्षपातपूर्ण कुरा हो॥ वा: गदर (विद्रोह, भांडभैलो) मच्चाउने खुदा र नबी! संसारमा यी जस्ता निर्दयी अरू कमै होलान्! जसरी 'अन्य व्यक्ति जहाँ फेलापछेन् त्यहीं मार्नु, बन्धक बनाउनु, मारकाट मच्चाउनु' लेखेको छ, कसैले मुसलमानहरूका बारेमा त्यस्तै आज्ञा दिएमा यो कुरा मुसलमानहरूलाई खराब लाग्ने छ वा छैन? वा:! पैगम्बर आदि कस्ता हिंसक छन्? जो कि परमेश्वरसँग आफू भन्दा अरूलाई दोब्बर दुःख दिने प्रार्थना गर्ने कुरा लेखेको छ। यो पनि पक्षपात, स्वार्थसागर र महाअधर्मको कुरा हो॥ यसैकारण हालसम्म पनि मुसलमानहरूमा धेरैजसो शठ=धूर्त व्यक्ति यस्तै कर्म गर्नमा डर्दैनन्। यो ठीक कुरा हो कि शिक्षा बिना मनुष्य पशुसरह नै रहन्छ॥ १३०॥

१३१. र अल्लाह त्यो पुरुष हो जसले हावालाई पठाउँछ, हावाले बादलहरूलाई उठाउँछ, तिनलाई निर्जीव भूभागतर्फ (शहर मुर्दे) लैजान्छ, बस ऊसँगै हामीले पृथ्वीलाई उसको मृत्युपछि जीवित तुल्यायौं।

यसैगरी कबर=चिहानबाट निकाल्नुछ॥

(अर्थात् जसरी अल्लाहद्वारा पठाइएका हावाले बादललाई उठाएर निर्जीव भूभागतर्फ लैजान्छन्, त्यसले निर्जीव पृथ्वी जीवित हुन्छ, त्यस्तै कबर भित्र रहेका मुर्दा जीवत भएर उठ्तछन्)

जसले आफ्नो दयाद्वारा सधैं रहने घर उतार्‍यो (बनायो), त्यसमा हामीलाई मेहनत गर्नुपर्दैन र उसमा थकाई पनि लाग्दैन॥

—मं० ५। सि० २२। सू० ३५। आ० ९,३५॥

समीक्षक—वा: ! खुदाको कस्तो 'फिलासफी' रहेछ ? ऊ वायुलाई पठाउँछ र ऊ बादललाई उठाउँदै फिर्दछ ? र खुदा भने मुर्दालाई ब्यूँताउँदै फिर्दछ! कहिल्यै यो कुरा ईश्वरसम्बन्धी हुनसक्तैन, किनकि ईश्वरको काम निरन्तर एकनासै भैरहन्छ। घर छन् भने ती नबनाएका हुनसक्तैनन् र बनेको वस्तु सधैं रहनसक्तैन। जसको शरीर छ ऊ परिश्रमविना दु:खी हुन्छ र शरीर छ भने रोगी नभई बच्न सक्तैन्॥ एउटी स्त्रीसँग समागम गर्ने त रोगबाट बच्न सक्तैन भने धेरै स्त्रीहरूसँग विषय भोग गर्नेहरूको (मुस्लिमहरूलाई बहिश्तमा धेरै स्त्रीहरू मिल्ने कुरा कुरानमा उल्लेख छ) कत्तिको दुर्दशा हुँदो हो? यसकारण मुसलमानहरूले बहिश्तमा बस्नु पनि सदा सुखदायक हुनसक्तैन॥१३१॥

१३२. दृढ (हिक्मतवाला) कुरानको कसम छ॥ निश्चय तँ पठाइएको मध्ये होस्॥ त्यस सोझो मार्गमा॥ गालिब=बलशाली, दयावान् लिए॥ —मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० २-५॥

समीक्षक—अब हेर, यो कुरान खुदाले बनाएको भए ऊ यसको सौगन्ध=कसम किन खान्थ्यो र? यदि नबीलाई खुदाले पठाएको थियो भने छोरा (लेपालक) की पत्नीमाथि किन मोहित हुन्थ्यो? 'कुरानलाई मान्नेहरू सोझो मार्गमा छन्' भन्ने त कुरा मात्र हो। किनकि सत्यमान्नु, सत्य बोल्नु, सत्य गर्नु, पक्षपात रहित न्याय धर्मको आचरण गर्नु र यसको विपरीतलाई त्याग्नु नै सोझो बाटो हुन्छ। सो न त कुरानमा, न मुसलमानहरूमा र न यिनका खुदामा नै यस्तो स्वभाव छ। यदि सबैमा प्रबल पैगम्बर मुहम्मद साहब थिए भने सर्वाधिक विद्यावान् र शुभगुणयुक्त किन हुँदैनथिए? यसकारण कुब्जा (कूंजडी) ले आफ्ना बयरलाई अमिलो नबताएर गुलियो बताए जस्तै यो कुरा पनि हो॥१३२॥

१३३. र सूर=नरसिंगा फुकिने छ (अर्थात् बिगुल बज्नेछ) अनि ती कबर=चिहानबाट आफ्ना मालिकतर्फ दौडनेछन्॥ र त्यस वस्तुका कमाउने थिए (?) भनी उनका गोडा गवाही=साक्षी दिनेछन्॥ जब

कुनै वस्तु उत्पन्न गर्न चाहन्छ, उसका लागि 'भइजा' भन्दछ, बस भैहाल्दछ, यस बाहेक उसको कुनै आज्ञा हुँदैन॥

—मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ५१,६५,८२॥

समीक्षक—अब उटपटाँग कुरा त सुन! गोडाले के कहिल्यै गवाही दिन (साक्षी बक्न) सक्तछ? त्यसबखत खुदा बाहेक को थियो, जसलाई आज्ञा दियो? कसले सुन्यो? र को बन्यो? यदि कोही थिएन भने यो कुरा झूटो हो तथा कोही थियो भने कुरानमा नै बताइएको 'खुदा बाहेक कुनैवस्तु थिएन र खुदाले सबै थोक बनायो' भन्ने कुरा झूटो हो॥१३३॥

१३४. ती माथि शुद्ध रक्सीको प्याला घुमाइनेछ॥ सेतो र पिउनेहरूलाई मजा दिने॥ उनका नजिकै आँखा निहुँराएकी र सुन्दर आँखा भएकी (स्त्री) बसेका हुनेछन्॥ मानौं ती लुकाएका अण्डा हुन्॥ कि बस हामी मर्नेछैनौं॥ र लूत अवश्य पैगम्बरहरूमध्ये कै थियो॥ जबकि हामीले उसलाई र उसका सबै मानिसलाई मुक्ति दियौं॥ तर एउटी बूढी (लूतकी विद्रोही पत्नी) पछि पर्नेहरूमा छ॥ अनि हामीले अरूलाई मार्‍यौं॥ —मं० ६। सि० २३। सू० ३७।

आ० ४५,४६,४८,४९,५८,१३३-३६॥

समीक्षक—कसो हो, यहाँ त मुसलमानहरू रक्सीलाई खराब बताउँछन्, तर यि नका स्वर्गमा त रक्सीका खोलै खोला बग्दछन्? यति चाहिं राम्रै छ कि केही गरी यहाँ त मद्य पिउन छुटाए, तर यहाँको सट्टा वहाँ उनको स्वर्गमा ठूलो खराबी छ॥ स्त्रीहरूका कारण त्यहाँ कसैको चित्त स्थिर नरहँदो हो! र ठूला रोग पनि लाग्दाहुन्! यदि शरीरधारी हुन् भने त अवश्य मर्नेछन्। अनि शरीरधारी होइनन् भने भोगविलास गर्नैसक्नेछैनन्। अनि त उनीहरूले स्वर्गमा जानु व्यर्थै छ॥ यदि लूतलाई पैगम्बर मान्दछौ भने बाइबलमा लेखेको ''ऊबाट (लूतबाट) उसका छोरीहरूले समागम गरेर दुई छोरा जन्माए'' यस कुरालाई पनि मान्दछौ अथवा मान्दैनौ? मान्दछौ भने यस्तालाई पैगम्बर मान्नु व्यर्थै छ॥ अनि यस्ता र यस्ताका सङ्गी-साथीहरूलाई खुदा मुक्ति दिन्छ भने त्यो खुदा पनि त्यस्तै हो। किनकि बूढीको कथा सुनाउने र पक्षपातपूर्वक अरूलाई मार्ने व्यक्ति कहिल्यै खुदा हुनसक्तैन। यस्तो खुदा मुसलमानहरूकै घरमा बस्नसक्तछ, अन्त सक्तैन॥१३४॥

१३५. सधैं रहने बहिश्त छन्, उनका लागि उनका (बहिश्त) ढोका खुल्ला छन्॥ उनमा तकिया हुनेछन्, त्यसमा मेवाहरू

(खानेमसला) र पेयपदार्थ मंगाइनेछन्॥ तथा उनका नजिकै आँखा निहुराएकीहरू र अरूका समान उमेरकी (तरुनीहरू) हुनेछन्॥ बस, सबै फरिश्ताहरूले सिजदा (प्रणाम) गरे॥ तर शैतानले मानेन, अभिमान गर्‍यो, ऊ काफिरहरूमध्येको थियो॥ ए शैतान! तँलाई कुन वस्तुले रोक्यो, किनकि सिजदा=प्रणाम गरेस् भन्ने हेतुले मैले तँलाई आफ्ना दुबै हातले बनाएँ, तैंले किन अभिमान गरिस्? अथवा के तँ ठूलो अधिकारवान् (टाउको उठाउने=विरोध गर्नेहरू) हरूमा परिस्?॥ भन्यो, म त्यस वस्तुभन्दा असल हुँ, तैंले मलाई आगोबाट उत्पन्न गरिस्, उसलाई माटोबाट॥ भनें, बस तँ यी आकाशहरूबाट निस्किहाल्, बस, तँ निश्चय नै चलाइएको होस्॥ फल दिइने दिनसम्म निश्चय नै तँलाई मेरो धिक्कार छ। भन्यो, हे मेरा मालिक! मुर्दाहरू उठाइने दिन सम्मका लागि छूट देऊ॥ भने कि बस तँ निश्चय नै छूट दिएकाहरूमध्ये कै होस्॥ जानिएको त्यस दिन समयसम्म॥ भन्यो कि बस, तेरो प्रतिष्ठाको कसम छ कि उनीहरूलाई, सामूहिक रूपमा म अवश्य गुमराह=पथभ्रष्ट पार्नेछु॥

—मं० ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ५०-५२,७३-८२॥

समीक्षक—कुरानमा लेखेजस्तै त्यहाँ (बहिश्तमा) बाग-बगैंचा, नहर, घर आदि त्यस्तै छन् भने ती न त सदादेखि थिए, न सधैं रहनसक्नेछन्। किनकि संयोगबाट भएको पदार्थ संयोग हुनु अघि थिएन। अवश्य हुने वियोगको अन्तमा रहनेछैन। जब त्यो बहिश्त नै रहने छैन भने त्यसमा बस्नेहरू सधैं कसरी रहनसक्तछन्? किनकि 'त्यहाँ गादी, तकिया, मर-मसला र पेयपदार्थ मिल्नेछन्' लेखेको छ। यसबाट 'जुनबेला मुसलमानहरूको मजहब=सम्प्रदाय चल्यो, त्यसबेला अरबदेश खास धनाढ्य थिएन' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यसैकारण मुहम्मद साहेबले तकिया आदिको कथा सुनाएर गरीब-गुरवालाई आफ्नो मतमा फसाए। अनि जहाँ स्त्री छन् त्यहाँ निरन्तर सुख कहाँ? ती स्त्री त्यहाँ कहाँबाट आएका हुन्? अथवा बहिश्त निवासी नै हुन्? आएका हुन् भने जानेछन्। अनि त्यहींका निवासी हुन् भने कयामत अघि के गर्दथे? के निकम्मा भएर आफ्ना उमेरलाई खेरफालिरहन्थे?॥ अब खुदाको तेज त हेर कि अरू सबै फरिश्ताहरूले त उसको हुक्म माने र आदम साहेबलाई नमस्कार गरे, तर शैतानले मानेन। खुदाले शैतानसँग सोध्यो र भन्यो कि 'मैले तँलाई आफ्ना दुबै हातले बनाएँ, तँ अभिमान नगर्'। यसबाट 'कुरानको खुदा दुई हात भएको मानिस

थियो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ। यसकारण ऊ व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कहिल्यै हुनसक्तैन्। शैतानले 'म आदमभन्दा उत्तम हुँ' भनी सत्य कुरा बोल्यो। यसमा खुदा किन रिसायो? के खुदाको घर आकाशमै छ, पृथ्वीमा छैन? त्यसो भए पहिले काबालाई खुदाको घर किन लेखेको? आखिर परमेश्वर आफूबाट वा सृष्टिबाट बाहिर कसरी निस्कन सक्तछ? अनि त्यो सब सृष्टि त परमेश्वरको हो। यसबाट 'कुरानको खुदा बहिश्तको जिम्मेवार थियो' भन्ने विदित भयो। खुदाले उसलाई धिक्कार्‍यो र बन्दी बनायो तथा शैतानले 'हे मालिक! मलाई कयामतसम्म छोडदे' भन्यो। खुशामद गरेपछि खुदाले कयामतसम्म छोड्यो। शैतान छुटेपछि खुदा भन्दछ कि अब म खूब भड़काउने-भट्काउनेछु र गदर=विद्रोह मच्चाउनेछु। अनि खुदाले भन्यो कि जतिलाई तँ भ्रमित पार्नेछस् म तिनलाई र तँलाई पनि दोजखमा हाल्नेछु। सज्जनवृन्द! अब विचार गर्नुहोला कि शैतानलाई भड्काउने खुदा हो अथवा ऊ आफैं भट्कियो? यदि खुदाले भड्कायो भने ऊ शैतानको पनि शैतान ठहर्दछ। यदि शैतान आफैं भट्कियो? यदि खुदाले भड्कायो भने ऊ शैतानको पनि शैतान ठहर्दछ। यदि शैतान आफैं भट्कियो भने अरू जीव पनि आफैं भट्किनेछन्, शैतानको जरूरतै पर्दैन। अनि यस बागी=विद्रोही शैतानलाई खुदाले खुल्ला=छाडा छोड्यो, यसकारण अधर्म गराउनमा ऊ (खुदा) पनि शरीक=सम्मिलित भयो भन्ने विदित हुन्छ। यदि आफैं चोरी गराएर दण्ड दिन्छ भने त्यसको अन्यायको कुनै बारपार नै छैन॥ १३५॥

१३६. अल्लाह सबै पाप क्षमा गर्दछ, निश्चय नै ऊ क्षमावान् दयालु छ॥ अनि कयामतका दिनमा सम्पूर्ण पृथ्वी उसको मुट्ठीमा हुन्छ र उसको दाहिने हातमा आकाश बेरिएका हुन्छन्॥ तथा आफ्ना मालिकको प्रकाशका साथ पृथ्वी चम्कनेछ, र कर्मपत्र राखिनेछन्, र पैगम्बरहरूलाई ल्याइनेछ र गवाह (साक्षी) हरूलाई (ल्याइनेछ), तथा फैसला गरिनेछ॥

—मं० ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५३,६७,६९॥

समीक्षक—यदि खुदा समग्र पापलाई क्षमा गर्दछ भने ऊ सब संसारलाई पापी बनाउँदछ र दयाहीन छ। किनकि एउटा दुष्ट प्रति दया र क्षमा गर्नाले ऊ झन् बढी दुष्टता गर्नेछ तथा अरू धेरै धर्मात्माहरूलाई दुःख दिनेछ। यदि अलिकति पनि अपराध क्षमा गरिएमा जगत्मा अपराधै अपराध भरिपूर्ण हुनेछ॥ के परमेश्वर आगो जस्तै प्रकाशवान्

छ? अनि कर्मपत्र कहाँ जम्मा रहन्छन्? र कसले लेख्तछ? यदि पैगम्बर र साक्षीहरूको भरमा खुदा न्याय गर्दछ भने ऊ असर्वज्ञ र असमर्थ छ। यदि ऊ अन्याय गर्दैन, न्याय नै गर्दछ भने कर्म अनुसार गर्दछ होला। ती कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्महरूका हुनसक्तछन्। अनि फेरि क्षमा गर्नु, दिलमा ताल्चा (छाप) लगाउनु, शिक्षा नदिनु, शैतानद्वारा भ्रमित पार्न लगाउनु, दौडासुपुर्द राख्नु (मरेकालाई कयामत सम्म कर्मफल नदिनु) आदि अन्याय मात्र हो॥ १३६॥

१३७. अल्लाह गालिब ज्ञाताको तर्फबाट किताब आएको हो॥ पापलाई क्षमा गर्नेर तोबा: (प्रायश्चित्त) लाई स्वीकार गर्ने॥

—मं० ६। सि० २४। सू० ४०। आ० २,३॥

समीक्षक—यो कुरा 'सोफा मानिस अलिकति सत्य बाहेक असत्यले भरिपूर्ण यस पुस्तकलाई अल्लाहको नामबाट स्वीकार गरून्' भन्ने उद्देश्य ले राखिएको हो। अनि त्यो अलिकति सत्य पनि असत्यसँग मिसिएर बिग्रेजस्तै छ। यसैकारण कुरान र कुरानकी खुदा तथा यसलाई मान्नेहरू पाप बढाउँछन्, पाप गर्दछन् र गराउँछन्। किनकि पाप क्षमा गर्नु भनेको ठूलो अधर्म हो। तर यसैकारण मुसलमानहरू पाप र उपद्र गर्नमा कम डर्दछन्॥ १३७॥

१३८. उसले दुई दिनमा सात ओटा आकाश तैयार पार्‍यो र उसमा हामीले उसको काम हाल्यौं॥ यतिसम्म कि उसको नजिक जादा उनका कान, उनका आँखा र उनका छाला उनका कर्मबाट तीमाथि साक्षी दिनेछन्॥ अनि आफ्ना छालालाई 'तैंले हामीमाथि (हाम्रो वारे) किन साक्षी दिइस्?' भन्नेछन्। जसले हर वस्तुलाई बोलायो, त्यसै अल्लाहले हामीलाई बोलाएको छ॥ भन्नेछन्, मुर्दाहरूलाई अवश्य ब्यूँताउँछ॥ —मं० छ० सि० २४। सू० ४१। आ० १२,२०,२१,३९॥

समीक्षक—वा: जी वा मुसलमानहरू हो! तिमीहरूले सर्वशक्तिमान् मानेको खुदाले सात ओटा आकाशलाई दुई दिनमा बनाउन सक्यो! अनि सर्वशक्तिमान्ले त क्षणभरमा सबैलाई बनाउनसक्तछ। आखिर ईश्वरले कान, आँखा र छालालाई जड़ बनाएको छ, तिनले साक्षी कसरी दिन सक्तछन्? यदि साक्षी दिलाउँछ भने पहिले तिनलाई जड़ किन बनायो? अनि आफ्नो पूर्वापर काम नियमविरुद्ध किन गर्‍यो? एउटा यो भन्दा पनि ठूलो मिथ्या कुरा यो हो कि जब जीवहरूको वारेमा साक्षी दिए, तब ती जीव आ–आफ्ना छालासँग 'तैंले हाम्रो बारे साक्षी किन बकिस्?' भनी सोध्नथाले? छाला भन्ने छ कि खुदाले

साक्षी बक्न लगायो, म के गरुँ? आखिर के कहिल्यै यो कुरा हुनसक्तछ? जस्तै कसैले भन्दछ कि मैले बाँझीको छोराको मुख देखें। यदि छोरो छ भने बाँझी कसरी? अनि बाँझी हो भने उसको छोरो हुनै असम्भव छ। यो पनि यस्तै किसिमको मिथ्या कुरा हो। यदि ऊ मुर्दाहरूलाई ब्यूँताउँछ भने पहिले मारैके किन थियो? के आफैं पनि मुर्दा हुनसक्तछ? कि सक्तैन? हुनसक्तैन भने मुर्दापनलाई खराब किन सम्झन्छ? अनि कयामतको रात्रिसम्म मृतक जीव कुन मुसलमानको घरमा रहनेछन्? अनि खुदाले अपराधविना नै दौडासुपुर्द (मरेकालाई कयामतसम्म पर्खनुपर्ने) किन राख्यो? किन शीघ्र न्याय गरेन? यस्ता यस्ता कुराले ईश्वरता शंकास्पद हुन्छ॥ १३८॥

१३९. उसका लागि आकाशहरूको र पृथ्वीको साँचो छ। जसको लागि चाहान्छ भोजन खोल्दछ र (जसलाई चाहान्छ) सताउँछ॥ जे चाहान्छ उत्पन्न गर्दछ र जसलाई चाहान्छ (उसलाई) छोरीहरू दिन्छ र जसलाई चाहान्छ (उसलाई) छोराहरू (दिन्छ)॥ अथवा उनलाई छोरा र छोरी मिलाएर दिन्छ र चाहे जसलाई बाँझी बनाउँदछ॥ कुनै मानिसमा अल्लाहसँग कुरा गर्ने शक्ति छैन, तर मनमा हालेर अथवा पर्दा पछाडिबाट अथवा पैगाम=सन्देश ल्याउने फरिश्ताहरू पठाएर (कुरा वा व्यवहार गर्नसक्तछ)॥

—मं० ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १२,४९–५१॥

(यस आयतको भाष्य 'तफसीरहुसैनी' मा लेखेको छ कि मुहम्मद साहेब दुईवटा पर्दामा थिए। र खुदाको आवाज सुने। एउटा पर्दा जरीको थियो, अर्को सेतो मोतीको। र दुबै पर्दाको बीचमा सत्तरी वर्ष चल्न योग्य मार्ग थियो।

बुद्धिमानहरुले यो कुरा विचार गरौं कि यो खुदा हो कि पर्दापछाडिबाट कुरा गर्ने आइमाइ हो? यिनीहरूले त ईश्वरकै दुर्दशा गरे। कहाँ त वेद तथा उपनिषद् आदि सद्ग्रन्थहरूमा प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा र कहाँ कुरानमा भनिएको पर्दा पछाडिबाट कुरा गर्ने खुदा? सत्य त के हो भने अरबका मानिस अविद्वान् थिए। उत्तम कुरा कसको घरबाट ल्याउँथे र?)

समीक्षक—खुदासँग साँचोको भण्डार भरिपूर्ण हुँदो हो। किनकि सबै ठाउँका लाल्चा खोल्नुपर्ने हुँदाहुन्! यो अल्लारेपनको कुरा हो। के जसलाई चाहान्छ, त्यसलाई पुण्यकर्मबेगर नै ऐश्वर्य दिन्छ? र पापविना नै सताउँछ? यदि यसो हो भने त्यो ठूलो अन्यायकारी छ। ल

अब 'स्त्रीहरू पनि मोहित भएर फसून्' भन्ने कुरान बनाउनेको चतुराई त हेर! यदि जे चाहान्छ, उत्पन्न गर्दछ भने के अर्को खुदा उत्पन्न गर्न पनि सक्तछ वा सक्तैन? यदि सक्तैन भने यहाँ त त्यो सर्वशक्तिमत्ता अडकियो॥ आखिर मानिसलाई त चाहेजसलाई छोरा–छोरी खुदा दिन्छ, तर कुखुरा, माछा, सूँगुर आदि, जसका धेरै छोरा–छोरी हुन्छन्, उनलाई कसले दिन्छ? र स्त्री–पुरुषको समागम बेगर नै (छोरा–छोरी) किन दिंदैन? कसैलाई बाँझै राखेर आफ्नै इच्छाले दुःख किन दिन्छ? वाः! खुदा त खुबै तेजस्वी रहेछ कि उसको सम्मुख कोही कुरै गर्न सक्तैन? तर उसले अघि भनिसकेको छ कि पर्दा हालेर कुरा गर्न सक्तछ, अथवा खुदासँग फरिश्ताहरू कुरा गर्दछन् या पैगम्बर। यसो हो भने फरिश्ता र पैगम्बरहरू खूब आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्दाहन्? यदि कसैले खुदालाई सर्वज्ञ सर्वव्यापक बताउँछ भने 'पर्दापछाडिबाट कुरा गर्ने या डाँकबाट जस्तै खबर मंगाएर जान्ने' कुरा लेख्नु व्यर्थै हुन्छ। अनि यस्तो छ भने त्यो खुदा नै होइन, तर कुनै चलाख मानिस होला। यसकारण यो कुरान कहिल्यै ईश्वरकृत हुनसक्तैन॥ १३९॥

१४०. र जब प्रत्यक्ष प्रमाणका साथ ईसा आयो॥

—मं० ६। सि० २२। सू० ४३। आ० ६३॥

समीक्षक—यदि ईसालाई पनि खुदाले पठाएको हो भने खुदाले उसको (ईसाको) उपदेशको विरुद्ध कुरान किन बनायो? अनि कुरानको विरुद्ध इञ्जील छ। यसैकारण यी पुस्तक ईश्वरकृत होइनन्॥ १४०॥

१४१. उसलाई समात र उसलाई दोजखको ठीक बीचमा घिच्याऊ॥ यसैगरी रहनेछन् र उनको विवाह गोरी र राम्रा आँखा भएकी (तरुनी) हरूसँग गरिदिनेछौं॥—मं० ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४७,५४॥

समीक्षक—वाः खुदा!! न्यायकारी भएर प्राणीहरूलाई गिरफ्तार गराउने र घिच्याउन लगाउने? जब मुसलमानहरूको खुदा नै यस्तो छ त उसका उपासक मुसलमान अनाथ निर्वलहरूलाई बन्धक बनाउने–घिच्याउने गर्दछन् ने यसमा के आश्चर्य छ त? अनि ऊ सांसारिक मानिस सरह विवाह पनि गराउँदछ? सम्झ ऊ त मुसलमानहरूको पुरेत नै हो॥ १४१॥

१४२. जब तिमी काफिर भएका व्यक्तिहरूलाई भेट्तछौ, बस उनका गर्दनमा हान, यतिसम्म हान कि उनलाई चूर–चूर गर, र उनलाई दृढतापूर्वक कैद गर॥ तथा धेरै बस्तीहरू यस्ताछन् जुनबस्ती तेरो बस्तीभन्दा धेरै कठिन शक्तिशाली थिए, जसले कि तिमीलाई निकाल्यो,

हामीले उसलाई मार्‍यौं, उनीहरूलाई सहायता पुर्‍याउने कोही भएन॥ त्यस बहिश्तको परिचय (तारीफ) यो हो कि परहेजगार=धार्मिक व्यक्तिहरूले प्रतिज्ञा गरेका छन्। उसमा सफासुग्घर (नबिग्रेको) पानीका नहरहरू छन्, स्वाद नबिग्रेका दूधका नहर छन्, पिउनेहरूलाई मजा दिने रक्सीका नहर छन् र सफा गरिएको महका नहर छन् तथा उनका लागि उसमा (बहिश्तमा) प्रत्येक प्रकारका मर–मसला छन्, उनका मालिकको पात्रबाट।

—मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४,१३,१५।

समीक्षक—यसैबाट यो कुरान, खुदा र मुसलमान गदर मच्चाउने, सबैलाई दुःख दिने, आफ्नो स्वार्थ सिद्ध गर्ने र दयाहीन छन् भन्ने सिद्ध हुन्छ। जस्तो यहाँ लेखेको छ त्यस्तै अरू कोही अन्य मतावलम्बीले मुसलमानहरूमाथि गरेमा, जस्तो दुःख मुसलमानहरू अरूलाई दिन्छन् त्यस्तै दुःख तिनलाई हुन्छ कि हुँदैन? तथा खुदा ठूलो पक्षपाती छ, जसले मुहम्मद साहेबलाई निकाले, तिनलाई खुदाले मार्‍यो॥ आखिर जसमा शुद्ध पानी, दूध, मद्य र महका नहरहरू छन्, के त्यो (बहिश्त) संसारभन्दा बढी हुन सक्तछ? अनि के कहिल्यै दूधका नहर हुनसक्तछन्? किनकि दूध त थोरै समयमा बिग्रन्छ। यसैकारण बुद्धिमान् व्यक्ति कुरानको मतलाई मान्दैनन्॥ १४२॥

१४३. पृथ्वीलाई हल्लिने गर्न चाहँदा पृथ्वी हल्लाइने छ र पहाड उड्ने पार्न खोज्दा ती उडाइने छन्॥ बस टुक्रा टुक्रा भुसुना हुनेछन्॥ बस दाहिने तर्फका साहेब, दाहिने तर्फका साहेब के हुन्? त्यस्तै देब्रेतर्फका को हुन्?॥ माथि सुनका तारले बनेका पलङ्ग छन्॥ तीमाथि आमने–सामने तकिया छन्॥ तीमाथि सधैं रहने केटा फिर्नेछन्॥ आबखोर=(खास किसिमको गिलास), आफताब=(खास करुवा) र सफा रक्सीका प्यालाका साथ॥ त्यसबाट टाउको दुखाइने छैन र विरुद्ध बोल्नेछैनन्। र मसला त्यस किसिमका कि मन पराइयून्॥ तथा जनावर र पक्षीहरूको मासू मनपर्ने गरी॥ तथा उनका लागि राम्रा आँखा भएकी स्त्री छन्॥ लुकाइएकाहरूको मोती जस्तै॥ तथा ठूला ओछ्यान॥ निश्चय नै हामीले स्त्रीलाई (एक विशेष प्रकारको शारीरिक उठान भएको) उत्पन्न गर्‍यौं॥ हामीले उनलाई कुमारी (कन्या केटी) बनायौं॥ बराबर अवस्था भएकी सुहागिनहरू॥ बस त्यसबाट पेट भर्नेछौ॥ म तारका साथै लड्ने कसम खान्छु॥ —मं० ७। सि० २७। सू० ५६।

आ० ४–६,८,९,१५–२३,३४–३७,५३,७५॥

समीक्षक—ल अब कुरान बनाउनेको लीला त हेर! आखिर पृथ्वी त हल्लिई नै रहन्छ (घुम्दछ), त्यस बखत पनि हल्लिइ रहनेछ। यसबाट कुरानको रचयिता 'पृथ्वीलाई स्थिर छ भन्ने ठान्दथ्यो' भन्नेकुरा सिद्ध हुन्छ॥ आखिर के पहाडलाई पक्षी जस्तै उडाउने छ? यदि भुसुना हुनेछन् भने पनि सूक्ष्म शरीरधारी रहनेछन्। अनि त उनको अर्को जन्म किन भएन? वा:! यदि खुदा शरीरधारी नभएको भए उसको दाहिने र देब्रेतर्फ कसरी उभिनसक्तथे? त्यहाँ सुनको तारले बुनेका पलङ्ग छन् भने त्यहाँ सिकर्मी, सुनार पनि रहँदाहुन्? तथा उडुस-उपियाँले टोकेर रात्रिमा उनलाई निदाउन पनि नदिंदाहुन्? बहिश्तमा ती तकिया लगाएर निकम्मा भएर बसिरहन्छन् कि केही काम पनि गर्ने गर्दछन्? यदि ती बसी मात्र रहन्छन् भने उनले खाएको अन्न नपच्नाले रोगी भएर छिट्टै मर्दा पनि हुन्। अनि यदि ती काम गर्ने गर्दछन् भने जस्तो मिहिनेत-मजदूरी यहाँ गर्दछन्, त्यस्तै त्यहाँ परिश्रम गरेर निर्वाह गर्दाहुन्, अनि यहाँभन्दा त्यहाँ बहिश्तमा के खास छ त? केही पनि छैन॥ यदि त्यहाँ केटा सधैं रहन्छन् भने उनका आमा बाबु पनि रहँदा हुन् र सासू-ससुरा पनि रहँदाहुन्? अनि धेरै ठूलो शहर निर्मित हुन्छ होला? अनि दिसा-पिसाब बढ्नाले धेरैजसो रोग पनि हुँदाहुन्? किनकि जब मेवा-मसला खानेछन्, गिलासहरूमा पानी पिउनेछन् र प्यालाबाट रक्सी पिउनेछन्, न त उनको टाउको दुख्नेछ र न कोही विरोधमा बोल्नेछ, यथेष्ट=चाहेजति मर-मसला खानेछन् र जनावर तथा पक्षीहरूको मासु पनि खानेछन्, अनि त अनेक प्रकारका दु:ख, पक्षी र जनावर त्यहाँ हुनेछन् र हत्या हुनेछ र जताततै हाड़ छरिएका हुनेछन्। तथा कसाईहरूका पसल पनि हुँदा हुन्? वा:! यिनका बहिश्तको प्रशंसामा के भनौ!! त्यो त अरबदेश भन्दा पनि बढी देखापर्दछ!!! अनि मद्य-मांस पिएर-खाएर उन्मत्त हुन्छन्, अनि त राम्री-राम्री स्त्री र केटा पनि त्यहाँ अवश्य आवश्यक छन्। नत्र भने यस्ता नशाबाजका टाउकोमा गर्मी चढेर प्रमत्त हुनेछन्। धेरै स्त्री पुरुषलाई सुत्नका निमित्त अवश्य ठूला-ठूला ओछ्यान चाहिन्छन्। जब खुदा कुमारीहरू बहिश्तमा उत्पन्न गर्दछ, अनि त कुमार केटालाई पनि उत्पन्न गर्दछ। आखिर कुमारीहरूको विवाह त खुदाले यहाँबाट उम्मेदवार भएर जानेहरूका साथ हुने कुरा लेखेको छ, तर त्यहाँ सधैं रहने ती केटाहरूको कुनै कुमारीसँग विवाह हुने कुरा लेखेको छैन। के त ती पनि कुमारी जस्तै तिनै उम्मेदवारका साथ दिइनेछन्? यसको कुनै

व्यवस्था लेखेको छैन। खुदाबाट यो ठुलो भूल किन भयो? यदि बराबर अवस्था=आयुका सुहागिन स्त्रीहरू पति प्राप्त गरेर बहिश्तमा रहन्छन् भने यो ठीक भएन। किनकि स्त्रीहरूको भन्दा पुरुषको आयु डेढी वा दोब्बर हुनुपर्दछ। यो त मुसलमानहरूको बहिश्तको कथा हो। अनि नरकवासी भने सिंहोड अर्थात् थूहर (वृक्षविशेष) को वृक्षलाई खाएर पेट भर्नेछन् भने दोजखमा काँड़ाका वृक्ष पनि हुँदाहुन् त काँडा पनि बिझ्दा हुन्। तथा तातो पानी पिउने आदि दु:ख दोजखमा पाउनेछन्। प्राय: झूठा व्यक्तिले कसम खान्छन्, सच्चाले खाँदैनन्। यदि खुदा नै कसम खान्छ भने ऊ झूठबाट अलग्गिन सक्दैन॥ १४३॥

१४४. जो उसको (अल्लाहको) मार्गमा लड्दछन् उनैलाई अल्लाह निश्चय नै मित्र बनाउँदछ॥

—मं० ७। सि० २८। सू० ६१। आ० ४॥

समीक्षक—वा: ठीक छ! यस्ता यस्ता कुराको उपदेश गरेर विचरा अरबदेशवासीहरूलाई सबैसँग लडाएर, शत्रु बनाएर (यस खुदाले) परस्पर दु:ख दिलायो। तथा मजहबको झगडा खडा गरेर लडाई फैलायो। यस्तालाई कुनै बुद्धिमान् के कहिल्यै ईश्वर मान्नसक्दैन। जो जातिमा दु:ख बढाउँछ, उही सबैको दु:खदाता हुन्छ॥ १४४॥

१४५. ए नबी! तँ आफ्ना बीबी=पत्नीहरूको प्रसन्नता चाहान्छस् भने जुन वस्तुलाई खुदाले तेरो लागि हलाल=पवित्र गरेको छ, त्यसलाई किन हराम=अपवित्र पार्दछस्? र अल्लाह क्षमावान् दयालु छ॥ उसले तिमीलाई छोडेमा उसलाई तिमीभन्दा राम्री मुसलमान र ईमान भएको, सेवा गर्ने, तोबा: (प्रायश्चित्त) गर्ने, भक्ति गर्ने, रोजा (उपवासविशेष) राख्ने, पुरुषलाई देखेकी र नदेखेकी बीवीहरू बदल्न उसको खुदा मालिक) लाई बेर लाग्ने छैन॥

—मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १,५॥

समीक्षक—ध्यान दिएर हेर्दा यो खुदा त के, मुहम्मद साहेबको घरको भित्री र बाहिरी प्रबन्ध गर्ने नोकर पो ठहर्दछ!! अघिल्लो आयतवारे दुईवटा कथा छन्—पहिलो यो हो कि मुहम्मद साहेबलाई महको शर्बत प्रिय थियो। उनका अनेक पत्नी थिए। तीमध्ये एउटीको घरमा पिउनमा ढिलो भयो। अर्कीलाई यो कुरा असह्य प्रतीत भयो। तीसँग भन-सुन भएपछि मुहम्मद साहेबले 'हामी पिउने छैनौं' भनी सौगन्ध खाए। दोस्रो यो हो—उनका अनेक पत्नीमध्ये एउटीको पालो थियो। उसकहाँ रात्रिमा जाँदा ऊ थिइन। आफ्नो माइत गइछ। मोहम्मद

साहेबले एउटी लौंडी (केटी) अर्थात् दासीलाई बोलाएर पवित्र गरे। पत्नीलाई यो कुराको खबर लाग्दा ऊ रिसाई। अनि मोहम्मद साहेबले 'म यसो गर्नेछैन' भनी सौगन्ध खाए तथा पत्नीसँग 'तिमी यो कुरा कसैलाई नभन्नू' भने। पत्नीले 'भन्दिन' भनी स्वीकार गरी। अनि उनले अर्की पत्नीसँग गएर भने। यस बारे खुदाले यो आयत उतार्‍यो— 'जुनवस्तुलाई हामीले तेरा लागि हलाल गर्‍यौं, त्यसलाई तैँ हराम किन गर्दछस्?' बुद्धिमानहरूले के विचारणीय छ भने 'के कतै खुदा पनि कसैको घरको निपटारा गर्दै डुल्छ?' तथा मुहम्मद साहेबको आचरण त यिनै कुराबाट प्रगट भैरहेछन्। किनकि अनेक स्त्रीलाई राख्ने पनि ईश्वरको भक्त वा पैगम्बर कसरी हुनसक्तछ? अनि पक्षपातपूर्वक एउटी स्त्रीको अपमान र अर्कीको मान गर्ने व्यक्ति पक्षपाती भएर अधर्मी किन होइन? अनि धेरैजसो स्त्रीहरूबाट पनि सन्तुष्ट नभएर बाँदी=दासी (केटी सँग फस्ने व्यक्तिमा लज्जा, भय र धर्म कहाँ रहन्छ र? कसैले निकै छ कि—'**कामातुराणां न भयं नलज्जा**'। काम-वासना भएको व्यक्तिलाई अधर्म देखि भय वा लाज लाग्दैन। तथा यिनको खुदा पनि मुहम्मद साहेबकी स्त्रीहरू र पैगम्बरको झगडाको फैसला गर्नमा मानौं न्यायधीश बनेको छ! अब बुद्धिमानहरूद्वारा 'यो कुरान विद्वानकृत, ईश्वरकृत अथवा कुनै अविद्वान् स्वार्थ सागर भएको व्यक्तिले बनाएको हो' भन्ने कुरा विचार गर्दा स्पष्ट विदित भइहाल्नेछ। दोस्रो आयत बाट प्रतीत हुन्छ कि—मुहम्मद साहेबदेखि उनकी कुनै पत्नी अप्रसन्न भई होली। त्यसवारे खुदाले यो आयत उतारेर उसलाई हप्कायो होला कि तैंले गडबड गरेको खण्डमा मुहम्मद साहेबले तँलाई छोड्नेछन्, अनि उनलाई उनको खुदाले तैँ भन्दा राम्री र पुरुषसँग सम्पर्क नभएकी स्त्रीहरू दिनेछ॥ कुनै मानिसमा अलिकति पनि बुद्धि भएमा 'यी खुदाका काम हुन् अथवा आफ्नो प्रयोजन-सिद्धिका काम हुन्' भन्ने कुरा विचार गर्नसक्तछ। वास्तवमा यस्ता यस्ता कुराबाट 'कुनै खुदा केही भन्दैनथियो, केवल देशकाल अनुसार आफ्नो प्रयोजन सिद्ध गर्नका लागि खुदाको तर्फबाट मुहम्मद साहेब भन्ने गर्दथे' भन्ने कुरा ठीक सिद्ध हुन्छ। यस्ता कुरालाई खुदाकै तर्फ मान्नेहरूलाई हामी त के, सबै बुद्धिमान्हरूले यही भन्नेछन् कि 'यो खुदा के हो, यो त मानौं मुहम्मद साहेबको लागि बीवीहरू ल्याउने नाऊ पो रहेछ'!!! (अधि अधि विवाहमा नाऊको प्रमुख भूमिकाहुन्थ्यो)॥ १४५॥

१४६. ए नबी! काफिरहरू र गुप्त शत्रुहरूसँग झगडा गर् र

तीमाथि सख्ती=कठोरता गर्॥

—मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९॥

समीक्षक—ल, मुसलमानका खुदाको लीला त हेर! अरू मतावलम्बीहरूसँग लड्नका लागि पैगम्बर र मुसलमानहरूलाई उचाल्दछ। यसैकारण मुसलमानहरू उपद्रव गर्नमा तत्पर रहन्छन्। परमात्मा मुसलमानहरू माथि कृपादृष्टि गरोस्, जसबाट यिनीहरू उपद्रव मच्चाउन छोडेर सबैसँग मित्रताको व्यवहार गरून्॥ १४६॥

१४७. आकाश फट्नेछ, र त्यस दिन ऊ सुस्त हुनेछ॥ र उसको छेउमा फरिश्ताहरू हुनेछन्, र त्यसदिन आठ जनाले तेरा मालिकको सिंहासन आफ् माथि उठाउनेछन्॥ त्यस दिन तिमी सामुन्ने ल्याइनेछौ र तिम्रो कुनै कुरा लुकिराख्ने छैन॥ जसलाई उसको कर्मपत्र दाहिने हातमा दिइनेछ, ऊ 'मेरो कर्मपत्र पढ' भन्नेछ॥ तथा जसलाई उसको कर्मपत्र उसको देब्रे हातमा दिइने छ, ऊ 'आः मलाई मेरो कर्मपत्र न दिइएको भए हुन्थ्यो' भन्नेछ॥

—मं० ७। सि० २९। सू० ६९। आ० १६-१९,२५॥

समीक्षक—वाः! कस्तो 'फिलासफी' र न्यायकी कुरा छ? आखिर के आकाश पनि कहिल्यै फाट्नसक्तछ? के त्यो लुगाफाटो जस्तै छ र फाटोस्? यदि माथिल्लो लोकलाई आकाश भन्दछन् भने यो विद्याविरुद्ध कुरा हो। कुरानको खुदा शरीरधारी भएको कुरामा अब त केही पनि शंका रहेन। किनकि सिंहासन (तख्त) मा बस्ने, आठओटा डोलेबाट उठाउन लगाउनु आदि कुनै पनि कुरा मूर्त्तिमान् न भई हुनै सक्दैनन्। तथा अगाडि-पछाडि आउने जाने कुरा पनि मूर्त्तिमान् कै हुनसक्तछ? अनि ऊ मूर्त्तिमान् छ भने एकदेसी हुनाले सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् हुनसक्दैन। तथा सबै जीवहरूका सबै कर्मलाई कहिल्यै जान्नसक्तैन। पुण्यात्माहरूको चाहि दाहिने हातमा कर्मपत्र दिने, पढ्न लगा लगाउने र बहिश्तमा पठाउने तथा पापात्माहरूको चाहिं देब्रे हातमा कर्मपत्र दिने, नरकमा पठाउने र कर्मपत्र पढेर न्याय गर्ने यो अचम्मैको व्यवस्था छ। आखिर के यो सर्वज्ञको व्यवहार हुनसक्तछ? कहिल्यै हुनसक्तैन। यो सबै अल्लारेपनको लीला हो॥ १४७॥

१४८. फरिश्ताहरू र आत्मा उसको तर्फ चढ्नेछन्, त्यस दिनमा पचास हजार वर्ष परिमाण भएको त्यो अजाब=दुःख हुनेछ॥ जब ती कबरहरूबाट दौडंदै निस्कनेछन्, (तब) ती मूर्तिहरूका ठाउँतर्फ दौडेजस्तै (लाग्नेछ)॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७०। आ० ४,४३॥

समीक्षक—यदि दिनको परिमाण पचास हजार वर्ष हो भने पचास हजार वर्षकै रात्रि किन भएन ? यदि त्यति ठूलो रात छैन भने त्यति ठूलो दिन पनि हुनसक्तैन। खुदा, फरिश्ताहरू र कर्मपत्रवाला के पचास हजार वर्षसम्म उभिइरहनेछन्, बसिराख्नेछन् अथवा व्यूँझिरहनेछन् ? यदि यसो हो भने सबै रोगी भएर मर्ने नै छन्। के कबरहरूबाट निस्केर खुदाको अदालततर्फ दगुर्नेछन् ? कबरहरूमा तीकहाँ तारीख (आउने आदेशपत्र) कसरी पुग्नेछन् ? पुण्यात्मा वा पापात्मा ती विचराहरूलाई यतिको समयसम्म सबैलाई कबरभित्रै दौडासुपुर्द (कयामतसम्म कबरभित्रै प्रतीक्षा गर्नुपर्ने अवस्था) कैद किन राखेको ? अनि हिजोआज खुदाको अदालत बन्द हुँदो हो र खुदा तथा फरिश्ताहरू निकम्मा भएर बसेका होलान् अथवा के काम गर्दाहुन् ? आ-आफ्ना ठाउँमा बसेर यताउति घुम्ने, सुत्ने, नाच-तमाशा हेर्ने वा ऐश-आराम गर्ने गर्दाहुन्। यस्तो अन्धेर कसैको राज्यमा नहोला। जङ्गलीहरूबाहेक यस्ता यस्ता कुरालाई अरू कसले मान्नेछ र ?॥ १४८ ॥

१४९. निश्चय नै तिमीलाई अनेक किसिमले उत्पन्न गरेको छ॥ अल्लाहले तल माथि सातओटा आकाशलाई कसरी उत्पन्न गर्‍यो भन्ने कुरा के तिमीले देखेनौ ?॥ तथा उनका बीचमा चन्द्रमालाई प्रकाशक र सूर्यलाई दीपक बनायो॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ९१। आ० १४-१६॥

समीक्षक—यदि जीवहरूलाई खुदाले उत्पन्न गरेको हो भने ती नित्य, अमर कहिल्यै रहनसक्तैनन्। अनि बहिश्तमा सधैं कसरी रहनसक्नेछन् ? उत्पन्न भएको वस्तु अवश्य नष्ट हुने गर्दछ। आकाशलाई तलमाथि कसरी बनाउन सक्तछ ? किनकि त्यो त निराकार र विभु (व्यापक) पदार्थ हो ? यदि अर्कै वस्तुको नाम आकाश राख्तछौ भने पनि त्यसको नाम आकाश राख्नु व्यर्थै छ। यदि तलमाथि आकाशहरूलाई बनाइेको हो भने ती सबका बीचमा चन्द्र सूर्य कहिल्यै रहनसक्तैनन्। बीचमा राखिएमा एउटा माथिको र एउटा तलको पदार्थ प्रकाशित हुन्छ। (माथि वा तलका) दोस्रो देखि सबैमा अन्धकारै हुनुपर्दछ। यस्तो देखिंदैन, अतः यो कुरा सर्वथा मिथ्या हो॥ १४९ ॥

१५०. मस्जिदहरू अल्लाहकै लागि हुन्, अल्लाहसँग अरू कसैलाई नपुकार॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७२। आ० १८॥

समीक्षक—यो कुरा सत्य हो भने मुसलमानहरू '**लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मदर्रसूलल्लाः**' यस कलमा (मूलमन्त्र) मा मुहम्मद साहेबलाई किन पुकार्दछन् ? यो कुरा कुरानको विरुद्ध छ। अनि जो

विरुद्ध गर्दैनन्, ती यस कुरानको कुरालाई झूटो बनाउँदछन्। जब मस्जिदहरू खुदाको धेरैका (निजी) हुन् भने मुसलमान महाबुत्परस्त भए। किनकि पुरानी-जैनीहरू सानातिना मूर्त्तिलाई ईश्वरको घर मान्नाले बुत्परस्त=मूर्त्तिपूजक भएजस्तै यिनीहरू चाहिं (बुत्परस्त) किन होइनन् ?॥ १५० ॥

१५१. सूर्य र चन्द्रलाई एकत्र पारिनेछ॥

—मं० ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९॥

समीक्षक—आखिर सूर्य र चन्द्र पनि के कहिल्यै एकै ठाउँमा जम्मा हुनसक्तछन् ? हेर, यो कति नासमझीको कुरो हो ? अनि सूर्य्य र चन्द्रलाई नै जम्मा पार्नुको के प्रयोजन थियो ? अन्य सबै लोकहरूलाई चाहिं जम्मा नपार्नमा कुन युक्ति छ ? के यस्ता असम्भव कुरा कहिल्यै परमेश्वरकृत हुन सक्दछन् ? यस्ता कुरा अविद्वान् व्यक्ति बाहेक अरू कुनै विद्वान् व्यक्तिका पनि हुँदैनन्॥ १५१ ॥

१५२. सधैं रहने केटाहरू उनको माथि फिर्नेछन्, तैंले उनलाई देख्ता तँ उनलाई छरिएका मोती भन्ठान्नेछस्॥ तथा उनलाई चाँदीका बाला लगाइने छ र उनको मालिक (रब) उनलाई पवित्र रक्सी पिलाउनेछ॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९,२१॥

समीक्षक—के हँ ! मोती जस्तै वर्णका केटा त्यहाँ किन राखिन्छन् ? के जवान व्यक्ति सेवा वा स्त्रीहरू उनलाई तृप्त गर्न सक्तैनन् ? कत्रो आश्चर्यको कुरा छ कि दुष्टहरूले केटाहरूसँग यो अति नै गलत कर्म गर्नमा यो कुरानको वचन मूल कारण बनेको छ! तथा बहिश्तमा स्वामी-सेवकभाव हुनाले स्वामीलाई आनन्द र सेवकलाई परिश्रम हुनाले दु:ख तथा पक्षपात किन छ ? अनि जब खुदा नै मद्य पिलाउने छ भने ऊ पनि उनको सेवक सरह नै ठहर्नेछ। अनि खुदाको बडप्पन कसरी रहनसक्नेछ ? अर्को कुरा, त्यहाँ बहिश्तमा स्त्री-पुरुषको समागम र गर्भस्थिति तथा बालबच्चा पनि हुन्छन् कि हुँदैनन् ? हुँदैनन् भने उनीहरूले विषयसेवन गर्नु व्यर्थै भयो, अनि हुन्छन् भने ती जीव कहाँबाट आए ? तथा खुदाको सेवा बेगर नै बहिश्तमा किन जन्मे ? यदि जन्मे भने उनलाई त खुदाको भक्ति नगरिकनै र ईमान नल्याइकनै सित्तैमा बहिश्त प्राप्त भयो। कुनै विचराले चाहिं ईमान ल्याउनु पर्ने र कुनैलाई भने धर्म बिना नै सुख मिल्ने ? यो भन्दा ठूलो अन्याय अरू कुन चाहिं होला ?॥ १५२ ॥

१५३. कर्मानुसार फल दिइनेछन्॥ तथा भरिभराउ प्याला छन्॥

जुन दिन रुह=आत्मा र फरिश्ताहरू पंक्तिवद्ध भएर उभिनेछन्॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६,३४,३८॥

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिइने भएको भए बहिश्तमा सधैं रहने हूर=अप्सराहरू, फरिश्ताहरू र मोतीजस्ता केटाहरूलाई कुन कर्म अनुसार सदाका लागि बहिश्त प्राप्त भयो? जब प्याला भरी-भरी रक्सी पिउनेछन् भने उन्मत्त भएर किन लड्ने छैनन् र? यहाँ रूह सबै फरिश्ताहरूभन्दा ठूलो एउटा फरिश्ताको नाम हो। खुदा रूह र अरू फरिश्ताहरूलाई पंक्तिबद्ध उभ्याएर के पल्टन बाँध्नेछ? के पल्टनबाट सबै जीवहरूलाई सजाय दिलाउनेछ? तथा त्यसबखत खुदा उभिरहनेछ वा बस्नेछ? खुदाले कयामतसम्म आफ्नो सम्पूर्ण पल्टन जम्मा पारेर शैतानलाई समातेमा उसको राज्य निष्कण्टक हुने थियो। यसैको नाम खुदाई=ईश्वरत्व हो!!!॥ १५३॥

१५४. जबकि सूर्यलाई बेरिने छ। तथा जबकि तारा घमिलिने छन्॥ तथा जबकि पहाड हल्लाइनेछन्॥ तथा जब ाकाशको छाला उतारिनेछ॥ —मं० ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १,३,११॥

समीक्षक—यो कति ठूलो बेसमझीको कुरा हो कि बाटुलो सूर्यलोकलाई बेह्रिनेछ? अनि तारा कसरी धमिला हुनेछन्? तथा पहाड जड हुनाले कसरी हिंड्नेछन्? अनि आकाशलाई के कुनै पशु सम्झेको छ र उसको छाला उतारिने? यो अत्यन्तै बेसमझो र जङ्गलीपनको कुरा हो॥ १५४॥

१५५. तथा जबकि आकाश फाट्नेछ॥ तथा जब तारा झर्नेछन्॥ र जब खोला चिरिनेछन्॥ र जब कबरहरूलाई व्यूँताएर उठाइने छ॥

—मं० ७। सि० ३। सू० ८२। आ० १-४॥

समीक्षक—वा:! कुरान बनाउने फिलासफर!! आकाशलाई कसरी फटाउन (च्यात्न) सक्नेछस्? र तारालाई कसरी झार्न सक्नेछस्? अनि खोला के काठ-दाउरा हो र त्यसलाई चिर्नेछस्? अनि कबर के मुर्दा हुन् र व्यूँताउन सक्नेछस्? यी सबै केटाकेटीका जस्तै कुरा हुन्॥ १५५॥

१५६. गुम्बज (बुर्ज) भएको आकाशको कसम छ॥ तर त्यो कुरान ठूलो छ॥ फलामको बीचमा सुरक्षित॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८५। आ० १,२१,२२॥

समीक्षक—यस कुरान बनाउनेले भूगोल-खगोल केही पनि पढेको रहेनछ॥ नत्र भने आकाशलाई किल्ला जस्तै गुम्बजयुक्त किन भन्दथ्यो? यदि मेष आदि राशिलाई बुर्ज (गुम्बज) भन्दछ भने अरू बुर्ज किन

होइनन्? यसकारण यी बुर्ज=गुम्बज होइनन्, यी त सबै तारा-लोक हुन्। के त्यो कुरान खुदासँग छ? यदि यो कुरान उसले बनाएको हो भने त्यो पनि विद्या र युक्ति विरुद्ध धेरै अविद्याले भरिएको होला॥ १५६॥

१५७. निश्चयनै ती मकर (ठगी?) गर्दछन् एउटा मकर॥ र म पनि मकर गर्दछु, एउटा मकर॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १५,१६॥

समीक्षक—ठगीलाई मकर भनिन्छ। के खुदा पनि ठग हो? अनि के चोरीको जवाफ चोरी र झूटको जवाफ झूट नै हो? के कुनै चोरले कुनै भलादमीको घरमा चोरी गरेमा के भलादमीले पनि उसको घरमा गएर चोरी गर्नु उचित हुन्छ? वा: जी वा! कुरान बनाउने!!!॥ १५७॥

१५८. तथा जब तेरो मालिक र पंक्तिबद्ध फरिश्ताहरू आउनेछन्॥ ता त्यस दिन दोजखलाई ल्याइने छ॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २२,२३॥

समीक्षक—ल भन त, थानेदार वा सेनाध्यक्षले आफ्नो सेनालाई लिएर पंक्तिबद्ध गरेर लिई हिंडेजस्तै यिनको खुदा हो? के दोजखलाई धैंटो जस्तै ठानेको छ र त्यसलाई चाहेजता लैजान्छ? यदि यति सानो छ भने त्यसमा असंख्य कैदी कसरी अटाउन सक्नेछन्?॥ १५८॥

१५९. खुदाको पैगम्बरले उनलाई भनेको थियो कि खुदाको (पोथी) ऊँटको रक्षा गर, तथा उसलाई पानी पिलाउनू॥ त्यसलाई बेवास्ता गऱ्यो=भने अनुसार गरेन, उनका=रबमालिकले उसका गोडा काट्यो, तीमाथि मरी (रोगविशेष) हाल्यो॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३,१४॥

समीक्षक—के खुदा पनि पोथी उँटमा चढेर सैर-सपाटा गर्ने गर्दथ्यो? नत्र केका लागि राख्यो? अनि कयामतविना नै आफ्नो नियम भंग गरेर ती माथि मरी रोग किन हाल्यो? यदि रोग हाल्यो भने उनलाई दण्ड दियो। अनि कयामतको रातमा न्याय र त्यो रात हुने कुरा झूटो सम्झिइने छ। यो ऊँट (पोथी) को लेखबाट के अनुमान हुन्छ भने अरबदेशमा ऊँटहरू बाहेक अन्य सवारी साधन कमै हुन्छन्। यसैबाट सिद्ध हुन्छ कि कुरान कुनै अरबदेशवासीले बनाएको हो॥ १५९॥

१६०. यसरी जो रुक्ने छैन, त्यसलाई हामी अवश्य नै निधार र कपालका साथ घिच्याउनेछौं॥ त्यो निधार झूटो र अपराधी छ॥ हामी

दोजखको फरिश्ताहरूलाई बोलाउनेछौं॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। आ० १५,१६,१८॥

समीक्षक—यो खुदा सेवक-चपरासीले गर्ने निम्नस्तरीय घिच्याउने काम गर्नबाट पनि बचेन? आखिर जीव बाहेक के कहिल्यै निधार पनि झूटो र अपराधी हुनसक्तछ? झ्यालखानाको हाकिमलाई जस्तै बोलाउने यो पनि के गहिल्यै खुदा हुनसक्तछ?॥१६०॥

१६१. निश्चय नै हामीले कदर (?) को रातमा, कुरानलाई उतार्‍यौं॥ तथा कदरको रात के हो भन्ने कुरा तँलाई के थाहा? आफ्ना मालिकको आज्ञाका साथ हरकामका लागि उसमा फरिश्ता र पवित्रात्माहरू उत्रन्छन्॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९७। आ० १,२,४॥

समीक्षक—यदि एउटै रातमा कुरान उतारिएको हो भने त्यो आयत अर्थात् 'त्यसबखत उत्रियो र विस्तार विस्तार उतारियो' भन्ने कुरा कसरी सत्य हुनसक्नेछ? अनि रात अँध्यारो छ, यसमा सोध्नुपर्ने के कुरा छ र? हामीले लेखिसक्यौं कि तल-माथि केही पनि हुनसक्दैन। यहाँ भने 'फरिश्ता र पवित्रतात्माहरू खुदाको आज्ञाले संसारको प्रबन्ध गर्नका लागि आउँदछन्' भन्ने कुरा लेख्दछन्। यसबाट 'खुदा मनुष्य जस्तै एकदेशी छ' भन्ने स्पष्ट हुन्छ। अहिले सम्म खुदा, फरिश्ता र पैगम्बर यी तीनको मात्र कथा देखिएको थियो, तर अब चौथो पवित्रात्मा पनि आइपुग्यो। न जाने यो पवित्रात्मा के हो? यो त पिता, पुत्र र पवित्रात्मा मान्ने ईसाईहरूको मत भन्दा पनि चौथो बड्यो। यदि 'हामी यी तिनैलाई खुदा मान्दैनौं' भन्छौ भने यसो पनि हुनसक्ला। तर यदि पवित्रात्मा छुट्टै छ भने खुदा, रिश्ता र पैगम्बरलाई पवित्रात्मा भन्नु उचित हुन्छ वा हुँदैन? यदि पवित्रात्मा छन् भने एउटैको नाम पवित्रात्मा किन? तथा घोडा आदि जनावर, रात-दिन र कुरान आदिको खुदा कसम खान्छ। कसम खानु भलादमी व्यक्तिको काम होइन॥१६१॥

यस कुरानको विषयमा लेखेर अब बुद्धिमानहरू सम्मुख 'यो पुस्तक कस्तो छ?' भन्ने कुरा प्रस्तुत गर्दछु। मसँग सोध्ने हो भने यो किताब न त ईश्वरकृत, न विद्वानले बनाएको र न विद्याको पुस्तक नै हुनसक्तछ। यो त थोरै दोष 'मानिसहरूले धोकामा परेर आफ्नो जन्म व्यर्थे न गुमाऊन्' भन्ने उद्देश्यले प्रस्तुत गरिएको हो। यसमा जे केही थोरै सत्य छ, त्यो वेदादि विद्या पुस्तकहरूको अनुकूल हुनाले जसरी मलाई ग्राह्य छ त्यस्तै अरू पनि मतमतान्तरका हठ र पक्षपातरहित

विद्वानहरू तथा बुद्धिमानहरूलाई ग्राह्य हुन्छ। यस बाहेक यसमा जे छ त्यो सबै अविद्या, भ्रमजाल र मानिसको आत्मालाई पशुजस्तै बनाएर, शान्तिभंग गराएर, उपद्रव मच्चाएर, मानिसहरूमा विद्रोह फैलाएर, एक अर्काको दुःखलाई बढाउने विषय छ तथा कुरानलाई पुनरुक्त दोषको त भण्डारै सम्झे हुन्छ॥ परमात्मा सबै मनुष्यमाथि कृपा गरोस्, जसबाट सबै सँग सबैले प्रीति र परस्पर मेल-मिलाप बढाएर सबै एक अर्काको सुखलाई बढा उनमा लागिरहून्। जसरी म पक्षपातरहित भएर आफ्ना अथवा अरूका मतमतान्तरहरूका दोषलाई प्रकाशित गर्दछु, यस्तै सबै विद्वानहरूले गरेमा परस्परको विरोध छूटेर, मेल-मिलाप भएर आनन्दपूर्वक एउटै मतावलम्बी भएर सत्यको प्राप्ति सिद्ध हुनमा केही कठिनाइ छैन। कुरानको बारेमा यो थोरै लेखियो। बुद्धिमान धार्मिक जनले यसलाई ग्रन्थकारको अभिप्रायलाई सम्झेर लाभ उठाऊन्। यदि कतै भ्रमले अन्यथा लेखिन गएको भए त्यसलाई शुद्ध गर्नुहोला॥

अब एउटा कुरा के बाँकी रह्यो भने धेरैजसो मुसलमान 'होम्रो मतको कुरा अथर्ववेदमा लेखिएको छ' भन्ने, लेख्ने अथवा छपाउने गर्दछन्। वास्तवमा अथर्ववेदमा यस-कुराको नाम-निशान केही छैन।

प्रश्न—के तिमीले अथर्ववेद हेरेका छौ? देखेका छौ भने अल्लोपनिषद् हेर। यो साक्षात् त्यसैमा (अथर्ववेद) लेखिएको छ। अनि किन 'अथर्ववेदमा मुसलमानहरूको नाम-निशान छैन' भन्दछौ?

अथाल्लोपनिषदं व्याख्यास्यामः

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते। झल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुः। हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥ १॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः। अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥ २॥ अल्लोरसूल-महामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥ ३॥ आदल्लाबूकमेककम्। अल्लाबूक निखातकम्॥ ४॥ अल्लो यज्ञन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्य्य-चन्द्रसर्वनक्षत्राः॥ ५॥ अल्ला ऋषीणां सर्वं दिव्यां इन्द्राय पूर्व माया परममन्तरिक्षाः॥ ६॥ अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥ ७॥ इल्लाँ कबर इल्लाँ कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥ ८॥ ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणा श्यामा हुं ह्रीं जनान-पशूनसिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्॥ ९॥ असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहमदर-कबरस्य अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति

इल्लल्लाः ॥ १० ॥

इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता ॥

यसमा प्रत्यक्ष मुहम्मद साहेब रसूल लेखेकोले यसबाट 'मुसलमानहरूको मत वेदमूलक हो' भन्ने कुरा सिद्ध हुन्छ।

उत्तर—यदि तिमीले अथर्ववेद देखेका छैनौ भने हामीकहाँ आऊ। आरम्भ देखि अन्त सम्म हेर। अथवा कुनैपनि अथर्ववेदीका समीप गएर बीस काण्डयुक्त अथर्ववेदको मन्त्र संहितालाई हेर। कतै पनि तिम्रा पैगम्बर साहेबको नाम वा मतको चिह्न फेला पार्न सक्नेछैनौ। अनि यो अल्लोपनिषद्, न त अथर्ववेदमा, न उसको गोपथ ब्राह्मणमा र न कुनै शाखामा नै छ। यो त बादशाह अकबरको समयमा कसैले बनाएको प्रतीत हुन्छ। यसलाई बनाउनेले केही अरबी र केही संस्कृत पनि पढेको जस्तो लाग्दछ। किनकि यसमा अरबी र संस्कृतका पद लेखिएका देखिन्छन्। हेर, दश खण्डमा लेखिएको 'अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते' इत्यादिमा 'अस्माल्लां' र 'इल्ले' अरबी तथा 'मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते' यो संस्कृतको पद छ। त्यस्तै सर्वत्र देखिनाले कुनै संस्कृत र अरबी पढेकाले बनाएको हो। यसको अर्थ हेर्दा यो कृत्रिम अयुक्त वेद र व्याकरणको रीतिको विरुद्ध छ। जस्तो यो उपनिषद् बनाइएको छ, त्यस्तै धेरैजसो उपनिषदहरू मतमतान्तरका पक्षपातीहरूले बनाएका छन्। जस्तै स्वरोपोनिषद्, नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी आदि धेरै बनाइएका छन्।

प्रश्न—आज सम्म कसैले यसो भनेको थिएन, आज तिमी भन्दैछौ। हामी तिम्रो कुरा कसरी मानौं ?

उत्तर—तिमीले मान्नाले वा नमान्नाले हाम्रो कुरा झूटो हुनसक्तैन। जसरी मैले यसलाई गलत ठहराएको छु त्यसैगरी तिमीले तिमीले अथर्ववेद, गोपथ वा यसका शाखाहरूबाट प्राचीन लिखित पुस्तकहरूमा जस्ताको त्यस्तै लेख देखाऊ तथा अर्थसंगतिद्वारा पनि शुद्ध गर, अनि मात्र प्रमाणयुक्त हुनसक्तछ।

प्रश्न—हेर, सबै किसिमको सुख र अन्त्यमा मुक्ति प्राप्त हुने हाम्रो मत कति राम्रो छ ?

उत्तर—आ-आफ्ना मतावलम्बी सबै नै यस्तै भन्ने गर्दछन् कि 'हाम्रो मत असल छ र अरू सबै खराब छन्। हाम्रो मत बाहेक अरू मतमा मुक्ति हुनसक्दैन'। अब हामी तिम्रो कुरालाई सच्चा मानौं अथवा उनका कुरालाई ठीक सम्झौं ?

हामी त के मान्दछौं भने सत्य बोल्नु, अहिंसा, दया आदि शुभगुण सबै मतहरूमा असल छन् तथा बाँकी वाद-विवाद, ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्याभाषण आदि कर्म सबै मतमा खराब छन्। यदि तिमीलाई सत्य मत ग्रहण गर्ने इच्छा छ भने वैदिक मतलाई ग्रहण गर॥

यस पछि संक्षेपमा 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' लेखिने छ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते
सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभुषिते यवनमतविषये
चतुर्दशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १४ ॥

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

'सर्वतन्त्र सिद्धान्त' अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्मलाई सदैव सबैले मान्दै आए, मान्दैछन् र मान्नेछन् पनि। यसैकारण जुन धर्मको विरोधी कोही पनि हुन नसकोस्, त्यसलाई सनातन नित्य धर्म भनिन्छ। अविद्यायुक्त व्यक्ति अथवा कुनै मतावलम्बीद्वारा भ्रमित व्यक्ति जुनकुरालाई जान्दछन् वा मान्दछन्, त्यसलाई कुनै पनि बुद्धिमान्ले स्वीकार गर्दैन। तर आप्त अर्थात् सत्य मान्ने, सत्य बोल्ने, सत्य गर्ने, परोपकारी, निष्पक्ष विद्वानहरूले मानेका कुरा नै सबैले मान्न योग्य हुनाले प्रमाण योग्य हुन्छन् भने (उक्तानुसारको विद्वान्ले) नमानेका कुरा मान्न अनुचित हुनाले प्रमाण योग्य हुँदैनन्। अब वेद आदि सत्य शास्त्र र ब्रह्मादेखि जैमिनिमुनिसम्मले मानेका र मैले पनि स्वीकार गरेका ईश्वर आदि पदार्थवारे शबै सज्जन महाशयहरू समक्ष विचार प्रस्तुत गर्दछु।

जो तीनकालमा सबैले एकसमान मान्न योग्य छ, त्यसैलाई म आफ्नो मन्तव्य सम्झन्छु। कुनै नयाँ कल्पना वा मतमतान्तर चलाउने लेशमात्र पनि मेरो उद्देश्य वा प्रयोजन होइन, तर सत्यलाई मान्नु र मान्न लगाउनु तथा असत्यलाई छोड्नु र छोड्न लगाउनु मेरो हार्दिक प्रयोजन हो। पक्षपात गर्ने भएको भए म पनि आर्यावर्त्तमा रहेका-चलेका मतहरू मध्ये कुनै एउटाको समर्थक हुनेथिएँ, तर आर्य्यावर्त्त अथवा अरू देशमा रहेका अधर्मयुक्त चाल-चलनलाई स्वीकार र धर्मयुक्त कुराको त्याग गर्दिन र गर्न पनि चाहन्न किनकि यसो गर्नु मनुष्यता होइन।

मननशील भएर आफ्नो आत्माजस्तै अरूका सुख-दुःख र हानि-लाभलाई सम्झनेलाई नै मनुष्य भन्नुपर्दछ। अन्यायकारी बलवान्देखि पनि डर्नु हुँदैन र धर्मात्मा निर्बलदेखि पनि डर्नु पर्दछ। यति मात्र होइन, महा-अनाथ, निर्बल र गुणरहित पनि धर्मात्मा व्यक्तिको रक्षा, उन्नति, प्रिय-आचरण तथा चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् र गुणवान् पनि अधर्मीको नाश, अवनति र अप्रिय-आचरण आफ्नो सम्पूर्ण सामर्थ्यले सदा गर्ने गर्नुपर्दछ। अर्थात् सकभर अन्यायकारीहरूको बलको हानि र न्यायकारीहरूको बलको उन्नति सर्वथा गर्नेगर्नुपर्दछ। यस काममा उसलाई जतिसुकै दारुण=कठोर दुःख प्राप्त भए पनि, प्राणै गएपनि यस मनुष्यतारूपी धर्मदेखि कहिल्यै विचलित हुनुहुँदैन। यसवारे श्रीमान् महाराजा भर्तृहरि आदिले भनेका श्लोकहरू यहाँ लेख्न उपयुक्त सम्झेर

लेख्तछु—

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्तु पदं न धीराः॥ १ ॥

—भर्तृहरि नी० श० ८४॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुख-दुःखेत्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ २ ॥

—महाभारत, उ० प० ४०।११,१२॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥ ३ ॥

—मनुस्मृति ८।१७॥

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः।
यनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥ ४ ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।१।६॥

न हि सत्यात्परो धर्मो, नानृतात्पातकं परम्।
न हि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥ ५ ॥

—उपनिषद्॥

यिनै महाशयहरूका श्लोकहरूको अभिप्रायको अनुकूल सबैले निश्चय राख्नु उचित हुन्छ। अब म जुन-जुन पदार्थलाई जस्तो-जस्तो मान्दछु, तिनको संक्षेपमा यहाँ वर्णन गर्दछु। यिनको विशेष व्याख्या यस ग्रन्थमा आ-आफ्ना प्रकरणमा गरेकै छ। यिनमा—

१. पहिलो 'ईश्वर', जसका ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम छन्, जो सच्चिदानन्द आदि लक्षणयुक्त छ, जसका गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र छन्, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सम्पूर्ण सृष्टिको कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सबै जीवहरूलाई कर्मानुसार सत्य न्यायपूर्वक फलदाता आदि लक्षणयुक्त छ, त्यसैलाई 'परमेश्वर' मान्दछु।
२. चारै 'वेद' (अर्थात् विद्या-धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्रभाग) लाई निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण मान्दछु। ती स्वतः प्रमाण छन् र उनको प्रमाण हुनमा कुनै अन्य ग्रन्थको अपेक्षा छैन। जसरी सूर्य वा दीपक आफ्ना स्वरूपलाई आफैं प्रकाशित गर्नुको साथै पृथ्वी आदिलाई पनि प्रकाशित गर्दछन्, त्यस्तै

चारै वेद हुन्। अनि वेदका व्याख्यारूप ब्रह्मा आदि महर्षिहरूले बनाएका चारै वेदका ब्राह्मण, छः अङ्ग, छ उपाङ्ग, चार उपवेद र वेदका ११२७ (एघार सय सत्ताईस) शाखाग्रन्थलाई परतःप्रमाण अर्थात् वेदको अनुकूल हुनाले प्रमाण र यिनमा भएका वेदविरुद्ध वचनलाई अप्रमाण मान्दछु।

३. पक्षपातरहित, न्यायाचरण, सत्यभाषण आदि युक्त ईश्वराज्ञा, वेदानुकूल (व्यवहार) लाई 'धर्म' र पक्षपातसहित, अन्याय आचरण, मिथ्याभाषण आदि ईश्वरको आज्ञा भङ्ग, वेदविरुद्धलाई 'अधर्म' मान्दछु।

४. इच्छा, द्वेष, सुख, र ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्यलाई 'जीव' मान्दछु।

५. 'जीव र ईश्वर' स्वरूप र वैधर्म्यले भिन्न तथा व्याप्य–व्यापक र साधर्म्यले अभिन्न छन्। अर्थात् जसरी मूर्त्तिमान् द्रव्य न त कहिल्यै आकाशभन्दा भिन्नै थियो, न छ, न हुनेछ र न त कहिल्यै एउटै थियो, न छ, न हुनेछ, त्यस्तै परमेश्वर र जीवलाई व्याप्य–व्यापक, उपास्य–उपासक र पिता–पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मान्दछु।

६. 'अनादि पदार्थ' तीन छन्। पहिलो ईश्वर, दोस्रो जीव, तेस्रो प्रकृति अर्थात् जगत्को कारण। यिनैलाई नित्य पनि भनिन्छ। नित्यपदार्थका गुण, कर्म, स्वभाव पनि नित्य हुन्छन्।

७. 'प्रवाहले अनादि' संयोगले उत्पन्न भएका द्रव्य, गुण, कर्म वियोग पछि रहँदैनन्, तर उनमा 'पहिलो संयोग हुने सामर्थ्य' अनादि छ र त्यसबाट फेरि पनि संयोग हुनेछ र वियोग पनि हुनेछ। यी तिनैलाई (संयोग, वियोग र सामर्थ्य) प्रवाहले अनादि मान्दछु।

८. 'सृष्टि' ज्ञान र युक्तिपूर्वक छुट्टै द्रव्यहरूको मेल भएर अनेकरूप बन्नुलाई सृष्टि भनिन्छ।

९. 'सृष्टिको प्रयोजन' ईश्वरका सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभावको सफलता नै 'सृष्टिको प्रयोजन' हो। कसैले कसैसँग 'आँखा केका लागि?' भनी सोद्धा 'हेर्न' भनी जवाफ दिए झैं ईश्वरको सृष्टि गर्ने सामर्थ्यको सफलता सृष्टि गर्नमा नै छ तथा जीवका कर्मको यथावत् भोग गराउनु पनि (प्रयोजन हो)।

१०. 'सृष्टि सकर्तृक' छ। यसको कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर हो। सृष्टिको रचना हेर्दार जड़ पदार्थमा आफैं नै यथायोग्य बिउ आदि स्वरूप बन्ने सामर्थ्य न हुनाले सृष्टिको कर्त्ता अवश्य छ।

११. 'बन्ध' सनिमित्तक हुन्छ अर्थात् अविद्याका कारण हुन्छ। ईश्वर बाहेक अरूको उपासना र अज्ञान आदि दुःख फल दायक पापकर्मका कारण यो नचाहेर पनि भोग्नु पर्ने 'बन्ध' हुन्छ।

१२. 'मुक्ति' सबै दुःखबाट छुटेर बन्धनरहित सर्वव्यापक ईश्वर र उसको सृष्टिमा स्वेच्छापूर्वक विचरण गर्नु र निश्चित समयसम्म मुक्तिको आनन्दलाई भोगेर पुनः संसारमा आउनु (लाई मुक्ति भनिन्छ)।

१३. 'मुक्तिका साधन' ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मको अनुष्ठान, ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वान्हरूको संगत, सत्यविद्या, सुविचार र पुरुषार्थ आदि हुन्।

१४. 'अर्थ' त्यो हो कि जो धर्मद्वारा नै प्राप्त गरिन्छ तथा अधर्मबाट सिद्ध गरिएकोलाई 'अनर्थ' भनिन्छ।

१५. 'काम' त्यो हो, जो धर्म र अर्थद्वारा प्राप्त गरिन्छ।

१६. 'वर्णाश्रम' गुण–कर्मको योग्यता अनुसार मान्दछु।

१७. 'राजा' शुभ गुण–कर्म–स्वभाव सम्पन्न, पक्षपातरहित न्याय धर्मको सेवन गर्ने, प्रजामा पितृतुल्य व्यवहार गर्ने र उनलाई पुत्रवत् मानेर उनको उन्नति र सुख बढाउनमा सदा प्रयत्नशील रहनेलाई 'राजा' भनिन्छ।

१८. 'प्रजा' पवित्र गुण–कर्म–स्वभावलाई धारण गरेर पक्षपातरहित न्याय धर्मको सेवनद्वारा राजा र प्रजाको उन्नति चाहँदै राजविद्रोहरहित राजासँगै पुत्रवत् व्यवहार गर्नेलाई 'प्रजा' भनिन्छ।

१९. 'न्यायकारी' (न्यायाधीश) सदा विचारपूर्वक असत्यलाई छोडेर सत्यलाई ग्रहण गर्ने, अन्यायकारीलाई घटाउने र न्यायकारीलाई बढाउने, आफ्नो आत्माको जस्तै सबैको सुख चाहनेलाई 'न्यायकारी' भनिन्छ, त्यसलाई म पनि ठीक ठान्दछु।

२०. विद्वानहरूलाई 'देव', अविद्वान्लाई 'असुर', पापीहरूलाई 'राक्षस' र अनाचारीहरूलाई 'पिशाच' मान्दछु।

२१. तिनै विद्वान्हरू, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा, धर्मात्मा व्यक्ति, प्रतिव्रता स्त्री र पत्नीव्रत पतिको सत्कार गर्नु 'देवपूजा' भनिन्छ। यसको विपरीत 'अदेवपूजा' हो। यिनकै मूर्तिहरूलाई पूज्य र अरू ढुङ्गा आदि जडमूर्तिहरूलाई सर्वथा अपूज्य ठान्दछु।
२२. 'शिक्षा' जसबाट विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता आदिको वृद्धि हुन्छ र अविद्या आदि दोष छुट्तछन्, त्यसलाई 'शिक्षा' भनिन्छ।
२३. 'पुराण' ब्रह्मा आदिले रचेका ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रन्थलाई नै पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा र नाराशंसी नामबाट मान्दछु, अरू भागवत आदिलाई मान्दिन।
२४. 'तीर्थ' सत्यभाषण, विद्या, सत्सङ्ग, यम आदि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादान आदि दुःखसागरबाट पार उतार्ने शुभकर्मलाई 'तीर्थ' ठान्दछु, अरू जल-स्थल आदिलाई (तीर्थ) मान्दिन।
२५. पुरुषार्थबाटै संचित प्रारब्ध बन्ने, पुरुषार्थ सुध्रनाले सबै कुरा सुध्रने र पुरुषार्थ बिग्रनाले सबै बिग्रने हुनाले 'प्रारब्धभन्दा पुरुषार्थ ठूलो' हुन्छ।
२६. 'मनुष्य' ले सुख, दुःख, हानि, लाभमा सबैसँग यथायोग्य आफ्नो आत्मा जस्तै व्यवहार गर्नु असल र यसको विपरीत आचरणलाई खराब सम्झन्छु।
२७. 'संस्कार' जसबाट शरीर, मन र आत्मा उत्तम हुन्छ, त्यसलाई संस्कार भनिन्छ। 'निषेक' देखि श्मशानसम्म सोह्र संस्कार हुन्छन्। यसलाई कर्त्तव्य ठान्दछु तथा दाह पछि मृतकका लागि केहीपनि गर्नुपर्दैन।
२८. 'यज्ञ' विद्वानहरूको सत्कार, शिल्प अर्थात् रसायन वा पदार्थ विद्याको यथायोग्य उपयोग, विद्या आदि शुभगुणहरूको दान, अग्निहोत्र आदिद्वारा वायु, वृष्टि, जल, ओषधिलाई पवित्र तुल्याएर सबै जीवलाई सुख पुर्याउनु नै 'यज्ञ' हो, यसलाई उत्तम ठान्दछु।
२९. श्रेष्ठ मनुष्यलाई 'आर्य' र दुष्टलाई 'दस्यु' भनिन्छ। म पनि यस्तै मान्दछु।
३०. 'आर्यावर्त्त' यस भूमिमा आदि सृष्टिदेखि आर्यहरू निवास

गर्ने हुनाले यसको नाम आर्य्यावर्त्त देश हो। यसको सीमा उत्तरमा हिमालय, दक्षिणमा विन्ध्याचल, पश्चिममा अटक र पूर्वमा ब्रह्मपुत्र नदी हो। यी चार किल्लाभित्रको ठाउँलाई आर्य्यावर्त्त भनिन्छ र सदा यसमा बस्नेहरूलाई आर्य भनिन्छ।
३१. साङ्गोपाङ्ग वेद विद्या पढाउने, सत्य आचरणलाई ग्रहण गराउने र मिथ्या आचरणलाई छुटाउनेलाई 'आचार्य' भनिन्छ।
३२. सत्य शिक्षा र विद्या ग्रहण गर्न योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहणको इच्छा र आचार्यको प्रिय गर्नेलाई 'शिष्य' भनिन्छ।
३३. आमा, बावु तथा सत्यको ग्रहण गराउने र असत्यलाई छुटाउनेलाई पनि 'गुरु' भनिन्छ।
३४. यजमानको हितकारी र सत्यको उपदेशक 'पुरोहित' हुन्छ।
३५. वेदको एक भाग वा अङ्गलाई पढाउनेलाई 'उपाध्याय' भनिन्छ।
३६. धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्यद्वारा विद्याग्रहण गरेर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणहरूद्वारा सत्य र असत्यको निर्णय गरेर सत्यलाई ग्रहण र असत्यली परित्याग गर्नु नै 'शिष्टाचार' हो र यस्तै व्यवहार गर्नेलाई 'शिष्ट' भनिन्छ।
३७. प्रत्यक्ष आदि आठ 'प्रमाण' लाई पनि मान्दछू।
३८. यथार्थ बोल्ने, धर्मात्मा र सबैको सुखका लागि प्रयत्न गर्नेलाई नै 'आप्त' मान्दछु।
३९. 'परीक्षा' पाँच प्रकारको छ। यसमा पहिलो—ईश्वर, उसका गुण, कर्म, स्वभाव र वेदविद्या, दोस्रो—प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाण, तेस्रो—सृष्टिक्रम, चौथो—आप्तपुरुषहरूको व्यवहार र पाँचौं—आफ्नो आत्माको पवित्रता र विद्या। यी पाँच परीक्षाद्वारा सत्य र असत्यको निर्णय गरेर सत्यलाई ग्रहण र असत्यको परित्याग गर्नुपर्दछ।
४०. सबै मनुष्यहरूका दुराचार, दुःख छुट्ने तथा श्रेष्ठाचार, सुख बढ्ने काम गर्नुलाई 'परोपकार' भनिन्छ।
४१. 'स्वतन्त्र', 'परतन्त्र' जीव आफ्ना कर्ममा स्वतन्त्र र कर्मफल भोग्नमा ईश्वरको व्यवस्थाले परतन्त्र छन्। त्यस्तै ईश्वर आफ्ना सत्याचार आदि काम गर्नमा स्वतन्त्र छ।
४२. विशेष सुखभोग र उसको सामग्री प्राप्तिलाई 'स्वर्ग' भनिन्छ।
४३. विशेष दुःखभोग र उसको सामग्री प्राप्तिलाई 'नरक' भनिन्छ।
४४. शरीर धारण गरेर प्रकट हुनुलाई 'जन्म' भनिन्छ। यो पूर्व,

पर र मध्य (वर्त्तमान) भेदले तीन प्रकारको हुन्छ भन्ने मान्दछु।

४५. शरीरको संयोगको नाम 'जन्म' हो भने वियोग मात्रलाई 'मृत्यु' भनिन्छ।

४६. नियमपूर्वक र प्रसिद्धिपूर्वक आफ्नो इच्छाले 'पाणिग्रहण' गर्नुलाई 'विवाह' भनिन्छ।

४७. विवाहपछि पति वा पत्नी मर्ने आदि वियोगावस्थामा, अथवा नपुंसकता (या बाँझोपन?) आदि असाध्य रोगहरूको अवस्थामा, स्त्री वा पुरुषद्वारा आपत्कालमा आफ्नो वर्ण वा आफूभन्दा उत्तम वर्णको स्त्री वा पुरुषबाट सन्तान उत्पन्न गर्नुलाई 'नियोग' भनिन्छ।

४८. गुणको कीर्त्तन, श्रवण र ज्ञानलाई 'स्तुति' भनिन्छ र प्रीति आदि यसको फल हो।

४९. आफ्नो सामर्थ्य पछि ईश्वरसँगको सम्बन्धले प्राप्त हुने विज्ञान आदिका लागि ईश्वरसँग याचना गर्नुलाई 'प्रार्थना' भनिन्छ। निरभिमानता आदि यसको फल हो।

५०. ईश्वरका गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र भएजस्तै आफ्नो पनि बनाउनु, ईश्वरलाई सर्वव्यापक र आफूलाई व्याप्य सम्झेर ईश्वरका समीप आफू र आफ्नो समीप ईश्वर छ भन्ने साक्षात् निश्चय योगाभ्यासद्वारा गर्नुलाई 'उपासना' भनिन्छ। ज्ञानको उन्नति आदि यसको फल हो।

५१. **सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना**—परमेश्वरमा भएका गुणले युक्त र नभएका देखि पृथक् मानेर ईश्वरको प्रशंसा गर्नु 'सगुणनिर्गुणस्तुति', ईश्वरबाट शुभगुणहरू ग्रहण गर्ने इच्छा र दोष छुटाउन परमात्माको सहायता चाहनु 'सगुणनिर्गुण–प्रार्थना' तथा परमात्मालाई सबै गुणयुक्त र सबै दोषरहित मानेर आफ्नो आत्मालाई उसमा र उसको आज्ञामा अर्पण गर्नु 'सगुणनिर्गुणोपासना' भनिन्छ।

यी संक्षेपमा स्वसिद्धान्त दर्शाइएका छन्। यिनको विशेष व्याख्या यसै 'सत्यार्थप्रकाश' को प्रकरण–प्रकरणमा छ तथा ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका आदि ग्रन्थहरूमा पनि लेखेको छ। अर्थात् सत्य बोल्नु सबैका सम्मुख असल र झूट बोल्नु खराब भएजस्तै सबैका सम्मुख मान्यकुरालाई मान्नुपर्ने सिद्धान्तलाई मान्दछु तथा मतमतान्तरमा रहेका परस्पर विरुद्ध झगड़ालाई म मन पराउँदिन; किनकि यिनै मतालम्बीहरूले आ–आफ्नो

मतको प्रचार गरेर मानिसहरूलाई फसाएर परस्पर शत्रु बनाइदिएका छन्। यस्ता कुरालाई पन्छाएर सर्वसत्यको प्रचार गरेर सबैलाई एकमतस्थ गराएर, द्वेष छुटाएर, परस्पर दृढ प्रीतियुक्त गराएर, सबैबाट सबैलाई सुखलाभ पुर्‍याउनका लागि नै यो मेरो प्रयत्न र यही उद्देश्य हो। सर्वशक्तिमान् परमात्माको कृपा, सहायता र आप्तजनहरूको सहानुभूतिले 'यो सिद्धान्त सर्वत्र भूगोलमा छिट्टै प्रवृत्त होओस्' जसबाट सबैजना सजिलैसँग धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्षको सिद्धि प्राप्त गरेर सदा उन्नत र आनन्दित भैरहून्। यही मेरो मुख्य प्रयोजन हो।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्।
तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्तव्यामन्तव्य–सिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत्॥

सत्यार्थप्रकाश रचयिता, युगपुरुष

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य जातिले आफ्नो महान् गौरव, इतिहास, परम्परा, धर्म र संस्कृतिलाई बिर्सिरहेको र अविद्यारूपी अन्धकारमा अन्याय र अभावको भंडखारो भित्र पर्दै गएको समयमा परमात्माको कृपाले सन् १८२४ ई० (सं० १८८१ वि०) मा भारतको मौरवी (गुजरात) राज्यको टंकारा नामक ठाउँमा युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्दको आविर्भाव भएको थियो। उहाँको बालकपनको नाम मूलशंकर थियो भने उहाँको बुवाको नाम श्री कर्षनजी तिवारी थियो। कर्षनजी मौरवी राज्यका एक सम्पन्न र उच्च वंशका प्रतिष्ठित व्यक्ति हुनुहुन्थ्यो। सम्पन्न र प्रतिष्ठित परिवारमा परम्परागत धार्मिक संस्कार अनुसार नै मूलशंकरको पालन, पोषण र संवर्धन हुँदै गयो।

१४ वर्षको उमेरमा शिवरात्रौको अवसरमा बुवाको अज्ञानुसार व्रत धारण र रात्री जागरणमा सम्मिलित मूलशंकरले शिवमूर्तिमा चढेको र निर्भय भएर शिवजीको प्रसाद खाइरहेको मूसोलाई देख्नुभयो। रूद्र एवं त्रिशूलधारी भनिएको शिवजीको शक्तिमाथि उहाँलाई शङ्का उत्पन्न भयो र त्यही शङ्काले उहाँलाई वास्तविक ईश्वरको खोजी तर्फ प्रेरित गर्‍यो। त्यही प्रेरणाले आर्य जातिमा धार्मिक क्रान्ति र चिर निद्राबाट कोल्टो फेरेर ब्यूँझाउने काम गर्‍यो। जीवन मरण साधारण घटना भएतापनि बहिनी र काकाको मृत्युले मूलशंकरको चिन्तनधारालाई झनै प्रभावित पार्‍यो र उहाँले मृत्युञ्जय बन्ने प्रयत्न गर्नुभयो। आमा–बुवाले छोराको विवाहको विचार गरिरहेकै बेला जिज्ञासु बालकले परिवारको मोह, भौतिक सुख सम्पत्ति आदि त्यागेर उहाँ घरबाट निस्कनुभयो र आफ्नो संकल्प साधनाका लागि तथा पारिवारिक खोज तलासबाट जोगिन उहाँले दिनका दिन भोक–भोकै रूखमा चढेर र कैयौं रात ब्यूँझेरै पनि बिताउनु परेका थिए।

सत्यको खोजीमा घर छाडेर हिंड्नु भएका मूलशंकरले स्वामी पूर्णानन्दबाट संन्यास दीक्षा लिएर दयानन्द सरस्वती नाम धारण गर्नुभयो। उहाँले १५ वर्षसम्म भारतवर्षको भ्रमण गर्नुभयो। विद्वान्, तपस्वी र

योगीहरूको खोजीमा भट्किरहनु भयो। भारतको प्रायः जसो सबै तीर्थमा पुगेर ज्ञानको भोक मेटाउने प्रयास गर्नुभयो। धेरै कष्ट, भोक, तिर्खा, अपमान र संकटहरूको सामना गरेर पनि ज्ञानको प्रकाश प्राप्त गर्न सफल हुनसक्नुभएन। सर्वत्र अज्ञान, अन्धविश्वास, गुरुडम, पाखण्ड र हजारौं लाखौं मूर्तिहरू देखेर उहाँलाई ती प्रति घृणा भयो। सत्यको खजीमा हिमालयका कन्दरा र शिखरहरूमा भट्किदै संकटापन अवस्थामा शरीर त्याग गर्ने निराशाजन्य विचार मनमा आउँदा पनि पुनः 'यथार्थ ज्ञानद्वारा संसारको उपकार नगरी देहत्याग उचित होइन' भन्ने निश्चयका साथ दृढ निश्चयी आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्दले आफ्नो यात्रा छोड्नु भएन।

सन् १८५८ मा दयानन्दलाई एक जना वृद्ध संन्यासीको दर्शन भयो। अन्धविश्वास र पाखण्ड आदिको उग्र खण्डन गर्ने उद्भट विद्वान् ती प्रज्ञाचक्षु संन्यासीलाई गुरु रूपमा प्राप्त गरेर उहाँले उहाँको चरणमा आफुलाई समर्पित गर्नुभयो। दण्डी स्वामी विरजानन्दले आफ्नो ज्ञान ज्योतिद्वारा दयानन्दको तर्क ज्योतिलाई प्रज्वलित गर्नुभयो। गुरु शिष्यले मिलेर तत्कालीन समाजको परिस्थिति उपर गम्भीर चिन्तन गर्नुभयो।

साँढे दुई वर्ष सम्म गुरुको सेवा पछि गुरुवाट विदा लिई जान लाग्दा गुरु दक्षिणाको रूपमा दयानन्दले टक्र्याउनु भएको केही ल्वाँगको आदर गरेर पनि गुरु विरजानन्दले **मानव जातिको कल्याणका लागि दयानन्दको जीवन नै माग्नुभयो**। गुरुबाट विदा भएर दयानन्दले एक मात्र सत्यका अतिरिक्त सबै वेद विरुद्ध विचारहरूको खण्डन वाणी र लेखनीद्वारा गर्नुभयो। सर्वत्र सबै षड्यन्त्रहरूलाई विफल पार्दै उहाँ शास्त्रार्थहरूमा विजयी हुनुभयो। पौराणिक पाखण्डका साथै मुस्लिम धर्मान्धता र ईसाइयको आकर्षणका विरुद्ध पनि स्वामीजीले शक्ति लगाउनुभयो। सबै भ्रम जालको निवारणका साथै निर्मल वेद ज्ञानको प्रचार प्रसारका लागि सन् १८७५ मा उहाँले 'आर्यसमाज' को स्थापनाका साथै **'संसारको उपकार गर्नु यस समाजको मुख्य उद्देश्य'** घोषित गर्नुभयो। विश्वबन्धुत्वको आदर्शलाई उहाँले साकार रूप दिने प्रयास गर्नुभयो। उहाँले गर्नु भएका रचनात्मक कार्यहरूमा—स्त्री शिक्षा, छुताछुत निवारण, पर्दा प्रथा निवारण, बालविवाह र वृद्ध विवाहको विरोध, ब्रह्मचर्य पालनको प्रबल समर्थन, स्वदेशी वस्तु, स्वभाषा, स्वतन्त्रता, स्ववाङ्मय आदिको महत्त्व प्रतिपादन, शिक्षा–प्रसार, जन्ममा आधारित वर्ण व्यवस्थाको ठाउँमा कर्ममा आधारित वर्ण व्यवस्थाको समर्थन,

ब्रह्म–मायावादको दार्शनिक दृष्टिकोणको सट्टा कर्मव्यवस्था युक्त त्रित्ववाद (ईश्वर, जीव, प्रकृति) को प्रतिपादन, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध आदिको अभिशापको सट्टा निराकार ईश्वरको उपासनाको व्यापक प्रचार–प्रसार र जीवित आमा–बाबु आदिको सेवाको उपदेश आदि विशेष उल्लेखनीय छन्।

आफ्ना मन्तव्यहरूलाई स्पष्ट पार्न महर्षि दयानन्दले सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेद–भाष्य आदि साहित्य निर्माणका साथै यसमा निरन्तरताका लागि गण्यमान्य व्यक्तिहरूको सहयोगमा 'परोपकारिणी सभा' को स्थापना गर्नुभयो। कुनै मत, पन्थ वा सम्प्रादय चलाउनुको सट्टा उहाँले सम्प्रदायवादलाई निर्मूल पार्ने प्रयासका साथै सर्वसाधारणलाई वेदज्ञानको उपदेश दिनुभयो र 'स्त्री र शूद्रले पढ्नु हुँदैन' भन्ने धारणालाई हटाउनु भयो।

सन् १८८३ मा आफ्नो प्रचार क्रममा जोधपुर पुग्नु भएका दयानन्दले त्यहाँका महाराजालाई धर्मोपदेश दिनुको साथै महाराजाको चरित्रहीनतालाई दुःखी मनले धिक्कार्नुभयो। महाराजाको सम्पर्कमा रहेकी वेश्याले महर्षिलाई आफ्नो बाटोको काँडो सम्झेर षड्यन्त्रपूर्वक दूधमा सीसाको धुलो पिलाउन लगाई। यद्यपि यस अघि पनि महर्षिलाई तेह्र पटक विष दिइएको थियो, तर यस पटकको विष घातक सिद्ध भयो। धेरै उपचार पछि पनि अमूल्य जीवन बच्न सकेन। सन् १८८३ को कार्तिकी अमावस्या (दीपावली) मंगलवारका दिन साँझ ६ बजे मानवमात्रको हित चिन्तक, आदित्य ब्रह्मचारी, वेदका अद्वितीय विद्वान दयानन्दले यस असार संसारलाई त्याग्दै 'ईश्वर तेरो इच्छा पूर्ण होस्' भन्ने भक्ति र श्रद्धाका साथ इच्छा मृत्युको वरण गर्दै निर्वाण प्राप्त गर्नुभयो। एउटा पार्थिव ज्योति निभ्यो तर उसले जलाएको ज्ञान ज्योति सदैव सम्पूर्ण मानवतालाई प्रकाशित गरिरहने छ।

—०—